हिन्दी का विवरणात्मक व्याकरण



डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा

डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा
एम० ए०, डी० फिल
प्रोफेसर अध्यक्ष हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद--७५ ई०

196

हिन्दी

का

विवरणात्मक व्याकरण

हिन्दी का विवरणात्मक व्याकरण

(A DESCRIPTIVE GRAMMAR OF HINDI)



लेखक

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा,

एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत, भाषाविज्ञान),

एल. टी, पी-एच. डी.

(रीडर, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा–5)

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

प्रकाशक

विनोद पुस्तक मन्दिर

कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा–2

विक्री-केन्द्र : हॉस्पिटल रोड, आगरा–3

प्रथम संस्करण : 1991

मूल्य : 50.00

मुद्रक : रवि मुद्रणालय, आगरा–2

प्रकाशक
विनोद पुस्तक मन्दिर
कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा–2
विक्री-केन्द्र : हॉस्पिटल रोड, आगरा–3

प्रथम संस्करण : 1991
मूल्य : 50.00

मुद्रक : रवि मुद्रणालय, आगरा–2

विषय-सूची

परिशिष्ट

विषय-प्रवेश से पूर्व

प्रस्तुत कृति का सूत्रपात 1974-75 में ही हो चुका था। इसी बीच लेखक को देवनागरी लिपि और हिन्दी वर्तनी-व्यवस्था; हिन्दी-संरचना का अध्ययन-अध्यापन; भाषा 1, 2 की शिक्षण-विधियाँ और पाठ-नियोजन; शिक्षण सामग्री-निर्माण; शिक्षण-साधन' पर लिखने के लिए विवश होना पड़ा। पूर्णतः उदाहरणों पर आधारित 'हिन्दी संरचना का अध्ययन-अध्यापन' पुस्तक के कई पाठकों (मुख्यतः हिन्दी-इतर भाषा भाषियों) ने आग्रह किया कि मैं हिन्दी-व्याकरण पर सैद्धान्तिक व्याकरण की एक पुस्तक लिख दूँ। उन अनेक हिन्दी भाषा-प्रेमियों के आग्रह का ही प्रतिफल यह प्रस्तुत ग्रन्थ है।

वैसे तो हिन्दी में छोटे-बड़े अनेक व्याकरण ग्रन्थ लिखे गए हैं जिन में आधुनिक भाषा विश्लेषण-पद्धति का प्रायः अभाव है। कुछ भाषावैज्ञानिकों ने तथाकथित आधुनिक विश्लेषण पद्धति के नाम पर जटिल वाग्जाल ही प्रस्तुत किया है, अध्येता की आवश्यकता तथा उपयोगिता का ध्यान कम ही रखा है। कामताप्रसाद गुरु, किशोरीदास बाजपेयी, आर्येन्द्र शर्मा प्रभृति के ग्रन्थों में कई स्थलों पर मौलिक चिन्तन प्राप्त है, किन्तु इन ग्रन्थों में परम्परा का अनुपालन ही अधिक है। स्कूल और कॉलेजों के पाठ्यक्रम को ध्यान में रख कर लिखे गए अनेक व्याकरण-ग्रन्थों में चिन्तन तथा तथ्य-प्रस्तुतीकरण की अनेक भूलें देखने में आती हैं। ऐसे ग्रन्थों को पढ़ कर अहिन्दी भाषियों के मस्तिष्क में हिन्दी भाषा के व्याकरण की सुस्पष्ट छवि नहीं बन पाती और वे अनेक स्थलों पर भ्रम में पड़ जाते हैं। लेखक का मुख्य क्षेत्र भाषा$_2$ हिन्दी का शिक्षण रहा है, अतः प्रस्तुत पुस्तक भी उसी शिक्षण की एक कड़ी है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में लेखक का पिछले 35 वर्षों का अध्यापन-अनुभव आधार-भूमि बना है।

इस ग्रन्थ का अध्येता मुख्यतः अहिन्दी भाषी हिन्दी-प्रेमी छात्र, अध्यापक, वक्ता, लेखक तथा सम्पादक होगा; अतः विभिन्न स्तरीय अध्येताओं को दृष्टि में रखते हुए इस व्याकरण को मुख्यतः संरचनात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। व्याकरण को मूलतः आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी पर आधारित रखा

गया है। आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं हिन्दी की बोलियों तथा अन्य भाषाओं के उदाहरण देने में संकोच नहीं किया गया है। शिक्षार्थियों के उपयोगार्थ परिशिष्ट में प्रत्येक अध्याय पर आवश्यक प्रश्नों तथा अभ्यासों का समावेश किया गया है तथा उन के उत्तर-संकेत भी दे दिए गए हैं। जिन्हें प्रश्नों-अभ्यासों तथा उन के उत्तरों से कुछ लेना-देना नहीं है, उन के लिए भी यह अंश उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अहिन्दी भाषियों की भाँति ही हिन्दी भाषी भी हिन्दी भाषा-व्याकरण के सैद्धान्तिक पक्ष तथा विश्लेषण पद्धति और भाषा-प्रयोग के मर्म को पहचानने में इस ग्रन्थ से सहायता प्राप्त कर पाएँगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

एक अमूर्त संकल्पना होने के कारण भाषा का परिनिष्ठित रूप सदैव विवादास्पद विषय रहा है। व्यक्तियों के निजी संस्कारों के परिणामस्वरूप भाषा के परिनिष्ठित रूप से भिन्न-भिन्न मात्राओं में विचलन देखा जाता है; फिर भी भाषा की वे इकाइयाँ जो सर्वाधिक लोगों द्वारा स्वीकृत होती हैं, परिनिष्ठित प्रयोग में मान्य और गणनीय होती हैं। भाषा की आन्तरिक व्यवस्था या संरचना भी परिनिष्ठित स्वरूप की ओर संकेत करती है, अतः इस ग्रन्थ में प्रयोग-बहुलता तथा आन्तरिक संरचना को आधार बनाते हुए हिन्दी भाषा का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। पाणिनि के समय से ही व्याकरण का गुण उस की संक्षिप्तता स्वीकार किया जाता रहा है। इस गुण या विशेषता का निर्वाह करने के उद्देश्य से कहीं-कहीं सूत्रों में कथ्य को प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक के मुख्य तीन भाग हैं—1. ध्वनि तथा वर्ण-व्यवस्था 2. रूप तथा शब्द-व्यवस्था 3. पदबन्ध तथा वाक्य-व्यवस्था। विषय-प्रवेश तथा परिशिष्ट में व्याकरण से सम्बन्धित अनेक फुटकर बातें बताई गई हैं। पाठकों को इस ग्रन्थ में मधुमक्षिका वृत्ति का आभास मिले तो मुझे कोई खेद नहीं होगा क्योंकि व्याकरण, शब्दकोश आदि में उपन्यास, कविता आदि की भाँति प्रत्येक स्थल पर मौलिकता खोजना मृग-मरीचिका सदृश है। पूर्व प्रकाशित अनेक व्याकरण ग्रन्थों के लेखकों के प्रति आभार प्रकट करना मेरा परम कर्तव्य है जिन के ग्रन्थों को पढ़ने पर मुझे अपनी चिन्तन-दिशा को निश्चित करने का सुअवसर मिला।

पुस्तक में प्रयुक्त कुछ संकेत ये हैं—

∽ वैकल्पिक प्रयोग
\+ योग; अनिवार्य अस्तित्व
— अनिवार्य अभाव
± अनिवार्य अस्तित्व तथा अभाव का विकल्प
= समान प्रयोग/अर्थ
[ ] उच्चरित रूप
/ / लिखित रूप

√ क्रिया-धातु

* असम्भव/कल्पित प्रयोग

> के रूप में निष्पन्न

< से व्युत्पन्न

! (कथ्य से पूर्व) सम्भावित प्रयोग

? (कथ्य से पूर्व) सन्दिग्ध प्रयोग

→ में परिवर्तित या रूपान्तरित

/ अथवा, या (किसी रचना के अन्तर्गत अतिरिक्त प्रयोग)

|| समान संरचना (/वितरण/प्रकार्य या अर्थ)

स्व स्वर

व्य व्यंजन

विषय-प्रवेश

1

भाषा तथा व्याकरण

भाषा—मनुष्य अपने जन्म से ले कर अपनी मृत्यु तक विभिन्न क्रिया-कलापों के लिए समाज पर निर्भर रहता है। समाज के विभिन्न व्यक्तियों से वह अपना सम्बन्ध भाषा के माध्यम से ही बनाए रखता है। वह अपने दृष्ट तथा अपने से परे अदृष्ट संसार के बारे में भाषा के माध्यम से ही चिन्तन-मनन करता है तथा अपने मन के विचार और अपने हृदय की भावनाओं को भाषा के माध्यम से ही दूसरों पर प्रकट कर पाता है। वैयक्तिक स्तर पर भाषा चिन्तन-मनन का माध्यम है तो समूह-स्तर पर सम्प्रेषण का। यह सम्प्रेषण व्यक्तिगत या सामूहिक भौतिक आवश्यकता-पूर्ति के लिए हो सकता है अथवा वैचारिक सांस्कृतिक सम्प्रेषण हेतु। मुख-भावों तथा हस्त-संकेतों आदि (**अव्यक्त भाषा**) से भी वह पशु-पक्षियों की भाँति अपने विचारों को कभी-कभी प्रकट करता है किन्तु अत्यन्त सीमित मात्रा में ही। ये मुख-भाव तथा हस्त-संकेतादि व्याकरण के विषय नहीं हैं; अतः भाषा मानव-मुख से उच्चरित शब्दों तथा वाक्यों के उस समूह को कहते हैं जिस के द्‌वारा मन के भाव-विचार प्रकट होते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र, समाज, परिवार, व्यक्ति की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि व्यवस्था में कुछ-न-कुछ अन्तर पाया जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दादि की अपनी व्यवस्था होती है। **व्यवस्था-भेद** के कारण ही भाषाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। दो भाषाओं की इन चार व्यवस्थाओं में बाहरी तथा आन्तरिक दृष्टि से पर्याप्त अन्तर होता है—1. सर्वनाम-व्यवस्था, 2. परसर्ग/कारक चिह्‌न-व्यवस्था, 3. संख्या-व्यवस्था, 4. क्रियापद-व्यवस्था।

मनुष्य दूसरों पर अपने जो भी विचार प्रकट करना चाहता है, उन पर उस का मस्तिष्क पहले मनन कर लेता है और फिर जीभ तथा होठों आदि की सहायता से ध्वनि-तरंगों में उसे बदल देता है। सोचने की यह प्रक्रिया भी भाषा के माध्यम से ही होती है। मनुष्य की यह भाषा **व्यक्त भाषा** कही जाती है। इस प्रकार **भाषा मानव-जगत् के विभिन्न सम्बन्धों, क्रियाओं और व्यवहारों का मूल आधार है।** यह एक ऐसा समर्थ माध्यम है जिस से एक भाषा-भाषी समाज के लोग अपने भाव-विचार एक-दूसरे के समक्ष प्रकट करते हैं तथा उन्हें जानते, समझते हैं। (कभी-कभी वे

छद्म रूप में गोपन भी कर लेते हैं। दुकानदार, पंडे अपने ग्राहकों से; चोर, ठग अपने शिकार से; सैनिक लोग अपने दुश्मन से अपने विचार/योजनाएँ/इरादे छिपाने के उद्देश्य से **गुप्त भाषा** का प्रयोग करते हैं। गुप्त भाषा में संकेत होते हैं तथा सर्वसामान्य स्वीकृत शब्दों के स्थान पर वर्ग-विशेष की व्यवस्था/स्वीकृति के अनुरूप शब्दों का छद्म प्रयोग किया जाता है।)

भाषा मानव-मुख से उच्चरित वाक्-ध्वनियों की समाज द्वारा स्वीकृत यादृच्छिक प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था है जिस के द्वारा उस समाज के क्रिया-कलाप सम्पन्न होते हैं। प्रतीक किसी समाज द्वारा नियत किए हुए संकेत होते हैं जो पूर्व निश्चित किए हुए अर्थ का बोध कराते हैं। प्रतीक दृश्य, स्पर्श्य, श्रव्य, घ्राण्य और कथ्य हो सकते हैं। प्रतीक तथा प्रतीकार्थ का सम्बन्ध यादृच्छिक या आरोपित होने के कारण एक ही भौतिक पदार्थ के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है; यथा—पानी (हिन्दी), Water (अँगरेज़ी), आब (अरबी), नीरु (कन्नड़), जलम् (संस्कृत), वेळ्ळम् (मलयाळम्), जोल (बंगला); Elephant (अँगरेज़ी), हाथी (हिन्दी), हस्तिन् (संस्कृत), आना (मलयाळम्), आने (कन्नड़)। समाज-स्वीकृति भाषा को अर्थ-रहित व्यवस्था (ध्वनिमात्र का उच्चारण) से अर्थयुक्त व्यवस्था (रूप, शब्द, पद, पदबन्ध, उपवाक्य, वाक्य, प्रोक्ति) में परिवर्तित कर देती है। सामान्यत: व्याकरण में भाषा के इन दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं का विश्लेषण तथा संश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।

भाषा के माध्यम से किसी विचार को जानने/सीखने के बाद ही उस से सम्बद्ध अन्य विचार जाने/सीखे जा सकते हैं। इस प्रकार आधारभूत या अनुभूत प्रत्यय ज्ञान का भाषा के माध्यम से विकास होता है। भाषा मानव में, समाज में विचार-शक्ति तथा तर्क-शक्ति की वृद्धि का एक अमूल्य माध्यम है। मानव समाज में भाषा के कारण ही सामाजिक तथा सांस्कृतिक संगठनों का अस्तित्व है क्योंकि मानव-समाज के पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आनेवाले विचार और अनुभव 'संस्कृति' के रूप में भाषा द्वारा ही धरोहरवत् मानव को प्राप्त होते हैं; इसीलिए कहा जाता है कि भाषा संस्कृति (भौतिक, वैचारिक) की वाहिका तथा पोषिका है।

भाषा-भेद—क्षेत्र-विस्तार की दृष्टि से सामान्यत: भाषा-स्वरूप के तीन भेद माने जाते हैं—1. **बोली** स्थानीय तथा घरू होती है जिस में साहित्य का प्राय: अभाव होता है। बोली का क्षेत्र बहुत सीमित होता है। 2. एक या दो प्रान्तों/प्रदेशों की बोलचाल तथा साहित्य-रचना की भाषा **विभाषा**/उपभाषा/प्रान्तीय भाषा कहलाती है। 3. **भाषा** शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता है—सामान्य भाषा, राष्ट्रीय भाषा/राष्ट्र भाषा, प्रान्तीय भाषा, स्थानीय भाषा, कूट भाषा, साहित्यिक भाषा, लिखित भाषा, मौखिक भाषा आदि। किसी राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक या आर्थिक आन्दोलन के फलस्वरूप कोई विभाषा विशेष अपने भाषा-क्षेत्र की सीमा

पार कर अन्य विभाषा-क्षेत्रों में भी व्यवहृत होने लगती है, तब उसे **राष्ट्रभाषा** कहा जाता है। किसी राष्ट्र के सन्दर्भ में कई विभाषाओं में व्यवहृत एक शिष्ट विभाषा को राष्ट्रीय/राष्ट्र भाषा कहते हैं। राष्ट्र भाषा विभाषाओं को प्रभावित भी करती है और स्वयं उन से प्रभावित भी होती है। भारत के संविधान की धारा 343 में हिन्दी को भारत संघ की कार्यालयी भाषा स्वीकार किया गया है। धारा 351 में राष्ट्र भाषा का विकास एवं प्रसार करना संघ का कर्तव्य कहा गया है।

भाषा तथा लिपि—मुँह से निकले हुए शब्द उसी क्षण हवा या आकाश में विलीन हो जाते हैं। उन्हीं शब्दों को यान्त्रिक साधनों (यथा—रिकॉर्ड, टेप या फ़िल्म) के बिना बार-बार नहीं सुना जा सकता। मनुष्य ने अपने विचारों को स्थायी बनाने के लिए लिपि का आविष्कार किया। **लिपि** मुँह से निकली हुई ध्वनियों को वर्णों/लिखित चिह्नों में अंकित करने का माध्यम है। लिपि के कारण मानव के विचार देश-काल की सीमा को लाँघ गए हैं। लिपि के सहारे हम सहस्रों वर्ष पूर्व कही (लिखी) गई बातों को आज भी जान लेते हैं और अमेरिका या यूरोप के लोगों की बातों को घर बैठे पढ़ कर (आँखों से देखकर) समझ लेते हैं।

जिस प्रकार भाषा वाचिक प्रतीकों की यादृच्छिक व्यवस्था है, उसी प्रकार लिपि भी वाचिक ध्वनियों की यादृच्छिक व्यवस्था है। दोनों होठों का स्पर्श कर अघोष तथा अल्पप्राण ध्वनि का दुनिया के सभी लोग एक ही प्रकार से उच्चारण करते हैं किन्तु उसे व्यक्त करने के लिए विभिन्न भाषा-भाषी समाजों ने अपने-अपने अलग-अलग प्रतीक निश्चित कर रखे हैं; यथा—प (देवनागरी), (उर्दू का पे वर्ण), (P p *P* p रोमन), (मलयाळम् का प), (गुरुमुखी का प)। भाषा का विकास लाखों वर्ष पूर्व हुआ था जब कि लिपि का आविष्कार कुछ हज़ार वर्ष पूर्व ही हुआ है।

किसी भी भाषा का किसी भी लिपि के साथ सहजात सम्बन्ध नहीं होता और इसीलिए कोई भी भाषा किसी भी उपयुक्त लिपि में लिखी जा सकती है। भाषा बोलने तथा सुनने की चीज़ है और लिपि लिखने तथा बाँचने की। परम्परा से प्रयुक्त भाषा और लिपि के प्रति प्रत्येक भाषा-भाषी समाज में भावनात्मक लगाव उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि प्रत्येक भाषा के लिए प्रयुक्त परम्परागत लिपि में लेखन तथा वाचन में शत-प्रतिशत अभेद नहीं होता तथापि अनेक भाषा-भाषियों के मस्तिष्क में शब्द के लिखित रूप का ऐसा प्रतिबिम्ब बन जाता है कि वे प्रायः यही समझते हैं कि वे जैसा बोलते हैं वैसा ही लिखते हैं और जैसा लिखते हैं, वैसा ही बाँचते हैं; यथा—भाषा-विज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों से अपरिचित अनेक एम० ए० उत्तीर्ण हिन्दी, तेलुगु, कन्नड़, गुजराती, मराठी आदि भाषा-भाषी। व्याकरण पढ़ने तथा समझनेवाले व्यक्ति को यह सत्य सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि उच्चरित और लिखित भाषा में सदैव शत-प्रतिशत साम्य नहीं हुआ करता क्योंकि लगभग सभी लिखी जा रही भाषाओं में उच्चारणानुगामी वर्तनी तथा परम्परानुगामी वर्तनी का प्रयोग मिलता है।

भाषा परिवर्तन—भाषा का रूप व्यक्ति, क्षेत्र, समाज, देश और काल-भेद के अनुसार बदलता रहता है। हमारे ही देश में कभी संस्कृत थी; संस्कृतकालीन बोलियाँ थीं; फिर प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ रहीं और आज असमी, गुजराती, तमिळ, कन्नड़, कश्मीरी, हिन्दी आदि भाषाएँ प्रचलित हैं। बदलती हुई सभ्यताओं, आवश्यकताओं तथा कथन-शैलियों के अनुसार भाषाओं के शब्दों, प्रयोगों, कहावतों, मुहावरों, अर्थों में (लिपि-चिह्नों में भी) परिवर्तन होता रहता है, किन्तु यह परिवर्तन बहुत ही धीरे-धीरे होता है। इस परिवर्तन को हम एक ही जन्म में प्राय: आसानी से नहीं पकड़ पाते। एक ही समय के पढ़े-लिखे और अपढ़ लोगों की भाषा में थोड़ा-बहुत अन्तर हुआ ही करता है। विज्ञान, कार्यालय, विधि, रेडियो-समाचार, विज्ञापन, कक्षा-अध्यापन की भाषा में जो अन्तर देखने में आता है, उसे शैली-भेद या प्रयुक्ति-भेद कहा जाता है। हिन्दी की दो प्रमुख शैलियाँ प्रचलित हैं—1. साहित्यिक शैली 2. बोलचाल की शैली। अँगरेज़ी, उर्दू के प्रभाव से दो और शैलियाँ प्रचलित हो चली हैं। भाषा कभी भी शैली-मुक्त नहीं हो सकती, अत: व्याकरण में भाषा-विश्लेषण के समय शैली-भेद से आए भाषा-परिवर्तन को नकारा नहीं जा सकता।

व्याकरण—भाषा के रूपों तथा प्रयोगों में समानता, स्थिरता तथा मानकता लाने के लिए और उन का ठीक-ठीक विश्लेषण-विवेचन करने के लिए कुछ नियमों का होना अनिवार्य है। व्याकरण इन्हीं नियमों का निरूपण करनेवाला शास्त्र है।

अभिव्यक्ति-स्तर पर भाषा के दो मुख्य रूप (कथित, लिखित) होते हैं। भाषा का कथित रूप ध्वनियों से और लिखित रूप वर्णों से बनता है। इन्हीं ध्वनियों और वर्णों से शब्द, पद, पदबन्ध, उपवाक्य और वाक्य बनते हैं। शब्दों, पदों, पदबन्धों और वाक्यों के शुद्ध रूपों और प्रयोगों के नियमों का बोध करानेवाला शास्त्र **व्याकरण** (वि+आ+करण=भली भाँति समझाना) कहलाता है। व्याकरण के नियमों से अनुशासित रहने पर भाषा के रूपों और प्रयोगों में स्थिरता, समानता तथा शुद्धता बनी रहती है किन्तु कुछ शताब्दियों के बाद भाषा के परिवर्तित रूप के अनुसार व्याकरण के नियमों में भी तदनुरूप आवश्यक परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है। प्रयोग-बाहुल्य तथा भाषा की आन्तरिक संरचनागत व्यवस्थाओं के आधार पर वैयाकरण भाषा के शुद्ध रूप का निश्चय करता है। प्रयोग बाहुल्य उस भाषा के मातृभाषाभाषियों के प्रयोग पर आधारित होता है न कि इतर भाषा-भाषियों के प्रयोग पर। व्याकरण से नियन्त्रित **परिनिष्ठित भाषा** का प्रयोग शिक्षा, साहित्य तथा शासन में होता है।

व्याकरण-भेद—किसी भाषा के शब्दों, पदों, पदबन्धों और वाक्यों की संरचना के नियमादि का बोध करानेवाला व्याकरण '**सैद्धान्तिक व्याकरण**' कहलाता है। उन नियमादि के आधार पर उस भाषा के शब्दों, पदों पदबन्धों और वाक्यों के प्रयोग का बोध करानेवाला व्याकरण '**प्रायोगिक व्याकरण**' कहलाता है। इसे **व्यावहारिक व्याकरण** भी कहा जा सकता है।

सामान्यतः व्याकरण ग्रन्थों में नियम, परिभाषाएँ, सूत्र तथा कुछ उदाहरण दे कर इन दोनों प्रकार के व्याकरणों को एकाकार-सा कर दिया जाता है। प्रायोगिक व्याकरणों में नियमों पर कम तथा प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है। सैद्धान्तिक व्याकरणों में नियम-निर्धारण पर अधिक तथा प्रयोग पर कम बल दिया जाता है। सन्तुलित व्याकरण में नियमों और प्रयोगों पर लगभग समान बल दिया जाता है।

व्याकरण-प्रयोजन—किसी भाषा के शुद्ध रूप तथा प्रयोग के नियमों के ज्ञान के लिए उस भाषा के व्याकरण के अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता है। यद्यपि कोई भी भाषा व्याकरण के ज्ञान के बिना भी उस भाषा विशेष के वातावरण में रह कर बड़ी आसानी से तथा कम समय में ही सीखी जा सकती है, तथापि उस भाषा के रूपों और प्रयोगों के नियमों का सूक्ष्म ज्ञान उस भाषा को सीख जाने मात्र से नहीं हो पाता जब तक कि उस भाषा के सैद्धान्तिक या प्रायोगिक व्याकरण का अध्ययन न कर लिया जाए।

काल-क्रम में व्याकरण भाषा का अनुगामी होता है, भाषा व्याकरण का अनुगमन नहीं करती। प्रत्येक मातृभाषा-भाषी अपने दैनिक व्यवहार के लिए तो व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किए बिना ही, बिना किसी कठिनाई के अपनी बोली/भाषा का प्रयोग करता रहता है, लेकिन विभिन्न व्यवसायों, साहित्य-विधाओं आदि के सूक्ष्म भावों-विचारों को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करने के लिए प्रयोग की जानेवाली भाषा के व्याकरण के नियमादि को जानने की आवश्यकता पड़ती रहती है। अन्य/दूसरी भाषा के रूप में किसी भाषा को सीखने के लिए तो व्याकरण के नियमादि की जानकारी और अभ्यास अनिवार्य है। कठिन और सन्दिग्ध भाषा-रूप/प्रयोग का अर्थ या स्पष्टीकरण व्याकरण की सहायता से सम्भव है।

व्याकरण-सीमा—व्याकरण-अध्ययन के पर्याप्त लाभ होने पर भी यह समझना या मानना एक भ्रम या भूल है कि व्याकरण पढ़ कर शुद्ध भाषा-व्यवहार (बोलने, लिखने) की क्षमता एवं दक्षता आ जाएगी। मृत (अप्रचलित) भाषाओं को उन के व्याकरण के आधार पर सीखा जा सकता है, किन्तु जीवित (प्रचलित) भाषा/भाषाओं के व्याकरण पढ़ लेने मात्र से कोई भी व्यक्ति अच्छा लेखक या वक्ता नहीं बन सकता। शिक्षित तथा सभ्य लोगों के सम्पर्क में रह कर बिना व्याकरण पढ़े भी बच्चे शुद्ध तथा प्रभावी भाषा का व्यवहार करना सीख जाते हैं, जब कि अशिक्षित तथा असभ्य लोगों के सम्पर्क में रहनेवाले व्याकरण पढ़े हुए बच्चे अशुद्ध, अप्रभावी तथा अरोचक भाषा का व्यवहार करते हैं। व्याकरण से भाषा के नियम समझे जा सकते हैं, विचारों की शुद्धता, सूक्ष्मता, गहनता और प्रभावकारिता नहीं। विचारों की शुद्धता तर्कशास्त्र के ज्ञान से और भाषा की प्रभावकारिता तथा रोचकता साहित्य-शास्त्र के ज्ञान से कुछ अंशों में प्राप्त की जा सकती है।

व्याकरण के भाग

व्याकरण भाषा के रूपों और प्रयोगों का निरूपण भी करता है और उस के अंग-प्रत्यंग का विवेचन तथा विश्लेषण भी। भाषा अपनी अर्थ-रहित तथा अर्थ-सहित व्यवस्था में ध्वनियों (संस्वन, स्वनिम); शब्दों (रूप, शब्द) और वाक्यों (वाक्यांश, उपवाक्य, वाक्य) के ताने-बाने से बुनी हुई सुगठित चादर है, अतः व्याकरण के मुख्य तीन भाग माने जाते हैं—1. ध्वनि-विचार 2. शब्द-विचार 3. वाक्य-विचार। इन्हें हम ध्वनि-व्यवस्था, शब्द-व्यवस्था और वाक्य-व्यवस्था भी कह सकते हैं।

ध्वनि-व्यवस्था में ध्वनियों, अक्षरों के स्वरूप तथा शब्दों और वाक्यों में उन के उच्चारण के नियम बताए जाते हैं। यद्यपि यह भाग मुख्यतः उच्चारण से सम्बन्धित है तथापि लिखित रूप में प्रस्तुत करने के कारण वर्णों (लिखित ध्वनियों) में ही इसे बताया जा सकता है। वर्णों का उच्चारण कर के प्रस्तुत करना ध्वनि-विचार कहा जाता है। इस प्रकार ध्वनि-व्यवस्था में गौण रूप से लेखन और वर्तनी-व्यवस्था का भी समाहार हो जाता है।

शब्द-व्यवस्था में शब्द के घटक रूप, रूपिम; शब्द-रचना; शब्द-भेद; शब्दों का रूपान्तर; शब्दों की व्युत्पत्ति; शब्द-अर्थ का विवरण दिया जाता है। यह विवरण मुख्यतः उच्चरित भाषा का ही होता है किन्तु उस का लिखित रूप भी इस विवरण पर कभी-कभी, कहीं-कहीं प्रभाव डालता है।

वाक्य-व्यवस्था में पदों, पदबन्धों, उपवाक्यों से वाक्य बनने के ढंग, वाक्यों के आकार; वाक्य-भेद तथा वाक्यों के रूपान्तरण आदि के नियमों का उल्लेख होता है। यह उल्लेख मूलतः उच्चरित भाषा का ही होता है किन्तु बोलने के समय के विराम, प्रश्न, आश्चर्य, सामान्य कथन आदि को स्पष्ट करने के लिए विरामादि चिह्नों का लिखित प्रयोग भी किया जाता है।

मूलतः भाषा की आरम्भिक इकाई वाक्य ही है किन्तु विवरण प्रस्तुत करने, उसे समझने की सुविधा की दृष्टि से वाक्य के विभिन्न घटकों का विवरण ही पहले प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है पाठक इस तथ्य से सुपरिचित होंगे कि 'व्याकरण' किसी भी भाषा के आरम्भ/विकास के समय से बहुत बाद में बनाया जाता है। आज भी संसार में ऐसी अनेक भाषाएँ हैं जिन का व्याकरण नहीं बनाया गया। उन का व्याकरण बनाने, लिखते समय उस भाषा के विभिन्न वाक्यों के आधार पर उस के उपवाक्यों, पदबन्धों, पदों, शब्दों, अक्षरों, स्वनिमों और अर्थ आदि के बारे में नियमों का निर्धारण किया जाता है। हम यहाँ हिन्दी भाषा का कोई नया व्याकरण नहीं बना रहे हैं, वरन् जो व्याकरण प्रचलित हैं, उन्हीं के आधार पर इस व्याकरण को अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत कर रहे हैं। इस व्याकरण में ध्वनि, अक्षर, शब्द, पद, पदबन्ध, वाक्य के क्रम में हिन्दी के व्याकरण का सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक पक्ष समन्वित रूप से समझाने की चेष्टा की जा रही है।

2
हिन्दी भाषा-विकास

माना जाता है कि संसार में लगभग 3000 भाषाएँ/बोलियाँ बोली जाती हैं। इन में से अनेक भाषाएँ/बोलियाँ भाषा-व्यवस्था की दृष्टि से अति निकट की होने के कारण अपने-अपने **भाषा-समुदाय** बनाती हैं। भाषा-समुदायों को प्रायः भाषा-परिवार कहा जाता रहा है, जो एक भ्रमात्मक संकल्पना है। ध्वनि, शब्द तथा वाक्य-व्यवस्था के अति साम्य के आधार पर संसार की भाषाओं को लगभग 12 भाषा-समुदायों में वर्गीकृत किया जाता रहा है। इन भाषा-समुदायों में सब से बड़ा भाषा-समुदाय 'भारत-यूरोपीय भाषा-समुदाय' है। इस समुदाय के 10 उप-समुदायों में एक उप-समुदाय 'भारतीय आर्य भाषा उप-समुदाय' है जिसे कभी-कभी भारतीय आर्य भाषा समुदाय भी कह दिया जाता है।

उपलब्ध जानकारी के आधार पर भारतीय आर्य भाषाओं को सामान्यतः तीन कालों में बाँटा जाता है—1. **प्राचीन काल** (लगभग 3500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक) की आर्य भाषाओं का अनुमान ऋग्वेद के प्राचीन अंशों से लगाया जा सकता है। इस काल में सहस्रों वर्षों तक विभिन्न वैदिक संस्कृत-बोलियाँ बोली जाती रहीं। भारतीय आर्य भाषाओं के प्राचीन काल की आरम्भिक सीमा के बारे में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। उस काल की साहित्यिक भाषा वैदिक संस्कृत/वैदिकी/छान्दस/देश भाषा कही जाती है। इस भाषा का साहित्य वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों और उपनिषदों में प्राप्त है। शनैः-शनैः लगभग 1500 ई० पू० से तत्कालीन लौकिक संस्कृत बोलियों का संस्कार कर लौकिक संस्कृत/संस्कृत में साहित्य की रचना की जाने लगी। वाल्मीकि रामायण, वेदव्यास-महाभारत, कालिदास, बाण, भवभूति, भास आदि की रचनाएँ इसी सुसंस्कृत/परिनिष्ठित भाषा में हैं। वैदिकी के अध्ययन से विद्वानों ने पता लगाया है कि उन दिनों से ही भाषा के तीन रूप प्रचलित थे—पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी।

2. **मध्यकाल**—(लगभग 500 ई० पू० से 1000 ई० तक) की आर्य भाषाओं में तत्कालीन पालि (लगभग 500 ई० पू० से 1 ई० तक), प्राकृत (लगभग 1 ई० से 500 ई० तक), अपभ्रंश (लगभग 500 ई० से 1000 ई० तक)

की क्षेत्रीय बोलियों और उन की साहित्यिक परिनिष्ठित भाषाओं की गणना की जाती है। प्राप्त साहित्य, शिलालेखादि से ज्ञात हुआ है कि पालिकालीन भाषा/बोली के चार रूप प्रचलित थे—पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी, दक्षिणी। इसी प्रकार प्राकृतकालीन भाषा/बोली के आठ रूप प्रचलित थे—शौरसेनी, पैशाची, कैकेय, टक्क, महाराष्ट्री, अर्ध-मागधी, मागधी, ब्राचड। अपभ्रंशकालीन भाषा/बोली के कम से कम इतने ही रूप अवश्य प्रचलित रहे होंगे, यद्यपि अपभ्रंश साहित्यिक भाषा के दो ही रूप प्राप्त हैं—पश्चिमी, पूर्वी।

3. **आधुनिक काल** (लगभग 1000 ई० से अब तक) की आर्य भाषाओं में पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, नेपाली, गुजराती, पहाड़ी, लहँदा, पंजाबी, मराठी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी, बंगाली, उड़िया, असमी, सिन्धी की गणना की जाती है। साहित्यिक रूप में प्रयुक्त होने से पूर्व इन के विभिन्न बोली रूप रहे हैं और आज भी प्रचलित हैं। इन भाषाओं की अनेक विभाषाएँ तथा बोलियाँ उत्तर भारत में प्रचलित हैं। आधुनिक कालीन आर्य भाषाओं में हिन्दी भाषा का प्रमुख स्थान है। इस की पाँच प्रमुख उप-भाषाएँ और बोलियाँ ये हैं—1. पश्चिमी हिन्दी (1. कौरवी/खड़ी बोली, 2. ब्रजभाषा, 3. हरियाणी/बाँगरू, 4. बुन्देलखण्डी, 5. कन्नौजी), 2. पूर्वी हिन्दी (1. अवधी, 2. बघेली, 3. छत्तीसगढ़ी), 3. राजस्थानी (1. मारवाड़ी/पश्चिमी राजस्थानी, 2. जयपुरी/पूर्वी राजस्थानी, 3. मेवाती/उत्तरी राजस्थानी, 4. मालवी/ दक्षिणी राजस्थानी), 4. पहाड़ी (1. पश्चिमी पहाड़ी, 2. कुमाउँनी-गढ़वाली/मध्यवर्ती पहाड़ी, 3. नेपाली), 5. बिहारी (1. मैथिली, 2. मगही, 3. भोजपुरी)। (इन बोलियों के परिचय के लिए देखिए—अध्याय 28. हिन्दी की प्रमुख बोलियों में एक-सूत्रता)।

हिन्दी भाषा के उद्भव तथा विकास के इतिहास को तीन प्रमुख कालों में बाँटा जा रहा है—1. **आरम्भिक काल** (लगभग 1000 ई० से 1500 ई० तक) की हिन्दी में सामान्यतः अपभ्रंशकालीन ध्वनि-व्यवस्था प्राप्त है। इस काल में ऐ, औ मूल स्वरों का विकास हुआ। च छ ज झ स्पर्श-संघर्षी हो गए। न ल स वर्त्स्य बन गए। ड़ ढ़ न्ह म्ह ल्ह मूल व्यंजन विकसित हो गए। संस्कृत और फ़ारसी आदि के कुछ शब्दों के आगमन से कुछ नये संयुक्त व्यंजनों का विकास हो गया। अपभ्रंश के व्याकरण पर आधारित हिन्दी शनैः-शनैः अपने पैरों पर खड़ी हो गई। सहायक क्रियाओं और परसर्गों का प्रयोग होने लगा। नपुंसक लिंग समाप्त हो गया। वाक्य में पद-क्रम निश्चित होने लगा। इस काल में संस्कृत तथा अरबी-फ़ारसी के अनेक शब्दों का हिन्दी में प्रयोग होने लगा। गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नाल्ह, चन्दबरदायी, कबीर, ख़्वाजा बन्देनवाज, शाह मीराजी आदि की रचनाओं में डिंगल, मैथिली, दक्खिनी, अवधी, ब्रज तथा इन के मिले-जुले रूप प्राप्त हैं।

2. **मध्यकाल** (लगभग 1500 ई० से 1800 ई० तक) की हिन्दी में क़ ख़ ग़ ज़ फ़ का प्रवेश हो गया। सरल व्यंजनान्त शब्दों के 'अ' का लोप होने लगा और ह से पूर्व के अ का उच्चारण कुछ स्थितियों में ऍ जैसा हो गया। इस हिन्दी में संयुक्त क्रियाओं और परसर्गीय शब्दावली का प्रयोग बढ़ गया। फ़ारसी वाक्य-रचना से हिन्दी वाच्य-रचना प्रभावित होने लगी। इन दिनों की हिन्दी में फ़ारसी के लगभग 3500, अरबी के लगभग 2500, पश्तो के लगभग 50 और तुर्की के लगभग 125 शब्द आ चुके थे। यूरोप से सम्पर्क होने के कारण पुर्तगाली, स्पेनी, फ़्रान्सीसी और अँगरेज़ी के कुछ शब्द हिन्दी में प्रवेश कर चुके थे। जायसी, सूर, मीराँ, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, देव, बुरहानुद्दीन, मुसरती, कुली, कुतुबशाह, वजही, वली आदि की रचनाओं में दक्खिनी, उर्दू, डिंगल, मैथिली, खड़ी बोली, ब्रज, राजस्थानी तथा इन के मिले-जुले रूप प्राप्त हैं। हिन्दी गद्य के प्रथम लेखक माने जानेवाले सुरति मिश्र ने ब्रजभाषा गद्य में 'बैताल पचीसी' की रचना इसी काल में की थी।

3. **आधुनिक काल** (लगभग 1800 से अब तक) की हिन्दी में 1947 ई० के बाद से क़ ख़ ग़ का प्रयोग कम हो गया है। ऑ का प्रयोग अँगरेज़ी के आगत शब्दों में किया जाने लगा है। ऐ औ सामान्यतः मूल स्वर हैं। शब्दान्त/अक्षरान्त का अ लगभग पूरी तरह लुप्त है। व का दन्तोष्ठ्य उच्चारण बढ़ रहा है। ब्रज, अवधी, मैथिली, भोजपुरी का अलग व्याकरण विकसित हो गया है। परिनिष्ठित हिन्दी का व्याकरण काफ़ी कुछ स्थिर हो चुका है। आधुनिक हिन्दी अरबी-फ़ारसी की अपेक्षा अँगरेज़ी से अधिक प्रभावित है। सरकारी काम-काज की भाषा होने के कारण हिन्दी में पारिभाषिक तथा तकनीकी शब्दावली की काफ़ी वृद्धि हुई है। आज की हिन्दी प्रयोजनमूलक/उपयोगी साहित्य की दृष्टि से अपनी अभिव्यंजना में पर्याप्त समर्थ, निश्चित, सटीक तथा गहरी बन गई है।

आधुनिक हिन्दी अपनी भौगोलिक सीमाओं (जैसलमेर, अंबाला, शिमला, भागलपुर, रायपुर, खंडवा का मध्यवर्ती क्षेत्र) को पार कर समूचे भारत में तथा भारत से बाहर के देशों (फ़ीजी, मोरिशस, ट्रिनिदाद, सूरीनाम, गयाना, नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका, अफ़गानिस्तान आदि) में प्रसार पा चुकी है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, निराला, पन्त, जयशंकरप्रसाद, महादेवी वर्मा, रामचन्द्र शुक्ल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, दिनकर, नगेन्द्र आदि अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों ने आधुनिक हिन्दी के परिनिष्ठित रूप को सजाने-सँवारने में अपना योग दिया है।

व्यापार, राजनीति तथा धर्म-प्रचार आदि के कारण दो देशों, सभ्यताओं या संस्कृतियों का सम्मिलन होता रहता है। भाषाओं के परिवर्तन में इस सम्मिलन का गहरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव को दो रूपों में देखा जा सकता है—1. भाषाएँ आपस में एक-दूसरी से शब्द लेने लगती हैं। 2. विचारों के आदान-प्रदान के कारण एक-दूसरी भाषा का साहित्य प्रभावित होने लगता है। कभी-कभी शब्दों के आदान

के कारण कुछ ध्वनियों का आदान भी हो जाता है। कभी-कभी ऐसी कुछ ध्वनियाँ जो शब्द आदान करनेवाली भाषा के आरम्भ के दिनों में नहीं थीं, धीरे-धीरे इस भाषा की ध्वनियाँ बन जाती हैं। ध्वनियों के अतिरिक्त आदान करनेवाली भाषा के व्याकरण पर भी थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव हिन्दी पर भी उस के आरम्भिक काल से देखा जा सकता है।

भाषाओं के बारे में एक तथ्य यह भी है कि जो भाषा जितने विस्तृत क्षेत्र में बोली जाती है, उस में उतने ही उच्चरित और प्रयोग-भेद मिलते हैं। अँगरेज़ी की भाँति हिन्दी के भी अनेक व्यवहृत रूप प्राप्त हैं।

ईरान के मुसलमानों द्वारा दिए गए नाम 'हिन्दी' शब्द का अर्थ तीन रूपों में प्रचलित रहा है—1. **व्यापक रूप**—भारत में मुसलमानों के बसने से पहले ही ईरान में भारत या हिन्द < हिन्दु < सिन्धु में बोली जानेवाली सभी भाषाओं या बोलियों को उसी प्रकार हिन्दी < हिन्दीक कहा जाता था जिस प्रकार भारत या हिन्द में बनी किसी चीज़ तथा यहाँ के सभी निवासियों को हिन्दी कहते थे। धर्मग्रन्थ अवेस्ता में हिन्दी, हिन्दू शब्द प्राप्त हैं। हिन्द+—ईक > हिन्दीक (> हिन्दीग > हिन्दीअ > हिन्दी) = 'हिन्दका' यूनानी में इंदिका और अँगरेज़ी में इंडिया हो गया। हिन्दी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफ़ुद्दीन यज़्दी कृत जफ़रनामा (1424 ई०) में मिला है। छठी शताब्दी के बादशाह नौशेरवाँ के राजकवि ने पंचतन्त्र की भाषा को 'ज़बान-ए-हिन्दी' कहा है। भक्तकालीन कवियों ने अपनी भाषा को हिन्दी न कह कर 'भाषा/भाखा' कहा है। भारतीय फ़ारसी कवि औफ़ी ने 1228 ई० में 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग मध्यदेश की देशी भाषा के लिए किया है। 2. **सामान्य रूप**—हिन्दी साहित्य, जन सामान्य में प्रचलित हिन्दी के सामान्य रूप के अनुसार हिन्दी में 18-19 बोलियों के अतिरिक्त उर्दू (अरबी-फ़ारसी के व्याकरण से अप्रभावित) को भी सम्मिलित किया जाता है। इस रूप में अँगरेज़ी से आए सहस्रों शब्द भी हिन्दी के अपने बनते जा रहे हैं। हिन्दी के इस सामान्य रूप का परिवर्तित या मँजा हुआ रूप ही परिनिष्ठित/मानक (प्रामाणिक या आदर्श) हिन्दी कहा जाता है। आधुनिक राजभाषा, आधुनिक साहित्य, शिक्षा-संस्थाओं, समाचार-पत्रों, संस्थाओं, कार्यालयों और शिष्ट/सभ्य समाज की बोलचाल में प्रयुक्त होनेवाली भाषा '**परिनिष्ठित हिन्दी**' ही है।

प्रत्येक व्यक्ति के भाषा-व्यवहार में उस की व्यक्ति-बोली (Ideolect) का प्रभाव कुछ-न-कुछ अंशों में रहता ही है, अतः भाषा का परिनिष्ठित रूप प्राप्य आदर्श होता है, प्राप्त आदर्श नहीं। हिन्दी के परिनिष्ठित रूप को सभी बोली-क्षेत्रों में आसानी से समझा जा सकता है किन्तु एक बोली को दूसरे बोली-क्षेत्र में समझने में थोड़ी-बहुत कठिनाई अवश्य होती है। भारतीय संविधान की धारा 351 में कहा गया है कि हिन्दी अपनी मूल प्रकृति को खोए बिना, आकार-शैली-अभिव्यक्ति की दृष्टि से

आठवीं अनुसूची में दी गई भाषाओं (मराठी, गुजराती, कन्नड़, मलयाळम्, तमिळ, तेलुगु, उड़िया, बंगला, पंजाबी, कश्मीरी, असमी, उर्दू, सिन्धी, संस्कृत) से जो कुछ भी वांछित, आवश्यक या अनिवार्य होगा, ग्रहण करेगी। 3. **विशिष्ट/संकुचित रूप**—पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी की आठ बोलियों के सामूहिक नाम को भाषा-विज्ञान में हिन्दी कहा जाता रहा है किन्तु हिन्दी का संकुचिततम रूप है—हिन्दी भाषा की मूलाधार खड़ीबोली का स्वरूप। आज की आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी का व्याकरण मुसलमानों द्वारा ग्रहण की गई देशी भाषा (खड़ी बोली) के व्याकरण पर आधारित है किन्तु उस का शब्द-भण्डार हिन्दी-प्रदेश की बोलियों तथा देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों से वृद्धि पा रहा है।

आजकल सामान्यतः 'हिन्दी' शब्द से हिन्दी भाषा का सामान्य रूप ही समझा तथा माना जाता है। इस व्याकरण ग्रन्थ में इसी 'हिन्दी' के व्याकरण पर प्रकाश डाला गया है।

'हिन्दी' शब्द के साथ प्रायः दो शब्दों हिन्दुस्तानी/हिन्दुस्थानी और उर्दू को भी विवादास्पद रूप में जोड़ दिया जाता है। हिन्दुस्तान/हिन्दुस्थान+-ई के योग से बने इस शब्द का पुराना समानार्थी नाम हिन्दवी/हिन्दुई/हिन्दुवी रहा है। तुज़के बाबरी में यह शब्द भाषा के अर्थ में प्राप्त है। तासी के प्रसिद्ध इतिहास 'इस्तवार द ल लित्रेत्यूर ऐन्दुई ए ऐन्दुस्तानी' में ऐन्दुस्तानी <हिन्दुस्तानी शब्द भाषा के नाम के लिए प्रयुक्त हुआ है। 13वीं शती में भारत के फ़ारसी कवि औफ़ी (1228 ई०) तथा अमीर खुसरो ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है। खुसरो की 'ख़ालिकबारी' में देशी भाषा के लिए 30 बार 'हिन्दवी' शब्द और 5 बार 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग है। परवर्ती काल में **'हिन्दवी'** नाम संस्कृत-बाहुल्य शब्दोंवाली भाषा के लिए चल पड़ा और 'हिन्दुस्तानी' नाम अरबी-फ़ारसी बाहुल्य शब्दोंवाली भाषा के लिए। 18-19वीं शताब्दी में 'हिन्दुस्तानी' हिन्दी-उर्दू के मध्य की सरल शब्दावलीवाली भाषा मानी जाने लगी जिस में संस्कृत के बहु प्रचलित तत्सम और संस्कृत, अरबी-फ़ारसी के जनसाधारण की बोलचाल में प्रयुक्त तद्भव शब्दों का प्रयोग होने लगा था। गांधी जी आदि मनीषियों ने इसी हिन्दुस्तानी की सिफ़ारिश की थी।

तुर्की भाषा के शब्द **उर्दू** <उर्दू-ए-मुअल्ला (=शाही शिविर/ख़ेमा) का प्रचार-प्रसार मुग़लकाल से हुआ। उर्दू बाज़ार (=फ़ौजी पड़ाव का बाज़ार) में इस शब्द का यह अर्थ उत्तर भारत में अभी भी प्रचलित है। मुग़लों के इन पड़ावों के सैनिकों और स्थानीय लोगों के पारस्परिक सम्प्रेषण के कारण अरबी-फ़ारसी-तुर्की में पंजाबी, बाँगरू, कौरवी, ब्रज का मिश्रण होने के परिणामस्वरूप जिस नयी भाषा/बोली का विकास हुआ उसे लाल क़िले में 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' (=श्रेष्ठ शाही पड़ाव की भाषा) कहा गया। 18वीं सदी के मध्य में 'उर्दू' शब्द भाषा/बोली के लिए प्रचार में आ गया था। उन दिनों तक इस भाषा को हिन्दी या रेखता/रेख़्ता या

के कारण कुछ ध्वनियों का आदान भी हो जाता है। कभी-कभी ऐसी कुछ ध्वनियाँ जो शब्द आदान करनेवाली भाषा के आरम्भ के दिनों में नहीं थीं, धीरे-धीरे इस भाषा की ध्वनियाँ बन जाती हैं। ध्वनियों के अतिरिक्त आदान करनेवाली भाषा के व्याकरण पर भी थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव हिन्दी पर भी उस के आरम्भिक काल से देखा जा सकता है।

भाषाओं के बारे में एक तथ्य यह भी है कि जो भाषा जितने विस्तृत क्षेत्र में बोली जाती है, उस में उतने ही उच्चरित और प्रयोग-भेद मिलते हैं। अँगरेज़ी की भाँति हिन्दी के भी अनेक व्यवहृत रूप प्राप्त हैं।

ईरान के मुसलमानों द्वारा दिए गए नाम 'हिन्दी' शब्द का अर्थ तीन रूपों में प्रचलित रहा है—1. **व्यापक रूप**—भारत में मुसलमानों के बसने से पहले ही ईरान में भारत या हिन्द < हिन्दु < सिन्धु में बोली जानेवाली सभी भाषाओं या बोलियों को उसी प्रकार हिन्दी < हिन्दीक कहा जाता था जिस प्रकार भारत या हिन्द में बनी किसी चीज़ तथा यहाँ के सभी निवासियों को हिन्दी कहते थे। धर्मग्रन्थ अवेस्ता में हिन्दी, हिन्दू शब्द प्राप्त हैं। हिन्द + —ईक > हिन्दीक (> हिन्दीग > हिन्दीअ > हिन्दी) = 'हिन्दका' यूनानी में इंदिका और अँगरेज़ी में इंडिया हो गया। हिन्दी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफ़ुद्दीन यज़्दी कृत जफ़रनामा (1424 ई०) में मिला है। छठी शताब्दी के बादशाह नौशेरवाँ के राजकवि ने पंचतन्त्र की भाषा को 'ज़बान-ए-हिन्दी' कहा है। भक्तकालीन कवियों ने अपनी भाषा को हिन्दी न कह कर 'भाषा/भाखा' कहा है। भारतीय फ़ारसी कवि औफ़ी ने 1228 ई० में 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग मध्यदेश की देशी भाषा के लिए किया है। 2. **सामान्य रूप**—हिन्दी साहित्य, जन सामान्य में प्रचलित हिन्दी के सामान्य रूप के अनुसार हिन्दी में 18-19 बोलियों के अतिरिक्त उर्दू (अरबी-फ़ारसी के व्याकरण से अप्रभावित) को भी सम्मिलित किया जाता है। इस रूप में अँगरेज़ी से आए सहस्रों शब्द भी हिन्दी के अपने बनते जा रहे हैं। हिन्दी के इस सामान्य रूप का परिवर्तित या मँजा हुआ रूप ही परिनिष्ठित/मानक (प्रामाणिक या आदर्श) हिन्दी कहा जाता है। आधुनिक राजभाषा, आधुनिक साहित्य, शिक्षा-संस्थाओं, समाचार-पत्रों, संस्थाओं, कार्यालयों और शिष्ट/सभ्य समाज की बोलचाल में प्रयुक्त होनेवाली भाषा '**परिनिष्ठित हिन्दी**' ही है।

प्रत्येक व्यक्ति के भाषा-व्यवहार में उस की व्यक्ति-बोली (Ideolect) का प्रभाव कुछ-न-कुछ अंशों में रहता ही है, अतः भाषा का परिनिष्ठित रूप प्राप्य आदर्श होता है, प्राप्त आदर्श नहीं। हिन्दी के परिनिष्ठित रूप को सभी बोली-क्षेत्रों में आसानी से समझा जा सकता है किन्तु एक बोली को दूसरे बोली-क्षेत्र में समझने में थोड़ी-बहुत कठिनाई अवश्य होती है। भारतीय संविधान की धारा 351 में कहा गया है कि हिन्दी अपनी मूल प्रकृति को खोए बिना, आकार-शैली-अभिव्यक्ति की दृष्टि से

आठवीं अनुसूची में दी गई भाषाओं (मराठी, गुजराती, कन्नड़, मलयाळम्, तमिळ, तेलुगु, उड़िया, बंगला, पंजाबी, कश्मीरी, असमी, उर्दू, सिन्धी, संस्कृत) से जो कुछ भी वांछित, आवश्यक या अनिवार्य होगा, ग्रहण करेगी। 3. **विशिष्ट/संकुचित रूप**—पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी की आठ बोलियों के सामूहिक नाम को भाषा-विज्ञान में हिन्दी कहा जाता रहा है किन्तु हिन्दी का संकुचिततम रूप है—हिन्दी भाषा की मूलाधार खड़ीबोली का स्वरूप। आज की आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी का व्याकरण मुसलमानों द्वारा ग्रहण की गई देशी भाषा (खड़ी बोली) के व्याकरण पर आधारित है किन्तु उस का शब्द-भण्डार हिन्दी-प्रदेश की बोलियों तथा देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों से वृद्धि पा रहा है।

आजकल सामान्यतः 'हिन्दी' शब्द से हिन्दी भाषा का सामान्य रूप ही समझा तथा माना जाता है। इस व्याकरण ग्रन्थ में इसी 'हिन्दी' के व्याकरण पर प्रकाश डाला गया है।

'हिन्दी' शब्द के साथ प्रायः दो शब्दों हिन्दुस्तानी/हिन्दुस्थानी और उर्दू को भी विवादास्पद रूप में जोड़ दिया जाता है। हिन्दुस्तान/हिन्दुस्थान+-ई के योग से बने इस शब्द का पुराना समानार्थी नाम हिन्दवी/हिन्दुई/हिन्दुवी रहा है। तुज़के बाबरी में यह शब्द भाषा के अर्थ में प्राप्त है। तासी के प्रसिद्ध इतिहास 'इस्तवार द ल लित्रेत्यूर ऐन्दुई ए ऐन्दुस्तानी' में ऐन्दुस्तानी<हिन्दुस्तानी शब्द भाषा के नाम के लिए प्रयुक्त हुआ है। 13वीं शती में भारत के फ़ारसी कवि औफ़ी (1228 ई०) तथा अमीर खुसरो ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है। खुसरो की 'ख़ालिकबारी' में देशी भाषा के लिए 30 बार 'हिन्दवी' शब्द और 5 बार 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग है। परवर्ती काल में **'हिन्दवी'** नाम संस्कृत-बाहुल्य शब्दोंवाली भाषा के लिए चल पड़ा और 'हिन्दुस्तानी' नाम अरबी-फ़ारसी बाहुल्य शब्दोंवाली भाषा के लिए। 18-19वीं शताब्दी में 'हिन्दुस्तानी' हिन्दी-उर्दू के मध्य की सरल शब्दावलीवाली भाषा मानी जाने लगी जिस में संस्कृत के बहु प्रचलित तत्सम और संस्कृत, अरबी-फ़ारसी के जनसाधारण की बोलचाल में प्रयुक्त तद्भव शब्दों का प्रयोग होने लगा था। गांधी जी आदि मनीषियों ने इसी हिन्दुस्तानी की सिफ़ारिश की थी।

तुर्की भाषा के शब्द **उर्दू**<उर्दू-ए-मुअल्ला (=शाही शिविर/ख़ेमा) का प्रचार-प्रसार मुग़लकाल से हुआ। उर्दू बाज़ार (=फ़ौजी पड़ाव का बाज़ार) में इस शब्द का यह अर्थ उत्तर भारत में अभी भी प्रचलित है। मुग़लों के इन पड़ावों के सैनिकों और स्थानीय लोगों के पारस्परिक सम्प्रेषण के कारण अरबी-फ़ारसी-तुर्की में पंजाबी, बाँगरू, कौरवी, ब्रज का मिश्रण होने के परिणामस्वरूप जिस नयी भाषा/बोली का विकास हुआ उसे लाल क़िले में 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' (=श्रेष्ठ शाही पड़ाव की भाषा) कहा गया। 18वीं सदी के मध्य में 'उर्दू' शब्द भाषा/बोली के लिए प्रचार में आ गया था। उन दिनों तक इस भाषा को हिन्दी या रेखता/रेख़्ता या

हिन्दुस्तानी कहा जाता था। 1850 ई० के आस-पास यह केवल उर्दू नाम से ही जानी जाने लगी। हैदराबाद के आस-पास की यह बोली 'दक्खिनी' कही जाती रही है। उत्तर भारत के हिन्दुओं तथा मुसलमानों में बढ़ते हुए राजनैतिक और साम्प्रदायिक विरोध के परिणामस्वरूप हिन्दी मुसलमानों से और उर्दू हिन्दुओं से दूर होती चली गई।

इस प्रकार बहुत पहले से हिन्दवी के दो मुख्य रूप प्रचलित रहे हैं—1. बोली रूप जो ब्रज, अवधी आदि का था 2. मिश्रित रूप से जो पूरे हिन्दी प्रदेश में उभरा और जिस का आरम्भिक रूप गोरखनाथ, खुसरो और कबीर आदि की वाणी में मिलता है। उर्दू भी ऐसी ही एक मिश्रित भाषा थी। 19-20वीं सदी में अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्दों के बाहुल्यवाली भाषा को **'उर्दू'** माना जाने लगा और संस्कृत की ओर अधिक झुकाववाली भाषा को **हिन्दी** स्वीकार किया गया। कलकत्ता के फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी और उर्दू के अलग-अलग व्याकरण लिखवा कर डॉ० गिलक्राइस्ट ने समान आधारवाली इन दोनों भाषाओं के विवाद की खाई को और चौड़ा कर दिया।

मूलतः हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू एक ही भाषा के तीन प्रमुख शैली-भेद हैं क्योंकि भाषा-भेद के चारों स्तम्भ (1 सर्वनाम, 2. कारक-चिह्न, 3. संख्याएँ, 4. क्रिया-रूप) इन तीनों में एक ही हैं। व्याकरणिक स्तर पर ये तीनों एक हैं और इन तीनों का मूलाधार वह मिश्रित बोली है जो मुख्यतः कौरवी, पंजाबी और ब्रज आदि के योग से विकसित हुई। जब खड़ी बोली में बोलचाल के शब्दों (आधार-भूत शब्दावली, बहुप्रचलित संस्कृत, अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्द) का ही प्रयोग होता है, तब उसे **बोलचाल की हिन्दी** या **हिन्दुस्तानी** कहा जाता है। जब इसी भाषा में संस्कृत के अल्प प्रचलित शब्दों की अधिकता हो जाती है तब उसे **हिन्दी** या **साहित्यिक हिन्दी** कह देते हैं और जब इसी भाषा में अरबी-फ़ारसी-तुर्की के अल्प प्रचलित शब्दों की अधिकता हो जाती है तब उसे **उर्दू** कह दिया जाता है। लिपि-भेद या कुछ संज्ञा, विशेषण शब्द-भेद से भाषाएँ भिन्न नहीं होतीं। सामान्य हिन्दी की इन तीनों शैलियों का एक-एक उदाहरण दृष्टव्य है—

साहित्यिक हिन्दी—विद्युत-शक्ति एक चमत्कारपूर्ण आविष्कार है। स्वर्ग का कल्पवृक्ष व्यक्ति की प्रत्येक मनोकामना को पूर्ण करने में समर्थ स्वीकार किया गया है। विद्युत-शक्ति भी हमारी अनेकानेक मनोकामनाओं की पूर्ति कर हमारे जीवन में सुख एवं आनन्द का संचार करती हैं। अतः विद्युत हमारे लिए स्वर्ग के कल्पवृक्ष से किसी प्रकार भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती क्योंकि विद्युत-शक्ति के तो हम प्रत्यक्ष दर्शन भी कर लेते हैं किन्तु कल्प-वृक्ष तो कवियों की एक कल्पना मात्र है।

हिन्दुस्तानी/बोलचाल की हिन्दी—अगर कोई मुझ से पूछे कि मैं तेरे पास क्यों आई तो मैं क्या जवाब दूँगी? देख बेटे, मैं तेरे लिए किसी बात में फ़र्क नहीं

कर पाऊँगी। मैं ने सुना था कि बहू जब से गई है और ज़्यादा ठाठ से रहने लगी है। उस की बीमारी तो हमारी ही तकदीर में लिखी थी। अब वह ज़माने भर में भाषण देती फिरती है कि तू समाज का कलंक है और वह असली औरत की तरह ज़िन्दा रह कर बताएगी कि ज़िन्दा रहना किसे कहते हैं।

उर्दू—बदकिस्मती है कि उर्दू मादरी-ज़बान (=मातृभाषा) की तालीम (=शिक्षा) व मुदर्रिस (=शिक्षक), मुख़्तलिफ़ (=विभिन्न) सतहों पर बेतवज्जही का शिकार रही है। इम्तहान और तरीके तालीम (=शिक्षा-पद्धति) गर्ज़ हर सतह पर उर्दू का काम पुराने ढर्रे पर ही चलता रहा है। मादरी ज़बान में आम दिलचस्पी के लामहदूद (=असीम) वसायल (=साधन) होते हैं। इन तमाम वसायल को काम में लाना ज़रूरी है।

हिन्दी का महत्त्व—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने हिन्दी को एक महान् सम्पर्क-साधक भाषा कहा था। बाबू केशवचन्द्र सेन ने 1875 ई० में लिखा था—'हिन्दी भाषा प्राय: सर्वत्र -ई प्रचलित।' बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 1876 में 'बंगदर्शन' में लिखा था—'हिन्दी शिक्षा ना करिले, कोनो क्रमे-ई चलिबे ना।'

संसार की भाषाओं में अँगरेज़ी, चीनी के बाद हिन्दी का (तीसरा) स्थान है। दक्षिण भारत के प्राचीन आचार्यों—वल्लभाचार्य, विट्ठल, रामानुज, रामानन्द आदि ने हिन्दी के माध्यम से अपने सिद्धान्तों तथा मतों का प्रचार किया था। गुजराती तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा 'संस्कार विधि' को हिन्दी में प्रस्तुत किया था। असम के शंकरदेव, महाराष्ट्र के नामदेव और ज्ञानेश्वर, गुजरात के नरसी मेहता, बंगाल के चैतन्य, तमिळनाड के महाकवि भारती आदि ने अपने धर्म और साहित्य में हिन्दी को भी उचित स्थान दिया था। भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से ले कर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय तक हिन्दी को ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए लड़नेवाले वीरों, नेताओं ने सम्पर्क भाषा बनाया था। रेल, फ़िल्म तथा टी० वी० एवं तीर्थस्थलों के कारण हिन्दी किसी-न-किसी रूप में पूरे देश में प्रचलित है।

हिन्दी ने अनेक देशी और विदेशी शब्दों को अपना कर अपने शब्द-भण्डार और अभिव्यक्ति-क्षमता को समृद्ध किया है। हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में अन्तरप्रान्तीय व्यापार और सार्वजनिक व्यवहार की भाषा बन चुकी है। हिन्दी बहिष्कार की नीति को स्वीकार नहीं करती; वह अपने सम्पर्क में आनेवाली सभी भाषाओं से कुछ-न-कुछ ग्रहण करते हुए दिन-प्रतिदिन उन्नति की ओर बढ़ रही है।

खण्ड I

ध्वनि तथा वर्ण-व्यवस्था

1. ध्वनि-उच्चारण अवयव
2. स्वर
3. व्यंजन
4. बलाघात, विवृति तथा अनुतान
5. वर्णमाला
6. वर्तनी

ध्वनि तथा वर्ण-व्यवस्था

'भाषा' किसी समाज द्वारा स्वीकृत कुछ भाषा-ध्वनियों/स्वनों के विभिन्न प्रकार के सार्थक संयोजनों/उच्चारण-क्रम (शब्दों और वाक्यों) का व्यवस्थित सामूहिक रूप है। विभिन्न ध्वनियों को कुछ सीमित वर्णों में लिखित रूप में प्रकट करने की चेष्टा की जाती है। इस खण्ड में हिन्दी की ध्वनियों और उन को प्रकट करनेवाले वर्णों के बारे में चर्चा की जाएगी।

सामान्यतः किन्हीं दो पदार्थों के टकराने या रगड़ खाने से जो आवाज़ निकलती और सुनाई पड़ती है, उसे ध्वनि (Sound) कहा जाता है। व्याकरण में भाषा-ध्वनि के बारे में विचार किया जाता है। भाषा-ध्वनि (मानव-मुख से उच्चरित वाक्-ध्वनि) को व्याकरण में **'ध्वनि'** या **'स्वन'** (Phone) कहा जाता है। बोलते समय मुख से जो आवाज़ निकलती है, उस की सब से छोटी इकाई 'ध्वनि' या 'स्वन' कहलाती है; जैसे—'गीता' शब्द कहते समय 'ग् ई त् आ' चार ध्वनियाँ बोली जाती हैं।

भाषा की ध्वनियों को लिखित रूप में प्रकट करनेवाले लिपि-चिह्न **'वर्ण'** (Letter) कहलाते हैं, जैसे—'गीता' शब्द की चारों ध्वनियों को चार वर्णों (लिपि-चिह्नों) से प्रकट किया जा सकता है—ग ी त ा रोमन लिपि में मात्रा-चिह्नों को मूल स्वर वर्णों में ही लिखा जाता है।

ध्वनियों और वर्णों के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी भी भाषा की ध्वनियों को किसी भी उपयुक्त लिपि में अंकित किया जा सकता है। किसी भी भाषा में जितनी प्रमुख ध्वनियों (लगभग 50-60) का प्रयोग होता है, ठीक उतने ही वर्ण उस भाषा के लिए प्रयुक्त होनेवाली परम्परागत लिपि/लिपियों में नहीं हुआ करते। कभी ये वर्ण प्रमुख ध्वनियों से कम होते हैं और कभी-कभी कुछ ध्वनियों के लिए अधिक वर्णों का प्रयोग होता है, यथा—अँगरेज़ी-रोमन, हिन्दी-देवनागरी, उर्दू-उर्दू, तमिळ-तमिळ, मलयाळम्-मलयाळम् भाषाओं और उन के लिए प्रयुक्त लिपियों के वर्णों और ध्वनियों की संख्या में शत-प्रतिशत साम्य नहीं है। इस प्रकार वर्णों के आधार पर किसी भाषा की ध्वनियों की संख्या निश्चित नहीं की जाती।

बोलते समय ध्वनियों पर समय की मात्रा, वायु-प्रवाह के आघात/दबाव और पास-पास आनेवाली ध्वनियों के गुणों या उन की विशेषताओं का भी प्रभाव पड़ता है, अत: ध्वनियों की संख्या असंख्य हो सकती है, किन्तु विवरण प्रस्तुत करते समय उच्चारण की दृष्टि से अति मिलती-जुलती ध्वनियों के सामूहिक रूपों **'स्वनिमों'** को ही सामान्यत: प्रमुखता दी जाती है। सामान्य भाषा में हम स्वनिमों को ही ध्वनियाँ कह देते हैं। वास्तव में ध्वनियाँ (स्वन), सह-ध्वनि/संध्वनि/उप-ध्वनि (सह-स्वन/संस्वन/उप-स्वन (Allophone) और ध्वनिग्राम (स्वनिम Phoneme) भिन्न-भिन्न होते हैं, जैसे—शहर की किसी गली के कोने पर शायद आग लग गई है—वाक्य में 'क्' ध्वनि एक प्रकार की नहीं वरन् सूक्ष्मत: चार तरह की है। इसी प्रकार 'ग्' ध्वनि भी सूक्ष्मत: चार प्रकार की है। इन चार-चार तरह की 'क्', 'ग्' संध्वनियों (संस्वनों) को हम व्यवहार में केवल एक-एक वर्ण 'क', 'ग' से प्रकट करते हैं। व्यवहारत: भाषा में एक ही प्रकार का स्वन बोला और सुना जाता है। मशीन का सूक्ष्म भेद हमारे काम नहीं आता। पहचाने हुए वाक्-स्वन को दिया गया व्यवस्थित रूप 'संस्वन' कहा जाता है। सामान्यत: वर्ण-रूप को उच्चरित भाषा में स्वनिम या ध्वनिग्राम कहा जाता है। इसी प्रकार 'रमेश, करीम, घर, प्रेम, कर्म, बर्रे, राष्ट्र' शब्दों में 'र' ध्वनि सूक्ष्मत: नौ प्रकार की होने पर भी स्थूलत: चार प्रकार (र ् ँ ्र) की है और मूलत: एक ही प्रकार (र) की है।

स्वनिम किसी भाषा का उच्चरित स्वन न होकर स्वनों के प्रयोग की एक काल्पनिक किन्तु व्यावहारिक उपयोगी व्यवस्था है। प्रत्येक भाषा में स्वनिमों की संख्या (लगभग 50-60) होती है किन्तु उन के भिन्न-भिन्न संयोजनों (1-9 अंकों के गठन-संयोजनों की भाँति) से भिन्न-भिन्न अर्थों के सूचक असंख्य शब्दों की रचना हो सकती है। जिस प्रकार स्थान-भेद से संख्या के अंकों का मूल्य भिन्न-भिन्न (यथा—1, 5, 7, 8; 15; 57; 578; 858; 7158 आदि) हो जाता है, उसी प्रकार वाक्-ध्वनियों या स्वनिमों की भिन्नता के कारण शब्दों में भी अर्थ-भेदकता आ जाती है। अर्थ-भेदक स्वन को **स्वनिम** कहा जाता है। 'सारस, सरसा, रास, रस, सार, रसा' शब्दों में 'र्, अ, स्, आ' चार स्वनिम हैं। एक ही परिवेश में आ कर अर्थ-भेद करने की क्षमता रखने वाले स्वन **'स्वनिम'** कहलाते हैं, यथा—न्यूनतम शब्द-युग्म 'काली-गाली' में 'क्, ग्' दो स्वनिम हैं जो एक ही परिवेश (शब्द-आरम्भ) में आ कर अर्थ-भेद उत्पन्न कर रहे हैं।

किसी भाषा की ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान वाक्-ध्वनियों का ऐसा वर्ग स्वनिम कहलाता है जिस की ध्वनियाँ आपस में अव्यतिरेकी (अस्थानापन्न या समान परिवेश में न आनेवाली Non Contrastive) होती हैं। किसी स्वनिम के ये स्वन उप-स्वन/संस्वन/सह-स्वन कहलाते हैं। ये आपस में अर्थभेद उत्पन्न नहीं कर

सकते। संस्वनों को यदि एक-दूसरे से स्थानापन्न कर दिया जाए तो उच्चारण-दोष आ जाता है किन्तु अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं आता।

जिस प्रकार लघुतम सार्थक स्वतन्त्र इकाई (शब्द) को विखंडित करने पर रूप (Morph) प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार लघुतम अर्थवान् इकाई या रूप को विखंडित करने पर तीन प्रकार के घटक/तत्त्व प्राप्त होते हैं—(क) वे तत्त्व/घटक जिन्हें स्पष्टतः अलग-अलग किया जा सकता है, **खंडीय तत्त्व** कहलाते हैं। हिन्दी भाषा के स्वनिम, स्वन—स्वर, व्यंजन खंडीय तत्त्व हैं। (ख) वे तत्त्व जो अस्पष्टतः अलग-अलग किए जा सकें, **अधिखंडीय तत्त्व** कहे जा सकते हैं। हिन्दी भाषा के अक्षर, अनुनासिकता ऐसे ही तत्त्व हैं। (ग) वे तत्त्व जिन का पार्थक्य केवल अनुभव किया जा सकता है, **खण्ड्येतर तत्त्व** कहे जाते हैं। हिन्दी भाषा में प्राप्त दीर्घता, बलाघात, सुर, विवृति ऐसे ही तत्त्व हैं।

3

ध्वनि-उच्चारण अवयव

भाषा या मौखिक भावाभिव्यक्ति का साधन 'ध्वनि-उच्चारण अवयव' या 'वागिन्द्रिय' है। ध्वनि-उच्चारण अवयवों के परिचय से उच्चारण सम्बन्धी भूलों के सुधार में सहायता मिलती है। हमारी जीभ मुख-विवर में विविध प्रकार के प्रयत्नों द्वारा विविध स्थानों से विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण करती है। ओठ तथा कौवा/अलिजिह्वा आदि भी उच्चारण में सहायता करते हैं। विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण में सहयोग देनेवाले अवयवों को **ध्वनि-उच्चारण अवयव** या वागिन्द्रियाँ (Organs of speech/Vocal Organs) कहा जाता है।

ध्वनि-उच्चारण अवयवों को गति/चलन के आधार पर दो वर्गों में बाँटा जाता है—1. अचल अवयव, 2. चल/सचल अवयव।

(1) अचल अवयवों को **ध्वनि-उच्चारण** या **उच्चारण-बिन्दु** (Place/Point of articulation) भी कहते हैं। अचल अवयवों में ऊपर के जबड़े से जुड़े इन अंगों की गणना की जाती है—1. ओठ 2. दाँत 3. मसूड़ा 4. कठोर तालु 5. मूर्धा 6. कोमल तालु 7. नासिका विवर।

(2) चल अवयवों को **ध्वनि-उच्चारण करण** (सहायक) कहते हैं। चल अवयवों में नीचे के जबड़े से जुड़े इन अंगों की गणना की जाती है—1. ओठ 2. जीभ 3. गलबिल/ग्रसनी-पृष्ठ 4. स्वर-तन्त्री।

यद्यपि अलिजिह्वा या कौआ (Uvula) चल अवयव है किन्तु मुख-विवर में ऊपरी जबड़े के साथ जुड़ा होने के कारण इसे उच्चारण-स्थान माना जाता है। बड़े दर्पण के सामने खड़े हो कर आप अपने कई उच्चारण-अवयवों को उच्चारण-कार्य करते हुए स्वयं देखें तो ध्वनियों के सम्बन्ध में बहुत-कुछ जानकारी प्राप्त हो सकती है। यहाँ विभिन्न उच्चारण-अवयवों का सामान्य परिचय ही दिया जा रहा है—

1. ओठ<ओष्ठ—'ई इ ए ऐ अ आ औ ओ उ ऊ' के क्रमशः उच्चारण के समय ओठ विस्तृत से गोलाकार होते जाते हैं। ऊपर का ओठ उच्चारण-स्थान का और नीचे का ओठ उच्चारण-करण का कार्य करता है। 'प फ ब भ म म्ह' के उच्चारण के समय दोनों ओठ एक क्षण के लिए मिल जाते हैं। 'W व' (स्वाद, क्वारा) के

उच्चारण के समय दोनों ओठ ऊ से भी अधिक गोलाकार स्थिति में होते हैं। 'F V फ़ व़' के उच्चारण के समय नीचे का ओठ ऊपर के दाँतों के समीप पहुँच जाता है।

2. **दाँत<दन्त**—जीभ की नोक को ऊपर के दाँतों से छुला कर 'त थ द ध' का उच्चारण किया जाता है।

3. **मसूड़ा/वर्त्स**—जीभ की नोक, जीभ-फलक ऊपर के मसूड़े के पास पहुँच कर या उसे छू कर 'T D न न्ह स ज़' के उच्चारण में सहयोग देते हैं। 'र ऱ्ह लल्ह' के उच्चारण में भी वर्त्स उच्चारण-स्थान का काम करता है।

4. **कठोर तालु**—मसूड़ों से गले की ओर के कड़े खुरदुरे भाग की ओर जीभ का अग्र भाग उठ कर 'च छ ज झ ञ श य z' के उच्चारण में सहयोग देता है। 'ट ठ ड ढ ण' के उच्चारण में जिह्वाफलक कठोर तालु को छूता है।

5. **मूर्धा**—कठोर तालु और कोमल तालु के मिलन के सब से ऊँचे, फैले भाग की ओर जीभ की नोक मुड़ कर 'ड़ ढ़' के उच्चारण में सहयोग देती है।

संस्कृत भाषा में 'ट ठ ड ढ ण ष' को मूर्धन्य ध्वनियाँ कहा गया है। सम्भव है सहस्रों वर्ष पूर्व ये ध्वनियाँ मूर्धा से उच्चरित होती हों।

6. **कोमल तालु**—कठोर तालु और अलिजिह्वा के मध्य का यह कोमल भाग 'क ख ग घ ङ' ध्वनियों का उच्चारण-स्थान है जहाँ जीभ के पीछे का भाग स्पर्श करता है। कोमल तालु कठोर तालु की भाँति पूर्ण स्थिर नहीं रहता।

7. **अलिजिह्वा/कौआ**—कोमल तालु का अन्तिम लटका हुआ भाग अलिजिह्वा या कौआ कहलाता है। कोमल तालु के साथ नीचे झुक कर जब यह केवल नासिका-विवर से हवा को निकलने देता है तब नासिक्य ध्वनियों का उच्चारण होता है। कोमल तालु के साथ जुड़े हुए जब यह सामान्य/उदासीन स्थिति में लटका रहता है, तब स्वरों का अनुनासिक उच्चारण होता है। जब यह तन कर नासिका विवर मार्ग को बन्द कर देता है, तब सामान्य स्वरों और अनुनासिक व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण होता है।

8. **नासिका-विवर**—बाहर से दो दिखाई देनेवाले नासिका छिद्र कोमल तालु के ऊपर एक विवर (Cavity) बनाते हैं तथा अलिजिह्वा की सहायता से नासिक्य व्यंजनों और अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में सहयोग देते हैं।

9. **जीभ<जिह्वा**—एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर सब से अधिक आसानी से मुड़ने, जानेवाला उच्चारण-अवयव जीभ है। उच्चारण में इस के सहयोग के आधार पर सुविधा (विवरण-प्रस्तुति) की दृष्टि से जीभ को पाँच भागों में बाँट कर विवरण प्रस्तुत किया जाता है—(क) जिह्वा नोक, (ख) जिह्वाग्र, (ग) जिह्वा-मध्य, (घ) जिह्वा-पश्च, (ङ) जिह्वा-मूल।

(क) **जिह्वा-नोक**—जीभ का सब से गतिशील भाग है जो स्वरों के उच्चारण के समय निष्क्रिय रहता है। ऊपर के दाँतों से स्पर्श कर यह भाग 'त थ द ध' का उच्चारण करता है। वर्त्स का स्पर्श कर 'न न्ह T D' का; वर्त्स के समीप पहुँच कर एकाधिक बार कंपित हो कर 'र ऱ्ह' का; वर्त्स के मध्य को छू कर 'ल ल्ह' का उच्चारण करता है।

(ख) **जिह्वाग्र**—जिह्वा-नोक के पीछे का कुछ भाग जिह्वाग्र या **जिह्वा-फलक** कहा जाता है जो सामान्यतः वर्त्स के विपरीत रहता है। 'ई इ ए ऐ स ज़' के उच्चारण में यह भाग सहयोग देता है।

(ग) **जिह्वा-मध्य**—कठोर तालु के विपरीत रहनेवाला जीभ का यह भाग 'ट ठ ड ढ ण, च छ ज झ ञ श य' के उच्चारण में सहयोग देता है। 'अ' के उच्चारण में यह थोड़ा ऊपर की ओर उठता है।

(घ) **जिह्वा-पश्च**—कोमल तालु के विपरीत का यह भाग 'आ औ ओ उ ऊ' उच्चारण में; कोमल तालु का स्पर्श कर 'क ख ग घ ङ' के उच्चारण में; अलिजिह्वा के समीप पहुँच कर 'क़ ख़ ग़' के उच्चारण में सहयोग देता हैं।

(ङ) **जिह्वा-मूल**—ग्रसनी (अन्न नलिका Pharynx) के समीप पहुँच कर जीभ का सब से पिछला भाग अरबी की कुछ ध्वनियों के उच्चारण में सहयोग देता है।

10. **ग्रसनी-पृष्ठ**—पूरा मुँह खोल कर बड़े दर्पण में अलिजिह्वा के नीचे, जिह्वा-मूल के पीछे अन्न नलिका का कुछ अंश दिखाई दे सकता है। इस भाग में बाहर निकलती हुई हवा में हुए विभिन्न विकार स्वरों के गुणों में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं।

11. **स्वर-तन्त्री**—कमज़ोर तथा बूढ़े लोगों के गले में **स्वर-यन्त्र** (/स्वर-तन्त्री-पेटिका) उभरी हुई एक गाँठ-जैसा दिखाई देता है। इस स्वर-यन्त्र में अत्यन्त कोमल, महीन दो स्वर-तन्त्रियाँ (Vocal cords) होती हैं। फेफड़ों से आती हुई हवा इन स्वर-तन्त्रियों के मध्य से हो कर निकलती है जिस के कारण स्वर-तन्त्रियों के कम्पन तथा विस्तार की चार अवस्थाएँ हो जाती हैं—

(क) स्वर-तन्त्रियों की दोनों झिल्लियाँ पृथक्-पृथक् निस्पन्द रहती हैं। हवा उन के बीच से हो कर बड़ी सरलता से मुख-विवर की ओर निकल जाती है। इस अवस्था में 'क क़ ख ख़ च छ ट ठ त थ प फ श ष स' जैसी अघोष ध्वनियों का उच्चारण होता है क्योंकि स्वर-तन्त्रियों में न के बराबर कम्पन होता है।

(ख) स्वर-तन्त्रियों की दोनों झिल्लियों के अत्यधिक निकट आने के कारण छोटे-से रन्ध्र में से हवा इन को झंकृत करते हुए निकलती है। जिस से 'ग ग़ घ ङ ज ज़ झ ञ ड ढ ण ड़ ढ़ द ध न न्ह, ब भ म म्ह य र ऱ्ह ल ल्ह व व्ह ह अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ' जैसी घोष ध्वनियों का उच्चारण होता है क्योंकि स्वर-तन्त्रियों में अधिक कम्पन होता है।

(ग) स्वर-तन्त्रियों की दोनों झिल्लियाँ लगभग 3/4 भाग में एक-दूसरी से सटी रहती हैं और लगभग 1/4 भाग में खुली रहती हैं। इस स्थिति में रगड़ खाते हुए हवा के निकलने से फुसफुसाहटवाली (Whisper) जपित (Murmur) ध्वनियों का उच्चारण होता है।

(घ) स्वर-तन्त्रियों की दोनों झिल्लियाँ एक क्षण के लिए एक-दूसरी से अत्यधिक सट जाती हैं। हवा एकदम एक क्षण के लिए रुक कर वेग से इन्हें अलग करते हुए निकलती है। इस अवस्था में काकल्य स्पर्श ध्वनि (एक प्रकार की हलकी खाँसी के समान) का उच्चारण होता है। ब्रज क्षेत्र की प्राइमरी पाठशालाओं की आरम्भिक कक्षा के बच्चे अ आ इ ई उ ऊ स्वर बोलते समय 'अ, इ, उ' के बाद इस प्रकार की ध्वनि का प्राय: उच्चारण करते हैं।

4

स्वर

उच्चारण प्रक्रिया के आधार पर हिन्दी की ध्वनियों को मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित किया जाता है—1. स्वर 2. व्यंजन।

स्वर—वे ध्वनियाँ हैं जिन के उच्चारण के समय मुख के अन्दर जीभ, दाँतों आदि में कोई स्पर्श तथा अवरोध नहीं होता। किसी भी स्वर ध्वनि का उच्चारण बिना किसी अन्य स्वर या व्यंजन ध्वनि की सहायता से किया जा सकता है।

हिन्दी में मुख्यत: इन स्वर ध्वनियों का प्रयोग प्राप्त है—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ।

इन के अतिरिक्त गौणत: इन स्वर ध्वनियों का उच्चारण भी मिलता है—ऍं ऐं ऑं औं।

व्यंजन—वे ध्वनियाँ हैं जिन के उच्चारण के समय मुख के अन्दर जीभ, दाँतों आदि में कोई स्पर्श, संघर्ष या अवरोध अवश्य होता है। किसी भी अकेली व्यंजन ध्वनि का उच्चारण बिना किसी स्वर की सहायता से नहीं किया जा सकता, यथा—क् ख् ग् आदि।

हिन्दी में मुख्यत: इन व्यंजन ध्वनियों का प्रयोग प्राप्त है—क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ् ट् ठ् ड् ढ् ण् त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् म् य् र् ल् व् श् स् ह् न्ह् म्ह् ल्ह् ड़् ढ़् व्।

इन के अतिरिक्त गौणत: इन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण भी मिलता है—क़् ख़् ग़् ज़् फ़्।

(भाषाविज्ञान का सामान्य ज्ञान न रखनेवाले हिन्दी तथा हिन्दी-इतर क्षेत्रों के हिन्दी-अध्यापकों और छात्रों में हिन्दी-ध्वनियों के बारे में एक भारी भ्रम घर किए हुए है। वे हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था को संस्कृत की ध्वनि-व्यवस्था के रूप में ही देखने, मानने की भूल करते हैं। आधुनिक हिन्दी में 'ऑ ँ क़ ख़ ग़ ज़ फ़ ड़ ढ़ न्ह म्ह ल्ह' ध्वनियों का काफ़ी प्रयोग होता है। इन ध्वनियों का संस्कृत में अभाव है। हिन्दी में प्राप्त मूल स्वर 'ऐ औ' का संस्कृत में अभाव है। इन के स्थान पर संस्कृत में संयुक्त स्वर 'ऐ, औ/अई, अऊ' हैं। हिन्दी के बहुत कम शब्दों में इन

संयुक्त स्वरों का प्रयोग होता है। वैदिक संस्कृत में अइ अउ आइ आउ (ए ओ ऐ औ) चार संयुक्त स्वर थे। लौकिक संस्कृत में ए ओ मूल स्वर और 'अइ अउ (ऐ औ) स्वर रह गए। हिन्दी में आते-आते ये चारों ही मूल स्वर हो गए। इसी प्रकार 'ऋ ष क्ष ज्ञ' के संस्कृत-उच्चारण और हिन्दी-उच्चारण में भिन्नता है। अन्य कई ध्वनियों के संस्कृत उच्चारण-स्थान और हिन्दी-उच्चारण स्थान तथा उच्चारण-प्रयत्न में अन्तर आ गया है।

जिस प्रकार संस्कृत भाषा की रूप-व्यवस्था (रामः रामौ रामाः; अहम् आवाम् वयम्; गच्छति गच्छतः गच्छन्ति) और वाक्य-व्यवस्था (त्वं कुत्र गमिष्यसि ?) हिन्दी की रूप-व्यवस्था (राम दो राम कई राम; मैं हम दो हम/हम सब; जाता/जाती है (वे दो) जाते/जाती हैं (वे) जाते/जाती हैं) तथा वाक्य-व्यवस्था (तू कहाँ जाएगा ?) से भिन्न है, उसी प्रकार संस्कृत भाषा की ध्वनि-व्यवस्था और हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था में भिन्नता है। भिन्नता की यह मात्रा भी भिन्न-भिन्न है।)

स्वर-प्रकार—हिन्दी में उच्चरित स्वर दो प्रकार के हैं—1. मूल स्वर 2. संयुक्त स्वर।

1. **मूल स्वर** वे स्वर हैं जिन के उच्चारण के समय जीभ उठी हुई स्थिति पर रहती है। मूल स्वर के उच्चारण के समय जबड़ा एक स्थिति में ही रहता है। मूल स्वरों को **एकल स्वर** भी कह सकते हैं।

हिन्दी के मूल स्वर हैं—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ।

2. **संयुक्त स्वर** वे स्वर हैं जिन के उच्चारण के समय जीभ एक मूल स्वर की स्थिति से होती हुई मूल स्वर के उच्चारण की स्थिति तक पहुँचती है। संयुक्त स्वर के उच्चारण के समय जबड़ा एक स्थिति से दूसरी स्थिति में पहुँच कर स्थिर होता है। संयुक्त स्वर को सन्ध्यक्षर भी कहा जाता है। संयुक्त स्वर का उच्चारण भी मूल स्वर की भाँति साँस के एक ही झटके में होता है दो श्वासाघात में नहीं।

हिन्दी के संयुक्त स्वर हैं—अइ~अई~अएँ (यथा—सुरइया~सुरईया~सुरएँया। लिखित रूप सुरैया); अउ~अऊ~अओं (यथा—पउआ~पऊआ~पओंआ। लिखित रूप पौआ)। संयुक्त स्वरों के ये क्षेत्रीय (मेरठ- आगरा- इलाहाबाद) उच्चारण-भेद हैं। आइ, आउ संयुक्त स्वरों का क्षेत्रीय प्रयोग भी मिलता है। ये अँगरेज़ी से आगत कुछ शब्दों में उच्चरित होती हैं।

परिनिष्ठित हिन्दी में संयुक्त स्वर अई 'ऐ' का उच्चारण क्षेत्रीय भिन्नता के आधार पर भिन्न-भिन्न है। इस का उच्चारण कुछ यान्त शब्दों में ही प्राप्त है, यथा— सुरैया, ततैया, ढैया, रवैया, गवैया, भैया, मैया, गैया, बलैया, नैया आदि। इन में से

कई शब्द बोलियों में प्रयुक्त हैं, परिनिष्ठित हिन्दी में उन के स्थान पर 'भाई, माँ, गाय, नाव' का प्रचलन अधिक है। संयुक्त स्वर अऊ 'औ' का उच्चारण केवल 4-5 आन्त/वान्त शब्दों में ही प्राप्त है, यथा—कौआ/कौवा, पौआ/पौवा, हौआ/हौवा, उठौआ/उठौवा, कनकौआ/कनकौवा, नौआ/नौवा। आजकल इन का उच्चारण मूल स्वरों की भाँति होने लगा है, बोलियों में 'औ' का संयुक्त स्वरत्व प्रचलित है।

दक्षिण भारत में प्रादेशिक भाषाओं के प्रभाव से संयुक्त स्वरों का उच्चारण [सुरय्या, कव्वा] जैसा किया जाता है, जो हिन्दी क्षेत्रीय उच्चारण से काफ़ी भिन्न है।

ऐतिहासिक दृष्टि से 'ए ऐ ओ औ' का विवरण इस प्रकार का मिलता है—'ए' वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि-प्राकृत-अपभ्रंश, प्राचीन हिन्दी में क्रमशः संयुक्त स्वर (अइ), मूल स्वर, मूल स्वर, मूल स्वर था। 'ऐ' संयुक्त स्वर (आइ), संयुक्त स्वर (अइ), अप्राप्त, संयुक्त स्वर (अएँ) था। 'ओ' संयुक्त स्वर (अउ), मूल स्वर, मूल स्वर, मूल स्वर था। 'औ' संयुक्त स्वर (आउ), संयुक्त स्वर (अउ) अप्राप्त, संयुक्त स्वर (अऑ) था। आधुनिक हिन्दी में ये चारों मूल स्वर हो चुके हैं।

स्वरों के उच्चारण में जीभ, मुख विवर, नासिका विवर, अलिजिह्वा, ओठ मुख्य भूमिका निभाते हैं। इन उच्चारण-अवयवों के आधार पर **हिन्दी स्वरों का विवरण** प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. **जिह्वा के अग्र, मध्य, पश्च भाग की स्थिति/सक्रियता के आधार पर** स्वरों के तीन प्रकार हैं—**(क) अग्र स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण में जीभ कुछ आगे को सरक आती है। इस समय जीभ का अगला भाग थोड़ा-सा उठता है, यथा—ई इ ए ऐ। **(ख) मध्य स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण में जीभ न आगे सरकती है और न पीछे हटती है। इस समय जीभ का मध्य भाग थोड़ा-सा उठता है, यथा—अ। **(ग) पश्च स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण में जीभ कुछ पीछे सरक जाती है। इस समय जीभ का पिछला भाग थोड़ा-सा उठता है, यथा—ऊ उ ओ औ (ऑ) आ।

सभी अग्र और पश्च स्वर जिह्वा के समान (एक ही) अग्र और पश्च बिन्दु से उच्चरित नहीं होते, उच्चारण-बिन्दुओं में थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता है।

2. **जिह्वा-उत्थापन/मुख-विवर के खुलने की मात्रा के आधार पर** स्वरों के चार प्रकार हैं—**(क) संवृत स्वर**—जिन स्वरों के उच्चारण में मुँह बहुत कम खुलता है, यथा—ई ऊ इ उ। इन के उच्चारण में जीभ, नीचे का जबड़ा काफ़ी ऊपर की ओर जाते हैं, इसलिए इन्हें **उच्च स्वर** भी कहते हैं। **(ख) विवृत स्वर**—जिन स्वरों के उच्चारण में मुँह बहुत अधिक खुलता है, यथा—आ। इन के उच्चारण में जीभ, नीचे का जबड़ा काफ़ी नीचे की ओर जाते हैं, इसलिए इन्हें **निम्न स्वर** भी कहते हैं। **(ग) अर्ध संवृत स्वर**—जिन स्वरों के उच्चारण में मुँह कम खुलता है, यथा—ए

ओ। इन के उच्चारण में जबड़ा उच्च से कुछ नीचा रहता है, अतः इन्हें **उच्च-निम्न स्वर** भी कहते हैं। (घ) **अर्ध-विवृत स्वर**—जिन स्वरों के उच्चारण में मुँह अधिक खुलता है, यथा—ऐ अ औ। इन के उच्चारण में नीचे का जबड़ा निम्न से कुछ ऊँचा रहता है, इसलिए इन्हें **निम्न-उच्च स्वर** भी कहते हैं।

सभी संवृत, अर्ध संवृत, अर्ध विवृत और विवृत स्वरों के उच्चारण में संवृतता/विवृतता की मात्रा में थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता है। स्वरों की उच्चता-निम्नता का स्वरूप इस प्रकार का माना जा सकता है—निम्न (आ), निम्न-उच्च (ऐ, औ, अ), उच्च-निम्न (ए, ओ), उच्च (इ ई, उ ऊ)।

3. **उच्चारण-समय की मात्रा के आधार पर** स्वरों के तीन प्रकार हैं—(क) **ह्रस्व स्वर**—जिस स्वर का उच्चारण बहुत कम समय तक ही किया जा सकता है, यथा—अ इ उ। (ख) **दीर्घ स्वर**—जिस स्वर का उच्चारण कुछ देर तक किया जा सकता है, यथा—आ ई ऊ ए ऐ ओ औ। (ग) **प्लुत स्वर**—जिस (दीर्घ) स्वर का उच्चारण बहुत देर तक किया जा सकता है। सभी दीर्घ स्वर प्लुत स्वर बन सकते हैं। किसी दूरवर्ती व्यक्ति को पुकारने के लिए अधिक देर तक उच्चरित दीर्घ स्वरों का प्लुत उच्चारण सुना जा सकता है, यथा—ओ····, ऐ····।

लगभग 1950 ई० तक प्लुत स्वर को '३' लगा कर लिया जाता रहा है—यथा—ओ३म्। सभी दीर्घ स्वरों की दीर्घता की मात्रा में थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता है।

4. ओठों की स्थिति/गोलाकारिता के आधार पर स्वरों के तीन प्रकार हैं—(क) **वर्तुलित/वृत्तमुखी स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण के समय ओठों में गोलाई आ जाती है, यथा—ऊ उ ओ औ आ। इन्हें **ओष्ठ्यरंजित स्वर** भी कहा जाता है। (ख) **अवर्तुलित/अवृत्तमुखी स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण के समय ओठ फैल जाते हैं, यथा—ई इ ए ऐ। (ग) **उदासीन स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण के समय ओठ उदासीन अवस्था में रहते हैं, यथा—अ।

वृत्तमुखी को गोलीकृत/गोलिक/वर्तुल/गोलाकार भी कहते हैं। अवृत्तमुखी को प्रसरित/विस्तृत भी कहते हैं। सभी वृत्तमुखी और अवृत्तमुखी स्वरों के उच्चारण के समय ओठों की गोलाई, उन के फैलाव में थोड़ा-थोड़ा अन्तर रहता है।

5. **अलिजिह्वा तथा नासिका विवर की सक्रियता के आधार पर** स्वरों के दो प्रकार हैं—(क) **मौखिक स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण के समय केवल मुख मार्ग से ही हवा बाहर निकलती है, यथा—अ, आ आदि मूल स्वर और अइ, अउ आदि संयुक्त स्वर। इन्हें अननुनासिक/निरनुनासिक स्वर भी कहते हैं। (ख) **अनुनासिक स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण के समय मुख मार्ग तथा नासिका विवर दोनों से साथ-साथ हवा बाहर निकलती है। ऐसा स्वर-उच्चारण के समय कोमल तालु के साथ जुड़े अलिजिह्वा के थोड़ा-सा नीचे की ओर लटक जाने के कारण सम्भव होता

है। अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ स्वरों का अनुनासिक रूप हिन्दी में बहुतायत से प्रयुक्त होता है। दीर्घ स्वरों में अनुनासिकता जितनी अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ती है, उतनी ह्रस्व स्वरों 'अ इ उ' के साथ नहीं। कभी-कभी 'अ' के साथ की अनुनासिकता बिलकुल अस्पष्ट रहती है, यथा—बँटना, बँटवारा, जँचना, कँपकँपी।

सभी अनुनासिक स्वरों के उच्चारण के समय अनुनासिकता की मात्रा में थोड़ा-थोड़ा अन्तर रहता है। पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में 'एँ—ऐं', 'ओं—औं' के उच्चारण में अभेद है। सामान्यतः लोग 'में' को 'मैं' और 'क्यों' को 'क्यौं' जैसा बोलते हैं। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण के समय साँस के पूरे झटके के अन्त तक मुख-विवर खुला रखा जाता है, अन्यथा अनुनासिकता के स्थान पर नासिक्य ध्वनि का उच्चारण हो जाता है।

6. **स्वर-तन्त्रियों की कम्पन-मात्रा के आधार पर** स्वरों के दो प्रकार हैं—1. **सामान्य/घोष स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण के समय स्वर-तन्त्रियों में पर्याप्त कम्पन होता है और उच्चारण में एक गूँज-सी सुनाई देती है। सभी मौखिक तथा अनुनासिक स्वर घोष ही होते हैं। 2. **अघोष/जपित स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण के समय स्वर-तन्त्रियों में बहुत कम कम्पन होता है और उच्चारण-फुसफुसाहटयुत सुनाई देता है। बीमारी या भूख आदि से बहुत कमज़ोर हुए व्यक्ति का उच्चारण; किसी के कान में बहुत धीरे-धीरे धीमी आवाज़ में बोलने पर स्वर अघोष हो जाते हैं। लेखन में अघोष स्वर का अंकन करने के लिए अधोशून्य का प्रयोग किया जाता है, यथा—इ̥ उ̥ ए̥ आदि। सभी घोष स्वरों के उच्चारण के समय घोषत्व की मात्रा में थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता है।

7. **मांसपेशियों की कसाव-मात्रा के आधार पर** स्वर ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं—1. **शिथिल** (Lenis) स्वरों के उच्चारण के समय मांसपेशियों में कसाव-मात्रा कम होती है, यथा—अ इ उ। 2. **दृढ़** (Fortis) स्वरों के उच्चारण के समय मांसपेशियों में कसाव-मात्रा अधिक होती है, यथा—ऊ औ ओ ऑ ऐ ए आ। सभी स्वरों की शिथिलता तथा दृढ़ता की मात्रा में थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता है।

8. **उच्चारण-अनुक्रम के आधार पर** हिन्दी में दो प्रकार का **स्वरानुक्रम/स्वर-संयोग** (Vowel Sequence) प्राप्त है—1. **द्विस्वरानुक्रम** 2. **त्रिस्वरानुक्रम**।

जब किसी शब्द में एक के पश्चात् दूसरे (या तीसरे) मूल स्वर/संयुक्त स्वर का स्पष्ट उच्चारण होता है तो उसे स्वरानुक्रम या स्वर-संयोग कहा जाता है। हिन्दी में प्राप्त दोनों प्रकार के प्रमुख स्वरानुक्रम ये हैं—

1. अई (रईस, गई, कई) 2. अऊ (शऊर, गऊ, मऊ) 3. अए (गए, भए, नए) 4. आअ (बाअसर) 5. आइ (नुमाइश, पैमाइश) 6. आई (काई, नाई, भाई, खाई) 7. आउ (आउट, आउंस) 8. आऊ (ताऊ, खाऊ, उड़ाऊ) 9. आए (खाए,

है। अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ स्वरों का अनुनासिक रूप हिन्दी में बहुतायत से प्रयुक्त होता है। दीर्घ स्वरों में अनुनासिकता जितनी अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ती है, उतनी ह्रस्व स्वरों 'अ इ उ' के साथ नहीं। कभी-कभी 'अ' के साथ की अनुनासिकता बिलकुल अस्पष्ट रहती है, यथा—बँटना, बँटवारा, जँचना, कँपकँपी।

सभी अनुनासिक स्वरों के उच्चारण के समय अनुनासिकता की मात्रा में थोड़ा-थोड़ा अन्तर रहता है। पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में 'एँ—ऐं', 'ओं—औं' के उच्चारण में अभेद है। सामान्यतः लोग 'में' को 'मैं' और 'क्यों' को 'क्यौं' जैसा बोलते हैं। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण के समय साँस के पूरे झटके के अन्त तक मुख-विवर खुला रखा जाता है, अन्यथा अनुनासिकता के स्थान पर नासिक्य ध्वनि का उच्चारण हो जाता है।

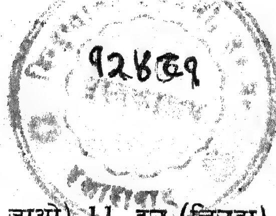
6. **स्वर-तन्त्रियों की कम्पन-मात्रा के आधार पर** स्वरों के दो प्रकार हैं—1. **सामान्य/घोष स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण के समय स्वर-तन्त्रियों में पर्याप्त कम्पन होता है और उच्चारण में एक गूँज-सी सुनाई देती है। सभी मौखिक तथा अनुनासिक स्वर घोष ही होते हैं। 2. **अघोष/जपित स्वर**—जिस स्वर के उच्चारण के समय स्वर-तन्त्रियों में बहुत कम कम्पन होता है और उच्चारण-फुसफुसाहटयुत सुनाई देता है। बीमारी या भूख आदि से बहुत कमज़ोर हुए व्यक्ति का उच्चारण; किसी के कान में बहुत धीरे-धीरे धीमी आवाज़ में बोलने पर स्वर अघोष हो जाते हैं। लेखन में अघोष स्वर का अंकन करने के लिए अधोशून्य का प्रयोग किया जाता है, यथा—इ̥ उ̥ ए̥ आदि। सभी घोष स्वरों के उच्चारण के समय घोषत्व की मात्रा में थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता है।

7. **मांसपेशियों की कसाव-मात्रा के आधार पर** स्वर ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं—1. **शिथिल** (Lenis) स्वरों के उच्चारण के समय मांसपेशियों में कसाव-मात्रा कम होती है, यथा—अ इ उ। 2. **दृढ़** (Fortis) स्वरों के उच्चारण के समय मांसपेशियों में कसाव-मात्रा अधिक होती है, यथा—ऊ औ ओ ऑ ऐ ए आ। सभी स्वरों की शिथिलता तथा दृढ़ता की मात्रा में थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता है।

8. **उच्चारण-अनुक्रम के आधार पर** हिन्दी में दो प्रकार का **स्वरानुक्रम/स्वर-संयोग** (Vowel Sequence) प्राप्त है—1. **द्विस्वरानुक्रम** 2. **त्रिस्वरानुक्रम**।

जब किसी शब्द में एक के पश्चात् दूसरे (या तीसरे) मूल स्वर/संयुक्त स्वर का स्पष्ट उच्चारण होता है तो उसे स्वरानुक्रम या स्वर-संयोग कहा जाता है। हिन्दी में प्राप्त दोनों प्रकार के प्रमुख स्वरानुक्रम ये हैं—

1. अई (रईस, गई, कई) 2. अऊ (शऊर, गऊ, मऊ) 3. अए (गए, भए, नए) 4. आअ (बाअसर) 5. आइ (नुमाइश, पैमाइश) 6. आई (काई, नाई, भाई, खाई) 7. आउ (आउट, आउंस) 8. आऊ (ताऊ, खाऊ, उड़ाऊ) 9. आए (खाए,



आए, लाए) 10. आओ (खाओ, गाओ, जाओ) 11. इउ (चिउड़ा) 12. इऊँ (जिऊँ, पिऊँगा) 13. इए (चलिए, कहिए, सुनिए) 14. ईऑ (मनीऑर्डर) 15. उअ (मुअत्तल, सुअवसर, दुअन्नी) 16. उआ (जुआ, हुआ, हलुआ) 17. उइ (घुइयाँ) 18. उई (छुई-मुई, रुई) 19. उए (छुए, हुए) 20. उओ (साधुओ, भालुओ) 21. ऊई (सूई) 22. एअ (बेअदब, बेअ़क्ल) 23. एआ (बेआबरू) 24. एइ (बेइ़ज़्ज़त) 25. एई (बेईमान) 26. एऊ (जनेऊ, कलेऊ) 27. एए (खेए, सेए) 28. एओ (सेओ, खेओ) 29. ओआ (खोआ, सोआ-पालक) 30. ओइ (रसोइया) 31. ओई (कोई, रसोई, लोई) 32. ओऊँ (रोऊँ, सोऊँ) 33. ओए (रोए, धोए) 34. ओओ (धोओ, सोओ) 35. औए (कौए) 36. अऊआ/औआ (कऊआ/कौआ, पौआ) 37. औओ (कौओ) 38. आइए (आइए, खाइए, जाइए) 39. उआइ (मुआइना) 40. उआई (बुआई, गुरुआई) 41. एइए (खेइए, सेइए) 42. ओइए (सोइए, रोइए, धोइए)।

इन स्वरानुक्रमों में ऐसे स्वरानुक्रमों को नहीं रखा गया है जिस के उच्चारण में 'य/व' श्रुति (glide) अनिवार्यतः आती है, यथा—इअ (सड़ियल, अड़ियल), अआ (गया), आआ (खाया, गाया), इआ (बनियान), ईअ (तबीयत), ऐआ (गवैया), इआ (दिया, किया, लिया), इआइ (बनियाइन), आइओ (भाइयो), ओइआ (रसोइया)। श्रुति-आगम के कारण वास्तव में ये उदाहरण स्वरानुक्रम की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

हिन्दी स्वर-ध्वनियों का संरचनात्मक विवरण—सामान्यतः सभी स्वर मौखिक और घोष होते हैं, अतः इन विशेषताओं को विवरण-प्रस्तुति में अन्तर्निहित मान लिया जाता है। यदि कोई स्वर अनुनासिक या अघोष है तो उस का उल्लेख किया जा सकता है। शिथिल तथा दृढ़ होने का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण न होने के कारण छोड़ा जा सकता है।

ई	अग्र	संवृत	दीर्घ	अवृत्तमुखी	(ईख, मील, आई)
इ	अग्र	संवृत	ह्रस्व	अवृत्तमुखी	(इमली, मिल, कि)
ए	अग्र	अर्ध-संवृत	दीर्घ	अवृत्तमुखी	(एक, मेल, ने)
ऐ	अग्र	अर्ध-विवृत	दीर्घ	अवृत्तमुखी	(ऐनक, मैल, है)
अ	मध्य	अर्ध-विवृत	ह्रस्व	अवृत्तमुखी	(अनार, कमल)
आ	पश्च	विवृत	दीर्घ	ईषत् वृत्तमुखी	(आम, माल, चना)
औ	पश्च	अर्ध-विवृत्त	दीर्घ	वृत्तमुखी	(औरत, खौल, नौ)
ओ	पश्च	अर्ध-संवृत	दीर्घ	वृत्तमुखी	(ओखली, खोल, रो)
उ	पश्च	संवृत	ह्रस्व	वृत्तमुखी	(उपला, खुल, भानु)
ऊ	पश्च	संवृत	दीर्घ	वृत्तमुखी	(ऊन, फूल, ताऊ)
(ऑ)	पश्च	(अर्ध) विवृत	दीर्घ	ईषत् वृत्तमुखी	(ऑफ़िस, डॉक्टर)

हिन्दी के स्वर स्वनिम—हिन्दी के दस केन्द्रीय/मुख्य स्वर स्वनिम हैं। यहाँ इन का विवरण वितरण तथा प्रयोग के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है। स्वर स्वनिम-निर्धारण की दृष्टि से हिन्दी के इन दस स्वनिमों के अर्थभेद युक्त न्यूनतम (विरोधी) युग्म प्राप्त हैं, यथा—मल-माल-मिल-मील, कुल-कूल, मेल-मैल, लोट-लौट।

ऑ—अँगरेज़ी भाषा के प्रभाव से आगत गौण/अकेन्द्रीय स्वर स्वनिम है जो केवल सुशिक्षित लोगों के उच्चारण में प्राप्त है। जन सामान्य इसे 'आ' या 'औ' से स्थानापन्न कर देते हैं, यथा—बाल—बॉल (=गेंद)/बौल; काफ़ी—कॉफ़ी/कौफ़ी∼काफ़ी; हाल (-चाल)—हॉल/हौल∼हाल; काल—कॉल/कौल∼काल।

अ—अक्षरान्त के अतिरिक्त सर्वत्र आता है, यथा—अमरूद [अम्रूद्], विमल [विमल्]। संयुक्त व्यंजनान्त शब्दों में इस का हलका-सा उच्चारण सुनाई पड़ता-सा जान पड़ता है। किन्तु वह 'अ' नहीं होता। लेखन में इस का कोई मात्रा-चिह्न नहीं है। सभी एकल व्यंजनों में यह अन्तर्निहित रहता है। अ-रहित व्यंजन-प्रदर्शन के लिए व्यंजन वर्ण के नीचे हल् चिह्न (्) लगाया जाता है, यथा—जगत्, र्। हिन्दी में अ-लोप की कुछ विशेषताएँ हैं जिन पर आगे चर्चा की जाएगी। 'अ' का अनुनासिक उच्चारण बहुत क्षीण होता है।

आ—शब्द, अक्षर के आदि, मध्य तथा अन्त में प्राप्त, यथा—आवाज़, आ; वनमाली, माल; नया, क्या। शब्द में दो या अधिक 'आ' आने पर आरम्भ के आ' का उच्चारण कुछ ह्रस्वता लिए होता है, यथा—बाज़ार (>बज़ार), बादाम (>बदाम)। शब्द में 'आ' के बाद दीर्घ स्वर आने पर आरम्भ के 'आ' के उच्चारण में कुछ ह्रस्वता आ जाती है, यथा—बाज़ारू, बादामी, आलीशान, पायेदान 'आ' के मात्रा-चिह्न का व्यंजन वर्ण के साथ पर-प्रयोग होता है। 'आ' का अनुनासिक उच्चारण बहुत स्पष्ट रहता है।

इ—शब्द, अक्षर के आदि, मध्य तथा अन्त में प्राप्त, यथा—इमली, इन; मालिकों, दिन; मति, कि। शब्द में संयुक्त व्यंजनों और 'त' के अन्त में आनेवाली 'इ' का उच्चारण कुछ दीर्घता लिए हुए होता है, यथा—शान्ति (→शान्ती), गति (→गती), मति (→मती), रति (→रती), यति (→यती), भूमि (→भूमी), बल्कि। 'इ' के मात्रा-चिह्न का व्यंजन वर्ण के साथ पूर्व-प्रयोग होता है। 'इ' का अनुनासिक उच्चारण क्षीण रहता है।

ई—शब्द, अक्षर के आदि, मध्य और अन्त में प्राप्त, यथा—ईश्वर, ईख; वागीश्वर, दीन; बुनाई, की। शब्द में 'ई' के बाद दीर्घ स्वर या संयुक्त व्यंजन आने पर 'ई' का उच्चारण कुछ ह्रस्वता लिए होता है, यथा—दीवानी (→दिवानी), दीवाली (→दिवाली), ईश्वर (→इश्वर), ईर्ष्या (→इर्ष्या)। 'ई' से पूर्व संयुक्त व्यंजन होने तथा बाद में 'य, व' होने पर भी 'ई' के उच्चारण में कुछ ह्रस्वता आ जाती है,

यथा—द्वितीय (→द्वितिय), तृतीय (→तृतिय)। 'ई' का उच्चारण 'य' को पूर्णतः दबा देता है, अतः 'यी' का उच्चारण 'ई' वत् होता है, यथा—गयी (→गई), नयी (नई), आयी (→आई)। 'ई' के मात्रा-चिह्न का व्यंजन वर्ण के साथ पर-प्रयोग होता है। 'ई' का अनुनासिक उच्चारण स्पष्ट रहता है।

उ—शब्द, अक्षर के आदि, मध्य और अन्त में प्राप्त, यथा—उल्लू, उन; हलुआ, कुल; प्रभु; सु -। 'उ' के बाद शब्द में दीर्घ स्वर होने पर 'उ' की ह्रस्वता में वृद्धि हो जाती है, यथा—पुराना, भुलाना, खुराक। शब्द के अन्त में (विशेषतः 'य, व, र, ल' के साथ) आया 'उ' कुछ दीर्घता से साथ उच्चरित होता है, यथा—आयु, वायु, गुरु, भानु। 'उ' के मात्रा-चिह्न का व्यंजन वर्ण के साथ पर-प्रयोग होता है। 'उ' का अनुनासिक रूप क्षीण रहता है।

ऊ—शब्द, अक्षर के आदि, मध्य और अन्त में प्राप्त, यथा—ऊपर, ऊन; झूठी, टूक; आलू, लू। शब्द में 'ऊ' के बाद दीर्घ स्वर या संयुक्त व्यंजन आने पर 'ऊ' का उच्चारण कुछ ह्रस्वता लिए होता है, यथा—ऊँचाई (→उँचाई), मूल्य (→मुल्य)। शब्द-मध्य में आए 'ऊ' से पूर्व दीर्घ स्वर होने पर 'ऊ' के उच्चारण में कुछ ह्रस्वता आ जाती है, यथा—मालूम (→मलुम), क़ानूनगो (क़नुनगो)। 'ऊ' के मात्रा-चिह्न का व्यंजन वर्ण के साथ पर-प्रयोग होता है। 'ऊ' का अनुनासिक उच्चारण स्पष्ट रहता है।

ए—शब्द, अक्षर के आदि, मध्य तथा अन्त में प्राप्त; यथा—एका, एक; अनेकों, नेक; पूरे, ने। अनेकाक्षरी शब्दों में आदि व्यंजन के साथ आनेवाले 'ए' का उच्चारण कुछ ह्रस्वता लिए होता है, यथा—मेज़बान, अनेकता। अनेकाक्षरी शब्दों में 'ह' से पूर्व आदि व्यंजन के साथ आनेवाले 'ए' का उच्चारण कुछ ह्रस्वता लिए होता है, यथा—मेहर, सेहत, सेहरा, मेंहदी, बेहतर, तेहरान, मेहमान मेहरबान। अनेकाक्षरी शब्दों के आरम्भ में आनेवाले 'ए' का उच्चारण कुछ ह्रस्वता लिए होता है, यथा—एहतियात, एकतारा, एहसास, एकाएक। 'ए' का उच्चारण 'य' को पूर्णतः दबा देता है, अतः '-ये' का उच्चारण 'ए' वत् होता है, यथा—गये (→गए), नये (→नए), पहिये (→पहिए)। ए' के मात्रा-चिह्न का व्यंजन वर्ण से साथ पर-प्रयोग होता है। 'एँ' को 'ए' का संस्वन कहा जा सकता है जिस में ह्रस्वता आ जाती है। 'ए' का अनुनासिक उच्चारण स्पष्ट रहता है। पश्चिमी हिन्दी-क्षेत्रों में 'ए' का अनुनासिक रूप नहीं मिलता।

ऐ—शब्द, अक्षर के आदि, मध्य तथा अन्त में प्राप्त, यथा—ऐसा, ऐब, ऐनक, ऐन, ऐंठ; कसैला, पैंठ, बैर, पैसा, मैना; है, हैं, मैं। शब्द में 'या' के पूर्व मूल स्वर 'ऐ' का उच्चारण अप्राप्त, संयुक्त स्वर का उच्चारण प्राप्त, यथा—कन्हैया, सुरैया, तैयार, ततैया, ऐयाश, ऐयारी, सैयद, तलैया, नैया, तैयारी, मढ़ैया, भूल-भुलैया, रवैया, गवैया, गैया, मैया, भैया, गढ़ैया, ढैया, अढ़ैया। ऐ के मात्रा-चिह्न

का व्यंजन वर्ण के साथ पर-प्रयोग होता है। ऐ का अनुनासिक उच्चारण स्पष्ट रहता है। पूर्वी हिन्दी तथा बोलियों में 'ऐ' संयुक्त स्वर के रूप में प्रयुक्त, यथा—कैसा, ऐसा, मैदान; वैयाकरण [वईयाकरण्], तैयार [तईयार्]।

ओ—शब्द, अक्षर के आदि, मध्य तथा अन्त में प्राप्त, यथा—ओखली, ओर; करोड़ों, मोर; आओ, लो। अनेकाक्षरी शब्दों में तथा 'ह' से पूर्व आनेवाले 'ओ' का उच्चारण कुछ ह्रस्वता लिए होता है, यथा—सोनार (→सॉनार>सुनार), लोहार (→लॉहार>लुहार), कोहरा (→कॉहरा>कुहरा)। 'ओ' के मात्रा-चिह्न का व्यंजन वर्ण के साथ पर-प्रयोग होता है। 'ओ' का अनुनासिक उच्चारण स्पष्ट रहता है। पश्चिमी हिन्दी में 'ओ' का अनुनासिक रूप नहीं मिलता। ओं, औं का उच्चारण समान रहता है।

औ—शब्द, अक्षर के आदि, मध्य तथा अन्त में प्राप्त, यथा—औक़ात, औरत, और, औसत; पौधा, रौनक, मौहर, मौत, कौन, लौटना; नौ, सौ, भौं। शब्द में 'वा/आ' के पूर्व 'औ' का उच्चारण अप्राप्त, संयुक्त स्वर का उच्चारण प्राप्त, यथा—पौआ/पौवा, कौआ/कौवा, हौआ/हौवा, उठौआ/उठौवा। 'औ' के मात्रा-चिह्न का व्यंजन वर्ण के साथ पर-प्रयोग होता है। 'औ' का अनुनासिक उच्चारण स्पष्ट रहता है। पूर्वी हिन्दी तथा बोलियों में 'औ' संयुक्त स्वर के रूप में प्राप्त है। पश्चिमी हिन्दी में 'औ' मूल स्वर तथा संयुक्त स्वर के रूप में प्रयुक्त, यथा—कौन, कौर, ठौर; कनकौआ [कनकऊआ]।

स्वर-गुण—हिन्दी के मूल या मौखिक स्वरों में पाया जानेवाला एक विशिष्ट गुण **अनुनासिकता** है। अनुनासिकता को स्वर-रंजक भी कहा जाता है। जिस प्रकार गुण का बिना गुणी के अस्तित्व नहीं होता, उसी प्रकार बिना स्वर के अनुनासिकता का उच्चारण नहीं किया जा सकता। हिन्दी स्वरों में पाया जानेवाला यह गुण अर्थ-भेदक होने के कारण स्वनिमिक श्रेणी का है, यथा—आधी-आँधी, सास-साँस, है-हैं। अइ, अउ, एँ, ऑ का अनुनासिक रूप नहीं होता।

हिन्दी के सभी मूल स्वरों का अनुनासिकतायुत उच्चारण सम्भव है। अँगीठी, बिंदिया, बँटवारा, मुँदना, जँचना आदि शब्दों के ह्रस्व स्वरों के उच्चारण के समय अनुनासिकता बहुत क्षीण सुनाई पड़ती है और इन से बने शब्द भी बहुत कम संख्या में प्राप्त हैं। दीर्घ स्वरों के साथ अनुनासिकता अधिक स्पष्ट सुनाई देती है और इस से बने शब्दों की संख्या भी काफ़ी है। शब्दान्त में ह्रस्व स्वरों के साथ अनुनासिकता का प्रयोग अप्राप्त है। अनुनासिकतायुक्त स्वर शब्द के आरम्भ, मध्य तथा अन्त में आ सकता है, यथा—

मौखिक/अननुनासिकतायुत रूप	अनुनासिकतायुत रूप
अ सवार ('स' में अन्तर्निहित)	अँ सँवार (-ना), अँगना, अँगीठी, कँगना
आ/ा आधी	आँ/ाँ आँधी, आँख, पाँच
इ/ि सिगार	इँ/िँ सिंगार, बिंदिया
ई/ी चली	ईं/ीं चलीं, नींद, ईंट
उ/ु उगली	उँ/ुँ उँगली, मुँदना
ऊ/ू पूछ (ना)	ऊँ/ूँ पूँछ, मूँदना, जूँ, ऊँट
ए/े आए	एँ/ेँ आएँ, करें, गेंद
ऐ/ै है	ऐं/ैं हैं, ऐंठ, पैंठ
ओ/ो गोद	ओं/ों गोंद, हों
औ/ौ चौक	औं/ौं चौंक, रौंदना

पश्चिमी हिन्दी में 'ए, ओ' के अनुनासिक रूपों का उच्चारण प्रायः 'एँ, औं' वत् होता है, इसलिए 'मैं कमरे में हूँ' के 'में' का उच्चारण 'मैं' वत् होता है। मैं-मैं, भोंकना-भौंकना के उच्चारण में सामान्यतः कोई अन्तर नहीं रहता, अतः पश्चिमी हिन्दी में 'ए, ओ' का मौखिक उच्चारण ही प्रचलित है।

देवनागरी में **अनुनासिकता-लेखन** के दो चिह्न प्रचलित हैं—1. चन्द्रबिन्दु (ँ), 2. बिन्दु (ं)। चन्द्रबिन्दु शिरोरेखा के ऊपर कोई अन्य चिह्न न होने पर लगाते हैं, यथा—अँगना; अँतड़ी, आँत, आँख, उँगली, रुँधना, ऊँट, रूँध, आएँ, जाएँ। शिरोरेखा के ऊपर किसी अन्य चिह्न के आने पर चन्द्रबिन्दु के स्थान पर बिन्दु का प्रयोग प्रचलित है, यथा – बिंदिया, बिंधना, ईंट, सींचना, ऐंठ, गेंद, भैंस, हैं, गोंद, नौकरों, भौं, चौंक। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, पं० किशोरीदास वाजपेयी केवल चन्द्रबिन्दु-अंकन के ही पक्षपाती रहे हैं। इन दिनों हिन्दी क्षेत्र में प्रकाशित कई पत्रिकाओं ने चन्द्रबिन्दु का बहिष्कार कर दिया है जिस से हिन्दी-इतर-भाषा-भाषी क्षेत्रों में उच्चारण में कठिनाई के साथ-साथ राजकता उत्पन्न हो गई है। टंकण यन्त्र, टेलीप्रिन्टर, मोनो टाइप में ँ का अभाव होने से यह अराजकता और अधिक बढ़ती जा रही है। हमारा सुझाव है कि हिन्दी के लिए देवनागरी का प्रयोग करनेवाली जनता यदि चन्द्रबिन्दु (ँ) के स्थान पर शिरोशून्य (०) का प्रयोग करने लगे तो बिन्दु के दुहरे ध्वन्यात्मक मूल्य से छुटकारा मिल सकता है, अन्यथा 'बिंदिया, बिंदी, हिंदी, गेंद; चौंक' आदि का दुहरा उच्चारण सम्भव है, यथा—[बिँदिया-बिन्दिया, बिँदी-बिन्दी, हिँदी-हिन्दी, गेद्ँ-गेन्द्, चौँक्-चौङ्क्]।

हिन्दी में **अनुनासिकता का विकास** दो रूपों में हुआ है—1. मूल नासिक्य व्यंजन से, यथा—चन्द्र>चाँद, दन्त>दाँत, कम्पन>काँपना, अंकन>आँकना, कंटक>काँटा, अंजन>आँजना। 2. स्वतः आगत, यथा—उष्ट्र>ऊँट, वक्र>बाँका,

श्वास > साँस, अश्रु > आँसू, भ्रू > भौं, पुच्छ > पूँछ, सर्प > साँप । यहाँ ध्यान देने की बात है कि संस्कृत शब्दों में अनुनासिकता अप्राप्त है । हिन्दी में संस्कृत से यथावत् आगत शब्दों में अनुनासिकता का अभाव होने के कारण उन के उच्चारण में नासिक्य व्यंजन या अनुस्वार रहता है, यथा—अन्तर, आन्तरिक, दम्पति, दाम्पत्य, पण्डित, पाण्डित्य, अंश, आंशिक, संसार, सांसारिक, संस्कृत, सांस्कृतिक । हिन्दी में नासिक्य व्यंजन या अनुस्वारयुत संस्कृत शब्दों से व्युत्पन्न शब्दों में प्रायः अनुनासिकता प्राप्त है, यथा—कम्पन < काँपना, कँपकँपी, दन्त > दाँत, दँतुअन, सिंचन > सींचना, सिंचाई । डण्डा > दण्ड जैसे कुछ शब्दों में ऐसा नहीं है किन्तु इसी के एक रूप 'डाँड़' में अनुनासिकता है । 'मांस, सारांश, देहांत' जैसे शब्दों को हिन्दी ने यथावत् ग्रहण किया है, अत: इन में अनुस्वार, नासिक्य ध्वनि है, न कि अनुनासिकता ।

उर्दू/फ़ारसी से आगत अनेक शब्दों के अन्त में अनुनासिकता प्राप्त है, यथा—पर्दानशीं, नुक़्ताचीं, हिन्दोस्ताँ, कब्रस्ताँ, क़द्रदाँ, नादाँ, ताज़ातरीं, सियासतदाँ, जहाँ, ज़बाँ, आसमाँ, जाँ, ख़ाँ, बयाँ, ज़मीं, ज़ुबाँ, बेहतरीं । आजकल ऐसे शब्दों और इन से व्युत्पन्न शब्दों में स्वर से पूर्व की अनुनासिकता को प्रायः 'न' से स्थानापन्न किया जाने लगा है, यथा—पर्दानशीन, हिन्दुस्तान, क़द्रदान, नादान, ज़बान, जान, जहान, आसमान, बयान, ज़ुबान, ख़ान, ज़मीन, नादानी, जानी, नुक़्ताचीनी, आसमानी, ज़बानी, जवानी । इन में 'ज़बान' अधिक प्रचलित है, 'ज़ुबान, ज़बाँ, ज़ुबाँ' कम प्रचलित शब्द हैं । शाहजहाँ, जहाँगीर, ज़मींदार, ज़मींदोज़, जवाँमर्द (=धीर; जवान मर्द = युवक), फ़लाँ > फ़लाना, चूँकि, हालाँकि, चुनाँचे में अनुनासिकता का लोप नहीं हुआ है, जब कि 'मजनूँ, समाँ, दुनियाँ' में से अनुनासिकता का लोप हो रहा है ।

'इन्सान, शान, फ़ौरन, आसान, ईमान' और बहुवचन-प्रत्यय '-न' वाले शब्दों में अनुनासिकता नहीं आती । हिन्दी ज़मीं, कलाकार की ज़मीं, ज़मींदोज़, ज़मींदार में ज़मीं < ज़मीन, ज़मीं = background के अर्थ में पारिभाषिक रूप में प्रयुक्त है ।

हिन्दी में अनुनासिकता की तीन स्थितियाँ हैं—1. **स्वनिक स्थिति**—पास के नासिक्य व्यंजन के प्रभाव से केवल उच्चारण में प्राप्त । लेखन में स्वनिक अनुनासिकता का अंकन परम्परागत वर्तनी के कारण नहीं किया जाता, जब कि दीर्घ स्वरों के साथ यह अनुनासिकता बहुत ही स्पष्ट है, यथा—राम, हनुमान, प्राण, नाम [राँम्, हँनुमाँन्, प्राँण्, नाँम्] । नासिक्य ध्वनि-सहजात अनुनासिकता दीर्घ स्वरों के साथ पर्याप्त मुखर होती है । स्वनिक अनुनासिकता इन शब्दों में स्पष्ट सुनाई पड़ती है—मन, नाना, नानी, नाम, दिन, नम, कठिन, पान, पानी, मीनार, ऊन, गुनगुना, क़ानून, मेमना, सेम, हैम, ऐनक, मोम, नोक, मौन, कौन आदि ।

2. **स्वनिमिक स्थिति**—अर्थ-भेदकता के कारण स्वनिम/स्वनिमिक है, यथा—सवार-सँवार, सास-साँस, आधी-आँधी, बिधना-बिंधना, पूछ-पूँछ, उगली-उँगली, गोद-गोंद, मे-में, चौक-चौंक आदि ।

3. **व्याकरणिक स्थिति** –अनुनासिकता बहुवचन का चिह्‌न है, यथा—चिड़िया-चिड़ियाँ, बस-बसें, दोस्त को-दोस्तों को, है-हैं, **थी-थीं**, सोती-सोतीं, आई-आईं, रहे-रहें।

विशेषत: पूर्वी हिन्दी के कुछ लोग क्षेत्रीय प्रभाव के कारण **अनावश्यक अनुनासिकता** का उच्चारण करते हैं, यथा—हाँथ (हाथ), बढ़ियाँ (बढ़िया), चाहिएँ (चाहिए) आदि।

हिन्दी के संयुक्त स्वर अइ, अउ, ह्‌रस्व स्वर एँ, आँ के साथ अनुनासिकता नहीं मिलती।

हिन्दी की अक्षर-व्यवस्था—साँस के एक झटके में एक साथ उच्चरित एक या एकाधिक ध्वनियाँ एक **अक्षर** (syllable) का निर्माण करती हैं। हिन्दी भाषा के एक अक्षर में एक स्वर स्वनिम या एक स्वर के साथ (पूर्व, पश्च या पूर्व तथा पश्च स्थिति में) एक या एकाधिक व्यंजन स्वनिमों का उच्चारण सम्भव है।

स्वर ध्वनि से अन्त होनेवाले अक्षर **मुक्ताक्षर** (open syllable) कहलाते हैं, यथा—आ, क्या, सौ आदि। व्यंजन ध्वनि से अन्त होनेवाले अक्षर **बद्धाक्षर** (closed syllable) कहलाते हैं, यथा—तुम, ईद, स्वास्थ्य आदि। अक्षर-रचना में स्वर को **केन्द्रक/शीर्ष/शिखर** (सर्वाधिक मुखर अंश) का स्थान मिलता है और व्यंजन को **गह्‌वर** (अत्यल्प मुखर अंश) का, क्योंकि अक्षर-उच्चारण के समय स्वर में आरोह होता है और व्यंजन में अवरोह। 'अक्षर' स्वनिम से उच्चतर और रूप/शब्द से लघुतर इकाई है।

देवनागरी के वर्ण, हर्फ़ या letter को परम्परा से अक्षर कहा जाता रहा है। देवनागरी के सभी वर्ण वास्तव में एक-एक अक्षर का निर्माण करते हैं, यथा—आ, ई, ए, क (क्+अ), म (म्+अ), ल (ल्+अ)। भाषा में केवल एक वर्ण ही अक्षर का निर्माण नहीं करता वरन् कई ध्वनियों से भी एक अक्षर बनता है, अत: वर्ण तथा अक्षर को दो अलग-अलग पारिभाषिक शब्द मानना ही उचित है।

हिन्दी में जितने स्वर होते हैं, उतने ही अक्षर होते हैं, यथा— 'उठाइएगा' में 5 अक्षर हैं। प्रत्येक अक्षर में कम से कम एक शीर्षक (केन्द्रक) होता है और अधिक से अधिक एक शीर्षक के साथ दो गह्‌वर—एक पूर्व गह्‌वर और दूसरा पर गह्‌वर। इस प्रकार केन्द्रक, गह्‌वर के आधार पर चार प्रकार की अक्षर-रचना सम्भव है—1. केवल केन्द्रक (यथा— आ, ओ !, ए ! ऐ !) 2. पूर्व गह्‌वर+केन्द्रक (कि) / इ क् (यथा—कि, तो, सौ, जौ, लौ, दी) 3. केन्द्रक+पर-गह्‌वर (एक) \ ए क् (यथा—एक, और, ईख, ऊँट, ईंट) 4. पूर्व गह्‌वर+केन्द्रक+पर-गह्‌वर

(तुम) उ / \ त् म् (यथा—तुम, घर, लाल, प्यार)। हिन्दी-अक्षर के पूर्व गह्वर में एक, दो, तीन व्यंजन आ सकते हैं, यथा—काम, डाक; क्या, श्वेत; स्त्री, स्त्रैण। केन्द्रक में एक मूल स्वर या संयुक्त स्वर आ सकता है, यथा—सिर, तेज़; वैयाकरण, दैया। पर-गह्वर में एक, दो, तीन, चार व्यंजन आ सकते हैं, यथा—आप, काम; शब्द, अर्थ, व्यर्थ; स्वास्थ्य, कृच्छ; वर्त्स्य। इस प्रकार हिन्दी-अक्षर रचना का सूत्र है—± (व्यं व्यं व्यं)+स±(व्यं व्यं व्यं व्यं) (व्यं=व्यंजन; स=स्वर)।

हिन्दी शब्दों में कई प्रकार के **एकाक्षरी साँचे** प्राप्त हैं, यथा—1. स (आ, ओ!, ए!, ऐं!) 2. स व्यं (अब, एक, ओर) 3. स व्यं व्यं (अस्त, इत्र, आप्त) 4. स व्यं व्यं व्यं (अस्त्र, इन्द्र, आर्द्र) 5. व्यं स (न, ब, जी, रो) 6. व्यं स व्यं (कम, काम, शोर) 7. व्यं स व्यं व्यं (पुत्र, शान्त, सन्त) 8. व्यं स्व व्यं व्यं व्यं (सूक्ष्म, शास्त्र, राष्ट्र) 9. व्यं स व्यं व्यं व्यं व्यं (वर्त्स्य) 10. व्यं व्यं स (क्या, श्री, क्यों) 11. व्यं व्यं स व्यं (द्वेष, क्रम, प्रिय) 12. व्यं व्यं स व्यं व्यं (व्यस्त, क्षम्य, स्वस्थ, स्तोत्र) 13. व्यं व्यं स व्यं व्यं व्यं (स्वास्थ्य) 14. व्यं व्यं व्यं स (स्त्री) 15. व्यं व्यं व्यं स व्यं (स्त्रैण) 16. व्यं व्यं व्यं स व्यं व्यं (स्पृष्ट, स्त्रीत्व, स्पृश्य) **17.** व्यं व्यं व्यं स व्यं व्यं व्यं (स्पृष्ट्य)।

हिन्दी में ह्रस्वता, दीर्घता की दृष्टि से चार प्रकार के अक्षर मिलते हैं—1. **ह्रस्व अक्षर** ह्रस्व स्वर से युक्त (±व्यं+स) होते हैं, यथा—न, कि, व, अ, इ, उ, रि/ऋ 2. **मध्यम अक्षर** दो प्रकार के होते हैं—(क) ±व्यं+स+व्यं, यथा—इस, किन, प्रिय (ख) ±व्यं+स, यथा—ही, ऐ, औ, क्या 3. **दीर्घ अक्षर** दो प्रकार के होते हैं—(क) ±व्यं+स (ह्रस्व)- +व्यं (संयुक्त/दीर्घ), यथा—अर्थ, मुक्त, व्यस्त (ख) ±व्यं+स (दीर्घ)+व्यं, यथा—आब, राज, त्याग 4. **अति दीर्घ अक्षर**—±व्यं+स (दीर्घ)+व्यं (संयुक्त/दीर्घ) यथा—आप्त, कार्य, व्याप्त, त्याज्य, स्वास्थ्य।

हिन्दी शब्दों के अक्षर-साँचे—हिन्दी में सामान्यत: पाँच अक्षरों तक के शब्द प्राप्त हैं। इस प्रकार इन विभिन्न प्रकार के अक्षर-साँचों की संख्या लगभग 300 हो जाती है। एकाधिक अक्षर के शब्द में प्रत्येक अक्षर के बाद एक क्षणिक विराम/मौन/संगम होता है जो दो शब्दों के मध्य के मौन से छोटा होता है। हिन्दी में अनुनासिकता का अक्षर-साँचे की संख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, यथा—साँस-सास; आँधी-आधी युग्मों में क्रमश: 1-1, 2-2 अक्षर हैं। विभिन्न एकाधिक अक्षरों के शब्दों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

द्व्यक्षरी शब्द—आओ, अभी, अपार, आनन्द, उन्हें, उन्हों, जाओ, बाईस, नाला, बादल, तुम्हें, समस्त, नगेन्द्र; अच्छा, अन्दाज़, आश्चर्य, फ़ासला, मन्दिर,

सत्संग, मार्क्सवाद, प्याऊ, ग्वाला, प्राचीन, प्रसिद्ध, स्वतन्त्र, व्यक्ति, प्रस्तर, व्यक्तित्व, प्रत्यक्ष, इस्त्री, लमहा, उद्योग, अभ्यस्त, मन्त्री, राष्ट्रीय, मन्त्रित्व, मत्स्येन्द्र, ज्योत्स्ना, प्रार्थनीय, स्पृहा, स्त्रैणता, स्पृहणीय, चन्द्रमा, संस्कृत ।

त्र्यक्षरी शब्द—आइए, आईना, आइन्दा, पढ़ाई, आज़ादी, तुम्हारा, अनुवाद, अतिरिक्त, इकट्ठा, आविष्कार, अनुग्रह, अभिव्यक्त, उपजाऊ, अन्यायी, अंगारा, उत्साहित, आक्रान्ता, इन्द्रियाँ, अध्यापक, अत्युक्ति, आत्यंतिक, खाइए, साइकल, बुनाई, परिधि, परिवार, परिहार्य, निकलना, सपत्नीक, सामग्री, परिश्रम, सुसंस्कृत, दंगाई, तरकारी, सुनहरा, सन्तुलित, धर्माचार्य, सुन्दरता, कर्मचारी, विद्यार्थी, संगमरमर, संस्कृति, प्रतिभा, प्रायोगिक, प्रशंसा, प्रतिज्ञा, व्यवस्थित, व्यावहारिक, प्रक्षेपास्त्र, ब्रह्मास्त्रों प्रत्युपकार, ब्रह्मचारी ।

चतुरक्षरी शब्द—आइएगा, अगुवाई, अभिमानी, अभिवादन, अपरिहार्य, अनासक्ति, अभिनन्दन, अनियन्त्रित, अनुपजाऊ, असन्तुलित, अतिक्रमण, अभिव्यक्ति, अव्यवस्थित, अर्धांगिनी, अन्यायियों, अध्यापिका, अन्त्यानुप्रास, गाइएगा, साइकलें, बजाइए, कठिनाई, चढ़ाइयाँ, पहाड़ियाँ, पारिवारिक, परिवर्तित, महात्माओं, सहिष्णुता, पारिश्रमिक, परीक्षार्थी, तपस्विनी, सुसंस्कृतों, कहलाइए, दंगाइयों, धर्माचारी, सुव्यवस्थित, पगडंडियों, कर्मचारियों, संग्रहालय, संगमरमरों, संस्कृतियों, प्रतिमाओं, व्यभिचारी, प्रयोगात्मक, प्रयोक्ताओं, प्रायश्चितों, व्यावहारिकता, प्रक्षेपास्त्रों, प्रत्युपकारी, प्राध्यापिका, प्रत्यक्षदर्शी ।

पंचाक्षरी शब्द—अगुवाइयों, अभिसारिका, अनुनासिकता, अपरिवर्तित, अभिनन्दनों, अभिनिष्क्रमण, अभिनन्दनीयता, अधर्माचारी, अभिव्यक्तियाँ, अनिर्वचनीयता, अन्धानुकरण, अर्धांगिनियों, अव्यावहारिकता, अध्यापिकाओं, अन्त्यानुप्रासों, अप्रामाणिकता, बजाइएगा, कठिनाइयों, दियासलाई, कारीगरियों, परीक्षार्थियों, तपस्विनियों, विकेन्द्रीकरण, कहलाइएगा, हिन्दुस्तानियों, संग्रहालयों, व्यभिचारियों, प्राध्यापिकाओं ।

छह अक्षरों के कुछ शब्द हैं—दियासलाइयों, अप्रामाणिकताओं, शुक्लाभिसारिका, प्रतिक्रियावादी । सात अक्षर का शब्द है—चन्द्रिकाभिसारिका । आठ अक्षर का शब्द है—चन्द्रिकाभिसारिकाओं ।

अक्षरों की संख्या में कमी करने की प्रवृत्ति के कारण हिन्दी में अक्षरान्त 'इ, उ' कभी-कभी इतने क्षीण हो जाते हैं कि उन की अक्षरता लुप्तप्राय हो जाती है, यथा—अनिवार्य, रीति, प्रीति, रात्रि [अनवार्, रीत्, प्रीत्, रात्र्/रात्]। बद्धाक्षरान्त 'अय, अव, अह' भी इस प्रवृत्ति के कारण मुक्ताक्षरी बन जाते हैं, यथा—जय (जै), माधव (माधौ) । 'जय, भय, लय, मलय, तय, विजय, प्रणय, विषय, आशय, विलय, विनय, प्रलय, आलय, भयभीत, जयमाल, तयशुदा' जैसे शब्दों में भी यह प्रवृत्ति

देखी जाती है, इसी प्रकार 'माधव, राघव, यादव, रव, भव, नव, शव, लव, मानव, दानव, नीरव' जैसे शब्द भी इस प्रवृत्ति से कुछ अंशों में प्रभावित हो रहे हैं, किन्तु 'मानवता, नीरवता, गौरवशील, गौरव' जैसे कुछ शब्द अपनी स्वनिक विशेषता के कारण इस प्रवृत्ति के शिकार होने से बचे हुए हैं। 'रौ, पौ, लौ, नौ' और 'रव, पव, लव, नव' से विकसित ('रौ, पौ, लौ, नौ' वत्) शब्दों के उच्चारण में अभी भी हलका-सा अन्तर है। भय, मय से विकसित ('भै, मै' वत्) शब्दों में भी उच्चारण की दृष्टि से सूक्ष्म अन्तर है।

अक्षर-क्षीणता की प्रवृत्ति के कारण 'अह' से अन्त होनेवाले बद्धाक्षरी शब्दों/अक्षरों में 'ह' के लोप के साथ अ>आ वत् सुनाई पड़ता है, यथा—बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सत्रह, अठारह। निश्चय ही तेरह>तेरा वत् और तू-तेरा दोनों के उच्चारण में सूक्ष्म अन्तर है। उर्दू में आज भी अरबी-फ़ारसी के कुछ पुल्लिंग शब्द जो हम्ज़ह>हम्ज़ा से लिखे जाते हैं, अक्षर-क्षीणता की प्रवृत्ति के कारण 'आ' युत हो गए हैं, यथा—दवाख़ानह>दवाख़ाना, ज़मानह>ज़माना। इसी प्रकार के कुछ अन्य शब्द हैं—आईना, अलावा, अंदाज़ा, अंदेशा, अफ़साना, इज़ाफ़ा, क़िला, कुर्ता, ख़ज़ाना, इशारा, उम्दा, ओहदा, ख़तरा, गन्दा, क़स्बा, ख़ाता, काफ़िला, किनारा, गुज़ारा, चमचा, चेहरा, चश्मा आदि; किन्तु स्त्रीलिंग के कुछ ऐसे ही शब्दों में यह परिवर्तन अप्राप्त है, यथा—गिरह, जिरह, तरह, वजह, सतह, सुबह, सुलह।

उपर्युक्त प्रवृत्ति के कारण व्यं अह→व्यं एँह साँचा भी प्राप्त है, यथा—पहला, एहसान, कहना, नहला, दहला, नहले पर दहला, गहरा, गहना, रहना, शहरी, पहचान, तहमत, तहमद, लहँगा, पहनाना, सहमा, बहका, लहराना, बहरा। इन के उच्चारण के 'ह' से पूर्व का 'अ' निम्न अग्र स्वरवत् बन जाता है। इसी प्रकार व्यं अ ह् अ व्यं साँचे के शब्दों में पहला 'अ' निम्न अग्र स्वर बन जाता है, यथा—वहन, महल, रहम, बहम, पहल, पहन, सहन, कहन, रहट, शहर; ज़हर, नहर, लहर, बहल, तहत आदि का उच्चारण। लेकिन 'ह' के बाद दीर्घ स्वर आने पर ऐसा परिवर्तन/उच्चारण नहीं होता, यथा कहा, कही, कहो, रहा, रही, रहो, महा, महीन, शहीद, लहू। 'कहकहा, कहकहे, चहचहा, चहचहाना, चहचहाहट' के उच्चारण के समय पहले आनेवाले 'ह' के लुप्तप्राय होने के साथ पूर्ववर्ती व्यंजन के अन्तर्निहित 'अ' का उच्चारण निम्न अग्र स्वर 'एँ ह' वत् हो जाता है।

संस्कृत से आगत विसर्गान्त शब्दों का उच्चारण 'ह्' वत् होने के कारण उन में 'अ ह' आक्षरिक साँचे की विशेषता मिलती है, यथा—अतः, क्रमशः, पुनः, सम्भवतः, प्रायः। इन में अक्षरान्त 'ह्' से पूर्व का 'अ' कुछ दीर्घ हो जाता है।

हिन्दी की आक्षरिक व्यवस्था का और अधिक गहराई से सूक्ष्म अध्ययन इन विशेषताओं के आधारों पर किया जा सकता है—ह्रस्व मौखिक स्वर, दीर्घ

मौखिक स्वर, ह्रस्व अनुनासिक स्वर, दीर्घ अनुनासिक स्वर, सरल व्यंजन, संयुक्त व्यंजन, दीर्घ व्यंजन, व्यंजनानुक्रम, स्वरानुक्रम, य श्रुति, व श्रुति, हान्त ।

अक्षर में शीर्ष सर्वाधिक बलाघातयुत होने के कारण सर्वाधिक मुखर रहता है । अनेकाक्षरी शब्दों में प्रत्येक अक्षर के बाद अत्यल्पकालिक विवृति/विराम/मौन/संगम अत्यावश्यक है, अन्यथा उच्चारण में अपेक्षित सहजता का अभाव रहता है । हिन्दी में अक्षर-विभाजन स्वनिमिक या सार्थक है, यथा—मधुरता—मधु-रता; मधुर-ता, मानवता—मानव-ता, मान-वता; नवलता—नवल-ता, नव-लता । अनेकाक्षरी शब्दों में किसी एक अक्षर पर सर्वाधिक बलाघात होता है, शेष पर उस से कम । शुद्ध और सहज उच्चारण की दृष्टि से अक्षर-बलाघात का ध्यान रखना/पालन करना चाहिए, यथा—'अप्रामाणिकता' में सर्वाधिक बलाघात 'णिक' अक्षर पर रखने से ही हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप उच्चारण होगा ।

अनेकाक्षरी शब्दों में अक्षर-विभाजन के मुख्य नियम ये हैं—1. शब्द में आनेवाले प्रथम स्वर से पूर्व के सभी व्यंजन उस स्वर के साथ मिल कर अक्षर-रचना करते हैं, यथा—घरेलू (घ रे लू), प्यारी (प्या री), स्त्रैणता (स्त्रैण् ता) । 2. शब्द के अन्त में आनेवाले सभी व्यंजन उन से पूर्ववर्ती स्वर के साथ मिल कर अक्षर-रचना करते हैं, यथा—अनाचार (अ ना चार्), उपवाक्य (उप् वाक्य्), अन्यत्र (अन् न्यत्र्), सुस्वास्थ्य (सु स्वास्थ्य्), उपलक्ष्य (उप् लक्ष्य्), निर्वस्त्र (निर् वस्त्र्) । 3. शब्द के मध्य में व्यंजन-अनुक्रम या संयुक्त व्यंजन के रूप में आनेवाले व्यंजनों में पहला व्यंजन अपने पूर्ववर्ती स्वर के साथ और अन्य व्यंजन अपने परवर्ती स्वर के साथ अक्षर-रचना करते हैं, यथा—गिरता (गिर् ता), आत्मिक (आत् मिक्), शिक्षार्थी (शिक् छार् थी), आर्द्रता (आर् द्र ता), कन्हैया (क न्है या), तुम्हारा (तु म्हा रा), दूल्हा (दू ल्हा) । 4. शब्द-मध्य में अल्पप्राण व्यंजन तथा य/र/ल/व के योग से बने संयुक्त व्यंजन के उच्चारण में व्यंजन-दीर्घता आ जाने के कारण आगत व्यंजन पहले स्वर के साथ और मूल व्यंजन परवर्ती स्वर के साथ अक्षर-रचना करते हैं, यथा—अन्याय (अन् न्याय्), उपन्यास (उ पन् न्यास्), विक्रमादित्य (विक् क्र मा दित्य्), सत्रान्त (सत् त्रान्त्), अम्लान (अम् म्लान्), शुक्ला (शुक् क्ला), विद्वान् (विद् द्वान्), अन्वय (अन् न्वय्) । 5. शब्द-मध्य में महाप्राण व्यंजन तथा य/र/ल/व के योग से बने संयुक्त व्यंजन के उच्चारण में महाप्राण वर्गीय अल्पप्राण व्यंजन आ जाने के कारण आगत व्यंजन पहले स्वर के साथ और महाप्राण व्यंजन परवर्ती स्वर के साथ अक्षर-रचना करते हैं, यथा—विख्यात (विक् ख्यात्), अध्यापिका (अद् ध्या पि का), अभ्यास (अब् भ्यास्), उपाध्याय (उ पाद् ध्याय्) । 6. ब्रह्मा, चिह्न, नन्हा शब्द सामान्य उच्चारण में (ब्रम्म्हाँ, चिन्न्ह, नन्न्हाँ) हैं, अतः इन का अक्षर विभाजन होगा—ब्रम् म्हा, चिन् न्ह, नन् न्हा । 7. दक्षिण भारतीयों या संस्कृत-परम्परा के लोगों द्वारा जिन एकाक्षरी व्यंजनांत हिन्दी शब्दों का अन्तर्निहित 'अ' युत उच्चारण किया जाता है, वे द्वि

अक्षरी शब्द बन जाते हैं, यथा—सभ्य (सब् भ्य), द्रव्य (द्रव् व्य), उग्र (उग् ग्र)। 8. यदि शब्द में व्याकरणिक तथा आर्थी दोनों इकाइयाँ मिलती हैं तो यह आवश्यक नहीं कि अक्षर-विभाजन दोनों की सीमा पर हो। कभी तो दोनों इकाइयाँ मिल कर एक अक्षर बनाती हैं, यथा—अ+ज=अज, अ+ज्ञ=अज्ञ, वि+ज्ञ=विज्ञ (अज्, अग्य्, विग्य्); कभी दोनों की सीमा पर ही अक्षर-विभाजन होता है, यथा—सुन्दर+ता=सुन्दरता; डाक+घर=डाकघर; सु+पुत्र=सुपुत्र; राम+राज्य=रामराज्य (सुन् दर् ता, डाक् घर्, सु पुत्र्, राँम् राज्ज्य्) और कभी मूल शब्द तथा व्युत्पन्न शब्द का अक्षर-विभाजन काफ़ी बदल जाता है, यथा—नेपाली—नेपाल्+ई (ने पा ली); दुराचार—दुर्+आ चार (दु रा चार्); ज़िलाधीश—ज़िला+अ धीश (ज़ि ला धीश्); घुड़दौड़— घोड़ा+दौड़ (घुड़् दौड़्); अत्याचार—अ ति+आ चार (अत् त्या चार्)। इस प्रकार दो भाषिक इकाइयों से नवनिर्मित शब्द का अक्षर-विभाजन हिन्दी में प्रचलित (उच्चरित) अक्षर-साँचे के अनुसार होता है। 9. हिन्दी के विभिन्न बोली-क्षेत्रों में प्रचलित उच्चारण-भिन्नता के कारण कुछ गिने-चुने शब्दों का अक्षर-विभाजन दो प्रकार का प्राप्त है, यथा—आमदनी (आम् द नी; आ मद् नी), मतलबी (मत् ल बी; म तल् बी), छिपकली (छिप् क ली; छि पक् ली)।

अ-लोप की विशेषताएँ शब्द-मध्य तथा शब्दान्त में देखी जा सकती हैं। इन्हें कुछ लोग अ-लोप की समस्या भी कहते हैं और कुछ लोग अनुच्चरित 'अ'। हिन्दी की अ-लोप सम्बन्धी विशेषताओं को उच्चारण और वर्तनी के सन्दर्भ में भली भाँति देखा जा सकता है। अ-लोप के कारण हिन्दी-शब्द उच्चारण में अक्षर-संख्या कम हो जाती है। ऐसा होने से वक्ता को साँस के कम झटके लेने पड़ते हैं। दक्षिण की भाषाओं की अक्षर-व्यवस्था के प्रभावस्वरूप 'नमकीन, डाकघर' का उच्चारण [नम-कीन, डाकघर] होने से साँस के चार-चार झटके लेने पड़ते हैं, जब कि हिन्दी में इन का उच्चारण [नम्कीन्, डाक्घर्] होने से साँस के दो-दो झटके ही लेने पड़ते हैं। इस प्रकार अक्षर-संख्या भेद से उच्चारण-गति/वाचन-गति में अन्तर आ जाता है।

भाषा की जटिल व्यवस्था, विस्तृत प्रयोग-क्षेत्र, वक्ता की भाषिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, वैयक्तिक कारणों, शब्द-प्रयोग सन्दर्भ की भिन्नता के परिणामस्वरूप निरपवाद नियम न बन पाने पर भी सामान्यतः शब्द-मध्य और शब्दान्त में **अ-लोप सम्बन्धी नियम** इस प्रकार के हैं—

1. व्यं+स्व से बने एकाक्षरी शब्दों में अ-लोप नहीं होता, यथा—न, ब, क ख ग आदि।

2. शब्द के प्रथमाक्षर में अ-लोप नहीं होता, यथा—नग, बदल, कमला, चमगीदड़ [नग्, ब दल्, कम् ला, चम् गी दड़्]।

3. अन्य एकाक्षरी, द्व्यक्षरी त्र्यक्षरी आदि शब्दों के अंतिम 'अ' का लोप होता है, यथा—आय्, बात, बाल, पर, साफ़, घास, भूख, ढूँढ़, राय, नाव, पंख, अर्थ, व्यक्त, ख़त्म, ब्रह्म, वाक्य, पर्व [आय्, बात्, बाल्, पर्, साफ़्, घास्, भूख्, ढूँढ़्, राय्, नाव्, पंख्, अर्थ्, व्यक्त्, ख़त्म्, ब्रह्म्, वाक्य्, पर्व्]; कमल, कमाल, शंकर, प्रसाद, स्थापत्य, वार्धक्य [क मल्, क माल्, शं कर्, प्र साद्, स्था पत्त्य्, वार् धक्क्य्]; पानीपत, विन्ध्याचल, विशेषांक, ज़िलाधीश, सभागृह [पा नी पत्, विन् ध्या चल्, वि शे षांक्, ज़ि ला धीश्, स भा ग्रिह]।

पार्श्विक, कम्पनजात, संघर्षी, महाप्राण, उत्क्षिप्त, अर्धस्वर तथा संयुक्त व्यंजनान्त शब्दों के उच्चारण में 'अ' ध्वनि नहीं, वरन् अ-जैसी अन्त्य ध्वनि सुनाई पड़ती है जो उच्चारण का अन्त्यांश होता है, न कि 'अ'। 'य, व' से युक्त संयुक्त व्यंजनान्त शब्दों में 'य, व' का अर्ध स्वरत्व अधिक मुखर रूप में सुनाई पड़ता है, जिसे अ' नहीं कहा जा सकता; यथा—शाक्य, धैर्य, मर्त्य, सर्व, द्रव्य, तत्त्व। कायमोग्राफ़ और स्पेक्टोग्राफ़ पर किए गए प्रयोगों से भी पुष्टि होती है कि हिन्दी भाषा के शब्दों के अन्त में 'अ' का उच्चारण नहीं होता।

4. शब्द की पूरी या आंशिक संरचना में स्व+व्यं+अ+व्यं+दीर्घ स्व होने पर 'अ' का लोप होता है, अर्थात् शब्दोच्चारण में स्व+व्यं--व्यं+दीर्घ स्व संरचना होती है, यथा—अचला, कमरा, बादलों, निर्भीकता, क्षमता, कफ़नी, वापसी, बदली, फ़ारसी, चमकीला, नकली, सरला, आपसी, सिमटा, समझीं [अच् ला, कम् रा, बाद् लों, निर् भीक् ता, क्षम् ता, कफ़् नी, वाप् सी, बद् ली, फ़ार् सी, चम् की ला, नक् ली, सर् ला, आप् सी, सिम् टा, सम् सीं]।

5. शब्द की पूरी या आंशिक संरचना में स्व+संयुक्त/दीर्घ व्यं+अ+व्यं+दीर्घ स्व होने पर 'अ' का लोप नहीं होता, यथा—पत्थरों, बिस्तरों, तस्करी, सुन्दरी, पुस्तकीय, भुलक्कड़ी [पत् थ रों, बिस् त रों, तस् क री, सुन् द री, पुस् त कीय्, भु लक् क ड़ी]।

6. दो रूपिमों से निर्मित शब्द की रूपिम-सीमा पर अ-लोप होता है, यथा—अनगढ़ा, अनकही, अनमनी, [अन् ग ढ़ा, अन् क ही, अन् म नी] बिचला, निचला [बिच् ला, निच् ला] के सादृश्य पर [अच् ला, सच् ला, विम् ला, दुब् ला,] जैसे उच्चारण मानक नहीं माने जा सकते। आदम+ - ई = आदमी; बादल + - ों = बादलों; बदल+ - ई = बदली में यद्यपि अन्तिम दीर्घ स्वर रूपिम-सीमा पर है और उस से पूर्व अ-लोप होता है, किन्तु 'अखरोट, कमरा, गमला, बँगला' आदि के 'ख, म, म, ग' में अ-लोप होता है जो रूपिम-सीमा नहीं है।

7. शब्द-मध्य के 'अ' से पूर्व और पश्चात् संयुक्त/दीर्घ व्यंजन न हो और पहले व्यंजन के पूर्व रूपिम-सीमा भी न हो, तो ऐसा शब्द-मध्यस्थ 'अ' लुप्त हो जाता है, यथा—मखमल, मतलब, अटकल, खटमल, एटलस [मख् मल्, मत् लब्, अट् कल्, खट् मल्, एट् लस्]।

8. अ युत वर्णवाले मूलतः दो अक्षरों के शब्दों के दूसरे वर्ण का; तीन अक्षरों के शब्दों के तीसरे वर्ण का; चार अक्षरों के शब्दों के दूसरे और चौथे वर्ण का 'अ' लुप्त हो जाता है, यथा—चल, चाल, चर्च [चल्, चाल्, चर्च्]; कमल, कोमल, समर्थ, आनन्द, ग्राहक, स्वभाव, प्राचार्य, स्थापत्य [क मल्, को मल्, स मर्थ्, आ नन्द्, ग्रा हक्, स्व भाव्, प्रा चार्य, स्था पत्त्य्]; मातहत, व्याकरण, प्राणदान, श्लाघनीय, परगना, समझना, चन्द्रप्रभा, ग्रामसभा, देशद्रोह, पारावार, सभागृह, विशेषांक [मात् हत्, व्याक् रण्/व्या क रण्, प्राण् दान्, श्लाघ् नीय्, पर् गना/प रग् ना, सम् झना/स मझ् ना, चन्द्र् प्र भा, ग्राम् स भा, देश् द्रोह्, पा रा वार्, स भा ग्रिह, वि शे षांक्]। 'व्याकरण, परगना, समझना' जैसे कुछ शब्दों के क्षेत्रीय भेद से दो-दो उच्चारण प्राप्त हैं।

9. तीन वर्णवाले शब्दों में तीसरा वर्ण 'अ' से इतर स्वर युत और दूसरा वर्ण 'अ' युत हो तो दूसरे वर्ण के 'अ' का लोप होता है। इसी प्रकार चार वर्णवाले शब्दों में दूसरा, चौथा वर्ण 'अ' से इतर स्वर युत होने पर तीसरे 'अ' युत वर्ण के 'अ' का लोप होता है, यथा—विशेषता, सम्भावना, कलावती, गीतांजली, प्रस्तावना [वि शेश् ता, सम् भाव् ना, क लाव् ती/क ला व ती, गी तांज् ली/गी ताञ्_ ज ली, प्रस् ताव् ना/प्रस् ता वना]। क्षेत्रीय भेद से कुछ शब्दों के दो-दो उच्चारण प्राप्त हैं।

'लड़का, गदहा, सड़ना' जैसे शब्दों के उच्चारण में (स्वनिक स्तर पर) 'ड़, द, ड़' अ-रहित हैं किन्तु स्वनिमिक स्तर पर वे अ-युत हैं, यथा—लड़कपन, गदहपन, सड़न। इसी प्रकार स्वनिक स्तर पर उच्चारण में 'अ' की सत्ता न होने पर भी स्वनिमिक स्तर पर 'अ' की सत्ता स्वीकार कर लेने से भाषा-विश्लेषण में सरलता आ जाती है, यथा—नीर+ज = नीरज, लेख+न = लेखन, पाठ+क = पाठक, जल+ज = जलज, पंक+ज = पंकज, अम्बु+ज = अम्बुज, परम+अर्थ = परमार्थ, राम+अवतार = रामावतार, नर+इन्द्र = नरेन्द्र, चन्द्र+उदय = चन्द्रोदय, सप्त+ऋषि = सप्तर्षि, सम+कालीन = समकालीन, सम+कोण = समकोण, सम+तल = समतल, सम+तुल्य = समतुल्य, सम+रूप = समरूप, मन+न = मनन, स्वेद+ज = स्वेदज, अंड+ज = अंडज, अम्बु+ज = अम्बुज, एक+ल = एकल, श्याम+ल = श्यामल, नील+म = नीलम।

इतिहास+-इक = ऐतिहासिक, भूगोल+-इक = भौगोलिक, वेद+-इक =

वैदिक, महान् + -ता = महानता जैसे शब्दों की स्थिति पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

हिन्दी शब्दों के अक्षर-विभाजन का सम्बन्ध बहुत-कुछ -अ' लोप की विशेषताओं से जुड़ा हुआ है और हिन्दी में नव-निर्मित शब्दों के अक्षर-विभाजन पर निर्मायक घटकों के अक्षर-विभाजन के नियम सदैव यथावत् लागू नहीं होते वरन् हिन्दी में प्रचलित 'अ' लोप के आधार पर अक्षर-विभाजन होता है। हिन्दी क्षेत्र में संस्कृत शब्द 'धर्म, कर्म, भस्म' आदि को कुछ उर्दू भाषी 'धरम, करम, भसम' बोलते हैं और कुछ हिन्दी भाषी उर्दू शब्द 'बर्फ़, फ़र्क़, क़द्र' को 'बरफ़, फ़रक, क़दर' बोलते हैं। अँगरेज़ी फ़ॉर्म/फ़ार्म को सामान्य लोग फ़ारम/फारम बोलते हैं।

5

व्यंजन

हिन्दी व्यंजन-प्रकार—हिन्दी में उच्चरित व्यंजनों को संरचन की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है—1. सरल व्यंजन, 2. संयुक्त व्यंजन, 3. दीर्घ व्यंजन।

1. सरल व्यंजन—इन्हें सामान्य या एकाकी या एकल व्यंजन भी कहा जाता है। एक या अकेले व्यंजन के उच्चारण में किसी एक स्वर का सहारा लेना पड़ता है, यथा—क् ख् ग् आदि का उच्चारण (क ख ग)—क्+अ, ख्+अ, ग्+अ या 'का खा गा' या कै खै गै' किया जाता है। इन तीनों उच्चारणों में पहला उच्चारण ही मानक है। आगरा-मथुरा-अलीगढ़-इलाहाबाद-बनारस आदि क्षेत्रों में छोटे बच्चे 'अ' स्वर के स्थान पर 'आ' स्वर की सहायता से एकाकी व्यंजनों का उच्चारण करते हैं। अजमेर-मेरठ-बुलन्दशहर-बिजनौर आदि क्षेत्रों में अ' के स्थान पर 'ऐ' स्वर की सहायता से एकाकी व्यंजनों का उच्चारण करते हैं।

बद्धाक्षर में इनका उच्चारण बिना किसी स्वर के किया जाता है यथा—'घर, कमल' में 'र ल' का उच्चारण र्, ल्' है।

2. संयुक्त व्यंजन—एक अक्षर में स्वर से पूर्व या बाद में एक से अधिक एक साथ उच्चरित व्यंजनों को संयुक्त व्यंजन या व्यंजन-गुच्छ कहते हैं। इन के उच्चारण के समय अक्षर-सीमा नहीं होती और स्वर का सहारा अनिवार्य नहीं है, यथा—प्र, क्ल, क्व क्ष्य। इन में प्+र्, क्+ल् क्+व्, क्ष्+य् है तथा प्रत्येक संयुक्त व्यंजन को अकेले उच्चरित होने के लिए अन्त में अर्ध स्वर की आवश्यकता पड़ती है किन्तु अस्ल, स्वास्थ्य, अम्ल, पक्व' में 'स्ल, स्थ्य, म्ल, क्व' के लिए किसी पूर्ण स्वर का सहारा नहीं लिया जाता। हिन्दी में कई संयुक्त व्यंजन प्राप्त हैं। स्वर से पूर्व आनेवाले संयुक्त व्यंजन **'आदि व्यंजन गुच्छ'** तथा स्वर के पश्चात् आनेवाले संयुक्त व्यंजन **'अन्त्य व्यंजन गुच्छ'** कहलाते हैं।

3 **दीर्घ व्यंजन**—किसी सामान्य व्यंजन के दीर्घ रूप के उच्चारण में समय की मात्रा सामान्य व्यंजन की अपेक्षा अधिक लगती है, यथा—गद्दा, बच्चा, पत्ता, पिल्ला, अम्मा, पक्का। यहाँ 'द्द, च्च, त्त, ल्ल, म्म, क्क' क्रमशः 'द्, च्, त्, ल्,

म्, क्' एकाकी व्यंजनों के दीर्घ रूप हैं। व्यंजन-दीर्घता से शब्दों में अर्थ-भेद भी हो जाता है, यथा—गदा—गद्दा, बचा—बच्चा, पता—पत्ता, पिला—पिल्ला, अमा—अम्मा, पका—पक्का। अत: हिन्दी में व्यंजन-दीर्घता स्वनिमिक है।

लेखन-व्यवस्था के प्रभाव के कारण कुछ लोग दीर्घ व्यंजन को **द्वित्व व्यंजन** कहते हैं। लेखन में यह द्वित्व रूप स्पष्ट दिखाई देता है जिस में पहला व्यंजन अर्ध व्यंजन वर्ण और दूसरा व्यंजन पूर्ण व्यंजन वर्ण है। उच्चरित भाषा में द्वित्व शब्द का प्रयोग भ्रम पैदा करता है क्योंकि दीर्घ व्यंजन सरल व्यंजन के उच्चारण समय से दुगुना समय नहीं लेता। वास्तविकता यह है कि दीर्घ व्यंजन के उच्चारण के समय हवा को मुख-विवर से निकलने से पूर्व कुछ अधिक देर तक रोका जाता है न कि व्यंजन-उच्चारण की तीनों क्रियाओं को दो-दो बार किया जाता है। (सामान्यत: एकाकी व्यंजन के उच्चारण के समय ये क्रियाएँ की जाती हैं—1. दो अवयवों का पास-पास आना या परस्पर मिलना या स्पर्शन 2. निकलनेवाली हवा का कुछ देर/क्षण रुकना या अवरोधन 3. दोनों अवयवों का दूर हटना या उन्मोचन और हवा का बाहर निकलना या स्फोटन) 'अमा-अम्मा, सता-सत्ता, बची-बच्ची, बली-बल्ली' के उच्चारण के समय पता चल सकता है कि दीर्घ व्यंजनों से उच्चारण में पहली और तीसरी क्रिया सामान्य व्यंजन की तरह ही होती हैं, किन्तु दूसरी क्रिया कुछ अधिक देर लेती है)। हिन्दी में कई दीर्घ व्यंजन प्राप्त हैं।

एकाकी व्यंजन-विवरण—उच्चारण की दृष्टि से इन का शुद्ध रूप समझने के लिए कुछ पारिभाषिक शब्दों को समझ लेना उपयोगी रहेगा। मोटे तौर पर **व्यंजन ध्वनियों के वर्गीकरण के आधार** हैं—1. उच्चारण-स्थान 2. उच्चारण-प्रयत्न 3. स्वरतन्त्री-अवस्था 4. वायु-प्रवाह 5. अलिजिह्वा-स्थिति 6. उच्चारण-करण स्थिति 7. उच्चारण-समय।

(1) **उच्चारण-स्थान**—मुखेन्द्रिय के वे विभिन्न स्थान जहाँ से व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है, उच्चारण-स्थान कहलाते हैं। उच्चारण-स्थान के आधार पर हिन्दी-व्यंजनों के 9 भेद हैं—

1. **ओष्ठ्य/द्व्योष्ठ्य**—दोनों ओठों की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—प् फ् ब् भ् म् म्ह् व्।

2. **दन्त्योष्ठ्य**—ऊपर के दाँत और नीचे के ओठ की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—फ़् व़्।

3. **दन्त्यमूल**—ऊपर के दाँतों की जड़ और जीभ की नोक से उच्चरित व्यंजन, यथा—त् थ् द् ध्। संस्कृत-व्याकरण परम्परा के आधार पर इन्हें **दन्त्य** कहा जाता है। सम्भव है संस्कृत त थ द ध न का उच्चारण दन्त्य (दाँतों के मध्य या अग्रांश को छूने से उच्चरित) रहा हो, किन्तु हिन्दी में ये दन्तमूल से उच्चरित हैं।

न दन्त्यमूल/दन्त हैं जो हिन्दी-इतर कुछ भाषाओं में उच्चरित है। इन ध्वनियों को कुछ लोग करण के आधार पर **जिह्वाग्रीय** भी कहते हैं।

4. **वर्त्स्य**—ऊपर के मसूढ़े और जीभ की नोक या फलक की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—न् न्ह्, ऱ् ऱ्ह्, ल् ल्ह्, स् ज़्। कुछ लोग करण के आधार पर त् द् थ् ध् स् ज़् न् को **जिह्वाफलकीय** कहते हैं और ल् ऱ् को **जिह्वान्तीय**।

5. **अग्र तालव्य**—कठोर तालु के अग्र भाग और जिह्वा-फलक की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—ट् ठ् ड् ढ् (ण्) ड़् ढ़् (ष्)। संस्कृत-व्याकरण परम्परा के आधार पर इन्हें **मूर्धन्य** कहते हैं। हिन्दी में इन का उच्चारण मूर्धा से नहीं होता। कुछ लोग इन्हें **पूर्वतालव्य** भी कहते हैं। ड़् ढ़् का उच्चारण कुछ मूर्धा की ओर से होता है।

6. **पश्च तालव्य**—कठोर तालु के पश्च भाग और जिह्वा मध्य की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—च् छ् ज् झ् (ञ्) श् य्। संस्कृत-व्याकरण परम्परा के आधार पर इन्हें **तालव्य** कहा जाता है। हिन्दी में च वर्ग का उच्चारण वर्त्स की ओर सरक आने के कारण ञ् का उच्चारण न् जैसा हो गया है।

7. **कोमल तालव्य**—कोमल तालु और जिह्वा पश्च की सहायता से उच्चरिप व्यंजन, यथा—क् ख् ग् घ् ङ्। संस्कृत व्याकरण परम्परा के आधार पर इन्हें **कंठ्य** कहा जाता है।

8. **अलिजिह्वीय**—अलिजिह्वा/कौआ और जिह्वामूल की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—क़् ख़् ग़्। कुछ लोग इन्हें **जिह्वामूलीय** भी कहते हैं। कुछ लोग ख़् ग़् का उच्चारण कोमल तालु से और कुछ अलिजिह्वा से करते हैं।

9. **स्वरतन्त्रमुखी**—दोनों स्वर तन्त्रियों के मुख 'काकल' से उच्चरित व्यंजन, यथा—ह्। इसे **काकल्य** भी कहा जाता है। कुछ लोग इसे **ग्रसन्य** कहते हैं। संस्कृत-व्याकरण परम्परा में इसे कंठ्य कहा जाता रहा है।

(2) **उच्चारण-प्रयत्न**—व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण के समय फेफड़ों से आनेवाली हवा को विकृत करने में उच्चारण-करण जो प्रयत्न करते हैं, उन्हें उच्चारण-प्रयत्न कहा जाता है। संस्कृत-व्याकरण परम्परा के अनुसार प्रयत्नों को दो वर्गों में विभक्त कर पुनः उन के उपभेद किए जाते हैं, यथा—**आभ्यन्तर प्रयत्न**। इन्हें ध्वनि-उच्चारण से पूर्व के प्रयत्न कहा जाता है, यथा—विवृत, स्पृष्ट, ईषत् विवृत, ईषत् स्पृष्ट 2. **बाह्य प्रयत्न**। इन्हें ध्वनि-उच्चारण के समय का/अन्तिम क्षण के प्रयत्न कहा जाता है, यथा—घोष, अघोष। आधुनिक दृष्टि से ध्वनि-उच्चारण के लिए किए जानेवाले सभी प्रयत्न 'उच्चारण-प्रयत्न' हैं। उच्चारण-प्रयत्न के आधार पर हिन्दी व्यंजनों के 8 वर्ग हैं—

1. **स्पर्श**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ या नीचे का ओठ किसी उच्चारण-स्थान को छू कर निकलती हुई हवा में बाधा डालते ही हट जाते हैं, **यथा**—

क् ख् ग् घ् क़् ट् ठ् ड् ढ् त् थ् द् ध् प् फ् ब् भ् । वायु निकलते समय स्फोट होने के कारण इन्हें **स्फोट** ध्वनियाँ भी कहते हैं । स्फुटित ध्वनियों को **सरव** (अघोष, सघोष, स्पर्श-संघर्षी) भी कहा जाता है ।

2. **स्पर्श-संघर्षी**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जिह्वा-मध्य कठोर तालु के पश्च भाग को छूते हुए निकलती हुई हवा में बाधा डालता है और हलकी-सी रगड़ के साथ हटता है. यथा—च् छ् ज् झ् । संस्कृत-व्याकरण परम्परा के आधार पर इन्हें स्पर्श कहा जाता रहा है किन्तु हिन्दी में इन के उच्चारण के समय स्पर्श के साथ-साथ हलका-सा संघर्ष/घर्षण भी होने के कारण इन्हें स्पर्श-संघर्षी कहना अधिक उपयुक्त है । हिन्दी 'च् ज्' में घर्षण की मात्रा 'छ् झ्' की अपेक्षा कम है । 'छ् झ्' में महाप्राणता के कारण संघर्ष की मात्रा कुछ अधिक प्रतीत होती है । अँगरेज़ी 'च् ज्' में संघर्ष की मात्रा हिन्दी की अपेक्षा अधिक है ।

3. **नासिक्य**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय मुख-विवर में कहीं-न-कहीं स्पर्श होता है, हवा के निकलने में अवरोध होता है और हवा मुख-विवर से न निकल कर नासिका-विवर से बाहर निकलती है, यथा—म् म्ह् न् न्ह् (ञ्) ण्, (ङ्) । संस्कृत-व्याकरण परम्परा में इन्हें भी (म्ह् न्ह् के अतिरिक्त) स्पर्श वर्ग में रखा जाता रहा है । इन ध्वनियों के उच्चारण के समय हवा नाक से निकलती है और स्पर्श ध्वनियों के उच्चारण के समय हवा मुँह से निकलती है । प्रयत्न की दृष्टि से यह प्रमुख अन्तर इन ध्वनियों को स्पर्श ध्वनियों से भिन्न वर्ग की ध्वनियाँ सिद्ध करता है । नासिक्य ध्वनियों में दन्त्य ऩ, दन्त्योष्ठ्य म़ को भी सम्मिलित किया जाता है ।

4. **पार्श्विक**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ की नोक ऊपर के मसूढ़े को छूती है, हवा के निकलने से पूर्व हलका-सा अवरोध होता है और हवा जीभ के किसी एक पार्श्व या दोनों पार्श्वों से बाहर निकलती है, यथा—ल्, ल्ह् ।

5. **प्रकम्पी**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ की नोक ऊपर के मसूढ़े को छूने के साथ ही निकलती हुई हवा में अवरोध उत्पन्न कर हवा के प्रभाव से एक-दो बार कम्पित होती है, यथा—र् (र्ह्) । इन ध्वनियों को **प्रकम्पित/कम्पित, लुंठित/लोड़ित** भी कहा जाता है । कुछ लोगों के उच्चारण में जीभ में कम्पन की प्रक्रिया होती है और कुछ लोगों के उच्चारण में लुंठन या लोड़न की ।

6. **उत्क्षिप्त**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ की नोक मूर्धा-पूर्व कठोर तालु से टकराती है और हवा के प्रवाह में अवरोध होता है तथा जीभ तेज़ी/झटके से नीचे गिरती है, उसी क्षण हवा बाहर निकलती है, यथा—ड़, ढ़ । हिन्दी की इन उत्क्षिप्त ध्वनियों के उच्चारण के लिए हिंन्दी-इतर भाषा भाषियों को विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है क्योंकि ड् ढ् और ड़् ढ़् का उच्चारण-स्थान लगभग समान है किन्तु उच्चारण-प्रयत्न भिन्न-भिन्न हैं ।

न दन्त्यमूल/दन्त है जो हिन्दी-इतर कुछ भाषाओं में उच्चरित है। इन ध्वनियों को कुछ लोग करण के आधार पर **जिह्वाग्रीय** भी कहते हैं।

4. **वर्त्स्य**—ऊपर के मसूढ़े और जीभ की नोक या फलक की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—न् न्ह् र् र्ह् ल् ल्ह् स् ज़्। कुछ लोग करण के आधार पर त् द् थ् ध् स् ज़् न् को **जिह्वाफलकीय** कहते हैं और ल् र् को **जिह्वान्तीय**।

5. **अग्र तालव्य**—कठोर तालु के अग्र भाग और जिह्वा-फलक की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—ट् ठ् ड् ढ् (ण्) ड़् ढ़् (ष्)। संस्कृत-व्याकरण परम्परा के आधार पर इन्हें **मूर्धन्य** कहते हैं। हिन्दी में इन का उच्चारण मूर्धा से नहीं होता। कुछ लोग इन्हें **पूर्वतालव्य** भी कहते हैं। ड़् ढ़् का उच्चारण कुछ मूर्धा की ओर से होता है।

6. **पश्च तालव्य**—कठोर तालु के पश्च भाग और जिह्वा मध्य की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—च् छ् ज् झ् (ञ्) श् य्। संस्कृत-व्याकरण परम्परा के आधार पर इन्हें **तालव्य** कहा जाता है। हिन्दी में च वर्ग का उच्चारण वर्त्स की ओर सरक आने के कारण ञ् का उच्चारण न् जैसा हो गया है।

7. **कोमल तालव्य**—कोमल तालु और जिह्वा पश्च की सहायता से उच्चरिप व्यंजन, यथा—क् ख् ग् घ् ङ्। संस्कृत व्याकरण परम्परा के आधार पर इन्हें **कंठ्य** कहा जाता है।

8. **अलिजिह्वीय**—अलिजिह्वा/कौआ और जिह्वामूल की सहायता से उच्चरित व्यंजन, यथा—क़् ख़् ग़्। कुछ लोग इन्हें **जिह्वामूलीय** भी कहते हैं। कुछ लोग ख़् ग़् का उच्चारण कोमल तालु से और कुछ अलिजिह्वा से करते हैं।

9. **स्वरतन्त्रमुखी**—दोनों स्वर तन्त्रियों के मुख 'काकल' से उच्चरित व्यंजन, यथा—ह्। इसे **काकल्य** भी कहा जाता है। कुछ लोग इसे **ग्रसन्य** कहते हैं। संस्कृत-व्याकरण परम्परा में इसे कंठ्य कहा जाता रहा है।

(2) **उच्चारण-प्रयत्न**—व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण के समय फेफड़ों से आनेवाली हवा को विकृत करने में उच्चारण-करण जो प्रयत्न करते हैं, उन्हें उच्चारण-प्रयत्न कहा जाता है। संस्कृत-व्याकरण परम्परा के अनुसार प्रयत्नों को दो वर्गों में विभक्त कर पुनः उन के उपभेद किए जाते हैं, यथा—**आभ्यन्तर प्रयत्न**। इन्हें ध्वनि-उच्चारण से पूर्व के प्रयत्न कहा जाता है, यथा—विवृत, स्पृष्ट, ईषत् विवृत, ईषत् स्पृष्ट 2. **बाह्य प्रयत्न**। इन्हें ध्वनि-उच्चारण के समय का/अन्तिम क्षण के प्रयत्न कहा जाता है, यथा—घोष, अघोष। आधुनिक दृष्टि से ध्वनि-उच्चारण के लिए किए जानेवाले सभी प्रयत्न 'उच्चारण-प्रयत्न' हैं। उच्चारण-प्रयत्न के आधार पर हिन्दी व्यंजनों के 8 वर्ग हैं—

1. **स्पर्श**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ या नीचे का ओठ किसी उच्चारण-स्थान को छू कर निकलती हुई हवा में बाधा डालते ही हट जाते हैं, यथा—

क् ख् ग् घ् क़् ट् ठ् ड् ढ् त् थ् द् ध् प् फ् ब् भ् । वायु निकलते समय स्फोट होने के कारण इन्हें **स्फोट** ध्वनियाँ भी कहते हैं। स्फुटित ध्वनियों को **सरव** (अघोष, सघोष, स्पर्श-संघर्षी) भी कहा जाता है।

2. **स्पर्श-संघर्षी**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जिह्वा-मध्य कठोर तालु के पश्च भाग को छूते हुए निकलती हुई हवा में बाधा डालता है और हलकी-सी रगड़ के साथ हटता है. यथा—च् छ् ज् झ् । संस्कृत-व्याकरण परम्परा के आधार पर इन्हें स्पर्श कहा जाता रहा है किन्तु हिन्दी में इन के उच्चारण के समय स्पर्श के साथ-साथ हलका-सा संघर्ष/घर्षण भी होने के कारण इन्हें स्पर्श-संघर्षी कहना अधिक उपयुक्त है। हिन्दी 'च् ज्' में घर्षण की मात्रा 'छ् झ्' की अपेक्षा कम है। 'छ् झ्' में महाप्राणता के कारण संघर्ष की मात्रा कुछ अधिक प्रतीत होती है। अँगरेज़ी 'च् ज्' में संघर्ष की मात्रा हिन्दी की अपेक्षा अधिक है।

3. **नासिक्य**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय मुख-विवर में कहीं-न-कहीं स्पर्श होता है, हवा के निकलने में अवरोध होता है और हवा मुख-विवर से न निकल कर नासिका-विवर से बाहर निकलती है, यथा—म् म्ह् न् न्ह् (ञ्) ण्, (ङ्)। संस्कृत-व्याकरण परम्परा में इन्हें भी (म्ह् न्ह् के अतिरिक्त) स्पर्श वर्ग में रखा जाता रहा है। इन ध्वनियों के उच्चारण के समय हवा नाक से निकलती है और स्पर्श ध्वनियों के उच्चारण के समय हवा मुँह से निकलती है। प्रयत्न की दृष्टि से यह प्रमुख अन्तर इन ध्वनियों को स्पर्श ध्वनियों से भिन्न वर्ग की ध्वनियाँ सिद्ध करता है। नासिक्य ध्वनियों में दन्त्य न, दन्त्योष्ठ्य म़ को भी सम्मिलित किया जाता है।

4. **पार्श्विक**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ की नोक ऊपर के मसूढ़े को छूती है, हवा के निकलने से पूर्व हलका-सा अवरोध होता है और हवा जीभ के किसी एक पार्श्व या दोनों पार्श्वों से बाहर निकलती है, यथा—ल्, ल्ह् ।

5. **प्रकम्पी**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ की नोक ऊपर के मसूढ़े को छूने के साथ ही निकलती हुई हवा में अवरोध उत्पन्न कर हवा के प्रभाव से एक-दो बार कम्पित होती है, यथा—र् (र्ह्)। इन ध्वनियों को **प्रकम्पित/कम्पित, लुंठित/लोड़ित** भी कहा जाता है। कुछ लोगों के उच्चारण में जीभ में कम्पन की प्रक्रिया होती है और कुछ लोगों के उच्चारण में लुंठन या लोड़न की।

6. **उत्क्षिप्त**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ की नोक मूर्धा-पूर्व कठोर तालु से टकराती है और हवा के प्रवाह में अवरोध होता है तथा जीभ तेज़ी/झटके से नीचे गिरती है, उसी क्षण हवा बाहर निकलती है, यथा—ड़, ढ़। हिन्दी की इन उत्क्षिप्त ध्वनियों के उच्चारण के लिए हिंन्दी-इतर भाषा भाषियों को विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है क्योंकि ड् ढ् और ड़् ढ़् का उच्चारण-स्थान लगभग समान है किन्तु उच्चारण-प्रयत्न भिन्न-भिन्न हैं।

7. **संघर्षी**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ का कोई भाग, नीचे का ओठ, अलिजिह्वा किसी उच्चारण-स्थान या उच्चारण-करण के इतना निकट आ आते हैं कि अन्दर से बाहर आती हुई हवा घर्षण/रगड़ के साथ निकल पाती है, यथा—फ़् व़् स् ज़् श् (ष्), ख़् ग़् ह् । इन ध्वनियों के उच्चारण में संघर्ष/घर्षण होने से वायु में हलकी-सी उष्णता आ जाती है, इसलिए इन्हें **ऊष्म** ध्वनियाँ भी कहा जाता है। 'ह्' के उच्चारण के समय वायु स्वरयन्त्र में पर्याप्त संघर्ष/घर्षण करते हुए बाहर निकलती है, इसलिए इसे सर्वाधिक ऊष्म माना जाता है ।

8. **संघर्षहीन सप्रवाह**—इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ और तालु तथा दोनों होठ स्वरों के उच्चारण की अपेक्षा अधिक नज़दीक होते हैं, किन्तु इतने नज़दीक नहीं कि वायु संघर्ष के साथ बाहर निकले, बल्कि अन्दर से आती हुई हवा संघर्षरहित एवं सप्रवाह निकलती है, यथा—य् व् । स्वरों के उच्चारण में भी हवा बिना संघर्ष के सप्रवाह निकलती है किन्तु इन दोनों ध्वनियों के उच्चारण में वागिन्द्रिय व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण की भाँति सक्रिय रहती है और ये दोनों ध्वनियाँ स्वर-मात्रा वहन करती हैं। स्वर तथा व्यंजन की मध्यवर्ती स्थिति से उच्चरित होने के कारण इन्हें **अन्तस्थ/अर्ध स्वर/स्वरोन्मुखी व्यंजन** भी कहा जाता है ।

स्पर्श तथा स्पर्श-संघर्षी व्यंजनों को **परुष व्यंजन** भी कहते हैं। नासिक्य, लुंठित, पार्श्विक, उत्क्षिप्त और अर्ध स्वरों को **तरल व्यंजन** कहा जाता है। **संघर्षी** और अर्ध स्वरों को **प्रवाही व्यंजन** कहा जाता है । क़् ख़् ग़् ज़् फ़् **विदेशी व्यंजन** कहे जाते हैं ।

(3) **स्वरतन्त्री-अवस्था**—जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वर-तन्त्रियों में अधिक कम्पन होता है या ध्वनि में नाद अथवा हलकी-सी गूँज होती है, उन्हें **घोष/सघोष** व्यंजन कहते हैं, यथा—ग् घ् ङ् ज् झ् ञ् ड् ढ् ण् ड़् ढ़् द् ध् न् न्ह् ब् भ् म् म्ह् य् र् ल् ल्ह् व् ह् ग़् ज़् । जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वर तन्त्रियों में अत्यल्प कम्पन होता है या ध्वनि में नाद अथवा गूँज नहीं होती, उन्हें **अघोष** व्यंजन कहते हैं । इन के उच्चारण में श्वास का केवल रव (शोर) होता है, यथा—क् ख् च् छ् ट् ठ् त् थ् प् फ् श् (ष्) स् क़् ख़् फ़् ।

सभी स्वर ध्वनियाँ सघोष हैं और उन का घोषत्व (नाद) व्यंजनों की अपेक्षा अधिक होता है । कानों में उँगली डाल कर घोष/सघोष ध्वनियों का उच्चारण करने पर उन की गूँज स्पष्ट सुनाई पड़ती है । ऐसा करते समय एकाकी व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण न किया जाए क्योंकि एकाकी व्यंजन के उच्चारण के समय अन्तर्निहित 'अ' की गूँज सुनाई देगी, अतः अलोप युत व्यंजन का उच्चारण करना उचित रहेगा, यथा—आक्-आग्, सच्-सज्, रोट्-रोड्, बात्-बाद् आदि । टेलीफ़ोन पर या बहुत दूर से सुनाई देनेवाली ध्वनियों में घोष/सघोष ध्वनियाँ अघोष ध्वनियों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट सुनाई देती हैं ।

(4) **वायु-प्रवाह**—जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण के समय अधिक बल के साथ हवा निकलती है, उन्हें **महाप्राण** व्यंजन कहते हैं, यथा—ख् घ् छ् झ् ठ् ढ् थ् ध् फ् भ् ह् ढ़् न्ह् म्ह् ल्ह् ख़् फ़् । जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण के समय हवा सामान्य रूप से (/कम बल के साथ) निकलती है, उन्हें **अल्पप्राण** व्यंजन कहते हैं, यथा—क् ग ङ् च् ज् ञ् ट् ड् ण् त् द् न् प् ब् म् य् र् ल् व् व़् श् ष् स् ड़् क़् ग़् ज़् । कई व्याकरण-पुस्तकों में 'य् र् ल् व् श् ष् स् व़्' की प्राणता के बारे में कोई उल्लेख न होने से पाठकों की जिज्ञासा शान्त नहीं हो पाती क्योंकि प्रत्येक व्यंजन ध्वनि प्राणता की दृष्टि से या तो अल्पप्राण होती है या महाप्राण । सभी वर्गीय व्यंजन ध्वनियों के अल्पप्राण-महाप्राण के युग्म नहीं हैं, यथा—ञ् ण् । व्यंजन गुच्छों में महा-प्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण ध्वनियों के बाद आती हैं, यथा—मक्खी, उत्खनन, उद्धव, कच्छा । महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण ध्वनियों की भाँति प्राय: तीनों स्थितियों में आती हैं ।

'म्ह' का प्रयोग संस्कृत से विकसित कुछ शब्दों में तथा कुछ अन्य हिन्दी शब्दों में प्राप्त है, यथा—कुम्हार<कुम्भकार; कुम्हड़ा<कूष्मांड, कुम्हलाना, तुम्हारा/तुम्हारी/तुम्हारा, तुम्हें, तुम्हीं । 'ब्रह्म, ब्राह्मण' का उच्चरित 'रूप' 'म्ह' वत् हो गया है, यथा—[ब्रम्‌म्ह्, ब्राम्‌म्हण] । इसी प्रकार ब्रह्मत्व, ब्रह्मा, ब्राह्मणी आदि के उच्चारण में 'म्ह' प्राप्त है । कुम्हार-कुमार में अर्थ-भेद है ।

'न्ह' का प्रयोग कुछ ही शब्दों में प्राप्त है, यथा—कान्हा, कन्हैया, चीन्हना, अनचीन्हा, नन्हा । 'नन्हा' का उच्चारण [नन्‌न्हा] होता है, इसी प्रकार 'चिह्न' का उच्चारण 'न्ह' वत् होता है, यथा—चिह्न, चिह्नित [चिन्‌न्ह्, चिन्‌न्हित्] । काना-कान्हा में अर्थ-भेद है ।

'ल्ह' का प्रयोग हिन्दी के कुछ शब्दों में प्राप्त है । यथा—दूल्हा, दुल्हन, चूल्हा, कूल्हा, आल्हा, कुल्हड़, कुल्हाड़ी । आला-आल्हा में अर्थ-भेद है । हिन्दी में र्ह्, व्ह् उच्चारण भी प्राप्त है । ब्रज में कराहना 'कर्‌हानौ' जैसा उच्चरित होता है । विह्वल का उच्चारण विव्‌हल्/विव्‌व्हल् जैसा है । उर्दू की शैली में 'तरह' को [तर्‌हा] जैसा बोला जाता है ।

(5) **अलिजिह्वा-स्थिति**—उच्चारण के समय जब गले के ऊपरी भाग में लटकनेवाला 'कौआ' अन्दर से निकलती हुई हवा को मुख मार्ग से नहीं निकलने देता, तब हवा नाक से हो कर निकलती है । ऐसी व्यंजन ध्वनियों को 'नासिक्य' कहा जाता है (अन्य व्यंजन मौखिक कहे जाते हैं), यथा—ङ् ञ् ण् न् न्ह् म् म्ह् ।

(6) **उच्चारण करण-स्थिति**—जब जीभ, नीचे का ओठ, कौआ केवल एक ही ध्वनि के उच्चारण के लिए गतिशील होते हैं, तो वे ध्वनियाँ **सामान्य व्यंजन** कहलाती हैं । जब उच्चारण-करण एक से अधिक व्यंजन ध्वनियों के लिए एक बार में गतिशील होते हैं तो वे ध्वनियाँ **संयुक्त व्यंजन** कहलाती हैं । कुछ लोग इन्हें **व्यंजन-गुच्छ** भी कहते हैं । (इन के उदाहरण आगामी पृष्ठों पर दिए गए हैं) ।

(7) **उच्चारण-समय**—जब किसी व्यंजन के उच्चारण के समय वायु-अवरोध के क्षणों की मात्रा सामान्य की अपेक्षा अधिक होती है, तब उसे **दीर्घ** व्यंजन कहते हैं, अन्य सभी व्यंजन सामान्य व्यंजन कहलाते हैं। हिन्दी में प्राप्त दीर्घ व्यंजन ये हैं—क्क् ग्ग् च्च् ज्ज् ट्ट् ड्ड् ण्ण् त्त् द्द् न्न् प्प् ब्ब् म्म् य्य् र्र् ल्ल् व्व् श्श् स्स् क़्क़् ग़्ग़् ज़्ज़्। महाप्राण व्यंजनों का दीर्घ उच्चारण नहीं हो पाता। (दीर्घ व्यंजनों के प्रयोग-उदाहरण आगामी पृष्ठों पर दिए गए हैं)

हिन्दी के एकाकी/सामान्य/सरल व्यंजनों की संरचना—एकाकी व्यंजनों की संरचना का विवरण मुख्यत: उच्चारण-स्थान, उच्चारण-प्रयत्न, घोषत्व तथा महाप्राणत्व के आधार पर दिया जाता है। इन व्यंजनों में दीर्घता, संयुक्तता का अभाव होने से इन पक्षों का उल्लेख नहीं किया जाता। हिन्दी के सरल व्यंजनों का ध्वन्यात्मक विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

क्	कोमल तालव्य	स्पर्श	अल्पप्राण	अघोष	(काम, मकान, नाक)
ख्	,,	,,	महाप्राण	,,	(खाना, चखना, आँख)
ग्	,,	,,	अल्पप्राण	सघोष	(गाय, कगार, लोग)
घ्	,,	,,	महाप्राण	,,	(घड़ी, लघुता, अघ)
ङ्	,,	नासिक्य	अल्पप्राण	,,	(पङ्खा/वाङ्मय)
च्	पश्च तालव्य	स्पर्श-संघर्षी	अल्पप्राण	अघोष	(चना, पचाना, नाच)
छ्	,,	,,	महाप्राण	,,	(छतरी, मछली, कुछ)
ज्	,,	,,	अल्पप्राण	अघोष	(जलेबी, निजी, आज)
झ्	,,	,,	महाप्राण	,,	(झंडा, गुझिया, बाँझ)
ञ्	,,	नासिक्य	अल्पप्राण	,,	(चञ्चल/कञ्ज)
ट्	अग्रतालव्य	स्पर्श	अल्पप्राण	अघोष	(ट्रेन, अटारी, नट)
ठ्	,,	,,	महाप्राण	,,	(ठाकुर, लाठी, साठ)
ड्	,,	,,	अल्पप्राण	सघोष	(डाल, झंडी, झुंड)
ढ्	,,	,,	महाप्राण	,,	(ढेला, धनाढ्यता, षण्ढ)
ण्	,,	नासिक्य	अल्पप्राण	,,	(कण्ठ, रण)
त्	दन्त्यमूल	स्पर्श	अल्पप्राण	अघोष	(तप, पताका, गात)
थ्	,,	,,	महाप्राण	,,	(थन, पथिक, पथ)
द्	,,	,,	अल्पप्राण	सघोष	(दान, नदी, नद)
ध्	,,	,,	महाप्राण	,,	(धन, गधी, बाँध)
न्	वर्त्स्य	नासिक्य	अल्पप्राण	,,	(नाम, दानी, कान)
प्	द्व्योष्ठ्य	स्पर्श	अल्पप्राण	अघोष	(पानी, रुपया, तप)
फ्	,,	,,	महाप्राण	,,	(फन, निष्फल, कफ)
ब्	,,	,,	अल्पप्राण	सघोष	(बालू, गोबर, साहब)

भ्	द्व्योष्ठ्य	स्पर्श	महाप्राण	सघोष	(भीड़, कभो, शुभ)
म्	,,	नासिक्य	अल्पप्राण	,,	(मक्खी, अमीर, नाम)
य्	पश्च तालव्य	संघर्षहीन सप्रवाही	,,	,,	(याद, क़वायद, लय)
र्	वर्त्स्य	प्रकम्पी	,,	,,	(रथ, सारा, हार)
ल्	,,	पार्श्विक	,,	,,	(लड्डू, कुली, मोल)
व्	द्व्योष्ठ्य	संघर्षहीन सप्रवाही	,,	,,	(वसंत, क़विता, नाव)
श्	पश्च तालव्य	संघर्षी	,,	अघोष	(शेर, रेशम, नाश)
स्	वर्त्स्य	,,	,,	,,	(सड़क, भैंसा, भैंस)
ह्	स्वरयन्त्रमुखी	,,	महाप्राण	उभय घोष (मूलतः सघोष)	(हाथ, वही, यह)
ड़्	अग्र तालव्य	उत्क्षिप्त	अल्पप्राण	सघोष	(सड़क, पेड़)
ढ़्	,,	,,	महाप्राण	,,	(पढ़ाई, चढ़)
न्ह्	वर्त्स्य	नासिक्य	,,	,,	(कान्हा, चिन्ह < चिह्‌न)
म्ह्	द्व्योष्ठ्य	,,	,,	,,	(तुम्हें/कुम्हार)
ल्ह्	वर्त्स्य	पार्श्विक	,,	,,	(दूल्हा/कुल्हड़)
क़्	अलिजिह्‌वीय	स्पर्श	अल्पप्राण	अघोष	(क़ानून, रक़ीब, ताक़)
ख़्	,,	संघर्षी	महाप्राण	,,	(ख़ैर, कारख़ाना, रुख़)
ग़्	अलिजिह्‌वीय	,,	अल्पप्राण	सघोष	(ग़रीब, काग़ज़, मुर्ग़)
ज़्	वर्त्स्य	,,	,,	,,	(ज़रा, बाज़ार, नाज़)
फ़्	दन्त्योष्ठ्य	,,	महाप्राण	अघोष	(फ़न, महफ़िल, कफ़)

हिन्दी के सरल व्यंजनों का वितरण तथा प्रयोग—हिन्दी में ङ्, ञ्, ड़्, ढ़्, ण्, न्ह्, म्ह्, ल्ह् के अतिरिक्त अन्य सभी व्यंजन शब्द के आरम्भ में आ सकते हैं। हिन्दी की बोलियों में न्हान < नहान/नहाना (स्नान), म्हारो < हमारा, ल्हास < लाश शब्द प्राप्त हैं। तिब्बत की राजधानी 'ल्हासा' शब्द का प्रयोग परिनिष्ठित हिन्दी में भी होता है। न्ह्, म्ह्, ल्ह् संयुक्त व्यंजन नहीं हैं, वरन् 'न् म् ल्' के महाप्राण रूप हैं। सभी सरल व्यंजन शब्द-मध्य में आ सकते हैं। ङ् ञ् अपने वर्गीय व्यंजनों के पूर्व संयुक्त रूप में आते हैं। वाङ्मय < वाक् + मय को अपवाद कहा जा सकता है। ङ् ञ् न्ह् म्ह् ल्ह् शब्दान्त में अनुपलब्ध। शब्दान्त/अक्षरान्त में आनेवाले एकाकी व्यंजन अ-लोप के साथ उच्चरित होते हैं।

हिन्दी के मुख्य/केन्द्रीय व्यंजन स्वानिम 33 हैं—क् ख् ग् घ् च् छ् ज् झ् ट् ठ् ड् ढ् ण् त् थ् द् ध् न् न्ह् प् फ् ब् भ् म् म्ह् य् र् ल् व् श् स् ह् । हिन्दी के **गौण व्यंजन** स्वनिम 5 हैं—क़् ख़् ग़् ज़् फ़् ।

हिन्दी में ड् ड़्, ढ् ढ़् के प्रयोग-वितरण में परिपूरकता प्राप्त है, न कि व्यतिरेक, यथा—

'न्, म्, ल्' की महाप्राणता को व्यक्त करने के लिए नये व्यंजन वर्णों का निर्माण न कर के इन में 'ह्' का योग कर के व्यक्त करने लगे हैं, उच्चारण में ये अन्य महाप्राण व्यंजनों की भाँति उच्चरित होते हैं। रोमन में 'एच' के योग से, उर्दू में दुचश्मी 'हे' या हम्ज़ा के योग से महाप्राणता व्यक्त करते हैं। इन लिपियों के प्रभाव से 'उन्हें, जिन्हें, तुम्हारा, तुम्हें, दूल्हा, आल्हा, कुल्हाड़ी, कुल्हड़, अल्हड़, मल्हार' को 'उन् हें, जिन् हें, तुम् हारा, तुम् हें, दुल् हा, आल् हा, कुल् हाड़ी, कुल् हड़, अल् हड़' उच्चारण करना अशुद्ध है। हिन्दी की महाप्राण ध्वनियों को संयुक्त व्यंजन सिद्ध करने के लिए कई उल्टी-सीधी दलीलें दी जाती हैं किन्तु हिन्दी की स्वनिमिक व्यवस्था की संगति, आक्षरिक संरचना तथा वितरण सम्बन्धी विशेषताओं आदि के आधार पर महाप्राण व्यंजनों को एकल/एकाकी/सामान्य/सरल/मूल व्यंजन ही कहा/माना जा सकता है न कि संयुक्त।

हिन्दी 'ह'—शब्दारम्भ और शब्द-मध्य में 'ह्' का उच्चारण घोष है, यथा—हम, हार, हीरा, महान्, विहार, सुहाग। अक्षरान्त (मुख्यतः शब्दान्त) में इस का उच्चारण अघोष (और कभी-कभी बहुत हलका) होता है, यथा—बारह, स्नेह, बाहरी, देहरी। शब्दान्त में बहुत हलका उच्चारण होने के कारण दीर्घ स्वरों के बाद कुछ शब्दों में इस का लोप-सा प्रतीत होता है, यथा—तफ़रीह-तफ़री, दरगाह-दरगा, परवाह-परवा। अक्षरान्त और शब्दान्त के 'अह्' के उच्चारण में हलकापन होने के कारण 'ह्' अस्पष्ट हो जाता है और 'अ' में दीर्घता सुनाई पड़ती है, यथा—ग्यारह-ग्यारा, बारह-बारा; फिर भी 'बारा, तेरा' और 'बारह, तेरह' के उच्चारण में सूक्ष्म भेद रहता है।

लिखित-अह्-युत शब्दों के 'अ' का उच्चारण निम्न अग्र स्वर 'ऐ' जैसा हो जाता है, यथा—क़हर, ज़हर, तहत, नहर, पहन, पहल, बहन, वहम, बहल, महर, रहट, रहन, रहम, लहर, शहर, सहन; कहना, गहना, गहरा, ज़हरीली, नहला, नहले पै दहला, तहमत, पहला, पहनना, पहचान, बहका, बहरा, रहना, रहमान, लहँगा, सहमा, शहरी; अहसान। 'ह' के साथ दीर्घ स्वर होने पर पूर्ववर्ती 'अ' में कोई परिवर्तन नहीं होता, यथा—कहाँ, कहो, कही, महीन, महा, रही, शहीद, सही, लहू। लिखित रूप में 'बहन, रहट, शहर' जैसे दो अक्षरवाले कुछ शब्द उच्चारण में एकाक्षरी होने लगे हैं। 'कहकहा, चहचहाना, चहचहाहट' जैसे कुछ शब्दों के पहले अक्षर के 'अ' में भी परिवर्तन आ जाता है। 'बहुत, बहुतायत' का उच्चारण अनेक लोग 'बोहत, बोहतायत' जैसा करते हैं।

'ह्' के कारण पूर्ववर्ती स्वर के उच्चारण में जो परिवर्तन होता है, उसे इन शब्द-युग्मों के उच्चारण के समय अनुभव किया जा सकता है—मेजर-मेहर, सेमर-सेहत, सेवला-सेहरा। इस उच्चारण-परिवर्तन का प्रभाव लेखन में भी पड़ने लगा है, यथा—(क) 'अ' युत शब्द—कहना, पहचान, पहल, पहला, रहना, रहम, लहर,

[ड्] शब्दारम्भ में—डाली, डींग, डुबकी; अँगरेज़ी से आगत शब्दों में—डालडा

शब्द मध्य में—(ड्ड्/ ं ड्)—अड्डा, गुड्डी, अंडा, पंडित। अँगरेज़ी, देशी भाषाओं से आगत शब्दों में—सोडा, इडली। उपसर्गयुत शब्दों तथा पुनरुक्त शब्दों में—निडर, अडिग, सुडील; डीलडौल, डुगडुगी।

शब्दान्त में—(ड्ड्/ ं ड)—खड्ड, झुंड, दंड। अँगरेज़ी से आगत शब्दों में—रोड, कार्ड, रोल्ड गोल्ड।

[ड़्] शब्दमध्य में—(स्वर-मध्य में)—बड़ा, गाड़ी, झाड़ी, लड़ाई।

शब्दान्त/अक्षरान्त में—पेड़्, साँड़्, लड़का

[ढ्] शब्दारम्भ में—ढाल, ढोलक, ढंग।

शब्दमध्य में—(ड्ढ्/ ं ढ/ड्य)—बुड्ढा, गड्ढा; ? ठंढक, धनाढ्य

शब्दान्त में—(ड्ढ्/ ं ढ)—? ठंढ

[ढ़्] शब्दमध्य में—(स्वर-मध्य में)—बूढ़ा, पढ़ाई, मेंढ़क

शब्दान्त/अक्षरान्त में—बाढ़्, रीढ़्, पढ़्ना, चढ़्ना, गढ़्वाली

इस प्रकार 'ड्, ढ्' रूप के आरम्भ में; अक्षर-आरम्भ/अक्षरान्त में सवर्गीय स्वन के पास या बाद में और व्यंजन-गुच्छों में प्राप्त हैं। ड़्, ढ़्, प्रथम अक्षर के बाद, अक्षरान्त में/अक्षर-सीमा पर प्राप्त हैं। 'गैंडा-गैंड़ा, लौंडा-लौंड़ा, लौंडिया-लौंड़िया' के तथाकथित अर्थभेदकारी युग्म इन को स्वनिम सिद्ध नहीं कर पाते क्योंकि अरबी-फ़ारसी के माध्यम से आए युग्मों के पहले शब्दों या गोल्ड, रोड, रेडियो, डालडा आदि आगत शब्दों के आधार पर इन्हें हिन्दी की मूल ध्वनि-व्यवस्था का साँचा घोषित नहीं किया जा सकता। वास्तव में 'गैंडा, लौंडा, लौंडिया' शब्द क्रमशः 'गैण्डा, लौण्डा, लौण्डिया' हैं जो नासिक्य ध्वनियुक्त हैं न कि अनुनासिकतायुत।

प्राग सम्प्रदाय की आर्की स्वनिम Archi Pheneme की संकल्पना के आधार पर भी 'ड् ढ्' स्वनिम तथा 'ड्-ड़्, ढ्-ढ़्' उपस्वप्न हैं। यदि कोई स्वनिम भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है, तो वह आर्की स्वनिम कहलाता है, यथा—आर्य, द्रविड़ समुदाय की भाषाओं में **अनुस्वार आर्की स्वनिम है** जो पाँचों व्यंजन वर्गों के साथ क्रमशः ङ् ञ्, ण्, न्, म् के रूप में तथा शेष व्यंजनों के साथ (ं) अनुस्वार के रूप में प्रतिफलित है। इसी प्रकार 'ड् ढ्' आर्की स्वनिम हैं जो स्वरों के बाद ड़्, ढ़ हैं, अन्यत्र ड्, ढ्, यथा—खंडहर-खँड़हर, हँडिका-हँड़िया, षंड-साँड़, मंड-माँड़; बुड्ढा-बूढ़ा, ढाई-अढ़ाई, मुड्ढ-मूँड़, गढ़।

हिन्दी में महाप्राण व्यंजन एकाकी या सामान्य व्यंजन हैं न कि संयुक्त व्यंजन। न्ह म्ह ल्ह भी ख घ भ ढ की भाँति एकाकी/ सामान्य व्यंजन हैं। देवनागरी में

'न्, म्, ल्' की महाप्राणता को व्यक्त करने के लिए नये व्यंजन वर्णों का निर्माण न कर के इन में 'ह्' का योग कर के व्यक्त करने लगे हैं, उच्चारण में ये अन्य महाप्राण व्यंजनों की भाँति उच्चरित होते हैं। रोमन में 'एच' के योग से, उर्दू में दुचश्मी 'हे' या हम्ज़ा के योग से महाप्राणता व्यक्त करते हैं। इन लिपियों के प्रभाव से 'उन्हें, जिन्हें, तुम्हारा, तुम्हें, दूल्हा, आल्हा, कुल्हाड़ी, कुल्हड़, अल्हड़, मल्हार' को 'उन् हें, जिन् हें, तुम् हारा, तुम् हें, दुल् हा, आल् हा, कुल् हाड़ी, कुल् हड़, अल् हड़' उच्चारण करना अशुद्ध है। हिन्दी की महाप्राण ध्वनियों को संयुक्त व्यंजन सिद्ध करने के लिए कई उल्टी-सीधी दलीलें दी जाती हैं किन्तु हिन्दी की स्वनिमिक व्यवस्था की संगति, आक्षरिक संरचना तथा वितरण सम्बन्धी विशेषताओं आदि के आधार पर महाप्राण व्यंजनों को एकल/एकाकी/सामान्य/सरल/मूल व्यंजन ही कहा/माना जा सकता है न कि संयुक्त।

हिन्दी 'ह'—शब्दारम्भ और शब्द-मध्य में 'ह्' का उच्चारण घोष है, यथा—हम, हार, हीरा, महान्, विहार, सुहाग। अक्षरान्त (मुख्यतः शब्दान्त) में इस का उच्चारण अघोष (और कभी-कभी बहुत हलका) होता है, यथा—बारह, स्नेह, बाहरी, देहरी। शब्दान्त में बहुत हलका उच्चारण होने के कारण दीर्घ स्वरों के बाद कुछ शब्दों में इस का लोप-सा प्रतीत होता है, यथा—तफ़रीह-तफ़री, दरगाह-दरगा, परवाह-परवा। अक्षरान्त और शब्दान्त के 'अह्' के उच्चारण में हलकापन होने के कारण 'ह्' अस्पष्ट हो जाता है और 'अ' में दीर्घता सुनाई पड़ती है, यथा—ग्यारह-ग्यारा, बारह-बारा; फिर भी 'बारा, तेरा' और 'बारह, तेरह' के उच्चारण में सूक्ष्म भेद रहता है।

लिखित-अह्-युत शब्दों के 'अ' का उच्चारण निम्न अग्र स्वर 'ऐ' जैसा हो जाता है, यथा—क़हर, ज़हर, तहत, नहर, पहन, पहल, बहन, वहम, बहल, महर, रहट, रहन, रहम, लहर, शहर, सहन; कहना, गहना, गहरा, ज़हरीली, नहला, नहले पै दहला, तहमत, पहला, पहनना, पहचान, बहका, बहरा, रहना, रहमान, लहँगा, सहमा, शहरी; अहसान। 'ह' के साथ दीर्घ स्वर होने पर पूर्ववर्ती 'अ' में कोई परिवर्तन नहीं होता, यथा—कहाँ, कहो, कही, महीन, महा, रही, शहीद, सही, लहू। लिखित रूप में 'बहन, रहट, शहर' जैसे दो अक्षरवाले कुछ शब्द उच्चारण में एकाक्षरी होने लगे हैं। 'कहकहा, चहचहाना, चहचहाहट' जैसे कुछ शब्दों के पहले अक्षर के 'अ' में भी परिवर्तन आ जाता है। 'बहुत, बहुतायत' का उच्चारण अनेक लोग 'बोहत, बोहतायत' जैसा करते हैं।

'ह्' के कारण पूर्ववर्ती स्वर के उच्चारण में जो परिवर्तन होता है, उसे इन शब्द-युग्मों के उच्चारण के समय अनुभव किया जा सकता है—मेजर-मेहर, सेमर सेहत, सेवला-सेहरा। इस उच्चारण-परिवर्तन का प्रभाव लेखन में भी पड़ने लगा है, यथा—(क) 'अ' युत शब्द—कहना, पहचान, पहल, पहला, रहना, रहम, लहर,

शहर (ख) 'ए' युत शब्द—एहतियात, तेहरान, बेहतर, मेंहदी, सेहत, सेहरा (ग) अ∼ए युत शब्द—ज़हन-ज़ेहन, अहसान-एहसान, अहसास-एहसास, महमान-मेहमान, महर-मेहर। 'ग' वर्ग के वैकल्पिक लेखन पर शैलीगत, वैयक्तिक और स्थानीय प्रयोग का प्रभाव भी स्वीकार किया जाता है।

भगिनी शब्द का विकास बहिन के रूप में माना जाता है किन्तु बहन > वहनोई को 'बहिनोई' लिखना खटक पैदा करता है। इसी प्रकार 'पहिला' मानकेतर है, 'पहला' मानक है। 'महिला, महिमा, रहित, सहित' शब्द मूलतः 'इ' युत हैं। हिन्दी-क्षेत्र के 'कैहना, पैहना, मैहमान, रैहना/रैना' जैसे वर्तनी एवं उच्चारण-दोषों का दुष्प्रभाव हिन्दी-इतर भाषियों पर भी पड़ सकता है।

उर्दू से आगत 'ह्' युत अनेक शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा—गुनाह, निकाह (पुं), अफ़वाह, जिरह, तरजीह, तरह, तनख़्वाह, तफ़रीह, तह, निगाह, पनाह, परवाह, फ़जर, वजह, सतह, सुलह, सुबह (स्त्री)।

हिन्दी में पाँच **नासिक्य स्वनिम** हैं। (1)/न्/स्वनिम के चार उपस्वन हैं—1. [ङ्] क् ख् ग् घ् से पूर्व संयुक्त व्यंजन के रूप में; शब्दों में अक्षर-सीमा पर, यथा—वाङ्मय, पराङ्मुख 2. [ञ्] च् छ् ज् झ् से पूर्व संयुक्त व्यंजन के रूप में 3. [न्] त् थ् द् ध् से पूर्व संयुक्त व्यंजन के रूप में 4. [न्] अन्यत्र। (2) / म्/ स्वनिम है। 'न, म' का अर्थभेदक व्यतिरेक प्राप्त है, यथा—नाली-माली, कानी-कामी, कान-काम (3)/म्ह्/स्वनिम है। 'म्-म्ह्' का अर्थ-व्यतिरेक प्राप्त है, यथा—कुमार-कुम्हार। (4) /न्ह्/स्वनिम है। 'न्-न्ह' का अर्थ-व्यतिरेक प्राप्त है, यथा—काना-कान्हा। (5) /ण्/ स्वनिम है। 'न्-ण्' के अर्थ व्यतिरेकी शब्द-युग्म हैं—रन-रण, अनु-अणु, कर्न-कर्ण। जन सामान्य की बोलचाल में 'ण्' को 'न्' के समान बोलते हैं, यथा—गुण∼गुन, प्राण∼प्रान, चरण∼चरन, कण∼कन, वीणा∼वीना, प्रण∼प्रन आदि। इसे ण्-न् का मुक्त परिवर्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि वही जन सामान्य 'न्' को 'ण्' के रूप में नहीं बोलता।

हिन्दी में 'ण्' का उच्चारण ट वर्ग से पूर्व संयुक्त व्यंजन के रूप में नासिक्य है, अन्यत्र [ड़ँ] या [न] वत् है। संस्कृत के दो शब्दों 'अक्षुण्ण', 'विषण्ण' में हिन्दी-उच्चारण सामान्यतः उतना दीर्घ नहीं होता जितना म्, न् दीर्घ होते हैं। 'पुण्य, कण्व' का हिन्दी उच्चारण 'पुन्न्य, कन्न्व' जैसा होता है। 'रुग्ण, पूर्ण' के 'ण' का उच्चारण 'ड़ँ' वत् है।

हिन्दी के गौण स्वनिम/क़् ख़् ग़् ज़् फ़्/हैं। इन में 'क़्' स्पर्श काकल्य है, ख़् ग़्' पश्च/कोमल तालव्य संघर्षी हैं, 'ज़्' वर्त्स्य संघर्षी है और 'फ़्' दन्त्योष्ठ्य संघर्षी। ये स्वनिम विदेशी भाषाओं के अनेक शब्द आ जाने के कारण विकसित हुए हैं। जन सामान्य इन के स्थान पर क्रमशः/क् ख् ग् ज् फ्/ का उच्चारण करते हैं।

इस आधार पर इन्हें मुक्त परिवर्त कहना/मानना ग़लत है क्योंकि गौण स्वनिमों के स्थान पर ही केन्द्रीय स्वनिमों का उच्चारण होता है, केन्द्रीय स्वनिमों के स्थान पर गौण स्वनिमों का उच्चारण नहीं किया जाता। यह **एकांगी मुक्त परिवर्त** ही कहा जा सकता है। परिनिष्ठित हिन्दी में इन गौण स्वनिमों का प्रयोग शुद्‌ध उच्चारण पर बल देनेवाले लोगों के द्‌वारा कसरत से किया जाता है। हिन्दी में इन स्वनिमों से बने अर्थ-भेदक न्यूनतम शब्द-युग्म भी काफ़ी मात्रा में उपलब्ध हैं, यथा—

ताक-ताक़
खैर-ख़ैर, खाना-ख़ाना, खोर-ख़ोर
बाग-बाग़, गौर-ग़ौर, बेगम-बेग़म
राज-राज़, जरा-ज़रा, जीना-ज़ीना, गज-गज़, सजा-सज़ा
फन-फ़न, फलक-फ़लक, कफ-कफ़

'क़ ख़ ग़' केवल अरबी-फ़ारसी-तुर्की से आगत शब्दों में उच्चरित होते हैं और 'ज़ फ़' इन भाषाओं के अतिरिक्त अँगरेज़ी से आगत शब्दों में भी उच्चरित होते हैं। ज़, फ़ का प्रयोग क़ ख़ ग़ की अपेक्षा अधिक होता है क्योंकि अँगरेज़ी शिक्षण के कारण इन का उच्चारण सिखाने पर बल दिया जाता है। ये दोनों ध्वनियाँ हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था के अधिक अनुकूल हैं। 'ज़' अघोष संघर्षी 'स' का सघोष संघर्षी युग्म है। 'ज़' का प्रयोग अँगरेज़ी/श/ (श के घोष रूप, IPA—International PhoneticAlphabet में 3), उर्दू के ज़े झ़े ज़्वाद ज़ोय ज़ाल वर्णों के लिए होता है। सघोष 'व' का अघोष रूप 'फ़' है। ख़-ग़ स्वयं अघोष-घोष के युग्म के रूप में आए हैं, इसलिए 'ख़-ग़' का प्रयोग 'क़' की अपेक्षा अधिक होता है। यदि वर्तनी में इन वर्णों से बने शब्दों को शुद्‌ध लिखने का आग्रह रखा जाए तो कोई कारण नहीं कि सामान्य पढ़े-लिखे लोग इन ध्वनियों का सही उच्चारण न कर सकें, बशर्ते कि इन से युक्त शब्दों को उसी उदारता से स्वीकार किया जाए जैसे अन्य शब्द स्वीकृत हैं। उर्दू-हिन्दी का सम्बन्ध केवल सम्पर्क जन्य सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता; ये दोनों सहोदर भाषाएँ हैं या एक ही मूल भाषा की दो अभिव्यक्ति शैलियाँ हैं।

तमिळ जैसी भाषा में भी हठधर्मिता छोड़ी जा रही है। तमिळ लिपि में/प/ को काले टाइप में छाप कर/ब/ को व्यक्त किया जाने लगा है। /फ़/ के लिए भी नया चिह्‌न बना लिया गया है। देवनागरी में तो बिन्दी लगा कर बड़ी आसानी से इन वर्णों को लिखा जा सकता है। इन गौण स्वनिमों से युक्त हिन्दी में प्रचलित कुछ शब्द ये हैं—

क़—ताक़, क़त्ल, क़ुरान, कुर्क़, कुर्क़ी, अर्क़, बुर्क़ा, इश्क़, इश्क़िया, क़िश्त, क़िस्म, तस्दीक़, नक़्शा

ख़—ख़ैर, ख़ैरियत, ख़ाना, ख़ोरी, ख़ोर, ख़र्च, सुख़, निख़, चर्ख़ी,

सुख़ऱ्, ख़ुद, ख़ुदा, तख़्ता, शख़्स, ज़ख़्म, तख़मीना, बख़्शीश, बुख़ार

ग़—बेग़म, ग़ौर, बाग़, कागज़, मुर्ग़ा, मुर्ग़ी, नग़्मा, ग़रीबी, ग़रीबख़ाना, ग़ैर

ज़—राज़, ज़रा, ज़ीना, गज़, सज़ा, सब्ज़, सब्ज़ी, नब्ज़, कागज़, अर्ज़, अर्ज़ी, कर्ज़, फ़र्ज़, ख़ुदगर्ज़, ज़ुल्म, ज़ुल्मी, नज़ला, जज़्बात, नज़्म, कज़्ज़ाक, ज़हर, ज़ोर, मज़ा

फ़—फ़न, फ़लक, शरीफ़, बर्फ़, बर्फ़ी, सिर्फ़, उर्फ़, कुल्फ़ी, ज़ुल्फ़, उल्फ़त, वक़्फ़, गुफ़्तगू, हफ़्ता, गिरफ़्त, मुफ़्त, लिफ़्ट, लेफ़्टिनेन्ट, लफ़्ज़, लफ़्ज़ी, अफ़साना, गिरफ़्तार, दफ़्तर

य, व—श्रुति/अर्ध स्वर कुछ भाषाओं में स्वर और व्यंजन की मध्यवर्ती ध्वनियाँ प्राप्त हैं, यथा—संस्कृत की तथाकथित ऋ, ऌ स्वर ध्वनियाँ जो स्वनिक स्तर पर पूर्ण स्वर नहीं हैं। वैदिक संस्कृत में 'य र ल व न म' अर्ध स्वर ध्वनियों के रूप में भी प्रयुक्त थे। अँगरेज़ी की L M N व्यंजन ध्वनियाँ Bottle, Bottom, Button में आक्षरिक होने के कारण स्वर का कार्य करती हैं। इस प्रकार ऋ ऌ आक्षरिक होने के कारण स्वनिमिक स्तर पर स्वर होते हुए भी स्वनिक स्तर पर व्यंजन हैं; L M N स्वनिमिक स्तर पर अनाक्षरिक होने के कारण प्रायः व्यंजन और कभी-कभी स्वर हैं किन्तु स्वनिक स्तर पर सदैव व्यंजन हैं।

हिन्दी में य्, व् स्वनिक स्तर पर श्रुति हैं और स्वनिमिक/प्रकार्य-दृष्टि से स्वनिम हैं। श्रुति (glide फिसनल) में जीभ एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर फिसल जाती है। श्रुति की सत्ता स्वनिक स्तर पर है और व्याकरण/स्वनिम-स्तर पर इसे अर्ध स्वर कहा जाता है। 'लिख→लिखा, पढ़→पढ़ा, चल→चला, भाग→भागा, बैठ→बैठा' में '-आ' भूतकालिक प्रत्यय है। इस प्रत्यय को ग<जा, आ, खा, ला के साथ जोड़ने पर ग आ (>गया), आआ (>आया), खाआ (>खाया), लाआ (>लाया) रूप बनते हैं। उच्चारण-सौकर्य/सुविधा के लिए हिन्दी भाषी ऐसे स्थलों पर 'य' श्रुति का सदुपयोग करते हैं। इस 'य' श्रुति की सत्ता केवल स्वनिक स्तरीय है, स्वनिमिक/व्याकरण-स्तरीय नहीं। 'आया' (=धाय), 'गया' (नगर विशेष) संज्ञा शब्दों में 'य' की सत्ता स्वनिक और स्वनिमिक/व्याकरण स्तर की है। हिन्दी के संज्ञा शब्दों में 'य' अर्ध स्वर का व्यंजन स्वनिम है और क्रिया-रूपों में केवल 'श्रुति', यथा—संज्ञा शब्द 'आया, खोया (खोआ), दिया (दीपक), सोया (सोआ-पालक), पाया (चारपाई का), खोई/खोयी (गन्ने की)'; क्रिया शब्द 'आया, खोया, दिया, सोया, पाया, खोई/खोयी'

श्रुति शब्द-रचना के मूल में नहीं हुआ करती, जब कि अर्ध स्वर या व्यंजन की सत्ता शब्द-रचना के मूल में हुआ करती है। क्रिया-रूपों में 'य' को अन्तर्निहित/

पूर्वस्थित अर्धस्वर (Inherent Semivowel) न कह कर आगत (Intrusive) अर्ध स्वर कहा जा सकता है। फ़र्थ के अनुसार क्रिया में यह Prosedic है और संज्ञा में Phonemetic दक्षिण की भाषाओं में 'य, व' श्रुति शब्द के आरम्भ, मध्य में अनेक परिवेशों में मुखर रहती है, जब कि हिन्दी में यह कुछ ही स्वरों के मध्य स्पष्ट सुनाई पड़ती है, यथा—ओ-आ (सोया, रोया, खोया; पूर्वी हिन्दी में सोवा, रोवा, खोवा); ए-आ (खेया, सेवा), इ-ओ/ओं (भाइयो, कवियो, जातियों, नाइयों, देवियो देवियों) अ-आ (नया, गया; भया बोली रूप), इ-आ (जिया, दिया, पिया, लिया, सिया), आ-आ (आया, खाया, पाया, लाया, साया)। परिनिष्ठित हिन्दी में 'व' श्रुति का अभाव है, पूर्वी हिन्दी की बोलियों में यह प्राप्त है।

मराठी में अँगरेज़ी से आगत V (हिन्दी में वी/व) युत शब्दों का उच्चारण तथा वाचन व्ही/व्ह जैसा होता है तथा हिन्दी में वी/व जैसा।

अनुस्वार—संस्कृत भाषा के शब्दों में वर्गीय व्यंजनों के अतिरिक्त अन्य व्यंजनों से पूर्व आनेवाली पूर्णतः नासिक्य ध्वनि अनुस्वार (स्वर का अनुसरण करनेवाली) कहलाती है, यथा—संयम, संरचना, संलाप, संवाद, संशय, संसार, संहार में क्रमशः 'य, र, ल, व, श, स, ह' के पूर्व की पूर्ण नासिक्य ध्वनि अनुस्वार है। शब्दान्त में यह 'म्' वत् उच्चरित होती है, यथा—अहं, स्वयं [अहम्, स्वयम्]। हिन्दी में इस ध्वनि का उच्चारण परवर्ती व्यंजन के उच्चारण-स्थान से उच्चरित होनेवाली नासिक्य ध्वनि के समान होता है, यथा—[सञ्यम्, सन्रच्ना, सन्लाप् सम्वाद, सञ्शय्, सन्सार्, सङ्हार्]। वर्गीय नासिक्य व्यंजनों/ ङ ञ ण न म/ को अनुस्वार कहना भ्रम है क्योंकि अनुस्वार और इन नासिक्य व्यंजनों की उच्चारण-प्रक्रिया में अन्तर है और अनुस्वार तथा नासिक्य व्यंजन व्यतिरेकी वितरण में हैं, यथा—वाङ्मय, पराङ्मुख, सुना, चुन, गुणा, गुण, माप, कमाई, काम। इन परिवेशों में अनुस्वार नहीं आता।

संस्कृत स्वरों से पूर्व आया अनुस्वार स्वर-संयोग से 'म' में परिवर्तित हो जाता है, यथा—परं/परम्+आत्मा (=परमात्मा), समाहार, परमेश्वर, समुच्चय, समूह, समीक्षा। वास्तव में इस प्रकार के अक्षरान्त/शब्दान्त के अनुस्वार का ध्वनि-मूल्य 'म्' है जो 'म' हो जाता है। संस्कृत में अनुस्वार का पूर्ण नासिक्य था जिसे 'म/ङ' ....

जैसा कहा जा सकता है। दक्षिण भारतीय भाषाओं में इस का उच्चारण 'म्' किया जाता है। देवनागरी-लेखन में अनुस्वार को शीर्ष-बिन्दु-ं से व्यक्त करते हैं। नासिक्य व्यंजन+वर्गीय व्यंजन के लेखन के समय प्रायः शीर्ष-बिन्दु प्रयोग का प्रचलन बढ़ने लगा है, यथा—पंखा, गंगा, कंचन, खंजन, पंडित, दंड, महंत, पंथ, कुटुंब, दंभ। अँगरेज़ी से आगत शब्दों में शीर्ष-बिन्दु के प्रयोग से लेखन-अराजकता लगभग समाप्त हो जाएगी, यथा—इंक, बैंक, लंच, बैंच, प्रिंट, पेंट। शब्दान्त में म् के स्थान पर शीर्ष-बिन्दु का प्रयोग किया जाता है, यथा—त्वं, स्वयं/त्वम्, स्वयम्/। रूपिम-सीमा

पर भी शीर्ष-बिन्दु का प्रयोग उच्चारण में परवर्ती वर्गीय व्यंजन के नासिक्य व्यंजनवत् हो जाता है, यथा—सम्-/सं (संगठित, संघटना, संचय, संजीव, संतृप्त, संदेह, संभाव्य, संप्रेष्य)।

पाँचों वर्गीय व्यंजनों के पूर्व अनुस्वार की स्वनिक स्थिति आर्य, द्रविड़ भाषाओं में लगभग समान है। इसे आर्की स्वनिम मानने पर इसके छह उपस्वन हैं—/ ं /→ 1. [ङ] क् ख् ग् घ्, रूपिम सीमा के म के पूर्व 2. [ञ्] च् छ् ज झ के पूर्व 3. [ण्] ट् ठ् ड् ण् के पूर्व 4. [न्] त् थ् द् ध् न् म् के पूर्व 5. [म्] प् फ् ब् भ् म् न् के पूर्व, शब्दान्त में 6. [ं] अन्यत्र

हिन्दी में व्यंजन-अनुक्रम—शब्द-मध्य में प्राप्त हैं, यथा—'प्राणमय, विमला, बकता, पगली, लगना, सपना, करता, में क्रमशः 'ण्-म्, म्-ल्, क्-त्, ग्-ल्, ग्-न्, प्-न्, र्-त्' के व्यंजन-अनुक्रम हैं। मृण्मय, अम्ल, वक्ता, आंग्ल, लग्न, स्वप्न, कर्ता' में भी इसी प्रकार का व्यंजन-अनुक्रम है किन्तु पहले और दूसरे शब्दों के उच्चारण में स्पष्ट किन्तु सूक्ष्म अन्तर है। पहले शब्दों के उच्चारण में व्यंजन-युग्म के मध्य एक अतिक्षीण विराम अनिवार्यतः आता है, जब कि दूसरे शब्दों के उच्चारण व्यंजन-युग्म के मध्य विराम का अभाव उन्हें संयुक्त व्यंजन बना देता है। व्यंजन-अनुक्रम के सदस्य अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने के कारण अलग-अलग इकाई होते हैं। व्यंजन-अनुक्रम के उच्चारण में संयुक्त व्यंजन के उच्चारण की अपेक्षा कुछ अधिक समय लगता है। व्यंजन-अनुक्रम में पहले व्यंजन के अन्तर्निहित 'अ' का लोप हो जाता है।

शब्द-मध्य में प्राप्त 'प' वर्ग के 'अ'-लुप्तज व्यंजन, अनुक्रमवाले कुछ शब्द ये हैं—**प्**+क/ग/घ/च/छ/ज/ट/म/य/र/ल/व/श/स/ह/ख़—उपकृत, उपगमन, अपघात, उपचार, छपछपाना, उपजाऊ,, निपटना अपमान, उपयोगिता, निरपराध, उपलब्धि, उपवीत, अपशब्द, अपसरण, उपहार, तोपख़ाना। **फ्**+क/ल्—फुफकार, डफली। **ब्**+क/ग/ट/ड/त/द/प/र/ल/स/ह/ड़/ख़—उबकाई, ईसबगोल, उबटन, डबडबाना, डूबते, चोबदार, आबपाशी, अबरक, तबला, ख़ूबसूरत, शुबहा, तोबड़ा, शराबख़ोरी। **भ्**+क/च/त/द/न/र/ल/व—अलाभकर, शुभचिन्तन, चुभता, लाभदायी, चुभना, उभरा, सँभलो, चुभवाना। **म्**+क/ग/घ/च/छ/ज/झ/ट/त/द/ध/न/प/ब/य/र/ल/व/श/स/ह/ड़/ख़/ग़/ज़—नमकीन, ग़मगीन, जमघट, चमचम, गमछा, श्रमजीवी, समझी, सिमटी, ममता, आमदनी, समधिन, गमनीय, कमपढ़ी, कमबख़्त, कामयाब, कमरा, विमला, समवयस्का, लमहा, दमड़ी, कमख़ाब, तमग़ा, कमज़ोरी।

इसी प्रकार अन्य वर्गों में भी कई प्रकार की स्थितियों में अ-लुप्तज व्यंजन अनुक्रम प्राप्त हैं। अ-लुप्तज व्यंजन-अनुक्रम में मध्यवर्ती व्यंजन से पूर्व बाद में 'अ' स्वरयुत या दीर्घ स्वरयुत व्यंजन होता है, यथा—कम्पढ़ी, जन्ता, लग्भग बीस, डब्डबाई आँखों से; लाभ्कारी निर्णय, तोप्ख़ाना। पहले ह्रस्व स्वर और बाद में

दीर्घ स्वर होने पर व्यंजन-संयुक्तता की-सी स्थिति आ जाती है, यथा—ममता, कमला, सिमटी, करती आदि ।

हिन्दी के संयुक्त व्यंजनों का वितरण तथा प्रयोग—अति द्रुतगति या असतर्कता से बोलते समय अनुक्रम के व्यंजन संयुक्त व्यंजन का रूप ले लेते हैं, किन्तु ऐसा सामान्य भाषा-व्यवहार/उच्चारण में नहीं होता, यथा—कम्‌ला-कम्ला, बकते-बक्ते, चिम्‌टा-चिम्टा ।

दो या अधिक व्यंजनों का ऐसा गुच्छ जिस के मध्य अक्षर-सीमा नहीं होती **व्यंजन-गुच्छ** कहलाता है । शब्द के आरम्भ में स्वर से पूर्व आनेवाला व्यंजन-गुच्छ 'आदि व्यंजन गुच्छ'; स्वर के बाद शब्दान्त में आनेवाला व्यंजन गुच्छ 'अन्त्य व्यंजन गुच्छ' और दो स्वरों के मध्य शब्द के बीच में आनेवाला व्यंजन गुच्छ 'मध्य व्यंजन गुच्छ' कहलाता है ।

न्ह, म्ह, र्‌ह, ल्ह, न्ह को संयुक्त व्यंजन नहीं माना जा सकता क्योंकि ये एकल स्वन हैं । हिन्दी में कई व्यंजन-गुच्छ विदेशी भाषाओं से भी आ गए हैं । व्यंजन-गुच्छ के द्‌वितीय सदस्य के रूप में 'य, र, ल, व' बहुत अधिक व्यवहृत हैं, प्रथम सदस्य के रूप में ये आदि व्यंजन-गुच्छ नहीं बनाते । मध्यवर्ती, अन्त्य व्यंजन गुच्छ में 'य र ल व' से पूर्व का अल्पप्राण व्यंजन दीर्घ (/द्‌वित्व) उच्चरित होता है, यथा—उपन्यास→उपन्न्यास्, शाक्य→शाक्क्य्, योग्य—योग्ग्य् । मध्यवर्ती, अन्त्य व्यंजन-गुच्छ में 'य र ल व' से पूर्व का महाप्राण व्यंजन स्ववर्गीय अल्पप्राण व्यंजन से युक्त उच्चरित होता है, यथा—अध्यापक→अद्‌ध्यापक्, अभ्यास→अब्भ्यास् । इस प्रकार लेखन में दो व्यंजनों के ऐसे गुच्छ उच्चारण में तीन व्यंजनों के गुच्छ माने जा सकते हैं (वास्तव में नहीं) क्योंकि इन में आगत व्यंजन पर अक्षर-सीमा होती है । हिन्दी-उच्चारण में लिखित 'ष' [श] है और 'ऋ' [रि/र] है, अतः उच्चारण के आधार पर यहाँ व्यंजन-गुच्छ लिखे जा रहे हैं । हिन्दी शब्दों के आदि, मध्य, अन्त में प्राप्त कुछ अति प्रचलित व्यंजन-गुच्छ ये हैं—

द्‌वियंजनीय व्यंजन-गुच्छ—

1. आदि व्यंजन गुच्छ—क्या, क्रम, क्लेश, क्वारा, क्षण (क्षण), ख्याति, ख्रिस्तान, ग्यारह, ग्रह, ग्लानि, ग्वाला, घ्राण, च्युत, ज्योति, जृम्भा (ज्रिम्भा), ज्वाला, ट्यूशन, ट्रेन, ट्वीड, ड्योढ़ा, ड्रिल, त्याग, त्रुटि, त्वचा, द्‌युति, द्रोह, द्‌वारा, ध्यान, ध्रुव, ध्वजा, न्याय, नृप (न्रिप), प्यार, प्रेम, प्लेट, प्यास, ब्याज, ब्राह्‌मण, ब्लेड, भ्रम, म्यान, मृग (म्रिग), म्लेच्छ, व्यापारी, श्मशान, श्यामला, श्रद्‌धा, श्लोक, श्वेत, स्कूल, स्खलन, स्टेशन, स्नेह, स्थान, स्तर, स्पष्ट, स्फटिक, स्मरण, स्याही, स्रोत, स्लेट, स्वाद, ह्रास, ह्‌वेल, ख़्वाब, ख़्याल, ज़्यादा, फ़्लैट, फ़्रांसीसी, फ़्यूज़ ।

हिन्दी में प्राप्त आदि व्यंजन गुच्छवाले अधिक शब्द संस्कृत, अरबी-फ़ारसी, अँगरेज़ी के हैं । हिन्दी में अपने संयुक्ताक्षर युत शब्द बहुत कम हैं । यही कारण है

कि स+स्पर्श व्यंजनों से बने शब्दों के उच्चारण के समय हिन्दी भाषी जन सामान्य को पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में 'इ' का आगम करना पड़ता है और पूर्वी हिन्दी क्षेत्र में 'अ' का, यथा—स्पष्ट→[इस्पश्ट्/अस्पश्ट्] स्टेशन→[इस्टेशन्/अस्टेशन्]। स+य/र/ल/व का व्यंजन-गुच्छ होने पर 'इ' या 'अ' का आगम नहीं करना पड़ता, यथा—स्याही, स्रोत, स्लेट, स्वाद [स्याही, स्रोत्, स्लेट्, स्वाद्]। ऐसा 'य, र, ल, व' में स्वरत्व का अंश होने के कारण है।

2. **मध्य व्यंजन गुच्छ**—कुछ शब्दों के शब्द-मध्य में वर्ण संयोग व्यंजन-गुच्छ के रूप में केवल दिखाई देता है किन्तु वास्तव में उच्चारण के समय व्यंजन-गुच्छ अक्षर-सीमा पर टूट जाता है। इसलिए परिभाषा के अनुसार ये सभी शब्द मध्य व्यंजन गुच्छ युत नहीं माने जा सकते, यथा—मक्खी (मक्‌खी), बुक्चा, शक्ति, वाक्यांश (वाक् क्यांश्), विक्रम (विक् क्रम्), शुक्ला, पक्वाशय, रिक्शा, कक्षा, अक्सीर, विख्यात (विक् ख्यात्), बग्घी, रुग्णता, दिग्दर्शन, मुग्धा, नग्नता, दिग्पाल, सौभाग्यवती, आग्रह (आग्‌ग्रह्), कृतघ्नी, श्लाघ्यता, शीघ्रता, शंका, पंखा (पङ्‌खा), रंगीन, कंघी, पराङ्‌मुख, संहार, बिच्छू, अच्युत, झज्झर, पूज्या, पंचमी, वांछित (वाञ्‌छित्), गंजा, झंझा, संयम, संशय, मट्ठा, नाट्यकार, पाठ्यक्रम, गड्ढा, कुड्मल, षडयन्त्र, धनाढ्यों, कटक, कंठी, पडित, ? ठढा, मृण्मय, पुण्यात्मा, आण्विक, सत्कार, उत्खनन, पत्थरों, पत्नी, उत्पन्न, उत्फुल्ल, आत्मा, मृत्यु, कृत्रिम, सत्वर, उत्साह, मिथ्या (मित्‌थ्या), उद्गम, उद्घाटन, योद्धा, उद्बोधन, अद्भुत, पद्मा, उद्योग, उद्रेक, उद्वेग, अध्यक्ष, विध्वंश, सन्तरे, ग्रन्थकार, अन्दर, अन्धी, उन्माद, फुंसी, कन्या, अमृत (अम्‌म्रित), संलग्नीय, अन्वेषण, मंज़िल, सप्ताह (सप्‌ताह्), स्वप्नवत्, ? फुफ्फुस, अभिप्रेत, आप्लावन, कुब्जा, ज़ब्ती, शताब्दी, उपलब्धि, भब्भड़, बिनब्याही, अब्राह्मण, पब्लिक, सब्ज़ी, अभ्यास, अभ्रक, उम्दा, निम्नलिखित (निम्न्‌लिखित), सम्पत्ति, गुम्फित, कम्बल, खम्भा, ग्राम्या, सम्राट्, इम्ला, संवाद, कर्कशा, मूर्खता, स्वर्गवास, दीर्घायु, चर्चा, बर्छी, अर्जित, निर्झर, कार्टून, ऑर्डर, वर्णन, कर्ता, प्रार्थी, सर्दी, अर्धांश, कर्नल, अर्पित, अर्बुद, गर्भिणी, धार्मिक, आर्या, दुर्लभ, पर्वत, कुर्सी, मार्शल, गर्हित, कुर्क़ी, सुर्ख़रू, मुर्ग़ा, अर्ज़ी, बर्फ़ी, उल्का, फाल्गुन, कुल्चा, कल्छी, बाल्टी, सुल्तान, उल्था, हल्दी, कल्पना, अल्बम, प्रगल्भता, ज़ुल्मी, कल्याण, विल्वमंगल, ? जल्सा, इल्ज़ाम, उल्फ़त, काव्यांग, विवृत, मुश्किल, आश्चर्य, निश्छल, स्पष्टता, गोष्ठी, विष्णु, नाश्ता, प्रश्नोत्तर, पुष्पित, निष्फल, चश्मा, वेश्या, मिश्रित, विश्लेषण, विश्वास, इश्क़िया, नमस्कार, विस्खलित, मस्जिद, पोस्टर, सस्ता, विस्थापित, तस्दीक़, हुस्नपरस्त, इस्पात, क़स्बा, क़िस्मत, हास्यास्पद, सहस्रों, मुस्लिम, आस्वादन, मस्ख़री, चिह्नित (चिन्‌न्हित्) ब्राह्मणों (ब्राम्‌म्हणों), ग्राह्यता, आह्लादित, गह्वर, वक़्ती, अक़्लमन्द, नक़्शा, मक़्सद, तख़्ता, तख़्मीना, बख़्शना, शख़्सियत, नग़्मा, नज़्ला, जज़्बात, लेफ़्टिनेन्ट, गिरफ़्तार, लफ़्ज़ी, अफ़्साना।

'नग़मा, नज़ला, अफ़साना' जैसे कुछ शब्द वास्तव में 'नग़्मा, नज़्ला, अफ़्साना' जैसे उच्चरित होते हैं। ऐसी स्थिति में तथाकथित द्विव्यंजनीय शब्द मध्य के व्यंजन-गुच्छों की संख्या काफ़ी कम हो जाती है। लेखन में अवश्य काफ़ी संयुक्ताक्षर युत शब्द प्राप्त हैं।

3. **अन्त्य व्यंजन गुच्छ**—शब्दान्त में प्राप्त 'य र ल व' से युक्त व्यंजन-गुच्छ उच्चारण के समय त्रिव्यंजनीय व्यंजन गुच्छ जैसे लगते हैं, यथा—शाक्य (शाक्क्य), किन्तु वास्तव में 'शाक्' पर अक्षर-सीमा होने के कारण ये त्रिव्यजनीय व्यंजन गुच्छ नहीं कहे जा सकते। अन्त्य व्यंजन-गुच्छों के कुछ उदाहरण हैं—सिक्ख, रिक्त, हुक्म, वाक्य (वाक्क्य), चक्र, शक्ल, परिपक्व, वक्ष, टैक्स, मुख्य, रुग्ण, मुग्ध, नग्न, युग्म, भाग्य, विघ्न, श्लाघ्य, शीघ्र, अंक, शंख, अंग, संघ, स्वच्छ, प्राच्य, पूज्य, वज्र, पंच, रंज, वंश, नाट्य, पाठ्य, खड्ग, खड्ढ, धनाढ्य, चंट, कंठ, दंड, ? ठंढ, पुण्य, कण्व, वीभत्स, यत्न, खत्म, सत्य, मित्र, द्वित्व, क़त्ल, तथ्य, युद्ध, पद्म, वैद्य, समुद्र, मध्य, संत, पंथ, बंद, अंध, जन्म, धन्य, हंस, गुप्त, स्वप्न, सामीप्य, विप्र, टॉप्स, कान्यकुब्ज, शब्द, ज़ब्त, लुब्ध, सभ्र, सब्ज़, सभ्य, शुभ्र, सिम्त, निम्न, भूकम्प, गुम्फ, विलम्ब, कुम्भ, साम्य, आम्र, अम्ल, तर्क, मूर्ख, स्वर्ग, दीर्घ, चर्च, दर्ज, चार्ट, गार्ड, कर्ण, धूर्त, अर्थ, दर्द, अर्ध, हॉर्न, सर्प, गर्भ, धर्म, आर्य, गर्व, आदर्श, नर्स, पूजार्ह, अर्क़, सुर्ख़, मुर्ग़, क़र्ज़, बर्फ़; मुल्क, गोल्ड, जिल्द, गल्प, गुल्फ, बल्ब, प्रगल्भ, ज़ुल्म, तुल्य, बिल्व, ज़ुल्फ़; द्रव्य, विवृत (विव्रित); शुष्क, पश्च, स्पष्ट, ओष्ठ, कृष्ण, गोश्त, प्रश्न, पुष्प, चश्म, अवश्य, मिश्र, विश्व, इश्क़; वयस्क, पोस्ट, स्वस्थ, क़स्द, हुस्न, दिलचस्प, भस्म, हास्य, सहस्र, नस्ल, ह्रस्व; चिह्न (चिन्न्ह्), ब्रह्म, जड़ित जिह्व, सह्य; व़क्त, व़क्फ़, अ़क्ल, ऩक्श, नु़क्स; स़ख्त, ज़ख्म, ब़ख्श, श़ख्त, ज़ज्ब, ऩज्म; गिरफ़्त, लिफ़्ट, लफ़्ज़।'

हिन्दी के त्रिव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ—हिन्दी के शब्दों के आदि, मध्य तथा अन्त में कुछ त्रिव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ प्रचलित हैं। शब्द-मध्य में प्राप्त तथाकथित त्रिव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ उच्चारण में द्विव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ के रूप में रह जाते हैं, यथा—इन्स्पेक्टर [इन्स्पेक्टर्], सान्त्वना [सान्त्वना]। शब्द-आदि और शब्दान्त में अक्षर-सीमा न होने के कारण त्रिव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ उच्चारण में भी त्रिव्यंजन युत रहते हैं।

आदि व्यंजन-गुच्छ—/य, र, व/ से युक्त कुछ शब्दों के आरम्भ में तीन व्यंजनों गुच्छ प्राप्त हैं, यथा—स्क्रू, स्त्री, स्पृहा, स्मृति, त्र्यम्बक।

शब्द-मध्य में प्राप्त व्यंजन-गुच्छ—फ़ैक्ट्री, वक्तृत्व, लक्ष्मी, लक्ष्यार्थ, इक्ष्वाकु, दिग्भ्रम, अभ्यस्त, व्यंग्यार्थ, संग्राम, आकांक्षा, पंक्ति, उच्छृंखलता, उच्छ्वास, टुण्ड्रा, ज्योत्स्ना, तादात्म्यता, उत्प्रेक्षा, उत्कृष्ट, उत्क्षिप्त, उद्भ्रान्त, उद्धृत, मन्त्रणा, इन्द्रिय, अन्त्येष्टि, सान्त्वना, सन्ध्या, द्वन्द्वात्मक, इंस्पेक्टर, संस्कार, संस्मरण, संसृति,

पुंश्चली, संश्लिष्ट, प्राप्त्याशा, सम्भ्रम, संवृत, सम्प्रति, कर्फ़्यू, आर्द्रता, ऊर्ध्वता, भर्त्सना, भर्तृहरि, पार्श्विक, ईर्ष्या, राष्ट्रीय, निष्प्रभ, परिष्कृत, विस्तृत, अस्पृश्य, तिरस्कृत, विमृत।

शब्दान्त में प्राप्त व्यंजन-गुच्छ—तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लक्ष्य, वैदग्ध्य, कृच्छ्र, दण्ड्य, कण्ठ्य, तादात्म्य, वैचित्र्य, मत्स्य, मन्त्र, वन्द्य, इन्द्र, अन्त्य, सान्ध्य, रन्ध्र, द्वन्द्व, हिंस्र, कम्प्य, आर्द्र, ऊर्ध्व, वर्त्स, पार्श्व, राष्ट्र, ओष्ठ्य, स्वास्थ्य, अस्तु।

"स्वातन्त्र्य, वर्त्स्य, शब्दों के अन्त में चार व्यंजनों के व्यंजन-गुच्छ प्राप्त हैं। हिन्दी में तीन, चार व्यंजनों के व्यंजन-गुच्छ प्रायः संस्कृत से आगत शब्दों में ही प्राप्त हैं। इन का व्यवहार भी संस्कृतनिष्ठ, साहित्यिक भाषा में होता है। इन व्यंजन-गुच्छों में/ य, र, व/ के योग से बने व्यंजन-गुच्छों का ही आधिक्य है।

हिन्दी में प्राप्त दीर्घ/गुरु व्यंजन-वितरण तथा प्रयोग—हिन्दी में (कुछ संघर्षी महाप्राणों के अतिरिक्त) महाप्राण व्यंजनों; ड़, ङ, ञ का दीर्घ या गुरु रूप अप्राप्त है। स्वनिक/उच्चारण-स्तर के शब्द-मध्य के दीर्घ व्यंजन स्वनिमिक स्तर पर द्वित्व हैं क्योंकि आक्षरिक व्यंजन में इन का पूर्ववर्ती भाग पहले अक्षर के साथ और परवर्ती भाग पिछले अक्षर के साथ रहता है, यथा—कबड्डी [क बड् डी], दुलत्ती [दु लत् ती]। दीर्घ व्यंजनों के कुछ उदाहरण हैं—

क—पक्का, मक्कार, **क़**—रुक़्क़ा, **ग**—सुग्गा, लग्गी, **च**—बच्ची, कच्चा, **ज**—सज्जन, निर्लज्ज, **ट**—खट्टी, मिट्टी, **ड**—लड्डू, कबड्डी, **ण**—विषण्ण, **त**—कुत्ता, दुलत्ती, **द**—गद्दा, चद्दर, **न**—पन्ना, भिन्न, **प**—चप्पल, कुप्पी, **ब**—गुब्बारा, पनडुब्बी, **म**—अम्मा, चम्मच, **य**—शय्या, **र**—हर्र, रोज़मर्रा, **ल**—पिल्ला, शेख़चिल्ली, **व**—फ़व्वारा, **श**—निश्शंक, **स**—रस्सी, गुस्सा, **ज़**—लज़्ज़त, क़ज़्ज़ाक़, **फ़**—लफ़्फ़ाज़ी, लफ़्फ़ाज़, **ख़**—अख़्ख़ाह, **ह**—आह्हा, अह्हा। 'ख़, फ़ ह' के दीर्घ उच्चारण में विशेष प्रयास की आवश्यकता पड़ती है।

व्यंजन-वृद्धि—कुछ शब्दों में स्वर जोड़ कर नया शब्द बनाते समय अन्तिम व्यंजन की वृद्धि हो जाती है अर्थात् उस में दीर्घता आ जाती है, यथा—गप >-ई—गप्पी, चुप >-ई—चुप्पी, ज़िद >-ई—ज़िद्दी। इन शब्दों के सादृश्य पर 'धम, फिच, ठन, भिन-भिन, चर (से), खट' को 'धम्म, फिच्च, भिन्न-भिन्न, चर्र, खट्ट' लिखना और बोलना अमानक है।

हिन्दी में ष, क्ष तथा ज्ञ की स्थिति—हिन्दी में संस्कृत भाषा के लिखित शब्दों में परम्परानुगामी वर्तनी का अनुकरण करते हुए 'ष' को लिखा तो जाता है किन्तु उच्चारण में इस का रूप [श्] है। बोलियों में यह [स्] रूप में उच्चरित है। उत्तर भारत की हिन्दी-इतर भाषाओं में भी इस का उच्चारण [श्/स्] है। दक्षिण भारत की भाषाओं में भी इस का उच्चारण प्रायः [श्/स्] है, मलयाळम् में इस का उच्चारण मूर्धा के पास से किए जाने के कारण [ष्] या [ष़्] वत् है।

क्ष<क्ष केवल संस्कृत से आगत शब्दों में लेखन के समय प्रयुक्त होता है, यथा—कक्षा, गवाक्ष, क्षमा, क्षोभ, तीक्ष्ण, भिक्षा, लक्ष्य, शिक्षा आदि। हिन्दी में एक लम्बे अरसे से 'ष' ध्वनि का अभाव होने से इस का उच्चारण [क्ष] नहीं होता वरन् [क्छ्/छ्] जैसा होता है, कुछ लोग [क्श्] जैसा उच्चारण भी करते हैं। विदेशी भाषाओं से आगत 'क्श' युक्त शब्दों को 'क्ष' से नहीं लिखा जाता, यथा—एक्शन, नक्शा, डिक्शनरी, रिक्शा (न कि* रिक्षा)। हिन्दी में 'क्ष' युत आगत अनेक शब्द स्त्रीलिंग रूप में प्रचलित हैं, यथा—अपेक्षा, उपेक्षा, दीक्षा, द्राक्षा, परीक्षा, प्रतीक्षा, भिक्षा, रक्षा, लाक्षा, शिक्षा। उच्चारण-साम्य के कारण 'रिक्शा' [* रिक्छा/रिक्षा] को स्त्रीलिंग में प्रयोग करना अशुद्ध है। उपर्युक्त अनेक तद्भव शब्द क्ष>ख युत हो कर स्त्रीलिंग में प्रचलित हैं, यथा—दाख<द्राक्षा, परख<परीक्षा, कांख<कक्ष, भीख<भिक्षा, लाख<लाक्षा, सीख<शिक्षा। हिन्दी में 'क्ष' का स्वनिक परिवर्तन 'ख/क्ख; छ/च्छ' स्वनों में हुआ है, यथा—पक्ष>पाख, पक्षी>पंछी, मक्षिका>मक्खी, परीक्षा>परख, परीक्षक>पारखी, भिक्षु>भीख, लाक्षा>लाख, लक्ष>लाख। कन्नड़ में 'क्ष' को 'क्ष' रूप में लिखा जाता है। यदि हिन्दी में भी इसे 'क्ष' रूप में लिखा जाए तो इस के उच्चारण में परिवर्तन आ सकता है।

ज्ञ<ज्ञ को कुछ लोग संस्कृत में व्यंजन-गुच्छ न मान कर नासिका विवर से उच्चरित तालव्य स्पर्श-संघर्षी स्वन मानते हैं। इस प्रकार यह मूलतः एक स्वन ठहरता है, दो स्वनों का संयुक्त रूप नहीं। कुछ लोग हिन्दी में उच्चरित 'ग्य' को तालव्यीकृत कण्ठ्य ध्वनि मानते हैं, संयुक्त व्यंजन नहीं। वे 'ग्यान्, अ ग्यान्, वि ग्यान्' के 'ग्य' के मध्य अक्षर-सीमा नहीं मानते। वास्तव में हिन्दी शब्दों के मध्य में इस का उच्चारण 'ग्ग्य' वत् होता है, यथा—[विग्ग्याँन्, अग्ग्येय्, अग्ग्याँन्, * वि ग्याँन्, * अ ग्येय्~* अ गेय्, *अ ग्यान्]। कुछ शुद्धतावादी इस का उच्चारण 'ज्यँ' वत् करते हैं।

हिन्दी में केवल 'ञ' ही ऐसी नासिक्य ध्वनि है जिस का उच्चारण संयुक्ताक्षर रूप में शब्द मध्य में प्राप्त है, शब्द-आदि, शब्दान्त में नहीं। भारतीय भाषाओं में इस के विभिन्न उच्चारण प्राप्त हैं, यथा—ग्न/ग्न्य (उड़िया, तेलुगु, कन्नड, गुजराती), द्न/द्न्य (मराठी) क्ञ (तमिळ), ञ्ञ/ञ्ञ (मलयाळम्), ज्यँ/ग्य/ग्यँ (हिन्दी, पंजाबी, बंगाली), ग्य (मणिपुरी)। भारतीय भाषाओं में मलयाळम् के शब्द-आदि में 'ञ' का प्रयोग प्राप्त है, यथा—'ञान्' (=मैं)। मलयाळम् में 'ज्ञ' का उच्चारण संस्कृत में रहे उच्चारण के निकट का माना जा सकता है।

6
बलाघात, विवृति तथा अनुतान

बलाघात--बोलते समय उच्चारण (Utterance) के प्रत्येक अंश पर समान बल नहीं दिया जाता। वाक्यों के शब्दों पर सदैव समान बल नहीं होता। इसी प्रकार एकाधिक अक्षरवाले शब्दों में सभी अक्षरों पर समान बल नहीं दिया जाता। एकाक्षरी शब्दों में शीर्ष पर सर्वाधिक बल दिया जाता है और पूर्व-गह्वर, पर-गह्वर पर कम। उच्चारण के समय ध्वनि से ले कर वाक्य-स्तर तक दिया जानेवाला वायु/उच्चारण-बल बलाघात (Stress) कहलाता है। बलाघात की चर्चा तुलनात्मक दृष्टि से ही की जाती है। जिस अंश पर सर्वाधिक बल दिया जाता है, उसे ही बलाघात-युक्त कहा जाता है। शेष अंश तुलनात्मक दृष्टि से कम बलाघातयुक्त होते हैं।

यद्यपि बोलते समय वक्ता किसी भी ध्वनि/अक्षर/शब्द पर अधिक या सर्वाधिक बल डाल सकता है, यथा—ˈबुराई बुˈराई बुराˈई, तथापि भाषा के सहज या सर्वमान्य उच्चारण के अनुसार दूसरा उच्चारण ही स्वाभाविक माना जाएगा, पहला और तीसरा उच्चारण बनावटी या हिन्दी भाषा की प्रकृति के प्रतिकूल माना जाएगा। हिन्दी में बलाघात का स्थल शब्द की स्वनिक संरचना पर निर्भर होता है। बलाघात के समय फेफड़ों से वायु-प्रवाह अधिक शक्ति के साथ होता है और उच्चारण-अवयवों में सामान्य से कुछ अधिक तनाव (Tension) आ जाता है। कभी-कभी वक्ता के अन्य अंग (नथुने, भौंहें, हाथ, कंधे, पैर आदि) भी बलाघात के कारण सामान्य से अधिक सक्रिय हो जाते हैं। हिन्दी में इन स्तरों पर बलाघात देखा जा सकता है—

(क) **ध्वनि-स्तरीय बलाघात**—एकाधिक ध्वनियोंवाले एकाक्षरी शब्द में शीर्ष (केन्द्रक) पर ध्वनि-स्तरीय बलाघात होता है, यथा—'पान, खीर, एक, कि' में क्रमशः 'आ, ई, ए, इ' पर बलाघात है क्योंकि इन शब्दों में ये स्वर ध्वनियाँ ही शीर्ष का काम कर रही हैं। हिन्दी में ध्वनि-स्तरीय बलाघात अनुमेय (Predictable) होता है।

(ख) **अक्षर-स्तरीय बलाघात**—एकाधिक अक्षरवाले शब्दों में किसी एक अक्षर पर प्रमुख/उच्च बलाघात होता है, तथा अन्य पर गौण/निम्न या निम्नतर अथवा निम्नतम। अँगरेज़ी, रूसी आदि कुछ भाषाओं में बलाघात-भेद कोशीय अर्थ-भेद कारक है किन्तु हिन्दी में यह कोशीय अर्थ-भेद कारक नहीं है, यथा—Present, Conduct में पहले अक्षर पर बल देने पर शब्द संज्ञा रहता है, जब कि दूसरे अक्षर पर बल देने से शब्द क्रिया हो जाता है। Photograph, Photography, Photographic में क्रमशः पहले, दूसरे और तीसरे अक्षर पर बलाघात है। हिन्दी में आक्षरिक बलाघात अस्वनिमिक होने के कारण निरर्थक है, फिर भी हिन्दी शब्दों में अक्षर-बलाघात (उच्चारण) का लगभग एक सर्वमान्य स्वरूप स्वीकृत है जो शब्द के किसी अक्षर विशेष पर रहता है। ग़लत अक्षर का बलाघात शब्दोच्चारण को अस्वाभाविक बना देता है।

अति विस्तृत हिन्दी-क्षेत्र में थोड़ी-बहुत उच्चारण-भिन्नता के कारण अक्षर-स्तरीय बलाघात में कभी-कभी/कहीं-कहीं थोड़ा-बहुत अन्तर भी मिलता है। हिन्दी में अक्षर-बलाघात को भी अनुमेय (Predictable) कहा जा सकता है। एकाधिक अक्षर-वाले शब्दों में अक्षर-बलाघात के नियम ये हैं—1. एकाधिक अक्षरवाले शब्दों में सभी अक्षर समान स्तरीय (ह्रस्व/मध्यम/दीर्घ/अतिदीर्घ) होने पर उपान्त (= अन्तिम से पूर्व) अक्षर पर बलाघात होता है, यथा—**र** घु, स **मि** ति, ला **चा** री, **सम्** बल, कर्म युक्त, **काम** गार।

2. ह्रस्व, मध्यम, दीर्घ, अतिदीर्घ अक्षरों से युक्त शब्दों में प्राथमिकता की दृष्टि से क्रमशः मध्यम, दीर्घ या अतिदीर्घ अक्षर पर बलाघात होता है, बशर्ते शब्द में इन से सम्बन्धित एक ही अक्षर हो, यथा—जि **सी**, अ **मिट**, सु प रि **चित** (ह्रस्व तथा एक मध्यम अक्षर से बने शब्द); स **पूत**, अ **नार**, वि **भिन्न**, स्व **तन्त्र**, पा बन्द, ला **चार** (ह्रस्व/मध्यम तथा एक दीर्घ अक्षर से बने शब्द); अ प रि **हार्य**, म हा **पात्र**, निर् **व्याप्त** (ह्रस्व/मध्यम/दीर्घ और एक अति दीर्घ अक्षर से बने शब्द)

3. एकाधिक अतिदीर्घ/दीर्घ/मध्यम/ह्रस्व अक्षरों से युक्त शब्दों में क्रमशः उपान्त अतिदीर्घ/दीर्घ/मध्यम/ह्रस्व की प्राथमिकता के आधार पर बलाघात होता है, यथा—**रा** धि का, **लड्** डू, **श्याम** ला, **रोज़्** गार, **रे** डि यो, अ ना **वृ** ष्टि, **संस** कार, बा **जी** गरी, कि **रा** या, अ **मा** वस, **पूछ** ताछ, **सौन्** दर्य, सन् श **या** लु, अ **ना** सक् ति।

4. किसी शब्द से निर्मित दूसरे शब्द/शब्दों में अक्षर-बलाघात मूल शब्द के बलाघात के अनुसार भी हो सकता है और परिवर्तित भी हो सकता है, यथा—म **धुर**→म **धुर** ता (मूलवत्); **सुन्** दर→सुन् **दर** ता (परिवर्तित)

अक्षर-बलाघात के कुछ अन्य उदाहरण हैं—**बिल्** ली, **बिन्** दी, पिल पि **ला**, सर स **री**, गुद गु **दा**। **माँ-बाप**, **चाल-ढाल**, गुस्ल **ख़ा** ना, बोल ने **वा** ला, ल कड़ **हा** रा, म दद गार।

(ग) **शब्द-स्तरीय बलाघात**—एकाधिक शब्दोंवाले वाक्यों में अर्थ वैशिष्ट्य हेतु किसी शब्द विशेष पर मुख्य/उच्च बल दिया जाता है, यथा—**तुम ने** बच्चे के गाल पर चाँटा मारा। तुम ने **बच्चे के** गाल पर चाँटा मारा। तुम ने बच्चे के **गाल पर** चाँटा मारा। तुम ने बच्चे के गाल पर **चाँटा** मारा। तुम ने बच्चे के गाल पर चाँटा **मारा**।

वक्ता की इच्छा के अनुसार वाक्य में शब्द-बलाघात परिवर्तित होने के कारण अनुमेय नहीं है। वाक्योच्चारण के सहज/सामान्य प्रवाह में पड़नेवाले शब्द/पद-बलाघात को अनुमेय कहा जा सकता है, यथा—

1. वाक्य में प्रयुक्त आज्ञार्थक रूप सामान्य की अपेक्षा अधिक बलाघात युत होता है, यथा—तू वहाँ मत **जा**—मैं वहाँ जा रहा हूँ।

2. वाक्य में व्याकरणिक इकाइयों की अपेक्षा आर्थी/कोशीय इकाइयों पर अधिक बलाघात होता है, यथा—**किसान** ने **साँप** को **लाठी** से **मार** डाला। वे **आगरा** तक **जा** रहे हैं। **बच्ची** तो नहीं **खाएगी**।

3. 'ही, भी' पर वक्ता की इच्छानुसार बलाघात हो भी सकता है और नहीं भी, यथा—नौकर ही/भी लाएगा—नौकर **ही/भी** लाएगा।

4. वाक्य में आए प्रश्नवाचक शब्द पर सशक्त बलाघात होता है, यथा—आजकल तुम **कहाँ** रह रहे हो? लड़के को **कितनी** तनख़्वाह मिलती है! तुम वहाँ अकेले **कैसे** रहोगे?

5. पूरक विशेषण/क्रियाविशेषण पर सशक्त बलाघात होता है, यथा—रेखा **सुन्दर** लड़की है। मेरा साला **अमीर** था। आजकल मेरा गला **ख़राब** है। वह **अच्छा** नाचती है। मेरा घोड़ा बहुत **तेज़** दौड़ता है।

6. निषेधवाचक वाक्यों में नकारात्मक अव्ययों पर सशक्त बलाघात होता है, यथा—आप **न** उठाएँ, हम उठा लेंगे। तुम बीच में **मत** बोला करो। मैं **नहीं** जाऊँगी।

हिन्दी में शब्द-स्तरीय बलाघात स्वनिमिक होने के कारण अर्थ-भेदक (सामान्य, निश्चय, आधिक्य, समाहारी, आज्ञा, तुलना आदि का सूचक) है, यथा—

कम-से-कम **शर्बत** पीजिए—**कम-से-कम** शर्बत पीजिए।

उन्हें **एक** रोशनदानवाला कमरा चाहिए था—उन्हें एक **रोशनदानवाला** कमरा चाहिए था।

आज तुम **कम-से कम** बोलीं—आज तुम कम-से-कम **बोलीं**।

रोगी उठा और दूध पी कर सो गया—रोगी उठा **और** दूध पी कर सो गया। (पहला 'और' = and; दूसरा 'और' = more अधिक)।

एक लड़की खड़ी है—**एक** लड़की खड़ी है। (पहला 'एक' = कोई; दूसरा 'एक' = एक ही)।

चाय बहुत मीठी थी—चाय **बहुत** मीठी थी। (**बहुत** = बहुत अधिक/बहुत ही)।

मैं अभी और पढ़ूँगा—मैं अभी **और** पढ़ूँगा। (**और**=और भी)।

लगता है तुम कभी नहीं सुधरोगे—लगता है तुम **कभी** नहीं सुधरोगे। (**कभी** = कभी भी)।

(तू/तुम ने यह) पत्र लिखा—(तू यह) पत्र **लिखा**। (**लिखा आज्ञार्थ**)।

तुम्हारी **किताबें** कहाँ हैं ? (**किताबें** = Books)—**तुम्हारी** किताबें कहाँ हैं ? (किताबें = the books)।

सामान्यत: सभी भारतीय भाषाओं में शब्दों पर बल देने से इस प्रकार की आर्थी विशेषताएँ आ जाती हैं; अत: इसे logical stress ऐच्छिक बलाघात कहा जा सकता है।

(घ) **वाक्य-स्तरीय बलाघात**—किसी प्रसंग में एक साथ एकाधिक वाक्यों का उच्चारण करते समय अपनी बात स्पष्ट करने या भावों का अतिरेक व्यक्त करने अथवा व्यंजित अर्थ व्यक्त करने के लिए वक्ता अपनी इच्छानुसार बल देने के लिए किसी पूरे वाक्य या उस के एक अंश पर बलाघात दे सकता है। इस के अतिरिक्त वह अन्य कई भाषेतर कारकों का सहारा ले सकता है, यथा—

एक दिन की छुट्टी ले कर चार दिन बाद आ रहे हो, मुझे नहीं रखना ऐसा नौकर, **भाग जाओ यहाँ से।**

मैं यहाँ इसलिए नहीं आई हूँ कि रात-दिन नौकरानी की तरह काम में खटती रहूँ, **मेरा भी अस्तित्व है।**

बलाघात युत वाक्य/वाक्यांश सामान्य वाक्य/वाक्यांश की अपेक्षा कुछ विशेष अर्थ-वैशिष्ट्य या मनोभावयुक्त होता है, अत: हिन्दी में वाक्यांश, वाक्य-स्तरीय बलाघात को स्वनिमिक कहा जा सकता है। किसी वाक्यांश पर बल देने के लिए बलाघात के अतिरिक्त निपात (ही, भी, तो, तक आदि) का प्रयोग भी किया जाता है। कभी-कभी वाक्य के सामान्य पद-क्रम को बदल दिया जाता है, यथा—काँटे ही मिलेंगे तुम्हें इस पथ पर।

वाक्य-स्तरीय बलाघात वक्ता की इच्छा पर निर्भर रहने के कारण अनुमेय नहीं कहा जा सकता।

बलाघात-प्रभाव—1. बलाघातित मूल शिथिल ध्वनि कुछ दृढ़ और मूल दृढ़ ध्वनि कुछ दृढ़तर हो जाती है; यथा—प्रगति, समिति, अतिथि में क्रमश: उपान्त अ (ग), इ (मि), इ (ति) पर बलाघात होने के कारण मूलत: शिथिल 'अ, इ, इ' अन्य 'अ, इ' ध्वनियों की अपेक्षा दृढ़ हैं। इसी प्रकार मूलत: दृढ़ 'आ' 'आसानी' शब्द के उपान्त में बलाघातयुत हो कर दृढ़तर हो गया है। शब्द की अन्य ध्वनियों की स्थिति इस से विपरीत हो जाती है।

2. बलाघातयुत ह्रस्व स्वर कुछ दीर्घ और दीर्घ स्वर कुछ दीर्घतर हो जाता है, यथा—'आवारा, आसानी, प्रगति, समिति' के उपान्त 'आ, अ, इ' बलाघात युत होने के कारण कुछ दीर्घतर, कुछ दीर्घ हैं। शब्द की अन्य ध्वनियों की स्थिति इससे विपरीत हो जाती है।

3. बलाघातयुत अक्षर की अल्पप्राण ध्वनि कभी-कभी महाप्राणवत् सुनाई पड़ती है, यथा—क्या है, चैन से बैठा भी नहीं जाता। वाक्य में क्या→ख्या वत् उच्चरित। बलाघात-हीन महाप्राण ध्वनि में महाप्राणता की मात्रा कुछ कम हो जाती है, यथा—ठिठोली में 'ठि'।

4. बलाघातयुत स्वर अपेक्षाकृत अधिक मुखर (Sonorous) होने के कारण श्रवणीयता की दृष्टि से प्रमुख (Prominent) हो जाता है, यथा—'बूरा, कहारी, नीलामी' में 'बू, हा, ला' अपेक्षाकृत अधिक मुखर तथा दूर तक श्रवणीय हैं। बलाघात-रहित ध्वनियाँ अपेक्षाकृत कम मुखर तथा कम श्रवणीय हो जाती हैं।

5. वाक्य में बलाघातयुत अक्षर/शब्द सामान्य से कुछ अधिक उच्च तानवाला हो जाता है। बलाघात-रहित अक्षर/शब्द का तान कुछ नीचा हो जाता है।

6. वाक्य में बलाघातयुत अल्पप्राण कभी-कभी दीर्घ हो जाता है तथा महाप्राण के पूर्व उस का अल्पप्राण आ जाता है, यथा—कोई फड़कता हुआ ऐसा **गाना** गाओ कि······(ग्गाना)। निकल जा यहाँ से, अपने बाप की **छाती** पर जा कर मूँग दल। (च्छाती)

विवृति (Juncture)—बोलते समय एक ध्वनि से दूसरी ध्वनि के मध्य का संक्रमण (transition) तथा विराम (pause) विवृति/संगम/संहिता कहलाता है। दो ध्वनियों के मध्य विवृति उत्पन्न होने के तीन कारण हो सकते हैं—1. दोनों ध्वनियों का असम स्थानीय होना, यथा—जा**नका**र, क**पटी**, म**न्म**थ 2. अर्थ-स्पष्टीकरण हेतु मौन/विराम की आवश्यकता का अनुभव होना, यथा—तुम ने पीलीवाली दवा **पी ली**? वह **कम बल**वाला आदमी नहीं था। 3. वाक्य-स्तरीय लम्बे उच्चारों के मध्य साँस लेने या अर्थ स्पष्ट करने या दोनों की आवश्यकता का अनुभव होना, यथा—**रोको**, मत आने/जाने दो—**रोको मत**, आने/जाने दो।

सम स्थानीय ध्वनियों के मध्य उच्चारण-अवयवों को संक्रमण में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होता, अतः वहाँ विवृति नहीं होती, यथा—'कम्पन, कम्बल, अहङ्कारी, हिन्दुओं' में म्-प, म्-ब, ङ्-क्, न्-द्' के मध्य।

लेखन में विवृति को + चिह्न से प्रदर्शित करते हैं, यथा—1. स्वर+स्वर (सु+अवसर→सुअवसर, चलो+अब→चलो अब, क्या बनाओगी+आज→क्या बनाओगी आज) 2. व्यंजन+व्यंजन (चिम+टा→चिमटा, बक+बक→बकबक, तुम+हारी—तुम्हारी, इन+कार—इनकार, मन+माफ़िक—मन माफ़िक) 3. स्वर+व्यंजन (पिला+दो→पिला दो, ले+लो→ले लो, पी+लिया→पी लिया/पीलिया) 4. व्यंजन+स्वर (बच+आई→बच आई/बचाई, आज+आना→आज आना/आजाना, सह+अनुभूति→सह-अनुभूति/सहानुभूति)।

समय की दृष्टि से विवृति मौन-काल/विराम-काल है । हिन्दी में इस के मुख्य तीन भेद किए जाते हैं—1. **अत्यल्पकालिक विवृति** शब्द के अन्दर स्वर+स्वर; व्यंजन+व्यंजन; व्यंजन+स्वर; स्वर+व्यंजन; अक्षर+अक्षर के मध्य और दो शब्दों के मध्य अर्थ-स्पष्टता हेतु आती है, यथा—इन्+कार→इनकार, चिम्+टा →चिमटा, चिप्+को→चिपको, लिख्+ना→लिखना, चम्+चा→चमचा, तिन्+का→तिनका, नम्+कीन→नमकीन, अन्+पढ़→अनपढ़, न+दी→नदी, पी+लिया→पीलिया, हो+ली→होली, बर्फ़ी+ले→बर्फ़ीले, सिर्+का→सिरका ।

2. **अल्पकालिक विवृति** अर्थ की दृष्टि से वाक्य के किसी खंड/घटक को किन्हीं अन्य घटकों/खंडों या इकाइयों से अलग दिखाने के लिए आती है जिसे लेखन में अल्पविराम से व्यक्त करते हैं, यथा—तुम आ गई हो, अतः मुझे खाना बनाने की झंझट से छुट्टी मिली । वे बोले, हम आज ही लौट जाएँगे । तुम जो मेरे साथ इतनी उदारता दिखा रहे हो, कहीं इतने ही कठोर तो न हो जाओगे ? अल्पकालिक विवृति अर्थ की स्पष्टता और साँस लेने या दोनों कारणों से आती है ।

3. **दीर्घकालिक विवृति** दो वाक्यों के मध्य आती है जिसे लेखन में । ? ! चिह्नों से व्यक्त किया जाता है । दीर्घकालिक विवृति अर्थ-स्पष्टीकरण तथा साँस लेने के उद्देश्य की पूर्ति करती है । छोटे-छोटे वाक्यों के उच्चारण के समय प्रति वाक्य/श्वास-वर्ग (breath group) के बाद यह विवृति आती है किन्तु बड़ा वाक्य होने पर एकाधिक वाक्य खंड/श्वास-वर्ग के बाद अल्पकालिक विवृति आती है ।

अर्थ-भेदक होने के कारण हिन्दी में विवृति स्वनिमिक है, यथा—पी ली—पीली, हो ली—होली, बर्फ़ी ले—बर्फ़ीले, बतासा ले—बता साले, मन का—मनका, बरछी ने—बर छीने, जाग रण का यह समय है—जागरण का यह समय है, सनकी—सन की, मिलाया—मिल आया, खा ली—खाली, वह घोड़ा गाड़ी खींच रहा है—वह घोड़ागाड़ी खींच रहा है, काम में न रम—काम में नरम, सोओ, मत उठो——सोओ मत, उठो; नफ़ीस—न फ़ीस; बहादुर बच्चे, रोते नहीं—बहादुर बच्चे रोते नहीं । आदि

वाक्यान्त विवृति के पूर्व सुर आरोही/अवरोही/सम होता है । प्रश्नार्थक, आश्चर्यसूचक वाक्यों में आरोही; सूचनार्थक में अवरोही और अधूरे वाक्य में सम सुर रहता है । उच्चार-मध्य की अर्थ-भेदक विवृति को स्वनिमिक विवृति और वाक्य-मध्य की विवृति अभ्यन्तर विवृति (Internal Open Juncture) कहलाती है, यथा—

वे+आ+गए+क्या ↑	वे+आ+गए ↓
अरे+वे+तो+आ+भी+गए ↑	बीमार+लाचार+और·······→
मिल+ +आया—मिला+या	वे+ +बे+ईमान+है

अनुतान (Intonation)—वाक्यों के उच्चारण के समय सुर/लहजे के उतार-चढ़ाव/अवरोह-आरोह को अनुतान कहते हैं, यथा—

'ग्राहक—अंगूर किस भाव दिए हैं ?

दुकानदार - बारह रुपये किलो ।

ग्राहक—बारह रुपये किलो ? पड़ोस में दस रुपये किलो बिक रहे हैं, और तुम बारह कह रहे हो !

दुकानदार—पड़ोस की दुकान से ही ले लीजिए, वहाँ बीजवाले और खट्टे आठ रुपये किलो भी मिल जाएँगे ।'

वाक्योच्चारण के समय घोष तथा अघोष ध्वनियों का प्रयोग होता है । घोष ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वरतन्त्रियों में होनेवाली कम्पन-आवृत्ति (Frequency of Vibration) **सुर** (Pitch) या **तान** (Tone) कहलाती है । एकाधिक घोष ध्वनियाँ लगातार उच्चरित होने पर सुर-लहर/अनुतान का निर्माण करती हैं, यथा—'मैं अभी नहीं जाऊँगा' वाक्य-उच्चारण के समय 'म्, ऐं, अ, भ्, ई, न्, अ, ह्, ईं, ज्, आ, ऊँ, ग्, आ' 14 भिन्न-भिन्न सुर परस्पर मिल कर एक विशेष प्रकार की सुर-लहर का निर्माण करते हैं । अघोष ध्वनियों के उच्चारण के समय अत्यल्प कम्पन होने के कारण सुर का अभाव रहता है । वाक्यों में अघोष ध्वनियों (लगभग 20%—22%) की अपेक्षा घोष ध्वनियों (लगभग 78%—80%) का व्यवहार अधिक होने के कारण वाक्यों में आद्यन्त सुर लहर/अनुतान की प्रतीति होती है । अतः **वाक्य-उच्चारण के समय ध्वनियों के सुरों के आरोहावरोह का क्रम अनुतान कहलाता है ।**

लगभग सभी भाषाओं में अनुतान-भिन्नता से वाक्य/वाक्यांश में अर्थ-भिन्नता आ जाती है, यथा— वे आ गए । ? !' वाक्य को तीन प्रकार की अनुतान में बोलने पर तीन प्रकार के अर्थ की सूचना मिलती है—सामान्य कथन, प्रश्नसूचक कथन, आश्चर्यसूचक कथन । हिन्दी का **'अच्छा'** शब्द विभिन्न अनुतानों में बोलने पर विविध प्रकार के अर्थों का सूचक होता है, यथा—

तुम्हारा यह नौकर तो अच्छा लगता है (=भला) । हरीश भी पास हो गया; अच्छा ! (=आश्चर्य) । बहुत देर से लिख रहे हो, अब लिखना बन्द करो; अच्छा (=अनिच्छा) । हमें अभी चल देना चाहिए; अच्छा । (स्वीकृति) । आप इस बात का अर्थ समझ रहे हैं न ? अच्छा । (=जी हाँ)

हिन्दी में सामान्यतः तीन प्रकार के अनुतान-साँचे (Intonation patterns) मिलते हैं—1. निम्न 2. सामान्य 3. उच्च। कभी-कभी अति उच्च या अत्यन्त उच्च अनुतान-साँचा भी मिल जाता है । निम्न को अवरोही (Falling) ↘, सामान्य को सम (level)→ और उच्च को आरोही (rising) ↗ भी कहा जाता है । आरोह-अवरोह के मिश्रित रूप को आरोहावरोह (rising falling) ↗↘; अवरोह-आरोह के मिश्रित रूप को अवरोहावरोह (falling-rising) ↘↗ कहते हैं ।

हिन्दी में सामान्यतः पाँच प्रकार के वाक्यों (सामान्य, प्रश्नसूचक, आश्चर्य-सूचक, आज्ञासूचक, निषेधसूचक) और अभिवादन के लिए कई प्रकार के अनुतान-साँचों का प्रयोग होता है, यथा—

1. सामान्य (निश्चयार्थक) वाक्यों में 2 3 1 के अनुतान-साँचे का प्रयोग होता

है। वाक्यान्त में अवरोही सुर रहता है, यथा—मकान काफ़ी बड़ा है। तुम्हारी आदत
2 3 1 2

बहुत गन्दी है। आज हम आपके यहाँ खाएँगे, कल अपने दोस्त के घर में। सामान्य
3 1 2 3 1 2 3 1

बातचीत, भाषण, कहानी-कथन के सन्दर्भ में निश्चयार्थक वाक्यों के अनुतान-साँचों में थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य होता है।

2. प्रश्नसूचक वाक्य चार प्रकार के होते हैं, जिन के अनुतान-साँचे भी भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा—(क) प्रश्नसूचक शब्द-रहित वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 3 होता है। वाक्यांत में आरोही सुर रहता है, यथा—मेहमान चले गए? चाय बन
2 3 3 2 3

गई? तुम ने स्कूल का काम कर लिया?
3 2 3 3

(ख) वाक्यांत में प्रश्नसूचक शब्दवाले वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 2 होता है। 3, 2 के मध्य विराम (≠) होता है। वाक्यांत में आरोही सुर रहता है, यथा—

वे चली गईं क्या? तुम वहाँ तक चढ़ोगी कैसे?
2 3 ≠ 2 2 3 ≠ 2

(ग) वाक्य-मध्य में प्रश्नसूचक शब्द आ जाने पर 2 3 1 का अनुतान-साँचा रहता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—आप कब चल रहे हैं? तालाब
2 3 1 2

में कितना पानी है?
3 1

(घ) 'न'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 2 होता है। वाक्यान्त में किंचित आरोही सुर रहता है, यथा— तो कल चल रहे हो न? खिड़कियाँ ठीक
2 3 2 2

से बन्द करदी हैं न?
3 2

3. आश्चर्यसूचक वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 2 होता है। वाक्यांत में किंचित अवरोही सुर रहता है, यथा—तुमने दो किलो दूध पी लिया! पड़ोसी बुड्ढा
2 3 2 2

चल बसा!
3 2

4. आज्ञासूचक वाक्य दो प्रकार के होते हैं, जिन के अनुतान-साँचे भी भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा—

(क) सामान्य आज्ञा-वाक्य का अनुतान-साँचा 2 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—बाहर बैठो। यहीं रुको।
2 1 2 1

(ख) निषेध आज्ञा-वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—बाहर मत बैठो। आप वहाँ न जाइए।
2 3 1 2 3 1

5. निषेधसूचक वाक्य आठ प्रकार के होते हैं, जिनके अनुतान-साँचे भी भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा—

(क) 'नहीं'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है। वाक्यारम्भ में आनेवाले 'नहीं' का अनुतान-साँचा 3 रहता है, यथा—नहीं, मैं नहीं रुक पाऊँगा। तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए थी।
3 ≠ 2 3 1 2 3 1

(ख) 'मना'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोह रहता है, यथा—यहाँ बेकार बैठना मना है। फूल तोड़ना मना है।
2 3 1 2 3 1

(ग) निषेधवाची उपसर्ग (अ, अन, गैर, ना, ला आदि) युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—यह काम
2
गैरकानूनी है। तुम्हारी बीमारी लाइलाज है।
3 1 2 3 1

(घ) 'थोड़े ही'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 1 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोहावरोह रहता है, यथा—मैं ने थोड़े ही उसे मारा था। वह यहाँ
1 2 3 1 1
नौकरी करने घोड़े ही आया था।
2 3 1

(ङ) 'चुक'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोह होता है, यथा—तुम तो हो चुके पास। ऐसे तो वह पा चुकी काम।
2 3 1 2 3 1

(च) 'रह'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 2 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—वे तो वहाँ जाने से रहे। मैं तो यहाँ सोने से रही।
2 3 1 2 2 3 1 2

(छ) वाक्य-मध्य में आए प्रश्नसूचक शब्द युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा - तुम कब के धन्नासेठ
2 3 1
हो? यहाँ मेरी कौन सुनता है?
2 3 1

(ज) वाक्यारम्भ में आए 'भला'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 2 3 1

होता है। वाक्यान्त में अवरोही सुर रहता है, यथा—भला, यह भी कोई काम
2 — 2 3

है ? भला, यह आप के बस की बात है ?
1 2 ≠ 2 3 1

6. अभिवादन-सूचक शब्दों/वाक्यों का अनुतान-साँचा 1 2 3/2 3 1 होता है। अन्त में अवरोह रहता है, यथा—न म स्कार न मस्कार। न मस् ते न मस् ते।
1 2 3 2 3 1 1 2 3 2 3 1

कहिए, कैसे हैं ? कहिए, कैसे हैं ?
3 2 1 ≠ 3 2 1 2 2 3 ≠ 2 2 3

वक्ता की मन:स्थिति, मनोवृत्ति, वक्ता-श्रोता के सामाजिक सम्बन्ध और परिस्थिति आदि के कारण अनुतान-साँचों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

7. अधूरे या अस्वतन्त्र वाक्यों के उच्चारण में लगभग सम सुर रहता है जिस का अनुतान-साँचा 1 1/1 1 1 होता है, यथा—दीदी गई……(तो मैं भी
1 1

जाऊँ)। दीदी सिनेमा जा रही है……(तो मैं भी जाऊँगा)।
1 1 1

यद्यपि लिखित रूप में विरामादि चिह्नों का प्रयोग कर अनुतान की सूचना देने का प्रयत्न किया जाता है, तथापि यह प्रयत्न अधूरा ही है क्योंकि अनुतान-स्वरूप वक्ता के मनोभावों पर आधारित है और उच्चारण की चीज़ है, यथा—

मैं जा रहा हूँ। मैं जा रहा हूँ ? मैं जा रहा हूँ !

मैं जाऊँ ? ↓अच्छा। ↓अच्छा, जाओ।

उसे पुलिस पकड़ ले गई। ↑अच्छा !/बहुत अच्छा !

अच्छा ! वह भी पास हो गया ? कौन ? सतीश ?

अच्छा, तुम बोल रहे हो ? ↓अच्छा, तो अब चलूँ ? अच्छा, फिर कभी।

7
वर्णमाला

संसार की कोई भी भाषा किसी भी उपयुक्त लिपि में अंकित की जा सकती है। उपयुक्त लिपि से यहाँ तात्पर्य है—उस भाषा में प्रयुक्त समस्त खण्ड्य स्वनिमों और विशिष्ट उपस्वनों के लिए पृथक्-पृथक् लिपि-चिह्नों का होना। भाषा की आवश्यकता के अनुरूप अधिखंडीय या खण्ड्येतर स्वनिमों के लिए भी उपयुक्त लिपि-चिह्नों का होना अच्छी लिपि की विशेषता है। सामान्यतः बहुत लम्बे समय तक कोई भाषा विशेष जब किसी लिपि विशेष में लिखी जाती रहती है, तो उस लिपि को ही उस भाषा की लिपि मान लिया जाता है और जन सामान्य का भाषा के साथ-साथ उस लिपि के साथ भी भावनात्मक लगाव हो जाता है, यथा—अँगरेज़ी-रोमन, हिन्दी-देवनागरी, मराठी-देवनागरी, तमिळ-तमिळ, कन्नड-कन्नड, पंजाबी-गुरुमुखी आदि।

वर्णमाला (Alphabets) का वर्ण शब्द कई अर्थों का सूचक रहा है, यथा—रंग (सं.), जैसे—विवर्ण (=जिस का रंग उड़ गया हो), रक्त/गौर/पीत वर्ण; वर्ण-क्रम (Spectrum)। चतुर्वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; Letter, वर्णमाला में अन्तिम अर्थ के रूप में वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है। 'मान' किसी व्यापार/आचरण/वस्तु आदि के स्तर/मूल्य को आँकने की इकाई, यथा—मानदण्ड (yardstick), नैतिकता का मानदण्ड। मान शब्द से मानक (Standard) शब्द का निर्माण हुआ है। देवनागरी लिपि का उपयोग संस्कृत-प्राकृत-पाली-अपभ्रंश-मराठी, हिन्दी, नेपाली के लेखन के लिए कसरत से होता है। अन्य भाषाएँ भी इस में सरलता से लिखी जा सकती हैं। भारत सरकार के प्रयत्नों से 1959 में देवनागरी को मानक रूप देने का प्रयास किया गया और 1967 में मानक देवनागरी पर एक पुस्तिका प्रकाशित की गई जिस में भारत की प्रधान भाषाओं को देवनागरी में अंकित करने के लिए आवश्यक वर्ण भी जोड़े गए हैं।

हिन्दी भाषा-लेखन के लिए मुख्यतः देवनागरी/नागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है। प्रायः भ्रम के कारण देवनागरी-वर्णमाला को ही हिन्दी की ध्वनियाँ कह

दिया जाता है, ऐसा कहना/मानना ग़लत है। हिन्दी के लिए प्रयुक्त **मानक देवनागरी वर्णमाला** में ये स्वर, व्यंजन वर्ण हैं—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः अँ ऑ ऍ
क ख ग घ ङ   च छ ज झ ञ   ट ठ ड ढ ण   त थ द ध न
प फ ब भ म   य र ल व श ष स ह   क्ष त्र ज्ञ   श्र क़ ख़ ग़ ज़ फ़
ड़ ढ़ ळ

इस वर्णमाला में 'अ इ उ ऋ' ह्रस्व स्वर वर्ण हैं, 'आ ई ऊ ए ऐ ओ औ' दीर्घ वर्ण हैं। 'अं' अनुस्वार-चिह्न (ं), 'अः' विसर्ग-चिह्न (:), 'अँ' अनुनासिकता-चिह्न (ँ), 'ऑ, ऍ' हिन्दी-इतर भाषाओं के स्वर वर्ण हैं। व्यंजनों में क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग तथा प वर्ग की ध्वनियों के लिए 5-5 वर्ण हैं। 'क्ष त्र ज्ञ श्र' संश्लिष्ट संयुक्ताक्षर/संश्लिष्ट संयुक्त वर्ण हैं। 'त्र' त्र का परम्परागत रूप है। अन्य सरलाक्षर/एकल/सरल वर्ण हैं। क़ ख़ ग़ ज़ फ़' विदेशी व्यंजनों के वर्ण हैं। 'ड़ ढ़ ळ' कुछ शताब्दियों पूर्व हिन्दी वर्णमाला में जोड़े गए हैं। देवनागरी वर्णमाला के सभी व्यंजन वर्णों में अन्तर्निहित 'अ' (inherited A) वर्तमान होने से इन्हें भी स्वर वर्णों की भाँति 'अक्षर' कहा जाता है क्योंकि ये भी साँस के एक-एक झटके में उच्चरित होते हैं।

वर्ण-रचना की समानता की दृष्टि से ये वर्ण-समूह दृष्टव्य हैं—उ ऊ अ आ ओ औ अं अः ऑ इ ई ह ड ड़ ङ द झ ग म ग़ न भ स र ए ऐ ऍ ख ख़ प फ फ़ ण ष य थ घ ध श व ब क क़ च ज ज़ ञ त्र ट ठ ढ ढ़ छ ळ त ल क्ष ज्ञ ऋ श्र।

स्वर-वर्णों के मात्रा-चिह्न—'अ' का कोई मात्रा-चिह्न प्रचलित नहीं है। अन्य स्वर-वर्णों की भाँति यदि 'अ' वर्ण का मात्रा-चिह्न (यथा— (या इसी प्रकार का कोई अन्य चिह्न) बना लिया जाता है, तो देवनागरी की वैज्ञानिकता में चार चाँद लग जाएँगे। 'अ' का मात्रा-चिह्न न होने के कारण शब्द-मध्य, शब्दान्त के अकेले व्यंजन वर्ण कभी 'अ' युत बोले जाते हैं और कभी 'अ'-रहित, यथा—'कमल, काम' में पहला 'म' अ-युत बोला जाएगा, दूसरा 'म' अ-रहित।

कुछ व्यंजन वर्णों में प्रयुक्त ा को 'अ' का मात्रा-चिह्न कहना भ्रम है क्योंकि 'ङ ट ठ ड ढ र ह ड़ ढ़ ळ' में ा का अभाव है। प्रत्येक अकेले व्यंजन वर्ण में 'अ' की मात्रा परम्परित है। अन्य स्वर-वर्णों के मात्रा-चिह्न क्रमशः ये हैं—ा ि ी ु ू ृ े ै ो ौ ं ँ ः ॉ ॅ यथा—(क) का कि की कु कू कृ के कै को कौ कं कँ कः कॉ कॅ। 'र' के साथ ु ू का उप-रूप ु ू प्रचलित है, यथा—रु (रुपया), रू (रूप)। ये दोनों चिह्न अध्येता पर अनावश्यक बोझ हैं क्योंकि रुपया और रूप लिखने तथा वाचन में किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं पड़ती।

वर्धा-समिति द्वारा दिया गया सुझाव कि सभी स्वर 'अ' के साथ मात्रा-चिह्न लगा कर बनाए जाएँ (यथा—अ आ अि अी अु अू अे अै ओ औ अं अः)

अवैज्ञानिक होने के कारण अमान्य रहा है क्योंकि अ+इ/अ+उ रखने से अइ/ऐ, अउ/औ होता है, इ/उ नहीं। व्यंजन वर्ण के साथ तो स्वर वर्ण की मात्रा जोड़ी जा सकती है किन्तु स्वर वर्ण के साथ दूसरे स्वर वर्ण की मात्रा जोड़ना अवैज्ञानिक है। हाँ, यदि 'अ' को बिना किसी ध्वनि-मूल्य का वर्ण स्वीकार कर के उस में किसी भी स्वर की मात्रा जोड़ना वैज्ञानिक रहेगा।

अँगरेज़ी से आगत कुछ शब्दों को लिखने के लिए ॉ का प्रयोग किया जाता है, यथा—डॉक्टर, चॉक, बॉल, हॉल आदि। ॅ का प्रयोग ह्रस्व ए की ध्वनि को व्यक्त करने के लिए (विशेषतः दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्दों के लिए) किया जाता है। 'श' के साथ 'ऋ' की मात्रा लगाने पर 'शृ/शृ' रूप होगा। 'शृ' को 'शृ' रूप में लिखना अधिक सुविधाजनक है किन्तु टाइप राइटरों में 'श्र' होने के कारण 'श्रृ' लिखना/टाइप करना अवैज्ञानिक है।

व्यंजन वर्णों के आधे/संयुक्त रूप—परिनिष्ठित देवनागरी के व्यंजन वर्णों के आधे रूप (अ-मात्रा रहित) चार प्रकार से बनाए जाते हैं, यथा—

(1) पूर्ण खड़ी पाईवाले वर्णों की खड़ी पाई हटा कर, यथा—ख्‍ ग्‍ घ्‍ च्‍ ज्‍ झ्‍ ञ्‍ ण्‍ त्‍ थ्‍ ध्‍ न्‍ प्‍ ब्‍ भ्‍ म्‍ य्‍ ल्‍ व्‍ श्‍ ष्‍ स्‍ क्ष्‍ त्र्‍ ज्ञ्‍ श्र्‍ ख़्‍ ग़्‍ ज़्‍ (यथा—ख्याति, ग्यारह, विघ्न, बच्ची, ज्योति, कञ्ज, पुण्य, पत्ता, पथ्य, ध्यान, पन्थ प्यार, ब्याज, सभ्य, म्यान, शय्या, कल्याण, व्यास, श्वास, पुष्ट, स्नेह, लक्ष्य, त्र्यम्बक, शख़्स, नग़्मा, ज़्यादा) हिन्दी के लिए झ्‍ ज्ञ्‍' की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(2) छोटी-सी खड़ी पाईवाले वर्णों के नीचे हल् (्) चिह्न लगा कर, यथा—ङ् छ् ट् ठ् ड् ढ् द् ह् (ड़, ढ़ के आधे रूपों की आवश्यकता नहीं पड़ती), यथा—शङ्का, वाङ्मय, उच्छ्वास, टट्टू, शाठ्यम्, लड्डू, धनाढ्य, विद्या, गद्दी, विह्वल, प्रह्लाद।

(3) हुकवाले वर्णों की हुक हटा कर, यथा—क्‍ क़्‍ फ़्‍ (फ के आधे रूप की ज़्यादा आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल एक शब्द 'फुफ्फुस' अवश्य अर्ध 'फ' से लिखा जाता रहा है), यथा—पक्का, हुक्का, नक़्क़ाशी, दफ़्तर, मुफ़्त।

(4) 'र' के मुख्य तीन रूप, यथा—र्‍ ्र ्र किसी व्यंजन से पूर्व र्‍ आता है, यथा—कर्म, चर्च, बर्र। किसी व्यंजन के बाद ्र ्र आते हैं। इन में ्र छोटी खड़ी पाईवाले व्यंजनों के बाद आता है, यथा—ड्रामा, राष्ट्र, द्रव और ्र पूर्ण खड़ी पाईवाले व्यंजनों के बाद, यथा—क्रम, प्रेम, वज्र। ्र ्र वास्तव में पूर्ण 'र' उच्चरित होते हैं, अर्ध 'र' नहीं, अतः इन का प्रयोग अवैज्ञानिक है। ्र को हटा कर 'क्रम, प्रेम, वज्र, लेखन से शुद्ध वाचन में कोई बाधा नहीं पड़ती। ्र को हटा कर भी 'ड्रामा, राष्ट्र, द्रव' लेखन और शुद्ध वाचन में कोई अड़चन नहीं होगी।

स्वनीय सूचना के लिए किसी भी पूर्ण व्यंजन वर्ण के नीचे हल् चिह्न लगा

कर उस के अ-रहित/अर्ध व्यंजन रूप को व्यक्त किया जा सकता है, यथा—ग् प् छ् ह् क् .फ् र् । शब्द-आरम्भ या शब्द-मध्य में अर्ध व्यंजन वर्ण आने पर अ-रहित उच्चारण ही होता है, यथा—प्यार, पुस्तक । शब्दान्त/अक्षरान्त में पूर्ण वर्ण होने पर भी अ-रहित उच्चारण होता है, यथा—प्यार, पुस्तक [प्यार्, पुस्तक्]

देवनागरी के मानकेतर वर्ण—मानक वर्णों के अतिरिक्त आजकल भी देवनागरी में कुछ अन्य पुराने वर्ण-रूप प्रचलित हैं जिन्हें मानक वर्णों की तुलना में मानकेतर कहा जाएगा । मानकेतर वर्णों की जानकारी पुराने साहित्य के वाचन की दृष्टि से आवश्यक एवं उपयोगी है । इन के लेखन के अभ्यास की आवश्यकता नहीं है । मानकेतर वर्णों का मानक रूप कोष्ठक में लिखा गया है, यथा—

ॠ ॠा ॠ ॠो ॠौ ॠं ॠ:

(अ आ ऋ ओ औ अं अ:)

ख छ झ ण ध भ ल श क्ष ज्ञ

(ख छ झ ण ध भ ल श क्ष ज्ञ)

क्क ङ्क च्च ज्ज ट्ट ड्ड त्त त्त क्त द्द द्म द्भ द्य ब्ब ह्म ह्ल आदि ।

(क्क ङ्क च्च ज्ज ट्ट ड्ड त्त त्त क्त द्द द्म द्भ द्य ब्ब ह्म ह्ल) आदि ।

उपर्युक्त अनेक मानकेतर संयुक्ताक्षरों/संयुक्त वर्णों में मूल वर्णों के अस्तित्व का पता सरलता से नहीं चल पाता था । मुद्रण और टंकण के अतिरिक्त लेखन में भी काफ़ी परेशानी होती थी और कभी-कभी अर्थ का अनर्थ भी हो जाता था, यथा—खाना, खा को 'खाना/रवाना', 'खा/रवा' दोनों प्रकार से पढ़ा जा सकता था । कुछ मानकेतर वर्णों में संरचक रेखाओं (Strokes) की संख्या भी अधिक है ।

देवनागरी वर्णों में सुडौलता बनाए रखने के लिए सुलेख-अभ्यास हेतु आरम्भ में पाँच पंक्तियोंवाली पुस्तिका पर लेखन-अभ्यास किया/कराना चाहिए । इन में ऊपर, नीचे की दो-दो पंक्तियों के मध्य का स्थान मात्रा-चिह्नों के लिए होता है । कुछ अभ्यास होने/करने के बाद तीन पंक्तियों में और बाद में एक पंक्ति पर लेखन किया जाए । अच्छा अभ्यास हो जाने के बाद ही बिना पंक्ति के काग़ज़ पर लिखा जाए ।

देवनागरी-वर्णों का प्रयोग तथा प्रकार्य—लिखित वर्णों का प्रयोग वाचन के लिए होता है । हिन्दी के कुछ क्षेत्रों में 'अ' का वाचन 'ऐ/आ' जैसा करने के कारण 'कमल' को कै मै लै=कमल या का मा ला=कमल बोलते हैं । ऐसा बोलना अज्ञानता/अल्प ज्ञान का सूचक है । 'कमल' को क म ल=कमल कहना ही शुद्ध है ।

शब्द-आदि में तथा उपसर्ग के बाद शब्द-मध्य में 'अ' लिखा जाता है, यथा—अपना, सुअवसर । सूअर, कुँअर (<कुँआरा)/कुँवर (<कुमार) जैसे दो-चार शब्दों के मध्य में 'अ' लिखा जाता है । शब्दान्त में 'अ' का प्रयोग नहीं होता ।

अवैज्ञानिक होने के कारण अमान्य रहा है क्योंकि अ+इ/अ+उ रखने से अइ/ऐ, अउ/औ होता है, इ/उ नहीं। व्यंजन वर्ण के साथ तो स्वर वर्ण की मात्रा जोड़ी जा सकती है किन्तु स्वर वर्ण के साथ दूसरे स्वर वर्ण की मात्रा जोड़ना अवैज्ञानिक है। हाँ, यदि 'अ' को बिना किसी ध्वनि-मूल्य का वर्ण स्वीकार कर के उस में किसी भी स्वर की मात्रा जोड़ना वैज्ञानिक रहेगा।

अँगरेज़ी से आगत कुछ शब्दों को लिखने के लिए ॉ का प्रयोग किया जाता है, यथा—डॉक्टर, चॉक, बॉल, हॉल आदि। ॅ का प्रयोग ह्रस्व ए की ध्वनि को व्यक्त करने के लिए (विशेषतः दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्दों के लिए) किया जाता है। 'श' के साथ 'ऋ' की मात्रा लगाने पर 'शृ/श्रृ' रूप होगा। 'श्रृ' को 'शृ' रूप में लिखना अधिक सुविधाजनक है किन्तु टाइप राइटरों में 'श्र' होने के कारण 'श्रृ' लिखना/टाइप करना अवैज्ञानिक है।

व्यंजन वर्णों के आधे/संयुक्त रूप—परिनिष्ठित देवनागरी के व्यंजन वर्णों के आधे रूप (अ-मात्रा रहित) चार प्रकार से बनाए जाते हैं, यथा—

(1) पूर्ण खड़ी पाईवाले वर्णों की खड़ी पाई हटा कर, यथा—ख्‍ ग्‍ घ्‍ च्‍ ज्‍ झ्‍ ञ्‍ ण्‍ त्‍ थ्‍ ध्‍ न्‍ प्‍ ब्‍ भ्‍ म्‍ य्‍ ल्‍ व्‍ श्‍ ष्‍ स्‍ क्ष्‍ त्र्‍ ज्ञ्‍ श्र्‍ ख़्‍ ग़्‍ ज़्‍ (यथा—ख्याति, ग्यारह, विघ्न, बच्ची, ज्योति, कञ्ज, पुण्य, पत्ता, पथ्य, ध्यान, पन्थ प्यार, ब्याज, सभ्य, म्यान, शय्या, कल्याण, व्यास, श्वास, पुष्ट, स्नेह, लक्ष्य, त्र्यम्बक, शख़्स, नग़्मा, ज़्यादा) हिन्दी के लिए झ्‍ ज्ञ्‍ की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(2) छोटी-सी खड़ी पाईवाले वर्णों के नीचे हल् (्) चिह्न लगा कर, यथा—ङ् छ् ट् ठ् ड् ढ् द् ह् (ड़, ढ़ के आधे रूपों की आवश्यकता नहीं पड़ती), यथा—शङ्का, वाङ्मय, उच्छ्वास, टट्टू, शाठ्यम्, लड्डू, धनाढ्य, विद्या, गद्दी, विह्वल, प्रह्लाद।

(3) हुकवाले वर्णों की हुक हटा कर, यथा—क्‍ क़्‍ फ़्‍ (फ के आधे रूप की ज़्यादा आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल एक शब्द 'फुफ्फुस' अवश्य अर्ध 'फ' से लिखा जाता रहा है), यथा—पक्का, हुक्का, नक़्क़ाशी, दफ़्तर, मुफ़्त।

(4) 'र' के मुख्य तीन रूप, यथा—ˆ ‸ ˎ किसी व्यंजन से पूर्व ˆ आता है, यथा—कर्म, चर्च, बर्र। किसी व्यंजन के बाद ‸ ˎ आते हैं। इन में ‸ छोटी खड़ी पाईवाले व्यंजनों के बाद आता है, यथा—ड्रामा, राष्ट्र, द्रव और ˎ पूर्ण खड़ी पाईवाले व्यंजनों के बाद, यथा—क्रम, प्रेम, वज्र। ˎ ‸ वास्तव में पूर्ण 'र' उच्चरित होते हैं, अर्ध 'र' नहीं, अतः इन का प्रयोग अवैज्ञानिक है। ˎ को हटा कर 'करम, परेम, वजर, लेखन से शुद्ध वाचन में कोई बाधा नहीं पड़ती। ‸ को हटा कर भी 'ड्रामा, राष्ट्र, द्रव' लेखन और शुद्ध वाचन में कोई अड़चन नहीं होगी।

स्वनीय सूचना के लिए किसी भी पूर्ण व्यंजन वर्ण के नीचे हल् चिह्न लगा

कर उस के अ-रहित/अर्ध व्यंजन रूप को व्यक्त किया जा सकता है, यथा—ग् प् छ् ह् क् .फ् र् । शब्द-आरम्भ या शब्द-मध्य में अर्ध व्यंजन वर्ण आने पर अ-रहित उच्चारण ही होता है, यथा—प्यार, पुस्तक । शब्दान्त/अक्षरान्त में पूर्ण वर्ण होने पर भी अ-रहित उच्चारण होता है, यथा—प्यार, पुस्तक [प्यार्, पुस्तक्]

देवनागरी के मानकेतर वर्ण—मानक वर्णों के अतिरिक्त आजकल भी देवनागरी में कुछ अन्य पुराने वर्ण-रूप प्रचलित हैं जिन्हें मानक वर्णों की तुलना में मानकेतर कहा जाएगा । मानकेतर वर्णों की जानकारी पुराने साहित्य के वाचन की दृष्टि से आवश्यक एवं उपयोगी है । इन के लेखन के अभ्यास की आवश्यकता नहीं है । मानकेतर वर्णों का मानक रूप कोष्ठक में लिखा गया है, यथा—

ग्र ग्रा ऋ ग्रो ग्रौ ग्रं ग्र:

(अ आ ऋ ओ औ अं अ:)

ख छ झ ण ध भ ल श क्ष ज्ञ

(ख छ झ ण ध भ ल श क्ष ज्ञ)

क्क ङ्क च्च ज्ज ट्ट ड्ड त्त त्त क्त द्द द्म द्भ द्य ब्ब ह्म ह्ल आदि ।

(क्क ङ्‌क च्च ज्ज ट्‌ट ड्‌ड त्त त्त क्त द्‌द द्‌म द्‌भ द्‌य ब्ब ह्‌म ह्‌ल) आदि ।

उपर्युक्त अनेक मानकेतर संयुक्ताक्षरों/संयुक्त वर्णों में मूल वर्णों के अस्तित्व का पता सरलता से नहीं चल पाता था । मुद्रण और टंकण के अतिरिक्त लेखन में भी काफ़ी परेशानी होती थी और कभी-कभी अर्थ का अनर्थ भी हो जाता था, यथा—खाना, खा को 'खाना/रवाना', 'खा/रवा' दोनों प्रकार से पढ़ा जा सकता था । कुछ मानकेतर वर्णों में संरचक रेखाओं (Strokes) की संख्या भी अधिक है ।

देवनागरी वर्णों में सुडौलता बनाए रखने के लिए सुलेख-अभ्यास हेतु आरम्भ में पाँच पंक्तियोंवाली पुस्तिका पर लेखन-अभ्यास किया/कराना चाहिए । इन में ऊपर, नीचे की दो-दो पंक्तियों के मध्य का स्थान मात्रा-चिह्नों के लिए होता है । कुछ अभ्यास होने/करने के बाद तीन पंक्तियों में और बाद में एक पंक्ति पर लेखन किया जाए । अच्छा अभ्यास हो जाने के बाद ही बिना पंक्ति के काग़ज़ पर लिखा जाए ।

देवनागरी-वर्णों का प्रयोग तथा प्रकार्य—लिखित वर्णों का प्रयोग वाचन के लिए होता है । हिन्दी के कुछ क्षेत्रों में 'अ' का वाचन 'ऐ/आ' जैसा करने के कारण 'कमल' को कै मै लै=कमल या का मा ला=कमल बोलते हैं । ऐसा बोलना अज्ञानता/अल्प ज्ञान का सूचक है । 'कमल' को क म ल=कमल कहना ही शुद्ध है ।

शब्द-आदि में तथा उपसर्ग के बाद शब्द-मध्य में 'अ' लिखा जाता है, यथा—अपना, सुअवसर । सूअर, कुँअर (<कुँआरा)/कुँवर (<कुमार) जैसे दो-चार शब्दों के मध्य में 'अ' लिखा जाता है । शब्दान्त में 'अ' का प्रयोग नहीं होता ।

आ, इ, ई, उ, ऊ में केवल 'इ, उ' का शब्दान्त में प्रयोग नहीं होता। बोलियों के शब्दों में इन का लेखन हो सकता है। ये सभी वर्ण शब्द-आरम्भ, शब्द-मध्य में आ सकते हैं। आ, ई, उ, ऊ के मात्रा-चिह्न शब्दों के मध्य, अन्त में लिखे जा सकते हैं, केवल 'इ' का मात्रा-चिह्न शब्द के आरम्भ में (यथा—कि, हिन्दी) लिखा जाता है।

'ऋ' वर्ण तथा इस के मात्रा-चिह्न का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। 'ऋ' से युक्त शब्दों का वाचन (और उच्चारण भी) मानक हिन्दी में 'रि' है। विन्ध्याचल के दक्षिण की विभिन्न भाषाओं में इस का मानक वाचन (और उच्चारण भी) 'रु' माना जाता है। हिन्दी की कुछ बोलियों में इस का वाचन 'र' भी है। इस प्रकार आज भारत की किसी भी भाषा में 'ऋ' का मूल स्वर रूप प्राप्त नहीं है। वास्तव में पाणिनि के काल में ही 'ऋ, लृ' मूल स्वर नहीं रह गए थे, इसीलिए पाणिनि ने दोनों को अष्टाध्यायी में मूल स्वरवाले पहले सूत्र 'अइउण्' में न रख कर दूसरे सूत्र 'ऋलृक्' में रखा है। 'Phonetics in Ancient India' में इस के अनुमानित उच्चारण-समय का विभाजन इस प्रकार किया गया है—$\frac{\text{अ}}{4}+\frac{\text{र}}{2}+\frac{\text{अ}}{4}$ गुण सन्धि में ऋ 'र' में परिवर्तित है और 'र' व्यंजन है। इस प्रकार ऋ वर्ण 'र' के साथ मूल स्वर 'अ/इ/उ' की मात्रा का युक्त रूप है, जैसे अन्य व्यंजनों में स्वरों की मात्राएँ जुड़ती हैं।

ए, ऐ, ओ औ वर्ण तथा इन के मात्रा-चिह्न शब्द-मध्य और शब्दान्त में आते हैं। मात्रा-चिह्न शब्द-आरम्भ में नहीं आते। हिन्दी-इतर भाषी लोगों को ए, ऐ वर्ण तथा इन के मात्रा-चिह्न े ै परेशानी पैदा करते हैं। अच्छा रहता यदि ए, ऐ पर भी 'ओ, औ' की भाँति एक, दो मात्रा-चिह्न होते। 'ओ, औ' वर्णों का 'अ' वर्ण पर मात्रा-चिह्न लगा कर निर्माण करना अवैज्ञानिक है।

अं, अः से व्यक्त होनेवाली ध्वनियों को अनुस्वार, विसर्ग कहा जाता है क्योंकि ये ध्वनियाँ स्वरों की भाँति अबाध रूप से उच्चरित नहीं होतीं, किन्तु इन का प्रयोग स्वर-वर्णों के मात्रा-चिह्नों की तरह दूसरे व्यंजनों के साथ किया जाता है, यथा—पंखा, अंगूर, कंचन, डंडा, चंपक, बंधन, अतः, प्रायः आदि। ये दोनों ध्वनियाँ अन्य व्यंजनों की भाँति स्वरों के पूर्व न आ कर स्वरों के बाद ही आती हैं। चूँकि ये दोनों ध्वनियाँ पूर्णतः न तो स्वरों से मिल पाती हैं और न व्यंजनों से, इसलिए इन्हें **अयोगवाह** (अ = नहीं, योग = मेल, वाह = वहन करना/रखना) कहा जाता है।

'अं' का वाचन तीन प्रकार से किया जाता है—अम्/अङ्/अन्। इस वर्ण का ध्वन्यात्मक मूल्य भी पाँच प्रकार का है—ङ्, ञ्, ण्, न्, म्। स्वर से पूर्व आने पर अनुस्वार संस्कृत में 'म्' बन जाता है, यथा—सं+आहार/उच्चय/ईक्षा=

समाहार, समुच्चय, समीक्षा। 'अं' वर्ण का मात्रा-चिह्न (ं) शिरोरेखा बिन्दु/शीर्ष बिन्दु (या बिन्दी) कहा जाता है। शब्द-आदि में केवल 'अं' आता है, अन्यत्र (ं)। 'अः' वर्ण का मात्रा-चिह्न (:) विसर्ग कहा जाता है। विसर्ग का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में होता है। विसर्ग-चिह्न शब्द-आदि में नहीं आता, शब्द-मध्य, शब्दान्त में आता है। इस का वाचन (उच्चारण भी) अघोष 'ह्' की भाँति होता है।

अनुनासिकता-युक्त स्वरों को लिखते समय (ँ) चन्द्रबिन्दु चिह्न का प्रयोग किया जाता है, यथा—ऊँट, आँधी। जब शिरोरेखा के ऊपर चन्द्रबिन्दु के अतिरिक्त पहले से ही कोई अन्य चिह्न और होता है, तब चन्द्रबिन्दु के स्थान पर केवल शीर्षबिन्दु का प्रयोग करते है, यथा—ईंट, क्यों, में, आर्यों। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, पं० सीताराम चतुर्वेदी आदि कई विद्वान प्रत्येक स्थिति में चन्द्रबिन्दु-प्रयोग के समर्थक रहे हैं। मुद्रण, टंकण में अनुनासिक स्वर का शुद्ध रूप बनाए रखने के लिए शीर्ष-शून्य/शिरोरेखा शून्य (◌̊) का व्यवहार विभिन्न परेशानियों को दूर करने में अति सहायक सिद्ध होगा। उत्तर भारत (तथा अन्य क्षेत्रों) से प्रकाशित कई समाचार पत्र-पत्रिकाएँ प्रत्येक स्थिति में चन्द्रबिन्दु के स्थान पर शीर्षबिन्दु का प्रयोग कर अहिन्दी भाषियों के लिए ही नहीं (कभी-कभी हिन्दी भाषियों के लिए भी) मानक वाचन की कठिनाई पैदा करने लगी हैं।

संस्कृत-व्याकरण का अनुकरण करते हुए कुछ व्याकरण-ग्रन्थों में हिन्दी की कई ध्वनियों को वर्णमाला में समाहित न कर केवल तीन वर्गों में देवनागरी वर्णमाला को विभाजित किया गया है, यथा—1. स्पर्श व्यंजन—क वर्ग (क ख ग घ ङ), च वर्ग (च छ ज झ ञ), ट वर्ग (ट ठ ड ढ ण), त वर्ग (त थ द ध न), प वर्ग (प फ ब भ म) 2. अन्तस्थ व्यंजन (य र ल व) 3. ऊष्म व्यंजन (श ष स ह)। यह वर्गीकरण संस्कृत-सन्धि व्यवस्था को समझने में अवश्य सहायक है किन्तु देवनागरी वर्णमाला का पूरा परिचय नहीं कराता।

संस्कृत-परम्परा का अनुकरण करते हुए कुछ व्याकरण-ग्रन्थों में 'क्ष त्र ज्ञ श्र' का संयुक्त व्यंजनों के रूप में विशेष उल्लेख किया जाता है। वास्तव में इन में त्र/त्र/त्र, श्र/श्र जितने स्पष्ट संयुक्त रूप हैं, 'क्ष, ज्ञ' उतने ही जटिल रूप हैं और वैसा ही जटिल इन का वाचन (या उच्चारण) है।

व्यंजन वर्णों में 'ङ, ञ, ण, ड़, ढ़' शब्द-आरम्भ में नहीं आते। शेष सभी व्यंजन शब्द-आदि, शब्द-मध्य, तथा शब्दान्त में आते हैं। 'ष' का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। हिन्दी भाषा में इस का वाचन (तथा उच्चारण) 'श्' वत् है, इसलिए क्+ष='क्ष' का वाचन तथा उच्चारण 'क्श' (कुछ लोगों में क्छ) वत् होता है। 'क्ष' का लेखन केवल संस्कृत से आगत शब्दों में होता है, यथा—कक्षा, रक्षा, दीक्षा, क्षात्र, कक्ष आदि।

'ष' से युक्त कुछ शब्द हैं—षट्, षड्यन्त्र, षड्ऋतु, षण्मुख, षडानन, षट्कोण, षोडश, षोडशी; षष्ठि, निष्कपट, निष्पाप, निष्फल, नष्ट (<नश्+त), प्रविष्ट (<प्र+विश्+त), ऊष्म, ईर्ष्या, विष्णु, सहिष्णु।

ज्ञ (<ज्ञ) का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। हिन्दी के अपने किसी शब्द में 'ज्ञ' का व्यवहार नहीं होता। इसलिए 'ज्ञ' का वाचन और उच्चारण 'ग्य' वत् होता है। 'ज्ञ' के निकट कोई नासिक्य ध्वनि आ जाने पर इस का वाचन तथा उच्चारण 'ग्यँ' वत् होता है, यथा—यज्ञ, अज्ञ [यग्ग्य्, अग्ग्य्], ज्ञान, विज्ञान [ग्याँन्, विग्ग्याँन्]। कुछ लोग इस का वाचन तथा उच्चारण 'ज्यँ' वत् भी करते हैं, यथा—यज्ञ [यज्ज्यँ]

(:) **विसर्ग चिह्नों का प्रयोग** केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। हिन्दी का अपना कोई शब्द विसर्गयुत नहीं है, अतः छह को छः लिखना ग़लत है। संस्कृत के सभी विसर्गान्त शब्दों का वाचन, उच्चारण हान्त वत् होता है, यथा—पुनः, वस्तुतः, पूर्णतः, अतः, प्रायः [पुनह्, वस्तुतह्, पूर्णतह्, अतह् प्रायह्] हिन्दी में संस्कृत के अनेक शब्द विसर्ग (-स कारान्त) हटा कर ग्रहण कर लिए गए हैं, यथा—तप<तपः (तपस्), तम<तमः (तमस्), नभ<नभः (नभस्), मन <मनः (मनस्), यश<यशः (यशस्), सिर<शिरः (शिरस्)। प्रातः, प्रातःकाल में विसर्ग का स्पष्ट उच्चारण है किन्तु संस्कृत दुःख को अब लोग बिना विसर्ग के ही बोलते हैं और प्रायः 'दुख' ही लिखने लगे हैं।

(ृ) **का प्रयोग** केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। हिन्दी के अपने किसी शब्द में 'ऋ' के मात्रा-चिह्न का प्रयोग नहीं होता। 'श' का अर्ध व्यंजन (श्) है। पुरानी नागरी में यह (श्‍) था, यथा—काश्‍त (काश्त), श्‍याम (श्याम)। श+ऋ/ृ=शृ (शृ), श+र=श्र (श्र/श्‍र)। टंकण कल में 'शृ' न होने के कारण श्रृंगार लिखना या छापना अशुद्ध है। इसे शृंगार या शृंगार लिखना ही उचित है।

(ं) **शिरोरेखा-बिन्दु/शीर्ष-बिन्दु का प्रयोग** तीन प्रकार की ध्वनियों को सूचित करने के लिए होता है, यथा—(1) वर्गीय नासिक्य ध्वनि को व्यक्त करने के लिए विकल्प से, जैसे—पंखा (पङ्खा), चंचल (चञ्चल), अंडा (अण्डा), कुंदन (कुन्दन), संभाषण (सम्भाषण)। (2) अनुस्वार ध्वनि को व्यक्त करने के लिए, यथा—संयम, संरचना, संलाप, संवाद, वंशी, संसार, संहार। विशुद्ध अनुस्वार ध्वनिवाले शब्द केवल संस्कृत से आगत शब्द ही हैं, अतः इन में शिरोरेखा-बिन्दु का ही प्रयोग किया जाता है। (3) शिरोरेखा के ऊपर कोई अतिरिक्त चिह्न होने पर अनुनासिकता की ध्वनि को व्यक्त करने के लिए चन्द्रबिन्दु के स्थान पर केवल बिन्दु/शीर्ष बिन्दु का प्रयोग किया जाता है, यथा—ईंधन, में, हैं, क्यों, भौं, कर्मों। लिखूँ-लिखें, कुआँ-कुओं, चिड़ियाँ-चिड़ियों में अनुनासिकता के लिए दुहरे लिपि-चिह्नों का

प्रयोग चिन्तनीय है। हिन्दी-शब्दों के अन्त में केवल अनुनासिकता ही आती है। शब्दान्त में नासिक्य व्यंजन वर्णों का पूर्ण रूप लिखा जाता है, केवल एवं, स्वयं (एवम्, स्वयम्) में शिरोरेखा-बिन्दु का प्रयोग होता है।

ञ, ण का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों में ही मिलता है। लेखन में इन के अर्ध रूप के स्थान पर शिरोरेखा-बिन्दु का प्रयोग बढ़ चला है। **ङ का प्रयोग** यद्यपि हिन्दी के शब्दों में भी प्राप्त है, तथापि लेखन में इस के अर्ध रूप के स्थान पर शिरोरेखा-बिन्दु का प्रयोग बढ़ चला है। **न, म का प्रयोग** अन्य नासिक्य व्यंजन वर्णों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। इन के अर्ध रूप के लिए शिरोरेखा-बिन्दु का प्रचलन अभी विकल्प से, तथा कुछ कम ही है। संस्कृत से आगत कुछ शब्दों के लेखन में शिरोरेखा-बिन्दु का प्रयोग न हो कर केवल अर्ध पंचमाक्षर का ही प्रयोग होता है, यथा—मृण्मयी, तन्मय, वाङ्मय आदि।

देवनागरी-लेखन में **वर्ण-संयोजन** दो प्रकार का होता है—1. व्यंजन+स्वर 2. व्यंजन+व्यंजन, यथा—क [क्]+अ=क, क+आ/इ (ा/ि)=का/कि; क्+क=क्+क=क्क। 'क्क' जैसे संयोजन को संयुक्ताक्षर रूप भी कहा जाता है। एकाकी वर्ण को सरलाक्षर कह सकते हैं, यथा—अ आ क ग आदि। 'अ' का मात्रा-चिह्न न होने से और हिन्दी में अ-लोप के साथ उच्चारण होने के कारण हिन्दी शब्दों में समस्त व्यंजन वर्णों के दो-दो ध्वन्यात्मक मूल्य (Phonetic values) हैं—1. 'अ'-सहित, यथा—'कमला' का 'क' अ-सहित (क+अ) है 2. 'अ'-रहित, यथा—'नमक' का 'क' अ-रहित (क-अ) [क्] है।

संयुक्त व्यंजन के रूप में 'र' के तीन रूप प्रचलित हैं—1. र्+व्यंजन= र्+व्यंजन, यथा—कर्‍म, बर्‍र=कर्म, बर्र 2. लघु खड़ी पाई के अतिरिक्त अन्य व्यंजन+र=व्यंजन+् यथा—उग्‍र, चक्‍र=उग्र, चक्र (वास्तव में यह देवनागरी की अपनी कमी है क्योंकि यहाँ पूर्ण 'र' के स्थान पर अर्ध र् का प्रयोग किया जा रहा है) 3. लघु खड़ी पाईवाले व्यंजन (यथा—छ ट ठ ड ढ द)+र=व्यंजन+ ्र, यथा—राष्ट्‍र, ड्‍रामा=राष्ट्र, ड्रामा (यह भी देवनागरी की अपनी कमी है क्योंकि यहाँ पूर्ण 'र' के स्थान पर अर्ध र् का प्रयोग किया जा रहा है)।

संयुक्ताक्षरों के साथ 'इ' की मात्रा (ि) का लेखन—वृद्धि, समृद्धि, बुद्धि, चिह्नित, चिट्ठियाँ, स्थिति, परिस्थिति, शक्ति आदि को 'बुदि्ध, वृदि्ध, स्थिति, शक्ति' जैसा लिखना अशुद्ध है क्योंकि 'दि्' में एक साथ दो मात्रा-चिह्नों (्=अ-लोप चिह्न, ि=इ) का प्रयोग सिद्धान्ततः तथा व्यवहारतः अशुद्ध ठहरता है। 'द्' का (शब्दान्त में) अलग से अस्तित्व ('शरद्, परिषद्' में) प्राप्त है, अतः द्ध संयुक्ताक्षर है न कि एक पूर्ण वर्ण। 'द्' की भाँति 'क्, स्' तो शब्दान्त में प्राप्त हैं, यथा—'वाक्, तेजस्' किन्तु 'व स' नहीं। आरम्भिक कक्षाओं के हिन्दी सीखनेवाले छात्र 'बु दि् ध, वृ दि् ध, स थि ति' आदि के वाचन में अत्यन्त कठिनाई

का अनुभव करेंगे। 'बुद् धि, वृद् धि' में अक्षर-विभाजन भी स्पष्ट है, जब कि 'स्थिति, शक्ति' में अस्पष्ट है।

संयुक्ताक्षर/संयुक्त वर्ण—ऐसे दो या अधिक व्यंजन वर्ण जिन के मध्य 'अ' लुप्त रहता है 'संयोगी/संयुक्त व्यंजन या वर्ण' कहलाते हैं। इन्हें संयुक्ताक्षर भी कहा जाता रहा है। हिन्दी में प्राप्त संयुक्ताक्षर ये हैं—

क—क्क, क्ख, क्च, क्त, क्म, क्य, क्र/क्र, क्ल, क्व, क्ष/क्ष, क्ट्र/क्ट्र, क्श, क्स

ख—ख्य, ख्र/ख्र

ग—ग्ग, ग्घ, ग्ण, ग्द, ग्ध, ग्न, ग्प, ग्म, ग्य, ग्र/ग्र, ग्ल, ग्व, ग्न्य, ग्भ्र/ग्भ्र

घ—घ्न, घ्य, घ्र/घ्र

ङ—ङ्क, ङ्ख, ङ्ग, ङ्घ, ङ्म, ङ्क्त, ङ्ग्य, ङ्ग्र/ङ्ग्र

च—च्च, च्छ, च्य, च्छ्व

छ—छ्र/छ्र

ज—ज्ज, ज्झ, ज्ञ/ज्ञ, ज्य, ज्र/ज्र, ज्व

ञ—ञ्च, ञ्छ, ञ्ज, ञ्झ

ट—ट्ट, ट्ठ, ट्य, ट्र/ट्र, ट्व

ठ—ठ्य, ठ्र/ठ्र

ड—ड्ग, ड्ड, ड्ढ, ड्म, ड्य, ड्र/ड्र

ढ—ढ्य, ढ्र/ढ्र

ण—ण्ट, ण्ठ, ण्ड, ण्ढ, ण्ण, ण्म, ण्य, ण्व, ण्ठ्य, ण्ड्य, ण्ड्र/ण्ड्र

त—त्क, त्ख, त्त, त्थ, त्न, त्प, त्फ, त्म, त्य, त्र/त्र/त्र, त्ल, त्व, त्स, त्क्ष, त्प्र, त्म्य, त्स्न, त्स्य, त्र्य/त्र्य

थ—थ्य, थ्र/थ्र, थ्व

द—द्ग, द्घ, द्द, द्ध, द्न, द्ब, द्भ, द्म, द्य, द्र/द्र, द्व, द्भ्र/द्भ्र

ध—ध्न, ध्म, ध्य, ध्र, ध्र, ध्व

न—न्त, न्थ, न्द, न्ध, न्न, न्म, न्य, न्व, न्स, (न्ह), न्त्व, न्द्य, न्ध्र, न्स्प, न्द्र/न्द्र, न्ध्य, न्त्र, न्द्य, न्त्य, न्त्र्य, न्ज़

प—प्त, प्न, प्प, प्म, प्य, प्र/प्र, प्ल, प्स, प्त्य

फ—फ्य

ब—ब्ज, ब्त, ब्द, ब्ध, ब्न, ब्ब, ब्भ, ब्य, ब्र/ब्र, ब्ल, ब्श, ब्ज़

भ—भ्न, भ्य, भ्र/भ्र

म—म्त, म्द, म्न, म्प, म्फ, म्ब, म्भ, म्म, म्य, म्र/म्र, म्ल, म्व, (म्ह), म्प्य, म्प्र/म्प्र

य—य्य

र—र्क/र्क, र्ख/र्ख, र्ग/र्ग, र्घ/र्घ, र्च/र्च, र्छ/र्छ, र्ज/र्ज, र्झ/र्झ, र्ट/र्ट, र्ड/र्ड, र्ण/र्ण, र्त/र्त, र्थ/र्थ, र्द/र्द, र्ध/र्ध, र्न/र्न, र्प/र्प, र्ब/र्ब, र्भ/र्भ, र्म/र्म,

र्‌य/र्य, र्‌र/र्र, र्‌ल/र्ल, र्‌व/र्व, र्‌श/र्श, र्‌ष/र्ष, र्‌स/र्स, र्‌ह/र्ह, र्‌क़/र्क़, र्‌ख़/र्ख़, र्‌ग़/र्ग़, र्‌ज़/र्ज़, र्‌फ़/र्फ़, र्‌फ़्य/र्फ़्य, र्‌द्र/र्द्र, र्‌ध्व/र्ध्व, र्‌त्स/र्त्स, र्‌भ्र/र्भ्र, र्‌ख/र्ख, र्‌ष्य/र्ष्य, र्‌त्स्य/र्त्स्य

ल—ल्क, ल्ग, ल्च, ल्छ, ल्ट, ल्ड, ल्त, ल्थ, ल्द, ल्प, ल्फ, ल्ब, ल्भ, ल्म, ल्य, ल्ल, ल्व, ल्स, ल्ज़, ल्फ़

व—व्य, व्व, व्र/व्र

श—श्क, श्च, श्छ, श्त, श्न, श्म, श्य, श्र/श्र, श्ल, श्व, श्श, श्क़

ष—ष्क, ष्ट, ष्ठ, ष्ण, ष्प, ष्म, ष्य, ष्व, ष्ट्र/ष्ट्र, ष्ठ्य, ष्प्र/ष्प्र

स—स्क, स्ख, स्ज, स्ट, स्त, स्थ, स्द, स्न, स्प, स्फ, स्ब, स्म, स्य, स्र/स्र, स्ल, स्व, स्स, स्ख़, स्थ्य, स्त्र/स्त्र/स्त्र

ह—ह्‌न, ह्‌म, ह्‌य, ह्‌र/ह्र, ह्‌ल, ह्‌व

क्ष—क्ष्म, क्ष्ण, क्ष्य, क्ष्व

क़—क़्त, क़्फ़, क़्ल, क़्श, क़्स

ख़—ख़्त, ख़्म, ख़्य, ख़्व, ख़्श

ग़—ग़्म

ज़—ज़्ज़, ज़्ब, ज़्म, ज़्य

फ़—फ़्ट, फ़्त, फ़्र/फ़्र, फ़्ल, फ़्य, फ़्ज़, फ़्फ

देवनागरी अंक—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०

का अनुभव करेंगे। 'बुद् धि, वृद् धि' में अक्षर-विभाजन भी स्पष्ट है, जब कि 'स्थिति, शक्ति' में अस्पष्ट हैं।

संयुक्ताक्षर/संयुक्त वर्ण—ऐसे दो या अधिक व्यंजन वर्ण जिन के मध्य 'अ' लुप्त रहता है 'संयोगी/संयुक्त व्यंजन या वर्ण' कहलाते हैं। इन्हें संयुक्ताक्षर भी कहा जाता रहा है। हिन्दी में प्राप्त संयुक्ताक्षर ये हैं—

क—क्क, क्ख, क्च, क्त, क्म, क्य, क्र/क्र, क्ल, क्व, क्ष/क्ष, क्ट्र/क्ट्र, क्श, क्स

ख—ख्य, ख्र/ख्र

ग—ग्ग, ग्घ, ग्ण, ग्द, ग्ध, ग्न, ग्प, ग्म, ग्य, ग्र/ग्र, ग्ल, ग्व, ग्न्य, ग्भ्र/ग्भ्र

घ—घ्न, घ्य, घ्र/घ्र

ङ—ङ्क, ङ्ख, ङ्ग, ङ्घ, ङ्म, ङ्क्त, ङ्ग्य, ङ्ग्र/ङ्ग्र

च—च्च, च्छ, च्य, च्छ्व

छ—छ्र/छ्र

ज—ज्ज, ज्झ, ज्ञ/ज्ञ, ज्य, ज्र/ज्र, ज्व

ञ—ञ्च, ञ्छ, ञ्ज, ञ्झ

ट—ट्ट, ट्ठ, ट्य, ट्र/ट्र, ट्व

ठ—ठ्य, ठ्र/ठ्र

ड—ड्ग, ड्ड, ड्ढ, ड्म, ड्य, ड्र/ड्र

ढ—ढ्य, ढ्र/ढ्र

ण—ण्ट, ण्ठ, ण्ड, ण्ढ, ण्ण, ण्म, ण्य, ण्व, ण्ठ्य, ण्ड्य, ण्ड्र/ण्ड्र

त—त्क, त्ख, त्त, त्थ, त्न, त्प, त्फ, त्म, त्य, त्र/त्र/त्र, त्ल, त्व, त्स, त्क्ष, त्प्र, त्म्य, त्स्न, त्स्य, त्र्य/त्र्य

थ—थ्य, थ्र/थ्र, थ्व

द—द्ग, द्घ, द्द, द्ध, द्न, द्ब, द्भ, द्म, द्य, द्र/द्र, द्व, द्भ्र/द्भ्र

ध—ध्न, ध्म, ध्य, ध्र, ध्र, ध्व

न—न्त, न्थ, न्द, न्ध, न्न, न्म, न्य, न्व, न्स, (न्ह), न्त्व, न्द्य, न्ध्र, न्स्प, न्द्र/न्द्र, न्ध्य, न्त्र, न्द्य, न्त्य, न्त्र्य, न्ज

प—प्त, प्न, प्प, प्म, प्य, प्र/प्र, प्ल, प्स, प्त्य

फ—फ्य

ब—ब्ज, ब्त, ब्द, ब्ध, ब्न, ब्ब, ब्भ, ब्य, ब्र/ब्र, ब्ल, ब्श, ब्ज़

भ—भ्न, भ्य, भ्र/भ्र

म—म्त, म्द, म्न, म्प, म्फ, म्ब, म्भ, म्म, म्य, म्र/म्र, म्ल, म्व, (म्ह), म्प्य, म्प्र/म्प्र

य—य्य

र—र्क/र्क, र्ख/र्ख, र्ग/र्ग, र्घ/र्घ, र्च/र्च, र्छ/र्छ, र्ज/र्ज, र्झ/र्झ, र्ट/र्ट, र्ड/र्ड, र्ण/र्ण, र्त/र्त, र्थ/र्थ, र्द/र्द, र्ध/र्ध, र्न/र्न, र्प/र्प, र्ब/र्ब, र्भ/र्भ, र्म/र्म,

र्‌य/र्य, र्‌र/र्र, र्‌ल/र्ल, र्‌व/र्व, र्‌श/र्श, र्‌ष/र्ष, र्‌स/र्स, र्‌ह/र्ह, र्‌क़/र्क़, र्‌ख़/र्ख़, र्‌ग़/र्ग़, र्‌ज़/र्ज़, र्‌फ़/र्फ़; र्‌फ़्य/र्फ़्य, र्‌द्र/र्द्र, र्‌ध्व/र्ध्व, र्‌त्स/र्त्स, र्‌भ्र/र्भ्र, र्‌ख/र्ख, र्‌ष्य/र्ष्य, र्‌त्स्य/र्त्स्य

ल—ल्क, ल्ग, ल्च, ल्छ, ल्ट, ल्ड, ल्त, ल्थ, ल्द, ल्प, ल्फ, ल्ब, ल्भ, ल्म, ल्य, ल्ल, ल्व, ल्स, ल्ज़, ल्फ़

व—व्य, व्व, व्र/व्र

श—श्क, श्च, श्छ, श्त, श्न, श्म, श्य, श्र/श्र, श्ल, श्व, श्श, श्क़

ष—ष्क, ष्ट, ष्ठ, ष्ण, ष्प, ष्म, ष्य, ष्व, ष्ट्र/ष्ट्र, ष्ठ्य, ष्प्र/ष्प्र

स—स्क, स्ख, स्ज, स्ट, स्त, स्थ, स्द, स्न, स्प, स्फ, स्ब, स्म, स्य, स्र/स्र, स्ल, स्व, स्स, स्ख़, स्थ्य, स्त्र/स्त्र/स्त्र

ह—ह्‌न, ह्‌म, ह्‌य, ह्‌र/ह्र, ह्‌ल, ह्‌व

क्ष—क्ष्म, क्ष्ण, क्ष्य, क्ष्व

क़—क़्त, क़्फ़, क़्ल, क़्श, क़्स

ख़—ख़्त, ख़्म, ख़्य, ख़्व, ख़्श

ग़—ग़्म

ज़—ज़्ज़, ज़्ब, ज़्म, ज़्य

फ़—फ़्ट, फ़्त, फ़्र/फ़्र, फ़्ल, फ़्य, फ़्ज़, फ़्फ़

देवनागरी अंक—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०

का अनुभव करेंगे। 'बुद् धि, वृद् धि' में अक्षर-विभाजन भी स्पष्ट है, जब कि 'स्थिति, शक्ति' में अस्पष्ट है।

संयुक्ताक्षर/संयुक्त वर्ण—ऐसे दो या अधिक व्यंजन वर्ण जिन के मध्य 'अ' लुप्त रहता है 'संयोगी/संयुक्त व्यंजन या वर्ण' कहलाते हैं। इन्हें संयुक्ताक्षर भी कहा जाता रहा है। हिन्दी में प्राप्त संयुक्ताक्षर ये हैं—

क—क्क, क्ख, क्च, क्त, क्म, क्य, क्र/क्र, क्ल, क्व, क्ष/क्ष, क्ट्र/क्ट्र, क्श, क्स

ख—ख्य, ख्र/ख्र

ग—ग्ग, ग्घ, ग्ण, ग्द, ग्ध, ग्न, ग्प ग्म, ग्य, ग्र/ग्र, ग्ल, ग्व, ग्न्य, ग्भ्र/ग्भ्र

घ—घ्न, घ्य, घ्र/घ्र

ङ—ङ्क, ङ्ख, ङ्ग, ङ्घ, ङ्म, ङ्क्त, ङ्ग्य, ङ्ग्र/ङ्ग्र

च—च्च, च्छ, च्य, च्छ्व

छ—छ्र/छ्र

ज—ज्ज, ज्झ, ज्ञ/ज्ञ, ज्य, ज्र/ज्र, ज्व

ञ—ञ्च, ञ्छ, ञ्ज, ञ्झ

ट—ट्ट, ट्ठ, ट्य, ट्र/ट्र, ट्व

ठ—ठ्य, ठ्र/ठ्र

ड—ड्ग, ड्ड, ड्ढ, ड्म, ड्य, ड्र/ड्र

ढ—ढ्य, ढ्र/ढ्र

ण—ण्ट, ण्ठ, ण्ड, ण्ढ, ण्ण, ण्म, ण्य, ण्व, ण्ठ्य, ण्ड्य, ण्ड्र/ण्ड्र

त—त्क, त्ख, त्त, त्थ, त्न, त्प, त्फ, त्म, त्य, त्र,/त्र/त्र, त्ल, त्व, त्स, त्क्ष, त्प्र, त्म्य, त्स्न, त्स्य, त्र्य/त्र्य

थ—थ्य, थ्र/थ्र, थ्व

द—द्ग, द्घ, द्द, द्ध, द्न, द्व, द्भ, द्म, द्य, द्र/द्र, द्व, द्भ्र/द्भ्र

ध—ध्न, ध्म, ध्य, ध्र, ध्र, ध्व

न—न्त, न्थ, न्द, न्ध, न्न, न्म, न्य, न्व, न्स, (न्ह), न्त्व, न्द्य, न्ध्र, न्स्प, न्द्र/न्द्र, न्ध्य, न्त्र, न्द्य, न्त्य, न्त्र्य, न्ज़

प—प्त, प्न, प्प, प्म, प्य, प्र/प्र, प्ल, प्स, प्त्य

फ—फ्य

ब—ब्ज, ब्त, ब्द, ब्ध, ब्न, ब्ब, ब्भ, ब्य, ब्र,/ब्र, ब्ल, ब्श, ब्ज़

भ—भ्न, भ्य, भ्र/भ्र

म—म्त, म्द, म्न, म्प, म्फ, म्ब, म्भ, म्म, म्य, म्र/म्र, म्ल, म्व, (म्ह), म्प्य, म्प्र/म्प्र

य—य्य

र—र्क/र्क, र्ख/र्ख, र्ग/र्ग, र्घ/र्घ, र्च/र्च, र्छ/र्छ, र्ज/र्ज, र्झ/र्झ, र्ट/र्ट, र्ड/र्ड, र्ण/र्ण, र्त/र्त, र्थ/र्थ, र्द/र्द, र्ध/र्ध, र्न/र्न, र्प/र्प, र्ब/र्ब, र्भ/र्भ, र्म/र्म,

र्‌य/र्य, र्‌र/र्र, र्‌ल/र्ल, र्‌व/र्व, र्‌श/र्श, र्‌ष/र्ष, र्‌स/र्स, र्‌ह/र्ह, र्‌क़/र्क़, र्‌ख़/र्ख़, र्‌ग़/र्ग़, र्‌ज़/र्ज़, र्‌फ़/र्फ़; र्‌फ़्य/र्फ़्य, र्‌द्‌र/र्द्र, र्‌ध्व/र्ध्व, र्‌त्स/र्त्स, र्‌भ्र/र्भ्र, र्‌ख/र्ख, र्‌ष्य/र्ष्य, र्‌त्स्य/र्त्स्य

ल—ल्क, ल्ग, ल्च, ल्छ, ल्ट, ल्ड, ल्त, ल्थ, ल्द, ल्प, ल्फ, ल्ब, ल्भ, ल्म, ल्य, ल्ल, ल्व, ल्स, ल्ज़, ल्फ़

व—व्य, व्व, व्‌र/व्र

श—श्क, श्च, श्छ, श्त, श्न, श्म, श्य, श्‌र/श्र, श्ल, श्व, श्श, श्क़

ष—ष्क, ष्ट, ष्ठ, ष्ण, ष्प, ष्म, ष्य, ष्व, ष्ट्‌र/ष्ट्र, ष्ठ्य, ष्प्‌र/ष्प्र

स—स्क, स्ख, स्ज, स्ट, स्त, स्थ, स्द, स्न, स्प, स्फ, स्ब, स्म, स्य, स्‌र/स्र, स्ल, स्व, स्स, स्ख़, स्थ्य, स्त्‌र/स्त्र/स्त्र

ह—ह्‌न, ह्‌म, ह्‌य, ह्‌र/ह्र, ह्‌ल, ह्‌व

क्ष—क्ष्म, क्ष्ण, क्ष्य, क्ष्व

क़—क़्त, क़्फ़, क़्ल, क़्श, क़्स

ख़—ख़्त, ख़्म, ख़्य, ख़्व, ख़्श

ग़—ग़्म

ज़—ज़्ज़, ज़्ब, ज़्म, ज़्य

फ़—फ़्ट, फ़्त, फ़्‌र/फ़्र. फ़्ल, फ़्य, फ़्ज़, फ़्फ

देवनागरी अंक—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०

का अनुभव करेंगे। 'बुद् धि, वृद् धि' में अक्षर-विभाजन भी स्पष्ट है, जब कि 'स्थिति, शक्ति' में अस्पष्ट है।

संयुक्ताक्षर/संयुक्त वर्ण—ऐसे दो या अधिक व्यंजन वर्ण जिन के मध्य 'अ' लुप्त रहता है 'संयोगी/संयुक्त व्यंजन या वर्ण' कहलाते हैं। इन्हें संयुक्ताक्षर भी कहा जाता रहा है। हिन्दी में प्राप्त संयुक्ताक्षर ये हैं—

क—क्क, क्ख, क्च, क्त, क्म, क्य, क्र/क्र, क्ल, क्व, क्ष/क्ष, क्ट्र/क्ट्र, क्श, क्स

ख—ख्य, ख्र/ख्र

ग—ग्ग, ग्घ, ग्ण, ग्द, ग्ध, ग्न, ग्प ग्म, ग्य, ग्र/ग्र, ग्ल, ग्व, ग्न्य, ग्भ्र/ग्भ्र

घ—घ्न, घ्य, घ्र/घ्र

ङ—ङ्क, ङ्ख, ङ्ग, ङ्घ, ङ्म, ङ्क्त, ङ्ग्य, ङ्ग्र/ङ्ग्र

च—च्च, च्छ, च्य, च्छ्व

छ—छ्र/छ्र

ज—ज्ज, ज्झ, ज्ञ/ज्ञ, ज्य, ज्र/ज्र, ज्व

ञ—ञ्च, ञ्छ, ञ्ज, ञ्झ

ट—ट्ट, ट्ठ, ट्य, ट्र/ट्र, ट्व

ठ—ठ्य, ठ्र/ठ्र

ड—ड्ग, ड्ड, ड्ढ, ड्म, ड्य, ड्र/ड्र

ढ—ढ्य, ढ्र/ढ्र

ण—ण्ट, ण्ठ, ण्ड, ण्ढ, ण्ण, ण्म, ण्य, ण्व, ण्ठ्य, ण्ड्य, ण्ड्र/ण्ड्र

त—त्क, त्ख, त्त, त्थ, त्न, त्प, त्फ, त्म, त्य, त्र,/त्र/त्र, त्ल, त्व, त्स, त्क्ष, त्प्र, त्म्य, त्स्न, त्स्य, त्र्य/त्र्य

थ—थ्य, थ्र/थ्र, थ्व

द—द्ग, द्घ, द्द, द्ध, द्न, द्व, द्भ, द्म, द्य, द्र/द्र, द्व, द्भ्र/द्भ्र

ध—ध्न, ध्म, ध्य, ध्र, ध्र, ध्व

न—न्त, न्थ, न्द, न्ध, न्न, न्म, न्य, न्व, न्स, (न्ह), न्त्व, न्द्य, न्ध्र, न्स्प, न्द्र/न्द्र, न्ध्य, न्त्र, न्द्य, न्त्य, न्त्र्य, न्ज

प—प्त, प्न, प्प, प्म, प्य, प्र/प्र, प्ल, प्स, प्त्य

फ—फ्य

ब—ब्ज, ब्त, ब्द, ब्ध, ब्न, ब्ब, ब्भ, ब्य, ब्र,/ब्र, ब्ल, ब्श, ब्ज़

भ—भ्न, भ्य, भ्र/भ्र

म—म्त, म्द, म्न, म्प, म्फ, म्ब, म्भ, म्म, म्य, म्र/म्र, म्ल, म्व, (म्ह), म्प्य, म्प्र/म्प्र

य—य्य

र—र्क/र्क, र्ख/र्ख, र्ग/र्ग, र्घ/र्घ, र्च/र्च, र्छ/र्छ, र्ज/र्ज, र्झ/र्झ, र्ट/र्ट, र्ड/र्ड, र्ण/र्ण, र्त/र्त, र्थ/र्थ, र्द/र्द, र्ध/र्ध, र्न/र्न, र्प/र्प, र्ब/र्ब, र्भ/र्भ, र्म/र्म,

र्‌य/र्य, र्‌र/र्र, र्‌ल/र्ल, र्‌व/र्व, र्‌श/र्श, र्‌ष/र्ष, र्‌स/र्स, र्‌ह/र्ह, र्‌क़/र्क़, र्‌ख़/र्ख़, र्‌ग़/र्ग़, र्‌ज़/र्ज़, र्‌फ़/र्फ़; र्‌फ़्य/र्फ़्य, र्‌द्र/र्द्र, र्‌ध्व/र्ध्व, र्‌त्स/र्त्स, र्‌भ्र/र्भ्र, र्‌ख/र्ख, र्‌ष्य/र्ष्य, र्‌त्स्य/र्त्स्य

ल—ल्क, ल्ग, ल्च, ल्छ, ल्ट, ल्ड, ल्त, ल्थ, ल्द, ल्प, ल्फ, ल्ब, ल्भ, ल्म, ल्य, ल्ल, ल्व, ल्स, ल्ज़, ल्फ़

व—व्य, व्व, व्र/व्र

श—श्क, श्च, श्छ, श्त, श्न, श्म, श्य, श्र/श्र, श्ल, श्व, श्श, श्क़

ष—ष्क, ष्ट, ष्ठ, ष्ण, ष्प, ष्म, ष्य, ष्व, ष्ट्र/ष्ट्र, ष्ट्य, ष्प्र/ष्प्र

स—स्क, स्ख, स्ज, स्ट, स्त, स्थ, स्द, स्न, स्प, स्फ, स्ब, स्म, स्य, स्र/स्र, स्ल, स्व, स्स, स्ख़, स्थ्य, स्त्र/स्त्र/स्त्र

ह—ह्‌न, ह्‌म, ह्‌य, ह्‌र/ह्र, ह्‌ल, ह्‌व

क्ष—क्ष्म, क्ष्ण, क्ष्य, क्ष्व

क़—क़्त, क़्फ़, क़्ल, क़्श, क़्स

ख़—ख़्त, ख़्म, ख़्य, ख़्व, ख़्श

ग़—ग़्म

ज़—ज़्ज़, ज़्ब, ज़्म, ज़्य

फ़—फ़्ट, फ़्त, फ़्र/फ़्र, फ़्ल, फ़्य, फ़्ज़, फ़्फ

देवनागरी अंक—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०

8

वर्तनी

किसी भाषा के शब्दों में ध्वनियों का जिस क्रम से प्रयोग होता है, उस ध्वनि क्रम को उस शब्द की **वर्तनी** (spelling) कहते हैं। वर्तनी (=शब्द के उच्चरित रूप का अनुवर्तन को अक्षरी/हिज्जे/वर्ण-विन्यास भी कहते हैं। लिखित शब्दों में ध्वनियों का स्थान ध्वनियों के प्रतीक (अर्थात् वर्ण) ले लेते हैं; अतः शब्द विशेष के लेखन में वर्ण-संयोजन के क्रम को 'अक्षरी/वर्ण-विन्यास' कहा जाता है।

प्रत्येक भाषा की अपनी वर्तनी-व्यवस्था होती है, यथा—अँगरेज़ी, पुट्, बट् उच्चरित शब्दों का वर्ण-विन्यास है—put, but. वर्णों के संयोजन-क्रम में अन्तर होने से वर्तनी-भेद/शब्द-भेद हो जाता है, यथा—र स ा के विविध संयोगों से 'रसा, सार, सारा, रास, सरस, सारस' शब्दों का निर्माण हो जाता है।

वर्तनी के स्तर पर 'लिखित भाषाएँ' परम्परा से अधिक नियन्त्रित रहती हैं, यथा—पुट्, बट्, ब्रिज्, चॉक्, राइट् शब्द अँगरेज़ी में put, but, bridge, chalk, right/write लिखे जाते हैं। तेलुगु और कन्नड़ शब्दों में अर्ध संयुक्ताक्षर पूर्ण व्यंजन वर्ण के रूप में और पूर्ण व्यंजन अर्ध व्यंजन वर्ण के रूप में लिखे जाते हैं, यथा—'दुग्धालय, विद्वान्' में 'ग, द्' पूर्ण व्यंजन वर्ण लिखे जाएँगे, 'ध, व' अर्ध व्यंजन वर्ण। हिन्दी के कुछ शब्दों में पूर्ण 'र' व्यंजन अर्ध व्यंजन वर्ण के रूप में लिखा जाता है, यथा—प्रेम, द्रव, ड्रामा (प्रेम, द्रव, ड्रामा)। स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति परम्परागत वर्तनी में स्वेच्छा से परिवर्तन नहीं कर सकता। भाषा विशेष का समाज ही वर्तनी की उन कमियों को दूर कर सकता है, जिन्हें कोई व्यक्ति संकेतित करता है।

भाषाओं के उच्चरित रूप में जितनी जल्दी परिवर्तन होता है, उतनी जल्दी लिखित भाषाओं में परिवर्तन नहीं हो पाता/नहीं किया जा सकता। यान्त्रिक सुविधा-असुविधा आदि के कारण भी ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। यही कारण है कि सैकड़ों

वर्षों से लिखी चली आ रही जीवित भाषाओं के उच्चरित और लिखित रूप में शत-प्रतिशत साम्य नहीं हुआ करता। अन्तर की मात्रा का थोड़ा-बहुत भेद विभिन्न भाषाओं में होता ही है। कहा जा सकता है कि **परम्परागत लिपियों में लिखी चली आ रही भाषाओं के उच्चारण/वाचन और लेखन में शत-प्रतिशत साम्य नहीं होता।**

प्रचलित भाषाओं में दो प्रकार की वर्तनी देखी जा सकती है—1. **उच्चारणानुगामी वर्तनी** उच्चारण के ध्वनि-क्रम का यथावत् अनुसरण करती है, यथा—आओ, बैठो; लीची खाओ [आओ, बैठो; लीची खाओ] 2. **परम्परानुगामी वर्तनी** उच्चारण के ध्वनि-क्रम का यथावत् अनुसरण नहीं करती। उच्चारण और लेखन का यह अन्तर कभी कम और कभी अधिक हुआ करता है, यथा—क्योंकि, हनुमान, डाकघर, ऋषि, रहना [क्योँकि, हँनुमाँन्, डाक्घर्, रिशि, रैह्नाँ]। अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी भाषा की लेखन/वर्तनी-व्यवस्था में दोनों प्रकार के वर्तनी-रूप प्राप्त हैं।

इतर भाषाओं से आगत शब्द अर्थात् **स्रोत** और प्रकृति-प्रत्यय-उपसर्गादि के योग से **निर्मित शब्द/शब्द-सिद्धि** की दृष्टि से भी वर्तनी के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। इतर भाषाओं से आगत और निर्मित शब्दों में से कुछ शब्द उच्चारणानुगामी वर्तनीवाले हो सकते हैं और कुछ परम्परानुगामी वर्तनीवाले, यथा—जनवरी, मार्च, खुदा, दोसा, कानूनी; ख़ुदा, क़ानूनी, गए, गई, दुबारा, दुख, तेतीस; गये, गयी, दोबारा, दुःख, तेंतीस आदि।

जिस प्रकार भाषा-व्यवहार में शुद्ध/परिनिष्ठित उच्चारण का महत्त्व है, उसी प्रकार शुद्ध/परिनिष्ठित/**मानक वर्तनीयुत लिखित भाषा का महत्त्व** है। शुद्ध वर्तनी-युत भाषा का अर्थ स्पष्ट होने में कठिनाई नहीं होती, किन्तु अशुद्ध वर्तनीयुत भाषा का अर्थ या तो अस्पष्ट रहता है या उस से अनर्थ/विपरीतार्थ उत्पन्न हो सकता है। अशुद्ध वर्तनी से भाषा-बोध में भ्रम उत्पन्न हो जाता है; पत्र, तार आदि कहीं-के-कहीं पहुँच जाते हैं; भाषा का सौष्ठव भी विकृत हो जाता है, यथा—पेर की दाल पर चिरिया; बढ़ियाँ सारी; कार खाना (पेड़ की डाल पर चिड़िया; बढ़िया साड़ी; कारख़ाना)।

भाषा विशेष की ध्वनियों और ध्वनि-प्रतीकों (वर्णों) में जितना नियमित सम्बन्ध होता है, वर्तनी शुद्धि की उतनी ही अधिक सम्भावना रहती है। रोमन और अँगरेज़ी में यह सम्बन्ध बहुत अनियमित है। रोमन के कई वर्णों के ध्वन्यात्मक मूल्यों में पर्याप्त अन्तर है, यथा—A (ए, ऐ, आ एय, ऑ), E (ई, ए, Ø यू), I (आई, आय्, इ, ई, अ), O (ओ, ओउ, ऑ, अ, ऊ, उ, आ, व्या, आव्), U (यू, उ, अ, यो, Ø), C (स्, क्, श्, Ø) G (ज्, ग्, Ø), S (श्, स्, ज़्,), T (ट्, थ्, ध्, द्, श्, च्, Ø)। अनेक शब्दों में कई अनुच्चरित वर्णों का प्रयोग मिलता है, यथा—B, H, K, L, D, N, P, R, W.

यद्यपि देवनागरी लिपि अन्य कई भारतीय लिपियों की भाँति कुछ सीमा तक वैज्ञानिक है तथापि एक या एकाधिक कारणों के प्रभावस्वरूप हिन्दी भाषी और

8
वर्तनी

किसी भाषा के शब्दों में ध्वनियों का जिस क्रम से प्रयोग होता है, उस ध्वनि क्रम को उस शब्द **की वर्तनी** (spelling) कहते हैं। वर्तनी (=शब्द के उच्चरित रूप का अनुवर्तन को अक्षरी/हिज्जे/वर्ण-विन्यास भी कहते हैं। लिखित शब्दों में ध्वनियों का स्थान ध्वनियों के प्रतीक (अर्थात् वर्ण) ले लेते हैं; अतः शब्द विशेष के लेखन में वर्ण-संयोजन के क्रम को 'अक्षरी/वर्ण-विन्यास' कहा जाता है।

प्रत्येक भाषा की अपनी वर्तनी-व्यवस्था होती है, यथा—अँगरेज़ी, पुट्, बट् उच्चरित शब्दों का वर्ण-विन्यास है—put, but. वर्णों के संयोजन-क्रम में अन्तर होने से वर्तनी-भेद/शब्द-भेद हो जाता है, यथा—र स ा के विविध संयोगों से 'रसा, सार, सारा, रास, सरस, सारस' शब्दों का निर्माण हो जाता है।

वर्तनी के स्तर पर 'लिखित भाषाएँ' परम्परा से अधिक नियन्त्रित रहती हैं, यथा—पुट्, बट्, ब्रिज्, चॉक्, राइट् शब्द अँगरेज़ी में put, but, bridge, chalk, right/write लिखे जाते हैं। तेलुगु और कन्नड़ शब्दों में अर्ध संयुक्ताक्षर पूर्ण व्यंजन वर्ण के रूप में और पूर्ण व्यंजन अर्ध व्यंजन वर्ण के रूप में लिखे जाते हैं, यथा—'दुग्धालय, विद्वान्' में 'ग, द्' पूर्ण व्यंजन वर्ण लिखे जाएँगे, 'ध, व' अर्ध व्यंजन वर्ण। हिन्दी के कुछ शब्दों में पूर्ण 'र' व्यंजन अर्ध व्यंजन वर्ण के रूप में लिखा जाता है, यथा—प्रेम, द्रव, ड्रामा (प्रेम, द्‌रव, ड्‌रामा)। स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति परम्परागत वर्तनी में स्वेच्छा से परिवर्तन नहीं कर सकता। भाषा विशेष का समाज ही वर्तनी की उन कमियों को दूर कर सकता है, जिन्हें कोई व्यक्ति संकेतित करता है।

भाषाओं के उच्चरित रूप में जितनी जल्दी परिवर्तन होता है, उतनी जल्दी लिखित भाषाओं में परिवर्तन नहीं हो पाता/नहीं किया जा सकता। यान्त्रिक सुविधा-असुविधा आदि के कारण भी ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। यही कारण है कि सैकड़ों

वर्षों से लिखी चली आ रही जीवित भाषाओं के उच्चरित और लिखित रूप में शत-प्रतिशत साम्य नहीं हुआ करता। अन्तर की मात्रा का थोड़ा-बहुत भेद विभिन्न भाषाओं में होता ही है। कहा जा सकता है कि **परम्परागत लिपियों में लिखी चली आ रही भाषाओं के उच्चारण/वाचन और लेखन में शत-प्रतिशत साम्य नहीं होता।**

प्रचलित भाषाओं में दो प्रकार की वर्तनी देखी जा सकती है—1. **उच्चारणानुगामी वर्तनी** उच्चारण के ध्वनि-क्रम का यथावत् अनुसरण करती है, यथा—आओ, बैठो; लीची खाओ [आओ, बैठो; लीची खाओ] 2. **परम्परानुगामी वर्तनी** उच्चारण के ध्वनि-क्रम का यथावत् अनुसरण नहीं करती। उच्चारण और लेखन का यह अन्तर कभी कम और कभी अधिक हुआ करता है, यथा—क्योंकि, हनुमान, डाकघर, ऋषि, रहना [क्योँक्, हँनुमाँन्, डाक्घर्, रिश्, रैह्नाँ]। अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी भाषा की लेखन/वर्तनी-व्यवस्था में दोनों प्रकार के वर्तनी-रूप प्राप्त हैं।

इतर भाषाओं से आगत शब्द अर्थात् **स्रोत** और प्रकृति-प्रत्यय-उपसर्गादि के योग से **निर्मित शब्द/शब्द-सिद्धि** की दृष्टि से भी वर्तनी के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। इतर भाषाओं से आगत और निर्मित शब्दों में से कुछ शब्द उच्चारणानुगामी वर्तनीवाले हो सकते हैं और कुछ परम्परानुगामी वर्तनीवाले, यथा—जनवरी, मार्च, खुदा, दोसा, कानूनी; ख़ुदा, क़ानूनी, गए, गई, दुबारा, दुख, तेतीस; गये, गयी, दोबारा, दुःख, तेंतीस आदि।

जिस प्रकार भाषा-व्यवहार में शुद्ध/परिनिष्ठित उच्चारण का महत्त्व है, उसी प्रकार शुद्ध/परिनिष्ठित/**मानक वर्तनीयुत लिखित भाषा का महत्त्व** है। शुद्ध वर्तनी-युत भाषा का अर्थ स्पष्ट होने में कठिनाई नहीं होती, किन्तु अशुद्ध वर्तनीयुत भाषा का अर्थ या तो अस्पष्ट रहता है या उस से अनर्थ/विपरीतार्थ उत्पन्न हो सकता है। अशुद्ध वर्तनी से भाषा-बोध में भ्रम उत्पन्न हो जाता है; पत्र, तार आदि कहीं-के-कहीं पहुँच जाते हैं; भाषा का सौष्ठव भी विकृत हो जाता है, यथा—पेर की दाल पर चिरिया; बढ़ियाँ सारी; कार खाना (पेड़ की डाल पर चिड़िया; बढ़िया साड़ी; कारख़ाना)।

भाषा विशेष की ध्वनियों और ध्वनि-प्रतीकों (वर्णों) में जितना नियमित सम्बन्ध होता है, वर्तनी शुद्धि की उतनी ही अधिक सम्भावना रहती है। रोमन और अँगरेज़ी में यह सम्बन्ध बहुत अनियमित है। रोमन के कई वर्णों के ध्वन्यात्मक मूल्यों में पर्याप्त अन्तर है, यथा—A (ए, ऐ, आ एय, ऑ), E (ई, ए, Ø यू), I (आई, आय्, इ, ई, अ), O (ओ, ओउ, ऑ, अ, ऊ, उ, आ, व्या, आव्), U (यू, उ, अ, यो, Ø), C (स्, क्, श्, Ø) G (ज्, ग्, Ø), S (श्, स्, ज़्), T (ट्, थ्, ध्, द्, श्, च्, Ø)। अनेक शब्दों में कई अनुच्चरित वर्णों का प्रयोग मिलता है, यथा—B, H, K, L, D, N, P, R, W.

यद्यपि देवनागरी लिपि अन्य कई भारतीय लिपियों की भाँति कुछ सीमा तक वैज्ञानिक है तथापि एक या एकाधिक कारणों के प्रभावस्वरूप हिन्दी भाषी और

अहिन्दी भाषी अध्येताओं के लेखन में वर्तनी सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की त्रुटियाँ हो जाती हैं। वर्तनी-दोष और उन के कारण संक्षेप में ये हैं—**1. अशुद्ध उच्चारण**-परापत/प्रापत (प्राप्त), दूलहा (दूल्हा), इस्कूल/अस्कूल/सकूल (स्कूल), लखमन (लक्ष्मण), दोका (धोखा), थोरा (थोड़ा) आदि **2. लिपि का अपूर्ण ज्ञान**—ऐसा (ऐसा), अिमली (इमली), विदवान (विद्वान), मुफत (मुफ़्त), पुन्य/पुंय (पुण्य), रंगना (रँगना), गाँधी (गांधी/गान्धी), 3. **असावधानी और अतिशीघ्रता**—अकास्मिक (आकस्मिक), सैदव (सदैव), होगें (होंगे), टलिफोन (टेलीफ़ोन), आदि 4. **क्षेत्रीय प्रभाव**—सैन्स (साइन्स), सिटि (सिटी), हैकोर्ट/हायकोर्ट (हाईकोर्ट), टिप्पड़ी (टिप्पणी), जजमान (यजमान), उत्सब (उत्सव), घमला (गमला) आदि 5. **सादृश्य**—बुरायी (बुराई), सीधासाधा (सीधासादा), नर्क (नरक), सृष्टा (स्रष्टा) आदि 6. **व्याकरण, शब्द-रचना तथा अर्थ-भेद का अपूर्ण/अनिश्चित ज्ञान**—एकतारा (इकतारा), बकरीयाँ (बकरियाँ), कुत्तिया (कुतिया), निरपराधी (निरपराध), चाहिएँ (चाहिए), प्राणीमात्र (प्राणिमात्र), गौर (ग़ौर), नाज (नाज़), फन (फ़न) आदि।

हिन्दी-वर्तनी के मानकीकरण के लिए केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय तथा भारत सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय की 'वर्तनी-समिति' ने कुछ नियम स्वीकार किए थे। इन नियमों में से कुछ में कहीं-कहीं विकल्प और कहीं-कहीं तर्कहीनता है। यद्यपि कुछ सरकारी संस्थाएँ इन नियमों का काफ़ी मात्रा में अनुसरण कर रही हैं, किन्तु अधिकतर व्यक्तिगत लेखनादि में इन नियमों को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया है। वर्तनी के मानकीकरण के समय 'हिन्दी भाषा की प्रकृति (अश्लिष्टता), उच्चारण, परम्परा, व्याकरण, शब्द-रचना, हिन्दी-शिक्षण प्रक्रिया (छोटे बच्चों और अहिन्दी भाषियों को आरम्भिक कक्षाओं में श्रुतलेख लिखवाने आदि में), सरलता' का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। इन सभी पक्षों का ध्यान रखते हुए यहाँ **मानक हिन्दी-वर्तनी के कुछ नियम** दिए जा रहे हैं—

1. **कारक-चिह्न लेखन**—सभी कारक-चिह्नों को प्रत्येक स्थिति में सम्बन्धित शब्द से अलग लिखना एकरूपता और सरलता की दृष्टि से उचित है। संज्ञा, स्थानवाची, कालवाची शब्दों से अलग और सर्वनाम शब्दों के साथ मिला कर लिखने में, और यदि दो कारक-चिह्न एक साथ हों तो पहले को मिला कर और दूसरे को अलग लिखने का कोई औचित्य नहीं है, यथा—श्याम को, यहाँ से, कमरे में से, कल से, सोमवार को, मुझ से, उन्हों ने, तुम ने, इन में से (न कि मुझसे, उन्होंने, तुमने, इनमें से); आप ही के लिए, मुझ तक को। (इस स्थिति में तो सर्वनामों के साथ कारक चिह्न सटा कर लिखे ही नहीं जा सकते, अतः एक ही सरल नियम का पालन तर्क-संगत और उचित है, न कि तीन नियमों और उन के अपवादों का अनुपालन)

2. **निपात-लेखन**—'ही, भी, तो, तक' आदि निपातों को प्रत्येक स्थिति में सम्बन्धित शब्द से अलग लिखना एकरूपता तथा सरलता की दृष्टि से उचित है, यथा—मुरारी ही के लिए; यहाँ तक तो; आप के भी ।

3. **हल् चिह्न (्)-लेखन**—संस्कृत से आगत कुछ शब्द मूलतः हल् चिह्न युत हैं, यथा—जगत्, जाम्बवत्, पृथक्, प्राक्, भागवत्, महत्, वाक्, शरत्/शरद्, श्रीमत्, सत् । हिन्दी-उच्चारण में परिवर्तन होने के कारण यद्यपि 'जगत्-जगत, सत्-सत' का उच्चारण/वाचन 'अ'-रहित ही होता है किन्तु अर्थ-भेद एवं सन्धि-प्रक्रिया में हल् के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता, यथा—मताधिकार (मत+अधिकार), सदनुभव (सत्+अनुभव) । द्व, द्म, द्य, ड्य आदि में भी हल् चिह्न लगाना आवश्यक है ही । दक्षिण भारतीयों ने नामों के शब्दान्त में हल् चिह्न लगाना या न लगाना हिन्दी भाषियों की दृष्टि से तो समान है, किन्तु दक्षिण भारतीय 'प्रकाशम, सुरेशन' को निश्चय ही 'प्रकाशमा, सुरेशना' समझेंगे और बोलेंगे । हल् चिह्न लगाने से लेखन-सौष्ठव की कोई हानि नहीं होगी, आवश्यकता है उन शब्दों को पहचानने की जो मूलतः हल् चिह्न युत हैं, यथा—प्रत्युत्, भविष्यत्, बुद्धिमान्, भाग्यवान्, श्रीमान्, विधिवत्, सच्चित्, पृथक्, एवम्, स्वयम्, प्रकाशम्, सुरेशन्, वासुदेवन् आदि ।

4. **संयुक्त क्रिया-लेखन**—एकरूपता तथा सरलता की दृष्टि से सभी क्रियाओं (मुख्य, सहायक) को अलग-अलग लिखना ही उचित है, यथा—कहा जा सकता है; कहते चले आ रहे थे; सुनाता रहूँगा आदि ।

5. **पूर्वकालिक क्रिया-लेखन**—एकरूपता तथा सरलता की दृष्टि से पूर्वकालिक रूप 'कर', 'कर के' को प्रत्येक स्थिति में अलग-अलग लिखना ही उचित है, यथा—खा कर, रो कर, हो कर, कर के । इन्हें मिला कर लिखने पर ज़ोर देने में कोई तर्कसंगति नहीं है, क्योंकि संयुक्त क्रियाएँ भी अलग-अलग लिखी जाती हैं । आकर-आ कर; करके-कर के; पाके (<पा कर); ताके जैसे शब्दों से जटिलता ही बढ़ती है ।

6. **सादृश्य सूचक शब्द-लेखन**—सादृश्य सूचक शब्द '-सा/-सी/-से, जैसा/जैसी/जैसे, सरीखा/सरीखी/सरीखे' से पूर्व योजक चिह्न (-) के प्रयोग से स्पष्टता बनी रहती है, यथा—तुम-सा/जैसी/सरीखे; यहाँ-जैसी गर्मी; कल-जैसी आँधी ।

7. **तत्पुरुष समास-लेखन**—तत्पुरुष समास शब्द के पूर्वपद और उत्तर पद के मध्य अर्थ स्पष्टता हेतु आवश्यकतानुसार योजक चिह्न लगाया जा सकता है । जहाँ अर्थभ्रम की सम्भावना (अधिक) हो, वहाँ योजक चिह्न का प्रयोग करना ही उचित है, यथा – भूतत्त्व—भू-तत्त्व, संस्कृत शब्द—संस्कृत-शब्द ।

8. **द्वन्द्व समास-लेखन**—द्वन्द्व समास के पदों के मध्य (आवश्यकतानुसार) योजक चिह्न लगाना उचित है, यथा—दाल-भात, श्वेत-श्याम, राधा-कृष्ण, सूर्य-चन्द्र, राम-लक्ष्मण, पति-पत्नी, बड़े-बड़े, छोटे-छोटे ।

9. **संस्कृत से आगत शब्दों का लेखन**—हिन्दी-लेखन में संस्कृत-शब्दों का प्रयोग दो रूपों में होता है—1. सामान्य लेखन में संस्कृत-शब्दों का प्रयोग 2. संस्कृत-उद्धरणों में संस्कृत-शब्दों का प्रयोग। एकरूपता तथा सरलता की दृष्टि से दोनों रूपों में संस्कृत-परम्परा का पालन करना ही उचित है न कि सामान्य लेखन में हल् चिह्न न लगाना और उद्धरणों में हल् चिह्न लगाना; सन्धि-नियम समझाने, छन्द-ज्ञान के लिए हल् चिह्न लगाना। ऐसा करना कोई तर्क-संगत नियम नहीं है। जगत-जगत् में अर्थ-भेद भी है। 'श्रीमान, महान, विद्वान, अर्थात' संस्कृत में अग्राह्य हैं। यह कहना कि 'जिन शब्दों के प्रयोग में हिन्दी में हल् चिह्न का लोप हो चुका है, उन में हल् चिह्न लगाने की आवश्यकता नहीं' तर्कहीन कथन है। देवनागरी के कुछ वर्णों का अर्ध रूप बिना हल् चिह्न के सम्भव नहीं है। 'जगन्नाथ' का विश्लेषण जगत्+नाथ ही होगा, जगत+नाथ नहीं। इसी प्रकार 'दिग्गज, वाग्जाल, किंचित्, उल्लास' आदि का सन्धि-विश्लेषण क्रमशः 'दिक्+गज, वाक्+जाल, किम्+चित्, उत्+लास' करना पड़ेगा 'दिक, वाक, किम, उत' लिख कर काम नहीं चला सकते।

ऋ, ण, ष, क्ष, : का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों में होता है। यद्यपि हिन्दी में इन का उच्चारण/वाचन परिवर्तित हो चुका है किन्तु संस्कृत-शब्दों में परम्परानुगामी वर्तनी का ही प्रयोग करना होगा, यथा—ऋषि, ऋण, कृषक, कक्षा, क्षात्रधर्म, अतः, प्रायः (न कि रिशि, रिड़ँ/रिन, क्रिशक/क्रशक, कक्छा, छात्रधर्म, अतह, प्रायह)। इन वर्णों से युक्त कुछ शब्द हैं—

अनुगृहीत, पृष्ठ, निवृत्ति, उच्छृंखल, कृतकृत्य, गृहस्थ, पृथक्, प्रवृत्त, संगृहीत, सदृश, श्रृंखला, श्रृंगार, वृष्टि, कृषक, ऋषि, ऋणी, पैतृक, सृष्टि।

कृष्ण, क्षण, क्षीण, प्रण, भूषण, वरुण, विष्णु, कण, कोण, गुण, गण, गणिका, चाणक्य, बाण, मणि, माणिक्य, लवण, वणिक, वाणी, वीणा, वेणी, वेणु, निपुण।

अनिष्ट, इष्ट, गरिष्ठ, घनिष्ठ, ज्येष्ठ, पृष्ठ, आमिष, कनिष्ठ, उत्कर्ष, भीष्म, यथेष्ट, विभीषिका, विभीषण, विषण्ण, शुश्रूषा, सुषमा, विश्लेषण, मुमूर्ष, सन्तुष्ट, हितैषी, प्रेषित, प्रतिष्ठा, वर्ष, षष्ठ, सृष्टि।

क्षत्रिय, क्षात्र, कक्षा, अक्षय, अधीक्षक, अक्ष, क्षण, क्षीण, क्षमा, क्षेम, क्षोभ, तीक्ष्ण, दीक्षा, निरीक्षक, नक्षत्र, परीक्षा, परीक्षक, निरीक्षण, शिक्षा, साक्षी, समीक्षा समक्ष।

अतः प्रायः, नमः, दुः, तेजः निः, पुनः, पयः, मनः, दुःख आदि। इन में कई शब्द केवल सन्धि-प्रक्रिया के समय ही प्रयुक्त होते हैं।

10. **ई/ए बनाम यी/ये-लेखन**—हिन्दी ध्वनि-उच्चारण व्यवस्था के अनुसार कुछ शब्दों के मूल में 'य' ध्वनि न होने पर भी कुछ परिस्थितियों में (ही) श्रुति रूप में 'य' का उच्चारण होता है। हिन्दी में 'ई, ए' के आने पर 'य' श्रुति की

मुखरता लुप्त हो जाती है। **जिन स्थितियों में 'य' का श्रुति रूप में मुखर उच्चारण होता है**, वहाँ 'य' का लिखना उचित है, यथा—गया, आया, खाया, भाइयो, भाइयों, किया, दिया, सोया। जहाँ **शब्द के मूल में 'य' है**, वहाँ शब्द-सिद्धि या परम्परानुगामी वर्तनी की दृष्टि से ई/ए के संयोग में भी 'य' का लिखना तर्क-संगत है, यथा—रुपया-रुपये, दायी (<दाय=देना)→उत्तरदायी, अंशदायी, उत्तरदायित्व, आनन्ददायी; स्थायी, स्थायित्व भी इसी प्रकार।

दक्षिण भारतीय भाषाओं में 'य, व' श्रुति आगम की स्थितियाँ हिन्दी की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। 'गया, आया' आदि क्रिया-रूपों में 'य' श्रुति का आगम हुआ है और यह श्रुति मुखर भी है किन्तु 'हुआ-हुई-हुईं-हुए, गई-गईं-गए, सोई-सोईं-सोए' क्रिया रूपों में श्रुति-आगम नहीं है। क्रियाओं में -आ/-ई/-ईं/-ए प्रत्यय जुड़ते हैं, यथा—लिखा-लिखी-लिखीं-लिखे। किया-की-कीं-किए; रोया-रोई-रोईं-रोए में भी वे ही प्रत्यय जुड़े हैं, न कि -या/-यी/-यीं/-ये। स्वनिक स्तर पर हिन्दी में केवल 'अ-आ, इ-आ/ओ/ओं, ओ-आ' के मध्य ही 'य' श्रुति मुखर है, अन्य स्थितियों में इस की मुखरता पूर्णतः लुप्त है। आरम्भिक स्तर पर लेखन सीखनेवाले हिन्दी क्षेत्र के बच्चे, अहिन्दी क्षेत्र के किशोर और विदेशी प्रौढ़ों को अधिकतम उच्चारणानुगामी वर्तनी ही सरल लगती है। व्याकरणिक आधार पर उन्हें उस स्तर पर इधर-उधर भटकाना जटिलता उत्पन्न करता है।

-यान्तवाली भूतकालिक, पुल्लिंग, एकवचन की क्रियाओं के स्त्रीलिंग एकवचन, बहुवचन और पुल्लिंग बहुवचन में 'यी/यीं/ये' के लेखन का तर्क जटिलता उत्पन्न करता है। -यान्त संज्ञाओं में -ई, -ए रखने की बात और अधिक जटिलता उत्पन्न करती है, यथा—पाया (पायी/पायीं/पाये); पाया-पाये, चारपायी; खोया (खोयी/खोयीं/खोये); खोआ-खोए-खोई आदि। क्रिया-शब्दों को -यी/-यीं/-ये से और संज्ञा शब्दों को -ई/-ए से और विधि आदि रूपों को ए से लिखने में जटिलता ही बढ़ती है। जब अध्येता संज्ञा, क्रिया को ई, ए; यी, ये के साथ लिखित रूप में देखते ही पहचानने के स्तर पर पहुँचता है, तब वह यह भी जान जाता है कि हिन्दी में क्रिया प्रायः वाक्यान्त में ही आती है। उच्चरित भाषा-व्यवहार में यह लिखावट फिर भी कोई मदद नहीं कर पाती।

हिन्दी क्रिया के विधि रूप में—ए प्रत्यय जुड़ता है, यथा—वह लिखे/पढ़े/चले। आइए, जाइए, सोइए, कहिए, सुनिए, कीजिए आदि में -ए/-इए लिखना ही तर्क-संगत है न कि 'ये'। 'ये' लिखने के लिए यह तर्क देना कि संस्कृत में प्रति+एक=प्रत्येक होता है, अतः 'आइए, कहिए' आदि में भी 'ये' लिखा जाए, भ्रम का सूचक है। हिन्दी क्रियाओं के इन रूपों पर संस्कृत भाषा का सन्धि-नियम लागू नहीं होता, वरन् यहाँ स्वरानुक्रम है।

संस्कृत में 'आई' स्वरानुक्रम का अभाव है, अतः संस्कृत से आगत शब्दों को परम्परागत वर्तनी के अनुसार—यी युक्त लिखना अवश्य उचित कहा जा सकता है, यथा—भाषायी, उत्तरदायी आदि। इन शब्दों के मूल में 'य' है।

अविकारी शब्दों 'इसलिए, लिए, चाहिए' में सदैव 'ए' लिखना ही तर्क-संगत है। इस प्रकार **जहाँ 'य' श्रुति मुखर है या जहाँ मूल शब्द में 'य' का अस्तित्व है उन शब्दों को ही या/यी/ये/यीं से लिखा जाए, शेष शब्दों में -आ/-ई/-ए/-ईं ही लिखा जाए।**

11. **ऐ, औ का संयुक्त स्वरत्व-लेखन**—ऐ, औ वर्णों के दो-दो ध्वन्यात्मक मूल्य हैं—1. मूल स्वर ध्वनि 2. संयुक्त स्वर ध्वनि। ऐसा, है, हैं, और, कौन, भौं में ये मूल स्वर ध्वनियों के सूचक हैं। नैया, गवैया, सुरैया, कौआ, पौआ, हौआ में ये संयुक्त स्वर ध्वनि के सूचक हैं। 'गवय्या, सुरय्या, कव्वा, पव्वा' जैसी वर्तनी किसी प्रकार भी सही नहीं बैठती। संयुक्त स्वर ध्वनियुक्त कुछ ही शब्दों के लिए अभी कोई चिह्न नहीं बना है, अतः ै ौ/ऐ औ से ही काम चलाना होगा।

12. **ऑ/ॉ -लेखन**—परिनिष्ठित हिन्दी में अँगरेज़ी से आगत कुछ शब्दों में ऑ ध्वनि है। उन्हें लिखते समय ऑ/ॉ का प्रयोग करना उचित है, यथा—ऑफ़िस, डॉक्टर, हॉस्पीटल, कॉलेज, ऑपरेटर आदि।

13. **शिरोरेखा-बिन्दु/शीर्ष बिन्दु और चन्द्रबिन्दु (ं , ँ)** -लेखन—सामान्यतः वर्गीय अर्ध नासिक्य के स्थान पर शीर्ष बिन्दु का प्रयोग किया जा सकता है, यथा—पंखा, कंचन, डंडा, नंद, कंपन। 'आंशिक, संसार, वंशी, संहार, संरक्षक, संयत, संवाद' में शीर्ष बिन्दु लेखन ही मानक है। अन्य, साम्य, अन्न, सम्मति/सन्मति, वाङ्मय, पराङ्मुख, काम्य आदि शब्दों में शीर्ष बिन्दु का प्रयोग परम्परागत वर्तनी तथा शब्द रचना और उच्चारण की दृष्टि से अशुद्ध है। ङ् ञ् ण के लिए शीर्ष बिन्दु का प्रयोग लाघव की दृष्टि से भी स्वीकार्य है। 'ण का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के साथ परम्परागत वर्तनी की दृष्टि से उचित भी लग सकता है, किन्तु संस्कृत-इतर शब्दों के साथ नहीं, यथा—'झण्डा, पैण्ट, लण्डन' को 'झंडा, पैंट/पैन्ट, लंडन/लन्दन' लिखना ही उचित है। संस्कृत-इतर शब्दों (यथा—गंजी, जंगली, टैंक, पंछी, रंज, लुंगी आदि) को पंचमाक्षर के साथ लिखना हास्यास्पद-सा लगता है।

शिरोरेखा के ऊपर कोई अन्य चिह्न होने पर अनुनासिकता के लिए भी शीर्ष बिन्दु का प्रयोग प्रचलन में है, यथा—में, मैं, ईंट, बिंधना, क्यों, भौं, आयीं। शीर्ष बिन्दु के कारण जिन शब्दों का वाचन दुहरा रूप ले सकता है (यथा—हिंदी, बिंदी, पिंड, पिंडली [हिँदी/हिन्दी, बिँदी/बिन्दी, पिँड/पिण्ड्, पिँड्ली/पिण्डली]), उन के लेखन में वर्गीय अर्ध नासिक्य व्यंजन वर्ण का लेखन तर्क-संगत है, यथा—केन्द्रीय,

हिन्दी, बिन्दी, पिण्ड, पिण्डली/पिँड़ली～पिंड़ली। शिरोरेखा के ऊपर कोई अन्य चिह्न न होने पर अनुनासिकता के लिए चन्द्रबिन्दु का प्रयोग ही तर्कसंगत है, अन्यथा 'हँस-हंस, अँगना-अंगना' का अर्थ-भेद अस्पष्ट रहेगा।

'अहं, एवं' के अतिरिक्त हिन्दी के शब्दों के अन्त में प्रायः (ं) नहीं आता, (ँ) चिह्न ही आता है। शब्दान्त के नासिक्य व्यंजनों के लिए (ं) का प्रयोग नहीं किया जाता। संस्कृत के शब्दों में (ँ) का प्रयोग नहीं होता। 'सम्बन्ध' जैसे कुछ शब्द कई प्रकार से लिखे जा रहे हैं, यथा—सम्बन्ध, संबंध, सम्बंध, संबन्ध। इन में पहले दो रूप एकरूपता की दृष्टि से अधिक ग्राह्य हैं। नासिक्य व्यंजन अन्य नासिक्य या वर्गेतर व्यंजनों से पूर्व आने पर या द्वित्व होने पर शिरोरेखा बिन्दु से नहीं लिखे जाते, यथा—अन्न, मुन्ना, अन्य, गन्ना, ज़िम्मा, अम्मा, जन्म, अम्ल, सम्यक्, सम्मान, सम्राट्/सम्राट्। 'एन्थोनी, कम्बख़्त, पम्प, बन्द, लम्बा, सिन्थाल' आदि में 'न, म' का प्रयोग आपत्तिजनक नहीं माना जा सकता। सन्यास (सं+न्यास) अधिक प्रचलित रूप है, सन्न्यास कम प्रचलित रूप है, सन्यास अशुद्ध रूप है।

14. **विदेशी आगत शब्द-लेखन**—जो विदेशी शब्द हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था के अनुरूप हों और लेखन में कठिनाई उत्पन्न न करते हों, उन्हें तत्सम रूप में लिखना ही उचित है, यथा—लैन्टर्न, बॉइकॉट, काग़ज़, ग़रीब, फ़न, राज़, क़ानून, नाज़, ख़ाना, ख़तरा आदि। इन का तद्भव रूप दिखाने के लिए इन्हें 'लालटेन, बाइकाट, कागज, गरीब, फन, राज, कानून, नाज, खाना, खतरा' भी लिखा जा सकता है किन्तु 'ख़ाना-खाना, बाज़-बाज, राज़-राज, फ़न-फन, ग़ौरी-गौरी, ग़म-गम' जैसे अर्थ-भेदक युग्मों के कारण सामान्य लेखन में अधोबिन्दु का प्रयोग करना तर्क-संगत है क्योंकि 'काग़ज़, कारख़ाना' शब्द ही शुद्ध हैं, कागज, कारखाना अशुद्ध नहीं तो शुद्धेतर/मानकेतर अवश्य हैं।

15. (:) **विसर्ग-लेखन**—संस्कृत से आगत विसर्गयुत शब्दों में परम्परागत वर्तनी के आधार पर विसर्ग लगाया जाता है, यथा—अतः, प्रातः, प्रायः, स्वान्तः सुखायः, दुःख। इन्हें 'ह्' के साथ लिखना मानकेतर (या अशुद्ध) लेखन होगा। सुख के सादृश्य पर 'दुख' के मध्यवर्ती अघोष 'ह' ध्वनि का लोप हो चुका है, अतः दुःख को दुख भी लिखा जाने लगा है। परम्परागत वर्तनी की दृष्टि से शुद्ध रूप 'दुःख' ही है।

अँगरेज़ी से आगत कुछ विशिष्ट शब्दों की वर्तनी—अँगरेज़ी से आगत कुछ शब्दों की वर्तनी में अभी भी अनिश्चितता बनी हुई है। हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था के अनुरूप वर्तनी रखने से अनिश्चतता की स्थिति धीरे-धीरे समाप्त हो सकती है। अँगरेज़ी से आगत शब्दों में कोई शब्द हिन्दी में 'इ' से उच्चरित नहीं होता, अतः अँगरेज़ी शब्दों के अन्त में 'इ' नहीं लिखी जानी चाहिए, यथा—'सिटि, पि० टि० उषा, एन० टि० रामाराव' हिन्दी में लेखन की दृष्टि से ये अशुद्ध हैं, इन्हें 'सिटी,

पी० टी० उषा, एन० टी० रामाराव' लिखना चाहिए। अक्षरान्त में भी 'ई' का प्रयोग किया जाता है, यथा—टेलीविज़न, इंजीनियर, एडीटर, पेटीकोट। सिनेमा, कमेटी को अब 'सिनीमा/सनीमा, कमिटी' नहीं किया जा सकता।

अँगरेज़ी ह्रस्व स्वर E से युक्त शब्दों को प्रायः 'ए' से (भाषाविज्ञान में ऍ से) लिखा जाता है, यथा—पेन, मेस, बेल, डेस्क, बेंच, टेम्परेरी, सेन्टर, रेजीमेन्ट; एक्ट, एडवोकेट, एश ट्रे, एम्बुलेंस। A युक्त कुछ शब्दों को 'ऐ' से लिखा जाता है, यथा—कैन्टूनमेन्ट, गैस, पैड, बैंड, बैटरी, मैन, लैम्प।

जिन शब्दों की मूल वर्तनी में र (R) है, उन्हें 'र' के साथ ही लिखा जाता है, यद्यपि ऐसे अनेक शब्द अँगरेज़ी में 'र' रहित ही उच्चरित होते हैं, यथा—कार, मदर, फ़ादर, डॉक्टर, वार। 'ऑपरेशन, ऑपरेटर, कॉपी, कॉमन, कॉलेज, ऑर्डर, डॉक्टर, लॉ, पॉलिश, लॉटरी, हॉल, बॉल, कॉल' जैसे शब्दों को ॉ/ऑ के साथ लिखने में कोई परेशानी नहीं है। तत्सम 'ऑफ़ीसर, बॉक्स' तथा तद्भव 'अफसर, बक्सा/बक्स' दोनों रूप प्रचलित हैं।

अँगरेज़ी की ə, əː, ʌ ध्वनि को 'अ' से सूचित किया जाता है, यथा—अकाउंट, अरेंज, इन्कम, बटर, वाटर; अर्थ, टर्न, नर्स, बर्ड, बर्थ; कट, ब्रश, मग, रबर। अँगरेज़ी 'फ़ॉर्मेसी, प्रोफ़ेसर, लाइब्रेरी' को 'फ़ार्मेसी/फ़ॉर्मेसी, प्रोफ़ेसर, लाइब्रेरी' लिखा जा रहा है।

अँगरेज़ी के संयुक्त स्वर कुछ स्थलों पर संयुक्त स्वर/स्वरानुक्रम के रूप में और कुछ स्थलों पर मूल स्वरों के रूप में लिखे जा रहे हैं, यथा—ei (ऍइ) > ए—मेल, जेल, सेल, मेन, गेम, गेट, प्लेन, सेन्ट, पेन्ट, ब्रेन। ou (ओउ) > ओ—कोट, गोल, बोट, बोर, रोड, रोम। ai (आइ) > आइ—काइट, टाइप, टाइम, फ़ाइट, फ़ाइन, लाइट, माइक, राइट, साइकल/साइकिल। इन्हें 'कैट, टैप, टैम, फ़ैट, फ़ैन, लैट, मैक, रैट, सैकल/सैकिल' लिखना एकदम ग़लत है क्योंकि ऐसी स्थिति में इन का वाचन मूल स्वरवत् होता है। au (आउ) > आउ—टाउन, पाउंड, राउंड, लाउड, साउंड, साउथ। इन्हें 'टौन, पौंड, रौंड, लौड, सौंड, सौथ' लिखना एकदम ग़लत है क्योंकि ऐसी स्थिति में इन का वाचन मूल स्वरवत् होता है। iə (इअ) > इय—बियर/बीयर। Eə (एअ) > एय—चेयर, शेयर। Uə (उअ) > उअ—पुअर/पूअर। ɔi (ऑइ) > ऑय/ऑइ—बॉय, नॉइज़, जॉइन।

W, V से युक्त शब्द प्रायः 'व' युक्त ही लिखे जाते हैं, यथा—वाटर, वेस्ट, वेदर, वाशिंगटन, वैरीमच। इन्हें 'व्ह' से लिखना नितान्त अशुद्ध है।

F से युक्त शब्द 'फ़' से और Z से युक्त शब्द 'ज़' से लिखे जाते हैं, यथा—फ़ॉर्म, फ़ूड, फ़ॉरेस्ट, फ़िज़िक्स; ज़ू, साइज़, प्राइज़।

T, D को क्रमश: 'ट, ड' से, Th (Ø ; £) को थ़/थ, द से व्यक्त किया जाता है, यथा—टूर/टुअर, टेम्पो, टाइम, डाउन, डेस्क, डेल्टा, डॉक्टर; थ्रो थ्रू, थ़र्मस/थर्मस, थ़र्मल/थर्मल, होमियोपैथ़ी/होमियोपैथी; फ़ादर, मदर, देयर।

concrete को कांक्रीट>कंकरीट लिखा जा रहा है।

वर्तनी शुद्धि-अशुद्धि अभिज्ञान—वर्तनी-अशुद्धि के पूर्वलिखित कारणों के प्रभाव स्वरूप वर्तनी सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की (कभी-कभी एक शब्द में एक से अधिक भी) अशुद्धियाँ हो जाती हैं। परिनिष्ठित हिन्दी शब्दों की कौन-सी वर्तनी शुद्ध है और कौन-सी अशुद्ध, इस की जानकारी के लिए कुछ विशिष्ट शब्दों की शुद्ध वर्तनी कोष्ठक में लिखी गई है। कविता में प्रयुक्त बोलियों के शब्दों को वर्तनी-अशुद्धि के अन्तर्गत नहीं गिनना चाहिए, यथा—करम, भरम, सरवर, गुन, नारे आदि।

स्वर वर्ण सम्बन्धी वर्तनी-अशुद्धियाँ—इस प्रकार की अशुद्धियों में कहीं अनिवार्य स्वर वर्ण/मात्रा-चिह्न का लोप देखा जाता है और कभी अनावश्यक स्वर वर्ण/मात्रा चिह्न का योग कर दिया जाता है। कभी-कभी स्वर के स्थान पर स्वर युत व्यंजन भी लिख दिया जाता है। इसी प्रकार ˙ ँ : के लेखन में भी अशुद्धियाँ मिलती हैं, यथा—

अनिवार्य ा-लोप—अकांक्षा (आकांक्षा), अगामी (आगामी), अन्त्यक्षरी (अन्त्याक्षरी), अहार (आहार), अध्यात्मिक (आध्यात्मिक), अल्हाद (आह्लाद), जमाता (जामाता), नदान (नादान), नराज (नाराज़), नरायण (नारायण), भगीरथी (भागीरथी), मतन्तर (मतान्तर), महात्म (माहात्म्य), ललायित (लालायित), व्यवसायिक (व्यावसायिक), संसारिक (सांसारिक), सप्ताहिक (साप्ताहिक), सहास (साहस), समसमायिक (समसामयिक), सम्राज्य (साम्राज्य)।

अनावश्यक ा-योग—आधीन (अधीन), अनाधिकार (अनधिकार), चारदीवारी (चहारदीवारी), बारात (बरात), याज्ञावल्क (याज्ञवल्क्य), लागान (लगान), हाथिनी (हथिनी), हस्ताक्षेप (हस्तक्षेप)।

अनिवार्य इ/ि-लोप—आजीवका (आजीविका), आध्यात्मक (आध्यात्मिक), कुमुदनी (कुमुदिनी), गृहणी (गृहिणी), नीत (नीति), नायका (नायिका), परिस्थित (परिस्थिति), प्रतिनिध (प्रतिनिधि), मट्टी (मिट्टी), मैथलीशरण (मैथिलीशरण), मानसक (मानसिक), युधिष्ठर (युधिष्ठिर), रचयता (रचयिता), लिखत (लिखित), वाहनी (वाहिनी), विरहणी (विरहिणी), शिवर (शिविर), सरोजनी (सरोजिनी), क्षणक (क्षणिक)।

अनावश्यक ि-योग—अहिल्या (अहल्या), कवियित्री (कवयित्री), कियारी (क्यारी), छिपकिली (छिपकली), तिरिस्कार (तिरस्कार), द्वारिका (द्वारका), प्रदर्शिनी (प्रदर्शनी), वापिस (वापस), व्यापित (व्याप्त), सामिग्री (सामग्री)।

[ड्] शब्दारम्भ में—डाली, डींग, डुबकी; अँगरेज़ी से आगत शब्दों में—डालडा

शब्द मध्य में—(ड्ड्/ ं ड्)—अड्डा, गुड्डी, अंडा, पंडित। अँगरेज़ी, देशी भाषाओं से आगत शब्दों में—सोडा, इडली। उपसर्गयुत शब्दों तथा पुनरुक्त शब्दों में—निडर, अडिग, सुडील; डीलडौल, डुगडुगी।

शब्दान्त में—(ड्ड्/ ं ड)—खड्ड, झुंड, दंड। अँगरेज़ी से आगत शब्दों में—रोड, कार्ड, रोल्ड गोल्ड।

[ड़्] शब्दमध्य में—(स्वर-मध्य में)—बड़ा, गाड़ी, झाड़ी, लड़ाई।

शब्दान्त/अक्षरान्त में—पेड़्, साँड़्, लड़का

[ढ्] शब्दारम्भ में—ढाल, ढोलक, ढंग।

शब्दमध्य में—(ड्ढ्/ ं ढ/ड्य)—बुड्ढा, गड्ढा; ? ठंढक, धनाढ्य

शब्दान्त में—(ड्ढ्/ ं ढ)—? ठंढ

[ढ़्] शब्दमध्य में—(स्वर-मध्य में)—बूढ़ा, पढ़ाई, मेंढ़क

शब्दान्त/अक्षरान्त में—बाढ़्, रीढ़्, पढ़्ना, चढ़्ना, गढ़्वाली

इस प्रकार 'ड्, ढ्' रूप के आरम्भ में; अक्षर-आरम्भ/अक्षरान्त में सवर्गीय स्वन के पास या बाद में और व्यंजन-गुच्छों में प्राप्त हैं। ड़्, ढ़्, प्रथम अक्षर के बाद, अक्षरान्त में/अक्षर-सीमा पर प्राप्त हैं। 'गैंडा-गैंड़ा, लौंडा-लौंड़ा, लौंडिया-लौंड़िया' के तथाकथित अर्थभेदकारी युग्म इन को स्वनिम सिद्ध नहीं कर पाते क्योंकि अरबी-फ़ारसी के माध्यम से आए युग्मों के पहले शब्दों या गोल्ड, रोड, रेडियो, डालडा आदि आगत शब्दों के आधार पर इन्हें हिन्दी की मूल ध्वनि-व्यवस्था का साँचा घोषित नहीं किया जा सकता। वास्तव में 'गैंडा, लौंडा, लौंडिया' शब्द क्रमशः 'गैण्डा, लौण्डा, लौण्डिया' हैं जो नासिक्य ध्वनियुक्त हैं न कि अनुनासिकतायुत।

प्राग सम्प्रदाय की आर्की स्वनिम Archi Pheneme की संकल्पना के आधार पर भी 'ड् ढ्' स्वनिम तथा 'ड्-ड़्, ढ्-ढ़्' उपस्वप्न हैं। यदि कोई स्वनिम भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है, तो वह आर्की स्वनिम कहलाता है, यथा—आर्य, द्रविड़ समुदाय की भाषाओं में **अनुस्वार आर्की स्वनिम है** जो पाँचों व्यंजन वर्गों के साथ क्रमशः ङ्, ञ्, ण्, न्, म् के रूप में तथा शेष व्यंजनों के साथ (ं) अनुस्वार के रूप में प्रतिफलित है। इसी प्रकार 'ड् ढ्' आर्की स्वनिम हैं जो स्वरों के बाद ड़्, ढ़ हैं, अन्यत्र ड्, ढ्, यथा—खंडहर-खँड़हर, हँडिका-हँड़िया, षंड-साँड़, मंड-माँड़; बुड्ढा-बूढ़ा, ढाई-अढ़ाई, मुड्ढ-मूँड़, गढ़।

हिन्दी में महाप्राण व्यंजन एकाकी या सामान्य व्यंजन हैं न कि संयुक्त व्यंजन। न्ह म्ह ल्ह भी ख घ भ ढ की भाँति एकाकी/ सामान्य व्यंजन हैं। देवनागरी में

'न्, म्, ल्' की महाप्राणता को व्यक्त करने के लिए नये व्यंजन वर्णों का निर्माण न कर के इन में 'ह्' का योग कर के व्यक्त करने लगे हैं, उच्चारण में ये अन्य महाप्राण व्यंजनों की भाँति उच्चरित होते हैं। रोमन में 'एच' के योग से, उर्दू में दुचश्मी 'हे' या हम्ज़ा के योग से महाप्राणता व्यक्त करते हैं। इन लिपियों के प्रभाव से 'उन्हें, जिन्हें, तुम्हारा, तुम्हें, दूल्हा, आल्हा, कुल्हाड़ी, कुल्हड़, अल्हड़, मल्हार' को 'उन् हें, जिन् हें, तुम् हारा, तुम् हें, दुल् हा, आल् हा, कुल् हाड़ी, कुल् हड़, अल् हड़' उच्चारण करना अशुद्ध है। हिन्दी की महाप्राण ध्वनियों को संयुक्त व्यंजन सिद्ध करने के लिए कई उल्टी-सीधी दलीलें दी जाती हैं किन्तु हिन्दी की स्वनिमिक व्यवस्था की संगति, आक्षरिक संरचना तथा वितरण सम्बन्धी विशेषताओं आदि के आधार पर महाप्राण व्यंजनों को एकल/एकाकी/सामान्य/सरल/मूल व्यंजन ही कहा/माना जा सकता है न कि संयुक्त।

हिन्दी 'ह'—शब्दारम्भ और शब्द-मध्य में 'ह्' का उच्चारण घोष है, यथा—हम, हार, हीरा, महान्, विहार, सुहाग। अक्षरान्त (मुख्यतः शब्दान्त) में इस का उच्चारण अघोष (और कभी-कभी बहुत हलका) होता है, यथा—बारह, स्नेह, बाहरी, देहरी। शब्दान्त में बहुत हलका उच्चारण होने के कारण दीर्घ स्वरों के बाद कुछ शब्दों में इस का लोप-सा प्रतीत होता है, यथा—तफ़रीह-तफ़री, दरगाह-दरगा, परवाह-परवा। अक्षरान्त और शब्दान्त के 'अह्' के उच्चारण में हलकापन होने के कारण 'ह्' अस्पष्ट हो जाता है और 'अ' में दीर्घता सुनाई पड़ती है, यथा—ग्यारह-ग्यारा, बारह-बारा; फिर भी 'बारा, तेरा' और 'बारह, तेरह' के उच्चारण में सूक्ष्म भेद रहता है।

लिखित-अह्-युत शब्दों के 'अ' का उच्चारण निम्न अग्र स्वर 'ऐ' जैसा हो जाता है, यथा—क़हर, ज़हर, तहत, नहर, पहन, पहल, बहन, वहम, बहल, महर, रहट, रहन, रहम, लहर, शहर, सहन; कहना, गहना, गहरा, ज़हरीली, नहला, नहले पै दहला, तहमत, पहला, पहनना, पहचान, बहका, बहरा, रहना, रहमान, लहँगा, सहमा, शहरी; अहसान। 'ह' के साथ दीर्घ स्वर होने पर पूर्ववर्ती 'अ' में कोई परिवर्तन नहीं होता, यथा—कहाँ, कहो, कही, महीन, महा, रही, शहीद, सही, लहू। लिखित रूप में 'बहन, रहट, शहर' जैसे दो अक्षरवाले कुछ शब्द उच्चारण में एकाक्षरी होने लगे हैं। 'कहकहा, चहचहाना, चहचहाहट' जैसे कुछ शब्दों के पहले अक्षर के 'अ' में भी परिवर्तन आ जाता है। 'बहुत, बहुतायत' का उच्चारण अनेक लोग 'बोहत, बोहतायत' जैसा करते हैं।

'ह्' के कारण पूर्ववर्ती स्वर के उच्चारण में जो परिवर्तन होता है, उसे इन शब्द-युग्मों के उच्चारण के समय अनुभव किया जा सकता है—मेजर-मेहर, सेमर सेहत, सेवला-सेहरा। इस उच्चारण-परिवर्तन का प्रभाव लेखन में भी पड़ने लगा है, यथा—(क) 'अ' युत शब्द—कहना, पहचान, पहल, पहला, रहना, रहम, लहर,

शहर (ख) 'ए' युत शब्द—एहतियात, तेहरान, बेहतर, मेंहदी, सेहत, सेहरा (ग) अ~ए युत शब्द—ज़हन-ज़ेहन, अहसान-एहसान, अहसास-एहसास, महमान-मेहमान, महर-मेहर। 'ग' वर्ग के वैकल्पिक लेखन पर शैलीगत, वैयक्तिक और स्थानीय प्रयोग का प्रभाव भी स्वीकार किया जाता है।

भगिनी शब्द का विकास बहिन के रूप में माना जाता है किन्तु बहन> वहनोई को 'बहिनोई' लिखना खटक पैदा करता है। इसी प्रकार 'पहिला' मानकेतर है, 'पहला' मानक है। 'महिला, महिमा, रहित, सहित' शब्द मूलतः 'इ' युत हैं। हिन्दी-क्षेत्र के 'कैहना, पैहना, मैहमान, रैहना/रैना' जैसे वर्तनी एवं उच्चारण-दोषों का दुष्प्रभाव हिन्दी-इतर भाषियों पर भी पड़ सकता है।

उर्दू से आगत 'ह्' युत अनेक शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा—गुनाह, निकाह (पुं), अफ़वाह, जिरह, तरजीह, तरह, तनख़्वाह, तफ़रीह, तह, निगाह, पनाह, परवाह, फ़जर, वजह, सतह, सुलह, सुबह (स्त्री)।

हिन्दी में पाँच **नासिक्य स्वनिम** हैं। (1)/न्/स्वनिम के चार उपस्वन हैं—1. [ङ्] क् ख् ग् घ् से पूर्व संयुक्त व्यंजन के रूप में; शब्दों में अक्षर-सीमा पर, यथा—वाङ्मय, पराङ्मुख 2. [ञ्] च् छ् ज् झ् से पूर्व संयुक्त व्यंजन के रूप में 3. [न] त् थ् द् ध् से पूर्व संयुक्त व्यंजन के रूप में 4. [न्] अन्यत्र। (2) / म्/ स्वनिम है। 'न, म' का अर्थभेदक व्यतिरेक प्राप्त है, यथा—नाली-माली, कानी-कामी, कान-काम (3)/म्ह्/स्वनिम है। 'म्-म्ह्' का अर्थ-व्यतिरेक प्राप्त है, यथा—कुमार-कुम्हार। (4) /न्ह्/स्वनिम है। 'न्-न्ह' का अर्थ-व्यतिरेक प्राप्त है, यथा—काना-कान्हा। (5) /ण्/ स्वनिम है। 'न्-ण्' के अर्थ व्यतिरेकी शब्द-युग्म हैं—रन-रण, अनु-अणु, कर्न-कर्ण। जन सामान्य की बोलचाल में 'ण्' को 'न्' के समान बोलते हैं, यथा—गुण~गुन, प्राण~प्रान, चरण~चरन, कण~कन, वीणा~वीना, प्रण~प्रन आदि। इसे ण्-न् का मुक्त परिवर्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि वही जन सामान्य 'न्' को 'ण्' के रूप में नहीं बोलता।

हिन्दी में 'ण्' का उच्चारण ट वर्ग से पूर्व संयुक्त व्यंजन के रूप में नासिक्य है, अन्यत्र [ड़ँ] या [न] वत् है। संस्कृत के दो शब्दों 'अक्षुण्ण', 'विषण्ण' में हिन्दी-उच्चारण सामान्यतः उतना दीर्घ नहीं होता जितना म्, न् दीर्घ होते हैं। 'पुण्य, कण्व' का हिन्दी उच्चारण 'पुन्न्य, कन्न्व' जैसा होता है। 'रुग्ण, पूर्ण' के 'ण' का उच्चारण 'ड़ँ' वत् है।

हिन्दी के गौण स्वनिम/क़् ख़् ग़् ज़् फ़्/हैं। इन में 'क़्' स्पर्श काकल्य है, ख़् ग़्' पश्च/कोमल तालव्य संघर्षी हैं, 'ज़्' वर्त्स्य संघर्षी है और 'फ़्' दन्त्योष्ठ्य संघर्षी। ये स्वनिम विदेशी भाषाओं के अनेक शब्द आ जाने के कारण विकसित हुए हैं। जन सामान्य इन के स्थान पर क्रमशः/क् ख् ग् ज् फ्/ का उच्चारण करते हैं।

इस आधार पर इन्हें मुक्त परिवर्त कहना/मानना गलत है क्योंकि गौण स्वनिमों के स्थान पर ही केन्द्रीय स्वनिमों का उच्चारण होता है, केन्द्रीय स्वनिमों के स्थान पर गौण स्वनिमों का उच्चारण नहीं किया जाता। यह **एकांगी मुक्त परिवर्त** ही कहा जा सकता है। परिनिष्ठित हिन्दी में इन गौण स्वनिमों का प्रयोग शुद्ध उच्चारण पर बल देनेवाले लोगों के द्वारा कसरत से किया जाता है। हिन्दी में इन स्वनिमों से बने अर्थ-भेदक न्यूनतम शब्द-युग्म भी काफ़ी मात्रा में उपलब्ध हैं, यथा—

ताक-ताक़
खैर-ख़ैर, खाना-ख़ाना, खोर-ख़ोर
बाग-बाग़, गौर-ग़ौर, बेगम-बेग़म
राज-राज़, जरा-ज़रा, जीना-ज़ीना, गज-गज़, सजा-सज़ा
फन-फ़न, फलक-फ़लक, कफ-कफ़

'क़, ख़, ग़' केवल अरबी-फ़ारसी-तुर्की से आगत शब्दों में उच्चरित होते हैं और 'ज़, फ़' इन भाषाओं के अतिरिक्त अँगरेज़ी से आगत शब्दों में भी उच्चरित होते हैं। ज़, फ़ का प्रयोग क़ ख़ ग़ की अपेक्षा अधिक होता है क्योंकि अँगरेज़ी शिक्षण के कारण इन का उच्चारण सिखाने पर बल दिया जाता है। ये दोनों ध्वनियाँ हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था के अधिक अनुकूल हैं। 'ज़' अघोष संघर्षी 'स' का सघोष संघर्षी युग्म है। 'ज़' का प्रयोग अँगरेज़ी/श/ (श के घोष रूप, IPA—International Phonetic Alphabet में 3), उर्दू के ज़े झे ज्वाद ज़ोय ज़ाल वर्णों के लिए होता है। सघोष 'व़' का अघोष रूप 'फ़' है। ख़-ग़ स्वयं अघोष-घोष के युग्म के रूप में आए हैं, इसलिए 'ख़-ग़' का प्रयोग 'क़' की अपेक्षा अधिक होता है। यदि वर्तनी में इन वर्णों से बने शब्दों को शुद्ध लिखने का आग्रह रखा जाए तो कोई कारण नहीं कि सामान्य पढ़े-लिखे लोग इन ध्वनियों का सही उच्चारण न कर सकें, बशर्ते कि इन से युक्त शब्दों को उसी उदारता से स्वीकार किया जाए जैसे अन्य शब्द स्वीकृत हैं। उर्दू-हिन्दी का सम्बन्ध केवल सम्पर्क जन्य सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता; ये दोनों सहोदर भाषाएँ हैं या एक ही मूल भाषा की दो अभिव्यक्ति शैलियाँ हैं।

तमिळ जैसी भाषा में भी हठधर्मिता छोड़ी जा रही है। तमिळ लिपि में/प/ को काले टाइप में छाप कर/ब/ को व्यक्त किया जाने लगा है। /फ़/ के लिए भी नया चिह्न बना लिया गया है। देवनागरी में तो बिन्दी लगा कर बड़ी आसानी से इन वर्णों को लिखा जा सकता है। इन गौण स्वनिमों से युक्त हिन्दी में प्रचलित कुछ शब्द ये हैं—

क़—ताक़, क़त्ल, क़ुरान, कुर्क़, कुर्क़ी, अर्क़, बुर्क़ा, इश्क़, इश्क़िया, क़िश्त, क़िस्म, तस्दीक़, नक़्शा

ख़—ख़ैर, ख़ैरियत, ख़ाना, ख़ोरी, ख़ोर, ख़र्च, सुर्ख़, निर्ख़, चर्ख़ी,

सुख़र्ख़, ख़ुद, ख़ुदा, तख़्ता, शख़्स, ज़ख़्म, तख़मीना, बख़्शीश, बुख़ार

ग़—बेग़म, ग़ौर, बाग़, काग़ज़, मुर्ग़ा, मुर्ग़ी, नग़्मा, ग़रीबी, ग़रीबख़ाना, ग़ैर

ज़—राज़, ज़रा, ज़ीना, गज़, सज़ा, सब्ज़, सब्ज़ी, नब्ज़, काग़ज़, अर्ज़, अर्ज़ी, कर्ज़, फ़र्ज़, ख़ुदगर्ज़, ज़ुल्म, ज़ुल्मी, नज़ला, जज़्बात, नज़्म, कज़्ज़ाक, ज़हर, ज़ोर, मज़ा

फ़—फ़न, फ़लक, शरीफ़, बर्फ़, बर्फ़ी, सिर्फ़, उर्फ़, कुल्फ़ी, ज़ुल्फ़, उल्फ़त, वक़्फ़, गुफ़्तगू, हफ़्ता, गिरफ़्त, मुफ़्त, लिफ़्ट, लेफ़्टिनेन्ट, लफ़्ज़, लफ़्ज़ी, अफ़साना, गिरफ़्तार, दफ़्तर

य, व—श्रुति/अर्ध स्वर - कुछ भाषाओं में स्वर और व्यंजन की मध्यवर्ती ध्वनियाँ प्राप्त हैं, यथा—संस्कृत की तथाकथित ऋ, लृ स्वर ध्वनियाँ जो स्वनिक स्तर पर पूर्ण स्वर नहीं हैं। वैदिक संस्कृत में 'य र ल व न म' अर्ध स्वर ध्वनियों के रूप में भी प्रयुक्त थे। अँगरेज़ी की L M N व्यंजन ध्वनियाँ Bottle, Bottom, Button में आक्षरिक होने के कारण स्वर का कार्य करती हैं। इस प्रकार ऋ लृ आक्षरिक होने के कारण स्वनिमिक स्तर पर स्वर होते हुए भी स्वनिक स्तर पर व्यंजन हैं; L M N स्वनिमिक स्तर पर अनाक्षरिक होने के कारण प्रायः व्यंजन और कभी-कभी स्वर हैं किन्तु स्वनिक स्तर पर सदैव व्यंजन हैं।

हिन्दी में य्, व् स्वनिक स्तर पर श्रुति हैं और स्वनिमिक/प्रकार्य-दृष्टि से स्वनिम हैं। श्रुति (glide फिसनल) में जीभ एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर फिसल जाती है। श्रुति की सत्ता स्वनिक स्तर पर है और व्याकरण/स्वनिम-स्तर पर इसे अर्ध स्वर कहा जाता है। 'लिख→लिखा, पढ़→पढ़ा, चल→चला, भाग→भागा, बैठ→बैठा' में '-आ' भूतकालिक प्रत्यय है। इस प्रत्यय को ग<जा, आ, खा, ला के साथ जोड़ने पर ग आ (>गया), आआ (>आया), खाआ (>खाया), लाआ (>लाया) रूप बनते हैं। उच्चारण-सौकर्य/सुविधा के लिए हिन्दी भाषी ऐसे स्थलों पर 'य' श्रुति का सदुपयोग करते हैं। इस 'य' श्रुति की सत्ता केवल स्वनिक स्तरीय है, स्वनिमिक/व्याकरण-स्तरीय नहीं। 'आया' (=धाय), 'गया' (नगर विशेष) संज्ञा शब्दों में 'य' की सत्ता स्वनिक और स्वनिमिक/व्याकरण स्तर की है। हिन्दी के संज्ञा शब्दों में 'य' अर्ध स्वर का व्यंजन स्वनिम है और क्रिया-रूपों में केवल 'श्रुति', यथा—संज्ञा शब्द 'आया, खोया (खोआ), दिया (दीपक), सोया (सोआ-पालक), पाया (चारपाई का), खोई/खोयी (गन्ने की)'; क्रिया शब्द 'आया, खोया, दिया, सोया, पाया, खोई/खोयी'

श्रुति शब्द-रचना के मूल में नहीं हुआ करती, जब कि अर्ध स्वर या व्यंजन की सत्ता शब्द-रचना के मूल में हुआ करती है। क्रिया-रूपों में 'य' को अन्तर्निहित/

पूर्वस्थित अर्धस्वर (Inherent Semivowel) न कह कर आगत (Intrusive) अर्ध स्वर कहा जा सकता है। फ़र्थ के अनुसार क्रिया में यह Prosedic है और संज्ञा में Phonemetic दक्षिण की भाषाओं में 'य, व' श्रुति शब्द के आरम्भ, मध्य में अनेक परिवेशों में मुखर रहती है, जब कि हिन्दी में यह कुछ ही स्वरों के मध्य स्पष्ट सुनाई पड़ती है, यथा—ओ-आ (सोया, रोया, खोया; पूर्वी हिन्दी में सोवा, रोवा, खोवा); ए-आ (खेया, सेवा), इ-ओ/ओं (भाइयो, कवियो, जातियों, नाइयों, देवियो देवियों) अ-आ (नया, गया; भया बोली रूप), इ-आ (जिया, दिया, पिया, लिया, सिया), आ-आ (आया, खाया, पाया, लाया, साया)। परिनिष्ठित हिन्दी में 'व' श्रुति का अभाव है, पूर्वी हिन्दी की बोलियों में यह प्राप्त है।

मराठी में अँगरेज़ी से आगत V (हिन्दी में वी/व) युत शब्दों का उच्चारण तथा वाचन व्ही/व्ह जैसा होता है तथा हिन्दी में वी/व जैसा।

अनुस्वार—संस्कृत भाषा के शब्दों में वर्गीय व्यंजनों के अतिरिक्त अन्य व्यंजनों से पूर्व आनेवाली पूर्णतः नासिक्य ध्वनि अनुस्वार (स्वर का अनुसरण करनेवाली) कहलाती है, यथा—संयम, संरचना, संलाप, संवाद, संशय, संसार, संहार में क्रमशः 'य, र, ल, व, श, स, ह' के पूर्व की पूर्ण नासिक्य ध्वनि अनुस्वार है। शब्दान्त में यह 'म्' वत् उच्चरित होती है, यथा—अहं, स्वयं [अहम्, स्वयम्]। हिन्दी में इस ध्वनि का उच्चारण परवर्ती व्यंजन के उच्चारण-स्थान से उच्चरित होनेवाली नासिक्य ध्वनि के समान होता है, यथा—[सञ्यम्, सन्रच्ना, सन्लाप् सम्वाद, सञ्शय्, सन्सार्, सङ्हार्]। वर्गीय नासिक्य व्यंजनों/ ङ ञ ण न म/ को अनुस्वार कहना भ्रम है क्योंकि अनुस्वार और इन नासिक्य व्यंजनों की उच्चारण-प्रक्रिया में अन्तर है और अनुस्वार तथा नासिक्य व्यंजन व्यतिरेकी वितरण में हैं, यथा—वाङ्मय, पराङ्मुख, सुना, चुन, गुणा, गुण, माप, कमाई, काम। इन परिवेशों में अनुस्वार नहीं आता।

संस्कृत स्वरों से पूर्व आया अनुस्वार स्वर-संयोग से 'म' में परिवर्तित हो जाता है, यथा—परं/परम्+आत्मा (=परमात्मा), समाहार, परमेश्वर, समुच्चय, समूह, समीक्षा। वास्तव में इस प्रकार के अक्षरान्त/शब्दान्त के अनुस्वार का ध्वनि-मूल्य 'म्' है जो 'म' हो जाता है। संस्कृत में अनुस्वार का पूर्ण नासिक्य था जिसे 'म/ङ'

....

जैसा कहा जा सकता है। दक्षिण भारतीय भाषाओं में इस का उच्चारण 'म्' किया जाता है। देवनागरी-लेखन में अनुस्वार को शीर्ष-बिन्दु-ं- से व्यक्त करते हैं। नासिक्य व्यंजन+वर्गीय व्यंजन के लेखन के समय प्रायः शीर्ष-बिन्दु प्रयोग का प्रचलन बढ़ने लगा है, यथा—पंखा, गंगा, कंचन, खंजन, पंडित, दंड, महंत, पंथ, कुटुंब, दंभ। अँगरेज़ी से आगत शब्दों में शीर्ष-बिन्दु के प्रयोग से लेखन-अराजकता लगभग समाप्त हो जाएगी, यथा—इंक, बैंक, लंच, बैंच, प्रिंट, पेंट। शब्दान्त में म् के स्थान पर शीर्ष-बिन्दु का प्रयोग किया जाता है, यथा—त्वं, स्वयं/त्वम्, स्वयम्/। रूपिम-सीमा

पर भी शीर्ष-विन्दु का प्रयोग उच्चारण में परवर्ती वर्गीय व्यंजन के नासिक्य व्यंजनवत् हो जाता है, यथा—सम्-/सं (संगठित, संघटना, संचय, संजीव, संतृप्त, संदेह, संभाव्य, संप्रेष्य) ।

पाँचों वर्गीय व्यंजनों के पूर्व अनुस्वार की स्वनिक स्थिति आर्य, द्रविड़ भाषाओं में लगभग समान है। इसे आर्की स्वनिम मानने पर इसके छह उपस्वन हैं—/ ं /→ 1. [ङ] क् ख् ग् घ्, रूपिम सीमा के म के पूर्व 2. [ञ्] च् छ् ज झ के पूर्व 3. [ण्] ट् ठ् ड् ण् के पूर्व 4. [न्] त् थ् द् ध् न् म् के पूर्व 5. [म्] प् फ् ब् भ् म् न् के पूर्व, शब्दान्त में 6. [ं] अन्यत्र

हिन्दी में व्यंजन-अनुक्रम—शब्द-मध्य में प्राप्त हैं, यथा—'प्राणमय, विमला, बकता, पगली, लगना, सपना, करता, में क्रमशः 'ण्-म्, म्-ल्, क्-त्, ग्-ल्, ग्-न्, प्-न्, र्-त्' के व्यंजन-अनुक्रम हैं। मृण्मय, अम्ल, वक्ता, आंग्ल, लग्न, स्वप्न, कर्ता' में भी इसी प्रकार का व्यंजन-अनुक्रम है किन्तु पहले और दूसरे शब्दों के उच्चारण में स्पष्ट किन्तु सूक्ष्म अन्तर है। पहले शब्दों के उच्चारण में व्यंजन-युग्म के मध्य एक अतिक्षीण विराम अनिवार्यतः आता है, जब कि दूसरे शब्दों के उच्चारण व्यंजन-युग्म के मध्य विराम का अभाव उन्हें संयुक्त व्यंजन बना देता है। व्यंजन-अनुक्रम के सदस्य अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने के कारण अलग-अलग इकाई होते हैं। व्यंजन-अनुक्रम के उच्चारण में संयुक्त व्यंजन के उच्चारण की अपेक्षा कुछ अधिक समय लगता है। व्यंजन-अनुक्रम में पहले व्यंजन के अन्तर्निहित 'अ' का लोप हो जाता है।

शब्द-मध्य में प्राप्त 'प' वर्ग के 'अ'-लुप्तज व्यंजन, अनुक्रमवाले कुछ शब्द ये हैं—**प्**+क/ग/घ/च/छ/ज/ट/म/य/र/ल/व/श/स/ह/ख़—उपकृत, उपगमन, अपघात, उपचार, छपछपाना, उपजाऊ,, निपटना अपमान, उपयोगिता, निरपराध, उपलब्धि, उपवीत, अपशब्द, अपसरण, उपहार, तोपख़ाना। **फ्**+क/ल्—फुफकार, डफली। **ब्**+क/ग/ट/ड/त/द/प/र/ल/स/ह/ड़/ख़—उबकाई, ईसबगोल, उबटन, डबडबाना, डूबते, चोबदार, आबपाशी, अबरक, तबला, ख़ूबसूरत, शुबहा, तोबड़ा, शराबख़ोरी। **भ्**+क/च/त/द/न/र/ल/व—अलाभकर, शुभचिन्तन, चुभता, लाभदायी, चुभना, उभरा, सँभलो, चुभवाना। **म्**+क/ग/घ/च/छ/ज/झ/ट/त/द/ध/न/प/ब/य/र/ल/व/श/स/ह/ड़/ख़ ग़/ज़—नमकीन, ग़मगीन, जमघट, चमचम, गमछा, श्रमजीवी, समझी, सिमटी, ममता, आमदनी, समधिन, गमनीय, कमपढ़ी, कमबख़्त, कामयाब, कमरा, विमला, समवयस्का, लमहा, दमड़ी, कमख़ाब, तमग़ा, कमज़ोरी।

इसी प्रकार अन्य वर्गों में भी कई प्रकार की स्थितियों में अ-लुप्तज व्यंजन अनुक्रम प्राप्त हैं। अ-लुप्तज व्यंजन-अनुक्रम में मध्यवर्ती व्यंजन से पूर्व बाद में 'अ' स्वरयुत या दीर्घ स्वरयुत व्यंजन होता है, यथा—कम्पढ़ी, जन्ता, लग्भग बीस, डब्डबाई आँखों से; लाभ्कारी निर्णय, तोप्ख़ाना। पहले ह्रस्व स्वर और बाद में

दीर्घ स्वर होने पर व्यंजन-संयुक्तता की-सी स्थिति आ जाती है, यथा—ममता, कमला, सिमटी, करती आदि ।

हिन्दी के संयुक्त व्यंजनों का वितरण तथा प्रयोग—अति द्रुतगति या असतर्कता से बोलते समय अनुक्रम के व्यंजन संयुक्त व्यंजन का रूप ले लेते हैं, किन्तु ऐसा सामान्य भाषा-व्यवहार/उच्चारण में नहीं होता, यथा—कम्‌ला-कम्ला, बकते-बक्ते, चिम्‌टा-चिम्टा ।

दो या अधिक व्यंजनों का ऐसा गुच्छ जिस के मध्य अक्षर-सीमा नहीं होती **व्यंजन-गुच्छ** कहलाता है । शब्द के आरम्भ में स्वर से पूर्व आनेवाला व्यंजन-गुच्छ 'आदि व्यंजन गुच्छ'; स्वर के बाद शब्दान्त में आनेवाला व्यंजन गुच्छ 'अन्त्य व्यंजन गुच्छ' और दो स्वरों के मध्य शब्द के बीच में आनेवाला व्यंजन गुच्छ 'मध्य व्यंजन गुच्छ' कहलाता है ।

न्ह, म्ह, र्‌ह, ल्ह, न्ह को संयुक्त व्यंजन नहीं माना जा सकता क्योंकि ये एकल स्वन हैं । हिन्दी में कई व्यंजन-गुच्छ विदेशी भाषाओं से भी आ गए हैं । व्यंजन-गुच्छ के द्‌वितीय सदस्य के रूप में 'य, र, ल, व' बहुत अधिक व्यवहृत हैं, प्रथम सदस्य के रूप में ये आदि व्यंजन-गुच्छ नहीं बनाते । मध्यवर्ती, अन्त्य व्यंजन गुच्छ में 'य र ल व' से पूर्व का अल्पप्राण व्यंजन दीर्घ (/द्‌वित्व) उच्चरित होता है, यथा—उपन्यास→उपन्न्यास्, शाक्य→शाक्क्य्, योग्य—योग्ग्य् । मध्यवर्ती, अन्त्य व्यंजन-गुच्छ में 'य र ल व' से पूर्व का महाप्राण व्यंजन स्ववर्गीय अल्पप्राण व्यंजन से युक्त उच्चरित होता है, यथा—अध्यापक→अद्‌ध्यापक्, अभ्यास→अब्भ्यास् । इस प्रकार लेखन में दो व्यंजनों के ऐसे गुच्छ उच्चारण में तीन व्यंजनों के गुच्छ माने जा सकते हैं (वास्तव में नहीं) क्योंकि इन में आगत व्यंजन पर अक्षर-सीमा होती है । हिन्दी-उच्चारण में लिखित 'ष' [श] है और 'ऋ' [रि/र] है, अतः उच्चारण के आधार पर यहाँ व्यंजन-गुच्छ लिखे जा रहे हैं । हिन्दी शब्दों के आदि, मध्य, अन्त में प्राप्त कुछ अति प्रचलित व्यंजन-गुच्छ ये हैं—

द्‌विव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ—

1. आदि व्यंजन गुच्छ—क्या, क्रम, क्लेश, क्वारा, क्षण (क्षण), ख्याति, ख्रिस्तान, ग्यारह, ग्रह, ग्लानि, ग्वाला, घ्राण, च्युत, ज्योति, जृम्भा (ज्रिम्भा), ज्वाला, ट्यूशन, ट्रेन, ट्वीड, ड्योढ़ा, ड्रिल, त्याग, त्रुटि, त्वचा, द्‌युति, द्रोह, द्‌वारा, ध्यान, ध्रुव, ध्वजा, न्याय, नृप (न्रिप), प्यार, प्रेम, प्लेट, प्यास, ब्याज, ब्राह्‌मण, ब्लेड, भ्रम, म्यान, मृग (म्रिग), म्लेच्छ, व्यापारी, श्मशान, श्यामला, श्रद्‌धा, श्लोक, श्वेत, स्कूल, स्खलन, स्टेशन, स्नेह, स्थान, स्तर, स्पष्ट, स्फटिक, स्मरण, स्याही, स्रोत, स्लेट, स्वाद, ह्‌रास, ह्‌वेल, ख़्वाब, ख़्याल, ज़्यादा, फ़्लैट, फ़्रांसीसी, फ़्यूज़ ।

हिन्दी में प्राप्त आदि व्यंजन गुच्छवाले अधिक शब्द संस्कृत, अरबी-फ़ारसी, अँगरेज़ी के हैं । हिन्दी में अपने संयुक्ताक्षर युत शब्द बहुत कम हैं । यही कारण है

कि स+स्पर्श व्यंजनों से बने शब्दों के उच्चारण के समय हिन्दी भाषी जन सामान्य को पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में 'इ' का आगम करना पड़ता है और पूर्वी हिन्दी क्षेत्र में 'अ' का, यथा—स्पष्ट→[इस्पश्ट्/अस्पश्ट्] स्टेशन→[इस्टेशन्/अस्टेशन्]। स+य/र/ल/व का व्यंजन-गुच्छ होने पर 'इ' या 'अ' का आगम नहीं करना पड़ता, यथा—स्याही, स्रोत, स्लेट, स्वाद [स्याही, स्रोत्, स्लेट्, स्वाद्]। ऐसा 'य, र, ल, व' में स्वरत्व का अंश होने के कारण है।

2. **मध्य व्यंजन गुच्छ**—कुछ शब्दों के शब्द-मध्य में वर्ण संयोग व्यंजन-गुच्छ के रूप में केवल दिखाई देता है किन्तु वास्तव में उच्चारण के समय व्यंजन-गुच्छ अक्षर-सीमा पर टूट जाता है। इसलिए परिभाषा के अनुसार ये सभी शब्द मध्य व्यंजन गुच्छ युत नहीं माने जा सकते, यथा—मक्खी (मक्खी), बुक्चा, शक्ति, वाक्यांश (वाक् क्यांश्), विक्रम (विक् क्रम्), शुक्ला, पक्वाशय, रिक्शा, कक्षा, अक्सीर, विख्यात (विक् ख्यात्), बग्घी, रुग्णता, दिग्दर्शन, मुग्धा, नग्नता, दिग्पाल, सौभाग्यवती, आग्रह (आग् ग्रह्), कृतघ्नी, श्लाघ्यता, शीघ्रता, शंका, पंखा (पङ् खा), रंगीन, कंघी, पराङ् मुख, संहार, बिच्छू, अच्युत, झज्झर, पूज्या, पंचमी, वांछित (वाञ् छित्), गंजा, झंझा, संयम, संशय, मट्ठा, नाट्यकार, पाठ्यक्रम, गड्ढा, कुड्मल, षडयन्त्र, धनाढ्यों, कटक, कंठी, पडित, ? ठढा, मृण्मय, पुण्यात्मा, आण्विक, सत्कार, उत्खनन, पत्थरों, पत्नी, उत्पन्न, उत्फुल्ल, आत्मा, मृत्यु, कृत्रिम, सत्वर, उत्साह, मिथ्या (मित् थ्या), उद्गम, उद्घाटन, योद्धा, उद्बोधन, अद्भुत, पद्मा, उद्योग, उद्रेक, उद्वेग, अध्यक्ष, विध्वंश, सन्तरे, ग्रन्थकार, अन्दर, अन्धी, उन्माद, फुंसी, कन्या, अमृत (अम्रित), संलग्नीय, अन्वेषण, मजिल, सप्ताह (सप् ताह्), स्वप्नवत्, ? फुफ्फुस, अभिप्रेत, आप्लावन, कुब्जा, जब्ती, शताब्दी, उपलब्धि, भब्भड़, बिनब्याही, अब्राह्मण, पब्लिक, सब्ज़ी, अभ्यास, अभ्रक, उम्दा, निम्नलिखित (निम्न् लिखित), सम्पत्ति, गुम्फित, कम्बल, खम्भा, ग्राम्या, सम्राट्, इम्ला, संवाद, कर्कशा, मूर्खता, स्वर्गवास, दीर्घायु, चर्चा, बर्छी, अर्जित, निर्झर, कार्टून, ऑर्डर, वर्णन, कर्ता, प्रार्थी, सर्दी, अर्धांश, कर्नल, अर्पित, अर्बुद, गर्भिणी, धार्मिक, आर्या, दुर्लभ, पर्वत, कुर्सी, मार्शल, गर्हित, कुर्की, सुर्खरू, मुर्गा, अर्ज़ी, बर्फ़ी, उल्का, फाल्गुन, कुल्चा, कल्छी, बाल्टी, सुल्तान, उल्था, हल्दी, कल्पना, अल्बम, प्रगल्भता, ज़ुल्मी, कल्याण, विल्वमंगल, ? जल्सा, इल्ज़ाम, उल्फ़त, काव्यांग, विवृत, मुश्किल, आश्चर्य, निश्छल, स्पष्टता, गोष्ठी, विष्णु, नाश्ता, प्रश्नोत्तर, पुष्पित, निष्फल, चश्मा, वेश्या, मिश्रित, विश्लेषण, विश्वास, इश्किया, नमस्कार, विस्खलित, मस्जिद, पोस्टर, सस्ता, विस्थापित, तस्दीक़, हुस्नपरस्त, इस्पात, क़स्बा, क़िस्मत, हास्यास्पद, सहस्रों, मुस्लिम, आस्वादन, मस्ख़री, चिह्नित (चिन्न्हित्) ब्राह्मणों (ब्राम्म्हणों), ग्राह्यता, आह्लादित, गह्वर, वक़्ती, अक़्लमन्द, नक़्शा, मक़्सद, तख़्ता, तख़्मीना, बख़्शना, शख़्सियत, नग़्मा, नज़्ला, जज़्बात, लेफ़्टिनेन्ट, गिरफ़्तार, लफ़्ज़ी, अफ़्साना।

'नग़मा, नज़ला, अफ़साना' जैसे कुछ शब्द वास्तव में 'नग़्मा, नज़्ला, अफ़्साना' जैसे उच्चरित होते हैं। ऐसी स्थिति में तथाकथित द्विव्यंजनीय शब्द मध्य के व्यंजन-गुच्छों की संख्या काफ़ी कम हो जाती है। लेखन में अवश्य काफ़ी संयुक्ताक्षर युत शब्द प्राप्त हैं।

3. **अन्त्य व्यंजन गुच्छ**—शब्दान्त में प्राप्त 'य र ल व' से युक्त व्यंजन-गुच्छ उच्चारण के समय त्रिव्यंजनीय व्यंजन गुच्छ जैसे लगते हैं, यथा—शाक्य (शाक्क्य), किन्तु वास्तव में 'शाक्' पर अक्षर-सीमा होने के कारण ये त्रिव्यजनीय व्यंजन गुच्छ नहीं कहे जा सकते। अन्त्य व्यंजन-गुच्छों के कुछ उदाहरण हैं—सिक्ख, रिक्त, हुक्म, वाक्य (वाक्क्य), चक्र, शक्ल, परिपक्व, वक्ष, टैक्स, मुख्य, रुग्ण, मुग्ध, नग्न, युग्म, भाग्य, विघ्न, श्लाघ्य, शीघ्र, अंक, शंख, अंग, सघ, स्वच्छ, प्राच्य, पूज्य, वज्र, पंच, रंज, वश, नाट्य, पाठ्य, खड्ग, खड्ढ, धनाढ्य, चंट, कंठ, दंड, ? ठंढ, पुण्य, कण्व, वीभत्स, यत्न, ख़त्म, सत्य, मित्र, द्वित्व, क़त्ल, तथ्य, युद्ध, पद्म, वैद्य, समुद्र, मध्य, संत, पंथ, बद, अंध, जन्म, धन्य, हंस, गुप्त, स्वप्न, सामीप्य, विप्र, टॉप्स, कान्यकुब्ज, शब्द, ज़ब्त, लुब्ध, सब्र, सब्ज़, सभ्य, शुभ्र, सिम्त, निम्न, भूकम्प, गुम्फ, विलम्ब, कुम्भ, साम्य, आम्र, अम्ल, तर्क, मूर्ख, स्वर्ग, दीर्घ, चर्च, दर्ज, चार्ट, गार्ड, कर्ण, धूर्त, अर्थ, दर्द, अर्ध, हॉर्न, सर्प, गर्भ, धर्म, आर्य, गर्व, आदर्श, नर्स, पूजार्ह, अर्क, सुर्ख, मुर्ग, कर्ज़, बर्फ़; मुल्क, गोल्ड, जिल्द, गल्प, गुल्फ, बल्ब, प्रगल्भ, ज़ुल्म, तुल्य, बिल्व, ज़ुल्फ़; द्रव्य, विवृत (विव्रित); शुष्क, पश्च, स्पष्ट, ओष्ठ, कृष्ण, गोश्त, प्रश्न, पुष्प, चश्म, अवश्य, मिश्र, विश्व, इश्क़; वयस्क, पोस्ट, स्वस्थ, क़स्द, हुस्न, दिलचस्प, भस्म, हास्य, सहस्र, नस्ल, ह्रस्व; चिह्न (चिन्ह्), ब्रह्म, जड़ित जिह्व, सह्य; व़क्त, व़क्फ़, अ़क्ल, ऩक्श, नु़क्स; स़ख्त, ज़ख्म, ब़ख्श, श़ख्त, ज़ुज़्ब, ऩज़्म; गिर्फ़्त, लिफ़्ट, लफ़्ज़।'

हिन्दी के त्रिव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ—हिन्दी के शब्दों के आदि, मध्य तथा अन्त में कुछ त्रिव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ प्रचलित हैं। शब्द-मध्य में प्राप्त तथाकथित त्रिव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ उच्चारण में द्विव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ के रूप में रह जाते हैं, यथा—इन्स्पेक्टर [इन्स्पेक्टर्], सान्त्वना [सान्त्वना]। शब्द-आदि और शब्दान्त में अक्षर-सीमा न होने के कारण त्रिव्यंजनीय व्यंजन-गुच्छ उच्चारण में भी त्रिव्यंजन युत रहते हैं।

आदि व्यंजन-गुच्छ—/य, र, व/ से युक्त कुछ शब्दों के आरम्भ में तीन व्यंजनों गुच्छ प्राप्त हैं, यथा—स्क्रू, स्त्री, स्पृहा, स्मृति, त्र्यम्बक।

शब्द-मध्य में प्राप्त व्यंजन-गुच्छ—फ़ैक्ट्री, वक्तृत्व, लक्ष्मी, लक्ष्यार्थ, इक्ष्वाकु, दिग्भ्रम, अग्न्यस्त्र, व्यंग्यार्थ, संग्राम, आकांक्षा, पंक्ति, उच्छृंखलता, उच्छ्वास, टुण्ड्रा, ज्योत्स्ना, तादात्म्यता, उत्प्रेक्षा, उत्कृष्ट, उत्क्षिप्त, उद्भ्रान्त, उद्धृत, मन्त्रणा, इन्द्रिय, अन्त्येष्टि, सान्त्वना, सन्ध्या, द्वन्द्वात्मक, इंस्पेक्टर, संस्कार, संस्मरण, संसृति,

पुंश्चली, संश्लिष्ट, प्राप्त्याशा, सम्भ्रम, संवृत, सम्प्रति, कर्फ़्यू, आर्द्रता, ऊर्ध्वता, भर्त्सना, भर्तृहरि, पार्श्विक, ईर्ष्या, राष्ट्रीय, निष्प्रभ, परिष्कृत, विस्तृत, अस्पृश्य, तिरस्कृत, विमृत।

शब्दान्त में प्राप्त व्यंजन-गुच्छ—तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लक्ष्य, वैदग्ध्य, कृच्छ्र, दण्ड्य, कण्ठ्य, तादात्म्य, वैचित्र्य, मत्स्य, मन्त्र, वन्द्य, इन्द्र, अन्त्य, सान्ध्य, रन्ध्र, द्वन्द्व, हिंस्र, कम्ध्य, आर्द्र, ऊर्ध्व, वर्त्स, पार्श्व, राष्ट्र, ओष्ठ्य, स्वास्थ्य, अस्तु।

"स्वातन्त्र्य, वर्त्स्य, शब्दों के अन्त में चार व्यंजनों के व्यंजन-गुच्छ प्राप्त हैं। हिन्दी में तीन, चार व्यंजनों के व्यंजन-गुच्छ प्रायः संस्कृत से आगत शब्दों में ही प्राप्त हैं। इन का व्यवहार भी संस्कृतनिष्ठ, साहित्यिक भाषा में होता है। इन व्यंजन-गुच्छों में/ य, र, व/ के योग से बने व्यंजन-गुच्छों का ही आधिक्य है।

हिन्दी में प्राप्त दीर्घ/गुरु व्यंजन-वितरण तथा प्रयोग—हिन्दी में (कुछ संघर्षी महाप्राणों के अतिरिक्त) महाप्राण व्यंजनों; ड़, ङ, ञ का दीर्घ या गुरु रूप अप्राप्त है। स्वनिक/उच्चारण-स्तर के शब्द-मध्य के दीर्घ व्यंजन स्वनिमिक स्तर पर द्वित्व हैं क्योंकि आक्षरिक व्यंजन में इन का पूर्ववर्ती भाग पहले अक्षर के साथ और परवर्ती भाग पिछले अक्षर के साथ रहता है, यथा—कबड्डी [क बड् डी], दुलत्ती [दु लत् ती]। दीर्घ व्यंजनों के कुछ उदाहरण हैं—

क—पक्का, मक्कार, **क़**—रुक़्क़ा, **ग**—सुग्गा, लग्गी, **च**—बच्ची, कच्चा, **ज**—सज्जन, निर्लज्ज, **ट**—खट्टी, मिट्टी, **ड**—लड्डू, कबड्डी, **ण**—विषण्ण, **त**—कुत्ता, दुलत्ती, **द**—गद्दा, चद्दर, **न**—पन्ना, भिन्न, **प**—चप्पल, कुप्पी, **ब**—गुब्बारा, पनडुब्बी, **म**—अम्मा, चम्मच, **य**—शय्या, **र**—हर्र, रोज़मर्रा, **ल**—पिल्ला, शेखचिल्ली, **व**—फ़व्वारा, **श**—निश्शंक, **स**—रस्सी, गुस्सा, **ज़**—लज़्ज़त, कज़्ज़ाक, **फ़**—लफ़्फ़ाज़ी, लफ़्फ़ाज़, **ख़**—अख़्ख़ाह, **ह**—आह्हा, अह्हा। 'ख़, फ़, ह' के दीर्घ उच्चारण में विशेष प्रयास की आवश्यकता पड़ती है।

व्यंजन-वृद्धि—कुछ शब्दों में स्वर जोड़ कर नया शब्द बनाते समय अन्तिम व्यंजन की वृद्धि हो जाती है अर्थात् उस में दीर्घता आ जाती है, यथा—गप >-ई—गप्पी, चुप >-ई—चुप्पी, ज़िद >-ई—ज़िद्दी। इन शब्दों के सादृश्य पर 'धम, फिच, ठन, भिन-भिन, चर (से), खट' को 'धम्म, फिच्च, भिन्न-भिन्न, चर्र, खट्ट' लिखना और बोलना अमानक है।

हिन्दी में ष, क्ष तथा ज्ञ की स्थिति—हिन्दी में संस्कृत भाषा के लिखित शब्दों में परम्परानुगामी वर्तनी का अनुकरण करते हुए 'ष' को लिखा तो जाता है किन्तु उच्चारण में इस का रूप [श्] है। बोलियों में यह [स्] रूप में उच्चरित है। उत्तर भारत की हिन्दी-इतर भाषाओं में भी इस का उच्चारण [श्/स्] है। दक्षिण भारत की भाषाओं में भी इस का उच्चारण प्रायः [श्/स्] है, मलयाळम् में इस का उच्चारण मूर्धा के पास से किए जाने के कारण [ष्] या [ष्] वत् है।

क्ष<क्ष केवल संस्कृत से आगत शब्दों में लेखन के समय प्रयुक्त होता है, यथा—कक्षा, गवाक्ष, क्षमा, क्षोभ, तीक्ष्ण, भिक्षा, लक्ष्य, शिक्षा आदि। हिन्दी में एक लम्बे अरसे से 'ष' ध्वनि का अभाव होने से इस का उच्चारण [क्ष] नहीं होता वरन् [क्छ्/छ्] जैसा होता है, कुछ लोग [क्श्] जैसा उच्चारण भी करते हैं। विदेशी भाषाओं से आगत 'क्श' युक्त शब्दों को 'क्ष' से नहीं लिखा जाता, यथा—एक्शन, नक्शा, डिक्शनरी, रिक्शा (न कि* रिक्षा)। हिन्दी में 'क्ष' युत आगत अनेक शब्द स्त्रीलिंग रूप में प्रचलित हैं, यथा—अपेक्षा, उपेक्षा, दीक्षा, द्राक्षा, परीक्षा, प्रतीक्षा, भिक्षा, रक्षा, लाक्षा, शिक्षा। उच्चारण-साम्य के कारण 'रिक्शा' [* रिक्छा/रिक्षा] को स्त्रीलिंग में प्रयोग करना अशुद्ध है। उपर्युक्त अनेक तद्भव शब्द क्ष>ख युत हो कर स्त्रीलिंग में प्रचलित हैं, यथा—दाख<द्राक्षा, परख<परीक्षा, काँख<कक्ष, भीख<भिक्षा, लाख<लाक्षा, सीख<शिक्षा। हिन्दी में 'क्ष' का स्वनिक परिवर्तन 'ख/क्ख; छ/च्छ' स्वनों में हुआ है, यथा—पक्ष>पाख, पक्षी>पंछी, मक्षिका>मक्खी, परीक्षा>परख, परीक्षक>पारखी, भिक्षु>भीख, लाक्षा>लाख, लक्ष>लाख। कन्नड़ में 'क्ष' को 'क्ष' रूप में लिखा जाता है। यदि हिन्दी में भी इसे 'क्ष' रूप में लिखा जाए तो इस के उच्चारण में परिवर्तन आ सकता है।

ज्ञ<ज्ञ को कुछ लोग संस्कृत में व्यंजन-गुच्छ न मान कर नासिका विवर से उच्चरित तालव्य स्पर्श-संघर्षी स्वन मानते हैं। इस प्रकार यह मूलतः एक स्वन ठहरता है, दो स्वनों का संयुक्त रूप नहीं। कुछ लोग हिन्दी में उच्चरित 'ग्य' को तालव्यीकृत कण्ठ्य ध्वनि मानते हैं, संयुक्त व्यंजन नहीं। वे 'ग्यान्, अ ग्यान्, वि ग्यान्' के 'ग्य' के मध्य अक्षर-सीमा नहीं मानते। वास्तव में हिन्दी शब्दों के मध्य में इस का उच्चारण 'ग्ग्य' वत् होता है, यथा—[विग्ग्याँन्, अग्ग्येय्, अग्ग्याँन्, * वि ग्याँन्, * अ ग्येय्~* अ गेय्, *अ ग्यान्]। कुछ शुद्धतावादी इस का उच्चारण 'ज्यँ' वत् करते हैं।

हिन्दी में केवल 'ञ' ही ऐसी नासिक्य ध्वनि है जिस का उच्चारण संयुक्ताक्षर रूप में शब्द मध्य में प्राप्त है, शब्द-आदि, शब्दान्त में नहीं। भारतीय भाषाओं में इस के विभिन्न उच्चारण प्राप्त हैं, यथा—ग्न/ग्न्य (उड़िया, तेलुगु, कन्नड, गुजराती), द्न/द्न्य (मराठी) क्ञ (तमिळ), ञ्ञ/ञ्ञ (मलयाळम्), ज्यँ/ग्य/ग्यँ (हिन्दी, पंजाबी, बंगाली), ग्य (मणिपुरी)। भारतीय भाषाओं में मलयाळम् के शब्द-आदि में 'ञ' का प्रयोग प्राप्त है, यथा—'ञान्' (=मैं)। मलयाळम् में 'ज्ञ' का उच्चारण संस्कृत में रहे उच्चारण के निकट का माना जा सकता है।

6
बलाघात, विवृति तथा अनुतान

बलाघात—बोलते समय उच्चारण (Utterance) के प्रत्येक अंश पर समान बल नहीं दिया जाता। वाक्यों के शब्दों पर सदैव समान बल नहीं होता। इसी प्रकार एकाधिक अक्षरवाले शब्दों में सभी अक्षरों पर समान बल नहीं दिया जाता। एकाक्षरी शब्दों में शीर्ष पर सर्वाधिक बल दिया जाता है और पूर्व-गह्वर, पर-गह्वर पर कम। उच्चारण के समय ध्वनि से ले कर वाक्य-स्तर तक दिया जानेवाला वायु/उच्चारण-बल बलाघात (Stress) कहलाता है। बलाघात की चर्चा तुलनात्मक दृष्टि से ही की जाती है। जिस अंश पर सर्वाधिक बल दिया जाता है, उसे ही बलाघात-युक्त कहा जाता है। शेष अंश तुलनात्मक दृष्टि से कम बलाघातयुक्त होते हैं।

यद्यपि बोलते समय वक्ता किसी भी ध्वनि/अक्षर/शब्द पर अधिक या सर्वाधिक बल डाल सकता है, यथा—ˈबुराई बुˈराई बुराˈई, तथापि भाषा के सहज या सर्वमान्य उच्चारण के अनुसार दूसरा उच्चारण ही स्वाभाविक माना जाएगा, पहला और तीसरा उच्चारण बनावटी या हिन्दी भाषा की प्रकृति के प्रतिकूल माना जाएगा। हिन्दी में बलाघात का स्थल शब्द की स्वनिक संरचना पर निर्भर होता है। बलाघात के समय फेफड़ों से वायु-प्रवाह अधिक शक्ति के साथ होता है और उच्चारण-अवयवों में सामान्य से कुछ अधिक तनाव (Tension) आ जाता है। कभी-कभी वक्ता के अन्य अंग (नथुने, भौंहें, हाथ, कंधे, पैर आदि) भी बलाघात के कारण सामान्य से अधिक सक्रिय हो जाते हैं। हिन्दी में इन स्तरों पर बलाघात देखा जा सकता है—

(क) **ध्वनि-स्तरीय बलाघात**—एकाधिक ध्वनियोंवाले एकाक्षरी शब्द में शीर्ष (केन्द्रक) पर ध्वनि-स्तरीय बलाघात होता है, यथा—'पान, खीर, एक, कि' में क्रमशः 'आ, ई, ए, इ' पर बलाघात है क्योंकि इन शब्दों में ये स्वर ध्वनियाँ ही शीर्ष का काम कर रही हैं। हिन्दी में ध्वनि-स्तरीय बलाघात अनुमेय (Predictable) होता है।

(ख) **अक्षर-स्तरीय बलाघात**—एकाधिक अक्षरवाले शब्दों में किसी एक अक्षर पर प्रमुख/उच्च बलाघात होता है, तथा अन्य पर गौण/निम्न या निम्नतर अथवा निम्नतम। अँगरेज़ी, रूसी आदि कुछ भाषाओं में बलाघात-भेद कोशीय अर्थ-भेद कारक है किन्तु हिन्दी में यह कोशीय अर्थ-भेद कारक नहीं है, यथा—Present, Conduct में पहले अक्षर पर बल देने पर शब्द संज्ञा रहता है, जब कि दूसरे अक्षर पर बल देने से शब्द क्रिया हो जाता है। Photograph, Photography, Photographic में क्रमशः पहले, दूसरे और तीसरे अक्षर पर बलाघात है। हिन्दी में आक्षरिक बलाघात अस्वनिमिक होने के कारण निरर्थक है, फिर भी हिन्दी शब्दों में अक्षर-बलाघात (उच्चारण) का लगभग एक सर्वमान्य स्वरूप स्वीकृत है जो शब्द के किसी अक्षर विशेष पर रहता है। ग़लत अक्षर का बलाघात शब्दोच्चारण को अस्वाभाविक बना देता है।

अति विस्तृत हिन्दी-क्षेत्र में थोड़ी-बहुत उच्चारण-भिन्नता के कारण अक्षर-स्तरीय बलाघात में कभी-कभी/कहीं-कहीं थोड़ा-बहुत अन्तर भी मिलता है। हिन्दी में अक्षर-बलाघात को भी अनुमेय (Predictable) कहा जा सकता है। एकाधिक अक्षर-वाले शब्दों में अक्षर-बलाघात के नियम ये हैं—1. एकाधिक अक्षरवाले शब्दों में सभी अक्षर समान स्तरीय (ह्रस्व/मध्यम/दीर्घ/अतिदीर्घ) होने पर उपान्त (= अन्तिम से पूर्व) अक्षर पर बलाघात होता है, यथा—**र** घु, स **मि** ति, ला **चा** री, **सम्** बल, कर्म युक्त, **काम** गार।

2. ह्रस्व, मध्यम, दीर्घ, अतिदीर्घ अक्षरों से युक्त शब्दों में प्राथमिकता की दृष्टि से क्रमशः मध्यम, दीर्घ या अतिदीर्घ अक्षर पर बलाघात होता है, बशर्ते शब्द में इन से सम्बन्धित एक ही अक्षर हो, यथा—जि **सी**, अ **मिट**, सु प रि **चित** (ह्रस्व तथा एक मध्यम अक्षर से बने शब्द); स **पूत**, अ **नार**, वि **भिन्न**, स्व **तन्त्र**, पा बन्द, ला **चार** (ह्रस्व/मध्यम तथा एक दीर्घ अक्षर से बने शब्द); अ प रि **हार्य**, म हा **पात्र**, निर् **व्याप्त** (ह्रस्व/मध्यम/दीर्घ और एक अति दीर्घ अक्षर से बने शब्द)

3. एकाधिक अतिदीर्घ/दीर्घ/मध्यम/ह्रस्व अक्षरों से युक्त शब्दों में क्रमशः उपान्त अतिदीर्घ/दीर्घ/मध्यम/ह्रस्व की प्राथमिकता के आधार पर बलाघात होता है, यथा—**रा** धि का, **लड्** डू, **श्याम** ला, **रोज़्** गार, **रे** डि यो, अ ना **वृ**ष टि, **संस** कार, बा **जी** गरी, कि **रा** या, अ **मा** वस, **पूछ** ताछ, **सौन्** दर्य, सन् श **या** लु, अ **ना** सक् ति।

4. किसी शब्द से निर्मित दूसरे शब्द/शब्दों में अक्षर-बलाघात मूल शब्द के बलाघात के अनुसार भी हो सकता है और परिवर्तित भी हो सकता है, यथा—म **धुर**→म धुर ता (मूलवत्); **सुन्** दर→सुन् **दर** ता (परिवर्तित)

अक्षर-बलाघात के कुछ अन्य उदाहरण हैं—**बिल्** ली, **बिन्** दी, पिल पि **ला**, सर स **री**, गुद गु **दा**। **माँ-बाप**, **चाल-ढाल**, गुस्ल **खा** ना, बोल ने **वा** ला, ल कड़ **हा** रा, म दद **गार**।

(ग) **शब्द-स्तरीय बलाघात**—एकाधिक शब्दोंवाले वाक्यों में अर्थ वैशिष्ट्य हेतु किसी शब्द विशेष पर मुख्य/उच्च बल दिया जाता है, यथा—**तुम ने** बच्चे के गाल पर चाँटा मारा। तुम ने **बच्चे के** गाल पर चाँटा मारा। तुम ने बच्चे **के गाल पर** चाँटा मारा। तुम ने बच्चे के गाल पर **चाँटा** मारा। तुम ने बच्चे के गाल पर चाँटा **मारा**।

वक्ता की इच्छा के अनुसार वाक्य में शब्द-बलाघात परिवर्तित होने के कारण अनुमेय नहीं है। वाक्योच्चारण के सहज/सामान्य प्रवाह में पड़नेवाले शब्द/पद-बलाघात को अनुमेय कहा जा सकता है, यथा—

1. वाक्य में प्रयुक्त आज्ञार्थक रूप सामान्य की अपेक्षा अधिक बलाघात युत होता है, यथा—तू वहाँ मत **जा**—मैं वहाँ जा रहा हूँ।

2. वाक्य में व्याकरणिक इकाइयों की अपेक्षा आर्थी/कोशीय इकाइयों पर अधिक बलाघात होता है, यथा—**किसान** ने **साँप** को **लाठी** से **मार** डाला। वे **आगरा** तक **जा** रहे हैं। **बच्ची** तो नहीं **खाएगी**।

3. 'ही, भी' पर वक्ता की इच्छानुसार बलाघात हो भी सकता है और नहीं भी, यथा—नौकर ही/भी लाएगा—नौकर **ही/भी** लाएगा।

4. वाक्य में आए प्रश्नवाचक शब्द पर सशक्त बलाघात होता है, यथा—आजकल तुम **कहाँ** रह रहे हो? लड़के को **कितनी** तनख़्वाह मिलती है! तुम वहाँ अकेले **कैसे** रहोगे?

5. पूरक विशेषण/क्रियाविशेषण पर सशक्त बलाघात होता है, यथा—रेखा **सुन्दर** लड़की है। मेरा साला **अमीर** था। आजकल मेरा गला **ख़राब** है। वह **अच्छा** नाचती है। मेरा घोड़ा बहुत **तेज़** दौड़ता है।

6. निषेधवाचक वाक्यों में नकारात्मक अव्ययों पर सशक्त बलाघात होता है, यथा—आप **न** उठाएँ, हम उठा लेंगे। तुम बीच में **मत** बोला करो। मैं **नहीं** जाऊँगी।

हिन्दी में शब्द-स्तरीय बलाघात स्वनिमिक होने के कारण अर्थ-भेदक (सामान्य, निश्चय, आधिक्य, समाहारी, आज्ञा, तुलना आदि का सूचक) है, यथा—

कम-से-कम **शर्बत** पीजिए—**कम-से-कम** शर्बत पीजिए।

उन्हें **एक** रोशनदानवाला कमरा चाहिए था—उन्हें एक **रोशनदानवाला** कमरा चाहिए था।

आज तुम **कम-से कम** बोलीं—आज तुम कम-से-कम **बोलीं**।

रोगी उठा और दूध पी कर सो गया—रोगी उठा **और** दूध पी कर सो गया। (पहला 'और'=and; दूसरा 'और'=more अधिक)।

एक लड़की खड़ी है—**एक** लड़की खड़ी है। (पहला 'एक'=कोई; दूसरा 'एक'=एक ही)।

चाय बहुत मीठी थी—चाय **बहुत** मीठी थी। (**बहुत** = बहुत अधिक/बहुत ही)।

मैं अभी और पढ़ूँगा—मैं अभी **और** पढ़ूँगा। (**और**=और भी)।

लगता है तुम कभी नहीं सुधरोगे—लगता है तुम **कभी** नहीं सुधरोगे। (**कभी** = कभी भी)।

(तू/तुम ने यह) पत्र लिखा—(तू यह) पत्र **लिखा**। (**लिखा आज्ञार्थ**)।

तुम्हारी **किताबें** कहाँ हैं? (**किताबें** = Books)—**तुम्हारी** किताबें कहाँ हैं? (किताबें = the books)।

सामान्यत: सभी भारतीय भाषाओं में शब्दों पर बल देने से इस प्रकार की आर्थी विशेषताएँ आ जाती हैं; अत: इसे logical stress ऐच्छिक बलाघात कहा जा सकता है।

(घ) **वाक्य-स्तरीय बलाघात**—किसी प्रसंग में एक साथ एकाधिक वाक्यों का उच्चारण करते समय अपनी बात स्पष्ट करने या भावों का अतिरेक व्यक्त करने अथवा व्यंजित अर्थ व्यक्त करने के लिए वक्ता अपनी इच्छानुसार बल देने के लिए किसी पूरे वाक्य या उस के एक अंश पर बलाघात दे सकता है। इस के अतिरिक्त वह अन्य कई भाषेतर कारकों का सहारा ले सकता है, यथा—

एक दिन की छुट्टी ले कर चार दिन बाद आ रहे हो, मुझे नहीं रखना ऐसा नौकर, **भाग जाओ यहाँ से**।

मैं यहाँ इसलिए नहीं आई हूँ कि रात-दिन नौकरानी की तरह काम में खटती रहूँ, **मेरा भी अस्तित्व है**।

बलाघात युत वाक्य/वाक्यांश सामान्य वाक्य/वाक्यांश की अपेक्षा कुछ विशेष अर्थ-वैशिष्ट्य या मनोभावयुक्त होता है, अत: हिन्दी में वाक्यांश, वाक्य-स्तरीय बलाघात को स्वनिमिक कहा जा सकता है। किसी वाक्यांश पर बल देने के लिए बलाघात के अतिरिक्त निपात (ही, भी, तो, तक आदि) का प्रयोग भी किया जाता है। कभी-कभी वाक्य के सामान्य पद-क्रम को बदल दिया जाता है, यथा—काँटे ही मिलेंगे तुम्हें इस पथ पर।

वाक्य-स्तरीय बलाघात वक्ता की इच्छा पर निर्भर रहने के कारण अनुमेय नहीं कहा जा सकता।

बलाघात-प्रभाव—1. बलाघातित मूल शिथिल ध्वनि कुछ दृढ़ और मूल दृढ़ ध्वनि कुछ दृढ़तर हो जाती है; यथा—प्रगति, समिति, अतिथि में क्रमश: उपान्त अ (ग), इ (मि), इ (ति) पर बलाघात होने के कारण मूलत: शिथिल 'अ, इ, इ' अन्य 'अ, इ' ध्वनियों की अपेक्षा दृढ़ हैं। इसी प्रकार मूलत: दृढ़ 'आ' 'आसानी' शब्द के उपान्त में बलाघातयुत हो कर दृढ़तर हो गया है। शब्द की अन्य ध्वनियों की स्थिति इस से विपरीत हो जाती है।

2. बलाघातयुत ह्रस्व स्वर कुछ दीर्घ और दीर्घ स्वर कुछ दीर्घतर हो जाता है, यथा—'आवारा, आसानी, प्रगति, समिति' के उपान्त 'आ, अ, इ' बलाघात युत होने के कारण कुछ दीर्घतर, कुछ दीर्घ हैं। शब्द की अन्य ध्वनियों की स्थिति इससे विपरीत हो जाती है।

3. बलाघातयुत अक्षर की अल्पप्राण ध्वनि कभी-कभी महाप्राणवत् सुनाई पड़ती है, यथा—क्या है, चैन से बैठा भी नहीं जाता। वाक्य में क्या→ख्या वत् उच्चरित। बलाघात-हीन महाप्राण ध्वनि में महाप्राणता की मात्रा कुछ कम हो जाती है, यथा—ठिठोली में 'ठि'।

4. बलाघातयुत स्वर अपेक्षाकृत अधिक मुखर (Sonorous) होने के कारण श्रवणीयता की दृष्टि से प्रमुख (Prominent) हो जाता है, यथा—'बूरा, कहारी, नीलामी' में 'बू, हा, ला' अपेक्षाकृत अधिक मुखर तथा दूर तक श्रवणीय हैं। बलाघात-रहित ध्वनियाँ अपेक्षाकृत कम मुखर तथा कम श्रवणीय हो जाती हैं।

5. वाक्य में बलाघातयुत अक्षर/शब्द सामान्य से कुछ अधिक उच्च तानवाला हो जाता है। बलाघात-रहित अक्षर/शब्द का तान कुछ नीचा हो जाता है।

6. वाक्य में बलाघातयुत अल्पप्राण कभी-कभी दीर्घ हो जाता है तथा महाप्राण के पूर्व उस का अल्पप्राण आ जाता है, यथा—कोई फड़कता हुआ ऐसा **गाना** गाओ कि······(ग्गाना)। निकल जा यहाँ से, अपने बाप की **छाती** पर जा कर मूँग दल। (च्छाती)

विवृति (Juncture)—बोलते समय एक ध्वनि से दूसरी ध्वनि के मध्य का संक्रमण (transition) तथा विराम (pause) विवृति/संगम/संहिता कहलाता है। दो ध्वनियों के मध्य विवृति उत्पन्न होने के तीन कारण हो सकते हैं—1. दोनों ध्वनियों का असम स्थानीय होना, यथा—जा**नका**र, क**पटी**, म**न्म**थ 2. अर्थ-स्पष्टीकरण हेतु मौन/विराम की आवश्यकता का अनुभव होना, यथा—तुम ने पीलीवाली दवा **पी ली** ? वह **कम बल**वाला आदमी नहीं था। 3. वाक्य-स्तरीय लम्बे उच्चारों के मध्य साँस लेने या अर्थ स्पष्ट करने या दोनों की आवश्यकता का अनुभव होना, यथा—**रोको**, मत आने/जाने दो—**रोको मत**, आने/जाने दो।

सम स्थानीय ध्वनियों के मध्य उच्चारण-अवयवों को संक्रमण में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होता, अतः वहाँ विवृति नहीं होती, यथा—'कम्पन, कम्बल, अहङ्कारी, हिन्दुओं' में म्-प, म्-ब, ङ्-क्, न्-द्' के मध्य।

लेखन में विवृति को + चिह्न से प्रदर्शित करते हैं, यथा—1. स्वर+स्वर (सु+अवसर→सुअवसर, चलो+अब→चलो अब, क्या बनाओगी+आज→क्या बनाओगी आज) 2. व्यंजन+व्यंजन (चिम+टा→चिमटा, बक+बक→बकबक, तुम+हारी—तुम्हारी, इन+कार—इनकार, मन+माफ़िक—मन माफ़िक) 3. स्वर+व्यंजन (पिला+दो→पिला दो, ले+लो→ले लो, पी+लिया→पी लिया/पीलिया) 4. व्यंजन+स्वर (बच+आई→बच आई/बचाई, आज+आना→आज आना/आ जाना, सह+अनुभूति→सह-अनुभूति/सहानुभूति)।

समय की दृष्टि से विवृति मौन-काल/विराम-काल है। हिन्दी में इस के मुख्य तीन भेद किए जाते हैं—1. **अत्यल्पकालिक विवृति** शब्द के अन्दर स्वर+स्वर; व्यंजन+व्यंजन; व्यंजन+स्वर; स्वर+व्यंजन; अक्षर+अक्षर के मध्य और दो शब्दों के मध्य अर्थ-स्पष्टता हेतु आती है, यथा—इन्+कार→इनकार, चिम्+टा →चिमटा, चिप्+को→चिपको, लिख्+ना→लिखना, चम्+चा→चमचा, तिन्+का→तिनका, नम्+कीन→नमकीन, अन्+पढ़→अनपढ़, न+दी→नदी, पी+लिया→पीलिया, हो+ली→होली, बर्फ़ी+ले→बर्फ़ीले, सिर्+का→सिरका।

2. **अल्पकालिक विवृति** अर्थ की दृष्टि से वाक्य के किसी खंड/घटक को किन्हीं अन्य घटकों/खंडों या इकाइयों से अलग दिखाने के लिए आती है जिसे लेखन में अल्पविराम से व्यक्त करते हैं, यथा—तुम आ गई हो, अतः मुझे खाना बनाने की झंझट से छुट्टी मिली। वे बोले, हम आज ही लौट जाएँगे। तुम जो मेरे साथ इतनी उदारता दिखा रहे हो, कहीं इतने ही कठोर तो न हो जाओगे? अल्पकालिक विवृति अर्थ की स्पष्टता और साँस लेने या दोनों कारणों से आती है।

3. **दीर्घकालिक विवृति** दो वाक्यों के मध्य आती है जिसे लेखन में । ? ! चिह्नों से व्यक्त किया जाता है। दीर्घकालिक विवृति अर्थ-स्पष्टीकरण तथा साँस लेने के उद्देश्य की पूर्ति करती है। छोटे-छोटे वाक्यों के उच्चारण के समय प्रति वाक्य/श्वास-वर्ग (breath group) के बाद यह विवृति आती है किन्तु बड़ा वाक्य होने पर एकाधिक वाक्य खंड/श्वास-वर्ग के बाद अल्पकालिक विवृति आती है।

अर्थ-भेदक होने के कारण हिन्दी में विवृति स्वनिमिक है, यथा—पी ली—पीली, हो ली—होली, बर्फ़ी ले—बर्फ़ीले, बतासा ले—बता साले, मन का—मनका, बरछी ने—बर छीने, जाग रण का यह समय है—जागरण का यह समय है, सनकी —सन की, मिलाया—मिल आया, खा ली—खाली, वह घोड़ा गाड़ी खींच रहा है—वह घोड़ागाड़ी खींच रहा है, काम में न रम—काम में नरम, सोओ, मत उठो——सोओ मत, उठो; नफ़ीस—न फ़ीस; बहादुर बच्चे, रोते नहीं—बहादुर बच्चे रोते नहीं। आदि

वाक्यान्त विवृति के पूर्व सुर आरोही/अवरोही/सम होता है। प्रश्नार्थक, आश्चर्यसूचक वाक्यों में आरोही; सूचनार्थक में अवरोही और अधूरे वाक्य में सम सुर रहता है। उच्चार-मध्य की अर्थ-भेदक विवृति को स्वनिमिक विवृति और वाक्य-मध्य की विवृति अभ्यन्तर विवृति (Internal Open Juncture) कहलाती है, यथा—

वे+आ+गए+क्या ↑	वे+आ+गए ↓
अरे+वे+तो+आ+भी+गए ↑	बीमार+लाचार+और·······→
मिल+ +आया——मिला+या	वे+ +बे+ईमान+है

अनुतान (Intonation)—वाक्यों के उच्चारण के समय सुर/लहजे के उतार-चढ़ाव/अवरोह-आरोह को अनुतान कहते हैं, यथा—

'ग्राहक—अंगूर किस भाव दिए हैं ?
दुकानदार – बारह रुपये किलो ।
ग्राहक—बारह रुपये किलो ? पड़ोस में दस रुपये किलो बिक रहे हैं, और तुम बारह कह रहे हो !
दुकानदार—पड़ोस की दुकान से ही ले लीजिए, वहाँ बीजवाले और खट्टे आठ रुपये किलो भी मिल जाएँगे ।'

वाक्योच्चारण के समय घोष तथा अघोष ध्वनियों का प्रयोग होता है । घोष ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वरतन्त्रियों में होनेवाली कम्पन-आवृत्ति (Frequency of Vibration) **सुर** (Pitch) या **तान** (Tone) कहलाती है । एकाधिक घोषध्वनियाँ लगातार उच्चरित होने पर सुर-लहर/अनुतान का निर्माण करती हैं, यथा—'मैं अभी नहीं जाऊँगा' वाक्य-उच्चारण के समय 'म्, ऐं, अ, भ्, ई, न्, अ, ह्, ईं, ज्, आ, ऊँ, ग्, आ' 14 भिन्न-भिन्न सुर परस्पर मिल कर एक विशेष प्रकार की सुर-लहर का निर्माण करते हैं । अघोष ध्वनियों के उच्चारण के समय अत्यल्प कम्पन होने के कारण सुर का अभाव रहता है । वाक्यों में अघोष ध्वनियों (लगभग 20%—22%) की अपेक्षा घोष ध्वनियों (लगभग 78%—80%) का व्यवहार अधिक होने के कारण वाक्यों में आद्यन्त सुर लहर/अनुतान की प्रतीति होती है । अतः **वाक्य-उच्चारण के समय ध्वनियों के सुरों के आरोहावरोह का क्रम अनुतान कहलाता है ।**

लगभग सभी भाषाओं में अनुतान-भिन्नता से वाक्य/वाक्यांश में अर्थ-भिन्नता आ जाती है, यथा— वे आ गए । ? !' वाक्य को तीन प्रकार की अनुतान में बोलने पर तीन प्रकार के अर्थ की सूचना मिलती है—सामान्य कथन, प्रश्नसूचक कथन, आश्चर्यसूचक कथन । हिन्दी का **'अच्छा'** शब्द विभिन्न अनुतानों में बोलने पर विविध प्रकार के अर्थों का सूचक होता है, यथा—

तुम्हारा यह नौकर तो अच्छा लगता है (=भला) । हरीश भी पास हो गया; अच्छा ! (=आश्चर्य) । बहुत देर से लिख रहे हो, अब लिखना बन्द करो; अच्छा (=अनिच्छा) । हमें अभी चल देना चाहिए; अच्छा । (स्वीकृति) । आप इस बात का अर्थ समझ रहे हैं न ? अच्छा । (=जी हाँ)

हिन्दी में सामान्यतः तीन प्रकार के अनुतान-साँचे (Intonation patterns) मिलते हैं—1. निम्न 2. सामान्य 3. उच्च । कभी-कभी अति उच्च या अत्यन्त उच्च अनुतान-साँचा भी मिल जाता है । निम्न को अवरोही (Falling)↘, सामान्य को सम (level)→ और उच्च को आरोही (rising)↗ भी कहा जाता है । आरोह-अवरोह के मिश्रित रूप को आरोहावरोह (rising falling)↗↘; अवरोह-आरोह के मिश्रित रूप को अवरोहावरोह (falling-rising)↘↗ कहते हैं ।

हिन्दी में सामान्यतः पाँच प्रकार के वाक्यों (सामान्य, प्रश्नसूचक, आश्चर्य-सूचक, आज्ञासूचक, निषेधसूचक) और अभिवादन के लिए कई प्रकार के अनुतान-साँचों का प्रयोग होता है, यथा—

1. सामान्य (निश्चयार्थक) वाक्यों में 2 3 1 के अनुतान-साँचे का प्रयोग होता

है। वाक्यान्त में अवरोही सुर रहता है, यथा—मकान काफ़ी बड़ा है। तुम्हारी आदत
2 3 1 2
बहुत गन्दी है। आज हम आपके यहाँ खाएँगे, कल अपने दोस्त के घर में। सामान्य
3 1 2 3 1 2 3 1
बातचीत, भाषण, कहानी-कथन के सन्दर्भ में निश्चयार्थक वाक्यों के अनुतान-साँचों में थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य होता है।

2. प्रश्नसूचक वाक्य चार प्रकार के होते हैं, जिन के अनुतान-साँचे भी भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा—(क) प्रश्नसूचक शब्द-रहित वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 3 होता है। वाक्यांत में आरोही सुर रहता है, यथा—मेहमान चले गए? चाय बन
2 3 3 2 3
गई? तुम ने स्कूल का काम कर लिया?
3 2 3 3

(ख) वाक्यांत में प्रश्नसूचक शब्दवाले वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 2 होता है। 3, 2 के मध्य विराम (≠) होता है। वाक्यांत में आरोही सुर रहता है, यथा—
वे चली गईं क्या? तुम वहाँ तक चढ़ोगी कैसे?
2 3 ≠ 2 2 3 ≠ 2

(ग) वाक्य-मध्य में प्रश्नसूचक शब्द आ जाने पर 2 3 1 का अनुतान-साँचा रहता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—आप कब चल रहे हैं? तालाब
2 3 1 2
में कितना पानी है?
3 1

(घ) 'न'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 2 होता है। वाक्यान्त में किंचित आरोही सुर रहता है, यथा— तो कल चल रहे हो न? खिड़कियाँ ठीक
2 3 2 2
से बन्द करदी हैं न?
3 2

3. आश्चर्यसूचक वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 2 होता है। वाक्यांत में किंचित अवरोही सुर रहता है, यथा—तुम ने दो किलो दूध पी लिया! पड़ोसी बुड्ढा
2 3 2 2
चल बसा!
3 2

4. आज्ञासूचक वाक्य दो प्रकार के होते हैं, जिन के अनुतान-साँचे भी भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा—

(क) सामान्य आज्ञा-वाक्य का अनुतान-साँचा 2 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—बाहर बैठो। यहीं रुको।
2 1 2 1

(ख) निषेध आज्ञा-वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—बाहर मत बैठो। आप वहाँ न जाइए।
2 3 1 2 3 1

5. निषेधसूचक वाक्य आठ प्रकार के होते हैं, जिनके अनुतान-साँचे भी भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा—

(क) 'नहीं'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है। वाक्यारम्भ में आनेवाले 'नहीं' का अनुतान-साँचा 3 रहता है, यथा—नहीं, मैं नहीं रुक पाऊँगा। तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए थी।
3 ≠ 2 3 1 2 3 1

(ख) 'मना'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोह रहता है, यथा—यहाँ बेकार बैठना मना है। फूल तोड़ना मना है।
2 3 1 2 3 1

(ग) निषेधवाची उपसर्ग (अ, अन, ग़ैर, ना, ला आदि) युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—यह काम
2

ग़ैरक़ानूनी है। तुम्हारी बीमारी लाइलाज है।
3 1 2 3 1

(घ) 'थोड़े ही'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 1 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोहावरोह रहता है, यथा—मैं ने थोड़े ही उसे मारा था। वह यहाँ
1 2 3 1 1

नौकरी करने थोड़े ही आया था।
2 3 1

(ङ) 'चुक'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोह होता है, यथा—तुम तो हो चुके पास। ऐसे तो वह पा चुकी काम।
2 3 1 2 3 1

(च) 'रह'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 2 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा—वे तो वहाँ जाने से रहे। मैं तो यहाँ सोने से रही।
2 3 1 2 2 3 1 2

(छ) वाक्य-मध्य में आए प्रश्नसूचक शब्द युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 3 1 होता है। वाक्यांत में अवरोही सुर रहता है, यथा - तुम कब के धन्नासेठ
2 3 1

हो ? यहाँ मेरी कौन सुनता है ?
2 3 1

(ज) वाक्यारम्भ में आए 'भला'-युक्त वाक्य का अनुतान-साँचा 2 2 3 1

होता है। वाक्यान्त में अवरोही सुर रहता है, यथा—भला, यह भी कोई काम
2 — 2 3

है? भला, यह आप के बस की बात है?
1 2 ≠ 2 3 1

6. अभिवादन-सूचक शब्दों/वाक्यों का अनुतान-साँचा 1 2 3/2 3 1 होता है। अन्त में अवरोह रहता है, यथा—न म स्कार न मस्कार। न मस् ते न मस् ते।
1 2 3 2 3 1 1 2 3 2 3 1

कहिए, कैसे हैं? कहिए, कैसे हैं?
3 2 1 ≠ 3 2 1 2 2 3 ≠ 2 2 3

वक्ता की मन:स्थिति, मनोवृत्ति, वक्ता-श्रोता के सामाजिक सम्बन्ध और परिस्थिति आदि के कारण अनुतान-साँचों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

7. अधूरे या अस्वतन्त्र वाक्यों के उच्चारण में लगभग सम सुर रहता है जिस का अनुतान-साँचा 1 1/1 1 1 होता है, यथा—दीदी गई…… (तो मैं भी
1 1

जाऊँ)। दीदी सिनेमा जा रही है……(तो मैं भी जाऊँगा)।
1 1 1

यद्यपि लिखित रूप में विरामादि चिह्नों का प्रयोग कर अनुतान की सूचना देने का प्रयत्न किया जाता है, तथापि यह प्रयत्न अधूरा ही है क्योंकि अनुतान-स्वरूप वक्ता के मनोभावों पर आधारित है और उच्चारण की चीज़ है, यथा—

मैं जा रहा हूँ। मैं जा रहा हूँ? मैं जा रहा हूँ!

मैं जाऊँ? ↓अच्छा। ↓अच्छा, जाओ।

उसे पुलिस पकड़ ले गई। ↑अच्छा!/बहुत अच्छा!

अच्छा! वह भी पास हो गया? कौन? सतीश?

अच्छा, तुम बोल रहे हो? ↓अच्छा, तो अब चलूँ? अच्छा, फिर कभी।

7
वर्णमाला

संसार की कोई भी भाषा किसी भी उपयुक्त लिपि में अंकित की जा सकती है। उपयुक्त लिपि से यहाँ तात्पर्य है—उस भाषा में प्रयुक्त समस्त खण्ड्य स्वनिमों और विशिष्ट उपस्वनों के लिए पृथक्-पृथक् लिपि-चिह्नों का होना। भाषा की आवश्यकता के अनुरूप अधिखंडीय या खण्ड्येतर स्वनिमों के लिए भी उपयुक्त लिपि-चिह्नों का होना अच्छी लिपि की विशेषता है। सामान्यतः बहुत लम्बे समय तक कोई भाषा विशेष जब किसी लिपि विशेष में लिखी जाती रहती है, तो उस लिपि को ही उस भाषा की लिपि मान लिया जाता है और जन सामान्य का भाषा के साथ-साथ उस लिपि के साथ भी भावनात्मक लगाव हो जाता है, यथा—अँगरेज़ी-रोमन, हिन्दी-देवनागरी, मराठी-देवनागरी, तमिळ-तमिळ, कन्नड-कन्नड, पंजाबी-गुरुमुखी आदि।

वर्णमाला (Alphabets) का वर्ण शब्द कई अर्थों का सूचक रहा है, यथा—रंग (सं.), जैसे—विवर्ण (=जिस का रंग उड़ गया हो), रक्त/गौर/पीत वर्ण; वर्ण-क्रम (Spectrum)। चतुर्वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; Letter, वर्णमाला में अन्तिम अर्थ के रूप में वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है। 'मान' किसी व्यापार/आचरण/वस्तु आदि के स्तर/मूल्य को आँकने की इकाई, यथा—मानदण्ड (yardstick), नैतिकता का मानदण्ड। मान शब्द से मानक (Standard) शब्द का निर्माण हुआ है। देवनागरी लिपि का उपयोग संस्कृत-प्राकृत-पाली-अपभ्रंश-मराठी, हिन्दी, नेपाली के लेखन के लिए कसरत से होता है। अन्य भाषाएँ भी इस में सरलता से लिखी जा सकती हैं। भारत सरकार के प्रयत्नों से 1959 में देवनागरी को मानक रूप देने का प्रयास किया गया और 1967 में मानक देवनागरी पर एक पुस्तिका प्रकाशित की गई जिस में भारत की प्रधान भाषाओं को देवनागरी में अंकित करने के लिए आवश्यक वर्ण भी जोड़े गए हैं।

हिन्दी भाषा-लेखन के लिए मुख्यतः देवनागरी/नागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है। प्रायः भ्रम के कारण देवनागरी-वर्णमाला को ही हिन्दी की ध्वनियाँ कह

दिया जाता है, ऐसा कहना/मानना ग़लत है। हिन्दी के लिए प्रयुक्त **मानक देवनागरी वर्णमाला** में ये स्वर, व्यंजन वर्ण हैं—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः अँ ऑ ऍ

क ख ग घ ङ   च छ ज झ ञ   ट ठ ड ढ ण   त थ द ध न

प फ ब भ म   य र ल व श ष स ह   क्ष त्र ज्ञ   श्र क़ ख़ ग़ ज़ फ़

ड़ ढ़ ळ

इस वर्णमाला में 'अ इ उ ऋ' ह्रस्व स्वर वर्ण हैं, 'आ ई ऊ ए ऐ ओ औ' दीर्घ वर्ण हैं। 'अं' अनुस्वार-चिह्न (ं), 'अः' विसर्ग-चिह्न (:), 'अँ' अनुनासिकता-चिह्न (ँ), 'ऑ, ऍ' हिन्दी-इतर भाषाओं के स्वर वर्ण हैं। व्यंजनों में क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग तथा प वर्ग की ध्वनियों के लिए 5-5 वर्ण हैं। 'क्ष त्र ज्ञ श्र' संश्लिष्ट संयुक्ताक्षर/संश्लिष्ट संयुक्त वर्ण हैं। 'त्र' त्‍र का परम्परागत रूप है। अन्य सरलाक्षर/एकल/सरल वर्ण हैं। क़ ख़ ग़ ज़ फ़' विदेशी व्यंजनों के वर्ण हैं। 'ड़ ढ़ ळ' कुछ शताब्दियों पूर्व हिन्दी वर्णमाला में जोड़े गए हैं। देवनागरी वर्णमाला के सभी व्यंजन वर्णों में अन्तर्निहित 'अ' (inherited A) वर्तमान होने से इन्हें भी स्वर वर्णों की भाँति 'अक्षर' कहा जाता है क्योंकि ये भी साँस के एक-एक झटके में उच्चरित होते हैं।

वर्ण-रचना की समानता की दृष्टि से ये वर्ण-समूह दृष्टव्य हैं—उ ऊ अ आ ओ औ अं अः ऑ इ ई ह ड ड़ ङ द झ ग म ग़ न भ स र ए ऐ ऍ ख ख़ प फ फ़ ण ष य थ घ ध श व ब क क़ च ज ज़ ञ त्र ट ठ ढ ढ़ छ ळ त ल क्ष ज्ञ ऋ श्र।

स्वर-वर्णों के मात्रा-चिह्न—'अ' का कोई मात्रा-चिह्न प्रचलित नहीं है। अन्य स्वर-वर्णों की भाँति यदि 'अ' वर्ण का मात्रा-चिह्न (यथा— (या इसी प्रकार का कोई अन्य चिह्न) बना लिया जाता है, तो देवनागरी की वैज्ञानिकता में चार चाँद लग जाएँगे। 'अ' का मात्रा-चिह्न न होने के कारण शब्द-मध्य, शब्दान्त के अकेले व्यंजन वर्ण कभी 'अ' युत बोले जाते हैं और कभी 'अ'-रहित, यथा—'कमल, काम' में पहला 'म' अ-युत बोला जाएगा, दूसरा 'म' अ-रहित।

कुछ व्यंजन वर्णों में प्रयुक्त ा को 'अ' का मात्रा-चिह्न कहना भ्रम है क्योंकि 'ङ ट ठ ड ढ र ह ड़ ढ़ ळ' में ा का अभाव है। प्रत्येक अकेले व्यंजन वर्ण में 'अ' की मात्रा परम्परित है। अन्य स्वर-वर्णों के मात्रा-चिह्न क्रमशः ये हैं—ा ि ी ु ू ृ े ै ो ौ ं ँ ः ॉ ॅ यथा—(क) का कि की कु कू कृ के कै को कौ कं कँ कः कॉ कॅ। 'र' के साथ ु ू का उप-रूप ु ू प्रचलित है, यथा—रु (रुपया), रू (रूप)। ये दोनों चिह्न अध्येता पर अनावश्यक बोझ हैं क्योंकि रुपया और रूप लिखने तथा वाचन में किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं पड़ती।

वर्धा-समिति द्वारा दिया गया सुझाव कि सभी स्वर 'अ' के साथ मात्रा-चिह्न लगा कर बनाए जाएँ (यथा—अ आ अि अी अु अू अे अै ओ औ अं अः)

अवैज्ञानिक होने के कारण अमान्य रहा है क्योंकि अ+इ/अ+उ रखने से अइ/ऐ, अउ/ओ होता है, इ/उ नहीं। व्यंजन वर्ण के साथ तो स्वर वर्ण की मात्रा जोड़ी जा सकती है किन्तु स्वर वर्ण के साथ दूसरे स्वर वर्ण की मात्रा जोड़ना अवैज्ञानिक है। हाँ, यदि 'अ' को बिना किसी ध्वनि-मूल्य का वर्ण स्वीकार कर के उस में किसी भी स्वर की मात्रा जोड़ना वैज्ञानिक रहेगा।

अँगरेज़ी से आगत कुछ शब्दों को लिखने के लिए ॉ का प्रयोग किया जाता है, यथा—डॉक्टर, चॉक, बॉल, हॉल आदि। ॆ का प्रयोग ह्रस्व ए की ध्वनि को व्यक्त करने के लिए (विशेषतः दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्दों के लिए) किया जाता है। 'श' के साथ 'ऋ' की मात्रा लगाने पर 'शृ/श्रृ' रूप होगा। 'श्रृ' को 'शृ' रूप में लिखना अधिक सुविधाजनक है किन्तु टाइप राइटरों में 'श्र' होने के कारण 'श्रृ' लिखना/टाइप करना अवैज्ञानिक है।

व्यंजन वर्णों के आधे/संयुक्त रूप—परिनिष्ठित देवनागरी के व्यंजन वर्णों के आधे रूप (अ-मात्रा रहित) चार प्रकार से बनाए जाते हैं, यथा—

(1) पूर्ण खड़ी पाईवाले वर्णों की खड़ी पाई हटा कर, यथा—ख् ग् घ् च् ज् झ् ञ् ण् त् थ् ध् न् प् ब् भ् म् य् ल् व् श् ष् स् क्ष् त्र् ज्ञ् श्र् ख़् ग़् ज़् (यथा—ख्याति, ग्यारह, विघ्न, बच्ची, ज्योति, कञ्ज, पुण्य, पत्ता, पथ्य, ध्यान, पन्थ प्यार, ब्याज, सभ्य, म्यान, शय्या, कल्याण, व्यास, श्वास, पुष्ट, स्नेह, लक्ष्य, त्र्यम्बक, शख़्स, नग़्मा, ज़्यादा) हिन्दी के लिए झ ज्ञ' की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(2) छोटी-सी खड़ी पाईवाले वर्णों के नीचे हल् (्) चिह्न लगा कर, यथा—ङ् छ् ट् ठ् ड् ढ् द् ह् (ड़, ढ़ के आधे रूपों की आवश्यकता नहीं पड़ती), यथा—शङ्का, वाङ्मय, उच्छ्वास, टट्टू, शाठ्यम्, लड्डू, धनाढ्य, विद्या, गद्दी, विह्वल, प्रह्लाद।

(3) हुकवाले वर्णों की हुक हटा कर, यथा—क़् क् फ़् (फ के आधे रूप की ज़्यादा आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल एक शब्द 'फुफ्फुस' अवश्य अर्ध 'फ' से लिखा जाता रहा है), यथा—पक्का, हुक्का, नक़्क़ाशी, दफ़्तर, मुफ़्त।

(4) 'र' के मुख्य तीन रूप, यथा—र् ्र ्र किसी व्यंजन से पूर्व र् आता है, यथा—कर्म, चर्च, बर्र। किसी व्यंजन के बाद ्र ्र आते हैं। इन में ्र छोटी खड़ी पाईवाले व्यंजनों के बाद आता है, यथा—ड्रामा, राष्ट्र, द्रव और ्र पूर्ण खड़ी पाईवाले व्यंजनों के बाद, यथा—क्रम, प्रेम, वज्र। ्र ्र वास्तव में पूर्ण 'र' उच्चरित होते हैं, अर्ध 'र' नहीं, अतः इन का प्रयोग अवैज्ञानिक है। ्र को हटा कर 'क्रम, प्रेम, वज्र, लेखन से शुद्ध वाचन में कोई बाधा नहीं पड़ती। ्र को हटा कर भी 'ड्रामा, राष्ट्र, द्रव' लेखन और शुद्ध वाचन में कोई अड़चन नहीं होगी।

स्वनीय सूचना के लिए किसी भी पूर्ण व्यंजन वर्ण के नीचे हल् चिह्न लगा

कर उस के अ-रहित/अर्ध व्यंजन रूप को व्यक्त किया जा सकता है, यथा—ग् प् छ् ह् क् .फ् र् । शब्द-आरम्भ या शब्द-मध्य में अर्ध व्यंजन वर्ण आने पर अ-रहित उच्चारण ही होता है, यथा—प्यार, पुस्तक । शब्दान्त/अक्षरान्त में पूर्ण वर्ण होने पर भी अ-रहित उच्चारण होता है, यथा—प्यार, पुस्तक [प्यार्, पुस्तक्]

देवनागरी के मानकेतर वर्ण—मानक वर्णों के अतिरिक्त आजकल भी देवनागरी में कुछ अन्य पुराने वर्ण-रूप प्रचलित हैं जिन्हें मानक वर्णों की तुलना में मानकेतर कहा जाएगा । मानकेतर वर्णों की जानकारी पुराने साहित्य के वाचन की दृष्टि से आवश्यक एवं उपयोगी है । इन के लेखन के अभ्यास की आवश्यकता नहीं है । मानकेतर वर्णों का मानक रूप कोष्ठक में लिखा गया है, यथा—

अ आ ऋ ओ औ अं अः

(अ आ ऋ ओ औ अं अः)

ख छ झ ण ध भ ल श क्ष ज्ञ

(ख छ झ ण ध भ ल श क्ष ज्ञ)

क्क ङ्क च्च ज्ज ट्ट ड्ड त्त त्त क्त द्द द्म द्भ द्य ब्ब ह्म ह्ल आदि ।

(क्क ङ्क च्च ज्ज ट्ट ड्ड त्त रत क्त द्द द्म द्भ द्य ब्ब ह्म ह्ल) आदि ।

उपर्युक्त अनेक मानकेतर संयुक्ताक्षरों/संयुक्त वर्णों में मूल वर्णों के अस्तित्व का पता सरलता से नहीं चल पाता था । मुद्रण और टंकण के अतिरिक्त लेखन में भी काफ़ी परेशानी होती थी और कभी-कभी अर्थ का अनर्थ भी हो जाता था, यथा—खाना, ख को 'खाना/रवाना', 'खा/रवा' दोनों प्रकार से पढ़ा जा सकता था । कुछ मानकेतर वर्णों में संरचक रेखाओं (Strokes) की संख्या भी अधिक है ।

देवनागरी वर्णों में सुडौलता बनाए रखने के लिए सुलेख-अभ्यास हेतु आरम्भ में पाँच पंक्तियोंवाली पुस्तिका पर लेखन-अभ्यास किया/कराना चाहिए । इन में ऊपर, नीचे की दो-दो पंक्तियों के मध्य का स्थान मात्रा-चिह्नों के लिए होता है । कुछ अभ्यास होने/करने के बाद तीन पंक्तियों में और बाद में एक पंक्ति पर लेखन किया जाए । अच्छा अभ्यास हो जाने के बाद ही बिना पंक्ति के काग़ज़ पर लिखा जाए ।

देवनागरी-वर्णों का प्रयोग तथा प्रकार्य—लिखित वर्णों का प्रयोग वाचन के लिए होता है । हिन्दी के कुछ क्षेत्रों में 'अ' का वाचन 'ऐ/आ' जैसा करने के कारण 'कमल' को कै मै लै=कमल या का मा ला=कमल बोलते हैं । ऐसा बोलना अज्ञानता/अल्प ज्ञान का सूचक है । 'कमल' को क म ल=कमल कहना ही शुद्ध है ।

शब्द-आदि में तथा उपसर्ग के बाद शब्द-मध्य में 'अ' लिखा जाता है, यथा—अपना, सुअवसर । सूअर, कुँअर (<कुँआरा)/कुँवर (<कुमार) जैसे दो-चार शब्दों के मध्य में 'अ' लिखा जाता है । शब्दान्त में 'अ' का प्रयोग नहीं होता ।

आ, इ, ई, उ, ऊ में केवल 'इ, उ' का शब्दान्त में प्रयोग नहीं होता। बोलियों के शब्दों में इन का लेखन हो सकता है। ये सभी वर्ण शब्द-आरम्भ, शब्द-मध्य में आ सकते हैं। आ, ई, उ, ऊ के मात्रा-चिह्न शब्दों के मध्य, अन्त में लिखे जा सकते हैं, केवल 'इ' का मात्रा-चिह्न शब्द के आरम्भ में (यथा—कि, हिन्दी) लिखा जाता है।

'ऋ' वर्ण तथा इस के मात्रा-चिह्न का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। 'ऋ' से युक्त शब्दों का वाचन (और उच्चारण भी) मानक हिन्दी में 'रि' है। विन्ध्याचल के दक्षिण की विभिन्न भाषाओं में इस का मानक वाचन (और उच्चारण भी) 'रु' माना जाता है। हिन्दी की कुछ बोलियों में इस का वाचन 'र' भी है। इस प्रकार आज भारत की किसी भी भाषा में 'ऋ' का मूल स्वर रूप प्राप्त नहीं है। वास्तव में पाणिनि के काल में ही 'ऋ, ऌ' मूल स्वर नहीं रह गए थे, इसीलिए पाणिनि ने दोनों को अष्टाध्यायी में मूल स्वरवाले पहले सूत्र 'अइउण्' में न रख कर दूसरे सूत्र 'ऋऌक्' में रखा है। 'Phonetics in Ancient India' में इस के अनुमानित उच्चारण-समय का विभाजन इस प्रकार किया गया है—$\frac{\text{अ}}{4}+\frac{\text{र}}{2}+\frac{\text{अ}}{4}$ गुण सन्धि में ऋ 'र' में परिवर्तित है और 'र' व्यंजन है। इस प्रकार ऋ वर्ण 'र' के साथ मूल स्वर 'अ/इ/उ' की मात्रा का युक्त रूप है, जैसे अन्य व्यंजनों में स्वरों की मात्राएँ जुड़ती हैं।

ए, ऐ, ओ औ वर्ण तथा इन के मात्रा-चिह्न शब्द-मध्य और शब्दान्त में आते हैं। मात्रा-चिह्न शब्द-आरम्भ में नहीं आते। हिन्दी-इतर भाषी लोगों को ए, ऐ वर्ण तथा इन के मात्रा-चिह्न परेशानी पैदा करते हैं। अच्छा रहता यदि ए, ऐ पर भी 'ओ, औ' की भाँति एक, दो मात्रा-चिह्न होते। 'ओ, औ' वर्णों का 'अ' वर्ण पर मात्रा-चिह्न लगा कर निर्माण करना अवैज्ञानिक है।

अं, अः से व्यक्त होनेवाली ध्वनियों को अनुस्वार, विसर्ग कहा जाता है क्योंकि ये ध्वनियाँ स्वरों की भाँति अबाध रूप से उच्चरित नहीं होतीं, किन्तु इन का प्रयोग स्वर-वर्णों के मात्रा-चिह्नों की तरह दूसरे व्यंजनों के साथ किया जाता है, यथा—पंखा, अंगूर, कंचन, डंडा, चंपक, बंधन, अतः, प्रायः आदि। ये दोनों ध्वनियाँ अन्य व्यंजनों की भाँति स्वरों के पूर्व न आ कर स्वरों के बाद ही आती हैं। चूँकि ये दोनों ध्वनियाँ पूर्णतः न तो स्वरों से मिल पाती हैं और न व्यंजनों से, इसलिए इन्हें **अयोगवाह** (अ = नहीं, योग = मेल, वाह = वहन करना/रखना) कहा जाता है।

'अं' का वाचन तीन प्रकार से किया जाता है—अम्/अङ्/अन्। इस वर्ण का ध्वन्यात्मक मूल्य भी पाँच प्रकार का है—ङ्, ञ्, ण्, न्, म्। स्वर से पूर्व आने पर अनुस्वार संस्कृत में 'म्' बन जाता है, यथा—सं + आहार/उच्चय/ईक्षा =

समाहार, समुच्चय, समीक्षा। 'अं' वर्ण का मात्रा-चिह्न (ं) शिरोरेखा बिन्दु/शीर्ष बिन्दु (या बिन्दी) कहा जाता है। शब्द-आदि में केवल 'अं' आता है, अन्यत्र (ं)। 'अः' वर्ण का मात्रा-चिह्न (:) विसर्ग कहा जाता है। विसर्ग का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में होता है। विसर्ग-चिह्न शब्द-आदि में नहीं आता, शब्द-मध्य, शब्दान्त में आता है। इस का वाचन (उच्चारण भी) अघोष 'ह्' की भाँति होता है।

अनुनासिकता-युक्त स्वरों को लिखते समय (ँ) चन्द्रबिन्दु चिह्न का प्रयोग किया जाता है, यथा—ऊँट, आँधी। जब शिरोरेखा के ऊपर चन्द्रबिन्दु के अतिरिक्त पहले से ही कोई अन्य चिह्न और होता है, तब चन्द्रबिन्दु के स्थान पर केवल शीर्षबिन्दु का प्रयोग करते है, यथा—ईंट, क्यों, में, आर्यों। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, पं० सीताराम चतुर्वेदी आदि कई विद्वान प्रत्येक स्थिति में चन्द्रबिन्दु-प्रयोग के समर्थक रहे हैं। मुद्रण, टंकण में अनुनासिक स्वर का शुद्ध रूप बनाए रखने के लिए शीर्ष-शून्य/शिरोरेखा शून्य (ं) का व्यवहार विभिन्न परेशानियों को दूर करने में अति सहायक सिद्ध होगा। उत्तर भारत (तथा अन्य क्षेत्रों) से प्रकाशित कई समाचार पत्र-पत्रिकाएँ प्रत्येक स्थिति में चन्द्रबिन्दु के स्थान पर शीर्षबिन्दु का प्रयोग कर अहिन्दी भाषियों के लिए ही नहीं (कभी-कभी हिन्दी भाषियों के लिए भी) मानक वाचन की कठिनाई पैदा करने लगी हैं।

संस्कृत-व्याकरण का अनुकरण करते हुए कुछ व्याकरण-ग्रन्थों में हिन्दी की कई ध्वनियों को वर्णमाला में समाहित न कर केवल तीन वर्गों में देवनागरी वर्णमाला को विभाजित किया गया है, यथा—1. स्पर्श व्यंजन—क वर्ग (क ख ग घ ङ), च वर्ग (च छ ज झ ञ), ट वर्ग (ट ठ ड ढ ण), त वर्ग (त थ द ध न), प वर्ग (प फ ब भ म) 2. अन्तस्थ व्यंजन (य र ल व) 3. ऊष्म व्यंजन (श ष स ह)। यह वर्गीकरण संस्कृत-सन्धि व्यवस्था को समझने में अवश्य सहायक है किन्तु देवनागरी वर्णमाला का पूरा परिचय नहीं कराता।

संस्कृत-परम्परा का अनुकरण करते हुए कुछ व्याकरण-ग्रन्थों में 'क्ष त्र ज्ञ श्र' का संयुक्त व्यंजनों के रूप में विशेष उल्लेख किया जाता है। वास्तव में इन में त्र/त्र/ त्र, श्र/श्र जितने स्पष्ट संयुक्त रूप हैं, 'क्ष, ज्ञ' उतने ही जटिल रूप हैं और वैसा ही जटिल इन का वाचन (या उच्चारण) है।

व्यंजन वर्णों में 'ङ, ञ, ण, ड़, ढ़' शब्द-आरम्भ में नहीं आते। शेष सभी व्यंजन शब्द-आदि, शब्द-मध्य, तथा शब्दान्त में आते हैं। **'ष' का प्रयोग** केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। हिन्दी भाषा में इस का वाचन (तथा उच्चारण) 'श्' वत् है, इसलिए क्+ष='क्ष' का वाचन तथा उच्चारण 'क्श' (कुछ लोगों में क्छ) वत् होता है। 'क्ष' का लेखन केवल संस्कृत से आगत शब्दों में होता है, यथा—कक्षा, रक्षा, दीक्षा, क्षात्र, कक्ष आदि।

आ, इ, ई, उ, ऊ में केवल 'इ, उ' का शब्दान्त में प्रयोग नहीं होता। बोलियों के शब्दों में इन का लेखन हो सकता है। ये सभी वर्ण शब्द-आरम्भ, शब्द-मध्य में आ सकते हैं। आ, ई, उ, ऊ के मात्रा-चिह्न शब्दों के मध्य, अन्त में लिखे जा सकते हैं, केवल 'इ' का मात्रा-चिह्न शब्द के आरम्भ में (यथा—कि, हिन्दी) लिखा जाता है।

'ऋ' वर्ण तथा इस के मात्रा-चिह्न का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। 'ऋ' से युक्त शब्दों का वाचन (और उच्चारण भी) मानक हिन्दी में 'रि' है। विन्ध्याचल के दक्षिण की विभिन्न भाषाओं में इस का मानक वाचन (और उच्चारण भी) 'रु' माना जाता है। हिन्दी की कुछ बोलियों में इस का वाचन 'र' भी है। इस प्रकार आज भारत की किसी भी भाषा में 'ऋ' का मूल स्वर रूप प्राप्त नहीं है। वास्तव में पाणिनि के काल में ही 'ऋ, लृ' मूल स्वर नहीं रह गए थे, इसीलिए पाणिनि ने दोनों को अष्टाध्यायी में मूल स्वरवाले पहले सूत्र 'अइउण्' में न रख कर दूसरे सूत्र 'ऋलृक्' में रखा है। 'Phonetics in Ancient India' में इस के अनुमानित उच्चारण-समय का विभाजन इस प्रकार किया गया है—$\frac{\text{अ}}{4}+\frac{\text{र}}{2}+\frac{\text{अ}}{4}$ गुण सन्धि में ऋ 'र' में परिवर्तित है और 'र' व्यंजन है। इस प्रकार ऋ वर्ण 'र' के साथ मूल स्वर 'अ/इ/उ' की मात्रा का युक्त रूप है, जैसे अन्य व्यंजनों में स्वरों की मात्राएँ जुड़ती हैं।

ए, ऐ, ओ औ वर्ण तथा इन के मात्रा-चिह्न शब्द-मध्य और शब्दान्त में आते हैं। मात्रा-चिह्न शब्द-आरम्भ में नहीं आते। हिन्दी-इतर भाषी लोगों को ए, ऐ वर्ण तथा इन के मात्रा-चिह्न े ै परेशानी पैदा करते हैं। अच्छा रहता यदि ए, ऐ पर भी 'ओ, औ' की भाँति एक, दो मात्रा-चिह्न होते। 'ओ, औ' वर्णों का 'अ' वर्ण पर मात्रा-चिह्न लगा कर निर्माण करना अवैज्ञानिक है।

अं, अः से व्यक्त होनेवाली ध्वनियों को अनुस्वार, विसर्ग कहा जाता है क्योंकि ये ध्वनियाँ स्वरों की भाँति अबाध रूप से उच्चरित नहीं होतीं, किन्तु इन का प्रयोग स्वर-वर्णों के मात्रा-चिह्नों की तरह दूसरे व्यंजनों के साथ किया जाता है, यथा—पंखा, अंगूर, कंचन, डंडा, चंपक, बंधन, अतः, प्रायः आदि। ये दोनों ध्वनियाँ अन्य व्यंजनों की भाँति स्वरों के पूर्व न आ कर स्वरों के बाद ही आती हैं। चूँकि ये दोनों ध्वनियाँ पूर्णतः न तो स्वरों से मिल पाती हैं और न व्यंजनों से, इसलिए इन्हें **अयोगवाह** (अ = नहीं, योग = मेल, वाह = वहन करना/रखना) कहा जाता है।

'अं' का वाचन तीन प्रकार से किया जाता है—अम्/अङ्/अन्। इस वर्ण का ध्वन्यात्मक मूल्य भी पाँच प्रकार का है—ङ्, ञ्, ण्, न्, म्। स्वर से पूर्व आने पर अनुस्वार संस्कृत में 'म्' बन जाता है, यथा—सं + आहार/उच्चय/ईक्षा =

समाहार, समुच्चय, समीक्षा। 'अं' वर्ण का मात्रा-चिह्न (ं) शिरोरेखा बिन्दु/शीर्ष बिन्दु (या बिन्दी) कहा जाता है। शब्द-आदि में केवल 'अं' आता है, अन्यत्र (ं)। 'अः' वर्ण का मात्रा-चिह्न (:) विसर्ग कहा जाता है। विसर्ग का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में होता है। विसर्ग-चिह्न शब्द-आदि में नहीं आता, शब्द-मध्य, शब्दान्त में आता है। इस का वाचन (उच्चारण भी) अघोष 'ह्' की भाँति होता है।

अनुनासिकता-युक्त स्वरों को लिखते समय (ँ) चन्द्रबिन्दु चिह्न का प्रयोग किया जाता है, यथा—ऊँट, आँधी। जब शिरोरेखा के ऊपर चन्द्रबिन्दु के अतिरिक्त पहले से ही कोई अन्य चिह्न और होता है, तब चन्द्रबिन्दु के स्थान पर केवल शीर्षबिन्दु का प्रयोग करते है, यथा—ईंट, क्यों, में, आर्यों। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, पं० सीताराम चतुर्वेदी आदि कई विद्वान प्रत्येक स्थिति में चन्द्रबिन्दु-प्रयोग के समर्थक रहे हैं। मुद्रण, टंकण में अनुनासिक स्वर का शुद्ध रूप बनाए रखने के लिए शीर्ष-शून्य/शिरोरेखा शून्य (ँ) का व्यवहार विभिन्न परेशानियों को दूर करने में अति सहायक सिद्ध होगा। उत्तर भारत (तथा अन्य क्षेत्रों) से प्रकाशित कई समाचार पत्र-पत्रिकाएँ प्रत्येक स्थिति में चन्द्रबिन्दु के स्थान पर शीर्षबिन्दु का प्रयोग कर अहिन्दी भाषियों के लिए ही नहीं (कभी-कभी हिन्दी भाषियों के लिए भी) मानक वाचन की कठिनाई पैदा करने लगी हैं।

संस्कृत-व्याकरण का अनुकरण करते हुए कुछ व्याकरण-ग्रन्थों में हिन्दी की कई ध्वनियों को वर्णमाला में समाहित न कर केवल तीन वर्गों में देवनागरी वर्णमाला को विभाजित किया गया है, यथा—1. स्पर्श व्यंजन—क वर्ग (क ख ग घ ङ), च वर्ग (च छ ज झ ञ), ट वर्ग (ट ठ ड ढ ण), त वर्ग (त थ द ध न), प वर्ग (प फ ब भ म) 2. अन्तस्थ व्यंजन (य र ल व) 3. ऊष्म व्यंजन (श ष स ह)। यह वर्गीकरण संस्कृत-सन्धि व्यवस्था को समझने में अवश्य सहायक है किन्तु देवनागरी वर्णमाला का पूरा परिचय नहीं कराता।

संस्कृत-परम्परा का अनुकरण करते हुए कुछ व्याकरण-ग्रन्थों में 'क्ष त्र ज्ञ श्र' का संयुक्त व्यंजनों के रूप में विशेष उल्लेख किया जाता है। वास्तव में इन में त्र/त्‍र/तर, श्र/श्‍र जितने स्पष्ट संयुक्त रूप हैं, 'क्ष, ज्ञ' उतने ही जटिल रूप हैं और वैसा ही जटिल इन का वाचन (या उच्चारण) है।

व्यंजन वर्णों में 'ङ, ञ, ण, ड़, ढ़' शब्द-आरम्भ में नहीं आते। शेष सभी व्यंजन शब्द-आदि, शब्द-मध्य, तथा शब्दान्त में आते हैं। 'ष' का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। हिन्दी भाषा में इस का वाचन (तथा उच्चारण) 'श्' वत् है, इसलिए क्+ष='क्ष' का वाचन तथा उच्चारण 'क्श' (कुछ लोगों में क्छ) वत् होता है। 'क्ष' का लेखन केवल संस्कृत से आगत शब्दों में होता है, यथा—कक्षा, रक्षा, दीक्षा, क्षात्र, कक्ष आदि।

'ष' से युक्त कुछ शब्द हैं—षट्, षड्यन्त्र, षड्ऋतु, षण्मुख, षडानन, षट्कोण, षोडश, षोडशी; षष्ठि, निष्कपट, निष्पाप, निष्फल, नष्ट (<नश्+त), प्रविष्ट (<प्र+विश्+त), ऊष्म, ईर्ष्या, विष्णु, सहिष्णु।

ज्ञ (<ज्ञ) का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। हिन्दी के अपने किसी शब्द में 'ञ' का व्यवहार नहीं होता। इसलिए 'ज्ञ' का वाचन और उच्चारण 'ग्य' वत् होता है। 'ज्ञ' के निकट कोई नासिक्य ध्वनि आ जाने पर इस का वाचन तथा उच्चारण 'ग्यँ' वत् होता है, यथा—यज्ञ, अज्ञ [यग्ग्य्, अग्ग्य्], ज्ञान, विज्ञान [ग्याँन्, विग्ग्याँन्]। कुछ लोग इस का वाचन तथा उच्चारण 'ज्यँ' वत् भी करते हैं, यथा—यज्ञ [यज्ज्यँ]

(:) **विसर्ग चिह्नों का प्रयोग** केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। हिन्दी का अपना कोई शब्द विसर्गयुत नहीं है, अतः छह को छः लिखना ग़लत है। संस्कृत के सभी विसर्गान्त शब्दों का वाचन, उच्चारण हान्त वत् होता है, यथा—पुनः, वस्तुतः, पूर्णतः, अतः, प्रायः [पुनह्, वस्तुतह्, पूर्णतह्, अतह् प्रायह्] हिन्दी में संस्कृत के अनेक शब्द विसर्ग (-स कारान्त) हटा कर ग्रहण कर लिए गए हैं, यथा—तप<तपः (तपस्), तम<तमः (तमस्), नभ<नभः (नभस्), मन <मनः (मनस्), यश<यशः (यशस्), सिर<शिरः (शिरस्)। प्रातः, प्रातःकाल में विसर्ग का स्पष्ट उच्चारण है किन्तु संस्कृत दुःख को अब लोग बिना विसर्ग के ही बोलते हैं और प्रायः 'दुख' ही लिखने लगे हैं।

(ृ) **का प्रयोग** केवल संस्कृत से आगत शब्दों के लेखन में ही होता है। हिन्दी के अपने किसी शब्द में 'ऋ' के मात्रा-चिह्न का प्रयोग नहीं होता। 'श' का अर्ध व्यंजन (श्) है। पुरानी नागरी में यह (श्र) था, यथा—काश्त (काश्त), श्याम (श्याम)। श+ऋ/ृ=शृ (शृ), श+र=श्र (श्र/श्र)। टंकण कल में 'शृ' न होने के कारण शृंगार लिखना या छापना अशुद्ध है। इसे शृंगार या शृंगार लिखना ही उचित है।

(ं) **शिरोरेखा-बिन्दु/शीर्ष-बिन्दु का प्रयोग** तीन प्रकार की ध्वनियों को सूचित करने के लिए होता है, यथा—(1) वर्गीय नासिक्य ध्वनि को व्यक्त करने के लिए विकल्प से, जैसे—पंखा (पङ्खा), चंचल (चञ्चल), अंडा (अण्डा), कुंदन (कुन्दन), संभाषण (सम्भाषण)। (2) अनुस्वार ध्वनि को व्यक्त करने के लिए, यथा—संयम, संरचना, संलाप, संवाद, वंशी, संसार, संहार। विशुद्ध अनुस्वार ध्वनिवाले शब्द केवल संस्कृत से आगत शब्द ही हैं, अतः इन में शिरोरेखा-बिन्दु का ही प्रयोग किया जाता है। (3) शिरोरेखा के ऊपर कोई अतिरिक्त चिह्न होने पर अनुनासिकता की ध्वनि को व्यक्त करने के लिए चन्द्रबिन्दु के स्थान पर केवल बिन्दु/शीर्ष बिन्दु का प्रयोग किया जाता है, यथा—ईंधन, में, हैं, क्यों, भौं, कर्मों। लिखूँ-लिखें, कुआँ-कुओं, चिड़ियाँ-चिड़ियों में अनुनासिकता के लिए दुहरे लिपि-चिह्नों का

प्रयोग चिन्तनीय है। हिन्दी-शब्दों के अन्त में केवल अनुनासिकता ही आती है। शब्दान्त में नासिक्य व्यंजन वर्णों का पूर्ण रूप लिखा जाता है, केवल एवं, स्वयं (एवम्, स्वयम्) में शिरोरेखा-बिन्दु का प्रयोग होता है।

ञ, ण का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों में ही मिलता है। लेखन में इन के अर्ध रूप के स्थान पर शिरोरेखा-बिन्दु का प्रयोग बढ़ चला है। **ङ का प्रयोग** यद्यपि हिन्दी के शब्दों में भी प्राप्त है, तथापि लेखन में इस के अर्ध रूप के स्थान पर शिरोरेखा-बिन्दु का प्रयोग बढ़ चला है। **न, म का प्रयोग** अन्य नासिक्य व्यंजन वर्णों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। इन के अर्ध रूप के लिए शिरोरेखा-बिन्दु का प्रचलन अभी विकल्प से, तथा कुछ कम ही है। संस्कृत से आगत कुछ शब्दों के लेखन में शिरोरेखा-बिन्दु का प्रयोग न हो कर केवल अर्ध पंचमाक्षर का ही प्रयोग होता है, यथा—मृण्मयी, तन्मय, वाङ्मय आदि।

देवनागरी-लेखन में **वर्ण-संयोजन** दो प्रकार का होता है—1. व्यंजन+स्वर 2. व्यंजन+व्यंजन, यथा—क [क्]+अ=क, क+आ/इ (ा/ि)=का/कि; क्+क=क्+क=क्क। 'क्क' जैसे संयोजन को संयुक्ताक्षर रूप भी कहा जाता है। एकाकी वर्ण को सरलाक्षर कह सकते हैं, यथा—अ आ क ग आदि। 'अ' का मात्रा-चिह्न न होने से और हिन्दी में अ-लोप के साथ उच्चारण होने के कारण हिन्दी शब्दों में समस्त व्यंजन वर्णों के दो-दो ध्वन्यात्मक मूल्य (Phonetic values) हैं—1. 'अ'-सहित, यथा—'कमला' का 'क' अ-सहित (क+अ) है 2. 'अ'-रहित, यथा—'नमक' का 'क' अ-रहित (क-अ) [क्] है।

संयुक्त व्यंजन के रूप में 'र' के तीन रूप प्रचलित हैं—1. र्+व्यंजन=र्‍+व्यंजन, यथा—कर्म, बर्र=कर्म, बर्र 2. लघु खड़ी पाई के अतिरिक्त अन्य व्यंजन+र=व्यंजन+्र यथा—उग्र, चक्र=उग्र, चक्र (वास्तव में यह देवनागरी की अपनी कमी है क्योंकि यहाँ पूर्ण 'र' के स्थान पर अर्ध र् का प्रयोग किया जा रहा है) 3. लघु खड़ी पाईवाले व्यंजन (यथा—छ ट ठ ड ढ द)+र=व्यंजन+ ्र, यथा—राष्ट्र, ड्रामा=राष्ट्र, ड्रामा (यह भी देवनागरी की अपनी कमी है क्योंकि यहाँ पूर्ण 'र' के स्थान पर अर्ध र् का प्रयोग किया जा रहा है)।

संयुक्ताक्षरों के साथ 'इ' की मात्रा (ि) का लेखन—वृद्धि, समृद्धि, बुद्धि, चिह्नित, चिट्ठियाँ, स्थिति, परिस्थिति, शक्ति आदि को 'बुद्धि, वृद्धि, स्थिति, शक्ति' जैसा लिखना अशुद्ध है क्योंकि 'द्' में एक साथ दो मात्रा-चिह्नों (्=अ-लोप चिह्न, ि=इ) का प्रयोग सिद्धान्ततः तथा व्यवहारतः अशुद्ध ठहरता है। 'द्' का (शब्दान्त में) अलग से अस्तित्व ('शरद्, परिषद्' में) प्राप्त है, अतः द्ध संयुक्ताक्षर है न कि एक पूर्ण वर्ण। 'द्' की भाँति 'क्, स्' तो शब्दान्त में प्राप्त हैं, यथा—'वाक्, तेजस्' किन्तु 'क स' नहीं। आरम्भिक कक्षाओं के हिन्दी सीखनेवाले छात्र 'बु द् ध, वृ द् ध, स थि ति' आदि के वाचन में अत्यन्त कठिनाई

का अनुभव करेंगे। 'बुद् धि, वृद् धि' में अक्षर-विभाजन भी स्पष्ट है, जब कि 'स्थिति, शक्ति' में अस्पष्ट है।

संयुक्ताक्षर/संयुक्त वर्ण—ऐसे दो या अधिक व्यंजन वर्ण जिन के मध्य 'अ' लुप्त रहता है 'संयोगी/संयुक्त व्यंजन या वर्ण' कहलाते हैं। इन्हें संयुक्ताक्षर भी कहा जाता रहा है। हिन्दी में प्राप्त संयुक्ताक्षर ये हैं—

क—क्क, क्ख, क्च, क्त, क्म, क्य, क्र/क्र, क्ल, क्व, क्ष/क्ष, क्ट्र/क्ट्र, क्श, क्स

ख—ख्य, ख्र/ख्र

ग—ग्ग, ग्घ, ग्ण, ग्द, ग्ध, ग्न, ग्प, ग्म, ग्य, ग्र/ग्र, ग्ल, ग्व, ग्न्य, ग्भ्र/ग्भ्र

घ—घ्न, घ्य, घ्र/घ्र

ङ—ङ्क, ङ्ख, ङ्ग, ङ्घ, ङ्म, ङ्क्त, ङ्ग्य, ङ्ग्र/ङ्ग्र

च—च्च, च्छ, च्य, च्छ्व

छ—छ्र/छ्र

ज—ज्ज, ज्झ, ज्ञ/ज्ञ, ज्य, ज्र/ज्र, ज्व

ञ—ञ्च, ञ्छ, ञ्ज, ञ्झ

ट—ट्ट, ट्ठ, ट्य, ट्र/ट्र, ट्व

ठ—ठ्य, ठ्र/ठ्र

ड—ड्ग, ड्ड, ड्ढ, ड्म, ड्य, ड्र/ड्र

ढ—ढ्य, ढ्र/ढ्र

ण—ण्ट, ण्ठ, ण्ड, ण्ढ, ण्ण, ण्म, ण्य, ण्व, ण्ठ्य, ण्ड्य, ण्ड्र/ण्ड्र

त—त्क, त्ख, त्त, त्थ, त्न, त्प, त्फ, त्म, त्य, त्र/त्र/त्र, त्ल, त्व, त्स, त्क्ष, त्प्र, त्म्य, त्स्न, त्स्य, त्र्य/त्र्य

थ—थ्य, थ्र/थ्र, थ्व

द—द्ग, द्घ, द्द, द्ध, द्न, द्ब, द्भ, द्म, द्य, द्र/द्र, द्व, द्भ्र/द्भ्र

ध—ध्न, ध्म, ध्य, ध्र, ध्र, ध्व

न—न्त, न्थ, न्द, न्ध, न्न, न्म, न्य, न्व, न्स, (न्ह), न्त्व, न्द्य, न्ध्र, न्स्प, न्द्र/न्द्र, न्ध्य, न्त्र, न्द्य, न्त्य, न्त्र्य, न्ज

प—प्त, प्न, प्प, प्म, प्य, प्र/प्र, प्ल, प्स, प्त्य

फ—फ्य

ब—ब्ज, ब्त, ब्द, ब्ध, ब्न, ब्ब, ब्भ, ब्य, ब्र/ब्र, ब्ल, ब्श, ब्ज़

भ—भ्न, भ्य, भ्र/भ्र

म—म्त, म्द, म्न, म्प, म्फ, म्ब, म्भ, म्म, म्य, म्र/म्र, म्ल, म्व, (म्ह), म्प्य, म्प्र/म्प्र

य—य्य

र—र्क/र्क, र्ख/र्ख, र्ग/र्ग, र्घ/र्घ, र्च/र्च, र्छ/र्छ, र्ज/र्ज, र्झ/र्झ, र्ट/र्ट, र्ड/र्ड, र्ण/र्ण, र्त/र्त, र्थ/र्थ, र्द/र्द, र्ध/र्ध, र्न/र्न, र्प/र्प, र्ब/र्ब, र्भ/र्भ, र्म/र्म,

र्‌य/र्य, र्‌र/र्र, र्‌ल/र्ल, र्‌व/र्व, र्‌श/र्श, र्‌ष/र्ष, र्‌स/र्स, र्‌ह/र्ह, र्‌क़/र्क़, र्‌ख़/र्ख़, र्‌ग़/र्ग़, र्‌ज़/र्ज़, र्‌फ़/र्फ़, र्‌फ़्य/फ़्र्य, र्‌द्र/र्द्र, र्‌ध्व/र्ध्व, र्‌त्स/र्त्स, र्‌भ्/र्भ्, र्‌ख/र्ख, र्‌ष्य/र्ष्य, र्‌त्स्य/र्त्स्य

ल—ल्क, ल्ग, ल्च, ल्छ, ल्ट, ल्ड, ल्त, ल्थ, ल्द, ल्प, ल्फ, ल्ब, ल्भ, ल्म, ल्य, ल्ल, ल्व, ल्स, ल्ज़, ल्फ़

व—व्य, व्व, व्र/व्र

श—श्क, श्च, श्छ, श्त, श्न, श्म, श्य, श्र/श्र, श्ल, श्व, श्श, श्क़

ष—ष्क, ष्ट, ष्ठ, ष्ण, ष्प, ष्म, ष्य, ष्व, ष्ट्र/ष्ट्र, ष्ठ्य, ष्प्र/ष्प्र

स—स्क, स्ख, स्ज, स्ट, स्त, स्थ, स्द, स्न, स्प, स्फ, स्ब, स्म, स्य, स्र/स्र, स्ल, स्व, स्स, स्ख़, स्थ्य, स्त्र/स्त्र/स्त्र

ह—ह्‌न, ह्‌म, ह्‌य, ह्‌र/ह्र, ह्‌ल, ह्‌व

क्ष—क्ष्म, क्ष्ण, क्ष्य, क्ष्व

क़—क़्त, क़्फ़, क़्ल, क़्श, क़्स

ख़—ख़्त, ख़्म, ख़्य, ख़्व, ख़्श

ग़—ग़्म

ज़—ज़्ज़, ज़्ब, ज़्म, ज़्य

फ़—फ़्ट, फ़्त, फ़्र/फ़्र, फ़्ल, फ़्य, फ़्ज़, फ़्फ़

देवनागरी अंक—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०

8
वर्तनी

किसी भाषा के शब्दों में ध्वनियों का जिस क्रम से प्रयोग होता है, उस ध्वनि क्रम को उस शब्द की **वर्तनी** (spelling) कहते हैं। वर्तनी (=शब्द के उच्चरित रूप का अनुवर्तन को अक्षरी/हिज्जे/वर्ण-विन्यास भी कहते हैं। लिखित शब्दों में ध्वनियों का स्थान ध्वनियों के प्रतीक (अर्थात् वर्ण) ले लेते हैं; अतः शब्द विशेष के लेखन में वर्ण-संयोजन के क्रम को 'अक्षरी/वर्ण-विन्यास' कहा जाता है।

प्रत्येक भाषा की अपनी वर्तनी-व्यवस्था होती है, यथा—अँगरेज़ी, पुट्, बट् उच्चरित शब्दों का वर्ण-विन्यास है—put, but. वर्णों के संयोजन-क्रम में अन्तर होने से वर्तनी-भेद/शब्द-भेद हो जाता है, यथा—र स ा के विविध संयोगों से 'रसा, सार, सारा, रास, सरस, सारस' शब्दों का निर्माण हो जाता है।

वर्तनी के स्तर पर 'लिखित भाषाएँ' परम्परा से अधिक नियन्त्रित रहती हैं, यथा—पुट्, बट्, ब्रिज्, चॉक्, राइट् शब्द अँगरेज़ी में put, but, bridge, chalk, right/write लिखे जाते हैं। तेलुगु और कन्नड़ शब्दों में अर्ध संयुक्ताक्षर पूर्ण व्यंजन वर्ण के रूप में और पूर्ण व्यंजन अर्ध व्यंजन वर्ण के रूप में लिखे जाते हैं, यथा—'दुग्धालय, विद्वान्' में 'ग, द्' पूर्ण व्यंजन वर्ण लिखे जाएँगे, 'ध, व' अर्ध व्यंजन वर्ण। हिन्दी के कुछ शब्दों में पूर्ण 'र' व्यंजन अर्ध व्यंजन वर्ण के रूप में लिखा जाता है, यथा—प्रेम, द्रव, ड्रामा (प्रेम, द्‌ख, ड्‌रामा)। स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति परम्परागत वर्तनी में स्वेच्छा से परिवर्तन नहीं कर सकता। भाषा विशेष का समाज ही वर्तनी की उन कमियों को दूर कर सकता है, जिन्हें कोई व्यक्ति संकेतित करता है।

भाषाओं के उच्चरित रूप में जितनी जल्दी परिवर्तन होता है, उतनी जल्दी लिखित भाषाओं में परिवर्तन नहीं हो पाता/नहीं किया जा सकता। यान्त्रिक सुविधा-असुविधा आदि के कारण भी ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। यही कारण है कि सैकड़ों

वर्षों से लिखी चली आ रही जीवित भाषाओं के उच्चरित और लिखित रूप में शत-प्रतिशत साम्य नहीं हुआ करता। अन्तर की मात्रा का थोड़ा-बहुत भेद विभिन्न भाषाओं में होता ही है। कहा जा सकता है कि **परम्परागत लिपियों में लिखी चली आ रही भाषाओं के उच्चारण/वाचन और लेखन में शत-प्रतिशत साम्य नहीं होता।**

प्रचलित भाषाओं में दो प्रकार की वर्तनी देखी जा सकती है—1. **उच्चारणानुगामी वर्तनी** उच्चारण के ध्वनि-क्रम का यथावत् अनुसरण करती है, यथा—आओ, बैठो; लीची खाओ [आओ, बैठो; लीची खाओ] 2. **परम्परानुगामी वर्तनी** उच्चारण के ध्वनि-क्रम का यथावत् अनुसरण नहीं करती। उच्चारण और लेखन का यह अन्तर कभी कम और कभी अधिक हुआ करता है, यथा—क्योंकि, हनुमान, डाकघर, ऋषि, रहना [क्योँक्, हँनुमाँन्, डाक्घर्, रिश्, रैह् नाँ]। अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी भाषा की लेखन/वर्तनी-व्यवस्था में दोनों प्रकार के वर्तनी-रूप प्राप्त हैं।

इतर भाषाओं से आगत शब्द अर्थात् **स्रोत** और प्रकृति-प्रत्यय-उपसर्गादि के योग से **निर्मित शब्द/शब्द-सिद्धि** की दृष्टि से भी वर्तनी के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। इतर भाषाओं से आगत और निर्मित शब्दों में से कुछ शब्द उच्चारणानुगामी वर्तनीवाले हो सकते हैं और कुछ परम्परानुगामी वर्तनीवाले, यथा—जनवरी, मार्च, खुदा, दोसा, कानूनी; ख़ुदा, क़ानूनी, गए, गई, दुबारा, दुख, तेतीस; गये, गयी, दोबारा, दुःख, तेंतीस आदि।

जिस प्रकार भाषा-व्यवहार में शुद्ध/परिनिष्ठित उच्चारण का महत्त्व है, उसी प्रकार शुद्ध/परिनिष्ठित/**मानक वर्तनीयुत लिखित भाषा का महत्त्व** है। शुद्ध वर्तनी-युत भाषा का अर्थ स्पष्ट होने में कठिनाई नहीं होती, किन्तु अशुद्ध वर्तनीयुत भाषा का अर्थ या तो अस्पष्ट रहता है या उस से अनर्थ/विपरीतार्थ उत्पन्न हो सकता है। अशुद्ध वर्तनी से भाषा-बोध में भ्रम उत्पन्न हो जाता है; पत्र, तार आदि कहीं-के-कहीं पहुँच जाते हैं; भाषा का सौष्ठव भी विकृत हो जाता है, यथा—पेर की दाल पर चिरिया; बढ़ियाँ सारी; कार खाना (पेड़ की डाल पर चिड़िया; बढ़िया साड़ी; कारख़ाना)।

भाषा विशेष की ध्वनियों और ध्वनि-प्रतीकों (वर्णों) में जितना नियमित सम्बन्ध होता है, वर्तनी शुद्धि की उतनी ही अधिक सम्भावना रहती है। रोमन और अँगरेज़ी में यह सम्बन्ध बहुत अनियमित है। रोमन के कई वर्णों के ध्वन्यात्मक मूल्यों में पर्याप्त अन्तर है, यथा—A (ए, ऐ, आ एय, ऑ), E (ई, ए, Ø यू), I (आई, आय्, इ, ई, अ), O (ओ, ओउ, ऑ, अ, ऊ, उ, आ, व्या, आव्), U (यू, उ, अ, यो, Ø), C (स्, क्, श्, Ø) G (ज्, ग्, Ø), S (श्, स्, ज़्,), T (ट्, थ्, ध्, द्, श्, च्, Ø)। अनेक शब्दों में कई अनुच्चरित वर्णों का प्रयोग मिलता है, यथा—B, H, K, L, D, N, P, R, W.

यद्यपि देवनागरी लिपि अन्य कई भारतीय लिपियों की भाँति कुछ सीमा तक वैज्ञानिक है तथापि एक या एकाधिक कारणों के प्रभावस्वरूप हिन्दी भाषी और

अहिन्दी भाषी अध्येताओं के लेखन में वर्तनी सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की त्रुटियाँ हो जाती हैं। वर्तनी-दोष और उन के कारण संक्षेप में ये हैं—1. **अशुद्ध उच्चारण**-परापत/प्रापत (प्राप्त), दूलहा (दूल्हा), इस्कूल/अस्कूल/सकूल (स्कूल), लखमन (लक्ष्मण), दोका (धोखा), थोरा (थोड़ा) आदि 2. **लिपि का अपूर्ण ज्ञान**—ऐसा (ऐसा), अिमली (इमली), विदवान (विद्वान), मुफत (मुफ़्त), पुन्य/पुंय (पुण्य), रंगना (रँगना), गाँधी (गांधी/गान्धी), 3. **असावधानी और अतिशीघ्रता**—अकास्मिक (आकस्मिक), सैदव (सदैव), होगें (होंगे), टलिफोन (टेलीफ़ोन), आदि 4. **क्षेत्रीय प्रभाव**—सैंन्स (साइन्स), सिटि (सिटी), हैकोर्ट/हायकोर्ट (हाईकोर्ट), टिप्पड़ीं (टिप्पणी), जजमान (यजमान), उत्सव (उत्सव), घमला (गमला) आदि 5. **सादृश्य**—बुरायी (बुराई), सीधासाधा (सीधासादा), नर्क (नरक), सृष्टा (स्रष्टा) आदि 6. **व्याकरण, शब्द-रचना तथा अर्थ-भेद का अपूर्ण/अनिश्चित ज्ञान**—एकतारा (इकतारा), बकरीयाँ (बकरियाँ), कुत्तिया (कुतिया), निरपराधी (निरपराध), चाहिएँ (चाहिए), प्राणीमात्र (प्राणिमात्र), गौर (ग़ौर), नाज (नाज़), फन (फ़न) आदि।

हिन्दी-वर्तनी के मानकीकरण के लिए केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय तथा भारत सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय की 'वर्तनी-समिति' ने कुछ नियम स्वीकार किए थे। इन नियमों में से कुछ में कहीं-कहीं विकल्प और कहीं-कहीं तर्कहीनता है। यद्यपि कुछ सरकारी संस्थाएँ इन नियमों का काफ़ी मात्रा में अनुसरण कर रही हैं, किन्तु अधिकतर व्यक्तिगत लेखनादि में इन नियमों को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया है। वर्तनी के मानकीकरण के समय 'हिन्दी भाषा की प्रकृति (अश्लिष्टता), उच्चारण, परम्परा, व्याकरण, शब्द-रचना, हिन्दी-शिक्षण प्रक्रिया (छोटे बच्चों और अहिन्दी भाषियों को आरम्भिक कक्षाओं में श्रुतलेख लिखवाने आदि में), सरलता' का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। इन सभी पक्षों का ध्यान रखते हुए यहाँ **मानक हिन्दी-वर्तनी के कुछ नियम** दिए जा रहे हैं—

1. **कारक-चिह्न लेखन**—सभी कारक-चिह्नों को प्रत्येक स्थिति में सम्बन्धित शब्द से अलग लिखना एकरूपता और सरलता की दृष्टि से उचित है। संज्ञा, स्थानवाची, कालवाची शब्दों से अलग और सर्वनाम शब्दों के साथ मिला कर लिखने में, और यदि दो कारक-चिह्न एक साथ हों तो पहले को मिला कर और दूसरे को अलग लिखने का कोई औचित्य नहीं है, यथा—श्याम को, यहाँ से, कमरे में से, कल से, सोमवार को, मुझ से, उन्हों ने, तुम ने, इन में से (न कि मुझसे, उन्होंने, तुमने, इनमें से); आप ही के लिए, मुझ तक को। (इस स्थिति में तो सर्व-नामों के साथ कारक चिह्न सटा कर लिखे ही नहीं जा सकते, अतः एक ही सरल नियम का पालन तर्क-संगत और उचित है, न कि तीन नियमों और उन के अपवादों का अनुपालन)

2. **निपात-लेखन**—'ही, भी, तो, तक' आदि निपातों को प्रत्येक स्थिति में सम्बन्धित शब्द से अलग लिखना एकरूपता तथा सरलता की दृष्टि से उचित है, यथा—मुरारी ही के लिए; यहाँ तक तो; आप के भी।

3. **हल् चिह्न (्)-लेखन**—संस्कृत से आगत कुछ शब्द मूलतः हल् चिह्न युत हैं, यथा—जगत्, जाम्बवत्, पृथक्, प्राक्, भागवत्, महत्, वाक्, शरत्/शरद्, श्रीमत्, सत्। हिन्दी-उच्चारण में परिवर्तन होने के कारण यद्यपि 'जगत्-जगत, सत्-सत' का उच्चारण/वाचन 'अ'-रहित ही होता है किन्तु अर्थ-भेद एवं सन्धि-प्रक्रिया में हल् के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता, यथा—मताधिकार (मत+अधिकार), सदनुभव (सत्+अनुभव)। द्व, द्म, द्य, ड्य आदि में भी हल् चिह्न लगाना आवश्यक है ही। दक्षिण भारतीयों ने नामों के शब्दान्त में हल् चिह्न लगाना या न लगाना हिन्दी भाषियों की दृष्टि से तो समान है, किन्तु दक्षिण भारतीय 'प्रकाशम, सुरेशन' को निश्चय ही 'प्रकाशमा, सुरेशना' समझेंगे और बोलेंगे। हल् चिह्न लगाने से लेखन-सौष्ठव की कोई हानि नहीं होगी, आवश्यकता है उन शब्दों को पहचानने की जो मूलतः हल् चिह्न युत हैं, यथा—प्रत्युत्, भविष्यत्, बुद्धिमान्, भाग्यवान्, श्रीमान्, विधिवत्, सच्चित्, पृथक्, एवम्, स्वयम्, प्रकाशम्, सुरेशन्, वासुदेवन् आदि।

4. **संयुक्त क्रिया-लेखन**—एकरूपता तथा सरलता की दृष्टि से सभी क्रियाओं (मुख्य, सहायक) को अलग-अलग लिखना ही उचित है, यथा—कहा जा सकता है; कहते चले आ रहे थे; सुनाता रहूँगा आदि।

5. **पूर्वकालिक क्रिया-लेखन**—एकरूपता तथा सरलता की दृष्टि से पूर्वकालिक रूप 'कर', 'कर के' को प्रत्येक स्थिति में अलग-अलग लिखना ही उचित है, यथा—खा कर, रो कर, हो कर, कर के। इन्हें मिला कर लिखने पर ज़ोर देने में कोई तर्कसंगति नहीं है, क्योंकि संयुक्त क्रियाएँ भी अलग-अलग लिखी जाती हैं। आकर-आ कर; करके-कर के; पाके (<पा कर); ताके जैसे शब्दों से जटिलता ही बढ़ती है।

6. **सादृश्य सूचक शब्द-लेखन**—सादृश्य सूचक शब्द '-सा/-सी/-से, जैसा/जैसी/जैसे, सरीखा/सरीखी/सरीखे' से पूर्व योजक चिह्न (-) के प्रयोग से स्पष्टता बनी रहती है, यथा—तुम-सा/जैसी/सरीखे; यहाँ-जैसी गर्मी; कल-जैसी आँधी।

7. **तत्पुरुष समास-लेखन**—तत्पुरुष समास शब्द के पूर्वपद और उत्तर पद के मध्य अर्थ स्पष्टता हेतु आवश्यकतानुसार योजक चिह्न लगाया जा सकता है। जहाँ अर्थभ्रम की सम्भावना (अधिक) हो, वहाँ योजक चिह्न का प्रयोग करना ही उचित है, यथा – भूतत्त्व—भू-तत्त्व, संस्कृत शब्द—संस्कृत-शब्द।

8. **द्वन्द्व समास-लेखन**—द्वन्द्व समास के पदों के मध्य (आवश्यकतानुसार) योजक चिह्न लगाना उचित है, यथा—दाल-भात, श्वेत-श्याम, राधा-कृष्ण, सूर्य-चन्द्र, राम-लक्ष्मण, पति-पत्नी, बड़े-बड़े, छोटे-छोटे।

9. **संस्कृत से आगत शब्दों का लेखन**—हिन्दी-लेखन में संस्कृत-शब्दों का प्रयोग दो रूपों में होता है—1. सामान्य लेखन में संस्कृत-शब्दों का प्रयोग 2. संस्कृत-उद्धरणों में संस्कृत-शब्दों का प्रयोग। एकरूपता तथा सरलता की दृष्टि से दोनों रूपों में संस्कृत-परम्परा का पालन करना ही उचित है न कि सामान्य लेखन में हल् चिह्न न लगाना और उद्धरणों में हल् चिह्न लगाना; सन्धि-नियम समझाने, छन्द-ज्ञान के लिए हल् चिह्न लगाना। ऐसा करना कोई तर्क-संगत नियम नहीं है। जगत-जगत् में अर्थ-भेद भी है। 'श्रीमान, महान, विद्वान, अर्थात' संस्कृत में अग्राह्य हैं। यह कहना कि 'जिन शब्दों के प्रयोग में हिन्दी में हल् चिह्न का लोप हो चुका है, उन में हल् चिह्न लगाने की आवश्यकता नहीं' तर्कहीन कथन है। देवनागरी के कुछ वर्णों का अर्ध रूप बिना हल् चिह्न के सम्भव नहीं है। 'जगन्नाथ' का विश्लेषण जगत्+नाथ ही होगा, जगत+नाथ नहीं। इसी प्रकार 'दिग्गज, वाग्जाल, किंचित्, उल्लास' आदि का सन्धि-विश्लेषण क्रमशः 'दिक्+गज, वाक्+जाल, किम्+चित्, उत्+लास' करना पड़ेगा 'दिक, वाक, किम, उत' लिख कर काम नहीं चला सकते।

ऋ, ण, ष, क्ष, : का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों में होता है। यद्यपि हिन्दी में इन का उच्चारण/वाचन परिवर्तित हो चुका है किन्तु संस्कृत-शब्दों में परम्परानुगामी वर्तनी का ही प्रयोग करना होगा, यथा—ऋषि, ऋण, कृषक, कक्षा, क्षात्रधर्म, अतः, प्रायः (न कि रिशि, रिड़ँ/रिन, क्रिशक/क्रशक, कक्छा, छात्र-धर्म, अतह, प्रायह)। इन वर्णों से युक्त कुछ शब्द हैं—

अनुगृहीत, पृष्ठ, निवृत्ति, उच्छृंखल, कृतकृत्य, गृहस्थ, पृथक्, प्रवृत्त, संगृहीत, सदृश, श्रृंखला, श्रृंगार, वृष्टि, कृषक, ऋषि, ऋणी, पैतृक, सृष्टि।

कृष्ण, क्षण, क्षीण, प्रण, भूषण, वरुण, विष्णु, कण, कोण, गुण, गण, गणिका, चाणक्य, बाण, मणि, माणिक्य, लवण, वणिक, वाणी, वीणा, वेणी, वेणु, निपुण।

अनिष्ट, इष्ट, गरिष्ठ, घनिष्ठ, ज्येष्ठ, पृष्ठ, आमिष, कनिष्ठ, उत्कर्ष, भीष्म, यथेष्ट, विभीषिका, विभीषण, विषण्ण, शुश्रूषा, सुषमा, विश्लेषण, मुमूर्षु, सन्तुष्ट, हितैषी, प्रेषित, प्रतिष्ठा, वर्ष, षष्ठ, सृष्टि।

क्षत्रिय, क्षात्र, कक्षा, अक्षय, अधीक्षक, अक्ष, क्षण, क्षीण, क्षमा, क्षेम, क्षोभ, तीक्ष्ण, दीक्षा, निरीक्षक, नक्षत्र, परीक्षा, परीक्षक, निरीक्षण, शिक्षा, साक्षी, समीक्षा समक्ष।

अतः प्रायः, नमः, दुः, तेजः निः, पुनः, पयः, मनः, दुःख आदि। इन में कई शब्द केवल सन्धि-प्रक्रिया के समय ही प्रयुक्त होते हैं।

10. **ई/ए बनाम यी/ये-लेखन**—हिन्दी ध्वनि-उच्चारण व्यवस्था के अनुसार कुछ शब्दों के मूल में 'य' ध्वनि न होने पर भी कुछ परिस्थितियों में (ही) श्रुति रूप में 'य' का उच्चारण होता है। हिन्दी में 'ई, ए' के आने पर 'य' श्रुति की

मुखरता लुप्त हो जाती है। **जिन स्थितियों में 'य' का श्रुति रूप में मुखर उच्चारण होता है**, वहाँ 'य' का लिखना उचित है, यथा—गया, आया, खाया, भाइयो, भाइयों, किया, दिया, सोया। जहाँ **शब्द के मूल में 'य' है**, वहाँ शब्द-सिद्धि या परम्परानुगामी वर्तनी की दृष्टि से ई/ए के संयोग में भी 'य' का लिखना तर्क-संगत है, यथा—रुपया-रुपये, दायी (<दाय=देना)→उत्तरदायी, अंशदायी, उत्तरदायित्व, आनन्ददायी; स्थायी, स्थायित्व भी इसी प्रकार।

दक्षिण भारतीय भाषाओं में 'य, व' श्रुति आगम की स्थितियाँ हिन्दी की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। 'गया, आया' आदि क्रिया-रूपों में 'य' श्रुति का आगम हुआ है और यह श्रुति मुखर भी है किन्तु 'हुआ-हुई-हुईं-हुए, गई-गईं-गए, सोई-सोईं-सोए' क्रिया रूपों में श्रुति-आगम नहीं है। क्रियाओं में -आ/-ई/-ईं/-ए प्रत्यय जुड़ते हैं, यथा—लिखा-लिखी-लिखीं-लिखे। किया-की-कीं-किए; रोया-रोई-रोईं-रोए में भी वे ही प्रत्यय जुड़े हैं, न कि -या/-यी/-यीं/-ये। स्वनिक स्तर पर हिन्दी में केवल 'अ-आ, इ-आ/ओ/ओं, ओ-आ' के मध्य ही 'य' श्रुति मुखर है, अन्य स्थितियों में इस की मुखरता पूर्णतः लुप्त है। आरम्भिक स्तर पर लेखन सीखनेवाले हिन्दी क्षेत्र के बच्चे, अहिन्दी क्षेत्र के किशोर और विदेशी प्रौढ़ों को अधिकतम उच्चारणानुगामी वर्तनी ही सरल लगती है। व्याकरणिक आधार पर उन्हें उस स्तर पर इधर-उधर भटकाना जटिलता उत्पन्न करता है।

-यान्तवाली भूतकालिक, पुल्लिग, एकवचन की क्रियाओं के स्त्रीलिंग एकवचन, बहुवचन और पुल्लिग बहुवचन में 'यी/यीं/ये' के लेखन का तर्क जटिलता उत्पन्न करता है। -यान्त संज्ञाओं में -ई, -ए रखने की बात और अधिक जटिलता उत्पन्न करती है, यथा—पाया (पायी/पायीं/पाये); पाया-पाये, चारपायी; खोया (खोयी/खोयीं/खोये); खोआ-खोए-खोई आदि। क्रिया-शब्दों को -यी/-यीं/-ये से और संज्ञा शब्दों को -ई/-ए से और विधि आदि रूपों को ए से लिखने में जटिलता ही बढ़ती है। जब अध्येता संज्ञा, क्रिया को ई, ए; यी, ये के साथ लिखित रूप में देखते ही पहचानने के स्तर पर पहुँचता है, तब वह यह भी जान जाता है कि हिन्दी में क्रिया प्रायः वाक्यान्त में ही आती है। उच्चरित भाषा-व्यवहार में यह लिखावट फिर भी कोई मदद नहीं कर पाती।

हिन्दी क्रिया के विधि रूप में—ए प्रत्यय जुड़ता है, यथा—वह लिखे/पढ़े/चले। आइए, जाइए, सोइए, कहिए, सुनिए, कीजिए आदि में -ए/-इए लिखना ही तर्क-संगत है न कि 'ये'। 'ये' लिखने के लिए यह तर्क देना कि संस्कृत में प्रति+एक=प्रत्येक होता है, अतः 'आइए, कहिए' आदि में भी 'ये' लिखा जाए, भ्रम का सूचक है। हिन्दी क्रियाओं के इन रूपों पर संस्कृत भाषा का सन्धि-नियम लागू नहीं होता, वरन् यहाँ स्वरानुक्रम है।

संस्कृत में 'आई' स्वरानुक्रम का अभाव है, अतः संस्कृत से आगत शब्दों को परम्परागत वर्तनी के अनुसार—यी युक्त लिखना अवश्य उचित कहा जा सकता है, यथा—भाषायी, उत्तरदायी आदि। इन शब्दों के मूल में 'य' है।

अविकारी शब्दों 'इसलिए, लिए, चाहिए' में सदैव 'ए' लिखना ही तर्क-संगत है। इस प्रकार **जहाँ 'य' श्रुति मुखर है या जहाँ मूल शब्द में 'य' का अस्तित्व है उन शब्दों को ही या/यी/ये/यीं से लिखा जाए, शेष शब्दों में -आ/-ई/-ए/-ईं ही लिखा जाए।**

11. **ऐ, औ का संयुक्त स्वरत्व-लेखन**—ऐ, औ वर्णों के दो-दो ध्वन्यात्मक मूल्य हैं—1. मूल स्वर ध्वनि 2. संयुक्त स्वर ध्वनि। ऐसा, है, हैं, और, कौन, भौं में ये मूल स्वर ध्वनियों के सूचक हैं। नैया, गवैया, सुरैया, कौआ, पौआ, हौआ में ये संयुक्त स्वर ध्वनि के सूचक हैं। 'गवय्या, सुरय्या, कव्वा, पव्वा' जैसी वर्तनी किसी प्रकार भी सही नहीं बैठती। संयुक्त स्वर ध्वनियुक्त कुछ ही शब्दों के लिए अभी कोई चिह्न नहीं बना है, अतः ै ौ/ऐ औ से ही काम चलाना होगा।

12. **ऑ/ॉ -लेखन**—परिनिष्ठित हिन्दी में अँगरेज़ी से आगत कुछ शब्दों में ऑ ध्वनि है। उन्हें लिखते समय ऑ/ॉ का प्रयोग करना उचित है, यथा—ऑफ़िस, डॉक्टर, हॉस्पीटल, कॉलेज, ऑपरेटर आदि।

13. **शिरोरेखा-बिन्दु/शीर्ष बिन्दु और चन्द्रबिन्दु (ं , ँ) -लेखन**—सामान्यतः वर्गीय अर्ध नासिक्य के स्थान पर शीर्ष बिन्दु का प्रयोग किया जा सकता है, यथा—पंखा, कंचन, डंडा, नंद, कंपन। 'आंशिक, संसार, वंशी, संहार, संरक्षक, संयत, संवाद' में शीर्ष बिन्दु लेखन ही मानक है। अन्य, साम्य, अन्न, सम्मति/सन्मति, वाङ्मय, पराङ्मुख, काम्य आदि शब्दों में शीर्ष बिन्दु का प्रयोग परम्परागत वर्तनी तथा शब्द रचना और उच्चारण की दृष्टि से अशुद्ध है। ङ्, ञ्, ण के लिए शीर्ष बिन्दु का प्रयोग लाघव की दृष्टि से भी स्वीकार्य है। 'ण का प्रयोग केवल संस्कृत से आगत शब्दों के साथ परम्परागत वर्तनी की दृष्टि से उचित भी लग सकता है, किन्तु संस्कृत-इतर शब्दों के साथ नहीं, यथा—'झण्डा, पैण्ट, लण्डन' को 'झंडा, पैंट/पैन्ट, लंडन/लन्दन' लिखना ही उचित है। संस्कृत-इतर शब्दों (यथा—गंजी, जंगली, टैंक, पंछी, रंज, लुंगी आदि) को पंचमाक्षर के साथ लिखना हास्यास्पद-सा लगता है।

शिरोरेखा के ऊपर कोई अन्य चिह्न होने पर अनुनासिकता के लिए भी शीर्ष बिन्दु का प्रयोग प्रचलन में है, यथा—में, मैं, ईंट, बिंधना, क्यों, भौं, आयों। शीर्ष बिन्दु के कारण जिन शब्दों का वाचन दुहरा रूप ले सकता है (यथा—हिंदी, बिंदी, पिंड, पिंडली [हिँदी/हिन्दी, बिँदी/बिन्दी, पिँड/पिण्ड्, पिँड्ली/पिण्डली]), उन के लेखन में वर्गीय अर्ध नासिक्य व्यंजन वर्ण का लेखन तर्क-संगत है, यथा—केन्द्रीय,

हिन्दी, बिन्दी, पिण्ड, पिण्डली/पिंड़ली~पिंड़ली। शिरोरेखा के ऊपर कोई अन्य चिह्न न होने पर अनुनासिकता के लिए चन्द्रबिन्दु का प्रयोग ही तर्कसंगत है, अन्यथा 'हँस-हंस, अँगना-अंगना' का अर्थ-भेद अस्पष्ट रहेगा।

'अहं, एवं' के अतिरिक्त हिन्दी के शब्दों के अन्त में प्रायः (ं) नहीं आता, (ँ) चिह्न ही आता है। शब्दान्त के नासिक्य व्यंजनों के लिए (ं) का प्रयोग नहीं किया जाता। संस्कृत के शब्दों में (ँ) का प्रयोग नहीं होता। 'सम्बन्ध' जैसे कुछ शब्द कई प्रकार से लिखे जा रहे हैं, यथा—सम्बन्ध, संबंध, सम्बंध, संबन्ध। इन में पहले दो रूप एकरूपता की दृष्टि से अधिक ग्राह्य हैं। नासिक्य व्यंजन अन्य नासिक्य या वर्गेतर व्यंजनों से पूर्व आने पर या द्वित्व होने पर शिरोरेखा बिन्दु से नहीं लिखे जाते, यथा—अन्न, मुन्ना, अन्य, गन्ना, ज़िम्मा, अम्मा, जन्म, अम्ल, सम्यक्, सम्मान, सम्राट्/सम्राट्। 'एन्थोनी, कम्बख़्त, पम्प, बन्द, लम्बा, सिन्थाल' आदि में 'न, म' का प्रयोग आपत्तिजनक नहीं माना जा सकता। सन्यास (सं+न्यास) अधिक प्रचलित रूप है, सन्न्यास कम प्रचलित रूप है, सन्यास अशुद्ध रूप है।

14. **विदेशी आगत शब्द-लेखन**—जो विदेशी शब्द हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था के अनुरूप हों और लेखन में कठिनाई उत्पन्न न करते हों, उन्हें तत्सम रूप में लिखना ही उचित है, यथा—लैन्टर्न, बॉइकॉट, काग़ज़, ग़रीब, फ़न, राज़, क़ानून, नाज़, ख़ाना, ख़तरा आदि। इन का तद्भव रूप दिखाने के लिए इन्हें 'लालटेन, बाइकाट, कागज, गरीब, फन, राज, कानून, नाज, खाना, खतरा' भी लिखा जा सकता है किन्तु 'ख़ाना-खाना, बाज़-बाज, राज़-राज, फ़न-फन, ग़ौरी-गौरी, ग़म-गम' जैसे अर्थ-भेदक युग्मों के कारण सामान्य लेखन में अधोबिन्दु का प्रयोग करना तर्क-संगत है क्योंकि 'काग़ज़, कारख़ाना' शब्द ही शुद्ध हैं, कागज, कारखाना अशुद्ध नहीं तो शुद्धेतर/मानकेतर अवश्य हैं।

15. (:) **विसर्ग-लेखन**—संस्कृत से आगत विसर्गयुत शब्दों में परम्परागत वर्तनी के आधार पर विसर्ग लगाया जाता है, यथा—अतः, प्रातः, प्रायः, स्वान्तः सुखायः, दुःख। इन्हें 'ह्' के साथ लिखना मानकेतर (या अशुद्ध) लेखन होगा। सुख के सादृश्य पर 'दुख' के मध्यवर्ती अघोष 'ह' ध्वनि का लोप हो चुका है, अतः दुःख को दुख भी लिखा जाने लगा है। परम्परागत वर्तनी की दृष्टि से शुद्ध रूप 'दुःख' ही है।

अँगरेज़ी से आगत कुछ विशिष्ट शब्दों की वर्तनी—अँगरेज़ी से आगत कुछ शब्दों की वर्तनी में अभी भी अनिश्चितता बनी हुई है। हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था के अनुरूप वर्तनी रखने से अनिश्चतता की स्थिति धीरे-धीरे समाप्त हो सकती है। अँगरेज़ी से आगत शब्दों में कोई शब्द हिन्दी में 'इ' से उच्चरित नहीं होता, अतः अँगरेज़ी शब्दों के अन्त में 'इ' नहीं लिखी जानी चाहिए, यथा—'सिटि, पि० टि० उषा, एन० टि० रामाराव' हिन्दी में लेखन की दृष्टि से ये अशुद्ध हैं, इन्हें 'सिटी,

पी० टी० उषा, एन० टी० रामाराव' लिखना चाहिए। अक्षरान्त में भी 'ई' का प्रयोग किया जाता है, यथा—टेलीविज़न, इंजीनियर, एडीटर, पेटीकोट। सिनेमा, कमेटी को अब 'सिनीमा/सनीमा, कमिटी' नहीं किया जा सकता।

अँगरेज़ी ह्रस्व स्वर E से युक्त शब्दों को प्राय: 'ए' से (भाषाविज्ञान में एँ से) लिखा जाता है, यथा—पेन, मेस, बेल, डेस्क, बेंच, टेम्परेरी, सेन्टर, रेजीमेन्ट; एक्ट, एडवोकेट, एश ट्रे, एम्बुलेंस। A युक्त कुछ शब्दों को 'ऐ' से लिखा जाता है, यथा—कैन्टूनमेन्ट, गैस, पैड, बैंड, बैटरी, मैन, लैम्प।

जिन शब्दों की मूल वर्तनी में र (R) है, उन्हें 'र' के साथ ही लिखा जाता है, यद्यपि ऐसे अनेक शब्द अँगरेज़ी में 'र' रहित ही उच्चरित होते हैं, यथा—कार, मदर, फ़ादर, डॉक्टर, वार। 'ऑपरेशन, ऑपरेटर, कॉपी, कॉमन, कॉलेज, ऑर्डर, डॉक्टर, लॉ, पॉलिश, लॉटरी, हॉल, बॉल, कॉल' जैसे शब्दों को ॉ/ऑ के साथ लिखने में कोई परेशानी नहीं है। तत्सम 'ऑफ़ीसर, बॉक्स' तथा तद्भव 'अफ़सर, बक्सा/बक्स' दोनों रूप प्रचलित हैं।

अँगरेज़ी की ə, əː, ̣ ध्वनि को 'अ' से सूचित किया जाता है, यथा—अकाउंट, अरेंज, इन्कम, बटर, वाटर; अर्थ, टर्न, नर्स, बर्ड, बर्थ; कट, ब्रुश, मग, रबर। अँगरेज़ी 'फ़ॉर्मसी, प्रोफ़ेसर, लाइब्ररी' को 'फ़ार्मेसी/फ़ॉर्मेसी, प्रोफ़ेसर, लाइब्रेरी' लिखा जा रहा है।

अँगरेज़ी के संयुक्त स्वर कुछ स्थलों पर संयुक्त स्वर/स्वरानुक्रम के रूप में और कुछ स्थलों पर मूल स्वरों के रूप में लिखे जा रहे हैं, यथा—ei (एँइ) > ए—मेल, जेल, सेल, मेन, गेम, गेट, प्लेन, सेन्ट, पेन्ट, ब्रेन। ou (ओउ) > ओ—कोट, गोल, बोट, बोर, रोड, रोम। ai (आइ) > आइ—काइट, टाइप, टाइम, फ़ाइट, फ़ाइन, लाइट, माइक, राइट, साइकल/साइकिल। इन्हें 'कैट, टैप, टैम, फ़ैट, फ़ैन, लैट, मैक, रैट, सैकल/सैकिल' लिखना एकदम ग़लत है क्योंकि ऐसी स्थिति में इन का वाचन मूल स्वरवत् होता है। au (आउ) > आउ—टाउन, पाउंड, राउंड, लाउड, साउंड, साउथ। इन्हें 'टौन, पौंड, रौंड, लौड, सौंड, सौथ' लिखना एकदम ग़लत है क्योंकि ऐसी स्थिति में इन का वाचन मूल स्वरवत् होता है। iə (इअ) > इय—बियर/बीयर। Eə (एअ) > एय—चेयर, शेयर। Uə (उअ) > उअ—पुअर/पूअर। ɔi (ऑइ) > ऑय/ऑइ—बॉय, नॉइज़, जॉइन।

W, V से युक्त शब्द प्राय: 'व' युक्त ही लिखे जाते हैं, यथा—वाटर, वेस्ट, वेदर, वाशिंगटन, वैरीमच। इन्हें 'व्ह' से लिखना नितान्त अशुद्ध है।

F से युक्त शब्द 'फ़' से और Z से युक्त शब्द 'ज़' से लिखे जाते हैं, यथा—फ़ॉर्म, फ़ूड, फ़ॉरेस्ट, फ़िज़िक्स; ज़ू, साइज़, प्राइज़।

T, D को क्रमश: 'ट, ड' से, Th (Ø ; £) को थ़/थ, द से व्यक्त किया जाता है, यथा—टूर/टुअर, टेम्पो, टाइम, डाउन, डेस्क, डेल्टा, डॉक्टर; थ्रो थ्रू, थ़र्मस/थर्मस, थ़र्मल/थर्मल, होमियोपैथ़ी/होमियोपैथी; फ़ादर, मदर, देयर।

concrete को कांक्रीट>कंकरीट लिखा जा रहा है।

वर्तनी शुद्धि-अशुद्धि अभिज्ञान—वर्तनी-अशुद्धि के पूर्वलिखित कारणों के प्रभाव स्वरूप वर्तनी सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की (कभी-कभी एक शब्द में एक से अधिक भी) अशुद्धियाँ हो जाती हैं। परिनिष्ठित हिन्दी शब्दों की कौन-सी वर्तनी शुद्ध है और कौन-सी अशुद्ध, इस की जानकारी के लिए कुछ विशिष्ट शब्दों की शुद्ध वर्तनी कोष्ठक में लिखी गई है। कविता में प्रयुक्त बोलियों के शब्दों को वर्तनी-अशुद्धि के अन्तर्गत नहीं गिनना चाहिए, यथा—करम, भरम, सरवर, गुन, नारे आदि।

स्वर वर्ण सम्बन्धी वर्तनी-अशुद्धियाँ—इस प्रकार की अशुद्धियों में कहीं अनिवार्य स्वर वर्ण/मात्रा-चिह्न का लोप देखा जाता है और कभी अनावश्यक स्वर वर्ण/मात्रा चिह्न का योग कर दिया जाता है। कभी-कभी स्वर के स्थान पर स्वर युत व्यंजन भी लिख दिया जाता है। इसी प्रकार ं ँ : के लेखन में भी अशुद्धियाँ मिलती हैं, यथा—

अनिवार्य ा-लोप—अकांक्षा (आकांक्षा), अगामी (आगामी), अन्त्यक्षरी (अन्त्याक्षरी), अहार (आहार), अध्यात्मिक (आध्यात्मिक), अल्हाद (आह्लाद), जमाता (जामाता), नदान (नादान), नराज (नाराज़), नरायण (नारायण), भगीरथी (भागीरथी), मतन्तर (मतान्तर), महात्म (माहात्म्य), ललायित (लालायित), व्यवसायिक (व्यावसायिक), संसारिक (सांसारिक), सप्ताहिक (साप्ताहिक), सहास (साहस), समसमायिक (समसामयिक), सम्राज्य (साम्राज्य)।

अनावश्यक ा-योग—आधीन (अधीन), अनाधिकार (अनधिकार), चारदीवारी (चहारदीवारी), बारात (बरात), याज्ञावल्क (याज्ञवल्क्य), लागान (लगान), हाथिनी (हथिनी), हस्ताक्षेप (हस्तक्षेप)।

अनिवार्य इ/ि-लोप—आजीवका (आजीविका), आध्यात्मक (आध्यात्मिक), कुमुदनी (कुमुदिनी), गृहणी (गृहिणी), नीत (नीति), नायका (नायिका), परिस्थित (परिस्थिति), प्रतिनिध (प्रतिनिधि), मट्टी (मिट्टी), मैथलीशरण (मैथिलीशरण), मानसक (मानसिक), युधिष्ठर (युधिष्ठिर), रचयता (रचयिता), लिखत (लिखित), वाहनी (वाहिनी), विरहणी (विरहिणी), शिवर (शिविर), सरोजनी (सरोजिनी), क्षणक (क्षणिक)।

अनावश्यक ि-योग—अहिल्या (अहल्या), कवियित्री (कवयित्री), कियारी (क्यारी), छिपकिली (छिपकली), तिरिस्कार (तिरस्कार), द्वारिका (द्वारका), प्रदर्शिनी (प्रदर्शनी), वापिस (वापस), व्यापित (व्याप्त), सामिग्री (सामग्री)।

इ/ि के स्थान पर ई/ी/यि-प्रयोग—आयिए (आइए), अतिथी (अतिथि), अभीमान (अभिमान), उन्मीलीत (उन्मीलित), उन्नती (उन्नति), उर्मी (ऊर्मि), क्योंकी (क्योंकि), कालीदास (कालिदास), तिथी, (तिथि), तेलांजली (तिलांजलि), दधिची (दधीचि), नीति (नीति), निवृती (निवृत्ति), पूर्ती (पूर्ति), प्राप्ती (प्राप्ति), परिस्थिती (परिस्थिति), परिणती (परिणति), ब्रिटीश (ब्रिटिश), मुनीगण (मुनिगण), लीये (लिए), लड़ायियाँ (लड़ाइयाँ), वृष्टी (वृष्टि), शिवी (शिवि), शक्ती (शक्ति), समीति (समिति), स्थायीत्व (स्थायित्व), सृष्टी (सृष्टि), हासील (हासिल), क्षत्रीय (क्षत्रिय)।

ई/ी के स्थान पर ई/ि-प्रयोग—अद्वितिय (अद्वितीय), आशिर्वाद (आशीर्वाद), गुणि (गुणी), दिपिका (दीपिका), द्रविभूत (द्रवीभूत), निमिलित (निमीलित), निरिह (निरीह), निरिक्षण (निरीक्षण), नारि (नारी), परिक्षा (परीक्षा), पत्नि (पत्नी), परिक्षण (परीक्षण), प्रेयसि (प्रेयसी), बिमारी (बीमारी), महिना (महीना) भस्मिभूत (भस्मीभूत), रितिकाल (रीतिकाल), वाल्मिकी (वाल्मीकि), शारिरिक (शारीरिक), शुद्धिकरण (शुद्धीकरण), श्रीमति (श्रीमती), सूचिपत्र (सूचीपत्र)।

उ/ु के स्थान पर ऊ/ू-प्रयोग—ऊत्थान (उत्थान), दूबारा (दुबारा), धूआँ (धुआँ), पून्य (पुण्य), मधू (मधु), मुमुर्षू (मुमूर्षु), साधू (साधु), साधूवाद (साधुवाद), सूई (सुई), हिन्दूओं (हिन्दुओ), हिन्दूस्थान (हिन्दुस्थान/हिन्दुस्तान)।

ऊ/ू के स्थान पर उ/ु-प्रयोग—अनुकुल (अनुकूल), अनुदित (अनूदित), जादु (जादू), तुफान (तूफ़ान), दुसरा (दूसरा), नुपुर (नूपुर), पुर्व (पूर्व), पुज्य (पूज्य), प्रतिकुल (प्रतिकूल), बुढ़ा (बूढ़ा), भुधर (भूधर), मुहुर्त (मुहूर्त), रुठ (रूठ), वधु (वधू), सुरज (सूरज), सिन्दुर (सिन्दूर), सुर्य (सूर्य), हिन्दु (हिन्दू)।

ए/े के स्थान पर ऐ/ै/ये-प्रयोग—ऐक (एक), चाहिये (चाहिए), लीये (लिए), भाषायें (भाषाएँ), वैश्या (वेश्या), सैना (सेना), हुये (हुए); देहिक (दैहिक), देविक (दैविक), एतिहासिक (ऐतिहासिक)।

यि के स्थान पर इ का प्रयोग—दाइत्व (दायित्व), निछावर (न्योछावर), रचइता (रचयिता)।

ई के स्थान पर यी का प्रयोग—मिठायी (मिठाई), लड़ायी (लड़ाई), लिखायी (लिखाई)।

यी के स्थान पर ई का प्रयोग—अनुयाई (अनुयायी), आतताई (आततायी), उत्तरदाई (उत्तरदायी), विजई (विजयी)।

ौ/औ के स्थान पर ो/ओ/उ का प्रयोग—अलोकिक (अलौकिक), उपन्यासिक (औपन्यासिक), ओद्योगिक (औद्योगिक), कोतुहल (कौतूहल), गोतम (गौतम)।

ो/ओ के स्थान पर ौ/ऊ/वो/यो का प्रयोग—त्यौहार (त्योहार), पड़ौसी (पड़ोसी), क्यूँ (क्यों), आवो (आओ), जावो (जाओ), आँसुयो (आँसुओ)।

ऋ के स्थान पर र्-प्रयोग—अनुग्रहीत (अनुगृहीत), गिरस्ती (गृहस्थी), क्रुष्ण (कृष्ण), क्रश्न (कृष्ण), त्रितीय (तृतीय), प्रथक (पृथक्), पैत्रिक (पैतृक), द्रश्य (दृश्य), म्रत्यु (मृत्यु), श्रंगार (शृंगार), मात्रभूमि (मातृभूमि), संग्रहित (संगृहीत)।

ँ के स्थान पर ं का प्रयोग—अंगना<आँगन (अँगना), अंधेरा (अँधेरा), आंख (आँख), आंधी (आँधी), अंधेरी (अँधेरी), उंगली (उँगली), उंचाई (ऊँचाई), कंगना, (कँगना), कांच (काँच), गंवार (गँवार), गूंगा (गूँगा), चांद (चाँद), छटांक (छटाँक), जाति-पांति (जाति-पाँति), जहां (जहाँ), जाउंगा (जाऊँगा), डांट (डाँट), तांत (ताँत), दांत (दाँत), दूंगा (दूँगा), पहुंच (पहुँच), पांचवां/पांचवां (पाँचवाँ), बांस (बाँस), बंदरिया (बँदरिया), मंहगा (महँगा), मुंह (मुँह), रंगरेज़ (रँगरेज़), लंगोटी (लँगोटी), सांकल (साँकल), संवारना (सँवारना), संभालना (सँभावना), हंसिया (हँसिया), हंसमुख (हँसमुख)।

अनावश्यक ं/ँ-प्रयोग—चाहिएँ (चाहिए), जांति (जाति), दुनियाँ (दुनिया), डांका (डाका), नें (ने), पूँछ कर (पूछ कर), बढ़ियां/बढ़ियाँ (बढ़िया), सोंच-विचार (सोच-विचार), सोचेंगें (सोचेंगे)।

: के स्थान पर ा/य/र्-प्रयोग—अधपतन (अध:पतन), अंताकरण (अन्त:करण), अन्तर्साक्ष्य (अन्त:साक्ष्य), मूलतय: (मूलत:)।

व्यंजन वर्ण सम्बन्धी वर्तनी-अशुद्धियाँ—व्यंजन वर्ण सम्बन्धी अशुद्धियों में घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण, ण-न, ड़ ढ़—ड ढ , , र,ड़/ल, व-ब, छ-क्ष, श-ष-स आदि से सम्बन्धित अशुद्धियाँ होती हैं। इन अशुद्धियों में कभी-कभी इन वर्णों का पारस्परिक व्यत्यय भी मिलता है। व्यंजन वर्ण सम्बन्धी वर्तनी-अशुद्धियों के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

अघोष ध्वनि-वर्णों के स्थान पर घोष ध्वनि-वर्णों का प्रयोग—अर्जना (अर्चना), कंगन (कंकण), उंजाई (ऊँचाई), नूबुर (नूपुर), नाडग (नाटक), सूजीपत्र (सूचीपत्र), समदा (समता)।

महाप्राण ध्वनि-वर्णों के स्थान पर अल्पप्राण ध्वनि-वर्णों का प्रयोग—अन्तर्दान (अन्तर्धान), इकट्टा (इकट्ठा), काना (खाना), गनिष्ट (घनिष्ठ), गर्दव (गर्दभ), बस्म (भस्म), बूदर (भूदर), सादु (साधु), बगवती (भगवती), अपरादी (अपराधी), प्रपुल्ल (प्रफुल्ल), क्रुतग्न (कृतघ्न)।

ण के स्थान पर न-प्रयोग—कंकन (कंकण), कन (कण), कल्यान (कल्याण), गन (गण), गुन (गुण), गनित (गणित), चरन (चरण), टिप्पनी (टिप्पणी), नरायन/नारायन (नारायण), प्रनाम (प्रणाम), प्रांगन (प्रांगण), प्रमान (प्रमाण), परिनाम (परिणाम), परिमान (परिमाण), प्रान (प्राण), प्रन (प्रण), मृन्मय (मृण्मय), मरन (मरण), रनभूमि (रणभूमि), रामायन (रामायण), वनिक (वणिक), विस्मरन

(विस्मरण), वीना (वीणा), वानी (वाणी), वर्न (वर्ण), वरुन (वरुण), विसुन (विष्णु), विसन्न (विषण्ण), श्रवन (श्रवण), क्षन (क्षण), रमायन (रामायण) निरवान (निर्वाण)।

रसायण (रसायन), पाणी (पानी), मणीआर्डर (मनीऑर्डर), फण (फन), रण (रन)।

ड़, ढ़ के स्थान पर ड, ढ-प्रयोग—झाडू (झाड़ू), क्रीडांगन (क्रीड़ांगन), पडता (पड़ता), पढता (पढ़ता), बूढा (बूढ़ा), मेंढक/मेडक (मेंढ़क), लडकी (लड़की)।

ड़, ढ़, ड, ढ का पारस्परिक व्यत्यय—ढ़ेर (ढेर), बडाई (बड़ाई), कढ़ाही (कड़ाही), कड़ाई (कढ़ाई), लुड़कना (लुढ़कना), सीड़ियाँ (सीढ़ियाँ), सोड़ा (सोडा), ढ़ाई (ढाई), डेर (ढेर), गड़ाई (गढ़ाई), चडाई (चढ़ाई)।

र के स्थान पर ड़/ल-प्रयोग—घबड़ाना (घबराना), टोकड़ी (टोकरी), छोकड़ी (छोकरी), प्रालब्ध (प्रारब्ध)।

ब, व का पारस्परिक व्यत्यय—दवाब (दबाव), बर्ष (वर्ष), बिष (विष), बधू (वधू), बनस्पति (वनस्पति), ब्रत (व्रत), बन (वन), बैदेही (वैदेही), बसन्त (वसन्त), सबेरा (सवेरा), बर (वर), बह (वह), बार (वार), बिम्ब (विम्ब), बिलास (विलास), बिकराल (विकराल), ब्यवहार (व्यवहार), बिनाश (विनाश), बन्धु (वन्धु), नवाब (नवाब), बिश्लेषन (विश्लेषण), बिराट (विराट्), बिधी (विधि), सर्ब (सर्व)।

शव्द (शब्द), विन्दु (बिन्दु), सुवह (सुबह), वीज (बीज), वन्धन (बन्धन)।

व-ब के अर्थ-भेदक कुछ शब्द-युग्म हैं—रव-रब, वह-बह, वली-बली, वाद-बाद, वात-बात, वार-बार, शव-शब।

क्ष-छ का पारस्परिक व्यत्यय—आकांछा (आकांक्षा), नछत्र (नक्षत्र), महत्वाकांछा (महत्त्वाकांक्षा), लछमन/लछिमन (लक्ष्मण), लच्छन (लक्षण), छमा (क्षमा), छत्रिय (क्षत्रिय), छेम (क्षेम), प्रत्यच्छ (प्रत्यक्ष), तत्छन (तत्क्षण), समच्छ (समक्ष)।

क्षत्र (छत्र), क्षात्र (छात्र), वांक्षनीय (वांछनीय)।

श-ष-स का पारस्परिक व्यत्यय—कलस (कलश), पिचास/पिसाच (पिशाच), प्रसंशा (प्रशंसा), मैथलीसरन (मैथिलीशरण), स्मसान (श्मशान), स्रवण (श्रवण), शुश्रूषा (सुश्रूषा), सृंखला (शृंखला), सुर्पनखाँ (शूर्पणखा), ससि (शशि), श्राप (शाप), साशीपरिषद् (शासीपरिषद्)।

आमिश (आमिष), पुश्प/पुस्प (पुष्प), आविस्कार/आविश्कार (आविष्कार), निसाद (निषाद), विसाद (विषाद), वास्प (वाष्प), विसन्न (विषण्ण), सुसमा (सुषमा), बिश्लेशन (विश्लेषण), सुसुप्ति (सुषुप्ति), हितैशी (हितैषी)।

अनुशरण (अनुसरण), अमावश्या (अमावस/अमावस्या), कैलाश (कैलास), आष्पद (आस्पद), कुशाशन (कुशासन), तिरिष्कार/तिस्कॉर (तिरस्कार), प्रशाद (प्रसाद), साशन (शासन), श्रोत (स्रोत)।

स्वर, व्यंजन वर्ण सम्बन्धी कुछ अन्य मिली-जुली अशुद्धियाँ—इन अशुद्धियों में आगम, लोप, व्यत्यय सम्बन्धी मिली-जुली अशुद्धियाँ होती हैं, यथा—अ/इ-आगम, अ-लोप, य-आगम, य-लोप, त∼थ ट←→ठ, अनावश्यक हल्, हल्-लोप, त्व∼त्त्व। इस प्रकार की कुछ अशुद्धियों के उदाहरण हैं—

अभ्यस्थ (अभ्यस्त), अस्थान/इस्थान (स्थान), अरमूद (अमरूद), अन्तर्ध्यान (अन्तर्धान), अनिष्ठ (अनिष्ट), अध्यन (अध्ययन), अर्च्यना (अर्चना), अन्ताक्षरी (अन्त्याक्षरी), अवन्नति (अवनति), अपन्हुति (अपह्नुति), आह्वान (आह्वान), आर्द (आर्द्र), ईर्षा (ईर्ष्या), इकठ्ठा (इकट्ठा), उचित् (उचित), उत्पात् (उत्पात), उश्रृंखल (उच्छृंखल), उपलक्ष (उपलक्ष्य), उँचाई (ऊँचाई), औद्योगीकरण (उद्योगीकरण), कनिष्ट (कनिष्ठ), कार्यक्रर्म (कार्यक्रम), कृत्यकृत्य (कृतकृत्य), कन्हय्या (कन्हैया), केन्द्रीयकरण (केन्द्रीकरण), गदर्धव (गर्दभ), गडुर (गरुड़), गोप्यनीय (गोपनीय), गृहस्थ्य (गृहस्थ), गरिष्ट (गरिष्ठ), घनिष्ट (घनिष्ठ), चिन्ह (चिह्न), चर्मोत्कर्ष (चरमोत्कर्ष), च्युत् (च्युत), जेष्ट (ज्येष्ठ), त्याज (त्याज्य), तत्व (तत्त्व), द्वन्द (द्वन्द्व), प्रन्तु (परन्तु), पृथक (पृथक्), पक्क (पक्व), प्रवृर्त (प्रवृत्त), प्रर्याप्त (पर्याप्त), प्रत्युत (प्रत्युत्), प्रज्ज्वलित (प्रज्वलित), पृष्ट (पृष्ठ), प्रमेश्वर (परमेश्वर) फाल्गुण (फाल्गुन), ब्रम्ह (ब्रह्म), ब्राम्हन (ब्राह्मण), भरत (भरत), भैय्या (भैया), भाग्यमान (भाग्यवान्), भागवत् (भागवत), महत्व (महत्त्व), यथेष्ठ (यथेष्ट), राज्यमहल (राजमहल), लिक्खा (लिखा), वनोवास (वनवास), व्योहार (व्यवहार), वांगमय (वाङ्मय), श्याम (शाम), श्रीमान (श्रीमान्), श्रीयुत् (श्रीयुत), शत्रुह्न (शत्रुघ्न), सिंघ/सिंग (सिंह), संतुष्ठ (संतुष्ट), सरवर (सरोवर), सदृश्य (सदृश), सत्व (सत्त्व), सम्न्वय (समन्वय), स्वास्थ (स्वास्थ्य), स्थाई (स्थायी), स्मर्ण (स्मरण), सम्वाद (संवाद), हिरण्मयी (हिरण्यमयी), हिरण्यकश्यपु (हिरण्यकशिपु), अनुयाई (अनुयायी), उत्तरदाई (उत्तरदायी), दाइत्व (दायित्व), स्थाई (स्थायी), विधिवत (विधिवत्), बुद्धिवान (बुद्धिमान्), भविष्यत (भविष्यत्), सतचित (सच्चित)।

लिङ्ग-प्रभावज वर्तनी-अशुद्धियाँ—ये अशुद्धियाँ प्रायः संबंधित लिंग के सही रूप का ज्ञान न होने के कारण होती हैं, यथा—अनाथिनी (अनाथ/अनाथा), अश्वी (अश्वा), कोमलांगिनी (कोमलांगी), कृशांगिनी (कृशांगी), गायकी (गायिका), गोपिनी (गोपी/गोपिका), चातकिनी (चातकी), त्रिनयनी (त्रिनयना), दिगम्बरी (दिगम्बरा), पिशाचिनी (पिशाची), भुजंगिनी (भुजंगी), विहंगिनी (विहंगी), सुलोचनी (सुलोचना), श्वेतांगिनी (श्वेतांगी)।

प्रत्यय-प्रभावज वर्तनी-अशुद्धियाँ—इस प्रकार की अशुद्धियाँ शब्द-निर्माण के लिए लगनेवाले प्रत्यय के सही रूप या प्रत्यय के योग के समय मूल शब्द में होनेवाले रूप-परिवर्तन का सही ज्ञान न होने के कारण होती हैं, यथा—अनुसंगिक (आनुषंगिक), अभ्यन्तरिक (आभ्यन्तरिक), अध्यात्मक (आध्यात्मिक), असहनीय/असहीय (असह्य), अधीनस्थ (अधीन), आवश्यकीय (आवश्यक), इतिहासिक (ऐतिहासिक), उत्कर्षता (उत्कर्ष), एकत्रित (एकत्र), ऐक्यता (ऐक्य/-एकता), कौशलता (कौशल/कुशलता), गोपित (गुप्त), चारुताई (चारुता), चातुर्यता (चातुर्य/चतुरता), जानतांत्रिक (जनतांत्रिक), ज्ञानमान् (ज्ञानवान्), तत्व (तत्त्व), त्रिवार्षिक (त्रैवार्षिक), तत्कालिक (तात्कालिक), देहिक (दैहिक), दारिद्रता (दरिद्रता/दारिद्र्य), दरसल में (दरअसल/असल में), द्वैवार्षिक (द्विवार्षिक), धैर्यता (धैर्य/धीरता), नावीन्य (नवीन/नवीनता), नैपुण्यता (नैपुण्य/निपुणता), निश्चयता (निश्चय), निरपराधी (निरपराध), नीतिक (नैतिक), पौर्वात्य (प्राच्य/पौर्विक), पूज्यनीय (पूज्य/पूजनीय), प्रफुल्लित (प्रफुल्ल), प्रदेशिक (प्रादेशिक), प्रतिनिधिक (प्रातिनिधिक), प्रमाणिक (प्रामाणिक), पौरुषत्व (पौरुष/पुरुषत्व), पूज्यास्पद (पूजास्पद), पुष्टी (पुष्टि), बाहुल्यता (बाहुल्य/बहुलता), बुद्धिमानता (बुद्धिमत्ता), महता (महत्ता), महत्व (महत्त्व), मैत्रता (मैत्री/मित्रता), माधुर्यता (मधुरता/माधुर्य), मान्यनीय (माननीय/मान्य), लब्ध प्रतिष्ठित (लब्ध प्रतिष्ठ), व्यवसाइक (व्यावसायिक), व्याकुलित (व्याकुल), व्यवहारित (व्यवहृत), विद्यवान (विद्यमान), व्यापित (व्याप्त), वास्तविक में (वास्तव में/वस्तुतः), वैधव्यता (वैधव्य), वैमनस्यता (वैमनस्य), श्रीमान (श्रीमन/श्रीमान्), षण्ठम (षष्ठ), सन्यास (संन्यास), सर्वजनीन (सार्वजनीन/सार्वजनिक), साम्यता (साम्य/समता), सौख्यता (सौख्य), सुन्दरताई (सुन्दरता), सौन्दर्यता (सौन्दर्य/सुन्दरता); साहाय्यता (सहायता/साहाय्य), सप्ताहिक (साप्ताहिक), समुद्रिक (सामुद्रिक/समुद्री), सम्पर्कित (सम्पृक्त), संसारिक (सांसारिक)।

सन्धि-प्रभावज वर्तनी-अशुद्धियाँ—इस प्रकार की अशुद्धियाँ संधि-प्रक्रिया के सही नियम न जानने या संधि करते समय शब्द के सही रूप का ज्ञान न होने के कारण होती हैं, यथा—अधगति (अधोगति), अत्याधिक (अत्यधिक), अत्योक्ति (अत्युक्ति), अद्यपि (अद्यापि), अक्षोहिणी (अक्षौहिणी), अधस्पतन (अधःपतन), अन्तर्करण/अन्तष्करण (अन्तःकरण), अन्तर्साक्ष्य (अन्तःसाक्ष्य/अन्तस्साक्ष्य), अन्तस्पुर/अन्तर्पुर (अन्तःपुर), अनाधिकार (अनधिकार), अनधिकारी (अनधिकारी), अधतल/अधोतल (अधस्तल), इतिपूर्व (इतःपूर्व), उज्जल (उज्वल), उच्छास (उच्छ्वास), उपरोक्त (उपर्युक्त), किम्वदन्ती (किंवदन्ती), छत्रछाया (छत्रच्छाया), जगतेश/जगतीश (जगदीश), जगबन्धु (जगद्बन्धु), जगधात्री (जगद्धात्री), ज्यात्याभिमान (जात्यभिमान), जाग्रदवस्था (जाग्रदावस्था), जगतनाथ (जगन्नाथ), ज्योतीन्द्र (ज्योतिरिन्द्र), तरुछाया (तरुच्छाया), तदोपरान्त (तदुपरान्त), दुस्कर (दुष्कर),

दुरावस्था (दुरवस्था), नमष्कार/नमश्कार (नमस्कार), नभमंडल (नभोमंडल), निरस (नीरस), निरोग (नीरोग), निर्शेष (निश्शेष), निर्पेक्ष (निरपेक्ष), निर्पक्ष/निश्पक्ष (निष्पक्ष), पयोपान (पय:पान), पित्रीण (पितृण), पुरष्कार (पुरस्कार), पुनररचना (पुनर्रचना), पुनराभिनय (पुनरभिनय), प्रतिछाया (प्रतिच्छाया), भाष्कर (भास्कर), भविष्यत्वाणी (भविष्यवाणी), मनोकष्ट (मन:कष्ट), मनहर (मनोहर), मनोमोहन (मनमोहन), मनयोग (मनोयोग), मनोसाधना (मन:साधना), मनोकामना (मन:कामना), यशलाभ (यशोलाभ), यावत्जीवन (यावज्जीवन), रीत्यानुसार (रीत्यनुसार), वयक्रम (वय:क्रम), वयवृद्ध (वयोवृद्ध), विछेद (विच्छेद), वयोप्राप्त (वय:प्राप्त), शिरोपीडा (शिर:पीडा), सन्मुख (सम्मुख), सम्हार (संहार), सम्वरण (संवरण), सम्वाद (संवाद), सदोपदेश (सदुपदेश), सरवर (सरोवर), स्वयम्वर (स्वयंवर), हस्ताक्षेप (हस्तक्षेप)।

समास-प्रभावज वर्तनी-अशुद्धियाँ—इस प्रकार की अशुद्धियाँ समास-प्रक्रिया के सही नियम न जानने या समास करते समय शब्द-रूप में होनेवाले परिवर्तन का ज्ञान न रखने के कारण होती हैं, यथा—अहोरात्रि (अहोरात्र), अष्टावक्र (अष्टवक्र), आत्मापुरुष (आत्मपुरुष), एकतारा (इकतारा), उच्चश्रवा (उच्चैःश्रवा), एकलौता (इकलौता), कृतघ्नी (कृतघ्न), गुणीगण (गुणिगण), दुरात्मागण (दुरात्मगण), दिवारात्रि (दिवारात्र), निर्दोषी (निर्दोष), निर्गुणी (निर्गुण), निर्दयी (निर्दय), नेतागण (नेतृगण), पक्षीगण (पक्षिगण), पक्षीराज (पक्षिराज), पितागण (पितृगण), पिताभक्ति (पितृभक्ति), प्राणीमात्र (प्राणिमात्र), प्राणीवृन्द (प्राणिवृन्द), भ्रातागण (भ्रातृगण), मातादेव (मातृदेव), मन्त्रीवर (मन्त्रिवर), माताभक्ति (मातृभक्ति), माताहीन (मातृहीन), महात्मागण (महात्मगण), महाराजा (महाराज), मन्त्रीमंडल (मन्त्रिमंडल), मनीषीगण (मनीषिगण), योगीवर (योगिवर), योगीराज (योगिराज), राजापथ (राजपथ), राजागण (राजगण), राजापुत्र (राजगण), वक्तागण (वक्तृगण), विद्यार्थीगण (विद्यार्थिगण), शशीभूषण (शशिभूषण), स्वामीभक्त (स्वामिभक्त), सशंकित (सशंक), सलज्जित (सलज्ज), सकुशलपूर्वक (सकुशल/कुशलपूर्वक), सानन्दित (सानन्द), सूचीपत्र (सूचिपत्र)।

कुछ विशिष्ट शब्दों का वर्तनी के बारे में स्पष्टीकरण—आगे दिए गए शब्दों में से कुछ शब्दों की शुद्ध वर्तनी का आधार परम्परागत वर्तनी है, कुछ का आधार शब्द-स्रोत है, कुछ का उच्चारण-सौकर्य। कुछ शब्दों की शुद्ध वर्तनी का आधार शब्द-निर्माण प्रक्रिया है और कुछ का व्युत्पत्ति। स्पष्टीकरण संक्षेप में दिया गया है—

अक्सर ('अ' लोप के आधार पर 'अक्सर' अधिक प्रचलित है, 'अकसर' बहुत कम प्रचलित है। उर्दू में भी अक्सर है। **अगरचे** (<अगरचह, उच्चारणानुगामी वर्तनी)। **अतएव** (<अत:+एव)। **आदि** (=इत्यादि, वगैरह), **आदी**

(<आदत) 'आदती' अशुद्ध । विशेषण **आलसी** <संज्ञा आलस<आलस्य । **इन्दिरा** (=लक्ष्मी), **इन्द्राणी** (=इन्द्र-पत्नी) । **इनकार** (इंकार [इङ्कार]/इन्कार अगृहणीय) । **उपर्युक्त** (<उपरि+उक्त) अतः 'उपरोक्त' त्याज्य है । इसी प्रकार **पुनरुक्त** (पुनः+उक्त), **पुनरुक्ति** (पुनः+उक्ति), न कि 'पुनरोक्त, पुनरोक्ति' । **उज्ज्वल** (<उत्+ज्वल) 'उज्वल' अशुद्ध । **उम्मीदवार** (उम्मेदवार अग्रहणीय । उर्दू में 'उम्मीद' प्रचलित) । **उलटा** (<उलट+आ), 'उल्टा' त्याज्य । **उषा** (<उषःकाल; ऊषःकाल हिन्दी में अगृहीत । **एकत्र** (अन्यत्र, सर्वत्र के वज़न पर), विस्तारित, प्रचारित, व्याख्यायित के वज़न पर 'एकत्रित' अशुद्ध शब्द-निर्माण । **एकाएक** (<यकायक/यक-ब-यक) । **करता** (<कर+-ता), **कर्ता** (<सं √कृ) । **कवयित्री** (<सं.कव्>कवि, कवयित्री) 'कवियित्री' अशुद्ध । **कार्यकारिणी** (<कारी+ -नी), 'कार्यकारणी अशुद्ध । **कारवाई** (= Action), **कार्यवाही** (=Proceedings) । **कृति** (=निर्मित रचना) । **कृती** (=रचनाकार), **केंचुआ** (= Earthworm), **केंचुली** (=साँप की ऊपरी खाल) । **कोश** (=Dictionary), **कोशिका** (= सब से छोटा cell), **कोष** (=निधि) । **-ख़ोर** (=खानेवाला, यथा—घूसख़ोर), **-ख़ोरी** (=खाना, यथा—घूसख़ोरी) इस अर्थ में 'खोर, खोरी' अशुद्ध । **खोमचा** (संज्ञा, खोमचेवाले), **खोंचा** (<खोंचना का पूर्ण पक्ष रूप) । **गलती** (<गलत+ -ई), 'गल्ती' त्याज्य । **गर्मी** (गरमी का उच्चारणानुगामी रूप) तथा कर्म के सादृश्य पर **गर्म** । 'गरम' करम के सादृश्य पर अगृहीत । **गुरू** <गुरु (व्यंग्यार्थ चालाक/बदमाश) । **गृहीत** (<√गृह् से कृदन्त विशेषण), **ग्रहीत**, 'अनुग्रहीत' अशुद्ध । **ग्रहण** (संज्ञा) > अनुग्रह, उपग्रह । **गृह** (=घर)> **गृहिणी**, **ग्रह** (=नक्षत्र) । **चमत्कारक** (<चमत्कार+ -क) 'चमत्कारिक' अशुद्ध । **चाबी** (<पुर्त० चावी) 'चाभी' अग्राह्य । **चाहिए** (<√चाह+ -इए) 'चाहिये' अग्राहय । **चिंघाड़** ग्राह्य 'चिग्घाड़' अग्राह्य । **घग्घर** <घर-घर (=एक नदी-नाम), **घुग्घू** (=घू-घू करनेवाला अर्थात् उल्लू पक्षी) । **चुनांचे**<चुनान्चह, **चुनाचह** । **छह** (<.षष्) से छहो/छहों ग्राह्य 'छः' अशुद्ध क्योंकि हिन्दी के अपने शब्दों में विसर्गान्त शब्दों का अभाव है । 'छै' छह का उच्चरित रूप । **जागना** (√जाग), **जगाना** ग्राह्य, 'जगना' अग्राह्य । इसी प्रकार **भागना, भगाना** ग्राह्य, 'भगना' अग्राह्य । **ज़मींदार** (<ज़मीन + -दार), 'ज़मीनदार' में पहला रूप उच्चारण-सौकर्य के कारण अधिक ग्राह्य । **झज्झर** <झर-झर (=पानी का बर्तन) । **झोंपड़ी** ग्राह्य (पश्चिमी हिन्दी में ों का उच्चारण ैं प्रचलित), सम्भवतः उच्चारण-प्रभावस्वरूप 'झौंपड़ी' रूप प्राप्त किन्तु अग्राह्य । **ठंड** (=मौसम-विशेषता, मौसम), **ठंडक** (=प्रिय ठंड), 'ठंढ' ठंढा, ठंढक' (-ण्- + -ढ) हिन्दी-प्रकृति के अनुरूप न होने के कारण त्याज्य । **डुबाना** (<डूबना) ग्राह्य, 'डुबोना' अग्राह्य; इसी प्रकार **भिगाना** (<भीगना); **चुभाना** (<चुभना) ग्राह्य, 'भिगोना, चुभोना' अग्राह्य । **तनहा**>**तनहाई** ग्राह्य; 'तन्हा' त्याज्य । **तत्त्व** (<तत् + -त्व), 'तत्व (त+ -त्व/तत्+ -व) अशुद्ध । **तलाश** > **तलाशी** (जेब

की तलाशी, नौकरी की तलाश; घर-घर की तलाशी, प्रेमी की तलाश)। **तोल** (>भारोत्तोलन), **तोलना** ग्राह्‌य, 'तौल, तौलना' अग्राह्‌य; तोला (5 तोला=1 छटाँक) से भेद करने की दृष्टि से सम्भवत: 'तौला' (=तोलनेवाला) शब्द का प्रचलन हुआ होगा जिस से तौल, तौलना शब्द पश्चिमी हिन्दी में चल पड़े हैं। **त्योहार** ग्राह्‌य, 'त्यौहार' अग्राह्‌य; इसी प्रकार **न्योता** ग्राह्‌य, 'न्यौता' अग्राह्‌य। **दम्पति** (<दम्=स्त्री, पति=पुरुष) ग्राह्‌य, 'दम्पती/दम्पत्ति' अग्राह्‌य। **-दायी** < -दाय—**उत्तरदायी**, **उत्तरदायित्व**, **अंशदायी** ग्राह्‌य, '-दाई' अग्राह्‌य किन्तु **दाई** (<धाय) ग्राह्‌य। **दर्जा** उच्चारण-सौकर्य के कारण ग्राह्‌य, 'दरजा' अग्राह्‌य। **दुकान** उच्चारण-सौकर्य के कारण ग्राह्‌य, 'दूकान' अग्राह्‌य। **दु:ख, दु:खद** परम्परानुगामी वर्तनी के कारण अधिक ग्राह्‌य, 'दुख, दुखद' उच्चारण-सौकर्य के कारण ग्राह्‌य। **दुनिया** शुद्‌ध; शायद 'मजनूँ, समाँ' आदि के सादृश्य पर 'दुनियाँ' प्रचलित, किन्तु अग्राह्‌य। **दुविधा** (=पशोपेश Dilemma) शुद्‌ध, 'द्‌विवधा' अशुद्‌ध। 'बहुविध' की भाँति **द्‌विविध** ग्राह्‌य, द्‌विविधाएँ' भी अग्राह्‌य। **द्रष्टव्य** (<दृष्टि), **द्रष्टा** शुद्‌ध, 'दृष्टव्य, दृष्टा' अशुद्‌ध। **धारिणी** (<धारण) शुद्‌ध, 'धारणी' अशुद्‌ध। **धोखा** शुद्‌ध, 'धोका' अशुद्‌ध। **नरक** (सं.) शुद्‌ध, स्वर्ग के सादृश्य पर बना शब्द, 'नर्क' अशुद्‌ध। **निदेशक** (=संस्थान का प्रमुख अधिकारी Director of an institution), **निर्देशक** (=निर्देशन देनेवाला Director of a film etc.), **निर्दिष्ट** (<निर्देश=बताना/दिखाना)। **परवाह** शुद्‌ध, 'परवा' अशुद्‌ध; प्रतिपदा >पड़वा~परवा प्रचलित। **पहन** (<√पहनना) शुद्‌ध, 'पहिन' अशुद्‌ध। **पहचान** शुद्‌ध, 'पहचानत, पहिचानत' हिन्दी में अस्वीकृत। **पूर्वाग्रह** (<पूर्व+आग्रह, किसी बात को पहले से ही आग्रहपूर्वक मान बैठना), 'पूर्वग्रह' (<पूर्व+ग्रह, पहले से पकड़े हुए होना—किसी बात/सिद्‌धान्त को) अस्वीकार्य। **पौंड** (=इँगलैंड की मुद्रा), **पाउंड/पाउण्ड** (=वज़न विशेष); अँगरेज़ी में दोनों शब्दों की वर्तनी, उच्चारण एक ही है। **पौधा** (=छोटे आकार का आरम्भिक वृक्ष), **पौद** (=एक स्थान से दूसरे स्थान पर रोपे जानेवाला पौधा), 'पौदा, पौध' सादृश्य पर निर्मित शब्द अस्वीकार्य। **प्रणय** (=प्रेम), **परिणय** (=विवाह)। **प्रतिशत** पारिभाषिक शब्द है 'प्रति शत' (विशेषण+विशेष्य नहीं है) अग्राह्‌य। **प्रथा** (=रिवाज/परम्परा), **पृथा** (=कुंतिभोज की पुत्री 'कुन्ती') **प्रविष्ट** (<'प्रवेश करना' का कृदन्त रूप) होना, **प्रविष्टि** (=इंदराज संज्ञा<दर्ज)। **बचपन** (<बच्चा+पन=बाल अवस्था) >**बचपना**) = अबोधता/नासमझी)। **बँटे** (<बँटना<बाँटना) की अनुनासिकता-क्षीणता के कारण **बटे** गणित में प्रयुक्त यथा—$2\frac{3}{4}$ =दो सही तीन बटे (/ बटा) चार। **बहन** (<बहिन<भगिनी)>**बहनोई** (<बहन+ -ओई), बहरा, बहकना, पहला, रहना के अनुकरण पर स्वीकार्य, 'बहिन, बहिनोई, बहिरा, बहिकना, पहिला, रहिना, पहिचान' अस्वीकार्य। **बुड्‌ढा** (=कुछ तिरस्कार भावनायुत वृद्‌ध), **बूढ़ा** (=वृद्‌ध होने की स्थिति), **बुड्‌ढी**, **बुढ़िया** (=कुछ तिरस्कार भावनायुत

वृद्ध महिला), **बूढ़ी** (=वृद्ध महिला)। **बुधवार** (=बुध ग्रह का दिन, न कि भगवान् बुद्ध का दिन अतः) 'बुद्धवार' अशुद्ध। **भट** (=राजा का योद्धा), भट्ट (=ब्राह्मणों की एक उपजाति)। **भड़भड़** (<भड़भड़)। **भर्ती** (<भर+ -ती) उच्चारण-सौकर्य के कारण ग्राह्य, 'भरती' (<भरत+ -ई के भ्रम के कारण भी) अप्रचलित। **मदद** >इम्दाद/इमदाद (* मदत, * मददें)। **महत्त्व** (<महत्+ -त्व), 'महत्व' (<मह+ -त्व/महत्+ -व) अशुद्ध। **मुकदमा** परम्परानुगामी वर्तनी होने के कारण शुद्ध, 'मुकद्दमा' अशुद्ध। **मुस्कराना** शुद्ध, 'मुस्कुराना' उच्चारण भी प्राप्त, किन्तु लेखन में अशुद्ध। **रखा** (<रख+ -आ) शुद्ध; बलाघात के कारण 'रक्खा' उच्चारण भी प्राप्त, किन्तु लेखन में अशुद्ध। **रिक्तता** (=सूनापन, <रिक्त=ख़ाली), **रिक्ति** (=Vacancy)। **रिक्शा** जापानी शब्द है, अतः 'रिक्षा/रिक्षा' अशुद्ध। **ललचाना** (<लालच) शुद्ध, 'ललचना' अशुद्ध। **लिखा** (<लिख+ -आ) शुद्ध, बलाघात के कारण 'लिक्खा' उच्चारण भी प्राप्त, किन्तु लेखन में अशुद्ध। **वक़्तन फ़वक़्तन** (=कभी-कभी) > * वक़्त बेवक़्त (शब्द दोष युक्त प्रचलन)। **वापसी** (<वापस) ग्राह्य, 'वापिसी' अग्राह्य। वेश (>वेश-भूषा) ग्राह्य, 'वेष/भेस' अग्राह्य। शताब्दी (<सं. शताब्दि। **शय्या** (<सं.√शे>शय्, शयन, शायिका, -शायी) ग्राह्य; गैया, मैया, ततैया की तर्ज़ पर 'शैया' प्रचलित, किन्तु अग्राह्य। **शृंगार** (सं.) शुद्ध, 'श्रृंगार/श्रंगार' अशुद्ध। **संघटन** (<सं.√ घट=संयोग, मेल; रचना, निर्माण) का विलोमार्थी **विघटन** शुद्ध, '* विगहन' अशुद्ध; **संगठन, संगठित** (<गठन<√गठ नाम-धातु>संगठन=संयोग, मेल; रचना, निर्माण) शुद्ध, 'घटन' अशुद्ध। **सँभलना, सँभालना**, 'अँधेरी, जँभाई (~अन्हेरी, जम्हाई) की भाँति ग्राह्य; 'अन्हेरी, जम्हाई' की भाँति 'सम्हालना' त्याज्य। **सचाई** (<सच<सच्च<सत्य) ग्राह्य, 'सच्चाई' (<सच्चा+ -ई) अग्राह्य। **सम्मान** (<सम्+मान=अच्छी तरह मान/आदर करना) के अर्थ में 'सन्मान' (<सत्+मान=अच्छा मान/आदर करना) अग्राह्य। **सवेरा, सवेरे** अधिक प्रचलित, 'सवेरा, सबेरे' भी कहीं-कहीं प्राप्त। **सुबह** (अरबी) ग्राह्य, 'सुवह' अग्राह्य। सांख्यिकी (<संख्या) ग्राह्य, सांख्यकी (<सांख्य+की) अशुद्ध। **सांस्कृतिक** (<संस्कृति+ -इक), **सांसारिक** (<संसार+ -इक) शुद्ध, 'साँस्कृतिक, साँसारिक' अशुद्ध; इसी प्रकार 'गाँधी' अशुद्ध, **गान्धी/गांधी** (<गंध + -इन्) शुद्ध; किन्तु **आँधी** शुद्ध, 'आंधी' अशुद्ध, **अंधी** शुद्ध। **सारिणी** (<सं. सृ+णिनि=Table समय-सारिणी) सरिणी (सं.)=रक्त पुनर्नवा, गन्धसारिणी **सारणी** (<सरण~सारण+ -ई =नहर, नदी, जलमार्ग। **साहित्यिक** (<साहित्य + -इक) शुद्ध, 'साहित्यक' (<साहित्य+क) अशुद्ध। सुगन्ध (<सु+गंध), शुद्ध, 'सुगंधि' (<सु+गन्धि) अशुद्ध। **स्रवित** (<स्राव) शुद्ध, 'स्त्रवित/स्त्रावित' अशुद्ध। स्रष्टा (<सृष्टि) शुद्ध, सृष्टा अशुद्ध। **स्रोत** शुद्ध, इस के स्थान पर 'स्त्रोत' लिखना अशुद्ध **सहस्र** शुद्ध, 'सहस्त्र/सहस्त्र' अशुद्ध। **हरिद्वार, हरिजन,**

(<हरि) शुद्ध, 'हरीद्वार, हरीजन' अशुद्ध। कहीं-कहीं 'हरद्वार' (<हर+द्वार) शब्द भी प्रचलित किन्तु 'हरजन' अशुद्ध। **हरेक** (<हर+एक) अधिक ग्राह्य, 'हर एक हरएक' कुछ एक की तरह कम ग्राह्य। **हलुआ** से अधिक **हलवा** (<हलवाई) ग्राह्य, 'हलुवा' अग्राह्य। **हिमाचल** (<हिम+अचल=बर्फ़ का पहाड़), **हिमांचल** (<हिम+अंचल=बर्फ़ का क्षेत्र)।

विरामादि चिह्न

वर्तनी का परोक्ष सम्बन्ध विरामादि चिह्नों से भी है। भाषा-उच्चारण में जो संगम है, लेखन में वही **विराम** है। विराम का अर्थ है—विश्राम या रुकना। भाषा-व्यवहार में कभी एक पूरे वाक्य के बाद, कभी वाक्यांश पर और कभी एक शब्द के बाद भी वक्ता कुछ क्षण के लिए रुकता है। इस विश्राम को लेखन में विरामादि चिह्नों से व्यक्त किया जाता है।

विरामादि चिह्नों का उपयुक्त प्रयोग वाक्य के आशय को स्पष्ट कर भाषा को सौष्ठव प्रदान करता है। इन चिह्नों के प्रयोग से भाषा में उपयुक्त प्रवाह, संयम और बोधगम्यता आ जाती है। विराम चिह्नों का अनुपयुक्त प्रयोग कभी-कभी अर्थ का अनर्थ भी कर देता है और भाषा को दुर्बोध बना देता है, यथा—खाओ, मत फेंको—खाओ मत, फेंको। हिन्दी में प्रचलित विरामादि चिह्नों के नियम अभी पूर्णतः स्थायित्व नहीं पा सके हैं क्योंकि अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी में भी विरामादि चिह्नों के प्रयोग का प्रचलन कुछ सौ वर्ष पुराना ही है। अँगरेज़ी भाषा के प्रभाव से इन का प्रयोग बढ़ा है। प्रचलित **विरामादि चिह्नों के प्रयोग-नियम ये हैं—**

(1) **अल्प विराम** (,) अल्प विराम का अर्थ है—थोड़ी देर के लिए रुकना/ठहरना/आराम करना। लेखन में लेखक अल्प विराम की आवश्यकता का अनुभव करने पर इस चिह्न का प्रयोग करता है। इस चिह्न का प्रयोग इन स्थितियों में किया जाता है—

1. दो से अधिक समान स्तरीय पदों/पदबंधों/उपवाक्यो में पार्थक्य प्रदर्शन के लिए, यथा—

हरीश, रमेश, दिनेश और सभी बच्चे सिनेमा देखने गए हैं। छोटी, हलकी, अंडाकार तथा चित्रकारीवाली तश्तरी लाना। तुम्हारे भाई साहब तो बहुत सवेरे ही उठ कर, नहा-धो कर और नाश्ता कर के ऑफ़िस चले गए। ये छात्र साहित्य, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, गणित और विज्ञान पढ़ते हैं।

अल्प विराम अन्तिम दो समान स्तरीय पदों के मध्य नहीं आता। कुछ लेखक बड़े-बड़े पदबन्धों/उपवाक्यों को 'और' से जोड़ते समय अँगरेज़ी के अनुकरण पर 'और' से पूर्व भी विशेष अवधारण हेतु अल्प विराम लगाते हैं, यथा—वह कमरे में

घुसी, अन्दर से दरवाजा बन्द किया, और सोफ़े पर पाँव फैला कर पसर गई। उस का कथन निन्दनीय, अहंकार पूर्ण है, और इसीलिए त्याज्य है।

2. भावातिरेक में बल देने के लिए पदों की पुनरावृत्ति करते समय और 'अस्तु, हां, जी हाँ, देखो, लो' जैसे कुछ शब्दों के बाद, यथा—

देखो, देखो, वह इधर ही आ रही है। नहीं, नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं करूँगी। मैं यहाँ देर से, काफ़ी देर से आप का इन्तज़ार कर रहा हूँ। हाँ-हाँ, ले लो, कोई कुछ नहीं कहेगा।

3. वाक्य में अन्तर्वर्ती (Parenthesis) या समानाधिकरण पद/पदबन्ध/उपवाक्य आ जाने पर उन्हें पृथक् करने के लिए, यथा—

अयोध्या-नरेश, दशरथ, के तीन रानियाँ थीं। 1959 में रामचन्द के नेतृत्व में कानपुर में जो टेस्ट खेला गया, वह दूसरा टेस्ट मैच था, जिस में आस्ट्रेलिया को पराजय स्वीकार करनी पड़ी थी, यद्यपि आस्ट्रेलिया के सामने वह हमारी पहली विजय थी। क्रोध, चाहे जैसा भी हो, मानव मात्र को दुर्बल बनाता है। राजा दशरथ, तीन पत्नियों के पति और राजा राम, एक पत्नीव्रतधारी के गृहस्थ जीवन का अच्छा चित्रण हुआ है। वे सभी यात्री, जो विमान दुर्घटना के शिकार हुए थे, अब स्वस्थ हैं।

अँगरेज़ी के अनुकरण पर इस प्रकार का अनुवाद हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल न होने के कारण अग्राह्य है, यथा—Eliot, the great poet and critic, was a scholar, इलियट, महान् कवि तथा आलोचक, बड़े विद्वान् थे। ग्राह्य रूप होगा—महान् कवि तथा आलोचक इलियट बड़े विद्वान् थे।

4. अँगरेज़ी में as if, for example, however, notwith standing, such as, too आदि के बाद अल्प विराम का प्रयोग कसरत से होता है। इस के अनुकरण पर हिन्दी (विशेषत, कथा साहित्य) में भी कथन पर बल देने के लिए 'निश्चय ही, फिर भी, उदाहरण के लिए, तो, और, वस्तुत:' के बाद तथा 'किन्तु, अतः इसलिए, क्योंकि, इसी से, जिस से, तथापि, पर, परन्तु' से पूर्व अल्प विराम लगाने लगे हैं, यथा—

उदाहरण के लिए, तुम्हें इस तरह का व्यवहार शोभा नहीं देता। और, एक तुम्हारे पिता हैं जिन के लिए आराम हराम है। आज वे बहुत थके हुए हैं, अतः उन्हें विश्राम करने दो। मैं ने इसे काफ़ी समझाया, किन्तु वह मानी ही नहीं। आज मैं काम पर नहीं जा सकूँगी, क्योंकि मेरी तबीयत ठीक नहीं है। भाषाएँ भिन्न-भिन्न रहें, लेकिन लिपि एक रहे तो देश का कल्याण हो जाए।

5. किसी को सम्बोधित करने पर सम्बोधित शब्द के बाद अल्प विराम का प्रयोग होता है, यथा—

दोस्त, तुम्हें मेरा यह काम कराना ही पड़ेगा। देवियो और सज्जनो अब वह समय आ गया है जब हम सब को मिल कर देश को संकट से उबारना होगा। बटे, अब तुम घर जाओ।

6. वाक्य के मध्य में 'अब, तब, तो, यह, या, वह, कि, सो, और' तथा किसी अन्य योजक शब्द के लोप होने पर या अभाव में लुप्त शब्द से पूर्व अल्प विराम का प्रयोग होता है, यथा—

मदन खेल रहा है, रमा पढ़ रही है। ('और'-लोप)। तुम ऐसा उपाय करो, जिस से साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। ('कि'-लोप)। जवानों से युद्ध भूमि पट गई, दोनों ओर से दल के दल उमड़ पड़े, तलवारें चमकीं, भाले चले और बात की बात में रक्त की सरिता बह निकली। ('और'-लोप)। माँ जो कह रही हैं, ध्यान से सुनो। ('वह'-लोप)। मैं कब तक मैसूर में रहूँगा, कह नहीं सकता। ('यह'-लोप) तुम जहाँ जाते हो, बैठ जाते हो। ('वहीं'-लोप) हमें जो कहना था सो कह दिया, आगे तुम जानो। ('अब'-लोप)।

7. दो से अधिक शब्द-युग्मों के एक साथ आने पर अन्तिम शब्द-युग्म के अतिरिक्त शेष के मध्य, यथा—

तुम में से कौन ऐसी है जो खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, रोना-हँसना, पढ़ना-लिखना और गाना-बजाना नहीं जानती? हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ। (कविता के कारण अन्तिम शब्द-युग्म से पूर्व भी)।

8. कर्ता के बाद आनेवाले रीतिवाचक पदबन्ध के पूर्व और बाद में या एक लम्बे वाक्य में एक से अधिक स्वतन्त्र उपवाक्य होने पर अल्प विराम का प्रयोग होता है, यथा—

महात्मा बुद्ध ने, मायावी जगत् के दुःख को देख कर, तप आरम्भ किया। शैलजा, घर-गृहस्थी के क्लेश से ऊब कर रेल के नीचे कट मरी। उस ने भी चाहा था, ऐसे कुलाँचें भरे, जैसे हिरणी मैदान में दौड़ती है, ऐसे बोले, जैसे कोयल बसन्त आने पर कूकती है।

9. एक से अधिक इकाई के रूप में अंक-लेखन के समय, यथा—

1, 2, 3, 4, 5……; 50, 60, 70……; 100, 200, 300 ……

10. उद्धरण चिह्न से पूर्व, यथा—

चाची बोली, 'चलो, अब सब मेहमानों से परिचय करवा दूँ।" शशिकांत ने कहा, "भागो, डाकू आ रहे हैं।"

11. दिनांक/तिथि को सन्/संवत् से पृथक् करने के लिए, यथा—

11 फ़रवरी, 1988 को केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, मैसूर केन्द्र की स्थापना हुई। 19 से 25 मार्च, 1989 तक का भविष्य-दर्शन।

12. 'बस, वस्तुतः, अतः, अच्छा, हाँ, नहीं, सच, सचमुच' वाक्य-आरम्भक शब्दों के बाद अल्प विराम का प्रयोग होता है, यथा—

बस, बहुत हो गया; अब बन्द भी कीजिए, अपनी झाँय-झाँय। अच्छा, यह चाल चली है तुम ने मेरे साथ। सचमुच, तुम बड़ी भोली हो।

(2) **अर्ध विराम** (;) अल्प विराम से कुछ अधिक देर के लिए रुकने/ठहरने की दृष्टि से लेखन में इस चिह्न का प्रयोग इन स्थितियों में होता है—

1. संयुक्त वाक्य के उपवाक्यों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने पर, यथा—

फूलों में कमल को सर्वश्रेष्ठ फूल माना जाता है; किन्तु कश्मीर की घाटी में और ही प्रकार के फूल विशेष रूप से देखे जा सकते हैं।

2. योजक शब्दों से जुड़नेवाले छोटे-छोटे वाक्यों के मध्य विकल्प से (योजक शब्दों का प्रयोग न करने पर), यथा—

हम महादेवी जी की कोठी पर पहुँचे; वे मिलीं; हमें देखा भी; किन्तु किसी विषय पर कोई चर्चा न हो सकी।

3. एक ही मुख्य विषय से जुड़े हुए वाक्यों के मध्य, यथा—

यह सही है कि तुम ने वेदों का अध्ययन कर लिया है; श्रुतियों का गहन चिन्तन किया है; उपनिषदों को छान मारा है; किन्तु गीता जैसा गूढ़ तत्त्व तुम्हें कहीं नहीं मिलेगा।

(3) **अपूर्ण विराम** (:) अर्ध विराम से कुछ अधिक देर के लिए रुकने/ठहरने की दृष्टि से लेखन में इस चिह्न का प्रयोग इन स्थितियों में होता है—

1. किसी कथ्य के मुख्यांग तथा गौणांग में पृथकता-प्रदर्शन के लिए, यथा—

(क) सूरदास : एक विवेचनात्मक अध्ययन (ख) रामचन्द्र शुक्ल : दर्शन और चिन्तन

2. किसी सम्बद्ध तथ्य के घटकों के मध्य, यथा—

(क) समय : तीन घंटे पूर्णांक : 100

(ख) वर्ष : 40 अंक : 19 (ग) देश-देशान्तर : 20 (घ) खबरों के आगे-पीछे : विश्वनाथ : 15

(4) **पूर्ण विराम** (।) पूरी तरह रुकने/ठहरने को पूर्ण विराम कहा जाता है। सामान्यतः बोलने या लेखन में जहाँ वाक्य अन्तिम रूप ले लेता है, वहाँ पूर्ण विराम का प्रयोग होता है। इस चिह्न का प्रयोग इन स्थितियों में होता है—

1. सामान्य वाक्य के पूर्ण होने पर इस चिह्न का प्रयोग होता है, यथा—

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिन्दी के प्रमुख कवि थे। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें खड़ीबोली हिन्दी में कविता लिखने के लिए प्रोत्साहित किया था।

2. दोहा, चौपाई, सवैया आदि की प्रत्येक पंक्ति के पश्चात् एक पूर्ण विराम और पूरे छन्द के अन्त में दो पूर्ण विराम चिह्नों का प्रयोग होता है, यथा—

देख पराई चूपड़ी, मत ललचावै जीय।
रूखी सूखी खाय के, ठंडा पानी पीय ।।

3. कभी-कभी किसी व्यक्ति/वस्तु/घटना/क्रिया-व्यापार का सजीव वर्णन प्रस्तुत करते समय (सामान्यत: स्वतन्त्र) वाक्यांशों के अन्त में अर्ध विराम के स्थान पर पूर्ण विराम का प्रयोग होता है, यथा—

साँवला सलौना रंग। गालों पर हलकी-सी ललाई। पतले-पतले बिम्बाफल-से रक्तिम ओठ। धनुषाकार पतली भौंहों के बीच से कुछ ऊपर चित्रित बिन्दी। बालों की एक लट माथे पर बल खाती हुई इठलाती-सी। कमल कली-सी बड़ी-बड़ी आँखों में सरोवर की गहराई।

(5) **प्रश्नसूचक चिह्न** (?) इस चिह्न का प्रयोग किसी भी प्रकार के ऐसे वाक्य के अन्त में होता है जिस से किसी प्रकार के प्रश्न का बोध हो, यथा—

1. प्रश्नसूचक पूर्णांग या अपूर्णांग वाक्यान्त में, यथा—

तुम कहाँ जा रहे हो ? क्या कहा ? झूठी ? आप शायद महाराष्ट्र के रहनेवाले हैं ? अरे भाई, जहाँ घूसखोरी का बोलवाला हो, वहाँ ईमानदारी और कार्य-निष्ठा टिक सकती है भला ? इक्कीसवीं सदी के स्वागत का सब से बड़ा शिष्टाचार है—भ्रष्टाचार, है न ?

(6) **विस्मयादिसूचक चिह्न** (!) इस चिह्न का प्रयोग विविध प्रकार के मनोद्गारों को व्यक्त करने और किसी को सम्बोधित करने के लिए इन स्थितियों में किया जाता है—

1. मनोवेगों/उद्गारों (हर्ष, विषाद, भय, करुणा, घृणा, आश्चर्य आदि) के सूचक शब्दों के बाद; आवश्यकतानुसार वाक्यांत में भी, यथा—

वाह ! ख़ूब ! यह तो अच्छी ख़बर सुनाई तुम ने ! अच्छा ! अब तुम लोग ऐसे नहीं मानोगे। देख ली आप की भी सहानुभूति ! वाह ! भई वाह ! क्या कहने हैं तुम्हारे ! देखा, कितना अच्छा गीत गाया था उस ने !

2. सम्बोधित शब्दों के बाद, यथा—

हे ईश्वर ! मेरे बेटे की रक्षा करना। हे राम ! अब तुम्हीं मेरे कष्ट दूर कर सकते हो। शिवाजी—ताना ज़ी ! अब आप ही इस दुर्ग की रक्षा कर सकते हैं।

3. छोटों के प्रति शुभकामनाएँ या सद्भावनाएँ व्यक्त करते समय वाक्यांत में, यथा—

प्रिय मनोज ! स्नेहाशीर्वाद ! भगवान उन सब का भला करे ! तुम सब देश के यशस्वी सपूत कहलाओ !

(7) **उद्धरण चिह्न** (“ ”) इस के दो रूप प्रचलित हैं—दुहरा उद्धरण चिह्न “ ”, इकहरा उद्धरण चिह्न ‘ ’। इन के प्रयोग इन स्थितियों में होते हैं—

1. “कोई वाक्य, अवतरण का अंश ज्यों-का-त्यों उद्धृत करते समय अथवा किसी शब्दादि विशेष की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करने के लिए दुहरे उद्धरण चिह्न का प्रयोग किया जाता है, यथा—

अध्यक्ष ने बताया, “सभी प्रस्ताव बहुमत से पास किए जाएँगे।” “स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है”—लोकमान्य तिलक। “कमला।” उस ने संजीदगी से कहा, “छोड़ क्यों नहीं देती उसे।”

2. किसी पुस्तक, समाचार पत्र, लेखक/कवि-उपनाम, लेख-शीर्षक आदि उद्धृत करते समय इकहरे उद्धरण चिह्न का प्रयोग किया जाता है, यथा—

‘कामायनी’ जयशंकर प्रसाद कृत एक दार्शनिक काव्य है। लेखिका को अपने व्यंग्य लेख का शीर्षक रखना चाहिए था—‘जागो, राधा प्यारी’। ‘ये फ़िल्में करती हैं नारी का दोहरा शोषण’ लेख में लेखिका का दृष्टिकोण एकपक्षीय है। ‘निराला’ को पागल कहनेवाले खुद पागल हैं।

(8) **निर्देशक चिह्न** (—) पूर्ण विराम से पूर्व की अवस्था को निर्दिष्ट करने के लिए इन स्थितियों में इस चिह्न का प्रयोग होता है—

1. ‘कह, लिख, बता, बोल, सुन’ धातुओं से बनी क्रियाओं के बाद; ‘जैसे, यथा, उदाहरणार्थ’ शब्दों के बाद, यथा—

उस ने कहा—मुझे तुम से सहानुभूति है। वे बताते हैं—“7·30 बजे मैं ने बाहर का दरवाज़ा खोल कर देखा……”

2. नाटक के पात्र के कथन से पूर्व, जैसे—

ताना जी—महाराज, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि…… ।

3. संकेतित आदेश विशेष पर बल देने के लिए, उदाहरणार्थ—

निम्नलिखित अनुच्छेदों में से किन्हीं दो की सप्रसंग व्याख्या कीजिए—

4. किसी तथ्य को स्पष्ट करने का संकेत करने के लिए, यथा—

आइए, एक दशाब्दी पीछे चलें— । वह नया मुहल्ला था—बहुत खुला हुआ, साफ़-सुथरा। एक थे कपूर साहब—किसी बड़ी कम्पनी के बड़े ऑफ़ीसर।

(9) **योजक चिह्न** (-) इस चिह्न का हिन्दी में बहुत प्रयोग (सदुपयोग के साथ-साथ कभी-कभी दुरुपयोग भी) होता है। संश्लेषणात्मक प्रकृति की भाषा ‘संस्कृत’ में इस चिह्न का प्रयोग अत्यल्प होता है, किन्तु विश्लेषणात्मक प्रकृति की भाषा’ ‘हिन्दी’ में इस का प्रयोग अनेक अवसरों पर करना पड़ता है। योजक चिह्न का सही प्रयोग न होने से अर्थ तथा उच्चारण सम्बन्धी भ्रम की गुंजाइश है, यथा—

भू-तत्त्व (=भूमि/पृथ्वी से सम्बद्ध तत्त्व); भूतत्व (=भूत का भाववाची रूप) कुशासन (=कुश से निर्मित आसन); कु-शासन (=बुरा शासन); उप-माता (=सौतेली माँ); उपमाता (उपमा देनेवाला)।

सामान्यतः योजक चिह्न का प्रयोग इन स्थितियों में होता है—

1. एकार्थी सहचर शब्दों, विपरीतार्थक शब्दों, पुनरुक्त शब्दों तथा अनुक्त या लुप्त 'और' योजक के पदों के मध्य योजक चिह्न लगता है, यथा—

भोग-विलास, दीन-दुखी, जी-जान, हँसी-ख़ुशी, नौकर-चाकर; हानि-लाभ, स्वर्ग-नरक, ग़रीब-अमीर, आकाश-पाताल; गली-गली, बात-बात, कण-कण, चप्पा-चप्पा; धीरे-धीरे, आगे-आगे, थोड़ा-थोड़ा, अभी-अभी; उलटा-पुलटा, खाना-वाना, झूठ-मूठ; धर्म-अधर्म, माता-पिता, फल-फूल आदि।

2. दो मूल सामान्य (रूपी) संयुक्त क्रियाओं, सामान्य एवं प्रेरणार्थक क्रियाओं, दो प्रेरणार्थक क्रियाओं के मध्य योजक चिह्न लगता है, यथा—

सोना-जागना, कहना-सुनना, खाना-पीना, पढ़ना-लिखना, लेटना-लिटाना, पीना-पिलाना, उड़ना-उड़ाना, सोना-सुलाना; कटाना-कटवाना, डराना-डरवाना, जिताना-जितवाना।

3. पुनरुक्त शब्दों के मध्य आए 'से, का, न, ही' के पूर्व एवं पश्चात्, सा/सी/से/जैसा/जैसी/जैसे/सरीखा/सरीखी/सरीखे/सम्बन्धी जोड़ कर बनाए गए विशेषण शब्द में इन शब्दों से पूर्व योजक चिह्न लगता है, यथा—

आप-से-आप, आप-ही-आप, ज्यों-का-त्यों, कोई-न-कोई, किसी-न-किसी, कम-से-कम, अधिक-से-अधिक; बहुत-सी बातें, छोटा-सा काम, थोड़े-से लोग, तुझ-जैसा नालायक, तुम-जैसी भोली, उन-जैसे दुष्ट; तुझ-सरीखी नादान; महाभारत-सम्बन्धी वार्ता, भाषा-सम्बन्धी चर्चा, विद्यालय-सम्बन्धी निर्णय।

4. दो निश्चित संख्यावाची शब्द एक साथ आने पर, दो विशेषण पद (संज्ञावत् प्रयोग होने पर) योजक चिह्न से जुड़ते हैं, यथा—

चार-छह, दो-चार, एक-दो, चौथा-पाँचवाँ, दूसरे-तीसरे; अन्धे-बहरे, लूली-लँगड़ी, भूखा-प्यासा।

5. 'का/की/के' लुप्त/अनुक्त होने पर दो पदों के मध्य योजक चिह्न लगता है, यथा—

प्रकाश-स्तम्भ, लीला-भूमि, लेखन-कला, भाषा-कौशल।

6. पंक्ति के अन्त में अधूरे रहे शब्द के अक्षर के बाद योजक चिह्न रखा जा सकता है। ऐसे समय शब्द के खंडित अंशों में ताल-मेल रहना चाहिए, यथा—

> इन के अलावा वे अनेक विदेशी विश्व-विद्यालयों और संस्थानों में अतिथि प्राध्यापक भी हैं।
>
> इस कड़े मुक़ाबले के बाद टायसन ने कहा था "मुझे कोई नहीं हरा सकता। मैं दुनिया का सर्व-श्रेष्ठ मुक्केबाज हूँ।

जहाँ तक सम्भव हो, योजक चिह्न का कम प्रयोग करना ही अच्छा है। निम्नलिखित प्रकार के अनेक शब्दों को **बिना योजक चिह्न के लिखने का प्रचलन** (विशेषतः अँगरेज़ी के प्रभाव से या प्रयत्न-लाघव प्रवृत्ति के कारण) बढ़ रहा है—

1. **तत्पुरुष समासज शब्द**—मनगढ़न्त, गुरुभाई, तिलचट्टा, रसोईघर, राष्ट्रभाषा, घुड़दौड़, देशनिकाला, गंगाजल, मदमाती, आनन्दमग्न, गोबरगणेश, धर्मशाला, करपल्लव, कमलनयन, डाकगाड़ी, वायुयान आदि।

2. **अव्ययीभाव समासज शब्द**—आजकल, पहलेपहल, रातभर, दिनरात, यथासमय, यथाशक्ति, सौ रुपये मात्र आदि।

3. पूर्ण, मय, युक्त, पूर्वक, स्वरूप, मात्र, भर, द्वारा, गण, रूपी, व्यापी, आदि शब्दों के पूर्व योजक चिह्न नहीं रखा जाता, यथा—

रोषपूर्ण मुद्रा, विनोदपूर्ण स्वर, मंगलमय कामना; करुणामय, प्रत्यययुक्त, लोभयुक्त, श्रद्धापूर्वक, भक्तिपूर्वक, परिणामस्वरूप, प्रसादस्वरूप, मानवमात्र, दयामात्र, रातभर, पेटभर; अध्यक्ष द्वारा, विद्या सभा द्वारा, छात्रगण, देवतागण, लक्ष्मीरूपी कन्या रत्न, कमलरूपी नयन, विश्वव्यापी समस्या, देशव्यापी भ्रष्टाचार।

4. विशेष्य और विशेषण के मध्य सामान्यतः योजक चिह्न नहीं लगाया जाता, यथा—

कलकत्तावासी, शुभ समाचार, सान्ध्य गोष्ठी, हिन्दी पत्रकारिता, विधवा विवाह, सुमधुर स्वर, अहिन्दी भाषा भाषी/अहिन्दी भाषी आदि। (अंजुमन-ए-इस्लाम, आईन-ए-अकबरी जैसे लम्बे शब्दों में उच्चारण सौकर्य की दृष्टि से योजक चिह्न लगा सकते हैं)।

5. नञ् समासज शब्दों में योजक चिह्न नहीं लगाया जाता, यथा—

अनगिनत, बेशुमार, नाख़ुश, अनचाहा, बेमज़ा, नालायक़ आदि।

6. अँगरेज़ी की अन्धी नक़ल पर उप-, भूतपूर्व-, अ- के बाद योजक चिह्न नहीं लगाया जाए, यथा—

उपसभापति, भूतपूर्व मन्त्री, असहयोग आन्दोलन, उपप्रधानाध्यापक, भूतपूर्व सैनिक, अहिंसक वृत्ति।

(10) **कोष्ठक** ( ) { } [ ] इन चिह्नों का प्रयोग गणित के अतिरिक्त सामान्य भाषा-व्यवहार में इन स्थितियों में किया जाता है—

1. ( ) का प्रयोग किसी शब्द के अर्थ/स्पष्टीकरण/विकल्प को सूचित करने के लिए किया जाता है, यथा—

उन की नीचता (छल-छिद्र) को तुम नहीं जानते ।

2. नाटक में किए जानेवाले अभिनयादि की सूचना के लिए, यथा—

नल —(दु:खी हो कर, माथे पर हाथ रखते हुए) हे विधाता ! तू ने मेरे दुर्भाग्य के साथ दमयन्ती के भाग्य को क्यों जोड़ दिया ?

3. विषय-विभाग सूचक अंकों/अक्षरों को प्रकट करने के लिए, यथा—

व्याकरण के तीन विभाग हैं—(1) ध्वनि विचार (2) शब्द विचार (3) वाक्य विचार ।

4. प्रसंगवश आई हुई सामान्य बात को स्पष्ट करने के लिए, यथा—

कहा जाता है कि भूषण ने शिवा जी को यह पद अठारह बार सुनाया था (यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि भूषण वीर रस के प्रमुख कवि थे), शिवा जी ने भी प्रसन्न हो कर भूषण को बहुत पुरस्कार दिया था ।

5. { } का प्रयोग सामान्यत: भाषावैज्ञानिक दृष्टि से रूपिम की सूचना के लिए किया जाता है, यथा—

{ -ओं} /-ओं/, /-ओ/, /-ए/, /-एँ/, /-आँ/, /-०/

6. [ ] का प्रयोग लिखित वर्ण/अक्षर/शब्द/वाक्य के उच्चरित रूप को प्रकट करने के लिए किया जाता है, यथा—

उपन्यास [उपन्न्यास्], ल [ल्+अ]

(11) **लाघव चिह्न (०)** इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. कुल-नाम, पदवी या डिग्री आदि को संक्षेप में लिखने के लिए, यथा—

पं० जवाहरलाल नेहरू । मा० ताराचन्द । (पं० = पंडित ; मा० = मास्टर) डॉ० = डॉक्टर ; एम० ए० = मास्टर ऑफ़ आर्ट्स ।

(12) **छूट सूचक चिह्न** (ʌ) इसे हंस पद/काक पद चिह्न भी कहते हैं । इस का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. लिखते समय भूल से छूट गए शब्द/अक्षर/वाक्यांश/वाक्य को प्रदर्शित करने के लिए, यथा—

अरे, मैं अपना बटुआ घर पर ही भूल आई । महिलाएँ स्वभावत: बहुत ही भावुक होती हैं ।

(13) **लोप चिह्न** (- - - - -/× × ×) इसे आपूर्ति सूचक चिह्न भी कहते हैं । इस चिह्न का प्रयोग अग्रलिखित स्थिति में होता है—

1. उद्धरण के मध्य जिस अंश को लेखक अनावश्यक समझ छोड़ देना चाहता है या किसी अतिरिक्त विषयवस्तु की ओर मात्र संकेत करना चाहता है, उस समय इन चिह्नों में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है, यथा—

लोगों का विश्वास है कि मानव के प्राणों से परे भी एक वस्तु है, और वह है—परमात्मा। × × × इस जगत् में जो कुछ हो रहा है, उसी की मर्ज़ी से हो रहा है।

व्यक्तिवाचक संज्ञा के उदाहरण हैं—कालिदास, दमयन्ती, नर्मदा, हिमालय, मैसूर, दिल्ली - - - -।

(14) **समानता सूचक चिह्न** (=) इसे तुल्यता सूचक चिह्न भी कहते हैं। इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. किन्हीं दो या अधिक तथ्यों की समानता का बराबर की सूचना देने के लिए, यथा—

हिम+आलय=हिमालय; तड़ित=आकाश की बिजली ; 9×9=81

(15) **पुनरुक्तिसूचक चिह्न** (,,) इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. पूर्व लिखे गए अंश को पुनः शब्दों/अंकों में बिना लिखे उस की सूचना देने के लिए, यथा—

15 आदमी किसी काम को पूरा करते हैं = 30 दिन में

10 ,, उसी ,, ,, ,, ,, $= \frac{30 \times 15}{10}$,,

= 45 ,,

(16) **समाप्ति सूचक चिह्न** (—×—/—०—) इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. किसी लेख, अध्याय, पुस्तक के लिखित अंश की समाप्ति पर, यथा—
—×— या —०—

टंकण तथा मुद्रण का लेखन (वर्तनी और विरामादि चिह्न) से गहरा सम्बन्ध है। देवनागरी के टंकण यन्त्रों से संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत, पाली, मराठी, नेपाली और हिन्दी का टंकण तो होता ही है, अन्य भारतीय भाषाओं/बोलियों तथा विदेशी भाषाओं के टंकण के लिए भी देवनागरी टंकण यन्त्र के उपयोग की आवश्यकता दिनोंदिन बढ़ने लगी है। कार्यालयों, व्यापार-संस्थाओं, विज्ञान और उच्च स्तरीय अध्ययन की दृष्टि से देवनागरी के टंकणयन्त्रों में इन वर्णों और चिह्नों को समायोजित करने का प्रयास करना अत्यावश्यक है। यदि टाइप राइटर में 'की' की संख्या बढ़ानी पड़े तो उस के संबंध में भी तकनीशियनों को सोचना चाहिए—

अ इ उ ऋ ए ा ि ी ु ू ृ ॆ ँ ं ़ ॅ : . ् क ख ग घ च छ झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ
द ध न प फ ब भ म य र ् ॅ ल व श ष स ह क्ष ज्ञ त्र 1 2 3 4 5 6 7 8 9 0 / , - ?
" ( ) [ ] × % = √ £ ✡ ळ - 8̄ S

खण्ड II

रूप तथा शब्द-व्याख्या

1. शब्द समूह
2. शब्द-व्युत्पत्ति
3. शब्द-अर्थ
4. शब्द-रचना
5. शब्द-रूपान्तरण
6. संज्ञा
7. सर्वनाम
8. विशेषण
9. क्रिया
10. अव्यय
11. शब्द-प्रयोग सतर्कता
12. शब्द-भेदों की पद-व्याख्या

II **रूप तथा शब्द-व्यवस्था**

किसी भाषा के शब्द-भण्डार/शब्दकोश के शब्दों, उन के भेदों, उन की व्युत्पत्ति, उन की रचना (रूपान्तर) और उन के प्रयोग की चर्चा **रूप तथा शब्द-व्यवस्था** के अन्तर्गत की जाती है।

उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई **ध्वनि** मानी जाती है किन्तु **सार्थकता** की दृष्टि से **शब्द/रूप** को भाषा की लघुतम इकाई माना जाता है। भाषा की लघुतम सार्थक इकाई **रूप** है, तो भाषा की लघुतम सार्थक स्वतन्त्र इकाई **शब्द** है। संस्कृत भाषा में शब्द का मूल √शब्द् माना गया है। शब्द धातु का अर्थ है—ध्वनि करना। इस आधार पर शब्द का मूल अर्थ ध्वनि/आवाज़ है। 'निश्शब्द, निश्शब्दता' में शब्द का अर्थ 'आवाज़' है। दक्षिण भारत की भाषाओं में शब्द का यह अर्थ सामान्य भाषा व्यवहार में प्रचलित है। शब्दबेधी वाण में शब्द का अर्थ ध्वनि ही है। 'शब्द' के अन्य अर्थ हैं—भाषा, वचन, कथन या बात (पड़ोसी अफ्रीकनों के शब्द तो मेरी समझ में ही नहीं आते); शब्दप्रमाण (सन्त कबीर या सन्त गुरुनानक के सबद <शब्द); रूप या पद की रचना का आधार (हिन्दी शब्दानुशासन); ध्वनियों या वर्णों से बना वह संकेत जो किसी भाव, कार्य या बात का बोधक होता है। इस अर्थ में शब्द सार्थक ध्वनि/ध्वनि समूह (लफ्ज़, वर्ड) शब्द है। 'क म र आ' ध्वनियों या वर्णों में सार्थकता का अभाव है किन्तु इन्हीं ध्वनियों या वर्णों से बने शब्दों 'काम, मार, राम, आम, आक, कमर, कमरा' आदि में सार्थकता (अर्थ देने की क्षमता) है।

सार्थकता रहने पर भी शब्द में प्रयोग योग्यता का अभाव रहता है। शब्दकोश में सहस्रों शब्द होते हैं किन्तु उन का उसी रूप में प्रयोग नहीं किया जाता। शब्दकोश के शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करते समय उन में आवश्यक परिवर्तन करना पड़ता है, यथा—'चलना' शब्द वाक्य में प्रयोग के समय 'चलता, चलता है/था, चल रहा है/होगा, चला है/था, चलूँ, चलें, चले, चलेगा, चल कर, चलना, चलने' आदि। 'चलना' शब्द के ये अनेक रूप जिस प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं उसे **रूप व्यवस्था** कहा जाता है। इस प्रकार शब्दकोश के शब्द **शब्द** हैं, वाक्य में प्रयुक्त शब्द **पद** हैं।

जब कोई ध्वनि/ध्वनि-समूह व्यवहार (व्याकरणिक प्रयोग) में अर्थबोध कराने की क्षमतायुक्त होता है तब वह ध्वनि/ध्वनि समूह **शब्द** कहलाता है। इस प्रकार **शब्द भाषा की अर्थ स्तरीय लघुतम स्वतन्त्र इकाई है**। शब्द का एक स्पष्ट अर्थ होता है। यह अर्थ के स्तर पर लघुतम होता है क्योंकि अर्थ के स्तर पर शब्द से बड़ी इकाइयाँ हैं—पद, पदबन्ध, उपवाक्य, वाक्य। 'शब्द' ध्वनि स्तरीय लघुतम

इकाई नहीं है—क्योंकि एक शब्द में एक ध्वनि भी हो सकती है (यथा—'तू आ' में 'आ') और एक से अधिक ध्वनियाँ भी (यथा—लड़का आया)। शब्द अर्थ स्तरीय स्वतन्त्र इकाई है क्योंकि 'प्रबलता' के 'बल' में जुड़े प्र- (उपसर्ग), -ता (प्रत्यय) 'बल' शब्द के अभाव में अर्थहीन हैं। 'बल' को अर्थ व्यक्त करने के लिए किसी अन्य शब्द या शब्दांश की आवश्यकता नहीं है।

एक समय पर एक शब्द से सामान्यतः एक ही भावांश/विचारांश प्रकट होता है। पूर्ण भाव/विचार को व्यक्त करने के लिए एक से अधिक शब्दों/पदों का उपयोग करना पड़ता है, यथा—गाय आई (दो शब्द/पद); रेलगाड़ी धीरे-धीरे जा रही थी (छह शब्द/पद)। एकल ध्वनि से किसी प्राणी, पदार्थ, गुण या उन के पारस्परिक सम्बन्ध का बोध नहीं होता किन्तु एकाधिक ध्वनियों का व्यवस्थित योग कोई-न-कोई अर्थ बोध कराता है, यथा—र ए ल ग आ ड़ ई (एकल ध्वनियाँ), रेलगाड़ी (शब्द)। कभी-कभी व्याकरणिक दृष्टि से एकल ध्वनि को भी शब्द कहा जाता है, यथा—'आ, ओ, ए, ऐ' मनोवेगबोधक शब्द हैं।

भाषा के सब से छोटे सार्थक खंड को **रूप** कहते हैं। रूप शब्द-निर्माण का आधार है। व्याकरण में व्यक्त उपसर्ग, प्रत्यय 'रूप' ही हैं। प्रत्येक भाषा के सभी सार्थक न्यूनतम खंड उस भाषा के रूप (morph) होते हैं। रूपों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है :—1. **स्वतन्त्र/मुक्त रूप** (Free morph) इन्हें 'शब्द' भी कहते हैं 2. **बद्ध रूप** (Bound morph), यथा—-ए (घोड़े), -ता (मनुष्यता)। प्रकार्य की दृष्टि से समान सभी रूप एक रूपिम के **सहरूप/समरूप/संरूप** (Allomorph) कहलाते हैं, यथा—हिन्दी में संज्ञा बहुवचन के रूपिम {-ओं} के सहरूप हैं—1. /-ओं/, सपरसर्ग शब्दों में, 2. /-ओ/ सभी संबोधन में, 3. /-ए/ आकारात पुं० ऋजु रूप में, 4./ -एँ इ/ई/ इयान्त के अतिरिक्त) सभी स्त्री० ऋजु रूप में, 5. /-आँ/ इ/ई/इयान्त स्त्री० ऋजु रूप में, 6. /०/ सभी पु० ऋजु रूप में। समान रूपों में अधिक प्रचलित/आवृत्ति युक्त/प्रमुख एक रूप को **रूपिम** मान लिया जाता है। इस प्रकार एक या एकाधिक संरूपों का प्रतिनिधित्व करनेवाला रूप '**रूपिम**' कहलाता है। प्रकार्य के आधार पर 'रूप, संरूप, रूपिम, शब्द, पद' नाम दिए गए हैं।

भाषा-व्यवहार (वाक्य) में शब्दों की स्थिति पदों के रूप में दो तत्त्वों से संगुफित मिलती है—1. प्रकृति तत्त्व 2. प्रत्यय तत्त्व। भाषा के उन आधारभूत अंगों (शब्दों) को **प्रकृति तत्त्व** कहा जाता है जिन से विभिन्न वस्तुओं, भावों-विचारों, क्रिया-व्यापारों, गुणों आदि के अर्थ का बोध होता है। मेज़, जुदाई, दौड़, मीठा प्रकृति तत्त्व के सूचक हैं। प्रकृति तत्त्व से भिन्न जिन शब्दों/शब्दांशों में वस्तुओं, भावों-विचारों, क्रिया-व्यापारों, गुणों आदि के अर्थ-बोध की स्वतन्त्र सामर्थ्य नहीं होती, उन गौण अंगों (शब्दों/शब्दांशों) को **प्रत्यय तत्त्व** कहा जाता है। '-ओं, -ता, वि-, ही, ने' आदि प्रत्यय तत्त्व के सूचक हैं। प्रत्यय तत्त्वों की सार्थकता प्रकृति

तत्त्वों के साथ जुड़ कर ही प्रत्यक्ष या परिलक्षित होती है। प्रकृति तत्त्व आश्रयी और प्रत्यय तत्त्व आश्रित होते हैं। आश्रयी का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है किन्तु आश्रित का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता।

प्रकृति तत्त्व धातु, प्रातिपदिक तथा पद के रूप में मिलते हैं। क्रियार्थक तत्त्व **धातु** कहा जाता है, यथा—√चल, √सो, √खा, √पी आदि। सत्त्वबोधक तत्त्व **प्रातिपदिक** कहा जाता है, यथा—घर, आम, मीठा आदि। विभक्तियुक्त/परसर्गयुक्त शब्द **पद** कहा जाता है, यथा—मैदान में, लड़कों को आदि।

प्रत्यय-योजन प्रक्रिया की दृष्टि से प्रकृति तत्त्वों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है— 1. मूल प्रकृति 2. व्युत्पन्न प्रकृति 3. पद प्रकृति। वे चरम रूप (शब्द) जिन का अर्थ की दृष्टि से विभाजन नहीं हो सकता **मूल प्रकृति** कहलाते हैं, यथा—बाज़ार, घर, मेज़, श्याम आदि सत्त्व बोधक शब्द; खा, पी, सो, जा क्रियार्थक शब्द। मूल प्रकृति के दो भेद हैं—(क) **मूल धातु** वे क्रियार्थक चरम रूप हैं जो अन्य रूपों से व्युत्पन्न नहीं होते, यथा—चल, कर, सो। (ख) **मूल प्रातिपदिक** वे सत्त्व प्रधान चरम रूप हैं जो अन्य रूपों से व्युत्पन्न नहीं होते, यथा—फ़र्श, पुस्तक, जल, मकान। वे रूप (शब्द) जो मूल प्रकृति या व्युत्पन्न प्रकृति से व्युत्पन्न होते हैं **व्युत्पन्न प्रकृति** कहलाते हैं, यथा—मूल प्रकृति 'चमक, लचीला' से व्युत्पन्न 'व्युत्पन्न प्रकृति'—चमकीला, लचीलापन। व्युत्पन्न प्रकृति 'रोज़गार' (रोज़ + -गार) से व्युत्पन्न 'व्युत्पन्न प्रकृति'—बेरोज़गार। इस से व्युत्पन्न 'व्युत्पन्न प्रकृति'—बेरोज़गारी। व्युत्पन्न प्रकृति के दो भेद हैं—(क) व्युत्पन्न धातु (ख) व्युत्पन्न प्रातिपदिक। **व्युत्पन्न धातु के अन्तर्गत** 'नामधातु, सकर्मक धातु, प्रेरणार्थक धातु' की गणना की जाती है। **व्युत्पन्न प्रातिपदिक के अन्तर्गत** 'संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय' के प्रातिपदिकों की गणना की जाती है। ये प्रातिपदिक 'मूल धातु, मूल प्रातिपदिक व्युत्पन्न धातु, व्युत्पन्न प्रातिपदिक से व्युत्पन्न होते हैं। वाक्य में प्रयोज्य शब्द-रूप **पद प्रकृति** कहलाते हैं। पद की रचना के आधार हैं— 1. मूल धातु 2. मूल प्रातिपदिक 3. व्युत्पन्न धातु 4. व्युत्पन्न प्रातिपदिक; यथा—मैदान में खेल (मूल प्रातिपदिक + मूल धातु); हलवाई को बुलवाऊँ (व्युत्पन्न प्रातिपदिक + व्युत्पन्न धातु)। पद प्रकृति के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय पद की गणना की जाती है।

भाषा में प्रयुक्त उपसर्ग (प्र-, आ- — प्रबल, आचार), पर प्रत्यय (-ई, -हट, —चढ़ाई, अकुलाहट), कारक-चिह्न (ने, को), निपात (ही, तो) का अकेले में कोई अर्थ बोध न होने के कारण इन्हें स्वतन्त्र शब्द नहीं कहा जाता। वे शब्दांश या **बद्ध शब्द** कहे जाते हैं। 'हम, हमारा, विघ्न, नाशक, विघ्ननाशक' अलग-अलग 5 शब्द हैं जो मूलतः तीन शब्द (हम, विघ्न, नाश) हैं। जिन प्रत्ययों के पश्चात् दूसरे प्रत्यय नहीं जोड़े जा सकते उन्हें **चरम प्रत्यय/परसर्ग** (विश्लिष्ट विभक्ति भी) कहा

जाता है, यथा—'लकड़हारों ने' में लकड़ी > लकड़ + -हारा + -ओं के बाद आनेवाले 'ने' के पश्चात् कोई अन्य प्रत्यय नहीं जुड़ सकता। 'ने' चरम प्रत्यय जुड़ने से पूर्व का शब्द 'लकड़हारा' मूल शब्द है, जिस में वाक्य प्रयोज्यार्थ '-ओं' विकारसूचक प्रत्यय जोड़ा गया है। इस प्रकार लकड़हारा' मूल शब्द और 'लकड़हारों' पद है। 'लकड़हारों ने' को **पदबन्ध** या **वाक्यांश** कहा जाता है।

संस्कृत-व्याकरण के अनुसार **विभक्ति रहित** शब्द 'शब्द' है और **विभक्ति सहित** शब्द 'पद' है। शब्द और पद का भेदक तत्त्व विभक्ति/चरम प्रत्यय माना गया है। संस्कृत भाषा की संश्लेषणात्मक प्रकृति के कारण कारक विभक्तियाँ मूल शब्द में जोड़ी जाती हैं जबकि हिन्दी भाषा की विश्लेषणात्मक प्रकृति के कारण कारक-चिह्न/परसर्ग मूल शब्द से सटा कर नहीं रखे जाते। विभक्ति-योग से शब्दों में **प्रयोग योग्यता** आती है, अर्थात् उन्हें परस्पर अन्वय-आधार मिल जाता है। पाणिनि ने इसी बात को एक सूत्र में इस प्रकार स्पष्ट किया है—'सुप्तिङन्तं पदम्' अर्थात् सुप् (=संज्ञा/नाम-विभक्तियाँ), तिङ् (=क्रिया-विभक्तियाँ) के योग से पद-रचना होती है। बिना पद बने शब्दों का वाक्य प्रयोग नहीं हो सकता। अँगरेज़ी में 'पद' की संकल्पना न होने के कारण उस के लिए किसी पारिभाषिक शब्द का प्रयोग नहीं होता। 'पद' को अँगरेज़ी में A word in the sentence कहा जा सकता है। पद-रचना के लिए मूल शब्द/अर्थ तत्त्व/प्रकृति और रूपान्तरक/रचना तत्त्व/प्रत्यय की आवश्यकता होती है। (पद-रचना के संबंध में शब्द-रूपान्तरण अध्याय 13 में विस्तार से लिखा जाएगा)।

9

शब्द समूह

किसी भाषा में प्रयुक्त होनेवाले समस्त (सक्रिय, निष्क्रिय) शब्दों के समूह/भंडार को उस भाषा का **शब्द-समूह** (Vocabulary) कहा जाता है। शब्द समूह को 'शब्द भंडार/शब्द कोश' भी कहा जाता है। किसी जीवित भाषा के समस्त शब्द समूह की गणना करना या सही-सही अनुमान लगाना सम्भव नहीं है क्योंकि जीवित भाषा में अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की प्रक्रिया निरन्तर ज़ारी रहती है और आवश्यकतानुसार नये शब्दों का गढ़ना भी ज़ारी रहता है। मृत भाषाओं के शब्द-समूह की गणना उपलब्ध सामग्री के आधार पर अवश्य की जा सकती हैं।

मोनियर विलियम्स के अनुसार संस्कृत में लगभग 125000 शब्द (मूल शब्द) होंगे। वर्तमान अँगरेज़ी में लगभग 560000 शब्द हो सकते हैं। बृहत् हिन्दी कोश के आधार पर हिन्दी में लगभग 150000 शब्द प्रचलित हैं। भाषा की भाँति ही प्रत्येक ग्रन्थ या प्रत्येक व्यक्ति का भी शब्द समूह होता है। अपढ़ लोगों का शब्द समूह प्रायः 500-800 के मध्य हुआ करता है। पढ़े-लिखे लोगों का शब्द समूह 1500-80000 के मध्य हुआ करता है। जिस प्रकार बचपन से मृत्यु के निकट तक व्यक्तियों के शब्द समूह में परिवर्तन होता रहता है, उसी प्रकार जीवित भाषाओं के शब्द समूह में भी परिवर्तन होता रहता है। भाषाओं के **शब्द समूह में परिवर्तन** के दो मुख्य आधार हैं— 1. प्राचीन शब्दों का लोप 2. नवीन शब्दों का ग्रहण।

1. **प्राचीन शब्द-लोपन** के कई कारण होते हैं, जैसे—(क) **रीति-रिवाजों का लोप**—जिन रीति/रिवाज़ों या कर्मों का समाज से लोप हो जाता है, उन से संबंधित परम्परागत अनेक शब्दों का लोप हो जाता है। हिन्दी क्षेत्र में प्राचीनकालीन यज्ञ परम्परा के लोप के कारण कई शब्दों (जैसे— स्रुच, शम्या, शृतावदान, कूर्च,

प्राशित्रहरणे, अभ्रि, चात्र, षडवत्त, मूलेखात आदि) का प्रचलन समाप्त हो गया है। (ख) **रहन-सहन में परिवर्तन**—खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा आदि में परिवर्तन होने के कारण सम्बन्धित शब्दों का लोप हो जाता है। हिन्दी क्षेत्र में भात<भक्त; मालपूआ/पूआ<अपूप; सत्तू<सक्तुक शब्द तो प्रचलित रहे किन्तु मंथ (=धान को मथ कर बनाया गया सत्तू), यावक (=जौ से बनाया जानेवाला एक विशेष खाद्य), संयाव (=एक विशिष्ट प्रकार का हलवा/हलुआ) जैसे शब्द लुप्त हो गए। कुरीर (=मस्तक का एक विशेष आभूषण), हिरज्जयवर्तिनी (=कमर का एक विशेष आभूषण) जैसे शब्दों का प्रचलन भी समाप्त हो चुका है। (ग) **अश्लीलता**—सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं के आधार पर जिन शब्दों को समाज अश्लील मान लेता है, उन का प्रचलन समाप्त होने लगता है। हिन्दी क्षेत्र में मैथुन, शोच आदि से संबंधित अनेक शब्दों (लिंग, गुदा, योनि, सम्भोग, शौच आदि के लिए तथाकथित असभ्य और गँवार लोगों में बोले जानेवाले शब्दों) का परिनिष्ठित हिन्दी में लोप हो चुका है। शब्द-लोप के अन्य कारण, यथा—अन्धविश्वास, शब्द-घिसाव और पर्याय का परिनिष्ठित हिन्दी शब्द-लोप पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा है।

2. **नवीन शब्द-ग्रहण**—जीवित भाषाओं में एक दूसरी भाषा से शब्द आदान करने की प्रवृत्ति पाई जाती है, साथ ही आवश्यकतानुसार नवीन शब्द गढ़ने की प्रवृत्ति भी होती है। किसी भाषा में अन्य भाषा/भाषाओं के शब्दों के आगमन और नवीन शब्द निर्माण के कई कारण होते हैं— (क) **सभ्यता-विकास**—सभ्यता-विकास के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की नवीन वस्तुओं का निर्माण होता है जिन के लिए नये शब्दों का निर्माण करना पड़ता है या अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने पड़ते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हुए सभ्यता-विकास के कारण हिन्दी में अन्य भाषाओं से 'इडली, दोसा, नीरा, पोलीथिन, किलो, लीटर, स्मैक, रोबोट, स्पूतनिक' आदि शब्द ग्रहण हो कर प्रचलन में आ चुके हैं। वैज्ञानिक विकास के कारण सैकड़ों शब्दों का निर्माण किया गया है, यथा—निविदा, लेखापाल, वातानुकूलन, अग्निशास्त्र आदि। (ख) **सामाजिक चेतना-विकास**—राजनैतिक, सांस्कृतिक चेतना का विकास नवीन शब्द निर्माण और अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण की प्रवृत्ति को बढ़ाता है। परिनिष्ठित हिन्दी में 'डाकघर, पत्र मंजूषा, ज़िलाधीश, दूरभाष, दूरदर्शन, दूरसंचार, आकाशवाणी, गोली, कार्यालय, प्रदेश, अधिकारी' जैसे शब्द राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना-विकास के कारण 'पोस्ट ऑफ़िस, लैटर बॉक्स, कलक्टर, टेलीफ़ोन, टेलीविज़न, टेलीकम्यूनिकेशन, रेडियो, गोलकीपर, ऑफ़िस, सूबा, ऑफ़ीसर' को अपदस्थ कर रहे हैं। नवीन शब्द ग्रहण के अन्य कारणों (यथा—अन्य भाषा-सम्पर्क, अनुकरणात्मकता और साम्य) का परिनिष्ठित हिन्दी पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा है।

भाषा की प्रकृति और आवश्यकताओं से अपरिचित लोग प्रायः समाचार पत्रों, आकाशवाणी और दूरदर्शन आदि की भाषा पर क्लिष्टता का आरोप लगाते रहते हैं। ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रों के विषयों (यथा—परमाणु भौतिकी, उपग्रह सम्प्रेषण, कम्प्यूटर, इलेक्ट्रोनिक्स, राजनीति, विधि, अर्थशास्त्र, विज्ञान, समाजशास्त्र, कला आदि) की चर्चा के लिए **पारिभाषिक शब्दावली** की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता। सामान्य अँगरेज़ी जाननेवाले लोगों को भी प्रगतिशील बनने के लिए अनेक पारिभाषिक शब्दों को जानने की आवश्यकता पड़ती है और वे इन्हें जानने और समझने का प्रयत्न भी करते देखे जाते हैं, यथा—Cubism, Electronics, Fascism, Fusion, Gene, Homocide, Inflation, Ordnance, Optical, Polyandry आदि। हिन्दी में भी ऐसे नये पारिभाषिक शब्दों को जानने, समझने के लिए प्रयत्न करना होगा। विचार न जाननेवाले लोग शब्दों से माध्यम से प्रत्यय-बोध प्राप्ति की ओर बढ़ सकते हैं और विचार जाननेवाले लोग केवल नये शब्दों से परिचित होने की ओर बढ़ सकते हैं।

पारिभाषिक शब्द से व्यक्त होनेवाला विचार वक्ता और श्रोता की दृष्टि से सार्वदेशिक होता है। **पारिभाषिक शब्दावली में पर्याय की गुंजाइश न के बराबर है।** बोलचाल की भाषा में श्लेष 'अलंकार' है, किन्तु पारिभाषिक शब्दावली के लिए यह 'दोष' है। विषय की गहनता और विचारों की सम्बद्धता की दृष्टि से एक मूल शब्द से सम्बद्ध अनेक लगभग समानरूपी पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया जा सकता है, यथा—ऑक्सीजन, ऑक्साइड, डाइऑक्साइड, ऑक्सीजनेशन (एक मूल विचार से उद्भूत शब्द); -एट, -आइड से जुड़े विशेष अर्थ के सूचक शब्द, यथा—कार्बोनेट, नाइट्रेट, सल्फेट, हाइड्रेट; आक्साइड, सल्फ़ाइड।

पारिभाषिक शब्दावली-निर्माण के समय इन बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है— 1. भाषा में पूर्व प्रचलित पारिभाषिक शब्द को यथासम्भव उसी रूप और अर्थ में ग्रहण किया जाए 2. यथावश्यक अँगरेज़ी/अन्तरराष्ट्रीय शब्द उसी रूप और अर्थ में ग्रहण करते हुए स्व-भाषा की प्रकृति के अनुरूप अन्य शब्द-निर्माण का आधार बनाया जाए, यथा—ऑक्सीकृत, कार्बनीकरण, न्यूकलीय, लिग्नीभवन आदि 3. यथासम्भव भारतीय भाषाओं में प्रचलित पारिभाषिक शब्द भी ग्रहण किए जाएँ 4. संस्कृत भाषा के सहयोग से नये शब्द गढ़े जाएँ। 'अखिल भारतीय पारिभाषिक शब्दावली' की चर्चा/वकालत वे लोग ही करते हैं जो भिन्न-भिन्न भाषाओं की उच्चारण व्यवस्था, शब्द रचना व्यवस्था और वाक्य विन्यास व्यवस्था की भिन्नताओं में सुपरिचित नहीं हैं।

किसी भाषा में **नवीन शब्द ग्रहण के मुख्य दो स्रोत** माने जाते हैं— 1. नवीन शब्द निर्माण 2. शब्द आदान। 1. **नवीन शब्द निर्माण** के ये रूप हो सकते हैं— (क) **दो शब्दों के योग** (समास प्रक्रिया) से तीसरा शब्द बना लिया जाता है, यथा—

अक्ल+मन्द=अक्लमन्द ; अर्ज़ी+नवीस=अर्ज़ीनवीस ; जमा+बन्दी=जमाबन्दी; अजायब+घर=अजायबघर ; चिड़िया+ख़ाना=चिड़ियाख़ाना ; दल+बन्दी= दलबन्दी ; देश+निकाला=देशनिकाला ; रेल+गाड़ी=रेलगाड़ी ; रसोई+घर= रसोईघर ; पाव+रोटी=पावरोटी ; पाव+भाजी=पावभाजी (2) **व्यक्तिवाचक नामों के आधार पर गढ़े गये शब्द** भी परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा— सैंडो बनियान; एटलस साइकल; फ़िलिप्स रेडियो; सुर्ती; चीनी; मिस्री; बनारसी ठग आदि (ग) **सादृश्य के आधार पर गढ़े गये शब्द भी** परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचार पा चुके हैं, यथा—शहराती, घराती, फ़िल्माना, दाग़ना, लतियाना, बतियाना' क्रमशः 'देहाती, बराती, दिखाना' के सादृश्य पर गढ़े गये हैं (घ) **शब्द-संक्षिप्ति के रूप में गढ़े गए शब्द** भी परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा— इंका (इंदिरा कांग्रेस), भाजपा (भारतीय जनता पार्टी), भालोद (भारतीय लोक दल), जद (जनता दल), उ० प्र० (उत्तर प्रदेश), पाक (पाकिस्तान), कॉपी (कॉपी), बुक, लैब (लैबोरेटरी), एग्ज़ाम (एग्ज़ामिनेशन), साइकल (बाइसिकल), फ़ोन (टेलीफ़ोन), शाला (पाठशाला), एन० सी० सी० (नेशनल कैडेट कोर), ए० आई० आर० (ऑल इंडिया रेडियो), डी० एम० (डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट), दि० न० नि० (दिल्ली नगर निगम), एम० ए० (मास्टर ऑफ़ आर्ट्स) आदि। (ङ) **अनुवाद के आधार पर गढ़े गए शब्द** भी परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा—शुभ रात्रि (गुड नाइट/शब्बा खैर), शुभ प्रभात (गुड मॉर्निंग), कुल सचिव (रजिस्ट्रार), अकादमी (एकेडेमी), एकक (यूनिट), तदर्थ (एडहॉक), प्रवेशपत्र (एडमीशन कार्ड)।

2. **शब्द आदान** तीन प्रकार की भाषाओं से सम्भव है—(क) **देशी** तथा विदेशी आधुनिक **अन्य भाषाओं से** ग्रहण किए गए कुछ नवीन शब्द परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा— ऑफ़िस, कॉफ़ी, टिन, मटन, निब, पिन, अगस्त, दिसम्बर, मोटर, रन, क्रिकेट, इक़रार, क़ब्ज़ा, क़ुदरत, शौक़, अख़बार, ख़ामोश, दिमाग़, ग़रीब, आज़ादी, ज़रूरत, हाज़िरी, तारीफ़, फ़ासला, हफ़्ता, इडली, दोसा, नीरा, चिल्लर आदि। (ख) स्वदेशी **प्राचीन भाषा (संस्कृत) से** ग्रहण किए जा रहे (विशेषतः पारिभाषिक) कुछ नवीन शब्द हैं— स्वनिम, निर्वात, उपग्रह, अभिस्वीकृति, सारणी, वैकल्पिक, जैविक, लोकसभा, अभ्यावेदन, तैथिक, वार्षिकी, अतिक्रमण आदि। पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त सामान्य शब्दों के ग्रहण के समय हिन्दी ने एक विशेष नियम का पालन किया है—संस्कृत से लिए हुए अधिकतर शब्द प्रथमा विभक्ति को हटा कर ग्रहण किए गए हैं, यथा— चन्द्रमाः>चन्द्रमा, नभ, मन, यश आदि। कुछ शब्दों में विसर्ग की उपस्थिति का पता गृहीत व्युत्पन्न शब्दों से लगता है, यथा— पयोधर, मनोभाव, शिरच्छेद, शिरस्त्राण। 'मनोकामना' सादृश्य के आधार पर चल पड़ा है। (ग) **स्व बोलियों से** ग्रहण किए गए कुछ शब्द हैं—लेंहड़ा, ढुकना, हेटी, टंटा, झाँबी, लहवार, ठड्ढा आदि।

शब्द संकलन-प्रकार (कोश) के आधार पर हिन्दी के शब्द समूह कई रूपों (कोशों) में प्राप्त होते हैं, यथा— (क) **व्यक्ति कोश**—तुलसी कोश, सूर कोश, प्रसाद कोश आदि (ख) **पुस्तक कोश**—रामचरितमानस कोश ; सूरसागर कोश आदि (ग) **भाषा कोश**—ये कई प्रकार के होते हैं, यथा—शब्द कोश; पारिभाषिक कोश; पर्याय कोश; मुहावरा कोश; लोकोक्ति कोश; विश्वकोश आदि। हिन्दी में एक भाषीय, द्विभाषीय और त्रिभाषीय अनेक कोश उपलब्ध हैं, यथा— मानक कोश; प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश; बृहद् हिन्दी कोश; हिन्दी शब्दसागर; नालन्दा शब्द-कोश; भार्गव हिन्दी शब्दकोश; हिन्दी साहित्य कोश आदि।

हिन्दी भाषा के **शब्द समूह-वर्गीकरण के चार प्रमुख आधार** हैं—1. शब्द-व्युत्पत्ति 2. शब्द-अर्थ 3. शब्द-रचना 4. शब्द-रूपान्तरण। इन चारों पर क्रमशः अध्याय 10, 11, 12, 13 में प्रकाश डाला जाएगा।

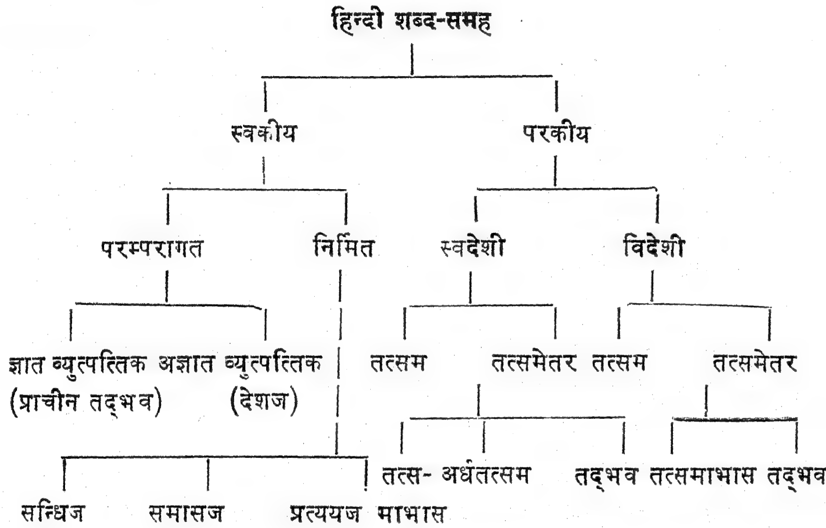
10

शब्द-व्युत्पत्ति

शब्द व्युत्पत्ति (=विशेष/विशिष्ट उत्पत्ति) के शास्त्र को संस्कृत में निरुक्त कहा गया है तथा अँगरेज़ी में Etymology कहा जाता है। 'गुरू' के व्याकरण का अनुकरण कर कई व्याकरणों में 'शब्द-रचना' को व्युत्पत्ति कहा गया है। यद्यपि किसी शब्द से दूसरा शब्द व्युत्पन्न किया जा सकता है, यथा—लड़का > लड़कपन, मीठा > मिठाई आदि, तथापि **शब्द-भाषा स्रोत** या **शब्द-इतिहास** की चर्चा का शास्त्र व्युत्पत्तिशास्त्र कहलाता है। इस आधार पर यहाँ शब्द-व्युत्पत्ति के अन्तर्गत हिन्दी शब्द-समूह के भाषा स्रोत/उद्गम या शब्द-इतिहास को सम्मिलित किया गया है। 'गुरू' ने हिन्दी व्याकरण के दूसरे भाग के तीसरे परिच्छेद में व्युत्पत्ति (पहला अध्याय) के बारे में कहा है "व्युत्पत्ति प्रकरण में केवल यौगिक शब्दों की रचना का विचार किया जाता है, रूढ़ शब्दों का नहीं। वे आगे लिखते हैं— "परन्तु 'रसोई' और 'घर' शब्दों की व्युत्पत्ति किन भाषाओं के किन शब्दों से हुई है यह बात व्याकरण विषय के बाहर की है।" इन दोनों वाक्यों में 'गुरू' व्युत्पत्ति शब्द का दो भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग कर रहे हैं।

किसी भी भाषा के समस्त शब्द-समूह को अपनापन की दृष्टि से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है— (1) स्वकीय (2) परकीय। स्वकीय शब्दों को पुनः दो वर्गों में बाँटा जा सकता है— 1. परम्परागत 2. निर्मित। परम्परागत शब्द दो प्रकार के होते हैं— (क) ज्ञात व्युत्पत्तिक (ख) अज्ञात व्युत्पत्तिक। ज्ञात व्युत्पत्तिक शब्दों को प्राचीन तद्भव कहा जाता है और अज्ञात व्युत्पत्तिक को देशज।

परकीय शब्दों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है— (1) स्वदेशी (2) विदेशी। दोनों वर्गों के ये शब्द दो प्रकार के हो सकते हैं— 1. तत्सम 2. तत्समेतर। तत्समेतर स्वदेशी शब्दों को पुन: तीन वर्गों में रखा जा सकता है— (क) तत्समाभास (ख) अर्ध तत्सम (ग) तद्भव। तत्समेतर विदेशी शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—(क) तत्समाभास (ख) तद्भव। आरेख में इस वर्गीकरण को इस प्रकार रखा जा सकता है—



व्याकरण की बहुत-सी पुस्तकों में व्युत्पत्ति/भाषा-स्रोत/शब्द-इतिहास/शब्द-उद्गम की दृष्टि से प्राय: चार प्रकार के शब्द लिखे गए हैं— 1. तत्सम 2. तद्भव 3. देशी/देशज 4. विदेशी। इस वर्गीकरण में 'देशी, तत्सम, तद्भव' शब्दों के बारे में परिभाषा या लक्षण की दृष्टि से सम्यक् विचार नहीं किया गया है। यहाँ ऊपर सुझाए गए वर्गीकरण के अनुसार हिन्दी शब्द-समूह पर व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्रकाश डाला जा रहा है।

स्वकीय शब्द—किसी व्यक्ति की धन-सम्पदा में उन समस्त वस्तुओं, ज़मीन-जायदाद, रुपया-पैसा आदि की गणना की जाती है जो उसे पुरखों से मिली है, उस ने अपने जीवन काल में स्वयं अर्जित की है और उस ने अपने साथी, रिश्तेदार आदि से उधार ले कर या किसी अन्य रूप में प्राप्त की है। किसी भाषा के शब्द-समूह में दो प्रकार के वे शब्द **स्वकीय शब्द** कहे जाएँगे जो उस भाषा को भाषा विकास की प्रक्रिया में पूर्ववर्ती भाषा से प्राप्त हुए हैं और जिन शब्दों को उस भाषा के जीवन-काल में गढ़ा गया है।

मार्ग, मृग, मेघ आदि 3. **बीसवीं सदी** में संस्कृत व्याकरण के आधार पर निर्मित **संस्कृत** शब्द, यथा—कटिबद्ध, जलवायु, नगरपालिका, निदेशक, पत्राचार, प्रभाग, प्राध्यापक, रेखाचित्र, लघुशंका, वायुयान, वाक्य विश्लेषण आदि 4. **संस्कृतेतर** भाषाओं से गृहीत संस्कृत शब्द, यथा— उपन्यास, कविराज, अभिभावक, अभ्यर्थना, वक्तता, गल्प, सन्देश, निर्भर, तत्त्वावधान, आपत्ति, सम्भ्रान्त, स्वप्निल, उर्मिल, धन्यवाद (बंगला); प्रगति, वाङ्मय (मराठी)।

हिन्दी में प्रयुक्त तथाकथित संस्कृत तत्सम शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय हैं। संज्ञा शब्द दो प्रकार के हैं— 1. **संस्कृत-प्रातिपदिक**, यथा—अस्थि, कुसुम, कृष्ण, दधि, देव, पत्र, पुष्प, पुस्तक, फल, बालक, मनुष्य, मित्र, राम, वृक्ष, जगत्; कन्या, निशा, वाला, भार्या, रमा, विद्या; अग्नि, ऋषि, कपि, कवि, पति, मति, मुनि, रवि, रुचि, वारि, विधि, पति, हरि; लक्ष्मी, नदी, सुधी, स्त्री; गुरु, जन्तु, धेनु, पशु, प्रभु, भानु, मधु, वस्तु, विष्णु, शत्रु, शिशु, साधु; चमू, भू, वधू, स्वयम्भू आदि 2. **संस्कृत-प्रथमा एकवचन**, यथा— आत्मा, करी, कर्ता, चर्म, जामाता, तपस्वी, दाता, दुहिता, धनवान्, नाग, नेता, पिता, पृथ्वी, ब्रह्मा, भ्राता, भगवान्, महिमा, माता, युवा, वणिक्, विद्वान्, राजा, सखा, सम्राट्, सीमा, स्वामी, हस्ती आदि। **सर्वनाम**—तव, मम। **विशेषण** (प्रातिपदिक), यथा—चिरन्तन, तीव्र, नव, नवीन, नूतन, पुरातन, श्वेत, सुन्दर आदि **क्रिया**—स्वीकार **अव्यय**—धिक्, प्रातः, पृथक्, शनैः, सहसा, सायं, नित्यम्।

बीसवीं शताब्दी में हिन्दी-उर्दू संघर्ष में हिन्दी के अनेक तद्भव शब्दों को तत्सम शब्दों में स्थानापन्न करना आरम्भ कर दिया था। 'धार्मिक, युगधर्म, कर्मनिष्ठ, कर्मचारी, कर्मठ, कर्मवाद' जैसे शब्दों का प्रयोग होने से 'धरम, करम' जैसे शब्दों का प्रचलन बन्द हो चला है। इन का स्थान 'धर्म, कर्म' ने लिया है। केवल मुहावरेदार प्रयोगों में (यथा—उस के तो करम ही फूट गए, करमजली, कुछ धरम-करम भी किया कर) में ही तद्भव शब्दों का प्रयोग बच रहा है। हिन्दी की भाँति अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसी प्रकार से तत्सम/**संस्कारित शब्दों** (Sanskritised words) का प्रचलन बढ़ा है।

ध्वनि तथा अर्थ-तत्समता की दृष्टि से हिन्दी में गृहीत केवल संस्कृत भाषा के ही नहीं वरन् अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं से गृहीत शब्दों पर विचार करना आवश्यक है। वास्तव में यह चिन्तन एवं वर्गीकरण विशेष शोध की आवश्यकता रखता है।

तत्समेतर शब्द—वे परकीय शब्द हैं जो किसी भाषा में तत्सम कोटि से इतर कोटि के होते हैं। (दे० तत्समाभास, अर्ध तत्सम और तद्भव शब्दों के विविध उदाहरण)।

1. ( ) का प्रयोग किसी शब्द के अर्थ/स्पष्टीकरण/विकल्प को सूचित करने के लिए किया जाता है, यथा—

उन की नीचता (छल-छिद्र) को तुम नहीं जानते।

2. नाटक में किए जानेवाले अभिनयादि की सूचना के लिए, यथा—

नल—(दुःखी हो कर, माथे पर हाथ रखते हुए) हे विधाता! तू ने मेरे दुर्भाग्य के साथ दमयन्ती के भाग्य को क्यों जोड़ दिया ?

3. विषय-विभाग सूचक अंकों/अक्षरों को प्रकट करने के लिए, यथा—

व्याकरण के तीन विभाग हैं—(1) ध्वनि विचार (2) शब्द विचार (3) वाक्य विचार।

4. प्रसंगवश आई हुई सामान्य बात को स्पष्ट करने के लिए, यथा—

कहा जाता है कि भूषण ने शिवा जी को यह पद अठारह बार सुनाया था (यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि भूषण वीर रस के प्रमुख कवि थे), शिवा जी ने भी प्रसन्न हो कर भूषण को बहुत पुरस्कार दिया था।

5. { } का प्रयोग सामान्यतः भाषावैज्ञानिक दृष्टि से रूपिम की सूचना के लिए किया जाता है, यथा—

{-ओं} /-ओं/, /-ओ/, /-ए/, /-एँ/, /-आँ/, /-०/

6. [ ] का प्रयोग लिखित वर्ण/अक्षर/शब्द/वाक्य के उच्चरित रूप को प्रकट करने के लिए किया जाता है, यथा—

उपन्यास [उपन्न्यास्], ल [ल्+अ]

(11) **लाघव चिह्न (०)** इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. कुल-नाम, पदवी या डिग्री आदि को संक्षेप में लिखने के लिए, यथा—

पं० जवाहरलाल नेहरू। मा० ताराचन्द। (पं० = पंडित ; मा० = मास्टर) डॉ० = डॉक्टर ; एम० ए० = मास्टर ऑफ़ आर्ट्स।

(12) **छूट सूचक चिह्न** (٨) इसे हंस पद/काक पद चिह्न भी कहते हैं। इस का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. लिखते समय भूल से छूट गए शब्द/अक्षर/वाक्यांश/वाक्य को प्रदर्शित करने के लिए, यथा—

अरे, मैं अपना बटुआ घर पर ही भूल आई। महिलाएँ स्वभावतः बहुत ही भावुक होती हैं।

(13) **लोप चिह्न** (-----/× × ×) इसे आपूर्ति सूचक चिह्न भी कहते हैं। इस चिह्न का प्रयोग अग्रलिखित स्थिति में होता है—

मार्ग, मृग, मेघ आदि 3. बीसवीं सदी में संस्कृत व्याकरण के आधार पर निर्मित संस्कृत शब्द, यथा—कटिबद्ध, जलवायु, नगरपालिका, निदेशक, पत्राचार, प्रभाग, प्राध्यापक, रेखाचित्र, लघुशंका, वायुयान, वाक्य विश्लेषण आदि 4. संस्कृतेतर भाषाओं से गृहीत संस्कृत शब्द, यथा— उपन्यास, कविराज, अभिभावक, अभ्यर्थना, वक्तृता, गल्प, सन्देश, निर्भर, तत्त्वावधान, आपत्ति, सम्भ्रान्त, स्वप्निल, उर्मिल, धन्यवाद (बंगला); प्रगति, वाङ्मय (मराठी)।

हिन्दी में प्रयुक्त तथाकथित संस्कृत तत्सम शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय हैं। संज्ञा शब्द दो प्रकार के हैं— 1. **संस्कृत-प्रातिपदिक**, यथा—अस्थि, कुसुम, कृष्ण, दधि, देव, पत्र, पुष्प, पुस्तक, फल, बालक, मनुष्य, मित्र, राम, वृक्ष, जगत्; कन्या, निशा, वाला, भार्या, रमा, विद्या; अग्नि, ऋषि, कपि, कवि, पति, मति, मुनि, रवि, रुचि, वारि, विधि, पति, हरि; लक्ष्मी, नदी, सुधी, स्त्री; गुरु, जन्तु, धेनु, पशु, प्रभु, भानु, मधु, वस्तु, विष्णु, शत्रु, शिशु, साधु; चमू, भू, वधू, स्वयम्भू आदि 2. **संस्कृत-प्रथमा एकवचन**, यथा— आत्मा, करी, कर्ता, चर्म, जामाता, तपस्वी, दाता, दुहिता, धनवान्, नाग, नेता, पिता, पृथ्वी, ब्रह्मा, भ्राता, भगवान्, महिमा, माता, युवा, वणिक्, विद्वान्, राजा, सखा, सम्राट्, सीमा, स्वामी, हस्ती आदि। **सर्वनाम**—तव, मम। **विशेषण** (प्रातिपदिक), यथा—चिरन्तन, तीव्र, नव, नवीन, नूतन, पुरातन, श्वेत, सुन्दर आदि **क्रिया**—स्वीकार **अव्यय**—धिक्, प्रातः, पृथक्, शनैः, सहसा, सायं, नित्यम्।

बीसवीं शताब्दी में हिन्दी-उर्दू संघर्ष में हिन्दी के अनेक तद्भव शब्दों को तत्सम शब्दों में स्थानापन्न करना आरम्भ कर दिया था। 'धार्मिक, युगधर्म, कर्मनिष्ठ, कर्मचारी, कर्मठ, कर्मवाद' जैसे शब्दों का प्रयोग होने से 'धरम, करम' जैसे शब्दों का प्रचलन बन्द हो चला है। इन का स्थान 'धर्म, कर्म' ने लिया है। केवल मुहावरेदार प्रयोगों में (यथा—उस के तो करम ही फूट गए, करमजली, कुछ धरम-करम भी किया कर) में ही तद्भव शब्दों का प्रयोग बच रहा है। हिन्दी की भाँति अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसी प्रकार से तत्सम/**संस्कारित शब्दों** (Sanskritised words) का प्रचलन बढ़ा है।

ध्वनि तथा अर्थ-तत्समता की दृष्टि से हिन्दी में गृहीत केवल संस्कृत भाषा के ही नहीं वरन् अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं से गृहीत शब्दों पर विचार करना आवश्यक है। वास्तव में यह चिन्तन एवं वर्गीकरण विशेष शोध की आवश्यकता रखता है।

तत्समेतर शब्द—वे परकीय शब्द हैं जो किसी भाषा में तत्सम कोटि से इतर कोटि के होते हैं। (दे० तत्समाभास, अर्ध तत्सम और तद्भव शब्दों के विविध उदाहरण)।

1. ( ) का प्रयोग किसी शब्द के अर्थ/स्पष्टीकरण/विकल्प को सूचित करने के लिए किया जाता है, यथा—

उन की नीचता (छल-छिद्र) को तुम नहीं जानते ।

2. नाटक में किए जानेवाले अभिनयादि की सूचना के लिए, यथा—

नल —(दु:खी हो कर, माथे पर हाथ रखते हुए) हे विधाता ! तू ने मेरे दुर्भाग्य के साथ दमयन्ती के भाग्य को क्यों जोड़ दिया ?

3. विषय-विभाग सूचक अंकों/अक्षरों को प्रकट करने के लिए, यथा—

व्याकरण के तीन विभाग हैं—(1) ध्वनि विचार (2) शब्द विचार (3) वाक्य विचार ।

4. प्रसंगवश आई हुई सामान्य बात को स्पष्ट करने के लिए, यथा—

कहा जाता है कि भूषण ने शिवा जी को यह पद अठारह बार सुनाया था (यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि भूषण वीर रस के प्रमुख कवि थे), शिवा जी ने भी प्रसन्न हो कर भूषण को बहुत पुरस्कार दिया था ।

5. { } का प्रयोग सामान्यतः भाषावैज्ञानिक दृष्टि से रूपिम की सूचना के लिए किया जाता है, यथा—

{ -ओं} /-ओं/, /-ओ/, /-ए/, /-एँ/, /-आँ/, /-०/

6. [ ] का प्रयोग लिखित वर्ण/अक्षर/शब्द/वाक्य के उच्चरित रूप को प्रकट करने के लिए किया जाता है, यथा—

उपन्यास [उपन्न्यास्], ल [ल्+अ]

(11) **लाघव चिह्न (०)** इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. कुल-नाम, पदवी या डिग्री आदि को संक्षेप में लिखने के लिए, यथा—

पं० जवाहरलाल नेहरू । मा० ताराचन्द । (पं० = पंडित ; मा० = मास्टर) डॉ० = डॉक्टर ; एम० ए० = मास्टर ऑफ़ आर्ट्स ।

(12) **छूट सूचक चिह्न** (٨) इसे हंस पद/काक पद चिह्न भी कहते हैं । इस का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. लिखते समय भूल से छूट गए शब्द/अक्षर/वाक्यांश/वाक्य को प्रदर्शित करने के लिए, यथा—

अरे, मैं अपना बटुआ घर पर ही भूल आई । महिलाएँ स्वभावतः बहुत ही भावुक होती हैं ।

(13) **लोप चिह्न** (- - - - -/ × × ×) इसे आपूर्ति सूचक चिह्न भी कहते हैं । इस चिह्न का प्रयोग अग्रलिखित स्थिति में होता है—

1. उद्धरण के मध्य जिस अंश को लेखक अनावश्यक समझ छोड़ देना चाहता है या किसी अतिरिक्त विषयवस्तु की ओर मात्र संकेत करना चाहता है, उस समय इन चिह्नों में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है, यथा—

लोगों का विश्वास है कि मानव के प्राणों से परे भी एक वस्तु है, और वह है—परमात्मा। × × × इस जगत् में जो कुछ हो रहा है, उसी की मर्ज़ी से हो रहा है।

व्यक्तिवाचक संज्ञा के उदाहरण हैं—कालिदास, दमयन्ती, नर्मदा, हिमालय, मैसूर, दिल्ली - - - -।

(14) **समानता सूचक चिह्न** (=) इसे तुल्यता सूचक चिह्न भी कहते हैं। इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. किन्हीं दो या अधिक तथ्यों की समानता का बराबर की सूचना देने के लिए, यथा—

हिम+आलय=हिमालय; तड़ित=आकाश की बिजली; 9×9=81

(15) **पुनरुक्तिसूचक चिह्न** (,,) इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. पूर्व लिखे गए अंश को पुनः शब्दों/अंकों में बिना लिखे उस की सूचना देने के लिए, यथा—

15 आदमी किसी काम को पूरा करते हैं = 30 दिन में

10 ,, उसी ,, ,, ,, ,, $= \frac{30 \times 15}{10}$,,

$= 45$,,

(16) **समाप्ति सूचक चिह्न** (—×—/—०—) इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में होता है—

1. किसी लेख, अध्याय, पुस्तक के लिखित अंश की समाप्ति पर, यथा—

—×— या —०—

टंकण तथा मुद्रण का लेखन (वर्तनी और विरामादि चिह्न) से गहरा सम्बन्ध है। देवनागरी के टंकण यन्त्रों से संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत, पाली, मराठी, नेपाली और हिन्दी का टंकण तो होता ही है, अन्य भारतीय भाषाओं/बोलियों तथा विदेशी भाषाओं के टंकण के लिए भी देवनागरी टंकण यन्त्र के उपयोग की आवश्यकता दिनोंदिन बढ़ने लगी है। कार्यालयों, व्यापार-संस्थाओं, विज्ञान और उच्च स्तरीय अध्ययन की दृष्टि से देवनागरी के टंकणयन्त्रों में इन वर्णों और चिह्नों को समायोजित करने का प्रयास करना अत्यावश्यक है। यदि टाइप राइटर में 'की' की संख्या बढ़ानी पड़े तो उस के संबंध में भी तकनीशियनों को सोचना चाहिए—

अ इ उ ऋ ए ा ि ी ु ू ृ ॆ ं ँ ़ : . ् क ख ग घ च छ ज ञ ट ठ ड ढ ण त थ
द ध न प फ ब भ म य र ् ॅ ल व श ष स ह क्ष ज्ञ त्र 1 2 3 4 5 6 7 8 9 0 / , - ?
" ( ) [ ] × % = √ £ ✡ ळ - 8 S

खण्ड II

रूप तथा शब्द-व्याख्या

1. शब्द समूह
2. शब्द-व्युत्पत्ति
3. शब्द-अर्थ
4. शब्द-रचना
5. शब्द-रूपान्तरण
6. संज्ञा
7. सर्वनाम
8. विशेषण
9. क्रिया
10. अव्यय
11. शब्द-प्रयोग सतर्कता
12. शब्द-भेदों की पद-व्याख्या

II रूप तथा शब्द-व्यवस्था

किसी भाषा के शब्द-भण्डार/शब्दकोश के शब्दों, उन के भेदों, उन की व्युत्पत्ति, उन की रचना (रूपान्तर) और उन के प्रयोग की चर्चा **रूप तथा शब्द-व्यवस्था** के अन्तर्गत की जाती है।

उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई **ध्वनि** मानी जाती है किन्तु **सार्थकता** की दृष्टि से **शब्द/रूप** को भाषा की लघुतम इकाई माना जाता है। भाषा की लघुतम सार्थक इकाई **रूप** है, तो भाषा की लघुतम सार्थक स्वतन्त्र इकाई **शब्द** है। संस्कृत भाषा में शब्द का मूल √शब्द् माना गया है। शब्द धातु का अर्थ है—ध्वनि करना। इस आधार पर शब्द का मूल अर्थ ध्वनि/आवाज़ है। 'निश्शब्द, निश्शब्दता' में शब्द का अर्थ 'आवाज़' है। दक्षिण भारत की भाषाओं में शब्द का यह अर्थ सामान्य भाषा व्यवहार में प्रचलित है। शब्दबेधी वाण में शब्द का अर्थ ध्वनि ही है। 'शब्द' के अन्य अर्थ हैं—भाषा, वचन, कथन या बात (पड़ोसी अफ़्रीकनों के शब्द तो मेरी समझ में ही नहीं आते); शब्दप्रमाण (सन्त कबीर या सन्त गुरुनानक के सबद <शब्द); रूप या पद की रचना का आधार (हिन्दी शब्दानुशासन); ध्वनियों या वर्णों से बना वह संकेत जो किसी भाव, कार्य या बात का बोधक होता है। इस अर्थ में शब्द सार्थक ध्वनि/ध्वनि समूह (लफ़्ज़, वर्ड) शब्द है। 'क म र आ' ध्वनियों या वर्णों में सार्थकता का अभाव है किन्तु इन्हीं ध्वनियों या वर्णों से बने शब्दों 'काम, मार, राम, आम, आक, कमर, कमरा' आदि में सार्थकता (अर्थ देने की क्षमता) है।

सार्थकता रहने पर भी शब्द में प्रयोग योग्यता का अभाव रहता है। शब्दकोश में सहस्रों शब्द होते हैं किन्तु उन का उसी रूप में प्रयोग नहीं किया जाता। शब्दकोश के शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करते समय उन में आवश्यक परिवर्तन करना पड़ता है, यथा—'चलना' शब्द वाक्य में प्रयोग के समय 'चलता, चलता है/था, चल रहा है/होगा, चला है/था, चलूँ, चलें, चले, चलेगा, चल कर, चलना, चलने' आदि। 'चलना' शब्द के ये अनेक रूप जिस प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं उसे **रूप व्यवस्था** कहा जाता है। इस प्रकार शब्दकोश के शब्द **शब्द** हैं, वाक्य में प्रयुक्त शब्द **पद** हैं।

जब कोई ध्वनि/ध्वनि-समूह व्यवहार (व्याकरणिक प्रयोग) में अर्थबोध कराने की क्षमतायुक्त होता है तब वह ध्वनि/ध्वनि समूह **शब्द** कहलाता है। इस प्रकार **शब्द भाषा की अर्थ स्तरीय लघुतम स्वतन्त्र इकाई है।** शब्द का एक स्पष्ट अर्थ होता है। यह अर्थ के स्तर पर लघुतम होता है क्योंकि अर्थ के स्तर पर शब्द से बड़ी इकाइयाँ हैं—पद, पदबन्ध, उपवाक्य, वाक्य। 'शब्द' ध्वनि स्तरीय लघुतम

II रूप तथा शब्द-व्यवस्था

किसी भाषा के शब्द-भण्डार/शब्दकोश के शब्दों, उन के भेदों, उन की व्युत्पत्ति, उन की रचना (रूपान्तर) और उन के प्रयोग की चर्चा **रूप तथा शब्द-व्यवस्था** के अन्तर्गत की जाती है।

उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई **ध्वनि** मानी जाती है किन्तु **सार्थकता** की दृष्टि से **शब्द/रूप** को भाषा की लघुतम इकाई माना जाता है। भाषा की लघुतम सार्थक इकाई **रूप** है, तो भाषा की लघुतम सार्थक स्वतन्त्र इकाई **शब्द** है। संस्कृत भाषा में शब्द का मूल √शब्द् माना गया है। शब्द धातु का अर्थ है—ध्वनि करना। इस आधार पर शब्द का मूल अर्थ ध्वनि/आवाज़ है। 'निश्शब्द, निश्शब्दता' में शब्द का अर्थ 'आवाज़' है। दक्षिण भारत की भाषाओं में शब्द का यह अर्थ सामान्य भाषा व्यवहार में प्रचलित है। शब्दबेधी वाण में शब्द का अर्थ ध्वनि ही है। 'शब्द' के अन्य अर्थ हैं—भाषा, वचन, कथन या बात (पड़ोसी अफ़्रीकनों के शब्द तो मेरी समझ में ही नहीं आते); शब्दप्रमाण (सन्त कबीर या सन्त गुरुनानक के सबद <शब्द); रूप या पद की रचना का आधार (हिन्दी शब्दानुशासन); ध्वनियों या वर्णों से बना वह संकेत जो किसी भाव, कार्य या बात का बोधक होता है। इस अर्थ में शब्द सार्थक ध्वनि/ध्वनि समूह (लफ़्ज़, वर्ड) शब्द है। 'क म र आ' ध्वनियों या वर्णों में सार्थकता का अभाव है किन्तु इन्हीं ध्वनियों या वर्णों से बने शब्दों 'काम, मार, राम, आम, आक, कमर, कमरा' आदि में सार्थकता (अर्थ देने की क्षमता) है।

सार्थकता रहने पर भी शब्द में प्रयोग योग्यता का अभाव रहता है। शब्दकोश में सहस्रों शब्द होते हैं किन्तु उन का उसी रूप में प्रयोग नहीं किया जाता। शब्दकोश के शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करते समय उन में आवश्यक परिवर्तन करना पड़ता है, यथा—'चलना' शब्द वाक्य में प्रयोग के समय 'चलता, चलता है/था, चल रहा है/होगा, चला है/था, चलूँ, चलें, चले, चलेगा, चल कर, चलना, चलने' आदि। 'चलना' शब्द के ये अनेक रूप जिस प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं उसे **रूप व्यवस्था** कहा जाता है। इस प्रकार शब्दकोश के शब्द **शब्द** हैं, वाक्य में प्रयुक्त शब्द **पद** हैं।

जब कोई ध्वनि/ध्वनि-समूह व्यवहार (व्याकरणिक प्रयोग) में अर्थबोध कराने की क्षमतायुक्त होता है तब वह ध्वनि/ध्वनि समूह **शब्द** कहलाता है। इस प्रकार **शब्द भाषा की अर्थ स्तरीय लघुतम स्वतन्त्र इकाई है।** शब्द का एक स्पष्ट अर्थ होता है। यह अर्थ के स्तर पर लघुतम होता है क्योंकि अर्थ के स्तर पर शब्द से बड़ी इकाइयाँ हैं—पद, पदबन्ध, उपवाक्य, वाक्य। 'शब्द' ध्वनि स्तरीय लघुतम

इकाई नहीं है—क्योंकि एक शब्द में एक ध्वनि भी हो सकती है (यथा—'तू आ' में 'आ') और एक से अधिक ध्वनियाँ भी (यथा—लड़का आया)। शब्द अर्थ स्तरीय स्वतन्त्र इकाई है क्योंकि 'प्रबलता' के 'बल' में जुड़े प्र- (उपसर्ग), -ता (प्रत्यय) 'बल' शब्द के अभाव में अर्थहीन हैं। 'बल' को अर्थ व्यक्त करने के लिए किसी अन्य शब्द या शब्दांश की आवश्यकता नहीं है।

एक समय पर एक शब्द से सामान्यतः एक ही भावांश/विचारांश प्रकट होता है। पूर्ण भाव/विचार को व्यक्त करने के लिए एक से अधिक शब्दों/पदों का उपयोग करना पड़ता है, यथा—गाय आई (दो शब्द/पद); रेलगाड़ी धीरे-धीरे जा रही थी (छह शब्द/पद)। एकल ध्वनि से किसी प्राणी, पदार्थ, गुण या उन के पारस्परिक सम्बन्ध का बोध नहीं होता किन्तु एकाधिक ध्वनियों का व्यवस्थित योग कोई-न-कोई अर्थ बोध कराता है, यथा—र ए ल ग आ ड़ ई (एकल ध्वनियाँ), रेलगाड़ी (शब्द)। कभी-कभी व्याकरणिक दृष्टि से एकल ध्वनि को भी शब्द कहा जाता है, यथा—'आ, ओ, ए, ऐ' मनोवेगबोधक शब्द हैं।

भाषा के सब से छोटे सार्थक खंड को **रूप** कहते हैं। रूप शब्द-निर्माण का आधार है। व्याकरण में व्यक्त उपसर्ग, प्रत्यय 'रूप' ही हैं। प्रत्येक भाषा के सभी सार्थक न्यूनतम खंड उस भाषा के रूप (morph) होते हैं। रूपों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है :—1. **स्वतन्त्र/मुक्त रूप** (Free morph) इन्हें 'शब्द' भी कहते हैं 2. **बद्ध रूप** (Bound morph), यथा—-ए (घोड़े), -ता (मनुष्यता)। प्रकार्य की दृष्टि से समान सभी रूप एक रूपिम के **सहरूप/समरूप/संरूप** (Allomorph) कहलाते हैं, यथा—हिन्दी में संज्ञा बहुवचन के रूपिम {-ओं} के सहरूप हैं—1. /-ओं/, सपरसर्ग शब्दों में, 2. /-ओ/ सभी संबोधन में, 3. /-ए/ आकारात पुं० ऋजु रूप में, 4./ -एँ इ/ई/ इयान्त के अतिरिक्त) सभी स्त्री० ऋजु रूप में, 5. /-आँ/ इ/ई/इयान्त स्त्री० ऋजु रूप में, 6. /०/ सभी पु० ऋजु रूप में। समान रूपों में अधिक प्रचलित/आवृत्ति युक्त/प्रमुख एक रूप को **रूपिम** मान लिया जाता है। इस प्रकार एक या एकाधिक संरूपों का प्रतिनिधित्व करनेवाला रूप '**रूपिम**' कहलाता है। प्रकार्य के आधार पर 'रूप, संरूप, रूपिम, शब्द, पद' नाम दिए गए हैं।

भाषा-व्यवहार (वाक्य) में शब्दों की स्थिति पदों के रूप में दो तत्त्वों से संगुफित मिलती है—1. प्रकृति तत्त्व 2. प्रत्यय तत्त्व। भाषा के उन आधारभूत अंगों (शब्दों) को **प्रकृति तत्त्व** कहा जाता है जिन से विभिन्न वस्तुओं, भावों-विचारों, क्रिया-व्यापारों, गुणों आदि के अर्थ का बोध होता है। मेज़, जुदाई, दौड़, मीठा प्रकृति तत्त्व के सूचक हैं। प्रकृति तत्त्व से भिन्न जिन शब्दों/शब्दांशों में वस्तुओं, भावों-विचारों, क्रिया-व्यापारों, गुणों आदि के अर्थ-बोध की स्वतन्त्र सामर्थ्य नहीं होती, उन गौण अंगों (शब्दों/शब्दांशों) को **प्रत्यय तत्त्व** कहा जाता है। '-ओं, -ता, वि-, ही, ने' आदि प्रत्यय तत्त्व के सूचक हैं। प्रत्यय तत्त्वों की सार्थकता प्रकृति

तत्त्वों के साथ जुड़ कर ही प्रत्यक्ष या परिलक्षित होती है। प्रकृति तत्त्व आश्रयी और प्रत्यय तत्त्व आश्रित होते हैं। आश्रयी का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है किन्तु आश्रित का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता।

प्रकृति तत्त्व धातु, प्रातिपदिक तथा पद के रूप में मिलते हैं। क्रियार्थक तत्त्व **धातु** कहा जाता है, यथा—√चल, √सो, √खा, √पी आदि। सत्त्वबोधक तत्त्व **प्रातिपदिक** कहा जाता है; यथा—घर, आम, मीठा आदि। विभक्तियुक्त/परसर्गयुक्त शब्द **पद** कहा जाता है, यथा—मैदान में, लड़कों को आदि।

प्रत्यय-योजन प्रक्रिया की दृष्टि से प्रकृति तत्त्वों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है— 1. मूल प्रकृति 2. व्युत्पन्न प्रकृति 3. पद प्रकृति। वे चरम रूप (शब्द) जिन का अर्थ की दृष्टि से विभाजन नहीं हो सकता **मूल प्रकृति** कहलाते हैं, यथा—बाज़ार, घर, मेज़, श्याम आदि सत्त्व बोधक शब्द; खा, पी, सो, जा क्रियार्थक शब्द। मूल प्रकृति के दो भेद हैं—(क) **मूल धातु** वे क्रियार्थक चरम रूप हैं जो अन्य रूपों से व्युत्पन्न नहीं होते, यथा—चल, कर, सो। (ख) **मूल प्रातिपदिक** वे सत्त्व प्रधान चरम रूप हैं जो अन्य रूपों से व्युत्पन्न नहीं होते, यथा—फ़र्श, पुस्तक, जल, मकान। वे रूप (शब्द) जो मूल प्रकृति या व्युत्पन्न प्रकृति से व्युत्पन्न होते हैं **व्युत्पन्न प्रकृति** कहलाते हैं, यथा—मूल प्रकृति 'चमक, लचीला' से व्युत्पन्न 'व्युत्पन्न प्रकृति'—चमकीला, लचीलापन। व्युत्पन्न प्रकृति 'रोज़गार' (रोज़ + -गार) से व्युत्पन्न 'व्युत्पन्न प्रकृति'—बेरोज़गार। इस से व्युत्पन्न 'व्युत्पन्न प्रकृति'—बेरोज़गारी। व्युत्पन्न प्रकृति के दो भेद हैं—(क) व्युत्पन्न धातु (ख) व्युत्पन्न प्रातिपदिक। **व्युत्पन्न धातु के अन्तर्गत** 'नामधातु, सकर्मक धातु, प्रेरणार्थक धातु' की गणना की जाती है। **व्युत्पन्न प्रातिपदिक के अन्तर्गत** 'संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय' के प्रातिपदिकों की गणना की जाती है। ये प्रातिपदिक 'मूल धातु, मूल प्रातिपदिक व्युत्पन्न धातु, व्युत्पन्न प्रातिपदिक से व्युत्पन्न होते हैं। वाक्य में प्रयोज्य शब्द-रूप **पद प्रकृति** कहलाते हैं। पद की रचना के आधार हैं— 1. मूल धातु 2. मूल प्रातिपदिक 3. व्युत्पन्न धातु 4. व्युत्पन्न प्रातिपदिक; यथा—मैदान में खेल (मूल प्रातिपदिक + मूल धातु); हलवाई को बुलवाऊँ (व्युत्पन्न प्रातिपदिक + व्युत्पन्न धातु)। पद प्रकृति के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय पद की गणना की जाती है।

भाषा में प्रयुक्त उपसर्ग (प्र-, आ- — प्रबल, आचार), पर प्रत्यय (-ई, -हट, —चढ़ाई, अकुलाहट), कारक-चिह्न (ने, को), निपात (ही, तो) का अकेले में कोई अर्थ बोध न होने के कारण इन्हें स्वतन्त्र शब्द नहीं कहा जाता। वे शब्दांश या **बद्ध शब्द** कहे जाते हैं। 'हम, हमारा, विघ्न, नाशक, विघ्ननाशक' अलग-अलग 5 शब्द हैं जो मूलतः तीन शब्द (हम, विघ्न, नाश) हैं। जिन प्रत्ययों के पश्चात् दूसरे प्रत्यय नहीं जोड़े जा सकते उन्हें **चरम प्रत्यय/परसर्ग** (विश्लिष्ट विभक्ति भी) कहा

जाता है, यथा—'लकड़हारों ने' में लकड़ी>लकड़+ -हारा+ -ओं के बाद आनेवाले 'ने' के पश्चात् कोई अन्य प्रत्यय नहीं जुड़ सकता। 'ने' चरम प्रत्यय जुड़ने से पूर्व का शब्द 'लकड़हारा' मूल शब्द है, जिस में वाक्य प्रयोज्यार्थ '-ओं' विकारसूचक प्रत्यय जोड़ा गया है। इस प्रकार लकड़हारा' मूल शब्द और 'लकड़हारों' पद है। 'लकड़हारों ने' को **पदबन्ध** या **वाक्यांश** कहा जाता है।

संस्कृत-व्याकरण के अनुसार **विभक्ति रहित** शब्द 'शब्द' है और **विभक्ति सहित** शब्द 'पद' है। शब्द और पद का भेदक तत्त्व विभक्ति/चरम प्रत्यय माना गया है। संस्कृत भाषा की संश्लेषणात्मक प्रकृति के कारण कारक विभक्तियाँ मूल शब्द में जोड़ी जाती हैं जबकि हिन्दी भाषा की विश्लेषणात्मक प्रकृति के कारण कारक-चिह्न/परसर्ग मूल शब्द से सटा कर नहीं रखे जाते। विभक्ति-योग से शब्दों में **प्रयोग योग्यता** आती है, अर्थात् उन्हें परस्पर अन्वय-आधार मिल जाता है। पाणिनि ने इसी बात को एक सूत्र में इस प्रकार स्पष्ट किया है—'सुप्तिङन्तं पदम्' अर्थात् सुप् (=संज्ञा/नाम-विभक्तियाँ), तिङ् (=क्रिया-विभक्तियाँ) के योग से पद-रचना होती है। बिना पद बने शब्दों का वाक्य प्रयोग नहीं हो सकता। अँगरेज़ी में 'पद' की संकल्पना न होने के कारण उस के लिए किसी पारिभाषिक शब्द का प्रयोग नहीं होता। 'पद' को अँगरेज़ी में A word in the sentence कहा जा सकता है। पद-रचना के लिए मूल शब्द/अर्थ तत्त्व/प्रकृति और रूपान्तरक/रचना तत्त्व/प्रत्यय की आवश्यकता होती है। (पद-रचना के संबंध में शब्द-रूपान्तरण अध्याय 13 में विस्तार से लिखा जाएगा)।

9
शब्द समूह

किसी भाषा में प्रयुक्त होनेवाले समस्त (सक्रिय, निष्क्रिय) शब्दों के समूह/भंडार को उस भाषा का **शब्द-समूह** (Vocabulary) कहा जाता है। शब्द समूह को 'शब्द भंडार/शब्द कोश' भी कहा जाता है। किसी जीवित भाषा के समस्त शब्द समूह की गणना करना या सही-सही अनुमान लगाना सम्भव नहीं है क्योंकि जीवित भाषा में अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की प्रक्रिया निरन्तर ज़ारी रहती है और आवश्यकतानुसार नये शब्दों का गढ़ना भी ज़ारी रहता है। मृत भाषाओं के शब्द-समूह की गणना उपलब्ध सामग्री के आधार पर अवश्य की जा सकती हैं।

मोनियर विलियम्स के अनुसार संस्कृत में लगभग 125000 शब्द (मूल शब्द) होंगे। वर्तमान अँगरेज़ी में लगभग 560000 शब्द हो सकते हैं। बृहत् हिन्दी कोश के आधार पर हिन्दी में लगभग 150000 शब्द प्रचलित हैं। भाषा की भाँति ही प्रत्येक ग्रन्थ या प्रत्येक व्यक्ति का भी शब्द समूह होता है। अपढ़ लोगों का शब्द समूह प्रायः 500-800 के मध्य हुआ करता है। पढ़े-लिखे लोगों का शब्द समूह 1500-80000 के मध्य हुआ करता है। जिस प्रकार बचपन से मृत्यु के निकट तक व्यक्तियों के शब्द समूह में परिवर्तन होता रहता है, उसी प्रकार जीवित भाषाओं के शब्द समूह में भी परिवर्तन होता रहता है। भाषाओं के **शब्द समूह में परिवर्तन** के दो मुख्य आधार हैं— 1. प्राचीन शब्दों का लोप 2. नवीन शब्दों का ग्रहण।

1. **प्राचीन शब्द-लोपन** के कई कारण होते हैं, जैसे—(क) **रीति-रिवाजों का लोप**—जिन रीति/रिवाज़ों या कर्मों का समाज से लोप हो जाता है, उन से संबंधित परम्परागत अनेक शब्दों का लोप हो जाता है। हिन्दी क्षेत्र में प्राचीनकालीन यज्ञ परम्परा के लोप के कारण कई शब्दों (जैसे— स्रुच, शम्या, शृतावदान, कूर्च,

प्राशित्रहरणे, अभ्रि, चात्र, षडवत्त, मूलेखात आदि) का प्रचलन समाप्त हो गया है। (ख) **रहन-सहन में परिवर्तन**—खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा आदि में परिवर्तन होने के कारण सम्बन्धित शब्दों का लोप हो जाता है। हिन्दी क्षेत्र में भात<भक्त; मालपूआ/पूआ<अपूप; सत्तू<सक्तुक शब्द तो प्रचलित रहे किन्तु मंथ (=धान को मथ कर बनाया गया सत्तू), यावक (=जौ से बनाया जानेवाला एक विशेष खाद्य), संयाव (=एक विशिष्ट प्रकार का हलवा/हलुआ) जैसे शब्द लुप्त हो गए। कुरीर (=मस्तक का एक विशेष आभूषण), हिरज्जयवर्तिनी (=कमर का एक विशेष आभूषण) जैसे शब्दों का प्रचलन भी समाप्त हो चुका है। (ग) **अश्लीलता**—सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं के आधार पर जिन शब्दों को समाज अश्लील मान लेता है, उन का प्रचलन समाप्त होने लगता है। हिन्दी क्षेत्र में मैथुन, शोच आदि से संबंधित अनेक शब्दों (लिंग, गुदा, योनि, सम्भोग, शौच आदि के लिए तथाकथित असभ्य और गँवार लोगों में बोले जानेवाले शब्दों) का परिनिष्ठित हिन्दी में लोप हो चुका है। शब्द-लोप के अन्य कारण, यथा—अन्धविश्वास, शब्द-घिसाव और पर्याय का परिनिष्ठित हिन्दी शब्द-लोप पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा है।

2. **नवीन शब्द-ग्रहण**—जीवित भाषाओं में एक दूसरी भाषा से शब्द आदान करने की प्रवृत्ति पाई जाती है, साथ ही आवश्यकतानुसार नवीन शब्द गढ़ने की प्रवृत्ति भी होती है। किसी भाषा में अन्य भाषा/भाषाओं के शब्दों के आगमन और नवीन शब्द निर्माण के कई कारण होते हैं— (क) **सभ्यता-विकास**—सभ्यता-विकास के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की नवीन वस्तुओं का निर्माण होता है जिन के लिए नये शब्दों का निर्माण करना पड़ता है या अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने पड़ते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हुए सभ्यता-विकास के कारण हिन्दी में अन्य भाषाओं से 'इडली, दोसा, नीरा, पोलीथिन, किलो, लीटर, स्नैक, रोबोट, स्पूतनिक' आदि शब्द ग्रहण हो कर प्रचलन में आ चुके हैं। वैज्ञानिक विकास के कारण सैकड़ों शब्दों का निर्माण किया गया है, यथा—निविदा, लेखापाल, वातानुकूलन, अग्निशास्त्र आदि। (ख) **सामाजिक चेतना-विकास**—राजनैतिक, सांस्कृतिक चेतना का विकास नवीन शब्द निर्माण और अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण की प्रवृत्ति को बढ़ाता है। परिनिष्ठित हिन्दी में 'डाकघर, पत्र मंजूषा, ज़िलाधीश, दूरभाष, दूरदर्शन, दूरसंचार, आकाशवाणी, गोली, कार्यालय, प्रदेश, अधिकारी' जैसे शब्द राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना-विकास के कारण 'पोस्ट ऑफ़िस, लैटर बॉक्स, कलक्टर, टेलीफ़ोन, टेलीविज़न, टेलीकम्यूनिकेशन, रेडियो, गोलकीपर, ऑफ़िस, सूबा, ऑफ़ीसर' को अपदस्थ कर रहे हैं। नवीन शब्द ग्रहण के अन्य कारणों (यथा—अन्य भाषा-सम्पर्क, अनुकरणात्मकता और साम्य) का परिनिष्ठित हिन्दी पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा है।

भाषा की प्रकृति और आवश्यकताओं से अपरिचित लोग प्रायः समाचार पत्रों, आकाशवाणी और दूरदर्शन आदि की भाषा पर क्लिष्टता का आरोप लगाते रहते हैं। ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रों के विषयों (यथा—परमाणु भौतिकी, उपग्रह सम्प्रेषण, कम्प्यूटर, इलेक्ट्रोनिक्स, राजनीति, विधि, अर्थशास्त्र, विज्ञान, समाजशास्त्र, कला आदि) की चर्चा के लिए **पारिभाषिक शब्दावली** की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता। सामान्य अँगरेज़ी जाननेवाले लोगों को भी प्रगतिशील बनने के लिए अनेक पारिभाषिक शब्दों को जानने की आवश्यकता पड़ती है और वे इन्हें जानने और समझने का प्रयत्न भी करते देखे जाते हैं, यथा—Cubism, Electronics, Fascism, Fusion, Gene, Homocide, Inflation, Ordnance, Optical, Polyandry आदि। हिन्दी में भी ऐसे नये पारिभाषिक शब्दों को जानने, समझने के लिए प्रयत्न करना होगा। विचार न जाननेवाले लोग शब्दों से माध्यम से प्रत्यय-बोध प्राप्ति की ओर बढ़ सकते हैं और विचार जाननेवाले लोग केवल नये शब्दों से परिचित होने की ओर बढ़ सकते हैं।

पारिभाषिक शब्द से व्यक्त होनेवाला विचार वक्ता और श्रोता की दृष्टि से सार्वदेशिक होता है। **पारिभाषिक शब्दावली में पर्याय की गुंजाइश न के बराबर है।** बोलचाल की भाषा में श्लेष 'अलंकार' है, किन्तु पारिभाषिक शब्दावली के लिए यह 'दोष' है। विषय की गहनता और विचारों की सम्बद्धता की दृष्टि से एक मूल शब्द से सम्बद्ध अनेक लगभग समानरूपी पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया जा सकता है, यथा—ऑक्सीजन, ऑक्साइड, डाइऑक्साइड, ऑक्सीजनेशन (एक मूल विचार से उद्भूत शब्द); -एट, -आइड से जुड़े विशेष अर्थ के सूचक शब्द, यथा—कार्बोनेट, नाइट्रेट, सल्फेट, हाइड्रेट; आक्साइड, सल्फाइड।

पारिभाषिक शब्दावली-निर्माण के समय इन बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है— 1. भाषा में पूर्व प्रचलित पारिभाषिक शब्द को यथासम्भव उसी रूप और अर्थ में ग्रहण किया जाए 2. यथावश्यक अँगरेज़ी/अन्तरराष्ट्रीय शब्द उसी रूप और अर्थ में ग्रहण करते हुए स्व-भाषा की प्रकृति के अनुरूप अन्य शब्द-निर्माण का आधार बनाया जाए, यथा—ऑक्सीकृत, कार्बनीकरण, न्यूकलीय, लिग्नीभवन आदि 3. यथासम्भव भारतीय भाषाओं में प्रचलित पारिभाषिक शब्द भी ग्रहण किए जाएँ 4. संस्कृत भाषा के सहयोग से नये शब्द गढ़े जाएँ। 'अखिल भारतीय पारिभाषिक शब्दावली' की चर्चा/वकालत वे लोग ही करते हैं जो भिन्न-भिन्न भाषाओं की उच्चारण व्यवस्था, शब्द रचना व्यवस्था और वाक्य विन्यास व्यवस्था की भिन्नताओं में सुपरिचित नहीं हैं।

किसी भाषा में **नवीन शब्द ग्रहण के मुख्य दो स्रोत** माने जाते हैं— 1. नवीन शब्द निर्माण 2. शब्द आदान। 1. **नवीन शब्द निर्माण** के ये रूप हो सकते हैं— (क) **दो शब्दों के योग** (समास प्रक्रिया) से तीसरा शब्द बना लिया जाता है, यथा—

अक्ल+मन्द=अक्लमन्द ; अर्ज़ी+नवीस=अर्ज़ीनवीस ; जमा+बन्दी=जमाबन्दी; अजायब+घर=अजायबघर ; चिड़िया+ख़ाना=चिड़ियाख़ाना ; दल+बन्दी=दलबन्दी ; देश+निकाला=देशनिकाला ; रेल+गाड़ी=रेलगाड़ी ; रसोई+घर=रसोईघर ; पाव+रोटी=पावरोटी ; पाव+भाजी=पावभाजी (2) **व्यक्तिवाचक नामों के आधार पर गढ़े गये शब्द** भी परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा— सैंडो बनियान; एटलस साइकल; फ़िलिप्स रेडियो; सुर्ती; चीनी; मिस्री; बनारसी ठग आदि (ग) **सादृश्य के आधार पर गढ़े गये शब्द भी** परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचार पा चुके हैं, यथा—शहराती, घराती, फ़िल्माना, दाग़ना, लतियाना, बतियाना' क्रमशः 'देहाती, बराती, दिखाना' के सादृश्य पर गढ़े गये हैं (घ) **शब्द-संक्षिप्ति के रूप में गढ़े गए शब्द** भी परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा— इंका (इंदिरा कांग्रेस), भाजपा (भारतीय जनता पार्टी), भालोद (भारतीय लोक दल), जद (जनता दल), उ० प्र० (उत्तर प्रदेश), पाक (पाकिस्तान), कॉपी (कॉपी), बुक, लैब (लैबोरेटरी), एग्ज़ाम (एग्ज़ामिनेशन), साइकल (बाइसिकल), फ़ोन (टेलीफ़ोन), शाला (पाठशाला), एन० सी० सी० (नेशनल कैडेट कोर), ए० आई० आर० (ऑल इंडिया रेडियो), डी० एम० (डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट), दि० न० नि० (दिल्ली नगर निगम), एम० ए० (मास्टर ऑफ़ आर्ट्स) आदि। (ङ) **अनुवाद के आधार पर गढ़े गए शब्द** भी परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा—शुभ रात्रि (गुड नाइट/शब्बा ख़ैर), शुभ प्रभात (गुड मॉर्निंग), कुल सचिव (रजिस्ट्रार), अकादमी (एकेडेमी), एकक (यूनिट), तदर्थ (एडहॉक), प्रवेशपत्र (एडमीशन कार्ड)।

2. **शब्द आदान** तीन प्रकार की भाषाओं से सम्भव है—(क) देशी तथा विदेशी आधुनिक **अन्य भाषाओं से** ग्रहण किए गए कुछ नवीन शब्द परिनिष्ठित हिन्दी में प्रचलित हैं, यथा— ऑफ़िस, कॉफ़ी, टिन, मटन, निब, पिन, अगस्त, दिसम्बर, मोटर, रन, क्रिकेट, इक़रार, क़ब्ज़ा, क़ुदरत, शौक़, अख़बार, ख़ामोश, दिमाग़, ग़रीब, आज़ादी, ज़रूरत, हाज़िरी, तारीफ़, फ़ासला, हफ़्ता, इडली, दोसा, नीरा, चिल्लर आदि। (ख) स्वदेशी **प्राचीन भाषा (संस्कृत) से** ग्रहण किए जा रहे (विशेषतः पारिभाषिक) कुछ नवीन शब्द हैं— स्वनिम, निर्वात, उपग्रह, अभिस्वीकृति, सारणी, वैकल्पिक, जैविक, लोकसभा, अभ्यावेदन, तैथिक, वार्षिकी, अतिक्रमण आदि। पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त सामान्य शब्दों के ग्रहण के समय हिन्दी ने एक विशेष नियम का पालन किया है—संस्कृत से लिए हुए अधिकतर शब्द प्रथमा विभक्ति को हटा कर ग्रहण किए गए हैं, यथा— चन्द्रमाः>चन्द्रमा, नभ, मन, यश आदि। कुछ शब्दों में विसर्ग की उपस्थिति का पता गृहीत व्युत्पन्न शब्दों से लगता है, यथा—पयोधर, मनोभाव, शिरच्छेद, शिरस्त्राण। 'मनोकामना' सादृश्य के आधार पर चल पड़ा है। (ग) **स्व बोलियों से** ग्रहण किए गए कुछ शब्द हैं—लेंहड़ा, ढुकना, हेटी, टंटा, झाँबी, लहवार, ठड्ढा आदि।

शब्द संकलन-प्रकार (कोश) के आधार पर हिन्दी के शब्द समूह कई रूपों (कोशों) में प्राप्त होते हैं, यथा— (क) **व्यक्ति कोश**—तुलसी कोश, सूर कोश, प्रसाद कोश आदि (ख) **पुस्तक कोश**—रामचरितमानस कोश ; सूरसागर कोश आदि (ग) **भाषा कोश**—ये कई प्रकार के होते हैं, यथा—शब्द कोश; पारिभाषिक कोश; पर्याय कोश; मुहावरा कोश; लोकोक्ति कोश; विश्वकोश आदि। हिन्दी में एक भाषीय, द्विभाषीय और त्रिभाषीय अनेक कोश उपलब्ध हैं, यथा— मानक कोश; प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश; बृहद् हिन्दी कोश; हिन्दी शब्दसागर; नालन्दा शब्द-कोश; भार्गव हिन्दी शब्दकोश; हिन्दी साहित्य कोश आदि।

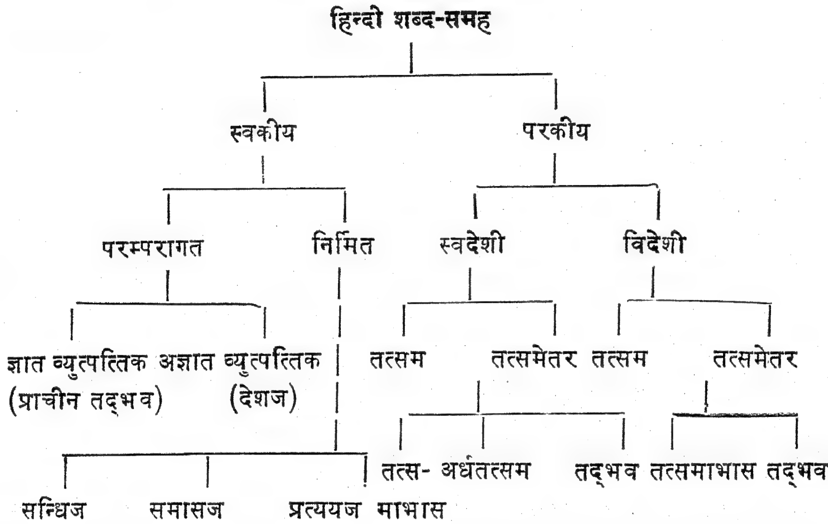
हिन्दी भाषा के **शब्द समूह-वर्गीकरण के चार प्रमुख आधार** हैं—1. शब्द-व्युत्पत्ति 2. शब्द-अर्थ 3. शब्द-रचना 4. शब्द-रूपान्तरण। इन चारों पर क्रमशः अध्याय 10, 11, 12, 13 में प्रकाश डाला जाएगा।

10
शब्द-व्युत्पत्ति

शब्द व्युत्पत्ति (=विशेष/विशिष्ट उत्पत्ति) के शास्त्र को संस्कृत में निरुक्त कहा गया है तथा अँगरेज़ी में Etymology कहा जाता है। 'गुरू' के व्याकरण का अनुकरण कर कई व्याकरणों में 'शब्द-रचना' को व्युत्पत्ति कहा गया है। यद्यपि किसी शब्द से दूसरा शब्द व्युत्पन्न किया जा सकता है, यथा—लड़का>लड़कपन, मीठा>मिठाई आदि, तथापि **शब्द-भाषा स्रोत** या **शब्द-इतिहास** की चर्चा का शास्त्र व्युत्पत्तिशास्त्र कहलाता है। इस आधार पर यहाँ शब्द-व्युत्पत्ति के अन्तर्गत हिन्दी शब्द-समूह के भाषा स्रोत/उद्गम या शब्द-इतिहास को सम्मिलित किया गया है। 'गुरू' ने हिन्दी व्याकरण के दूसरे भाग के तीसरे परिच्छेद में व्युत्पत्ति (पहला अध्याय) के बारे में कहा है "व्युत्पत्ति प्रकरण में केवल यौगिक शब्दों की रचना का विचार किया जाता है, रूढ़ शब्दों का नहीं। वे आगे लिखते हैं— "परन्तु 'रसोई' और 'घर' शब्दों की व्युत्पत्ति किन भाषाओं के किन शब्दों से हुई है यह बात व्याकरण विषय के बाहर की है।" इन दोनों वाक्यों में 'गुरू' व्युत्पत्ति शब्द का दो भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग कर रहे हैं।

किसी भी भाषा के समस्त शब्द-समूह को अपनापन की दृष्टि से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है— (1) स्वकीय (2) परकीय। स्वकीय शब्दों को पुनः दो वर्गों में बाँटा जा सकता है— 1. परम्परागत 2. निर्मित। परम्परागत शब्द दो प्रकार के होते हैं— (क) ज्ञात व्युत्पत्तिक (ख) अज्ञात व्युत्पत्तिक। ज्ञात व्युत्पत्तिक शब्दों को प्राचीन तद्भव कहा जाता है और अज्ञात व्युत्पत्तिक को देशज।

परकीय शब्दों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है— (1) स्वदेशी (2) विदेशी। दोनों वर्गों के ये शब्द दो प्रकार के हो सकते हैं— 1. तत्सम 2. तत्समेतर। तत्समेतर स्वदेशी शब्दों को पुनः तीन वर्गों में रखा जा सकता है — (क) तत्समाभास (ख) अर्ध तत्सम (ग) तद्भव। तत्समेतर विदेशी शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—(क) तत्समाभास (ख) तद्भव। आरेख में इस वर्गीकरण को इस प्रकार रखा जा सकता है—



व्याकरण की बहुत-सी पुस्तकों में व्युत्पत्ति/भाषा-स्रोत/शब्द-इतिहास/शब्द-उद्गम की दृष्टि से प्रायः चार प्रकार के शब्द लिखे गए हैं— 1. तत्सम 2. तद्भव 3. देशी/देशज 4. विदेशी। इस वर्गीकरण में 'देशी, तत्सम, तद्भव' शब्दों के बारे में परिभाषा या लक्षण की दृष्टि से सम्यक् विचार नहीं किया गया है। यहाँ ऊपर सुझाए गए वर्गीकरण के अनुसार हिन्दी शब्द-समूह पर व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्रकाश डाला जा रहा है।

स्वकीय शब्द—किसी व्यक्ति की धन-सम्पदा में उन समस्त वस्तुओं, ज़मीन-जायदाद, रुपया-पैसा आदि की गणना की जाती है जो उसे पुरखों से मिली है, उस ने अपने जीवन काल में स्वयं अर्जित की है और उस ने अपने साथी, रिश्तेदार आदि से उधार ले कर या किसी अन्य रूप में प्राप्त की है। किसी भाषा के शब्द-समूह में दो प्रकार के वे शब्द **स्वकीय शब्द** कहे जाएँगे जो उस भाषा को भाषा विकास की प्रक्रिया में पूर्ववर्ती भाषा से प्राप्त हुए हैं और जिन शब्दों को उस भाषा के जीवन-काल में गढ़ा गया है।

परकीय शब्द—किसी भाषा के शब्द-समूह में दो प्रकार के वे शब्द **परकीय शब्द** कहे जाएँगे जो उस भाषा ने स्वदेश और विदेश की भाषाओं से ग्रहण किए हैं। परकीय शब्दों को उधार लिए हुए शब्द (loan words) कहना तर्कसंगत नहीं है क्योंकि कोई भी भाषा **गृहीत या आगत** शब्द/शब्दों को लौटाया नहीं करती। परकीय शब्दों को गृहीत/आगत शब्द भी कहा जा सकता है। परकीय वर्ग के स्वदेशी, विदेशी शब्दों के भेदों और उपभेदों पर अभी शोध कार्य होना है।

परम्परागत शब्द—किसी भाषा के उद्‌भव/विकास काल में पूर्ववर्ती भाषा से सहज रूप में प्राप्त शब्द परम्परागत शब्द कहलाते हैं। हिन्दी भाषा के परम्परागत शब्द वे हैं जो हिन्दी के उद्‌भव और विकास काल में संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि से उसे मिलते रहे हैं।

निर्मित शब्द—कोई भाषा अपने विकास काल में आवश्यकतानुसार जिन शब्दों का निर्माण करती है, उन्हें निर्मित शब्द कहा जाता है। (हिन्दी में शब्द निर्माण प्रक्रिया के कई रूप हैं जिन पर अध्याय 12 'शब्द-रचना' में विस्तार से चर्चा की जाएगी।)

स्वदेशी शब्द—कोई भाषा अपने विकास काल में स्वदेश की विभिन्न जीवित भाषाओं के सम्पर्क में आ कर उन से जो शब्द ग्रहण करती है, उन्हें स्वदेशी शब्द कहा जाता है। इन्हें कुछ लोग देशागत या देशगृहीत शब्द भी कहते हैं। हिन्दी में आधुनिक भारतीय भाषाओं से कई शब्द ग्रहण किए गए हैं।

विदेशी शब्द—कोई भाषा अपने जीवन काल में विदेश की विभिन्न जीवित भाषाओं के सम्पर्क में आ कर उन से जो शब्द ग्रहण करती है, उन्हें विदेशी शब्द कहा जाता है। इन्हें कुछ लोग विदेशागत या विदेश गृहीत शब्द भी कहते हैं। प्राचीन पंडितों की दृष्टि में विदेशी शब्द 'म्लेच्छ शब्द' हैं। हिन्दी में आधुनिक कई विदेशी भाषाओं से अनेक शब्द ग्रहण किए गए हैं।

ज्ञात व्युत्पत्तिक शब्द—वे परम्परागत शब्द जिन के बारे में निश्चित पता है कि वे किस भाषा से उद्‌भूत हो कर इस भाषा (या हिन्दी) को प्राप्त हुए हैं, ज्ञात व्युत्पत्तिक शब्द कहलाते हैं। ऐसे शब्दों को व्याकरण ग्रन्थों में प्रायः तद्‌भव कहा जाता रहा है।

अज्ञात व्युत्पत्तिक शब्द—वे परम्परागत शब्द जिन के बारे में निश्चित पता नहीं चल पाया है कि वे किस भाषा से उद्‌भूत हो कर इस भाषा (या हिन्दी) को प्राप्त हुए हैं, अज्ञात व्युत्पत्तिक शब्द कहलाते हैं। ऐसे शब्दों को व्याकरण ग्रन्थों में प्रायः देशज कहा जाता रहा है। 'देशज' का अर्थ है—देश में जन्मा हुआ या उत्पन्न। ज्ञात व्युत्पत्तिक तथा स्वदेशी शब्द भी देशज ही होते हैं। जो शब्द कुछ वर्ष पूर्व तक तथाकथित 'देशज' वर्ग के माने जाते रहे थे (यथा—हेमचन्द्र के ग्रंथ 'देशी नाममाला'

के अनेक शब्द), उन में से अनेक अब विदेशी तथा तद्भव की कोटि में रखे जाने लगे हैं। वास्तव में तकनीकी दृष्टि से 'देशज' शब्द तर्कसंगत नहीं है। इन शब्दों में द्रविड तथा मुंडा भाषाओं से आगत कुछ शब्दों को रखा जाता रहा है। हिन्दी में प्रचलित कुछ अज्ञात व्युत्पत्तिक शब्द ये हैं—कबड्डी, खादी, घपला, घूँट, चंपत, चूहा, झंझट, झगड़ा, टट्टू, टीस, ठेठ, ठेस, तेंदुआ, थोथा, धब्बा, पेठा, पेड़ आदि।

तत्सम शब्द—'तत्सम' शब्द का अर्थ है—उस के (तत्) समान (सम)। सामान्यतः व्याकरण ग्रन्थों में 'तत्' से संस्कृत भाषा का अर्थ ही स्वीकार किया जाता रहा है। वे परकीय शब्द जो किसी भाषा से ध्वनि और अर्थ-व्यवस्था में तद्रूप या यथावत् ग्रहण किये जाते हैं, 'तत्सम' कहलाते हैं। व्याकरण ग्रन्थों में प्रायः संस्कृत-शब्दों को ही तत्सम शब्दों की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता रहा है जो तर्कसंगत नहीं है। कुछ लोगों के अनुसार तत्सम शब्द का अर्थ है—बिना किसी स्वनिक परिवर्तन के हिन्दी में आगत संस्कृत शब्द। इस अर्थ में शब्दों की तत्समता केवल ध्वनि स्तर तक ही सीमित रखी गई है।

यद्यपि संस्कृत भाषा में भी उस के विकास काल में कई भाषाओं से अनेक शब्द गृहीत हुए थे तथापि हिन्दी भाषा में ग्रहण की दृष्टि से उन्हें संस्कृत से आगत ही मान जाएगा क्योंकि वे शब्द हिन्दी में संस्कृत के माध्यम से ही गृहीत हैं, यथा—पुष्प, कला, गण, नाना, शव, मर्कट, रात्रि (द्रविड); क्रमेल/क्रमेलक, द्रम्य/द्रम्य/द्रम, होडा, यवन, समिता/समिदा, सुरंग/सुरुंग, होडा, केन्द्र, कस्तूरी, कंगु, खलिन, कस्तीर (यूनानी); लौह, गौ (सुमेरी); असुर (असीरियन); कूप, शलाका (फ़िनोउग्रियन); परशु (अक्कादी); गंगा, लिंग, वाण, पिनाक, कदली, तांबूल (आस्ट्रिक); दीनार, रोमक, रोमन (लातीनी/लैटिन); सहम, रमल (अरबी); चीन, तसर, कीचक, सिन्दूर, लीची, मुसार (चीनी); मुद्रा, मिस्री/मिश्री (मिस्री); खच्चर, तुरुष्क, ठक्कुर (तुर्की); क्षत्रप, निःशाण, बालिश, दिपि, कुन्दुरु, मिहिर, मग, गंज, तीर, तूत, निपिस्त (ईरानी)।

संस्कृत से आगत तथाकथित तत्सम शब्दों को कुछ लोग पुराने तत्सम और नये तत्सम शब्दों में रखते हैं, यथा—**पुराने तत्सम** वे शब्द हैं जो हिन्दी में अपने मूल+नये या केवल पुराने/नये अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, यथा—अन्तरिक्ष, देश, आयुक्त आदि। **नये तत्सम** वे शब्द हैं जो हिन्दी में संस्कृत के शब्दों और प्रत्ययों के आधार पर बनाए गए हैं, यथा—उत्पादनशील, क्रयशक्ति, जीवनशास्त्र, प्रतिक्रांति, प्राविधिक, भाषा-वेत्ता, विस्तारवाद आदि। कुछ विद्वानों ने परिनिष्ठित हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत के तथाकथित तत्सम शब्दों को चार वर्गों में बाँटने का प्रयास किया है— 1. प्राकृतों में होते हुए हिन्दी में आगत संस्कृत शब्द, यथा—अघ, अचल, अचला, काल, कुसुम, जन्तु, दण्ड, दम आदि 2. हिन्दी के भक्तिकाल और आधुनिक काल में ग्रहण किए गए संस्कृत शब्द, यथा—कर्म, कुशल, कृष्ण, क्षेत्र, ज्ञान, पुष्प, मद्य, मधुर, मत्स्य,

मार्ग, मृग, मेघ आदि 3. बीसवीं सदी में संस्कृत व्याकरण के आधार पर निर्मित संस्कृत शब्द, यथा—कटिबद्ध, जलवायु, नगरपालिका, निदेशक, पत्राचार, प्रभाग, प्राध्यापक, रेखाचित्र, लघुशंका, वायुयान, वाक्य विश्लेषण आदि 4. संस्कृतेतर भाषाओं से गृहीत संस्कृत शब्द, यथा— उपन्यास, कविराज, अभिभावक, अभ्यर्थना, वक्तृता, गल्प, सन्देश, निर्भर, तत्त्वावधान, आपत्ति, सम्भ्रान्त, स्वप्निल, उर्मिल, धन्यवाद (बंगला); प्रगति, वाङ्मय (मराठी)।

हिन्दी में प्रयुक्त तथाकथित संस्कृत तत्सम शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय हैं। संज्ञा शब्द दो प्रकार के हैं— 1. संस्कृत-प्रातिपदिक, यथा— अस्थि, कुसुम, कृष्ण, दधि, देव, पत्र, पुष्प, पुस्तक, फल, बालक, मनुष्य, मित्र, राम, वृक्ष, जगत्; कन्या, निशा, वाला, भार्या, रमा, विद्या; अग्नि, ऋषि, कपि, कवि, पति, मति, मुनि, रवि, रुचि, वारि, विधि, पति, हरि; लक्ष्मी, नदी, सुधी, स्त्री; गुरु, जन्तु, धेनु, पशु, प्रभु, भानु, मधु, वस्तु, विष्णु, शत्रु, शिशु, साधु; चमू, भू, वधू, स्वयम्भू आदि 2. संस्कृत-प्रथमा एकवचन, यथा— आत्मा, करी, कर्ता, चर्म, जामाता, तपस्वी, दाता, दुहिता, धनवान्, नाग, नेता, पिता, पृथ्वी, ब्रह्मा, भ्राता, भगवान्, महिमा, माता, युवा, वणिक्, विद्वान्, राजा, सखा, सम्राट्, सीमा, स्वामी, हस्ती आदि। सर्वनाम—तव, मम। विशेषण (प्रातिपदिक), यथा—चिरन्तन, तीव्र, नव, नवीन, नूतन, पुरातन, श्वेत, सुन्दर आदि क्रिया—स्वीकार अव्यय—धिक्, प्रातः, पृथक्, शनैः, सहसा, सायं, नित्यम्।

बीसवीं शताब्दी में हिन्दी-उर्दू संघर्ष में हिन्दी के अनेक तद्भव शब्दों को तत्सम शब्दों में स्थानापन्न करना आरम्भ कर दिया था। 'धार्मिक, युगधर्म, कर्म-निष्ठ, कर्मचारी, कर्मठ, कर्मवाद' जैसे शब्दों का प्रयोग होने से 'धरम, करम' जैसे शब्दों का प्रचलन बन्द हो चला है। इन का स्थान 'धर्म, कर्म' ने लिया है। केवल मुहावरेदार प्रयोगों में (यथा—उस के तो करम ही फूट गए, करमजली, कुछ धरम-करम भी किया कर) में ही तद्भव शब्दों का प्रयोग बच रहा है। हिन्दी की भाँति अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसी प्रकार से तत्सम/संस्कारित शब्दों (Sanskritised words) का प्रचलन बढ़ा है।

ध्वनि तथा अर्थ-तत्समता की दृष्टि से हिन्दी में गृहीत केवल संस्कृत भाषा के ही नहीं वरन् अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं से गृहीत शब्दों पर विचार करना आवश्यक है। वास्तव में यह चिन्तन एवं वर्गीकरण विशेष शोध की आवश्यकता रखता है।

तत्समेतर शब्द—वे परकीय शब्द हैं जो किसी भाषा में तत्सम कोटि से इतर कोटि के होते हैं। (दे० तत्समाभास, अर्ध तत्सम और तद्भव शब्दों के विविध उदाहरण)।

तत्समाभास शब्द—वे परकीय शब्द हैं जो किसी भाषा में तत्सम होने का आभास देते हैं व्याकरण ग्रन्थों में जिन अनेक संस्कृत शब्दों को तथाकथित तत्साम कहा जाता रहा है, उन में से कई शब्द ध्वनि एवं अर्थ-व्यवस्था में संस्कृत के समान नहीं रह गए हैं। कुछ शब्दों की तत्समता पर ध्वनि-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से प्रश्न चिह्न लगाया जाने लगा है, यथा—

'राम, कृष्ण, हनुमान, ऋण, संज्ञा, भाषा, चञ्चल; कृषक, ऋषि, शाप' आदि अनेक शब्द हिन्दी में संस्कृत भाषा के समान उच्चरित नहीं हो सकते क्योंकि हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था संस्कृत की ध्वनि-व्यवस्था से बहुत-कुछ भिन्न है। हिन्दी ध्वनि-व्यवस्था के अनुसार इन शब्दों को लगभग इस प्रकार उच्चरित किया जाता है—[राँम्, क्रिश्न्/क्रिश्ड़ँ, हँनुमाँन्, रिन्/रिड़ँ, सङ्ग्या/सङ्ग्याँ, भाशा/भासा, चन्चल्, क्रिशक्/क्रशक्/क्रिसक्, रिशि, शाप्]। ध्वनि-व्यवस्था की दृष्टि से ऐसे अनेक शब्द तत्सम नहीं कहे जा सकते। इन्हें तत्समेतर शब्द कोटि में रखना ही अधिक तर्कसंगत है। अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से भी अनेक शब्द तत्सम नहीं कहे जा सकते क्योंकि हिन्दी में उन के अर्थ पूर्णतः संस्कृत के समान नहीं रह गए हैं, यथा—**कटि** (सं. अर्थ कूल्हा, नितम्ब; हि. अर्थ कमर), **जंघा**, (सं. घुटने और टखने का मध्य भाग; हि. जाँघ), **परिवार** (सं. घेरनेवाला, नौकर-चाकर, अनुयायी, म्यान; हि. कुटुम्ब), **पतंग** (सं. सूर्य, पक्षी, शलभ; हि. गुड्डी kite भी), **त्रुटि** (सं. टूट, टूटना; हि. भूल, दोष), **शीर्षक** (सं. सिर; हि. Heading), **पदवी** (सं. रास्ता, पथ; हि. उपाधि), **निर्भर** (सं. बहुत अधिक, पूर्ण, भरा; हि. आश्रित, अवलम्बित, मुनहसिर भी), **प्रान्त** (सं. सीमा, अन्त, किनारा, कोना; हि. सूबा/प्रदेश भी), **सूची** (सं. सूई, हि. तालिका भी)। अर्थ व्यवस्था की दृष्टि से ऐसे अनेक शब्द तत्समेतर कहे जा सकते हैं, तत्सम नहीं। तत्समेतर कोटि के ये शब्द **तत्समाभास** वर्ग के हैं—अप्सरा, राम, कृष्ण, हनुमान, ऋण, संज्ञा, भाषा, चंचल, कृषक, ऋषि, लक्ष्मी, मनुष्य, शाप, वृक्ष, कटि, जंघा, विष्णु, परिवार, पृथक्, पृथ्वी, पतंग, त्रुटि, पुष्प, शीर्षक, पदवी, निर्भर, प्रान्त, सूची, औषधि, संग्रहीत, अनुग्रहीत, क्षत्राणी, अधीन/आधीन, भंडार, अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, उपर्युक्त/उपरोक्त, प्रण, दृढ़, प्रौढ़, होड़ा, नित्य, मनोकामना। संस्कृत से आगत ऐसे शब्दों को कुछ लोग तद्भव/परवर्ती तद्भव कहते हैं।

अर्ध तत्सम शब्द—वे परकीय स्वदेशी शब्द हैं जो किसी भाषा में तत्समाभास और तद्भव की मध्यवर्ती स्थिति के होते हैं, यथा—परीच्छा, भँवरा, रतन, बरस, भगत किशुन/किशन, करम, चन्दर, चक्कर, छीर, चूरन, जीरन, पत्तर, पच्छी, अच्छर, कारज, महेन्दर, किरपा, अगिन, बच्छ, आश्चर्ज आदि। तद्भवीकरण की प्रक्रिया परवर्ती काल में आरम्भ होने के कारण कुछ लोग ऐसे शब्दों को परवर्ती

तद्भव कहना उचित मानते हैं। किन शब्दों के तद्भवीकरण की प्रक्रिया पूर्ववर्ती है और किन की परवर्ती, इस का निर्णय करना पर्याप्त कठिन कार्य है।

तद्भव शब्द—'तद्भव' का शाब्दिक अर्थ है—उस से (तत्) उत्पन्न/उद्भूत/विकसित (भव)'। 'तद्भव' वे परकीय तत्समेतर शब्द हैं जो किसी भाषा में ध्वनि और अर्थ-व्यवस्था में तद्रूप में ग्रहण न किए जा कर परिवर्तित/विकृत रूप में ग्रहण किए गए हैं। व्याकरण की पुस्तकों में केवल संस्कृत भाषा के घिस-पिटकर परिवर्तित रूप में सीधे प्राकृत से या प्राकृत के माध्यम से आगत शब्दों को ही तद्भव शब्द कहा गया है। तद्भव को '>' चिह्न से व्यक्त करते हैं, यथा—दुग्ध>दूध (दुग्ध शब्द से व्युत्पन्न शब्द दूध है। दूध<दुग्ध (दूध शब्द दुग्ध शब्द से व्युत्पन्न हुआ है)। हेमचन्द्र ने तद्भव शब्दों को 'संस्कृत योनि' शब्द कहा है। इन्हें अपभ्रष्ट/अपभ्रंश शब्द भी कहा जाता है। हिन्दी में प्रचलित कुछ तद्भव शब्द ये हैं—(संस्कृत भाषा के शब्दों से व्युत्पन्न तद्भव शब्द) अँगूठा<अंगुष्ठ, अँधेरा<अंधकार, अंधा<अंध, आँख<अक्षि, आग<अग्नि, अटारी<अट्टालिका, आज<अद्य, आधा<अर्ध~अर्द्ध, आठ<अष्ट, आम<आम्र, आँसू<अश्रु, आसरा<आश्रय, अचरज<आश्चर्य, उँगली<अंगुलि, उजला<उज्ज्वल, उठान/उठाना<उत्थान, इकट्ठा<एकत्र, ईंट<इष्टिका; ओठ~ओंठ<होठ<ओष्ठ; ओष्ठ, कँवल<कमल, कछुआ<कच्छप, करो<कुरु, काँटा<कंटक, कंगन<कंकण, कपूर<कर्पूर, कान<कर्ण, काम<कर्म, काठ<काष्ठ, कुम्हार<कुम्भकार, काज<कार्य, किवाड़<कपाट, कपूत<कुपुत्र, कुआँ/कूआँ<कूप, कोठा<कोष्ठ, कोढ़<कुष्ठ, कोयल<कोकिल, चाँद<चन्द्र, चाक<चक्र, चिड़िया<चटका, खीर<क्षीर, खेत<क्षेत्र, गधा<गर्दभ, गाँठ<ग्रन्थि, गाँव<ग्राम, गाहक<ग्राहक, घर<गृह, घाम<घर्म, घी<घृत, चमार<चर्मकार, चाम<चर्म, चूना<चूर्ण, छेद<छिद्र, जाँघ<जंघा, जीभ<जिह्वा, जेठ<ज्येष्ठ, जोगी<योगी, जोबन<यौवन, झीना<जीर्ण, ताँबा<ताम्र, ताव<ताप, तीन<त्रीणि, तुरंत<त्वरित, थन<स्तन, थान<स्थान, डडा<दण्ड, दाँत<दन्त, दसवाँ<दशम, दही<दधि, दूध<दुग्ध, दुबला<दुर्बल, दो<द्वौ, धीरज<धैर्य, धुआँ/धूआँ<धूम्र, नंगा<नग्न, नित<नित्य, नींद<निद्रा, नेह<स्नेह, पक्का<पक्व, पत्ता<पत्र, पीठ<पृष्ठ, परख<परीक्षा, प्यास<पिपासा, फूल<पुष्प, बाँस<वंश, बाँह<बाहु, बहू<वधू, बाघ<व्याघ्र, बिगाड़<विकार, बूढ़ा<वृद्ध, भँवर/भौंरा<भ्रमर, भीख<भिक्षा, भाई<भ्रातृ, भूसा/भूसी<भूषिका, भैंस<महिषी, माथा<मस्तक, मिट्टी<मृत्तिका, मुँह<मुख, मोती<मौक्तिक, मोर<मयूर, रात<रात्रि, लाख<लक्ष, लुहार~लोहार<लौहकार, सच<सत्य, साग<शाक, सिंगार<शृंगार, सूत<सूत्र, हाथ<हस्त, हाथी<हस्ती

अरबी-फ़ारसी भाषाओं के शब्दों से व्युत्पन्न तद्भव शब्द—

तद्भव शब्द	मूल शब्द	तद्भव शब्द	मूल शब्द
अल्ला	अल्लाह	चुगलखोर	चुग़लख़ोर
आका	आक़ा	जमींदार	ज़मींदार
आफत	आफ़त	जहाज	जहाज़
इशारा	इशारह	जिला	ज़िला
कत्ल	क़त्ल	जमीन	ज़मीन
कद	क़द	तकदीर/तगदीर	तक़दीर
कबर/कब्र	क़ब्र	तमगा	तमग़ा
कागज	काग़ज़	दरोगा	दारोग़ह
कानून	क़ानून	नजर	नज़र
कैंची	क़ैंची	नकद	नक़द
कैदी	क़ैदी	फन	फ़न
खाक	ख़ाक	फकीर	फ़क़ीर
खून	ख़ून	बाजार/बजार	बाज़ार
खराब	ख़राब	बेगम	बेग़म
खत	ख़त	बर्फ/बरफ	बर्फ़
खजाना	ख़ज़ानह	बगीचा	बाग़ीचह
खतम/खत्म	ख़त्म	मजहब	मज़हब
खारिज	ख़ारिज	मजबूर	मजबूर
गम	ग़म	राज	राज़
गरीब	ग़रीब	सजा	सज़ा
गलीचा	ग़लीचह		

अँगरेज़ी और अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों से व्युत्पन्न तद्भव शब्द—

तद्भव शब्द	मूल शब्द	तद्भव शब्द	मूल शब्द
अफसर/आफीसर	ऑफ़िसर	जाकिट/जाकेट	जॉकिट
आफिस	ऑफ़िस	जार	ज़ार
आडर	ऑर्डर	टेलीफोन	टेलिफ़ोन
कालेज/कालिज	कॉलिज	टेलीग्राफ	टेलिग्राफ़
कोरट/कोट	कोर्ट	डाक्टर	डॉक्टर
कर्फ्यू	कर्फ़्यू	फुटबाल	फ़ुटबॉल
ग्रामोफोन	ग्रामोफ़ोन	फीस	फ़ी
चाकलेट	चॉकलेट	स्पूतनिक	स्फुतनिक

तद्भव कहना उचित मानते हैं। किन शब्दों के तद्भवीकरण की प्रक्रिया पूर्ववर्ती है और किन की परवर्ती, इस का निर्णय करना पर्याप्त कठिन कार्य है।

तद्भव शब्द—'तद्भव' का शाब्दिक अर्थ है—उस से (तत्) उत्पन्न/उद्भूत/विकसित (भव)'। 'तद्भव' वे परकीय तत्समेतर शब्द हैं जो किसी भाषा में ध्वनि और अर्थ-व्यवस्था में तद्रूप में ग्रहण न किए जा कर परिवर्तित/विकृत रूप में ग्रहण किए गए हैं। व्याकरण की पुस्तकों में केवल संस्कृत भाषा के घिस-पिटकर परिवर्तित रूप में सीधे प्राकृत से या प्राकृत के माध्यम से आगत शब्दों को ही तद्भव शब्द कहा गया है। तद्भव को '>' चिह्न से व्यक्त करते हैं, यथा—दुग्ध>दूध (दुग्ध शब्द से व्युत्पन्न शब्द दूध है। दूध<दुग्ध (दूध शब्द दुग्ध शब्द से व्युत्पन्न हुआ है)। हेमचन्द्र ने तद्भव शब्दों को 'संस्कृत योनि' शब्द कहा है। इन्हें अपभ्रष्ट/अपभ्रंश शब्द भी कहा जाता है। हिन्दी में प्रचलित कुछ तद्भव शब्द ये हैं—(संस्कृत भाषा के शब्दों से व्युत्पन्न तद्भव शब्द) अँगूठा<अंगुष्ठ, अँधेरा<अंधकार, अंधा<अंध, आँख<अक्षि, आग<अग्नि, अटारी<अट्टालिका, आज<अद्य, आधा<अर्ध~अर्द्ध, आठ<अष्ट, आम<आम्र, आँसू<अश्रु, आसरा<आश्रय, अचरज<आश्चर्य, उँगली<अंगुलि, उजला<उज्ज्वल, उठान/उठाना<उत्थान, इकट्ठा<एकत्र, ईंट<इष्टिका; ओठ~ओंठ<होठ<ओष्ठ; ओष्ठ, कँवल<कमल, कछुआ<कच्छप, करो<कुरु, काँटा<कंटक, कंगन<कंकण, कपूर<कर्पूर, कान<कर्ण, काम<कर्म, काठ<काष्ठ, कुम्हार<कुम्भकार, काज<कार्य, किवाड़<कपाट, कपूत<कुपुत्र, कुआँ/कूआँ<कूप, कोठा<कोष्ठ, कोढ़<कुष्ठ, कोयल<कोकिल, चाँद<चन्द्र, चाक<चक्र, चिड़िया<चटका, खीर<क्षीर, खेत<क्षेत्र, गधा<गर्दभ, गाँठ<ग्रन्थि, गाँव<ग्राम, गाहक<ग्राहक, घर<गृह, घाम<घर्म, घी<घृत, चमार<चर्मकार, चाम<चर्म, चूना<चूर्ण, छेद<छिद्र, जाँघ<जंघा, जीभ<जिह्वा, जेठ<ज्येष्ठ, जोगी<योगी, जोबन<यौवन, झीना<जीर्ण, ताँबा<ताम्र, ताव<ताप, तीन<त्रीणि, तुरंत<त्वरित, थन<स्तन, थान<स्थान, डंडा<दण्ड, दाँत<दन्त, दसवाँ<दशम, दही<दधि, दूध<दुग्ध, दुबला<दुर्बल, दो<द्वौ, धीरज<धैर्य, धुआँ/धूआँ<धूम्र, नंगा<नग्न, नित<नित्य, नींद<निद्रा, नेह<स्नेह, पक्का<पक्व, पत्ता<पत्र, पीठ<पृष्ठ, परख<परीक्षा, प्यास<पिपासा, फूल<पुष्प, बाँस<वंश, बाँह<बाहु, बहू<वधू, बाघ<व्याघ्र, बिगाड़<विकार, बूढ़ा<वृद्ध, भँवर/भौंरा<भ्रमर, भीख<भिक्षा, भाई<भ्रातृ, भूसा/भूसी<भूषिका, भैंस<महिषी, माथा<मस्तक, मिट्टी<मृत्तिका, मुँह<मुख, मोती<मौक्तिक, मोर<मयूर, रात<रात्रि, लाख<लक्ष, लुहार~लोहार<लौहकार, सच<सत्य, साग<शाक, सिंगार<श्रृंगार, सूत<सूत्र, हाथ<हस्त, हाथी<हस्ती

अरबी-फ़ारसी भाषाओं के शब्दों से व्युत्पन्न तद्भव शब्द—

तद्भव शब्द	मूल शब्द	तद्भव शब्द	मूल शब्द
अल्ला	अल्लाह्	चुगलखोर	चुग़लख़ोर
आका	आक़ा	जमींदार	ज़मींदार
आफत	आफ़त	जहाज	जहाज़
इशारा	इशारह्	जिला	ज़िला
कत्ल	क़त्ल	जमीन	ज़मीन
कद	क़द	तकदीर/तगदीर	तक़दीर
कबर/कब्र	क़ब्र	तमगा	तमग़ा
कागज	काग़ज़	दरोगा	दारोगह्
कानून	क़ानून	नजर	नज़र
कैंची	क़ैंची	नकद	नक़द
कैदी	क़ैदी	फन	फ़न
खाक	ख़ाक	फकीर	फ़क़ीर
खून	ख़ून	बाजार/बजार	बाज़ार
खराब	ख़राब	बेगम	बेग़म
खत	ख़त	बर्फ/बरफ	बर्फ़
खजाना	ख़ज़ानह्	बगीचा	बाग़ीचह्
खतम/खत्म	ख़त्म	मजहब	मज़हब
खारिज	ख़ारिज	मजबूर	मजबूर
गम	ग़म	राज	राज़
गरीब	ग़रीब	सजा	सज़ा
गलीचा	ग़लीचह्		

अँगरेज़ी और अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों से व्युत्पन्न तद्भव शब्द—

तद्भव शब्द	मूल शब्द	तद्भव शब्द	मूल शब्द
अफसर/आफीसर	ऑफ़िसर	जाकिट/जाकेट	जॉकिट
आफिस	ऑफ़िस	जार	ज़ार
आडर	ऑर्डर	टेलीफोन	टेलिफ़ोन
कालेज/कालिज	कॉलिज	टेलीग्राफ	टेलिग्राफ़
कोरट/कोट	कोर्ट	डाक्टर	डॉक्टर
कर्फ्यू	क़र्फ़्यू	फुटबाल	फ़ुटबॉल
ग्रामोफोन	ग्रामोफ़ोन	फीस	फ़ी
चाकलेट	चॉकलेट	स्पूतनिक	स्फुतनिक

11

शब्द-अर्थ

विभिन्न भाषिक इकाइयों (शब्द, रूप, वाक्य, वाक्यांश, मुहावरा आदि) से होनेवाली मानसिक प्रतीति को **अर्थ** कहा जाता है। विभिन्न भाषिक इकाइयों में व्यक्ति जो कुछ बोलता (अथवा लिखता) है, उस से किसी-न-किसी अर्थ की प्रतीति होती है। भाषिक इकाइयाँ किसी-न-किसी अर्थ का बोध कराती हैं। मानसिक प्रतीति (अमूर्त अर्थ) को मूर्त रूप विभिन्न भाषिक इकाइयों से ही प्राप्त हो पाता है।

अर्थ की प्रतीति **स्वानुभव** (स्वयं अनुभव करने) से और **परानुभव** (अन्य लोगों के अनुभव) से होती है। परम्परा से प्रत्येक भाषा भाषी समाज विभिन्न शब्दों को विभिन्न अर्थों के प्रतीक/संकेत स्वीकार करता चला आ रहा है। किसी वस्तु, भाव या क्रिया आदि के साथ शब्द का सम्बन्ध-स्थापन **संकेत-ग्रह** कहलाता है। संकेत-ग्रह के कारण ही किसी शब्द विशेष के विशेष अर्थ का बोध होता है। शब्द और अर्थ में देह तथा आत्मा का-सा सम्बन्ध माना जाता है। शब्दकोशों में शब्दों के अर्थ दिए गए होते हैं किन्तु विभिन्न अर्थों में प्रयोग के लिए शब्दों के रूपों में परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता की पूर्ति व्याकरण से ही हो पाती है; अतः शब्दों के सम्यक् और उपयुक्त अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए शब्दकोश और व्याकरण दोनों ही सहायता प्रदान करते हैं।

मानसिक प्रतीति या अर्थ बोध के आधार पर शब्दों को दो प्रकार का माना जाता रहा है—1. सार्थक शब्द 2. निरर्थक शब्द। **सार्थक शब्द** वे शब्द हैं जिन की वक्ता/लेखक और श्रोता/वाचक के मस्तिष्क में कोई-न-कोई मानसिक प्रतीति बनती है या जिन से किसी-न-किसी अर्थ का बोध होता है। प्रत्येक भाषा में सभी शब्द किसी-न-किसी रूप में अर्थ-बोध कराने के कारण सार्थक होते हैं, यथा—घर, हम, काला, दौड़ना, यहाँ, धीरे-धीरे, चीं-चीं, खटखटाना, ताबड़तोड़, पानी-वानी, रोटी-वोटी, आमने-सामने, अल्ल-बल्ल आदि। **निरर्थक शब्द वे** शब्द हैं जिन की कोई मानसिक प्रतीति नहीं बनती या जिन से किसी अर्थ का बोध नहीं होता। कोई भाषा

निरर्थक शब्दों का व्यवहार नहीं करती। हिन्दी भाषी समाज के लिए 'चिबाई, ठुरो, मङ्ठाउले; मञ्ञाल्, मेशा, पोगुन्नु; हाकु, साकु, बेकु' जैसे शब्द निरर्थक हैं, किन्तु इन में से पहले तीन शब्द मिज़ोउ भाषा के होने के कारण मिज़ोउ समाज के लिए सार्थक हैं; दूसरे तीन शब्द मलयाळम् भाषा के होने के कारण मलयाळी समाज के लिए सार्थक हैं; और अन्तिम तीन शब्द कन्नड भाषा के होने के कारण कन्नड समाज के लिए सार्थक हैं।

शब्दों में समाज द्वारा प्रक्षिप्त **अर्थ-शक्ति (अभिधा, लक्षणा, व्यंजना) के आधार पर** साहित्य शास्त्र में शब्द-प्रयोग को आधार बनाते हुए शब्दों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है—1. वाचक/अभिधार्थक 2. लाक्षणिक/लक्ष्यार्थक 3. व्यंजक/व्यंग्यार्थक। **वाचक/अभिधार्थक** वे शब्द हैं जिन से मुख्य या सामान्य अर्थ का बोध होता है, यथा—बैल किसानों के लिए बहुत उपयोगी पशु है। यहाँ 'बैल, पशु' शब्दों से उन के मुख्य/सामान्य अर्थ का बोध हो रहा है। इस वाक्य में 'बैल, पशु' शब्द को वाचक/अभिधार्थक और उन से प्रतीत मुख्य/सामान्य अर्थ को वाच्य/वाच्यार्थ/अभिधार्थ/मुख्यार्थ कहा जाता है। भाषा में सामान्यतः वाचक शब्दों का प्रयोग अधिकतम होता है। **लाक्षणिक/लक्ष्यार्थक** वे शब्द हैं जिन से किसी रूढ़ि या प्रयोजन के कारण मुख्यार्थ से सम्बद्ध किसी अन्य अर्थ का बोध होता है, यथा—यार, तुम तो पूरे बैल हो। इस वाक्य में 'बैल' शब्द से उस के मुख्य/सामान्य अर्थ का बोध नहीं हो रहा है, वरन् 'बैल के सदृश' (अर्थात् जड़/मूर्ख) होने का भाव-बोध हो रहा है। यहाँ 'बैल' शब्द को लाक्षणिक/लक्ष्यार्थक/लक्ष्यक तथा उस से प्रतीत विशेष अर्थ को लक्ष्यार्थ/लक्ष्य/लक्षणार्थ कहा जाता है। **व्यंजक/व्यंग्यार्थक** वे शब्द हैं जिन का मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न कोई गूढ़ या सांकेतिक अर्थ होता है, यथा—आचार्य ने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा 'अरे, सूर्यास्त भी हो गया!' इस वाक्य को सुनते ही छात्र समझ गए कि आचार्य जी सन्ध्योपासना के लिए जाना चाहते हैं। यहाँ 'सूर्यास्त' शब्द को व्यंजक/व्यंग्यार्थक और उस से प्रतीत गूढ़/सांकेतिक अर्थ को व्यंग्यार्थ/गूढ़ार्थ/संकेतार्थ/व्यंजनार्थ कहा जाता है। वास्तव में वाक्य-प्रयोग से ही शब्द के तीनों प्रकार के अर्थ स्पष्ट होते हैं।

व्यंग्य (Sarcasm) में वक्ता अव्यक्त/प्रच्छन्न रूप से अपना आशय प्रकट करता है। कथित बात का प्रसंग से भिन्न अर्थ व्यंजित होने के कारण इसे व्यंग्य कहा जाता है। व्यंग्य से वक्ता सोचा हुआ गूढ़ किन्तु कथ्य का विपरीत अर्थ व्यक्त करता है। इस प्रकार व्यंग्योक्ति का अभिधार्थ भिन्न होता है और निहितार्थ भिन्न। तीखे व्यंग्य में वक्ता श्रोता का दिल दुखाने के लिए निहितार्थ को प्रकट करता है; सूक्ष्म व्यंग्य में वक्ता केवल अपने मन्तव्य को व्यक्त करता है, दिल दुखाने का भाव उस में नहीं होता। व्यंग्य शब्दों की कोई अलग सूची नहीं है। सामान्य उक्तियों में प्रसंग के अनुकूल ही व्यंग्यार्थ व्यक्त होता है। अत्युक्ति के कारण भी व्यंग्यार्थ प्रकट

होता है, यथा—बाज़ार से कल तक लौट आओगे न ? रख दे मेरे सिर पर । प्रसंग से विपरीत कथन में व्यंग्यार्थ हो सकता है, यथा—और आइसक्रीम खा ले, गला बिलकुल ठीक हो जाएगा ।

हिन्दी भाषा में **अभिव्यक्ति के स्तर पर आठ प्रकार के अर्थ** अभिव्यक्त हो सकते हैं—1. मुख्यार्थ 2. लक्ष्यार्थ 3. व्यंग्यार्थ 4. समाजार्थ 5. व्याकरणार्थ 6. बलार्थ 7. शैलीयार्थ 8. अनुतानार्थ । 1. **मुख्यार्थ**—हिन्दी भाषा-व्यवहार में मुख्यार्थ का सब से अधिक प्रयोग होता है । विविध संज्ञा (यथा—घर, गाय, बच्चा, मन, कालिमा), सर्वनाम (यथा—मैं, आप, तू, मेरा, तेरा), विशेषण (यथा—लाल, बड़ा, एक, कटु), क्रिया (यथा—आना, बैठना, उड़ना, सोना), अव्यय (यथा—आज, तभी, यहाँ, उधर, धीरे) शब्दों का मुख्यार्थ में प्रयोग होता है । व्यवहार में मुख्यार्थ दो प्रकार के **मानसिक बिम्बों** का निर्माण करता है—(i) **स्थूल बिम्ब** (यथा—घर, गाय, बच्चा), (ii) **सूक्ष्म बिम्ब** (यथा—कालिमा, दया, सहानुभूति, तभी, धीरे) । 2. **लक्ष्यार्थ**—समाज की संस्कृति, परम्परा, सादृश्य, आलंकारिक प्रयोग, सामान्य प्रयोग-विचलन आदि के कारण मुख्यार्थ ही लक्ष्यार्थ का बोधक हो जाता है, यथा—**टेढ़ी** टाँग—**टेढ़ी** लड़की; लोटे में **पानी**—आँखों में **पानी**; खेत में **बैल**—**बैल** आदमी; **कड़वी** दवा—**कड़वी** बात । इन उदाहरणों में पहला शब्द मुख्यार्थ का सूचक है और दूसरा शब्द लक्ष्यार्थ का । हिन्दी में लक्ष्यार्थ का प्रयोग भी काफ़ी होता है, यथा—गाय (=सीधा), बैल (=मूर्ख), पानी (=चमक, इज्ज़त), गंगा (=पवित्र), तुलसी (=पवित्र), कली (=निरीह), काँटा (=क्रूर), गधा (=मूर्ख), हीरा (=बहुत बढ़िया), तूतू-मैंमैं (=कहा-सुनी), मेरा-तेरा (=अपना-पराया), दबाना (=हराना), इधर-उधर (=गड़बड़), आजकल (=टाल-मटोल) । हिन्दी में प्रयुक्त कई हज़ार मुहावरे केवल लक्ष्यार्थ के ही बोधक हैं, उन का मुख्यार्थ नहीं होता । 3. **व्यंजनार्थ**—वक्ता के कथन की गूढ़ता तथा सांकेतिकता सन्दर्भ के आधार पर मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न व्यंजनार्थ से उद्भूत होती है, यथा—**हौं सुकुमार** नाथ बन जोगू (=मैं सुकुमारी नहीं हूँ); आप **बड़े हरिश्चन्द्र** हैं ! (=महा झूठे); आइए, **पहलवान** जी ! (=दुबला-पतला); **अबला** जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, **आँचल** में है दूध, और आँखों में पानी !—'मैथिलीशरण गुप्त' (=अतिशय वात्सल्य) । 'आँचल' का वाच्यार्थ 'साड़ी का अंचल'; लक्ष्यार्थ 'पयोधर/स्तन' है । इसी प्रकार 'विद्युत की इस चकाचौंध में देख दीप की लौ रोती है; अरी, हृदय को थाम **महल** के लिए झोंपड़ी बलि होती है ।—'निराला' (=अतिशय विलासिता में डूबे लोग) । महल का वाच्यार्थ 'भवन', लक्ष्यार्थ 'महल के निवासी' है । व्यंजनार्थ/व्यंग्यार्थ शब्दगत और काकुगत (सुर का आरोह-अवरोह) होता है । कभी-कभी बोलचाल में श्लेष से भी व्यंग्य की अभिव्यक्ति होती है । 4. **समाजार्थ**—सामाजिक व्यवस्था की जटिलता और शिथिलता के अनुरूप शब्दों के प्रयोगगत रूप में भिन्नता

के आधार पर समाजार्थ/सामाजिक अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, यथा—(you) finish this work (तू/तुम/आप) इस काम को ख़त्म करें/करो/कीजिए। Die 'मरना' सामान्य अर्थ; समाजार्थ—ब्रह्मलीन होना, स्वर्गवासी होना, दिवंगत होना, ख़ुदा को प्यारा होना, कुत्ते की मौत मरना। राम/श्रीराम अयोध्या के राजा थे—रावण लंका का राजा था। Father has come—पिता जी आए/आ गए हैं। सेठ जी के सब से बड़े बेटे अमेरिका गए हैं। बिराजना—बैठना, पधारना—आना, भोजन पाइए/भोजन कीजिए/जीमिए—खाना खाओ। हिन्दी भाषा में सामान्य और सामाजिक अर्थ की दृष्टि से इस प्रकार की अनेक अभिव्यक्तियाँ प्रचलित हैं। 5. **व्याकरणार्थ**—भाषा के अनेक प्रकार्यपरक शब्दों, रूपों का कोई सामान्य अर्थ नहीं हुआ करता, प्रयोग के अनुरूप ही उन का व्याकरणिक अर्थ स्पष्ट हो पाता है, यथा—मैं ने ऐसा सोचा भी न था (=कर्ता कारक), मालाएँ (-एँ=बहुवचन), शेरनी (-नी=स्त्रीलिंग) 6. **बलार्थ**—भाषा-व्यवहार में वक्ता जिस घटक पर बल देना चाहता है, उस के लिए कोई भी प्रक्रिया अपना सकता है, यथा—'ही' प्रयोग (**तुम्हीं** को यह काम करना है—तुम को यह **काम ही** करना है); पदक्रम-परिवर्तन (तुम कहाँ जा रहे हो ?—कहाँ जा रहे हो **तुम** ?); वाच्य (बूढ़ा चने नहीं चबा सकता—बूढ़े से **चने** नहीं चबाए जाते); बलाघात (अभी तुम वहाँ मत जाओ।—इस वाक्य को वक्ता इच्छानुसार किसी पद पर बलाघात देते हुए बोल सकता है)। 7. **शैलीयार्थ**—हिन्दी की सामान्यतः तीन शैलियाँ प्रचलित हैं—संस्कृतनिष्ठ हिन्दी, सामान्य हिन्दी, हिन्दुस्तानी/उर्दू बहुल हिन्दी। एक ही बात को भिन्न-भिन्न ढंग से प्रस्तुत कर शैलीगत अर्थ-भेद व्यक्त किया जा सकता है, यथा—आप का **शुभ स्थान** कहाँ है ?—आप का **घर** कहाँ है ?—आप का **दौलतख़ाना** कहाँ है ? बिराजना-बैठना—तशरीफ़ रखना; शुभ नाम—नाम—इश्म शरीफ़; पिता जी - बाप—वालिद/पापा; माता जी—माँ—वालिदा/मम्मी। हिन्दी भाषा शैलीय अर्थ-भेद की दृष्टि से अन्य कई भाषाओं की अपेक्षा अधिक सम्पन्न है। शैलीय अर्थ-भेद ध्वनि, शब्द और वाक्य रचना-भेद में देखा जा सकता है, यथा—काली-काळी (हरियानवी), लौकी-घिया-कद्दू, पत्र डालना—चिट्ठी डालना—चिट्ठी छोड़ना—चिट्ठी गेरना—लैटर पोस्ट करना आदि। 8. **अनुतानार्थ**—वाक्य-कथन में शब्दों के आवरोह-अवरोह की भिन्नता के आधार पर एक ही शब्द-वाक्य या पूर्ण वाक्य के अर्थ द्योतन में विविधता आ जाती है, यथा—पिता जी चले गए। (सामान्य सूचना), पिता जी चले गए ! (आश्चर्य), पिता जी चले गए ? (प्रश्न)। दावत कैसी थी ? प्रश्न के उत्तर में कहा गया वाक्य 'अच्छी थी' विभिन्न अनुतानों में बोलने पर कई अर्थों का सूचक होगा—'ठीक थी; बढ़िया थी; न बहुत अच्छी थी न बहुत ख़राब थी; बहुत अच्छी थी' आदि।

अभिधेयार्थी शब्दों को उन की **अर्थ-बोधक क्षमता के आधार पर** कई वर्गों में

बाँटा जा सकता है—1. एकार्थी 2. अनेकार्थी/बहवर्थी 3. समानार्थी/पर्यायवाची 4. विलोमार्थी/विपरीतार्थी 5. श्रुतसम भिन्नार्थी ।

1. **एकार्थी शब्द वे शब्द** हैं जिन का सामान्यत: एक ही वाच्यार्थ हुआ करता है, यथा—इन्दिरा गान्धी, मुहम्मद अली जिन्ना, श्री कृष्ण (व्यक्ति नाम); भारत, पाकिस्तान, न्यूज़ीलैंड, रूस (देश नाम); दिल्ली, मास्को, मद्रास, पेरिस (नगर नाम); अतरौली, टूँड़ला, डाकौर, जाजऊ (ग्राम, कस्बा नाम); गंगा, गोदावरी, अमेज़न, मिसीसिपी (नदी नाम); हिमालय, एल्प्स, फ़ूजीयामा (पर्वत नाम); जनवरी, सितम्बर, सावन, मार्गशीर्ष (मास नाम); सोमवार, बुधवार, शनिवार (दिन नाम); प्रतिपदा, दौज, अमावस (तिथि नाम); निराला, ग़ालिब, रत्नाकर (उपाधि नाम); वास्तुकला, संगीतकला, काव्य (कला नाम); भौतिकी, जीव विज्ञान, इतिहास, राजनीति शास्त्र (विषय नाम); हिन्दी, रूसी, संस्कृत, लैटिन (भाषा नाम); फ़्लू, बुख़ार, यक्ष्मा, केन्सर (रोग नाम); अपराध, गवाही, अभियोग, न्यायाधीश, पेशी, वादी, प्रतिवादी, धमनी, इस्पात, दुग्धमापी, तापमापी, चिकित्सा (विधि, विज्ञान आदि के पारिभाषिक नाम); पुस्तक, पेन्सिल, लेखनी, मेज, घर, दीवार, फ़र्श, खिड़की, पंखा, रेडियो, वीडियो, शीशी, साबुन, तेल, पानी, दूध (वस्तु/पदार्थ नाम); एक, दस, सौ, हज़ार, लाल, सफ़ेद, काला, हरा, प्यारा (विशेषण) आदि । लक्षणा और व्यंजना के आधार पर एकार्थी शब्दों से वाच्यार्थ के स्थान पर कभी-कभी लक्षणार्थ, व्यंजनार्थ का काम भी लिया जा सकता है, यथा—कश्मीर को भारत का **स्विट्ज़रलैंड** माना जाता है । उस की आँखों का **पानी** सूख गया है । तू बड़ी **सती सावित्री** है !

2. **अनेकार्थी शब्द** वे शब्द हैं जिन के सामान्यत: एक से अधिक वाच्यार्थ हो सकते हैं । लक्षणा, व्यंजना, सादृश्य आदि विविध कारणों से विकसित ये वाच्यार्थ एक से अधिक वाक्यों में ही स्पष्ट हो पाते हैं । शब्दकोशों में अनेकार्थी शब्दों के अनेकार्थ लिखे रहते हैं, यथा—**वर्ण** = रंग, letter, जाति (गोरे वर्ण के बहुत-से लोग श्याम वर्ण के लोगों के प्रति हीनभावना रखते हैं । क ख ग अ आ इ वर्ण हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार वर्ण माने जाते हैं ।) यहाँ कुछ अनेकार्थी शब्द, उन के व्यावहारिक अर्थ-सन्दर्भ लिखे जा रहे हैं—

अंक=फ़िगर; गोद; नाटक खंड; नम्बर (1, 2, 3 अंक; माँ के अंक में; नाटक के दूसरे अंक में; परीक्षा के अंक)

अकाल=दुर्भिक्ष; अनपेक्षित समय (1987 का भारत में अकाल; अकाल मृत्यु)

अंग=भाग; अवयव; देह (वाक्य के अंग; वृक्ष के अंग; मोटे अंग की लड़की)

अक्षर = वर्ण; अविनाशी; अपरिवर्तनशील; नाश रहित (सुन्दर अक्षरों में लिखना; परमात्मा का एक नाम अक्षर भी है; जगत् में कुछ भी अक्षर नहीं है)

अक्ष=धुरी; आँख; पासों का खेल (चक्र का अक्ष; कमलाक्ष; कौरव-पांडवों के मध्य की अक्ष क्रीड़ा)

अज=अजन्मा; ब्रह्मा; कामदेव; दशरथ-पिता (विश्व निर्माता ब्रह्मा को अज भी कहते हैं; रति-पति अज; अज-पुत्र दशरथ)

अर्क=सूर्य; मदार; अरक़ (अर्क ज्योति; अर्क रस पागल कर देता है; अदरक का अर्क)

अर्थ=धन; मतलब; निमित्त (देश की लड़खड़ाती अर्थ-व्यवस्था; शब्दार्थ; परमार्थ)

अशोक=वृक्ष विशेष; सम्राट् विशेष; शोक रहित (अशोक वाटिका; महाराजा अशोक; नाम अशोक जीवन सशोक)

आम=आम्रफल; सर्वसामान्य; सर्वविदित (मीठा आम; आम चुनाव; आम बात)

उत्तर=दिशा विशेष; जवाब; पीछे (उत्तर दिशा; प्रश्न का उत्तर; समास का उत्तर पद)

कर=टैक्स; किरण; हाथ; सूँड़ (आयकर; विरहिणी के लिए असह्य चन्द्र के शीतल कर; करबद्ध प्रणाम; करभोरु)

कुल=सब; वंश; केवल (कुल बीस रुपये; तुम्हारा कुल; सौ रु० कुल)

कोटि=वर्ग; करोड़; धनुष-सिरा (निम्नकोटि के लोग; तेतीस कोटि देवता; धनुषकोटि)

क्षण=अत्यल्प समय; अवसर; मुहूर्त (एक क्षण रुको; किसी भी क्षण आ सकते हो; फेरों का क्षण)

खर=गधा; रावण-भ्राता; तीक्ष्ण; तिनका (खरगोश; खरदूषण; खर विष का प्रभाव; खरपतवार)

गति=चाल; दशा; मोक्ष (तीव्रतम गति की रेलगाड़ी; दुर्गति; राम नाम सत्य है, सत्य बोलो गत्य<गति है)

गुरु=आचार्य; पूज्य पुरुष; दो मात्राओंवाला अक्षर; भारी (देव गुरु बृहस्पति; गुरुजन के प्रति श्रद्धा; छन्द का गुरु वर्ण; गुरु भार)

गोली=गोलाकार पिंड; बटी; विस्फोटक टोपी (मिट्टी की गोली; दर्द की गोली; बन्दूक़ की गोली)

घन=बादल; बड़ा हथौड़ा; अंक × अंक × अंक (घनगर्जन; लुहार का घन; 5 का घन = 125)

चन्द्र=चाँद; मयूरपंख-चँदोवा; सोना (सूर्य तथा चन्द्र; कृष्णचन्द्र; चन्द्रप्रभावटी)

चर=दूत; जासूस; चलनेवाला (दरबार में चर-प्रवेश; गुप्तचर; अनुचर)

चीर=वस्त्र; चिथड़ा; पट्टी (चीर-आभूषण; विरहिणी का मलिन चीर; घाव पर बाँधने के लिए 2 इंच की चीर)

छाया=परछाँई; छाँह; क्षीण आभास; चित्र का हलका रंग (कुर्सी की छाया; घने वृक्ष की छाया में; सभ्यता की छाया; चित्र में छाया एवं प्रकाश)

छोड़ना=पकड़ से अलग करना; छुटकारा देना; अपराध क्षमा करना; परित्याग करना, साथ न लेना; वेग से वस्तु फेंकना (=तितली को छोड़ दो; पिल्ले को कहाँ छोड़ दिया; बेचारे को माफ़ी माँगने पर छोड़ भी दो; पति को छोड़ दिया; उसे छोड़ो, हम चलें; बन्दूक़ से गोली छोड़ो)

जड़=अचेतन; मूर्ख; ठिठुरा हुआ; मूल; नींव; कारण (जड़-चेतन सृष्टि; जड़ लोग; अत्यधिक ठंड से जड़ हुई उँगलियाँ; वृक्ष की जड़; बात की जड़; झगड़े की जड़)

झाड़=पौधे की झाड़ी; रोशनी का झाड़; डाँट-डपट; मन्त्रोपचार (गुलाब का झाड़; सौ झाड़ोंवाली बरात; नौकर को झाड़ लगाना; नीम की टहनी से झाड़ लगाना)

टाँका=सिलाई; धातुएँ जोड़ने का मसाला; घाव की सिलाई (जूते/कुर्ते के टाँके; अँगूठी में टाँके की मात्रा; ऑपरेशन के टाँके)

ठाकुर=देवमूर्ति; ज़मींदार; क्षत्रिय; स्वामी; नाइयों की उपाधि; बंगाली ब्राह्मणों की उपाधि (ठाकुर जी की पूजा; ठाकुर साहब के खेत; ठाकुर जाति का; ग़रीबों के ठाकुर; नाई की बरात में सभी ठाकुर, हुक्का कौन भरे; रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

डंडी=पतली लकड़ी; मुठिया; डाँड़ी; वृक्ष-नाल (मरम्मत के लिए एक डंडी लाओ; अच्छी-सी डंडीवाली छड़ी; डंडीमार बनिया; आम की डंडी पर लगे बौर)

ढीला=तनाव/कसाव-रहित; शिथिल; पतला; सुस्त (सितार के ढीले तार; ढीली पकड़; ढीला घोल; ढीला नौकर)

तार=धातु-तागा; टेलीग्राम; सूत; संगीत-सप्तक (सोने-चाँदी का तार; ख़ुशी का तार; महीन तार का कपड़ा; तार सप्तक)

दंड=डंडा; डंडे के आकार की वस्तु; विशिष्ट कसरत; सज़ा (ध्वज दंड; भुजदंड/मेरुदंड; दंड-बैठक; अर्थदंड)

दल=भाग; पौधे के पत्ते; फूल की पंखड़ी; झुंड; मंडली; सेना (द्विदलवाले अन्न का आहार; तुलसीदल; पुष्पदल; टिड्डीदल; संन्यासीदल; कौरवदल)

दस्ता=मूठ; पुष्पगुच्छ; गारद; 24 कागज़ (छुरी का दस्ता; गुलदस्ता; पुलिस का एक दस्ता; एक दस्ता कागज़)

दिल=रक्तसंचारक/हृदय; मन; साहस; इच्छा (दिल की धड़कन; दिल में सोचा; बड़े दिलवाला पहलवान; दिल से काम करना)

धन=सम्पत्ति; जीवन-सर्वस्व; + चिह्न; मूल पूँजी (धन-दौलत; गोधन,

गजधन बाजिधन और रतन धन धाम; मेरे जीवनधन; पाँच धन (+) छह बराबर (=) ग्यारह; व्यापार में लगा धन)

नाक=नासिका; नासिका-मल; प्रतिष्ठा-वस्तु; अंतरिक्ष; द्विदल का नुकीला भाग (लम्बी नाकवाला आदमी; नाक निकलना; गावस्कर, क्रिकेट की नाक थे; नाकपति इन्द्र; चने/मूँगफली की नाक)

पत्थर=प्रस्तर; सड़क-नाप सूचक; वर्षोपल; रत्न; अत्यन्त कठोर वस्तु; अभाव (लाल पत्थर से बना किला; मील का पत्थर; वर्षा के साथ गिरे पत्थर, अँगूठी में जड़ा बहुमूल्य पत्थर; पत्थर जैसी दाल; इस बारे में तुम क्या पत्थर जानते हो)

3. **समानार्थी/पर्यायवाची शब्द** वे शब्द हैं जो वाच्यार्थ (आशय/अर्थ) की दृष्टि से प्रायः सम लक्षी (समान) होते हैं। सच्चे अर्थों में किसी भाषा में शत-प्रतिशत समानार्थी या पर्यायवाची (Synonyms) शब्द नहीं हुआ करते। **पर्यायता का निर्णय** इन छह बातों के आधार पर किया जाता है—1. **समान सन्दर्भ**—पर्याय शब्द समान भाषिक और भौतिक सन्दर्भों में प्रयोग-क्षमतावाले होते हैं, यथा—पानी (/ जल) पीजिए। इतनी कड़ी धूप में बिना पानी (/ जल) पिए बाहर मत जाओ। 2. **समान अवयव**--पर्याय शब्द समान अवयव/रूपिम प्रयोगवाले होते हैं, यथा—चातुर्य (चतुर+-य)—चतुराई (चतुर+-आई), कालिमा (काला>काल+-इमा)—कालापन (काला+-पन)। 3. **समान घटक**—पर्याय शब्दों के अर्थीय घटक समान होते हैं, यथा—युवक (+मानव+वयस्क+पुरुष)—नौजवान (+मानव+वयस्क+पुरुष)। 4. **समान विलोम**—पर्याय शब्दों के विलोम परस्पर पर्याय होते हैं, यथा—उचित—उपयुक्त (अनुचित—अनुपयुक्त)। 5. **समान उर्वर**—पर्याय शब्द नव शब्द निर्माण में समान रूप से उर्वर होते हैं, यथा – सहिष्णु—सहनशील (सहिष्णुता—सहनशीलता, असहिष्णु—असहनशील)। 6. **समान अर्थ**—पर्याय शब्दों की अर्थ-प्रतीति समान होती है, यथा—कृषक—किसान; गृह—मकान—घर; वायु—हवा; वस्त्र—कपड़ा आदि। भाषा में प्रचलित (तथाकथित) पर्याय इन छह आधारों की पूर्ति नहीं कर पाते, विशेषतः समान या एक ही सन्दर्भ में भाषा एक ही शब्द का प्रयोग/व्यवहार करती है। पर्याय का सम्बन्ध मुख्यतः अर्थ से है, अतः अर्थ की दृष्टि से समान विलोम, समान घटक और समान अर्थवाले शब्दों को पर्याय माना जाता है।

उपर्युक्त विवेचन/कसौटी के आधार पर पर्याय शब्दों के दो भेद हो सकते हैं—1. पर्यायभासी 2. अपूर्ण पर्याय। 1. **पर्यायभासी** या लगभग एकार्थी वे शब्द होते हैं जो अर्थ की दृष्टि से कुछ सन्दर्भों में प्रायः एक-दूसरे का स्थान ले सकते हैं, यथा—मुझे **टेस्ट/परीक्षण** में 20 में से 18 **अंक/नम्बर** मिले। **अँधेरा/अंधकार** छा जाने पर कुछ भी दिखाई नहीं देता। भाषा के सभी सन्दर्भों में बिना अर्थ-परिवर्तन

के एक-दूसरे को स्थानापन्न करनेवाले शब्द ही **पूर्ण एकार्थी** या **पूर्ण पर्याय** कहे जा सकते हैं किन्तु ऐसा भाषा-व्यवहार में सम्भव नहीं है; इसलिए पर्यायभासी शब्दों को पूर्ण पर्याय नहीं कहा जा सकता। 2. **अपूर्ण पर्याय** या लगभग समानार्थी वे शब्द हैं जो अर्थ की दृष्टि से लगभग समानार्थी होते हुए भी वाक्य में अधिकतर एक-दूसरे का स्थान नहीं ले पाते। अपूर्ण/आंशिक पर्याय शब्दों में शैली, विचार, प्रयोग आदि की दृष्टि से अन्तर पाया जाता है। शब्दों के मर्म को समझने/जाननेवाले विद्वान् अपूर्ण पर्यायों के प्रयोग में सूक्ष्म भेद का ध्यान रखते हैं। प्रत्येक शब्द की अपनी अर्थ-छवि होती है जिसके कारण उसका स्थान सदैव दूसरा शब्द नहीं ले पाता। किसी विशेष प्रसग में या विशिष्ट अर्थ-प्राप्ति की दृष्टि से कौन-सा शब्द उपयुक्त रहेगा—इस का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना अच्छा लेखक/वक्ता बनने के लिए उपयोगी रहता है।

व्याकरण की पुस्तकों में संस्कृत भाषा से आगत अनेक पर्याय (पर्यायभासी) शब्दों की सूची दी जाती है। इन पर्यायों का प्रयोग प्रायः कविता में होता है। नाटक, कहानी, निबन्ध रचनादि में इन का प्रयोग कम ही होता है और दैनन्दिन बोलचाल की भाषा में तो बहुत ही कम; अतः पर्यायों को रटवाने में छात्रों का समय और शक्ति का अपव्यय नहीं कराया जाना चाहिए। कविता में अर्थ-सौन्दर्य लाने के लिए पर्यायवाची शब्दों की बहुत आवश्यकता पड़ती है क्योंकि मिलते-जुलते सूक्ष्म भाव-विचारों के लिए एक ही शब्द के बार-बार प्रयोग से अर्थ-रमणीयता में कमी आ जाती है। पर्याय शब्दों के प्रयोग के समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि पर्याय शब्द मूल शब्द से अधिक कठिन न हो, साथ ही ऊपरी दृष्टि से समानार्थी होते हुए भी अर्थान्तर पैदा न करता हो। पर्याय शब्दों का प्रयोग करते समय विषय और प्रसंग का पूरा-पूरा ध्यान रखना अति आवश्यक है। प्रचलित शब्दों का प्रयोग भाव-प्रकाशन में प्रभावोत्पादकता लाता है। साहित्य-बोध और साहित्य-सर्जनात्मकता की दृष्टि से पर्याय शब्दों का अपना महत्त्व है।

लगभग समानार्थी या अपूर्ण पर्याय शब्दों में से प्रयोग में शैली-दृष्टि से एक वाक्य में एक ही शब्द आ सकता है, यथा—कार्यालय में दोपहर के भोजन के लिए आधा घंटे का **अवकाश** रहता है। कार्यालय की **छुट्टी** शाम को पाँच बजे होती है। राधा-कृष्ण का **प्रेम** भारतीयों को प्रेरणादायक है। शीरी-फ़रहाद एक-दूसरे से काफ़ी **मोहब्बत** करते थे। वह अभी **किशोरावस्था** में ही है। प्राचीन आर्य सौ वर्ष की **आयु** भोगने के लिए ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे। पहले पच्चीस वर्ष की **उम्र** में लड़कों की शादी हुआ करती थी। आज्ञा-इजाज़त, अवश्य-ज़रूर, बेशक-निःसन्देह, असीम-बेहद, ख़ूबसूरती-सौन्दर्य का अन्तर शैलीय है। वैचारिक दृष्टि से लगभग समानार्थी या अपूर्ण पर्याय शब्द अर्थ-सूक्ष्मता की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा—पाठशाला-स्कूल-मकतब-मदरसा-शाला-विद्यालय; डॉक्टर-हकीम-वैद्य-कविराज; देखना-घूरना-निहारना-अवलोकन करना।

शैलीय और वैचारिक अन्तर न होने पर भी **परम्परागत प्रयोग-दृष्टि के कारण** अपूर्ण पर्याय या लगभग समानार्थी शब्दों में से एक के स्थान पर दूसरा नहीं आ सकता, यथा—'जलपान' के लिए 'पानीपान/नीरपान' नहीं कहा जा सकता। 'शर्म के मारे मैं पानी-पानी हो गई' में पानी के स्थान पर 'जल/नीर' नहीं आ सकता। हिन्दी भाषा का शब्द भंडार कई स्रोतों से पुष्ट होने के कारण हिन्दी में पर्यायभासी शब्द काफी प्रचलित हैं। अधिक प्रचलित पर्यायभासी/लगभग एकार्थी कुछ शब्दों की सूची निम्नलिखित है—

अधिक प्रचलित तथाकथित कुछ पर्यायवाची शब्द

अग्नि—आग, आँच, पावक, अनल, वह्नि, दव, कृशानु, ज्वलन, दहन, वैश्वानर, हुताशन

अनोखा—अनुपम, अद्भुत, अनूठा, अद्वितीय, अतुल, अपूर्व

अमृत—सुधा, सोम, अमी, अमिय, पीयूष

अर्जुन—पार्थ, कौन्तेय, धनंजय, कपिध्वज, गुडाकेश

असुर—दैत्य, दानव, दनुज, राक्षस, निशाचर, रजनीचर, तमीचर

अहंकार—अभिमान, गर्व, दर्प, घमण्ड, मद, अहं, दम्भ

आँख—नेत्र, नयन, दृग, लोचन, चक्षु, अक्षि, चख, दीदा, ईक्षण

आकाश—आसमान, नभ, शून्य, गगन, व्योम, अम्बर, अन्तरिक्ष, अनन्त, दिव, अनंत, अभ्र

आनन्द—हर्ष, ख़ुशी, आमोद, प्रमोद, सुख, चैन, प्रसन्नता, उल्लास, विहार

आम—आम्र, रसाल, सहकार, पिकवन्धु, चूत

इच्छा—कामना, अभिलाषा, लालसा, आकांक्षा, उत्कंठा, मनोरथ

इन्द्र—देवराज, सुरपति, देवेन्द्र, महेन्द्र, शचीपति, शक्र, पुरन्दर, सहस्राक्ष, मघवा, पुरहूत, पाकशासन, पाकरिपु

इन्द्राणी—इन्द्रवधू, ऐन्द्री, माहेन्द्री, शची, इन्द्रा

ईश्वर—परमात्मा, प्रभु, भगवान, परमेश्वर, परमेश, जगत्पिता, जगदीश, जगदीश्वर, पारब्रह्म, जगन्नाथ, अगोचर, अनादि, अलख

कपड़ा—वस्त्र, वसन, पट, चीर, दुकूल, अम्बर

कमल—जलज, पंकज, सरोज, नीरज, अम्बुज, पद्म, पुंडरीक, कोकनद, सरसिज, अरविन्द, राजीव, शतदल, इन्दीवर, नलिन, उत्पल

कामदेव—अनंग, मदन, मन्मथ, काम, मनोज, मनसिज, रतिपति, रतिसखा, कन्दर्प, मीनकेतु, कुसुमबाण, पुष्पचाप, पंचशर

किरण—कर, किरन, रश्मि, मयूख, मरीचि, अंशु

कुबेर—किन्नर-नरेश, यक्षराज, धनाधिपति, धनाधिप, अलकाधिपति, धनद

कोयल—कोकिल, पिक, वसन्तदूत, परभूत

क्रोध—कोप, रोष, गुस्सा, आक्रोश, अमर्ष

कौआ—काक, काग, वायस, पिशुन

कृष्ण—हरि, ब्रजेश, मुरलीधर, वंशीधर, कंसारि, गोपाल, ब्रजराज, यदुनाथ, राधारमण, द्वारिकाधीश

खल—दुष्ट, अधम, नीच, पामर, कुटिल, धूर्त, दुर्जन

गंगा—भागीरथी, सुरसरि, जाह्नवी, त्रिपथगा, देवनदी

गधा—गर्दभ, रासभ, खर, वैशाखनन्दन

गणेश—गणपति, गजानन, लम्बोदर, विनायक, मोदकप्रिय, गिरिजानन्दन, भवानीनन्दन, गणाधिप, विघ्ननाशक, गौरीसुत

घर—गृह, गेह, भवन, निकेत, सदन, मकान, आलय, आगार, आवास, अयन, निलय, निकेतन, ओक, आयतन, निकेतशाला, धाम

घोड़ा—अश्व, हय, बाजि, घोटक, तुरंग, सैन्धव

चतुर—पटु, कुशल, निपुण, प्रवीण, योग्य, दक्ष, विज्ञ, नागर

चन्द्रमा—चन्द्र, चाँद, सुधांशु, शशि, निशाकर, निशापति, मयंक, हिमांशु, राकेश, सुधाकर, कलानिधि, सोम, सारंग, इन्दु, विधु, मृगांक, कलाधर, शशांक, हिमकर, रजनीपति

चाँदनी—चन्द्रिका, ज्योत्स्ना, कौमुदी, चन्द्रप्रभा

जमुना—यमुना, कालिन्दी, रविसुता, तरणिजा, सूर्यसुता, अर्कजा

जल—पानी, नीर, सलिल, तोय, अम्बु, जीवन, वारि, पय, रस, सारंग

तलवार—चन्द्रहास, खड्ग, कृपाण, असि, करवाल

तालाब—ताल, सरोवर, सर, तड़ाग, जलाशय, पुष्कर, पद्माकर

दास—सेवक, चाकर, नौकर, भृत्य, किंकर, अनुचर

दिन—दिवस, दिवा, वासर, वार

दुःख—कष्ट, पीड़ा, क्लेश, वेदना, संताप, क्षोभ, यातना

दुर्गा—कालिका, चंडी, चंडिका, कल्याणी, चामुंडा, सिंहवाहिनी, रोहिणी, अजा, धात्री, कामाक्षी, सुभद्रा

देवता—देव, सुर, अमर, अमर्त्य, आदित्य, अज, त्रिदश, निर्जर

द्रव्य—धन, दौलत, वित्त, सम्पत्ति, सम्पदा, विभूति

नदी—सरिता, तटिनी, तरंगिणी, निम्नगा, आपगा

नरक—यमपुर, यमलोक, यमालय, दुर्गति, संघात

नाव—नौका, तरिणी, जलयान, जलवाहन, पतंग, बेड़ा, जलपात्र

पक्षी—खग, विहग, पखेरू, परिन्दा, द्विज, अंडज, शकुनि

पंडित—विद्वान्, विज्ञ, बुध, सुधी, मनीषी, प्राज्ञ, कोविद, धीर

पति—भर्ता, भरतार, स्वामी, वल्लभ, बालम

पत्नी—भार्या, सहधर्मिणी, प्राणप्रिया, प्रिया, कलत्र, वधू, बहू, वामा

पत्थर—प्रस्तर, पाहन, पाषाण, शिला, उपल

पहाड़—पर्वत, गिरि, शैल, नग, अचल, भूधर, महीधर

पार्वती—उमा, भवानी, दुर्गा, सती, शैलसुता, सर्वमंगला, आर्या, अर्पणा

पुत्र—बेटा, सुत, पूत, तनय, तनुज, आत्मज, लड़का, नन्द

पुत्री—बेटी, सुता, तनया, तनुजा, आत्मजा, लड़की, कन्या, दुहिता

पुष्प—फूल, सुमन, कुसुम, प्रसून, लतान्त, मंजरी

पेड़—वृक्ष, विटप, पादप, द्रुम, तरु, पर्णी, शाल

प्रकाश—ज्योति, चमक, द्युति, उजाला, आलोक, प्रभा, दीप्ति, तेज, छवि

प्रेम—स्नेह, प्यार, प्रीति, अनुराग, राग

पृथ्वी—भू, धरा, धरणी, धरित्री, अवनि, वसुंधरा, धरती, भूमि, अचला, मही, मेदिनी, ज़मीन, जगती

बन्दर—बानर, कपि, मर्कट, शाखामृग, हरि

बाण—शर, तीर, सायक, शिलीमुख

बादल—मेघ, जलधर, वारिद, पयोद, पयोधर, नीरद, जलद, घन, अंबुद, जगजीवन

बिजली—चंचल, चपला, चंचला, विद्युत, दामिनी, सौदामिनी, क्षणप्रभा, अशनि

ब्रह्मा—स्वयंभू, चतुरानन, विधाता, प्रजापति, विरंचि, पितामह, अज, आत्मभू, हिरण्यगर्भ, आत्मभू, सदानन्द, लोकेश

ब्राह्मण—विप्र, भूदेव, द्विज, अग्रजन्मा, गुरु

भौंरा—भ्रमर, अलि, मधुप, मधुकर, शिलीमुख, मिलिन्द

मछली—मीन, मत्स्य, सख, मकर, अंडज, शकुची, जलजीवन

महादेव—शिव, शंकर, हर, पशुपति, गिरीश, त्रिलोचन, नीलकंठ, भूतनाथ, पिनाकी, कैलाशनाथ

मोर—मयूर, केकी, सारंग, नीलकंठ, भुजंग, अहिभक्षी

मोक्ष—कैवल्य, निर्वाण, मुक्ति, परमपद, परमधाम

यम—धर्मराज, दंडधर, हरि, जीवितेश, जीवनपति, शमन

रमा—इन्दिरा, लक्ष्मी, कमला, पद्मा, श्री, समुद्रजा, हरिप्रिया

राजा—नृपति, नृप, नरेश, नरपति, महीपति, भूपति, सम्राट्, नरेन्द्र, भूप, भूपाल

रावण—दशानन, दशवदन, दशकंठ, दशकंध, लंकेश, लंकाधिपति

वन—बन, अरण्य, विपिन, कानन, जंगल

विष्णु—चक्रपाणि, केशव, माधव, लक्ष्मीपति, चतुर्भुज, मुकुन्द, पीतांबर, गोविन्द, मधुरिपु, जलशायी, शेषशायी

शरीर—देह, तन, वपु, गात, अंग, कलेवर, विग्रह, मूर्ति, घट, काय

सब—सम्पूर्ण, पूर्ण, सर्व, सकल, कुल, तमाम, समस्त, अखिल, निखिल

समुद्र—सागर, सिन्धु, उदधि, पयोधि, रत्नाकर, जलधि, जलनिधि, वारिधि, पारावार, नीरनिधि

समूह—वृन्द, राशि, दल, जत्था, झुंड, मंडली, गण, संघ

सरस्वती—भारती, गिरा, वाणी, शारदा, वागेश्वरी, वीणावादिनी, महाश्वेता, वाचा, इला, भाषा

सर्प—साँप, अहि, भुजंग, उरग, नाग, फणी, मणी, विषधर, सारंग

सिंह - शेर, मृगराज, मृगेन्द्र, केहरि, केशरी, नाहर, वनपति, बहुबल

सुन्दर—मनोहर, रमणीक, ललित, ललाम, चित्ताकर्षक, आकर्षक, कमनीय, रंजक

सूर्य रवि, सूरज, दिनकर, दिवाकर, प्रभाकर, भास्कर, मार्तण्ड, मरीची

सेना—फ़ौज, चमू, दल, कटक, अनी

सोना—स्वर्ण, कंचन, कनक, हेम, हिरण्य, जातरूप

स्त्री—अबला, नारी, वनिता, ललना, कान्ता, रमणी, कामिनी, औरत, कलत्र

स्वर्ग—सुरलोक, देवलोक, नाक

हवा—पवन, वायु, समीर, वात, अनिल, समीरण, प्रकम्पन

हाथी—गज, द्विपु, हस्ती, कुंजर, दंती, नाग, कुम्भी, मातंग, करि, गयन्द, सिंधुर, त्रितुंड

अपूर्ण पर्याय/लगभग समानार्थी कुछ अधिक प्रचलित शब्दों की सूची उन के सूक्ष्म अर्थ-भेद और प्रयोग-संकेत के साथ दी जा रही है।

अपूर्ण पर्याय/लगभग समानार्थी शब्द

1. **अज्ञात**=जो ज्ञात न हो किन्तु जिसे जाना जा सके। (उस की आत्महत्या का कारण अभी **अज्ञात** है)

अज्ञेय=जो जाना न जा सके। (परमात्मा **अज्ञेय** है)

2. **अज्ञान**=नासमझ। (छोटे बच्चे सांसारिक बातों के बारे में **अज्ञान** होते हैं)

अनभिज्ञ=अनुभवहीन पूर्णज्ञान-रहित (हिन्दी से **अनभिज्ञ** लोग ही अँगरेज़ी का गुणगान करते हैं)

अज्ञ=जो जानता न हो।

3. **अभिमान**=स्वयं को दूसरों से बड़ा समझना। (उसे अपनी सुन्दरता पर बड़ा **अभिमान** है)

अहंकार=स्वयं का अवांछित महत्त्व देना/अपने गुणों को सर्वाधिक समझ कर गर्व करना। (रावण का **अहंकार** उसे ले डूबा)

4. **अभिनन्दन**=बड़ों को विधिवत् दिया गया सम्मान।

स्वागत=किसी के आने पर दिया गया सम्मान।

5. **अमूल्य**=मूल्य से भी अप्राप्त वस्तु।

बहुमूल्य=बहुत मूल्यवान वस्तु।

6. **आयु**=जीवन का सम्पूर्ण समय। (शिवाजी ने अपनी समस्त **आयु** राष्ट्र को अर्पित कर दी थी)

अवस्था=जीवन-वर्ष। (उस की **अवस्था** इस समय 16 वर्ष है)

वय—आयु का पूर्ण हुआ अंश। (वे **वयोवृद्ध** हैं, ये ज्ञानवृद्ध)

उम्र=आयु, वय, अवस्था

7. **आधि**=मानसिक कष्ट/पीड़ा (बेटी के ब्याह की चिन्ता मेरे लिए बड़ी **आधि** है)

व्याधि=शारीरिक कष्ट/पीड़ा (बुढ़ापे में अनेक **व्याधियाँ** शरीर पर आक्रमण करने लगती हैं।

8. **आतंक**=विविध कष्ट-आशंका के कारण मानसिक दृष्टि से भयभीत। (भारत में आज भी जनता पर पुलिस का **आतंक** है)

भय=अनिष्ट-चिन्ता से उत्पन्न मानसिक विकार। (साँप से मुझे बहुत **भय** लगता है)

9. **अस्त्र**=फेंके जानेवाला हथियार। (बाण **अस्त्र** है)

शस्त्र=हाथ में रहनेवाला हथियार। (गदा, तलवार, लाठी शस्त्र हैं)

आयुध=युद्ध के विविध हथियार

हथियार=अस्त्र-शस्त्र

10. **असाधारण**=सामान्य से अधिक। (भीम में **असाधारण** बल था)

अलौकिक=जो सांसारिक न हो। (धर्मग्रन्थों में अवतारों के **अलौकिक** कार्यों की भरमार है)

11. **अवकाश**=कार्य-मध्य का सामान्य अन्तराल। (आज वह आकस्मिक **अवकाश** पर है)

छुट्टी=कार्य-बन्धन मुक्ति अवसर। (चलो, इन की चखचख से **छुट्टी** मिली)

12. **अनुच्छेद**=पैराग्राफ़। (इस लेख का अन्तिम **अनुच्छेद** बहुत मार्मिक है)

परिच्छेद सर्ग, अध्याय। (उस पुस्तक के सभी **परिच्छेद** रोचक हैं)

अध्याय=गद्य ग्रन्थ के परिच्छेद। (इस पुस्तक में 32 **अध्याय** हैं)

सर्ग=काव्य ग्रन्थ के परिच्छेद। (महाकाव्य में कम से कम आठ **सर्ग** होते हैं)

13. **अर्चना**=विधि-विधानयुत पूजा। (बहुत-से लोग शक्ति प्राप्ति हेतु देवी **अर्चना** करते हैं)

पूजा=सामान्य पूजन। (मेरी छोटी बहन **पूजा** में एक घंटा लगा देती है)

14. **अनुयायी**=किसी के विचारों को माननेवाला। (महात्मा गान्धी का सच्चा **अनुयायी** बिरला ही होगा)

सेवक=सेवा करनेवाला। (दीनों के **सेवक** ईश्वर-प्रिय होते हैं)

अनुचर=स्वामी की इच्छा के अनुरूप कार्य करनेवाला। (हनुमान जीवन भर राम के **अनुचर** बने रहे)

15. **अनुसंधान**=अच्छी तरह जाँच-पड़ताल कर वास्तविक बात का पता लगाना। (वे किस विषय पर **अनुसंधान** कर रहे हैं)

आविष्कार=पहले से अज्ञात वस्तु या बात को प्रत्यक्ष करना। (एडिसन ने कई आविष्कार किए थे)

16. **अपराध**=विधि-विधान के विरुद्ध दंडनीय कार्य। (चोर को चोरी के **अपराध** की सज़ा मिलनी ही चाहिए)

पाप=बुरा माना जानेवाला और अशुभ फल देनेवाला कार्य। (समाज में झूठ बोलना **पाप** माना जाता है)

17. **अभिभाषण**=लिखित व्याख्यान। (राष्ट्रपति गणतन्त्र दिवस की पूर्व सन्ध्या पर अपना **अभिभाषण** पढ़ते हैं)

भाषण= मौखिक व्याख्यान। (सुभाषचन्द्र बोस का **भाषण** बड़ा प्रभावशाली होता था)

प्रवचन=धार्मिक व्याख्यान। (कल 'गीता' पर पुजारी जी का **प्रवचन** होगा)

18. **अन्तःकरण**=मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार की समष्टि/सद्-असद् का ज्ञान करानेवाली इन्द्रिय। (मेरा **अन्तःकरण** रिश्वत माँगने की आज्ञा नहीं देता)

चित्त=स्मृति, विस्मृति, स्वप्न आदि की समष्टि/चिन्तन करनेवाली इन्द्रिय (माँ की सीख मेरे **चित्त** में बस गई है)

हृदय=मनोविकारयुत ज्ञानेन्द्रिय (बच्चों का **हृदय** निश्छल हुआ करता है)

मन=संकल्प-विकल्प करनेवाली अन्तःकरण की वृत्ति। (मैं क्या जानूँ तुम्हारे **मन** में क्या है)

19. **अद्भुत**=विस्मयजनक। (अय्यारी तथा तिलस्मी उपन्यासों में **अद्भुत** घटनाओं का वर्णन होता है)

अपूर्व=जिस का पहले से अनुभव न किया गया हो। (न्याग्रा फॉल का **अपूर्व** सौन्दर्य देख कर मेरी आँखें तृप्त हो गईं)

अनुपम=उपमा-रहित/बेजोड़। (सीता का सौन्दर्य **अनुपम** था)

विचित्र=कई रंगोंवाला। (गणतन्त्र दिवस पर **विचित्र** वेशभूषा पहने लोगों को देखा जा सकता है)

30. **आज्ञा**=बड़ों द्वारा छोटों को किसी कार्य के लिए कहना। (सेवक को **आज्ञा** दीजिए और सब काम समय पर पूरे हो जाएँगे)

अनुमति=प्रार्थना करने पर बड़ों द्वारा दी गई सहमति। (यदि आप की **अनुमति** हो तो मैं भी कुछ निवेदन करूँ)

आदेश=कार्याधिकारी द्वारा दी गई आज्ञा। (अधिकारी के हस्ताक्षरों के बिना कोई भी कार्यालय-**आदेश** वैध नहीं माना जाता)

21. **आवेदन**=किसी कार्य हेतु निजी विशेषताओं के साथ प्रार्थना करना। (सचिव पद के लिए कई **आवेदन** पत्र प्राप्त हुए हैं)

निवेदन=अन्य के इच्छानुकूल विनम्रतायुक्त स्व-विचार प्रस्तुति। (**निवेदन** है कि इस मामले में आप व्यक्तिगत रुचि लेने की कृपा करें)

प्रार्थना=किसी कार्य हेतु विनम्र भाव से इच्छा प्रकट करना। (छुट्टी पर जाने से पूर्व तुम्हें **प्रार्थना पत्र** देना होगा)

22. **ईर्ष्या**=पर-सुख से दुःखी होना। (उस की सुन्दर पत्नी को देख कर तुम्हें क्यों **ईर्ष्या** होती है)

द्वेष=किसी के प्रति स्थायी ईर्ष्या रखना। (पाकिस्तान का जन्म ही भारत-**द्वेष** से हुआ है)

स्पर्धा=पर-प्रयत्न से बढ़ कर प्रयत्न करना। (विज्ञान के क्षेत्र में हम **स्पर्धा** से ही कुछ पा सकते हैं)

23. **इच्छा**=किसी वस्तु के प्रति मन की लगन का भाव। (हमारी **इच्छाएँ** अनन्त हैं)

उत्कंठा=प्रतीक्षायुक्त प्राप्ति की तीव्र इच्छा। (परीक्षा-परिणाम जानने की बच्चों को बड़ी **उत्कण्ठा** है)

आशा प्राप्ति की सम्भावना हेतु इच्छा का समन्वय। (मुझे तुम से ऐसी **आशा** नहीं थी कि तुम किसी और की हो जाओगी)

कामना=मन की इच्छा। (मेरी **कामना** है कि तुम्हारी विजय हो)

24. **भार्या**=पत्नी। (अनेक पुरुष अपनी **भार्या** के सहयोग से महापुरुष बने हैं)

महिला=कुलीन नारी। (भारतीय **महिलाओं** ने देश की प्रगति के कई क्षेत्रों में अपूर्व सहयोग दिया है)

स्त्री=नारी वर्ग। (वेद काल की **स्त्रियों में** पर्दा-प्रथा नहीं थी)

पत्नी=स्व-विवाहिता। (आप की **पत्नी** का नाम क्या है)

25. **भक्ति**=देवतादि के प्रति उत्पन्न पूज्य भाव। (सूरदास के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य **भक्ति** थी)

श्रद्धा=बड़ों के गुणों के आधार पर उत्पन्न भावना। (महात्मा गांधी क प्रति लोगों में आज भी **श्रद्धा** है)

स्नेह=अनुराग/प्रेम। (राखी भाई-बहन के **स्नेह** का प्रतीक है)

प्रेम=प्यार। (गोपियाँ बचपन से ही कृष्ण से **प्रेम** करती थीं)

वात्सल्य=छोटों के प्रति बड़ों का स्नेह। (माँ बड़ी उम्र के बच्चों के प्रति भी **वात्सल्य** भाव रखती है)

26. **कष्ट**=मन में होनेवाला वह अप्रिय अनुभव जिस से मनुष्य बचना या छुटकारा पाना चाहता है। (पता नहीं, इस कमर दर्द के **कष्ट** से कब मुक्ति मिलेगी)

क्लेश=मानसिक वेदना। (रोज़-रोज़ की **क्लेश** से तो अच्छा है एक दिन जी भर कर मन की भड़ास निकाल लो)

क्षोभ=अनिष्ट के कारण उत्पन्न क्रोधजन्य व्याकुलता। (तुम्हारे अभद्र व्यवहार पर मुझे बहुत **क्षोभ** है)

खेद=किसी उचित, आवश्यक या प्रिय बात के न होने पर मन में होनेवाला दुःख। (एक घंटा देर से पहुँचने पर मुझे **खेद** है)

दुःख=किसी के अभाव का अनुभूतिजन्य कष्ट। (यहाँ आ कर भी आप के दर्शन न कर पाने का मुझे **दुःख** है)

पश्चाताप=स्व-त्रुटि पर उत्पन्न खेद। (तुम्हें गाली देने पर उसे **पश्चाताप** है)

विषाद=अत्यधिक मानसिक कष्ट या पीड़ा। (कैकेयी के दोनों वर दशरथ के लिए **विषाद** जनक थे)

व्यथा=आघात जन्य कष्ट या पीड़ा। (पत्थर से चोट लगने पर बुड्ढे को बड़ी **व्यथा** हुई)

शोक=प्रिय की मृत्यु से उत्पन्न कष्ट। (दशरथ-मृत्यु पर सारी अयोध्या **शोक**-मग्न हो गई)

27. **करुणा**=मन का वह दुःखद भाव जो दूसरों के कष्ट देखने से उत्पन्न होता है और जो उन कष्टों को दूर करने की प्रेरणा देता है। (आग में फँसे हुए बच्चों की चीखों से लोगों के हृदय **करुणा** पूर्ण हो गए)

सहानुभूति= किसी का दुःख देखकर उसी की तरह दुःखी होना। (पड़ोसी के पिता की मृत्यु पर तुम्हें कुछ तो **सहानुभूति** प्रकट करनी चाहिए)

सह-अनुभूति=किसी की अनुभूति का सहभागी होना। (पति-पत्नी में **सह-अनुभूति** भाव रहना चाहिए)

दया = निर्बलों के प्रति किया जानेवाला उपकार । (सभी जीवों पर **दया** करनी चाहिए)

कृपा = छोटों के प्रति किया जानेवाला उपकार । (मेरी कुटिया में पधार कर आप ने महान् **कृपा** की)

28. **प्रलाप** = निरर्थक बातें । (बहुत-से लोग आत्मश्लाघा में **प्रलाप** किया करते हैं)

विलाप = दुःख में रोना । (माँ-बाप की एकसाथ मृत्यु होने पर बच्ची का **विलाप** सीमातीत था)

आलाप = बातचीत/सम्भाषण । (उन दोनों के मध्य बहुत देर से **आलाप** चल रहा है ।)

29. **तृप्ति** = इच्छा-पूर्ति से उत्पन्न शान्तिभाव । (कल किए गए भोजन से हमें बड़ी **तृप्ति** मिली)

सन्तोष = उपलब्ध धन आदि से उत्पन्न शान्ति-भाव । (मुझे तो 120/- में भी **सन्तोष** था, 1200/- में भी और 3700/- में भी)

सन्तुष्टि = सन्तोष-प्राप्ति का भाव । (अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, मुझे ऐसे रहने में पूर्ण **संतुष्टि** है)

30. **सामान** = व्यक्तिगत वस्तुएँ । (घर का/खाने-पीने का/यात्रा का **सामान**/ फ़ैक्ट्री से 50 हज़ार का **सामान** चोरी चला गया)

माल = व्यापार/उत्पादन की वस्तुएँ/धन-दौलत । (**माल**गाड़ी, कच्चा **माल**, **माल** उड़ाना, **माल**मता, **माल**दार, माला**माल** । डकैतों के लिए सम्पन्न यात्री; स्त्री-लोलुप के लिए सुन्दर लड़की/महिला; शराबी के लिए शराब '**माल**' है)

31. **स्वीकार** = स्वयं के लिए प्राप्त करना । (उसे आप की बात **स्वीकार** है । यह छोटी-सी भेंट **स्वीकार** कीजिए)

स्वीकृति = प्रस्ताव, शर्तें आदि मान लेने का भाव । (बच्चों को अपनी बात कहने की **स्वीकृति** दीजिए । उन की **स्वीकृति** मिलते ही····)

स्वीकृत = अन्य के लिए मंजूरी/स्वीकृति देना । (पाँच दिन का आकस्मिक अवकाश **स्वीकृत** करें)

32. **कक्षा** = Class (प्रथम **कक्षा**/पाँचवीं **कक्षा**···)

वर्ग = Section (**वर्ग**-संघर्ष/उच्च या निम्न **वर्ग**/छठी कक्षा के सी **वर्ग** के छात्र····)

श्रेणी = Division (प्रथम या द्वितीय **श्रेणी** में उत्तीर्ण होना आवश्यक है)

दरजा = Class/Division (अव्वल **दरजे** का = श्रेष्ठ)

33. **रास्ता** = गन्तव्य स्थान तक की दूरी; गन्तव्य तक का गमन-मार्ग (**रास्ता** चौड़ा/सँकरा नहीं होता । अपने **रास्ते** पर चलो । मैं बाज़ार का **रास्ता** भूल

25. **भक्ति**=देवतादि के प्रति उत्पन्न पूज्य भाव। (सूरदास के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य **भक्ति** थी)

श्रद्धा=बड़ों के गुणों के आधार पर उत्पन्न भावना। (महात्मा गांधी के प्रति लोगों में आज भी **श्रद्धा** है)

स्नेह=अनुराग/प्रेम। (राखी भाई-बहन के **स्नेह** का प्रतीक है)

प्रेम=प्यार। (गोपियाँ बचपन से ही कृष्ण से **प्रेम** करती थीं)

वात्सल्य=छोटों के प्रति बड़ों का स्नेह। (माँ बड़ी उम्र के बच्चों के प्रति भी **वात्सल्य** भाव रखती है)

26. **कष्ट**=मन में होनेवाला वह अप्रिय अनुभव जिस से मनुष्य बचना या छुटकारा पाना चाहता है। (पता नहीं, इस कमर दर्द के **कष्ट** से कब मुक्ति मिलेगी)

क्लेश=मानसिक वेदना। (रोज़-रोज़ की **क्लेश** से तो अच्छा है एक दिन जी भर कर मन की भड़ास निकाल लो)

क्षोभ=अनिष्ट के कारण उत्पन्न क्रोधजन्य व्याकुलता। (तुम्हारे अभद्र व्यवहार पर मुझे बहुत **क्षोभ** है)

खेद=किसी उचित, आवश्यक या प्रिय बात के न होने पर मन में होनेवाला दुःख। (एक घंटा देर से पहुँचने पर मुझे **खेद** है)

दुःख=किसी के अभाव का अनुभूतिजन्य कष्ट। (यहाँ आ कर भी आप के दर्शन न कर पाने का मुझे **दुःख** है)

पश्चाताप=स्व-त्रुटि पर उत्पन्न खेद। (तुम्हें गाली देने पर उसे **पश्चाताप** है)

विषाद=अत्यधिक मानसिक कष्ट या पीड़ा। (कैकेयी के दोनों वर दशरथ के लिए **विषाद** जनक थे)

व्यथा=आघात जन्य कष्ट या पीड़ा। (पत्थर से चोट लगने पर बुड्ढे को बड़ी **व्यथा** हुई)

शोक=प्रिय की मृत्यु से उत्पन्न कष्ट। (दशरथ-मृत्यु पर सारी अयोध्या **शोक**-मग्न हो गई)

27. **करुणा**=मन का वह दुःखद भाव जो दूसरों के कष्ट देखने से उत्पन्न होता है और जो उन कष्टों को दूर करने की प्रेरणा देता है। (आग में फँसे हुए बच्चों की चीखों से लोगों के हृदय **करुणा** पूर्ण हो गए)

सहानुभूति=किसी का दुःख देखकर उसी की तरह दुःखी होना। (पड़ोसी के पिता की मृत्यु पर तुम्हें कुछ तो **सहानुभूति** प्रकट करनी चाहिए)

सह-अनुभूति=किसी की अनुभूति का सहभागी होना। (पति-पत्नी में **सह-अनुभूति** भाव रहना चाहिए)

दया=निर्बलों के प्रति किया जानेवाला उपकार । (सभी जीवों पर **दया** करनी चाहिए)

कृपा=छोटों के प्रति किया जानेवाला उपकार । (मेरी कुटिया में पधार कर आप ने महान् **कृपा** की)

28. **प्रलाप**=निरर्थक बातें । (बहुत-से लोग आत्मश्लाघा में **प्रलाप** किया करते हैं)

विलाप=दुःख में रोना । (माँ-बाप की एकसाथ मृत्यु होने पर बच्ची का **विलाप** सीमातीत था)

आलाप=बातचीत/सम्भाषण । (उन दोनों के मध्य बहुत देर से **आलाप** चल रहा है ।)

29. **तृप्ति**=इच्छा-पूर्ति से उत्पन्न शान्तिभाव । (कल किए गए भोजन से हमें बड़ी **तृप्ति** मिली)

सन्तोष=उपलब्ध धन आदि से उत्पन्न शान्ति-भाव । (मुझे तो 120/- में भी **सन्तोष** था, 1200/- में भी और 3700/- में भी)

सन्तुष्टि=सन्तोष-प्राप्ति का भाव । (अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, मुझे ऐसे रहने में पूर्ण **संतुष्टि** है)

30. **सामान**=व्यक्तिगत वस्तुएँ । (घर का/खाने-पीने का/यात्रा का **सामान**/फ़ैक्ट्री से 50 हज़ार का **सामान** चोरी चला गया)

माल=व्यापार/उत्पादन की वस्तुएँ/धन-दौलत । (**माल**गाड़ी, कच्चा **माल**, **माल** उड़ाना, **माल**मता, **माल**दार, माला**माल** । डकैतों के लिए सम्पन्न यात्री; स्त्री-लोलुप के लिए सुन्दर लड़की/महिला; शराबी के लिए शराब '**माल**' है)

31. **स्वीकार**=स्वयं के लिए प्राप्त करना । (उसे आप की बात **स्वीकार** है । यह छोटी-सी भेंट **स्वीकार** कीजिए)

स्वीकृति=प्रस्ताव, शर्तें आदि मान लेने का भाव । (बच्चों को अपनी बात कहने की **स्वीकृति** दीजिए । उन की **स्वीकृति** मिलते ही····)

स्वीकृत=अन्य के लिए मंजूरी/स्वीकृति देना । (पाँच दिन का आकस्मिक अवकाश **स्वीकृत** करें)

32. **कक्षा**=Class (प्रथम **कक्षा**/पाँचवीं **कक्षा**···)

वर्ग=Section (**वर्ग**-संघर्ष/उच्च या निम्न **वर्ग**/छठी कक्षा के सी **वर्ग** के छात्र····)

श्रेणी=Division (प्रथम या द्वितीय **श्रेणी में** उत्तीर्ण होना आवश्यक है)

दरजा=Class/Division (अव्वल **दरजे** का=**श्रेष्ठ**)

33. **रास्ता**=गन्तव्य स्थान तक की दूरी; गन्तव्य तक का गमन-मार्ग (**रास्ता** चौड़ा/सँकरा नहीं होता । अपने **रास्ते** पर चलो । मैं बाज़ार का **रास्ता** भूल

गया। कोई-न-कोई **रास्ता** निकल ही आएगा। दुश्मन को अपने **रास्ते** से हटाना ही होगा)

सड़क=भौतिक अर्थ में प्रयुक्त मार्ग (**सड़क** पर मोटर/बग्घी/भीड़····। यह **सड़क** कहाँ जाती है अर्थात् इस **सड़क** पर चल कर कहाँ पहुँचेंगे। जी० टी० **रोड** काफी लंबी है। मैं इस **सड़क** का नाम भूल गया हूँ। यह **सड़क** काफी चौड़ी/सँकरी है)

मार्ग=रास्ते का संस्कृत रूप। (**मार्ग**दर्शक; लम्बा **मार्ग**; सन्**मार्ग**)

पथ=रास्ते का संस्कृत रूप। (**पथ** प्रदर्शक; आजकल कुछ सड़कों के नाम 'मार्ग/**पथ**' शब्दयुक्त रखे जाने लगे हैं, यथा– डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मार्ग; राजपथ; महात्मा गांधी मार्ग)

34. **सबक**=पाठ्यपुस्तक के lesson के अर्थ में आजकल इस का प्रयोग कम हो गया है, मुहावरेदार प्रयोग में यह शब्द 'शिक्षा' अर्थ में अधिक प्रयुक्त (**सबक** सिखाना/मिलना/लेना)

पाठ=पाठ्यपुस्तक का कोई पाठ। (पुस्तक का पाँचवाँ **पाठ** खोलो)। मुहावरेदार प्रयोग 'पाठ पढ़ाना' प्रचलित।

4. **विलोमार्थी/विपरीतार्थक शब्द**—'अनुलोम' (=ऊपर से नीचे की ओर जानेवाला; स्वाभाविक; नियमित) शब्द का उलटा अर्थ देनेवाला शब्द है—विलोम/प्रतिलोम (Antonym)। किसी भी शब्द के प्रचलित अर्थ के विपरीत अर्थ प्रकट करनेवाला शब्द विलोमार्थी/विपरीतार्थक/विपरीतार्थी/भिन्नार्थी/विपर्याय कहा जाता है, यथा—दिन←→रात; सुख←→दुःख। सामान्यतः एक अनुलोम शब्द का एक ही विलोम शब्द हुआ करता है किन्तु विलोमता के भिन्न आधारों के कारण एक से अधिक विलोम भी हो सकते हैं, यथा—राजा-प्रजा (शासक-शाषित आधार); **राजा-रंक** (धन-आधार); राजा-रानी (लिंग-आधार)।

विलोमार्थी होने के लिए तीन आधार माने जाते हैं—(1) **विषम सन्दर्भ**—भाषिक अथवा भौतिक विषम सन्दर्भों में प्रयुक्त शब्द विलोमार्थी होते हैं, यथा—सूर्य निकलते ही रात का अँधेरा दिन के उजाले में बदल जाता है। (2) **विषम संरचना**—विरोधी तत्त्वों से निर्मित शब्द विलोमार्थी होते हैं, यथा—स्पष्ट-अस्पष्ट, सबल-निर्बल, अकारण-सकारण, सुपुत्र-कुपुत्र, होनी-अनहोनी, लायक़-नालायक़ (3) **विषम घटक**—विरोधी अर्थीय घटकों से युक्त शब्द विलोमार्थी होते हैं, यथा—युवक (+मानव+वयस्क+पुरुष)—**युवती** (+मानव+वयस्क—पुरुष)।

हिन्दी में प्राप्त विलोमार्थी शब्द सभी वाग्भागों से संबंधित हैं, यथा—राम-रावण, जल-थल, आदमी-औरत, उन्नति-अवनति, लाल-हरा, ऊँचा-नीचा, आना-जाना, उठना-बैठना, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे।

हिन्दी में विलोमता इन क्षेत्रों में प्राप्त है—(1) **योनि**—आदमी-जानवर,

मानव-दानव (2) **लिंग**—ताऊ-ताई, राजा-रानी (3) **पद**—उच्च श्रेणी लिपिक—लघु श्रेणी लिपिक (4) **स्थिति**—खड़ा-बैठा, वास्तविक-काल्पनिक (5) **काल**—प्राचीन-अर्वाचीन, आज-कल (6) **गति**—सचल-अचल (7) **अस्तित्व**—हाज़िर-ग़ैरहाज़िर, सबल-निर्बल (8) **मात्रा**—दुर्बल-सबल, अक्लमन्द-कमअक्ल (9) **आकार** सरल-कुटिल, लम्बा-नाटा (10) **रंग**—स्याह-सफ़ेद, काली-गोरी (11) **व्यापकता**—एकदेशीय-सर्वदेशीय, एक भाषा भाषी-बहु भाषा भाषी (12) **आद्यन्त** शुरू-आख़िर, श्रीगणेश-इति (13) **अच्छा-बुरा**—सुपुत्र-कुपुत्र, सच्चरित्र-दुश्चरित्र (14) **सरल-कठिन**—सुगम-दुर्गम, सुकर-दुष्कर (15) **स्व-पर**—स्वकीया-परकीया, अपना-पराया (16) **ऊपर-नीचे**—उत्कर्ष-अपकर्ष, आकाश-पाताल (17) **बाहर-भीतर**—आन्तरिक-बाह्य, अन्तरंग-बहिरंग (18) **अधिक-कम**—ज़्यादा-कम ।

भाषा में प्रचलित सभी शब्दों के विलोम नहीं हुआ करते, यथा—मकान, चाकू, घास, कुर्सी, काग़ज, कपड़ा, सोफ़ा, रेडियो जैसे शब्दों के विलोमार्थी नहीं हुआ करते । विलोम किसी शब्द के विपरीत/विरोधी/उलटे/असमान अर्थ का बोध कराता है जब कि पर्याय किसी शब्द के समान/लगभग समान अर्थ का बोध कराता है, यथा—दिन का विलोमार्थी रात (<रात्रि) है, दिन का पर्याय है—दिवस । अर्थ-विलोम और गठन/संरचना-विलोम प्रधानता के आधार पर विलोम शब्दों के दो प्रकार माने जा सकते हैं—(क) स्वतन्त्र विलोम (ख) सम्बद्ध विलोम ।

(क) **स्वतन्त्र विलोम शब्द** संरचना तथा अर्थ की दृष्टि से स्वतन्त्र होते हैं, यथा—हार-जीत, छोटा-बड़ा, लाभ-हानि । ये शब्द अपने मूल रूप में संरचना स्तर पर असम्बद्ध, स्वाभाविक, स्वतन्त्र होते हैं । इन्हें कुछ लोग **सामान्य विलोम** शब्द भी कहते हैं । इन्हें **युग्म प्रयोगी शब्द** भी कहा जाता है, यथा—अथ-इति, अधिक-कम/न्यून, अपना-पराया, अमृत-विष, आकाश-पाताल, अच्छा-बुरा, अन्धकार-प्रकाश, आदि-अन्त, आगे-पीछे, आय-व्यय, उतार-चढ़ाव, उत्थान-पतन, उत्तम-अधम, उष्ण-शीतल, ऊँचा-नीचा, कच्चा-पक्का/पका, कटु-मधुर, कड़वा-मीठा, कठिन-सरल, कम-ज़्यादा खरा-खोटा, गाय-बैल/साँड़, गुण-दोष, गीला सूखा, घृणा-प्रेम, छोटा-बड़ा, जन्म-मरण/मृत्यु, जड़-चेतन, जीवन-मरण/मृत्यु, झूठ-सच, तीव्र-मन्द, त्याज्य-ग्राह्य, थोड़ा-बहुत, दिन-रात, धनी-दरिद्र, नया-पुराना, नर-मादा, निन्दा-स्तुति, निकट-दूर, पक्का/पका-कच्चा, पाप-पुण्य, प्रश्न-उत्तर, पुरुष-स्त्री, प्रकाश-अन्धकार, प्रसारण-संकोचन, प्राचीन-नवीन/अर्वाचीन, प्रेम-घृणा, बच्चा-बूढ़ा, बहु-अल्प, बाहर-भीतर, माता-पिता, मुख्य-गौण, महँगा-सस्ता, राग-द्वेष, राजा-रंक/रानी, रात-दिन, लाभ-हानि, वृद्ध-बाल, विस्तृत-संक्षिप्त, शत्रु-मित्र, सरल-कठिन, सुख-दुःख, सुबह-शाम, स्त्री-पुरुष, स्वर्ग-नरक, स्तुत्य-निन्द्य, हार-जीत ।

(ख) **सम्बद्ध विलोम शब्द** संरचना तथा अर्थ की दृष्टि से परस्पर जुड़े हुए

होते हैं, यथा—पुत्र शब्द से बने विलोमार्थी शब्द 'सुपुत्र-कुपुत्र' शब्द। इन्हें कुछ लोग **स्पष्ट विलोम** शब्द कहते हैं। यश-अपयश, गति-दुर्गति, (दुर्गति-सद्गति), दुर्जन-सज्जन, सुमति-कुमति आदि सम्बद्ध विलोम शब्द हैं। ये शब्द प्रायः उपसर्ग, प्रत्यय लगा कर या समास द्वारा बनाए जाते हैं।

शब्द-निर्माण प्रक्रिया के आधार पर हिन्दी में विलोम शब्दों के ये प्रकार हो सकते हैं—(i) **मूल विलोम शब्द**, यथा—जड़-चेतन, सुख-दुःख, प्रेम-घृणा, अमृत-विष, स्वर्ग-नरक (ii) **यौगिक विलोम शब्द**—(अ) **असम्बद्ध** ग्राह्य-त्याज्य, पालतू-जंगली, मानवीय-पाशविक (आ) **सम्बद्ध**—ये चार प्रकार के होते हैं—(क) समासज विलोम शब्द (ख) उपसर्गज विलोम शब्द (ग) प्रत्ययज विलोम शब्द (घ) मिश्र विलोम शब्द

(क) **समासज़ विलोम शब्द** कुछ शब्दों/शब्दांशों (यथा—सहित, रहित, हीन, शून्य, नेक, ख़ूब, ख़ुश, सम्पन्न, बद, स्व, पर, परम आदि) के योग से समास प्रक्रिया द्वारा बनाए जाते हैं, यथा—प्रमाणसहित-प्रमाणरहित, नीतिसम्मत-नीतिविरुद्ध, चेतनाशून्य-चेतनासम्पन्न, स्वदेशी-परदेशी/विदेशी, ख़ूबसूरत-बदसूरत, क़ानूनी-ग़ैरक़ानूनी, नेकनीयत-बदनीयत।

(ख) **उपसर्गज विलोम शब्द** विपरीतार्थक उपसर्गों (यथा—अ-, अन-, अप-, अव-, सु-, कु-, दुर्-, निर्-, ना-, न-, वि-, बहि-, अनु-, प्रति-, उत्-, उप-, स-, सत्- आदि) के योग या परिवर्तन से बनाए जाते हैं, यथा—जेय-अजेय, सत्य-असत्य, उपयुक्त-अनुपयुक्त, इच्छा-अनिच्छा, चाल-कुचाल, पात्र-कुपात्र, उपयोग/सदुपयोग-दुरुपयोग, आचार/सदाचार-दुराचार, आस्तिक-नास्तिक, राग-विराग, अनुलोम-प्रतिलोम।

नकारात्मक उपसर्गज कुछ विलोम शब्द हैं—अन्त-अनन्त, अभिज्ञ-अनभिज्ञ, अर्थ-अनर्थ, आचार-अनाचार, आदर-अनादर, आदि-अनादि, आवश्यक-अनावश्यक, इच्छा-अनिच्छा, आस्तिक-नास्तिक, आहूत-अनाहूत, उचित-अनुचित, उदार-अनुदार, उपयुक्त-अनुपयुक्त, उपयोग-अनुपयोग/दुरुपयोग, कीर्ति-अपकीर्ति, ज्ञान-अज्ञान, गत-आगत, घात-प्रतिघात, चेतन-अचेतन, जय-पराजय, छली-निश्छल, जाति-विजाति, धीर-अधीर, नित्य-अनित्य, पठित-अपठित, पक्ष-विपक्ष, पूर्ण-अपूर्ण, भ्रान्त-निर्भ्रान्त, मान अपमान, योग-वियोग, राग-विराग, यश-अपयश, लौकिक-अलौकिक, लिप्त-निर्लिप्त, वादी-प्रतिवादी, विश्वास-अविश्वास, वैतनिक-अवैतनिक, सत्य-असत्य, संतोष-असंतोष, सभ्य-असभ्य, शकुन-अपशकुन, शांति-अशांति, स्पष्ट-अस्पष्ट, स्वस्थ-अस्वस्थ, हिंसा-अहिंसा।

विलोमार्थी उपसर्गज कुछ विलोम शब्द हैं—अतिवृष्टि-अनावृष्टि, अनुकूल-प्रतिकूल, अनुराग-विराग, अनुलोम-प्रतिलोम/विलोम, अपमान-सम्मान, आयात-निर्यात, आदान-प्रदान, उत्कर्ष-अपकर्ष, उत्कृष्ट-निकृष्ट, उन्नति-अवनति, उपकार-

अपकार, कुप्रबन्ध-सुप्रबन्ध, दुराचारी-सदाचारी, निष्काम-सकाम, निरक्षर-साक्षर, प्रवृत्ति-निवृत्ति, परतन्त्र-स्वतन्त्र, व्यष्टि-समष्टि, विपत्ति-सम्पत्ति, विधवा-सधवा, विमुख-उन्मुख, संयोग-वियोग, सदाचार-दुराचार/कदाचार, संकल्प-विकल्प, सचेष्ट-निश्चेष्ट, सजीव-निर्जीव, सज्जन-दुर्जन, सरस-नीरस, सहयोगी-प्रतियोगी, सुपुत्र-कुपुत्र, सपूत-कपूत, सुमार्ग-कुमार्ग, साकार-निराकार, सुमति-कुमति/दुर्गति, स्वाधीन-पराधीन, सार्थक-निरर्थक, सुकाल-अकाल/दुकाल, सुगन्ध-दुर्गन्ध, सुकर्म-दुष्कर्म, सुलभ-दुर्लभ ।

(ग) **प्रत्ययज विलोम शब्द** विपरीतार्थक प्रत्ययों के योग से बनाए जाते हैं, यथा—कृतज्ञ-कृतघ्न, नर-नारी, बालक-बालिका, ब्राह्मण-ब्राह्मणी, भगवान्-भगवती, लड़का-लड़की, श्रीमान्-श्रीमती, शेर-शेरनी, (प्राणिवाची शब्दों को विलोमार्थी कहने की अपेक्षा **विपरीत लिंगी शब्द** (यथा— घोड़ा-घोड़ी, नर-नारी) कहना अधिक तर्कसंगत है ।

(घ) **मिश्र विलोम शब्द** एक से अधिक शब्द शब्द-निर्माण प्रक्रिया के सहयोग से बनाए जाते हैं, यथा—धनहीन-धनी, बली-निर्बल, सरस-रसहीन, बुद्धिमान-बुद्धिहीन, ससाधन-साधनशून्य, विवेकी-विवेकशून्य/विवेकरहित/विवेकहीन ।

हिन्दी भाषा-व्यवहार में कभी-कभी एक ही शब्द के एकाधिक विलोम शब्द प्राप्त होते हैं । इस प्रकार की **विलोमता के पाँच आधार** माने जाते हैं—(1) **सह-प्रयोगजन्य एकाधिक अर्थ**—सूखी-गीली/हरी ~ हरी-भरी/नरम/मोटी यथा—सूखी साड़ी-गीली साड़ी, सूखी बेल-हरी/हरी-भरी बेल, सूखी रोटी-नरम रोटी, सूखी लड़की-मोटी लड़की; काली कमीज़-सफ़ेद कमीज़, काली औरत-गोरी औरत, काली कड़ाही-चमकती कड़ाही (2) **पारस्परिक सम्बन्ध जन्य एकाधिक पक्ष**—राजा-रानी, राजा-प्रजा, राजा-रंक; साला-साली, साला-सलहज; चाचा-चाची, चाचा-भतीजा (3) **संरचनाजन्य घटक**—सुपरिणाम-कुपरिणाम/दुष्परिणाम जड़बुद्धि/मन्दबुद्धि-तीक्ष्णबुद्धि/प्रखर बुद्धि/कुशाग्रबुद्धि, आदर-निरादर/अनादर (4) **संरचना जन्य एवं स्वतन्त्र अस्तित्व**—मूर्ख/कमअक़्ल/बुद्धिहीन/बुद्धू-बुद्धिमान/अक़्लमन्द/चतुर/होशियार, राग/अनुराग-विराग/द्वेष (5) **पर्याय जन्य स्वतन्त्र अस्तित्व**—आदमी/मर्द/पुरुष/नर-औरत-स्त्री/नारी/मादा, रात-रात्रि/निशा/रजनी-दिन/दिवस/वासर/वार, स्वर्ग/बैकुंठ/बिहिश्त ~ बहिश्त/जन्नत-नरक/दोज़ख/जहन्नुम/रसातल

हिन्दी में **शब्देतर विलोमता** पद, पदबन्ध, लोकोक्ति-मुहावरा, वाक्य-स्तर पर प्राप्त है, यथा—

पदस्तरीय विलोम—आता-जाता, गिरती-उठती, हँसता-रोता

पदबन्धस्तरीय विलोम—बहुत कुछ ख़रीद कर-सब कुछ बेच कर, हँसते खेलते बच्चे-रोते-बिसूरते बच्चे

विलोम लोकोक्ति-मुहावरा—आँख का अन्धा-गाँठ का पूरा, ऊँची दुकान-

होते हैं, यथा—पुत्र शब्द से बने विलोमार्थी शब्द 'सुपुत्र-कुपुत्र' शब्द। इन्हें कुछ लोग **स्पष्ट विलोम** शब्द कहते हैं। यश-अपयश, गति-दुर्गति, (दुर्गति-सद्गति), दुर्जन-सज्जन, सुमति-कुमति आदि सम्बद्ध विलोम शब्द हैं। ये शब्द प्रायः उपसर्ग, प्रत्यय लगा कर या समास द्वारा बनाए जाते हैं।

शब्द-निर्माण प्रक्रिया के आधार पर हिन्दी में विलोम शब्दों के ये प्रकार हो सकते हैं—(i) **मूल विलोम शब्द**, यथा—जड़-चेतन, सुख-दुःख, प्रेम-घृणा, अमृत-विष, स्वर्ग-नरक (ii) **यौगिक विलोम शब्द**—(अ) **असम्बद्ध** ग्राह्य-त्याज्य, पालतू-जंगली, मानवीय-पाशविक (आ) **सम्बद्ध**—ये चार प्रकार के होते हैं—(क) समासज विलोम शब्द (ख) उपसर्गज विलोम शब्द (ग) प्रत्ययज विलोम शब्द (घ) मिश्र विलोम शब्द

(क) **समासज विलोम शब्द** कुछ शब्दों/शब्दांशों (यथा—सहित, रहित, हीन, शून्य, नेक, ख़ूब, ख़ुश, सम्पन्न, बद, स्व, पर, परम आदि) के योग से समास प्रक्रिया द्वारा बनाए जाते हैं, यथा—प्रमाणसहित-प्रमाणरहित, नीतिसम्मत-नीतिविरुद्ध, चेतनाशून्य-चेतनासम्पन्न, स्वदेशी-परदेशी/विदेशी, ख़ूबसूरत-बदसूरत, क़ानूनी-ग़ैरक़ानूनी, नेकनीयत-बदनीयत।

(ख) **उपसर्गज विलोम शब्द** विपरीतार्थक उपसर्गों (यथा—अ-, अन-, अप-, अव-, सु-, कु-, दुर्-, निर्-, ना-, न-, वि-, बहि-, अनु-, प्रति-, उत्-, उप-, स-, सत्- आदि) के योग या परिवर्तन से बनाए जाते हैं, यथा—जेय-अजेय, सत्य-असत्य, उपयुक्त-अनुपयुक्त, इच्छा-अनिच्छा, चाल-कुचाल, पात्र-कुपात्र, उपयोग/सदुपयोग-दुरुपयोग, आचार/सदाचार-दुराचार, आस्तिक-नास्तिक, राग-विराग, अनुलोम-प्रतिलोम।

नकारात्मक उपसर्गज कुछ विलोम शब्द हैं—अन्त-अनन्त, अभिज्ञ-अनभिज्ञ, अर्थ-अनर्थ, आचार-अनाचार, आदर-अनादर, आदि-अनादि, आवश्यक-अनावश्यक, इच्छा-अनिच्छा, आस्तिक-नास्तिक, आहूत-अनाहूत, उचित-अनुचित, उदार-अनुदार, उपयुक्त-अनुपयुक्त, उपयोग-अनुपयोग/दुरुपयोग, कीर्ति-अपकीर्ति, ज्ञान-अज्ञान, गत-आगत, घात-प्रतिघात, चेतन-अचेतन, जय-पराजय, छली-निश्छल, जाति-विजाति, धीर-अधीर, नित्य-अनित्य, पठित-अपठित, पक्ष-विपक्ष, पूर्ण-अपूर्ण, भ्रान्त-निर्भ्रान्त, मान अपमान, योग-वियोग, राग-विराग, यश-अपयश, लौकिक-अलौकिक, लिप्त-निर्लिप्त, वादी-प्रतिवादी, विश्वास-अविश्वास, वैतनिक-अवैतनिक, सत्य-असत्य, संतोष-असंतोष, सभ्य-असभ्य, शकुन-अपशकुन, शांति-अशांति, स्पष्ट-अस्पष्ट, स्वस्थ-अस्वस्थ, हिंसा-अहिंसा।

विलोमार्थी उपसर्गज कुछ विलोम शब्द हैं—अतिवृष्टि-अनावृष्टि, अनुकूल-प्रतिकूल, अनुराग-विराग, अनुलोम-प्रतिलोम/विलोम, अपमान-सम्मान, आयात-निर्यात, आदान-प्रदान, उत्कर्ष-अपकर्ष, उत्कृष्ट-निकृष्ट, उन्नति-अवनति, उपकार-

अपकार, कुप्रबन्ध-सुप्रबन्ध, दुराचारी-सदाचारी, निष्काम-सकाम, निरक्षर-साक्षर, प्रवृत्ति-निवृत्ति, परतन्त्र-स्वतन्त्र, व्यष्टि-समष्टि, विपत्ति-सम्पत्ति, विधवा-सधवा, विमुख-उन्मुख, संयोग-वियोग, सदाचार-दुराचार/कदाचार, संकल्प-विकल्प, सचेष्ट-निश्चेष्ट, सजीव-निर्जीव, सज्जन-दुर्जन, सरस-नीरस, सहयोगी-प्रतियोगी, सुपुत्र-कुपुत्र, सपूत-कपूत, सुमार्ग-कुमार्ग, साकार-निराकार, सुमति-कुमति/दुर्गति, स्वाधीन-पराधीन, सार्थक-निरर्थक, सुकाल-अकाल/दुकाल, सुगन्ध-दुर्गन्ध, सुकर्म-दुष्कर्म, सुलभ-दुर्लभ ।

(ग) **प्रत्ययज विलोम शब्द** विपरीतार्थक प्रत्ययों के योग से बनाए जाते हैं, यथा—कृतज्ञ-कृतघ्न, नर-नारी, बालक-बालिका, ब्राह्मण-ब्राह्मणी, भगवान्-भगवती, लड़का-लड़की, श्रीमान्-श्रीमती, शेर-शेरनी, (प्राणिवाची शब्दों को विलोमार्थी कहने की अपेक्षा **विपरीत लिंगी शब्द** (यथा— घोड़ा-घोड़ी, नर-नारी) कहना अधिक तर्कसंगत है ।

(घ) **मिश्र विलोम शब्द** एक से अधिक शब्द शब्द-निर्माण प्रक्रिया के सहयोग से बनाए जाते हैं, यथा—धनहीन-धनी, बली-निर्बल, सरस-रसहीन, बुद्धिमान-बुद्धिहीन, ससाधन-साधनशून्य, विवेकी-विवेकशून्य/विवेकरहित/विवेकहीन ।

हिन्दी भाषा-व्यवहार में कभी-कभी एक ही शब्द के एकाधिक विलोम शब्द प्राप्त होते हैं । इस प्रकार की **विलोमता के पाँच आधार** माने जाते हैं—(1) **सह-प्रयोगजन्य एकाधिक अर्थ**—सूखी-गीली/हरी~हरी-भरी/नरम/मोटी यथा—सूखी साड़ी-गीली साड़ी, सूखी बेल-हरी/हरी-भरी बेल, सूखी रोटी-नरम रोटी, सूखी लड़की-मोटी लड़की; काली कमीज़-सफ़ेद कमीज़, काली औरत-गोरी औरत, काली कड़ाही-चमकती कड़ाही (2) **पारस्परिक सम्बन्ध जन्य एकाधिक पक्ष**—राजा-रानी, राजा-प्रजा, राजा-रंक; साला-साली, साला-सलहज; चाचा-चाची, चाचा-भतीजा (3) **संरचनाजन्य घटक**—सुपरिणाम-कुपरिणाम/दुष्परिणाम जड़बुद्धि/मन्दबुद्धि-तीक्ष्णबुद्धि/प्रखर बुद्धि/कुशाग्रबुद्धि, आदर-निरादर/अनादर (4) **संरचना जन्य एवं स्वतन्त्र अस्तित्व**—मूर्ख/कमअक्ल/बुद्धिहीन/बुद्धू-बुद्धिमान/अक्लमन्द/चतुर/होशियार, राग/अनुराग-विराग/द्वेष (5) **पर्याय जन्य स्वतन्त्र अस्तित्व**—आदमी/मर्द/पुरुष/नर-औरत-स्त्री/नारी/मादा, रात-रात्रि/निशा/रजनी-दिन/दिवस/वासर/वार, स्वर्ग/बैकुंठ/बिहिश्त~बहिश्त/जन्नत-नरक/दोज़ख/जहन्नुम/रसातल

हिन्दी में **शब्देतर विलोमता** पद, पदबन्ध, लोकोक्ति-मुहावरा, वाक्य-स्तर पर प्राप्त है, यथा—

पदस्तरीय विलोम—आता-जाता, गिरती-उठती, हँसता-रोता

पदबन्धस्तरीय विलोम—बहुत कुछ ख़रीद कर-सब कुछ बेच कर, हँसते खेलते बच्चे-रोते-बिसूरते बच्चे

विलोम लोकोक्ति-मुहावरा—आँख का अन्धा-गाँठ का पूरा, ऊँची दुकान-

फीका पकवान, आँखों का तारा-आँख का काँटा, फूलों की सेज-काँटों की सेज, फूल-सी कोमल-वज्र-सी कठोर

विलोम वाक्य—क्षणे रुष्टं क्षणे तुष्टं रुष्टं तुष्टं क्षणे-क्षणे (संस्कृत-उद्धरण)। तू दयाल दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी। हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंजहारी।। बली पुरुष को निर्बल नारी।

5. **श्रुतसम भिन्नार्थी शब्द** सुनने तथा वर्तनी की दृष्टि से लगभग समान ध्वनि/वर्णवाले भिन्नार्थी शब्द होते हैं। इन्हें ईषत् श्रुतसम/ईषत् वर्तनीसम शब्द भी कहा जाता है। ऐसे कुछ शब्दों की सूची निम्नलिखित है—

अंतर-अनंतर, अनुसार-अनुस्वार, आचार-आचार्य, उपस्थित-उपस्थिति, उधार-उद्धार, ओर-और, ओटना-औटना, करोड़-क्रोड़, किला-कीला, कोड़ी-कौड़ी-कोढ़ी, कथा-कत्था, कर्म-क्रम, कुमार-कुम्हार, खोलना-खौलना, गृह-ग्रह, गड़ना-गढ़ना, गूँथना-गूँधना, चर्म-चरम, चिता-चीता, चिर-चीर-चील, जलाना-जिलाना, जलना-झलना-छलना, जूठा-झूठा, डीठ-ढीठ, ढलाई-डलाई-ढिलाई, डाँट-डाट, दशा-दिशा, दीप-द्वीप-द्विप, नहर-नाहर, निर्धन-निधन, नीर-नीड़, निर्माण-निर्वाण, परदेश-प्रदेश, परवाह-प्रवाह, पाव-पाँव, पटु-पट्टू, परिणाम-प्रमाण-परिमाण-प्रणाम, पर्याप्त-प्राप्त, बताना-बिताना, बलि-बली-बल्ली, बहाना-भाना, बाद-वदा, बाल-बॉल, भवन-भुवन, मेला-मैला, मुख-मुख्य, योगेश्वर-योगीश्वर, लक्ष-लक्ष्य, लपट-लंपट-लिपट, लगन-लग्न, लोटना-लौटना, वाद-वाद्य, शुल्क-शुक्ल, समिति-सम्मति-सम्मत, सास-साँस, सुखी-सूखी, सुगन्ध-सौगन्ध, सुर-सूर-शूर, हट-हठ-हाट, हय-हिय, हंस-हँस, हाल-हॉल।

काफ़ी-कॉफ़ी, राज-राज़, बाज-बाज़, जरा-ज़रा, खैर-ख़ैर, बाग-बाग़, फन-फ़न।

प्रारम्भक शब्द—कुछ लोग वाक्य के आरम्भ में कुछ ऐसे शब्दों (एक या एकाधिक शब्द) का प्रयोग करते हैं जिन का अर्थ की दृष्टि से वाक्य के कथ्य से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। इन शब्दों के प्रयोग का उद्देश्य वक्ता द्वारा वाक्य-आरम्भ में अभिव्यक्ति के समय कुछ सहायता प्राप्त करना होता है। ऐसे शब्दों को **प्रारम्भक शब्द** (Introductory/Preliminary words) कहा जाता है। हिन्दी में प्रचलित कुछ प्रारम्भक शब्द हैं—अच्छा; अच्छा देखो; ऐसा है कि; तो; फिर; बात यह है कि; सुना; हाँ तो। इन का चयन व्यक्तिगत रुचि और आदत पर निर्भर है।

प्रारम्भक शब्द तीव्र गति से चलनेवाले विचार क्रम तथा धीमी गति से चलनेवाली अभिव्यक्ति के मध्य की दूरी को कम करने में सहायता देते हैं। प्रारम्भक शब्द **तकिया कलाम** से भिन्न होते हैं। तकिया कलाम गाली, प्रार्थना या वक्ता की रुचि के किसी शब्द/शब्द-समूह के रूप में वाक्य के अन्तर्गत वाक्य-पूर्ति के लिए आते हैं। ये प्रयुक्त सन्दर्भ में निरर्थक होते हैं। कभी-कभी कुछ प्रारम्भक शब्द (यथा—

अच्छा, तो फिर) तकिया कलाम के रूप में आ जाते हैं। हिन्दी में प्रचलित कुछ तकिया कलाम हैं—

साला/साली, ससुर/ससुरा/ससुरी, कम्बख़्त, हाँ, न, कसम से, मेरी कसम, क्या कहने, क्या, हैं/ऐं, मतलब, यार आदि। हिन्दी फ़िल्मों में तरह-तरह के तकिया कलामों का प्रयोग होता रहता है।

तकिया कलाम की भाँति **आश्रय शब्द**-प्रयोग की प्रवृत्ति बच्चों में अधिक, प्रौढ़ों में कम पाई जाती है। आश्रय शब्द का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जहाँ वक्ता का मस्तिष्क सही शब्द की खोज या सही वाक्य-रचना के निर्णय में तल्लीन होता है। कुछ आश्रय शब्द/शब्द-समूह हैं—सच्ची; हाँ तो, मैं क्या कह रहा था; हाँ, तो मैं कह रहा था; मैं कह रहा था न; वह हमारे घर आई, आई थी न? आदि।

12
शब्द-रचना

विचार/चिन्तन करने और अभिव्यक्ति की न्यूनतम इकाई वाक्य है। वाक्य-रचना के मूलाधार शब्द हैं। मनुष्य की प्रयत्न-लाघव की प्रवृत्ति भाषा-व्यवहार में अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है। कम शब्दों का प्रयोग कर अधिक अर्थबोध के लिए व्यक्ति शब्द रचना के विभिन्न प्रकारों का सदुपयोग करना चाहता है। शब्द-रचना की यह प्रक्रिया उपसर्ग-योग, प्रत्यय-योग, सन्धि, समास, पुनरुक्ति और ऋण अनुवाद के रूप में हिन्दी भाषा में प्रचलित है।

शब्द रचना की दृष्टि से हिन्दी भाषा का समस्त शब्द समूह दो प्रकार का है—1. रूढ़ शब्द 2. यौगिक शब्द।

1. **रूढ़ शब्द वे** मूल शब्द हैं जिन के सार्थक खंड नहीं हो सकते, यथा—आँख, मेज़, घोड़ा। रूढ़ शब्दों को अयौगिक शब्द भी कह सकते हैं। इन शब्दों को सरल शब्द भी कहा जाता है। रूढ़ शब्दों में **समूहवाची शब्द** विशेष प्रकार के होते हैं। ये शब्द सजातीय कुछ वस्तुओं के समूह के द्योतक होते हैं यथा—**काफ़िला** (ऊँटों का), **कुंज** (लताओं का), **गिरोह** (डाकुओं/बदमाशों/लुटेरों का), **जत्था** (स्वयंसेवकों का), **झुंड** (पक्षियों का), **टीम** (खिलाड़ियों की), **टुकड़ी** (सिपाहियों/पुलिस/सेना की), **ढेर** (अनाज/रुपये-पैसों/कपड़ों/मिट्टी/किताबों/लकड़ियों आदि का), **दल** टिड्डियों/चिड़ियों/यात्रियों/छात्र-छात्राओं आदि का), **बेड़ा** (जहाज़ों/नावों का), **भीड़** (मनुष्यों की), **मंडली** (गायकों की), **रेवड़** (भेड़-बकरियों का), **शृंखला** (पर्वतों की), **संघ** (राज्यों/राष्ट्रों का)।

2. **यौगिक शब्द** वे योगज शब्द हैं जो रूढ़ शब्दों तथा सार्थक शब्द खंडों/शब्दांशों/शब्दों के योग से निर्मित होते हैं, यथा—झटपट (झट+पट), निर्गुण (निः+गुण), राजपुरुष (राज<राजा+पुरुष)। इन शब्दों को **सरलेतर शब्द** भी कहा जाता है। सरलेतर शब्दों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—(क) **सरलाभास शब्द वे** शब्द हैं जिन में एक स्वतन्त्र अंश और एक या एकाधिक

बद्ध रूप हो सकते हैं (ख) **संयुक्त शब्द वे** शब्द हैं जिन में एक से अधिक स्वतन्त्र रूप होते हैं। संयुक्त शब्द के स्वतन्त्र रूप अलग-अलग अर्थों के द्योतक न हो कर एक समन्वित अर्थ के द्योतक होते हैं। (ग) सरलाभास और संयुक्त शब्दों से निष्पन्न शब्दों को **मिश्र शब्द** कहा जा सकता है। मिश्र शब्द **रूपसिद्ध** (Inflected), **व्युत्पन्न** (Derivated) होते हैं।

शब्द रचना की दृष्टि से यौगिक शब्द होते हुए भी जो शब्द किसी विशिष्ट या रूढ़ अर्थ में व्यवहृत होते हैं, उन्हें **योगरूढ़ शब्द** कहा जाता है, यथा—पंकज (पंक+ज=कीचड़ में जन्मा हुआ) का रूढ़/प्रचलित अर्थ है 'कमल'। इसी प्रकार जलधर (जल+धर=पानी को धारण करनेवाला) का रूढ़/प्रचलित अर्थ है 'बादल'।

योगरूढ़ शब्दों का वास्तविक आधार अर्थ है, अतः शब्द रचना में ऐसे शब्दों की चर्चा नहीं की जाती। रूढ़ शब्दों के सार्थक खण्ड न होने के कारण शब्द रचना/शब्द निर्माण प्रक्रिया में रूढ़ शब्दों की भी चर्चा नहीं की जाती। यौगिक शब्द निर्माण की पाँच विधियाँ/प्रक्रियाएँ प्रचलित हैं—1. सन्धि प्रक्रिया 2. समास प्रक्रिया 3. प्रत्ययन प्रक्रिया 4. पुनरुक्ति प्रक्रिया। आगत शब्दानुवाद प्रक्रिया में इन चारों प्रक्रियाओं की छाया मिलती है इसलिए इसे 5. मिश्र प्रक्रिया कहा जा सकता है। इन पाँचों प्रक्रियाओं पर अलग-अलग विचार किया जाएगा।

1. सन्धि

सन्धि प्रक्रिया में शब्द सीमा के अन्तर्गत (पूर्व पद के अन्त में, उत्तर पद के आरम्भ में) दो ध्वनियों के पास-पास आने के कारण जो विकार-परिवर्तन होते हैं उन पर विचार किया जाता है, यथा—नर+इन्द्र=नरेन्द्र; सत्+जन=सज्जन; दुः+लभ=दुर्लभ। सन्धि में योग होनेवाली दोनों ध्वनियाँ सामान्यतः तीसरी ध्वनि के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं।

द्रुत उच्चारण के समय जब दो शब्दों या शब्दांशों की दो ध्वनियाँ अत्यन्त पास-पास आ जाती हैं, तब उन में कुछ विकार/परिवर्तन आ जाता है। यह विकार या परिवर्तन ही **सन्धि** कहलाता है, यथा—हिमा+आलय=हिमालय; तत्+शरीर=तच्छरीर। 'संयुक्ताक्षर' में भी दो व्यंजन ध्वनियाँ पास-पास आती हैं किन्तु उन में कोई विकार नहीं होता, यथा—उत्पत्ति; शुक्ल। यहाँ केवल व्यंजन ध्वनियों में ही संयोग होता है। सन्धि में पास-पास आनेवाली ध्वनियों में से कभी एक में, कभी दोनों में विकार/परिवर्तन होता है और कभी उन दोनों के स्थान पर तीसरी ही ध्वनि आ जाती है। इस प्रकार एक शब्द का दूसरे शब्द या रूप के साथ संयोग होने पर उन दोनों शब्दों में या किसी एक शब्द में होनेवाला स्वनिक परिवर्तन सन्धि कहलाता है।

संस्कृत से हिन्दी में आगत उन्हीं संधिज शब्दों में सन्धि मानी जा सकती है जो शब्द संधि होने से पूर्व या पश्चात् भी हिन्दी में भी सार्थक हों; हिन्दी के लिए सार्थक रूप न होने के कारण 'नयन, भवन, नायक, पावक, निष्ठुर' जैसे शब्दों के सन्धि-विच्छेद का हिन्दी में कोई औचित्य नहीं है। संस्कृत से आगत शब्दों में प्राप्त सन्धि नियम हिन्दी या उर्दू के शब्दों पर लागू नहीं होते। वास्तव में 'सन्धि' का सम्बन्ध मूलतः संस्कृत भाषा के शब्दों से है। हिन्दी में प्रायः लिखित संस्कृत भाषा के संधिज शब्दों का प्रयोग होता है, फिर भी कभी-कभी नये संधिज शब्द बनाने के लिए कुछ सामान्य नियमों का जान लेना हितकर ही रहेगा। परम्परागत हिन्दी व्याकरणों में जिन तीन प्रकार की सन्धियों की चर्चा है, वे वास्तव में संस्कृत की संधियाँ हैं हिन्दी की नहीं। हिन्दी में भानूदय (भानु+उदय), सुबन्त (सुप्+अन्त), निरिच्छा (निः+इच्छा) आदि शब्द संस्कृत भाषा से संधिज शब्द के रूप में ग्रहण कर लिए गए हैं न कि उन के पूर्व पद और उत्तर पद में हिन्दी ने कोई सन्धि प्रक्रिया लागू की है। हिन्दी की प्रकृति विश्लेषणात्मक है, अतः हिन्दी में अपने संधिज शब्दों का प्रायः अभाव है।

संस्कृत-संधियाँ तीन प्रकार की हैं—1. स्वर संधि 2. व्यंजन संधि 3. विसर्ग संधि।

स्वर सन्धियाँ

अक्षरों या शब्दों के दो स्वर अत्यन्त पास-पास आने पर उन में होनेवाला विकार **स्वर संधि** (अच् संधि) कहा जाता है। स्वर संधियाँ पाँच प्रकार की होती हैं—(अ) दीर्घ (आ) गुण (इ) वृद्धि (ई) यण् (उ) अयादि।

(अ) **दीर्घ स्वर संधि** (आ ई ऊ ॠ)—दो सजातीय स्वर पास-पास आने पर सजातीय दीर्घ स्वर में परिवर्तित हो जाते हैं, यथा—

अ+आ=आ	परम+अर्थ	=परमार्थ, (वेदान्त, भावार्थ, दीपावलि, शस्त्रास्त्र, रामावतार, स्वार्थी, अन्यान्य, देवार्चन, सरलार्थ, सूर्यास्त, सत्यार्थी, धर्मार्थ, पुरुषार्थ, चराचर, वीरांगना)
अ+आ=आ	पुस्तक+आलय	=पुस्तकालय, (देवालय, भोजनालय, कुशासन, नवागत, हिमालय, धर्मात्मा, शिवालय, सत्याग्रह)
आ+अ=आ	विद्या+अभ्यास	=विद्याभ्यास, (शिक्षाभ्यास, परीक्षार्थी, शिक्षार्थी, विद्यार्थी, दिशान्तर, सीमान्त, दीक्षान्त, मायाधीन)

आ+आ=आ महा+आशय=महाशय, (महानन्द, दयानन्द, रामाधार, विद्यालय, वार्तालाप, मायाचरण, विद्यानन्द)

इ+इ=ई कवि+इन्द्र =कवीन्द्र, (मुनीन्द्र, रवीन्द्र, गिरीन्द्र, अतीव, अभीष्ट)

इ+ई=ई हरि+ईश =हरीश, (मुनीश, कवीश्वर, गिरीश, अधीश्वर, मुनीश्वर)

ई+इ=ई मही+इन्द्र =महीन्द्र, (शचीन्दु, देवीच्छा, लक्ष्मीच्छा, नारीन्दु)

ई+ई=ई नदी+ईश =नदीश, (महीश, रजनीश, श्रीश,, नारीश्वर)

उ+उ=ऊ भानु+उदय =भानूदय, (विधूदय, गुरूपदेश)

उ+ऊ=ऊ सिन्धु+ऊर्मि =सिन्धूर्मि, (लघूर्मि, धातूष्मा)

ऊ+उ=ऊ वधू+उत्सव =वधूत्सव, (स्वयम्भूदय; चमूत्तम)

ऊ+ऊ=ऊ भू+ऊर्ध्व =भूर्ध्व, (भूर्जित, भ्रूर्ध्व)

ऋ+ऋ=ॠ/ऋ पितृ+ऋण=पितॄण/पितृण, (मातॄण/मातॄण)

दीर्घ स्वर संधि के नियमों को सूत्र रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है—अ/आ+अ/आ>आ; इ/ई+इ/ई>ई; उ/ऊ+उ/ऊ>ऊ; ऋ+ऋ>ॠ (ऋ+ऋ संधिज शब्दों का हिन्दी में बहुत कम प्रयोग होता है)

(आ) गुण स्वर संधि (ए ओ अर्)—अ/आ के बाद इ/ई होने पर दोनों मिल कर 'ए'; उ/ऊ होने पर दोनों मिल कर 'ओ'; ऋ होने पर दोनों मिल कर 'अर्' हो जाते हैं, यथा—

अ+इ=ए देव+इन्द्र =देवेन्द्र, (नरेन्द्र, स्वेच्छा, पुष्पेन्द्र, सत्येन्द्र, सुरेन्द्र, ईश्वरेच्छा)

अ+ई=ए सुर+ईश =सुरेश, (परमेश्वर, नरेश, उपेक्षा, तपेश, गणेश सोमेश)

आ+इ=ए महा+इन्द्र =महेन्द्र, (रमेन्द्र)

आ+ई=ए रमा+ईश =रमेश, (महेश, राकेश, उमेश)

अ+उ=ओ हित+उपदेश=हितोपदेश, (नरोचित, पुरुषोत्तम, मानवोचित आत्मोत्सर्ग, चन्द्रोदय, सूर्योदय, वीरोचित)

अ+ऊ=ओ जल+ऊर्मि = जलोर्मि, (नवोढ़ा, सागरोर्मि, समुद्रोर्मि)

आ+उ=ओ महा+उत्सव=महोत्सव, (महोदर, गंगोदक, महोदधि, महोष्ण)

आ+ऊ=ओ गंगा+ऊर्मि =गंगोर्मि, (महोर्जा, दयोर्मि)

अ+ऋ=अर् सप्त+ऋषि=सप्तर्षि, (हिमर्तु, देवर्षि, राजर्षि)
आ+ऋ=अर् महा+ऋषि=महर्षि
(अपवाद—अक्ष+अहिणी=अक्षौहिणी; प्र+ऊढ=प्रौढ; प्र+ऊढा=प्रौढा)

गुण स्वर सन्धि के नियमों को सूत्र रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है—अ/आ+इ/ई>ए; अ/आ+उ/ऊ>ओ; अ/आ+ऋ>अर्

(इ) **वृद्धि स्वर संधि** (ऐ औ)—अ/आ के बाद ए/ऐ होने पर दोनों मिल कर 'ऐ'; ओ/औ होने पर दोनों मिल कर 'औ' हो जाते हैं, यथा—

अ+ए=ऐ एक+एक =एकैक, (मतैकता)
अ+ऐ=ऐ मत+ऐक्य =मतैक्य
आ+ए=ऐ सदा+एव =सदैव, (तथैव)
आ+ऐ=ऐ महा+ऐश्वर्य =महैश्वर्य
अ+ओ=औ वन+औषधि=वनौषधि, (जलौघ, सुन्दरौदन, दन्तौष्ठ्य/दन्तोष्ठ्य भी, कंठौष्ठ्य/कंठोष्ठ्य भी)
अ+औ=औ परम+औदार्य=परमौदार्य (परमौषध, देवौदार्य)
आ+ओ=औ महा+ओज =महौज, (महौषध)
आ+औ=औ महा=औदार्य=महौदार्य, (महौत्सुक्य)

वृद्धि स्वर संधि के नियमों को सूत्र रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है—अ/आ+ए/ऐ>ऐ~अए; अ/आ+ओ/औ>औ~अओ

(ई) **यण् स्वर संधि** (य् व् र्)—इ/ई/उ/ऊ/ऋ के बाद कोई विजातीय स्वर होने पर इ, ई के स्थान पर 'य्'; उ, ऊ के स्थान पर 'व्'; ऋ के स्थान पर 'र्' हो जाता है, यथा—

इ+अ=य यदि+अपि =यद्यपि, (अत्यल्प)
इ+आ=या इति+आदि =इत्यादि, (अत्याचार)
इ+उ=यु प्रति+उपकार =प्रत्युपकार, (अभ्युदय, अत्युत्तम)
इ+ऊ=यू नि+ऊन =न्यून
इ+ए=ये प्रति+एक =प्रत्येक
इ+ऐ=यै अति+ऐश्वर्य =अत्यैश्वर्य, (जात्यैक्य)
इ+ओ=यो दधि+ओदन=दध्योदन
इ+औ=यौ मति+औदार्य=मत्यौदार्य
ई+अ=य गोपी+अर्थ =गोप्यर्थ, (नद्यर्पण, देव्यर्पण)
ई+आ=या देवी+आगम=देव्यागम, (नद्यामुख, नद्यागमन)
ई+उ=यु सखी+उक्त =सख्युक्त, (स्त्र्युपयोगी)

उ+अ = व अनु+अय = अन्वय, (स्वल्प)

उ+आ = वा सु+आगत = स्वागत, (सुगुर्वाकृति)

उ+इ = वि अनु+इति = अन्विति

उ+ई = वी अनु+ईक्षण = अन्वीक्षण

उ+ए = वे अनु+एषण = अन्वेषण

उ+ऐ = वै बहु+ऐश्वर्य = बह्‌वैश्वर्य

उ+ओ = वो लघु+ओष्ठ = लघ्वोष्ठ

उ+औ = वौ गुरु+औदार्य = गुर्वौदार्य

ऊ+अ = व सरयू+अम्बु = सरय्वम्बु

ऊ+आ = वा वधू+आगम = वध्वागम

ऋ+अ = र पितृ+अनुमति = पित्रनुमति, (मात्रर्थ, धात्रंश)

ऋ+आ = रा मातृ+आनन्द = मात्रानन्द, (पित्राज्ञा)

ऋ+इ = रि मातृ+इच्छा = मात्रिच्छा

यण् स्वर संधि के नियमों को सूत्र रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है—इ/ई+इतर स्वर>'य्' आगम ; उ/ऊ+इतर स्वर>'व्' आगम; ऋ+इतर स्वर>'र्' आगम।

(ङ) **अयादि स्वर सन्धि** (अय् आय् अव् आव्)—ए, ऐ, ओ, औ के बाद कोई विजातीय स्वर होने पर ए के स्थान पर 'अय्', ऐ के स्थान पर 'आय्', ओ के स्थान पर 'अव्', औ के स्थान पर 'आव्' हो जाता है, यथा—

ए+अ = अय ने+अन = नयन

ऐ+अ = आय नै+अक = नायक, (गायक)

ओ+अ = अव पो+अन = पवन, (भवन)

ओ+इ = अवि पो+इत्र = पवित्र

औ+अ = आव पौ+अक = पावक

औ+इ = आवि भौ+इनी = भाविनी

औ+उ = आवु भौ+उक = भावुक

अयादि स्वर सन्धि के नियमों को सूत्र रूप में इस प्रकार रखा जा सकता हैं—ए/ऐ+इतर स्वर> 'अय्, आय्' आगम; ओ/औ+'अव्/आव्' आगम।

(संस्कृत में अक्षरान्त के 'ए, ओ' के बाद 'अ' होने पर 'अ' का लोप कर के अवग्रह/लुप्ताकार चिह्‌न (ऽ) का भी प्रयोग हो सकता है, यथा—ते+अपि=तेऽपि; ते+अत्र=तेऽत्र; मनः+अनुकूल>मनो+अनुकूल=मनोऽनुकूल; मनो + अभिलाषा =मनोऽभिलाषा)

हिन्दी के शब्दों में अवग्रह/लुप्ताकार चिह्‌न का प्रयोग नहीं होता।

व्यंजन संधियाँ

अक्षरान्त या शब्दान्त के व्यंजन के बाद आनेवाले स्वर या व्यंजन के कारण व्यंजन में होनेवाला विकार/परिवर्तन '**व्यंजन सन्धि**' कहा जाता है।

संस्कृत भाषा के शब्दों में व्यंजन संधियाँ कई प्रकार की होती हैं। यहाँ उन के कुछ नियम लिखे जा रहे हैं।

(1) क् च् ट् त् प् के बाद किसी स्वर या वर्गीय तीसरे या चौथे अक्षर या य् र् ल् व् ह् के आने पर क् च् ट् त् प् के स्थान पर क्रमशः ग् ज् ड् द् ब हो जाता है, यथा—

दिक्+गज=दिग्गज, वाक्+दत्त=वाग्दत्त, वाक्+ईश=वागीश, वाक्+दान=वाग्दान, वाक्+इन्द्रिय=वागिन्द्रिय, दिक्+अम्बर=दिगम्बर, दिक्+दर्शन=दिग्दर्शन, धिक्+याचना=धिग्याचना, वाक्+विलास=वाग्विलास।

अच्+आदि=अजादि, अच्+अन्त=अजन्त।

षट्+आनन=षडानन, षट्+दर्शन=षड्दर्शन, षट्+रिपु=षड्रिपु।

भगवत्+गीता=भगवद्गीता, तत्+अनुसार=तदनुसार, सत्+आनन्द=सदानन्द, जगत्+इन्द्र=जगदिन्द्र, सत्+उत्तर=सदुत्तर, सत्+भावना=सद्भावना, महत्+औषध=महदौषध, सत्+वंश=सद्वंश, पशुवत्+गामी=पशुवद्गामी, तत्+रूप=तद्रूप, महत्+धनुष=महद्धनुष, उत्+गम=उद्गम, सत्+धर्म=सद्धर्म, उत्+अय=उदय, सत्+आचार=सदाचार, जगत्+अम्बा=जगदम्बा, जगत्+ईश=जगदीश, महत्+ओज=महदोज, उत्+योग=उद्योग, भविष्यत्+वाणी=भविष्यद्वाणी, उत्+घाटन=उद्घाटन, सत्+उपदेश=सदुपदेश, जगत्+बन्धु=जगद्बन्धु, भगवत्+भक्ति=भगवद्भक्ति।

अप्+ज=अब्ज, अप्+भूति=अब्भूति, सुप्+अन्त=सुबन्त।

इस संधि के नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है—अघोष स्पर्श+घोष (—नासिक्य)>घोष स्पर्श

(2) क् च् ट् त् प् के बाद किसी नासिक्य व्यंजन के आने पर क् च् ट् त् प् के स्थान पर क्रमशः ङ् ञ् ण् न् म् हो जाता है, यथा—

वाक्+मय=वाङ्मय, प्राक्+मुख=प्राङ्मुख

षट्+मुख=षण्मुख, षट्+मास=षण्मास

उत्+माद=उन्माद, उत्+मत्त=उन्मत्त, सत्+मार्ग=सन्मार्ग, जगत्+नाथ=जगन्नाथ, उत्+नयन=उन्नयन।

अप्+मय=अम्मय

इस संधि के नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—अघोष स्पर्श+नासिक्य>तद्वर्गीय नासिक्य

(3) त्/द् के बाद च्/छ्, ज्/झ्, ट्/ठ्, ड्/ढ्, ल हो तो त्/द् के स्थान पर च्/ज्/ट्/ड्/ल् हो जाता है, यथा—

उत्+चारण=उच्चारण, शरत्+चन्द्र=शरच्चन्द्र, सत्+चरित्र=सच्चरित्र, सत्+चिदानन्द=सच्चिदानन्द, विद्युत्+छटा=विद्युच्छटा, उत्+छिन्न=उच्छिन्न, महत्+छाया=महच्छाया, उत्+छेद=उच्छेद, महत्+छाया=महच्छाया, जगत्+छाया=जगच्छाया, सत्+जन=सज्जन, उत्+ज्वल=उज्ज्वल, सत्+जाति=सज्जाति, विद्युत्+जाल=विद्युज्जाल, तत्+जय=तज्जय

बृहत्+टीका=बृहट्टीका, तत्+टीका=तट्टीका, उत्+डयन=उड्डयन, बृहत्+डमरू=बृहड्डमरू

उत्+लास=उल्लास, उत्+लेख=उल्लेख, तत्+लीन=तल्लीन

इस संधि के नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—त्/द्+च/छ>च्च, त्/द्+ज/झ>ज्ज, त्/द्+ट/ठ>ट्ट, त्/द्+ड/ढ>ड्ड, त्/द्+ल>ल्ल।

(4) त्/द् के बाद श् होने पर त्/द् के स्थान पर च्; श् के स्थान पर छ् हो जाता है; त्/द् के बाद ह् होने पर त्/द् के स्थान पर द्; ह् के स्थान पर ध् हो जाता है, यथा—

सत्+शास्त्र=सच्छास्त्र, उत्+श्वास=उच्छ्वास, तत्+शरण=तच्छरण, उत्+शिष्ट=उच्छिष्ट, तत्+शरीर=तच्छरीर, हनुमत्+शास्त्री=हनुमच्छास्त्री, उत्+शृंखल=उच्छृंखल, उत्+हार=उद्धार, उत्+हित=उद्धित, तत्+हित=तद्धित, उत्+हत=उद्धत, उत्+हृत=उद्धृत, उत्+हरण=उद्धरण

इस संधि के नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—त्+श>च्छ; त्+ह>द्ध

(5) 'द्' के पश्चात् अघोष व्यंजन आने पर 'द्' के स्थान पर 'त्' हो जाता है, यथा—

सद्+कार=सत्कार, उद्+साह=उत्साह, तद्+पर=तत्पर, क्षुद्+पिपासा=क्षुत्पिपासा

नियम-सूत्र—द्+अघोष व्यंजन>त्

(6) संधीय पदों के द्वितीयांश के आरम्भ में 'छ' होने पर संधिज शब्द में 'च्' का आगम हो जाता है, यथा—

अव+छेद=अवच्छेद, वि+छेद=विच्छेद, वृक्ष+छाया=वृक्षच्छाया, परि+छेद=परिच्छेद, अनु+छेद=अनुच्छेद, छत्र+छाया=छत्रच्छाया, श्री+छाया=श्रीच्छाया, आ+छादन=आच्छादन

नियम-सूत्र—स्वर+छ>'च्' आगम

(7) 'म्' के बाद वर्गीय व्यंजन होने पर म् के स्थान पर तद्वर्गीय नासिक्य व्यंजन हो जाता है; अन्तस्थ या ऊष्म व्यंजन होने पर अनुस्वार हो जाता है; स्वर होने पर 'म्' ही रहता है, यथा—

व्यंजन संधियाँ

अक्षरान्त या शब्दान्त के व्यंजन के बाद आनेवाले स्वर या व्यंजन के कारण व्यंजन में होनेवाला विकार/परिवर्तन '**व्यंजन सन्धि**' कहा जाता है।

संस्कृत भाषा के शब्दों में व्यंजन संधियाँ कई प्रकार की होती हैं। यहाँ उन के कुछ नियम लिखे जा रहे हैं।

(1) क् च् ट् त् प् के बाद किसी स्वर या वर्गीय तीसरे या चौथे अक्षर या य् र् ल् व् ह् के आने पर क् च् ट् त् प् के स्थान पर क्रमशः ग् ज् ड् द् ब हो जाता है, यथा—

दिक्+गज=दिग्गज, वाक्+दत्त=वाग्दत्त, वाक्+ईश=वागीश, वाक्+दान=वाग्दान, वाक्+इन्द्रिय=वागिन्द्रिय, दिक्+अम्बर=दिगम्बर, दिक्+दर्शन=दिग्दर्शन, धिक्+याचना=धिग्याचना, वाक्+विलास=वाग्विलास।

अच्+आदि=अजादि, अच्+अन्त=अजन्त।

षट्+आनन=षडानन, षट्+दर्शन=षड्दर्शन, षट्+रिपु=षड्रिपु।

भगवत्+गीता=भगवद्गीता, तत्+अनुसार=तदनुसार, सत्+आनन्द=सदानन्द, जगत्+इन्द्र=जगदिन्द्र, सत्+उत्तर=सदुत्तर, सत्+भावना=सद्भावना, महत्+औषध=महदौषध, सत्+वंश=सद्वंश, पशुवत्+गामी=पशुवद्गामी, तत्+रूप=तद्रूप, महत्+धनुष=महद्धनुष, उत्+गम=उद्गम, सत्+धर्म=सद्धर्म, उत्+अय=उदय, सत्+आचार=सदाचार, जगत्+अम्बा=जगदम्बा, जगत्+ईश=जगदीश, महत्+ओज=महदोज, उत्+योग=उद्योग, भविष्यत्+वाणी=भविष्यद्वाणी, उत्+घाटन=उद्घाटन, सत्+उपदेश=सदुपदेश, जगत्+बन्धु=जगद्बन्धु, भगवत्+भक्ति=भगवद्भक्ति।

अप्+ज=अब्ज, अप्+भूति=अब्भूति, सुप्+अन्त=सुबन्त।

इस संधि के नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है—अघोष स्पर्श+घोष (—नासिक्य)>घोष स्पर्श

(2) क् च् ट् त् प् के बाद किसी नासिक्य व्यंजन के आने पर क् च् ट् त् प् के स्थान पर क्रमशः ङ् ञ् ण् न् म् हो जाता है, यथा—

वाक्+मय=वाङ्मय, प्राक्+मुख=प्राङ्मुख

षट्+मुख=षण्मुख, षट्+मास=षण्मास

उत्+माद=उन्माद, उत्+मत्त=उन्मत्त, सत्+मार्ग=सन्मार्ग, जगत्+नाथ=जगन्नाथ, उत्+नयन=उन्नयन।

अप्+मय=अम्मय

इस संधि के नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—अघोष स्पर्श+नासिक्य>तद्वर्गीय नासिक्य

(3) त्/द् के बाद च्/छ्, ज्/झ्, ट्/ठ्, ड्/ढ्, ल हो तो त्/द् के स्थान पर च्/ज्/ट्/ड्/ल् हो जाता है, यथा—

उत्+चारण=उच्चारण, शरत्+चन्द्र=शरच्चन्द्र, सत्+चरित्र=सच्चरित्र, सत्+चिदानन्द=सच्चिदानन्द, विद्युत्+छटा=विद्युच्छटा, उत्+छिन्न=उच्छिन्न, महत्+छाया=महच्छाया, उत्+छेद=उच्छेद, महत्+छाया=महच्छाया, जगत्+छाया=जगच्छाया, सत्+जन=सज्जन, उत्+ज्वल=उज्ज्वल, सत्+जाति=सज्जाति, विद्युत्+जाल=विद्युज्जाल, तत्+जय=तज्जय

बृहत्+टीका=बृहट्टीका, तत्+टीका=तट्टीका, उत्+डयन=उड्डयन, बृहत्+डमरू=बृहड्डमरू

उत्+लास=उल्लास, उत्+लेख=उल्लेख, तत्+लीन=तल्लीन

इस संधि के नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—त्/द्+च/छ>च्च, त्/द्+ज/झ>ज्ज, त्/द्+ट/ठ>ट्ट, त्/द्+ड/ढ>ड्ड, त्/द्+ल>ल्ल।

(4) त्/द् के बाद श् होने पर त्/द् के स्थान पर च्; श् के स्थान पर छ् हो जाता है; त्/द् के बाद ह् होने पर त्/द् के स्थान पर द्; ह् के स्थान पर ध् हो जाता है, यथा—

सत्+शास्त्र=सच्छास्त्र, उत्+श्वास=उच्छ्वास, तत्+शरण=तच्छरण, उत्+शिष्ट=उच्छिष्ट, तत्+शरीर=तच्छरीर, हनुमत्+शास्त्री=हनुमच्छास्त्री, उत्+शृंखल=उच्छृंखल, उत्+हार=उद्धार, उत्+हित=उद्धित, तत्+हित=तद्धित, उत्+हत=उद्धत, उत्+हृत=उद्धृत, उत्+हरण=उद्धरण

इस संधि के नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—त्+श>च्छ; त्+ह>द्ध

(5) 'द्' के पश्चात् अघोष व्यंजन आने पर 'द्' के स्थान पर 'त्' हो जाता है, यथा—

सद्+कार=सत्कार, उद्+साह=उत्साह, तद्+पर=तत्पर, क्षुद्+पिपासा=क्षुत्पिपासा

नियम-सूत्र—द्+अघोष व्यंजन>त्

(6) संधीय पदों के द्वितीयांश के आरम्भ में 'छ' होने पर संधिज शब्द में 'च्' का आगम हो जाता है, यथा—

अव+छेद=अवच्छेद, वि+छेद=विच्छेद, वृक्ष+छाया=वृक्षच्छाया, परि+छेद=परिच्छेद, अनु+छेद=अनुच्छेद, छत्र+छाया=छत्रच्छाया, श्री+छाया=श्रीच्छाया, आ+छादन=आच्छादन

नियम-सूत्र—स्वर+छ>'च्' आगम

(7) 'म्' के बाद वर्गीय व्यंजन होने पर म् के स्थान पर तद्वर्गीय नासिक्य व्यंजन हो जाता है; अन्तस्थ या ऊष्म व्यंजन होने पर अनुस्वार हो जाता है; स्वर होने पर 'म्' ही रहता है, यथा—

अलम्+कार=अलंकार/अलङ्कार, (अहंकार/अहङ्कार, संकल्प/सङ्कल्प, संगम/सङ्गम); किम्+चित्=किंचित्/किञ्चित्, (संचय/सञ्चय); सम्+तोष=संतोष/सन्तोष, (संताप/सन्ताप); सम्+बन्ध=संबंध/सम्बन्ध (संबुद्धि/सम्बुद्धि, संबंधी/सम्बन्धी); सम्+भव=संभव/सम्भव; (स्वयंभू/स्वयम्भू); सम्+पूर्ण=संपूर्ण/सम्पूर्ण; सम्+यम=संयम, (संयोग); सम्+रक्षक=संरक्षक, (संरक्षा, संरक्षण); सम्+लग्न=संलग्न, (संलय, संलाप); सम्+वत्=संवत्, (स्वयंवर, संवाद); सम्+शय=संशय; सम्+सार=संसार; सम्+हार=संहार; सम्+आचार=समाचार, सम्+उदाय=समुदाय, सम्+ऋद्धि=समृद्धि, त्वम्+एव=त्वमेव

नियम-सूत्र—म्+वर्गीय व्यंजन>तद्वर्गीय नासिक्य व्यंजन; म्+अंतस्थ/ऊष्म व्यंजन>अनुस्वार; म्+स्वर>म्

('सम्राट्, सम्राज्ञी, साम्राज्य' में 'सम्' का म् अनुस्वार नहीं बनता)

(8) ऋ, र्, ष् के तुरन्त बाद/द्वितीयांश में 'न' हो तो 'न' ण हो जाता है यथा—

कृष्+न=कृष्ण; भूष+अन=भूषण; विष्+नु=विष्णु; परीक्षा>परीक्ष+अन=परीक्षण; पोष् (<√पुष्)+अन=पोषण; प्र+मान=प्रमाण; पूर्+न=पूर्ण; राम+अयन=रामायण; नार+अयन=नारायण; परि+मान=परिमाण; मर् (<√मृ)+अन=मरण; ऋ+न=ऋण; शिक्ष्+अन=शिक्षण; तृष्+ना=तृष्णा

नियम-सूत्र—ऋ/र्/ष्+न>ण

(9) र् के बाद र् होने पर प्रथम र् का लोप हो कर उस से पूर्व का इ 'ई' हो जाता है, यथा—

निर्+रोग=नीरोग, निर्+रस=नीरस

नियम-सूत्र—इ- -र्+र्>ई - - - र्

(10) त्/द्/न् के बाद ल् होने पर त्/द्/न् के स्थान पर ल् हो जाता है, न् वाले अंश में अनुस्वार का अतिरिक्त योग हो जाता है, यथा—

उत्+लंघन=उल्लंघन, (उल्लेख, उल्लास, तल्लीन); महान्+लाभ=महांल्लाभ

नियम-सूत्र—त्/द्+ल>ल्ल, न्+ल>ल्लं

(11) संधीय पदों के द्वितीयांश के आरम्भ में स् हो और प्रथमांश में अ/आ के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर हो तो स् के स्थान पर ष् हो जाता है, यथा—

वि+सम=विषम, (सुषुप्त, अभिषेक, अनुषंगी, निषेध)

(अपवाद—विसर्ग, विस्मरण)

नियम-सूत्र—(—अ/आ) स्वर+स>ष

(12) ष् के बाद त्/थ् होने पर त्/थ् के स्थान पर क्रमशः ट्/ठ् हो जाता है, यथा—

आकृष् + त = आकृष्ट, (उत्कृष्ट, तुष्ट, दुष्ट, इष्ट); षष् + थ = षष्ठ, (पृष्ठ)

नियम-सूत्र—ष् + त्/थ् > ट्/ठ्

(13) कुछ अन्य संधिज शब्द—

सम् + कृति = संस्कृति, सम् + कृत = संस्कृत, सम् + कार = संस्कार

अन् + आचार = अनाचार, निर् + उद्देश्य = निरुद्देश्य, निर् + उद्यम = निरुद्यम, पुनर् + ईक्षण = पुनरीक्षण

तत् + काल = तत्काल, तद् + रूप = तद्रूप, सम् + न्यास = संन्यास

विसर्ग सन्धियाँ

अक्षरान्त या शब्दान्त के विसर्ग के बाद आनेवाले स्वर/व्यंजन के कारण विसर्ग में होनेवाला विकार 'विसर्ग सन्धि' कहा जाता है।

संस्कृत में विसर्ग सन्धियाँ कई प्रकार की होती हैं। यहाँ उन में से कुछ के बारे में नियम, उदाहरण लिखे जा रहे हैं।

(1) विसर्ग के बाद च्/छ्; ट्/ठ्; त्/थ् होने पर विसर्ग के स्थान पर क्रमशः श्; ष्; स् हो जाता है, यथा—

निः + चल = निश्चल, (पुनश्चर्या, निश्चय, निश्चेष्ट, निश्चित, दुश्चरित्र); निः + छल = निश्छल

धनुः + टंकार = धनुष्टंकार

मनः + ताप = मनस्ताप, (निस्तेज, दुस्तर, निस्तार)

नियम-सूत्र—: + च्/छ् > श्च्/श्छ्; : + ट्/ठ् > ष्ट्/ष्ठ्; : + त्/थ् > स्त/स्थ

(2) अः/उः के बाद श्/ष्/स् होने पर विसर्ग के स्थान पर विकल्प से परवर्ती ध्वनि आती है, यथा—

दुः + शील = दुःशील/दुश्शील, (दुःशासन,/दुश्शासन अन्तःशक्ति/अन्तश्शक्ति, निःशब्द/निश्शब्द, निःशेष/निश्शेष, निःशुल्क/निश्शुल्क)

बहिः + षट् = बहिःषट्/बहिष्षट्

दुः + स्वप्न = दुःस्वप्न/दुस्स्वप्न, (निःसंतान/निस्संतान, दुःसाहस/दुस्साहस, निःसंदेह/निस्संदेह, निःसंकोच/निस्संकोच, पुनःस्मरण/पुनस्स्मरण, मनःस्थिति/मनस्स्थिति

नियम-सूत्र—अः/उः + श्/ष्/स् > :/श/ष/स

(3) इः/उः के बाद क्/ख्/ठ्/प्/फ् होने पर विसर्ग के स्थान पर ष् हो जाता है, किन्तु अः होने पर कोई विकार नहीं होता, यथा—

निः + कपट > निष्कपट, (दुष्कर, दुष्काल, चतुष्कोण, दुष्कर्म, दुष्प्रकृति, निष्कलंक, निष्काम, निष्क्रिय); निः + ठुर = निष्ठुर

निः+पाप=निष्पाप, (निष्प्रभ, निष्पक्ष, दुष्प्रयोजन, दुष्प्रकृति, निष्फल)

नियम-सूत्र—इः/उः+अघोष स्पर्श>ष्

(4) किसी स्वर के पश्चात् के विसर्ग के बाद कोई स्वर, वर्गीय तृतीय, चतुर्थ, पंचम ध्वनि; य्/ल्/व्/ह् होने पर विसर्ग के स्थान पर र् हो जाता है, यथा—निः+आशा=निराशा, (निरपराध, निराधार, पुनरपि, पुनरागत, दुराचार, निरर्थक, दुरुपयोग, निरिच्छा, निरौषध, अन्तराग्नि)।

निः+गुण=निर्गुण, (निर्विकार, निर्यात, दुर्लभ, दुर्गुण, निर्जन, निर्जल, निर्बल, निर्मल, निर्लज्ज, निर्गम, निर्झर, निर्विघ्न, निर्विवाद, निर्धन, निर्भय, दुर्भाव, दुर्गति, दुर्नीति, बहिर्मुख, बहिर्देश, पुनर्वास, पुनर्मिलन, अन्तर्गत, पुनर्जन्म, अन्तर्धान, अन्तर्विरोध; निर्माण<निः+मान;

नियम-सूत्र— :+घोष ध्वनि>र्

अँगरेज़ी Inter का पर्याय 'अन्तर' स्वीकार किया गया है न कि 'अन्तर्'; अतः 'अन्तरप्रान्तीय, अन्तरजातीय, अन्तरराष्ट्रीय, अन्तरविभागीय' शब्द इसके योग से निर्मित एवं प्रचलित हैं। इन में 'अन्तः' के योग से संधि नहीं हुई है। 'अन्तर्देशीय' Inland=अन्तः+देशीय में संधि है।

संस्कृत शब्दों में 'निः, नि, का व्यतिरेक और बहुमुखी वैपरीत्य (opposition) मिलता है, यथा—

निः+स>स्स, यथा—निस्सीम, निस्सन्देह, निस्सार। निसंग, निसहाय (वैकल्पिक रूप)।

नि+स>अपरिवर्तन, यथा—निसर्ग, निसूदन।

निः+स्>विसर्ग-लोप, यथा—निस्वार्थ, निस्पन्द, निस्पृह। निस्स्वार्थ/निःस्वार्थ (वैकल्पिक रूप)

नि+स्>अपरिवर्तन, यथा—निस्तब्ध (=बहुत अधिक स्तब्ध)

निः+त>स्त, यथा—निस्तार, निस्तीर्ण, निस्तोद (=चुभन/गहरा चुभना)।

(5) अः के बाद वर्गीय तृतीय, चतुर्थ, पंचम ध्वनि, य्/र्/ल/व्/ह् होने पर अः के स्थान पर ओ हो जाता है, यथा—

मनः (<मनस्)+गत=मनोगत, (मनोज, मनोज्ञ, मनोरथ, मनोरम, मनोनीत, मनोहर, मनोभाव, मनोयोग, मनोबल, मनोविकार, मनोरंजन, मनोवेग, पयोधर, पयोनिधि, तमोगुण, अधोगति, अधोमति, अधोभाग, यशोदा, यशोधर, अधोमुखी, तेजोमय, सरोवर, सरोज, तपोवन, तपोबल, तपोनिधि, तपोभूमि, पयोद, तेजोराशि)।

नियम-सूत्र—अः+घोष व्यंजन>ओ

(मनः+कामना=★ मनोकामना सादृश्य पर निर्मित अशुद्ध संधिज शब्द

किन्तु हिन्दी में बहु प्रचलित। मनः+स्थिति=★ मनोस्थिति सादृश्य पर निर्मित अशुद्ध संधिज शब्द)

(6) अः/इः के बाद र् होने पर विसर्ग के लोप के साथ अ, इ के स्थान पर आ, ई हो जाता है, यथा—

निः+रस=नीरस, (नीरन्ध्र, नीरोग, नीरेफ, नीरव, पुनारचना)

नियम-सूत्र—अः/ईः+र>आ/ई

(7) अः के बाद अ होने पर लुप्ताकार चिह्न के साथ ओ रखते हैं, यथा—

यशः+अभिलाषी=यशोऽभिलाषी, (मनोऽनुसार, नवोऽकुंर, मनोऽभिराम, कोऽपि, प्रथमोऽध्याय, मनोऽवधान)

नियम-सूत्र—अः+अ>ओऽ

(8) क्/ख्/प्/फ्/स् से पूर्व आनेवाले प्रथमांश के अन्त के अः में कोई परिवर्तन नहीं होता, यथा—

मनः+कल्पित=मनःकल्पित, (प्रातःकाल, अन्तःकरण, पुनःफलित, अधः पतन, अन्तःपुर, पुनःसंस्कार)

नियम-सूत्र=अः+अघोष व्यंजन>अः

(9) कुछ अन्य संधिज शब्द—

पुरः+कार=पुरस्कार (नमस्कार, तिरस्कार, भास्कर) तस्कर, मनस्क, वयस्क), मनः+कामना=मनःकामना, तेजः+आभास=तेजआभास, अतः+एव अतएव, दुः+ख=दुःख, दुः+सह=दुस्सह, निः+सहाय=निस्सहाय, वक्षः+स्थल=वक्षस्थल, अधः+पतन=अधःपतन; अन्तः+पुर=अन्तःपुर, पयः+पान पयः पान, यशः+इच्छा=यशइच्छा

कुछ संधिज शब्दों के लिए नियम-सूत्र अः+अ—इतर स्वर>विसर्ग-लोप

हिन्दी-संधियाँ

विश्लेषणात्मक प्रकृति की भाषा होने के कारण हिन्दी में संधि-प्रक्रिया अत्यल्प मात्रा में ही प्राप्त है। हिन्दी की कुछ सन्धियाँ संस्कृत-संधियों के सादृश्य पर और कुछ निजी आधार पर बनी हुई कही जा सकती है। हिन्दी में संस्कृत की ऋ की सवर्ण दीर्घ संधि; ऋ की यण् संधि; ऐ, औ की वृद्धि संधि; अयादि संधि; षत्व संधि; विसर्ग संधि का अभाव है। हिन्दी की कुछ संधियाँ संस्कृत भाषा के संधि-नियमों के विपरीत भी ठहर सकती हैं किन्तु उन्हें हम हिन्दी में प्रचलन के आधार पर अस्वीकार नहीं कर सकते। हिन्दी में प्राप्त संधि-प्रक्रिया रूपस्वनिमिक परिवर्तन/विकार का ही एक रूप है। यहाँ हिन्दी में प्रचलित कुछ संधिज शब्द लिखे जा रहे हैं—

लोप के आधार पर बने कुछ संधिज शब्द—ख़रीद+दार=ख़रीदार; जब+ही=जभी; अब+ही=अभी; कब+ही=कभी; इस+ही=इसी;

निः+पाप=निष्पाप, (निष्प्रभ, निष्पक्ष, दुष्प्रयोजन, दुष्प्रकृति, निष्फल)

नियम-सूत्र—इः/उः+अघोष स्पर्श>ष्

(4) किसी स्वर के पश्चात् के विसर्ग के बाद कोई स्वर, वर्गीय तृतीय, चतुर्थ, पंचम ध्वनि; य्/ल्/व्/ह् होने पर विसर्ग के स्थान पर र् हो जाता है, यथा—निः+आशा=निराशा, (निरपराध, निराधार, पुनरपि, पुनरागत, दुराचार, निरर्थक, दुरुपयोग, निरिच्छा, निरौषध, अन्तराग्नि)।

निः+गुण=निर्गुण, (निर्विकार, निर्यात, दुर्लभ, दुर्गुण, निर्जन, निर्जल, निर्बल, निर्मल, निर्लज्ज, निर्गम, निर्झर, निर्विघ्न, निर्विवाद, निर्धन, निर्भय, दुर्भाव, दुर्गति, दुर्नीति, बहिर्मुख, बहिर्देश, पुनर्वास, पुनर्मिलन, अन्तर्गत, पुनर्जन्म, अन्तर्धान, अन्तर्विरोध; निर्माण<निः+मान;

नियम-सूत्र— :+घोष ध्वनि>र्

अँगरेज़ी Inter का पर्याय 'अन्तर' स्वीकार किया गया है न कि 'अन्तर्'; अतः 'अन्तरप्रान्तीय, अन्तरजातीय, अन्तरराष्ट्रीय, अन्तरविभागीय' शब्द इसके योग से निर्मित एवं प्रचलित हैं। इन में 'अन्तः' के योग से संधि नहीं हुई है। 'अन्तर्देशीय' Inland=अन्तः+देशीय में संधि है।

संस्कृत शब्दों में 'निः, नि, का व्यतिरेक और बहुमुखी वैपरीत्य (opposition) मिलता है, यथा—

निः+स>स्स, यथा—निस्सीम, निस्सन्देह, निस्सार। निसंग, निसहाय (वैकल्पिक रूप)।

नि+स>अपरिवर्तन, यथा—निसर्ग, निसूदन।

निः+स >विसर्ग-लोप, यथा—निस्वार्थ, निस्पन्द, निस्पृह। निस्स्वार्थ/निःस्वार्थ (वैकल्पिक रूप)

नि+स >अपरिवर्तन, यथा—निस्तब्ध (=बहुत अधिक स्तब्ध)

निः+त >स्त, यथा—निस्तार, निस्तीर्ण, निस्तोद (=चुभन/गहरा चुभना)।

(5) अः के बाद वर्गीय तृतीय, चतुर्थ, पंचम ध्वनि, य्/र्/ल/व्/ह् होने पर अः के स्थान पर ओ हो जाता है, यथा—

मनः (<मनस्)+गत=मनोगत, (मनोज, मनोज्ञ, मनोरथ, मनोरम, मनोनीत, मनोहर, मनोभाव, मनोयोग, मनोबल, मनोविकार, मनोरंजन, मनोवेग, पयोधर, पयोनिधि, तमोगुण, अधोगति, अधोमति, अधोभाग, यशोदा, यशोधर, अधोमुखी, तेजोमय, सरोवर, सरोज, तपोवन, तपोबल, तपोनिधि, तपोभूमि, पयोद, तेजोराशि)।

नियम-सूत्र—अः+घोष व्यंजन>ओ

(मनः+कामना=★ मनोकामना सादृश्य पर निर्मित अशुद्ध संधिज शब्द

किन्तु हिन्दी में बहु प्रचलित। मनः+स्थिति=★ मनोस्थिति सादृश्य पर निर्मित अशुद्ध संधिज शब्द)

(6) अः/इः के बाद र् होने पर विसर्ग के लोप के साथ अ, इ के स्थान पर आ, ई हो जाता है, यथा—

निः+रस=नीरस, (नीरन्ध्र, नीरोग, नीरेफ, नीरव, पुनारचना)

नियम-सूत्र—अः/ईः+र>आ/ई

(7) अः के बाद अ होने पर लुप्ताकार चिह्न के साथ ओ रखते हैं, यथा—

यशः+अभिलाषी=यशोऽभिलाषी, (मनोऽनुसार, नवोऽकुंर, मनोऽभिराम, कोऽपि, प्रथमोऽध्याय, मनोऽवधान)

नियम-सूत्र—अः+अ>ओऽ

(8) क्/ख्/प्/फ्/स् से पूर्व आनेवाले प्रथमांश के अन्त के अः में कोई परिवर्तन नहीं होता, यथा—

मनः+कल्पित=मनःकल्पित, (प्रातःकाल, अन्तःकरण, पुनःफलित, अधः पतन, अन्तःपुर, पुनःसंस्कार)

नियम-सूत्र=अः+अघोष व्यंजन>अः

(9) कुछ अन्य संधिज शब्द—

पुरः+कार=पुरस्कार (नमस्कार, तिरस्कार, भास्कर) तस्कर, मनस्क, वयस्क), मनः+कामना=मनःकामना, तेजः+आभास=तेजआभास, अतः+एव अतएव, दुः+ख=दुःख, दुः+सह=दुस्सह, निः+सहाय=निस्सहाय, वक्षः+स्थल=वक्षस्थल, अधः+पतन=अधःपतन; अन्तः+पुर=अन्तःपुर, पयः+पान पयः पान, यशः+इच्छा=यशइच्छा

कुछ संधिज शब्दों के लिए नियम-सूत्र अः+अ—इतर स्वर>विसर्ग-लोप

हिन्दी-संधियाँ

विश्लेषणात्मक प्रकृति की भाषा होने के कारण हिन्दी में संधि-प्रक्रिया अत्यल्प मात्रा में ही प्राप्त है। हिन्दी की कुछ सन्धियाँ संस्कृत-संधियों के सादृश्य पर और कुछ निजी आधार पर बनी हुई कही जा सकती है। हिन्दी में संस्कृत की ऋ की सवर्ण दीर्घ संधि; ऋ की यण् संधि; ऐ, औ की वृद्धि संधि; अयादि संधि; षत्व संधि; विसर्ग संधि का अभाव है। हिन्दी की कुछ संधियाँ संस्कृत भाषा के संधि-नियमों के विपरीत भी ठहर सकती हैं किन्तु उन्हें हम हिन्दी में प्रचलन के आधार पर अस्वीकार नहीं कर सकते। हिन्दी में प्राप्त संधि-प्रक्रिया रूपस्वनिमिक परिवर्तन/विकार का ही एक रूप है। यहाँ हिन्दी में प्रचलित कुछ संधिज शब्द लिखे जा रहे हैं—

लोप के आधार पर बने कुछ संधिज शब्द—ख़रीद+दार=ख़रीदार; जब+ही=जभी; अब+ही=अभी; कब+ही=कभी; इस+ही=इसी;

उस + ही = उसी; किस + ही = किसी; यहाँ + ही = यहीं; वहाँ + ही = वहीं; कहाँ + ही = कहीं; यह + ही = यही, वह + ही = वही; घोड़ा + -ई = घोड़ी, काना + -औढ़ा = कनौढ़ा; काठ + उल्लू = कठल्लू; ज़िला + अधीश = ज़िलाधीश।

आगम के आधार पर बने कुछ संधिज शब्द—दीन + नाथ = दीनानाथ; मूसल + धार = मूसलाधार; विश्व + मित्र = विश्वामित्र (संस्कृत में भी प्रचलित); मन + कामना = मनोकामना; उत्तर + खंड = उत्तराखंड, दक्षिण + खंड = दक्षिणाखंड; लिख (ना) + (पढ़ (ना) = लिखापढ़ी।

अ/आ/ओ/इ (<ई/ए) + -आ/ -आँ/ -ओं/-ओ > 'य' आगम, यथा—ग + -आ = गया; आ + -आ = आया; ला + -आ = लाया; खा + -आ = खाया; छा + -आ = छाया; धो + -आ = धोया, सो + -आ = सोया, रो + -आ = रोया; रीति + -आँ = रीतियाँ; नीति + -आँ = नीतियाँ; पक्षि (<पक्षी) + -ओं = पक्षियों; हाथि (<हाथी) + -ओं = हाथियों; भाइ (<भाई) + ओ = भाइयो; लि (<ले) + -आ = लिया; दि (<दे) + -आ = दिया; कि (<कर) + -आ = किया।

दे > दी + -इए = दीजिए; ले > ली + -इए = लीजिए; पी + -इए = पीजिए; कर > की + -इए = कीजिए।

ह्रस्वीकरण के आधार पर बने कुछ संधिज शब्द—(i) प्रथम पदीय ह्रस्वता—घोड़ा + चढ़ी = घुड़चढ़ी, दूध + मुँहा = दुधमुँहा, कान + कटा = कनकटा, काठ + फोड़ा = कठफोड़ा, फूल + वाड़ी = फुलवाड़ी, ठाकुर + आइन = ठकुराइन, टुकड़ा + खोर = टुकड़खोर, काना + ओड़ा = कनौड़ा, लोटा + -इया = लुटिया, बाबू + -आइन = बबुआइन (ii) उभयपदीय ह्रस्वता—काट + खाना = कटखना, घास + खोद (ना) - घसखुदा, मूँछ + काट (ना) = मुँछकटा।

दीर्घीकरण के आधार पर बने कुछ संधिज शब्द—हिल (ना) + मिल (ना) = हेलमेल, मिल (ना) + जुल (ना) = मेलजोल

2. समास

समास एक प्रक्रिया है, जिस का शाब्दिक अर्थ है—सम् = पास; आस = बिठाना/रखना (दो सम्बद्ध शब्दों को पास-पास ला बिठाना/रखना)। इस शब्द का अर्थ है—संक्षेपीकरण, यथा—कमल के समान सुन्दर मुख + कमलानन। दो या दो से अधिक परस्पर सम्बन्धित शब्दों के मिलने से बने स्वतन्त्र सार्थक शब्द समस्त/सामासिक/समासज शब्द/पद कहलाते हैं। शब्दों का इस प्रकार का योग **समास** कहलाता है।

समास-विग्रह का अर्थ है—समासज शब्दों के मध्य के सम्बन्ध को स्पष्ट करना। समासज शब्दों के विग्रह के समय किसी-न-किसी अतिरिक्त शब्द या विभक्ति

का प्रयोग होता है, जब कि संधिज शब्दों के विग्रह के समय ऐसा नहीं होता, यथा—राजमन्त्री ने =राजा के मन्त्री ने; गौरीशंकर की =गौरी की तथा शंकर की पत्रोत्तर =पत्र का उत्तर ; चन्द्रमुख =चन्द्र-सा मुख ।

समास होते समय सम्बन्ध बतानेवाले शब्दादि का ही लोप नहीं होता, वरन् समासज शब्द के पदों में कुछ ध्वन्यात्मक विकार भी हो जाता है; यथा—घोड़े का सवार=घुड़सवार; काठ की पुतली=कठपुतली; हाथ के लिए कड़ी=हथकड़ी ।

सन्धि, समास, उपसर्ग-प्रत्यय के योग से बने शब्दों की रचना-प्रक्रिया में अन्तर होता है ।

सन्धिज शब्द शब्दांश/शब्द+शब्दांश/शब्द से बनते हैं ।

समासज शब्द शब्द/उपसर्ग+शब्द से बनते हैं ।

उपसर्ग-प्रत्ययज शब्द उपसर्ग/प्रत्यय+शब्द से बनते हैं ।

समासज शब्द के पश्चात् ही कारक-चिह्न का प्रयोग होता है किन्तु उस शब्द का प्रत्येक खंड कारक-चिह्न से प्रभावित रहता है, यथा—**घुड़सवार** ने उतर कर मन्दिर में **शिव-पार्वती** की पूजा की ।

इस वाक्य में उतरने, पूजा करनेवाला 'सवार' है न कि घोड़ा; पूजा 'शिव' और 'पार्वती' दोनों की की गई है न कि किसी एक की ।

समासज शब्दों में कभी प्रथम खंड प्रधान होता है, तो कभी दूसरा; कभी दोनों पद प्रधान होते हैं, तो कभी कोई नहीं । प्रधानता को आधार बनाते हुए संस्कृत में चार प्रकार के समास माने गए हैं—1. अव्ययीभाव 2. तत्पुरुष 3. द्वन्द्व 4. बहुव्रीहि । तत्पुरुष समास में कर्मधारय और द्विगु समास का समाहार हो जाता है ।

1. **अव्ययीभाव समास**—जब समासज शब्द का प्रथम खंड प्रधान होता है तथा समस्त पद अव्यय का कार्य करता है, तब उसे **अव्ययीभाव समास** कहते हैं, यथा—यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार); प्रतिदिन (प्रत्येक दिन); बेखटके (खटके के बिना); भरपेट (पेट भर कर) ।

अव्ययीभाव समास में प्रथम खंड अव्यय/उपसर्ग होने तथा प्रधान होने के कारण पूरे शब्द को अव्यय बना देता है । अनेक अव्ययीभाव समासज शब्दों के विग्रह के समय कोई विभक्ति/कारक-चिह्न नहीं लगता । कभी-कभी संज्ञाओं की द्विरुक्ति से भी अव्ययीभाव समास बनते हैं । हिन्दी में संस्कृत, हिन्दी, उर्दू के अव्ययीभाव समासज शब्द प्रचलित हैं, यथा—(संस्कृत)—अनुरूप, आमरण, आजीवन, यावज्जीवन, यथासम्भव, यथाशक्ति, यथाशीघ्र, यथास्थान, यथासाध्य, प्रतिदिन, प्रत्यक्ष, परोक्ष, व्यर्थ, अनुदिन, अकारण, सहर्ष, यथाविधि, प्रतिमास, निडर

(हिन्दी)—हाथोंहाथ, बार-बार, एकाएक, पहले-पहल, रातोंरात, अनजाने, निधड़क, बीचोंबीच, धड़ाधड़, गाँव-गाँव, अनजाने, धीरे-धीरे, बेखटके, भरपेट, पीछे-पीछे

(उर्दू)—बेशक, हररोज़, दरअसल, दरहकीकत, रोज़-रोज़, साल-ब-साल

उपर्युक्त समासज शब्द अव्यय का काम करने के कारण अव्ययीभाव समास के उदाहरण हैं। कुछ अव्ययीभाव समासज शब्दों का विग्रह नीचे लिखा जा रहा है—

आजीवन—जीवन तक/पर्यन्त; आमरण—मृत्यु तक/पर्यन्त, (आजन्म); प्रतिदिन—दिन-दिन/प्रत्येक दिन; यथाशक्ति—शक्ति के अनुसार, (यथाविधि); भरपेट—पेटभर कर; हाथोंहाथ—एक हाथ से दूसरे हाथ (होते हुए); रातोंरात—रात ही रात में; यथासामर्थ्य—सामर्थ्य के अनुसार, (यथागति); प्रत्येक—एक-एक; एकाएक—अचानक; हरसाल—साल-साल, (हररोज़); बेकाम—काम के बिना, (बेशक); बा अदब—अदब के साथ; निस्सन्देह—सन्देह के बिना।

2. **तत्पुरुष समास** में पहला पद विशेषण का और दूसरा पद विशेष्य का काम करता है, अतः दूसरा पद प्रधान होता है। तत्पुरुष समासज शब्दों में कर्ता, सम्बोधन के अतिरिक्त अन्य कारक-चिह्नों—को, से, के, लिए, का/की/के, में, पर—(संस्कृत व्याकरणानुसार विभक्तियों) का लोप होता है। इस आधार पर तत्पुरुष समास के छह भेद हो जाते हैं—(क) कर्म तत्पुरुष (ख) करण तत्पुरुष (ग) सम्प्रदान तत्पुरुष (घ) अपादान तत्पुरुष (ङ) सम्बन्ध तत्पुरुष (च) अधिकरण तत्पुरुष।

तत्पुरुष शब्द का शाब्दिक अर्थ है—तत् (=वह/उस का), पुरुष (=आदमी), जैसे—राजपुरुष (राजा/राज्य का पुरुष)

(क) **कर्म तत्पुरुष** (द्वितीया तत्पुरुष) में कर्मकारक के चिह्न 'को' या द्वितीया विभक्ति का लोप हो कर एक समासज शब्द बनता है, यथा—दिवं (=स्वर्ग) को गया हुआ=दिवंगत; परलोक को जाना=परलोकगमन; मुँह को तोड़नेवाला=मुँहतोड़। इसी प्रकार स्वर्गप्राप्त, ग्रामगत, शरणागत, देशगत, आशातीत, गिरहकट, चिड़ीमार, गगनचुम्बी, कठफोड़वा

(ख) **करण तत्पुरुष** (तृतीया तत्पुरुष) में करण कारक के चिह्न 'से' या तृतीया विभक्ति का लोप हो कर एक समासज शब्द बनता है, यथा—गुण से युक्त=गुणयुक्त; ईश्वर द्वारा प्रदत्त=ईश्वरप्रदत्त। इसी प्रकार 'मदमाता, ईश्वरदत्त, गुरुदत्त, बिहारीरचित, तुलसीकृत, भुखमरा, मनमाना, भक्तिवश, कष्टसाध्य, मनचाहा, वाग्दत्ता, रेखांकित, प्रेमातुर, हस्तलिखित, शोकातुर, मदांध, दयार्द्र'

(ग) **सम्प्रदान तत्पुरुष** (चतुर्थी तत्पुरुष) में सम्प्रदान कारक के चिह्न 'के लिए/को' या चतुर्थी विभक्ति का लोप हो कर एक समासज शब्द बनता है, यथा—राह के लिए खर्च=राहखर्च; बलि के लिए पशु=बलिपशु, इसी प्रकार 'हवनसामग्री, रोकड़बही, कृष्णार्पण, रणनिमन्त्रण, हथकड़ी, आरामकुर्सी, नेत्रसुखद, गुरुदक्षिणा, गौशाला, देशानुराग, देशभक्ति, रसोईघर, देवबलि, सत्याग्रह, युद्धभूमि, देशार्पण, राज्यलिप्सा, डाकगाड़ी, मार्गव्यय, इन्द्रबलि'

(घ) **अपादान तत्पुरुष** (पंचमी तत्पुरुष) में अपादान कारक के चिह्न 'से' या पंचमी विभक्ति का लोप हो कर एक समासज शब्द बनता है, यथा—पद से मुक्त = पदमुक्त; जन्मान्ध = जन्म से अन्धा। इसी प्रकार 'आकाशपतित, भयभीत, लक्ष्यभ्रष्ट, जातिभ्रष्ट, पदच्युत, धर्मविमुख, पथभ्रष्ट, देशनिष्कासित, गुणहीन, जीवनमुक्त, ज्ञानमुक्त, ऋणमुक्त, देशनिकाला, जन्मान्ध'

(ङ) **सम्बन्ध तत्पुरुष** (षष्ठी तत्पुरुष) में सम्बन्ध कारक के चिह्न 'का/की/के' या षष्ठी विभक्ति का लोप हो कर एक समासज शब्द बनता है, यथा—घोड़ों की दौड़ = घुड़दौड़, सेना का पति = सेनापति। इसी प्रकार 'जलधारा, राष्ट्रपति, अमचूर, राजसभा, जलधारा, ऋषिकन्या, राजकुमार, वनमानुस, बैलगाड़ी, सिरदर्द, रामकहानी, आत्मकथा, गंगाजल, देशसेवक, देवस्थान, ब्राह्मणपुत्र, दिनचर्या, देवमूर्ति, जीवनसाथी, अमृतधारा, भातृस्नेह, विद्याभंडार, दीनानाथ, लोकतन्त्र, पराधीन, पवनपुत्र, ईश्वरभक्त, देशोद्धार, प्रेमसागर, भारतवासी, लखपति'

(च) **अधिकरण तत्पुरुष** (सप्तमी तत्पुरुष) में अधिकरण कारक के चिह्न 'में/पर' या सप्तमी विभक्ति का लोप हो कर एक समासज शब्द बनता है, यथा—अपने पर बीती = आपबीती; जल में मग्न = जलमग्न। इसी प्रकार 'कविराज, दानवीर, निशाचर, पुरुषोत्तम, मनमौजी, जगत्प्रसिद्ध, शास्त्रप्रवीण, रणकौशल, आनन्दमग्न, प्रेमनिमग्न, डिब्बाबन्द, वनवास, गृहप्रवेश, दानवीर, रणवीर, नगरवास, लोकप्रिय, कलाप्रवीण, जनप्रिय, आत्मविश्वासी, धर्मवीर'

तत्पुरुष समास के उपर्युक्त सामान्य प्रकारों के अतिरिक्त चार भेद और माने जाते हैं—(i) लुप्तपद तत्पुरुष (ii) नञ् तत्पुरुष (iii) कर्मधारय तत्पुरुष (iv) द्विगु तत्पुरुष।

जब कोई कारक चिह्न पूरे पद सहित लुप्त हो, तब उसे **लुप्तपद तत्पुरुष समास** कहते हैं, यथा—पवन से चलनेवाली चक्की = पवनचक्की; तुला में बराबर कर के दिया जानेवाला दान = तुलादान; दही में पड़ा हुआ बड़ा = दहीबड़ा; बैलों से चलनेवाली गाड़ी = बैलगाड़ी

जब निषेधसूचक **'अ/अन'** के प्रयोग से समासज शब्द बनता है, तब उसे **'नञ तत्पुरुष समास'** कहते हैं, यथा—अभाव, असम्भव, अनन्त, अहित, अपूर्ण अनागत

3. **कर्मधारय समास** में एक पद विशेषण या उपमान/उपमावाचक और दूसरा पद विशेष्य या उपमेय होता है, यथा—महापुरुष = महा (विशेषण) + पुरुष (विशेष्य); प्राणप्रिय = प्राणों (उपमान) के समान प्रिय (उपमेय)। इसी प्रकार 'काली मिर्च, बड़ाघर, नीलगाय, कालापानी, अर्धचन्द्र, नवयुग, कृष्णमुख, पूर्णचन्द्र, अर्धचन्द्र, महाराजा, महावीर, सुन्दरलाल, भलामानस, अधमरा, अकालग्रस्त, छुटभैया, अल्पसंख्यक; श्यामसुन्दर, मुखचन्द्र, चरणकमल, घनश्याम, नरसिंह, ज्ञानामृत, अन्धविश्वास,

1 कमलनयन, देहलता, कनकलता, करकमल, चन्द्रमुख, पीताम्बर, नीलगगन, नीलकमल, महर्षि (महत्+ऋषि), देहलता (=लतारूपी देह)

4. **द्विगु समास** में पूर्वपद संख्यावाची होता है और पूरा शब्द समुदाय/समाहार (समूह) का बोधक होता है, यथा—सप्त सिन्धुओं का समूह=सप्तसिन्धु; नौ रातों का समूह=नवरात्र; दो पहरों का योग=दोपहर। इसी प्रकार 'पंचवटी, त्रिभुवन, त्रिकाल, त्रिलोक, शताब्दी, सप्तशती, सप्ताह, त्रिमूर्ति, पंचामृत, नवग्रह, नवरत्न, त्रिकोण, सप्तर्षि (सप्त+ऋषि); चौअन्नी, चौराहा, अठवारा, चौमासा, दुपट्टा, पंसेरी, सतसई, दुअन्नी, अठन्नी, पँचमढ़ी'

5. **द्वन्द्व समास** में दोनों पद प्रधान होते हैं और दोनों पदों के मध्य 'और/तथा/अथवा/या/एवं' शब्द का लोप हो कर समासज शब्द बनता है, यथा—आगा और पीछा=आगा-पीछा; पिता तथा पुत्र=पिता-पुत्र; पाप या पुण्य=पाप-पुण्य।

द्वन्द्व समास मिलते-जुलते/समानार्थी या विलोमार्थी शब्दों से और सभी शब्द-भेदों से बनते हैं। द्वन्द्व समास के पदों के अस्तित्व-स्तर के आधार पर दो भेद माने जाते हैं—(अ) इतरेतर द्वन्द्व (आ) समाहार द्वन्द्व

(अ) **इतरेतर द्वन्द्व समास** में दोनों पद अपना समान स्तरीय अस्तित्व रखते हैं, यथा—तन, मन और धन=तन-मन-धन; पत्र और पुष्प=पत्र-पुष्प। इसी प्रकार 'पिता-पुत्र, ऋषि-मुनि, राम-कृष्ण, माता-पिता, राम-लक्ष्मण, राजा-रानी, आचार-विचार, अन्न-जल, राजा-प्रजा, लोभ-मोह, जलवायु; रात-दिन, रोटी-पानी, क़लम-दवात, लोटाडोरी, बापदादा, नीचे-ऊपर, आगा-पीछा, आजकल, नदी-नाले, आबोहवा (आब+ओ+हवा)'

(आ) **समाहार द्वन्द्व समास** में प्रत्येक पद एक दूसरे पद पर निर्भर रहता है, उस का पृथक् अस्तित्व अर्थ की दृष्टि से महत्त्व नहीं रखता, यथा—दाल और रोटी/रोटी और दाल=दालरोटी/रोटीदाल; रुपया और पैसा=रुपया-पैसा। इसी प्रकार 'सुख-दुःख, नोनतेल, जीजान, घटबढ़'

संज्ञा शब्दों के द्वन्द्वों में उत्तरपद का रूपान्तर होता है और इसी पद के अनुसार समासज शब्दों का लिंग निर्धारण होता है, यथा—भेड़-बकरियाँ, गाय-भैंसें, सभा-सम्मेलनों में। अन्य शब्द-भेदों के द्वन्द्वों में दोनों पदों का रूपान्तर होता है, यथा—सड़क ऊँची-नीची है; लड़ती-झगड़ती बकरियाँ। मनुष्य बोधक द्वन्द्व सामान्यत: पुल्लिंग बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं, यथा—पति-पत्नी आग पड़े। सजातीय वस्तुओं का समूह नामोद्दिष्ट करनेवाले संज्ञा शब्दों के द्वन्द्व उत्तर पद के लिंग के बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं, यथा—पशु-पक्षी, भेड़-बकरियाँ, पेड़-पौधे।

6. **बहुव्रीहि समास** में दोनों पदों में से कोई भी पद प्रधान नहीं होता। दोनों पद मिलकर किसी तीसरे पद (व्यक्ति या वस्तु) के विशेषण का कार्य करते हैं, यथा—कमल-से नेत्रवाला है जो (अर्थात् विष्णु)=कमलनेत्र; पीले अम्बर (वस्त्र(

वाला है जो (अर्थात् विष्णु/कृष्ण) = पीताम्बर; अंशुमाली—अंशु (= किरणें) माला हैं जिस की (अर्थात् सूर्य); हृषीकेश (हृषीक + ईश) = इन्द्रियों का स्वामी, (☆ऋषिकेश सादृश्य पर गढ़ा गया शब्द है)। इसी प्रकार 'दशमुख/दशानन (= रावण), नीलकंठ/मृत्युंजय/चन्द्रमौलि/चन्द्रचूड़/चन्द्रशेखर (= शिव), पुष्पधन्वा (= कामदेव), लम्बोदर/गजानन (= गणेश), चक्रधर/चक्रपाणि/चतुर्भुज (= विष्णु), वीणापाणि/पद्मासना (= सरस्वती), शान्तचित्त, सुलोचना, दुरात्मा, धर्मात्मा, तीक्ष्णमति, विषधर, (= सर्प), मृगेन्द्र (= सिंह), पवनपुत्र/महावीर (= हनुमान), कुसुमाकर (= वसन्त), प्रधानमन्त्री, उदारहृदय, मयूरवाहन (= कार्तिकेय), पंकज, घनश्याम (= श्रीकृष्ण); मुँहतोड़, बारहसिंगा, कनफटा, इकतारा, अनहोनी'

कर्मधारय तथा बहुव्रीहि समास में अन्तर—कर्मधारय समास में समासज शब्द का एक पद दूसरे पद का विशेषण होता है और इस में समासज शब्द का अर्थ ही प्रधान होता है, यथा—घनश्याम = काले बादल। बहुव्रीहि समास में समासज शब्द के दोनों पदों में विशेषण-विशेष्य का सम्बन्ध नहीं होता, वरन् समस्त पद किसी अन्य पद (संज्ञादि) का विशेषण होता है, यथा—घनश्याम = घन (बादल) के समान श्याम हैं जो (अर्थात् श्रीकृष्ण)।

कर्मधारय तथा द्विगु समास में अन्तर—कर्मधारय समास में समस्त पद के पूर्वपद और उत्तर पद में विशेषण-विशेष्य/विशेष्य-विशेषण का सम्बन्ध होता है जब कि द्विगु समास के समस्त पद में पूर्वपद संख्यावाचक विशेषण होता है और उत्तर-पद विशेष्य, यथा—देहलता = लता रूपी देह (कर्मधारय), त्रिफला = तीन फलों का समूह (द्विगु)।

बहुव्रीहि तथा द्विगु समास में अन्तर—बहुव्रीहि समास में समस्त पद किसी अन्य पद का विशेषण हो जाता है जब कि द्विगु समास में समस्त पद का उत्तर पद संख्यावाची पूर्वपद का विशेष्य होता है, यथा—पंचवटी = पाँच वटी हैं जहाँ वह (स्थल विशेष)—बहुव्रीहि; पंचवटी = पाँच वट वृक्षों का समूह।

सन्धि तथा समास में अन्तर—यद्यपि संधिज तथा समासज दोनों प्रकार के शब्दों में कम से कम दो-दो पद होते हैं, तथापि समासज शब्दों के दोनों पदों में पहले समास क्रिया होती है, तत्पश्चात् संधि। समास होने पर विभक्ति/कारक-चिह्न आदि शब्दों/पदों का लोप हो जाता है; परन्तु संधि होने पर पूर्व पद की अन्तिम ध्वनि और उत्तरपद की आदि ध्वनि के योग से स्वर, व्यंजन या विसर्ग में कोई न कोई परिवर्तन/विकार आ जाता है। समास प्रक्रिया में दोनों पदों के मध्य के पूर्ण शब्द या विभक्ति चिह्न या वाक्यांश का लोप होता है, जबकि संधि में एक स्वर, व्यंजन या विसर्ग का, यथा—दूर से आगत = दूरागत (समास); दूर + आगत = दूरागत (सन्धि)। पहले उदाहरण में 'से' कारक-चिह्न का लोप है, दूसरे उदाहरण में 'र' के 'अ' का।

कमलनयन, देहलता, कनकलता, करकमल, चन्द्रमुख, पीताम्बर, नीलगगन, नीलकमल, महर्षि (महत्+ऋषि), देहलता (=लतारूपी देह)

4. **द्विगु समास** में पूर्वपद संख्यावाची होता है और पूरा शब्द समुदाय/समाहार (समूह) का बोधक होता है, यथा—सप्त सिन्धुओं का समूह=सप्तसिन्धु; नौ रातों का समूह=नवरात्र; दो पहरों का योग=दोपहर। इसी प्रकार 'पंचवटी, त्रिभुवन, त्रिकाल, त्रिलोक, शताब्दी, सप्तशती, सप्ताह, त्रिमूर्ति, पंचामृत, नवग्रह, नवरत्न, त्रिकोण, सप्तर्षि (सप्त+ऋषि); चौअन्नी, चौराहा, अठवारा, चौमासा, दुपट्टा, पंसेरी, सतसई, दुअन्नी, अठन्नी, पँचमढ़ी'

5. **द्वन्द्व समास** में दोनों पद प्रधान होते हैं और दोनों पदों के मध्य 'और/तथा/अथवा/या/एवं' शब्द का लोप हो कर समासज शब्द बनता है, यथा—आगा और पीछा=आगा-पीछा; पिता तथा पुत्र=पिता-पुत्र; पाप या पुण्य=पाप-पुण्य।

द्वन्द्व समास मिलते-जुलते/समानार्थी या विलोमार्थी शब्दों से और सभी शब्द-भेदों से बनते हैं। द्वन्द्व समास के पदों के अस्तित्व-स्तर के आधार पर दो भेद माने जाते हैं—(अ) इतरेतर द्वन्द्व (आ) समाहार द्वन्द्व

(अ) **इतरेतर द्वन्द्व समास** में दोनों पद अपना समान स्तरीय अस्तित्व रखते हैं, यथा—तन, मन और धन=तन-मन-धन; पत्र और पुष्प=पत्र-पुष्प। इसी प्रकार 'पिता-पुत्र, ऋषि-मुनि, राम-कृष्ण, माता-पिता, राम-लक्ष्मण, राजा-रानी, आचार-विचार, अन्न-जल, राजा-प्रजा, लोभ-मोह, जलवायु; रात-दिन, रोटी-पानी, क़लम-दवात, लोटाडोरी, बापदादा, नीचे-ऊपर, आगा-पीछा, आजकल, नदी-नाले, आबोहवा (आब+ओ+हवा)'

(आ) **समाहार द्वन्द्व समास** में प्रत्येक पद एक दूसरे पद पर निर्भर रहता है, उस का पृथक् अस्तित्व अर्थ की दृष्टि से महत्त्व नहीं रखता, यथा—दाल और रोटी/रोटी और दाल=दालरोटी/रोटीदाल; रुपया और पैसा=रुपया-पैसा। इसी प्रकार 'सुख-दुःख, नोनतेल, जीजान, घटबढ़'

संज्ञा शब्दों के द्वन्द्वों में उटतरपद का रूपान्तर होता है और इसी पद के अनुसार समासज शब्दों का लिंग निर्धारण होता है, यथा—भेड़-बकरियाँ, गाय-भैंसें, सभा-सम्मेलनों में। अन्य शब्द-भेदों के द्वन्द्वों में दोनों पदों का रूपान्तर होता है, यथा—सड़क ऊँची-नीची है; लड़ती-झगड़ती बकरियाँ। मनुष्य बोधक द्वन्द्व सामान्यतः पुल्लिंग बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं, यथा—पति-पत्नी आग पड़े। सजातीय वस्तुओं का समूह नामोद्दिष्ट करनेवाले संज्ञा शब्दों के द्वन्द्व उत्तर पद के लिंग के बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं, यथा—पशु-पक्षी, भेड़-बकरियाँ, पेड़-पौधे।

6. **बहुव्रीहि समास** में दोनों पदों में से कोई भी पद प्रधान नहीं होता। दोनों पद मिलकर किसी तीसरे पद (व्यक्ति या वस्तु) के विशेषण का कार्य करते हैं, यथा—कमल-से नेत्रवाला है जो (अर्थात् विष्णु)=कमलनेत्र; पीले अम्बर (वस्त्र(

वाला है जो (अर्थात् विष्णु/कृष्ण) = पीताम्बर; अंशुमाली—अंशु(= किरणें) माला हैं जिस की (अर्थात् सूर्य); हृषीकेश (हृषीक + ईश) = इन्द्रियों का स्वामी, (☆ऋषिकेश सादृश्य पर गढ़ा गया शब्द है)। इसी प्रकार 'दशमुख/दशानन (= रावण), नीलकंठ/मृत्युंजय/चन्द्रमौलि/चन्द्रचूड़/चन्द्रशेखर(= शिव), पुष्पधन्वा (= कामदेव), लम्बोदर/गजानन (= गणेश), चक्रधर/चक्रपाणि/चतुर्भुज (= विष्णु), वीणापाणि/पद्मासना (= सरस्वती), शान्तचित्त, सुलोचना, दुरात्मा, धर्मात्मा, तीक्ष्णमति, विषधर, (= सर्प), मृगेन्द्र (= सिंह), पवनपुत्र/महावीर (= हनुमान), कुसुमाकर (= वसन्त), प्रधानमन्त्री, उदारहृदय, मयूरवाहन (= कार्तिकेय), पंकज, घनश्याम (= श्रीकृष्ण); मुँहतोड़, बारहसिंगा, कनफटा, इकतारा, अनहोनी'

कर्मधारय तथा बहुव्रीहि समास में अन्तर—कर्मधारय समास में समासज शब्द का एक पद दूसरे पद का विशेषण होता है और इस में समासज शब्द का अर्थ ही प्रधान होता है, यथा—घनश्याम = काले बादल। बहुव्रीहि समास में समासज शब्द के दोनों पदों में विशेषण-विशेष्य का सम्बन्ध नहीं होता, वरन् समस्त पद किसी अन्य पद (संज्ञादि) का विशेषण होता है, यथा—घनश्याम = घन (बादल) के समान श्याम हैं जो (अर्थात् श्रीकृष्ण)।

कर्मधारय तथा द्विगु समास में अन्तर—कर्मधारय समास में समस्त पद के पूर्वपद और उत्तर पद में विशेषण-विशेष्य/विशेष्य-विशेषण का सम्बन्ध होता है जब कि द्विगु समास के समस्त पद में पूर्वपद संख्यावाचक विशेषण होता है और उत्तर-पद विशेष्य, यथा—देहलता = लता रूपी देह (कर्मधारय), त्रिफला = तीन फलों का समूह (द्विगु)।

बहुव्रीहि तथा द्विगु समास में अन्तर—बहुव्रीहि समास में समस्त पद किसी अन्य पद का विशेषण हो जाता है जब कि द्विगु समास में समस्त पद का उत्तर पद संख्यावाची पूर्वपद का विशेष्य होता है, यथा—पंचवटी = पाँच वटी हैं जहाँ वह (स्थल विशेष)—बहुव्रीहि; पंचवटी = पाँच वट वृक्षों का समूह।

सन्धि तथा समास में अन्तर—यद्यपि संधिज तथा समासज दोनों प्रकार के शब्दों में कम से कम दो-दो पद होते हैं, तथापि समासज शब्दों के दोनों पदों में पहले समास क्रिया होती है, तत्पश्चात् संधि। समास होने पर विभक्ति/कारक-चिह्न आदि शब्दों/पदों का लोप हो जाता है, परन्तु संधि होने पर पूर्व पद की अन्तिम ध्वनि और उत्तरपद की आदि ध्वनि के योग से स्वर, व्यंजन या विसर्ग में कोई न कोई परिवर्तन/विकार आ जाता है। समास प्रक्रिया में दोनों पदों के मध्य के पूर्ण शब्द या विभक्ति चिह्न या वाक्यांश का लोप होता है, जबकि संधि में एक स्वर, व्यंजन या विसर्ग का, यथा—दूर से आगत = दूरागत (समास); दूर + आगत = दूरागत (सन्धि)। पहले उदाहरण में 'से' कारक-चिह्न का लोप है, दूसरे उदाहरण में 'र' के 'अ' का।

आधुनिक हिन्दी में कुछ ऐसे संयुक्त/सामासिक/समासज शब्द प्रचलित हो गए हैं जो दो भिन्न भाषाओं के शब्दों के योग से बने या व्युत्पन्न हैं। ऐसे शब्दों को **संकर शब्द** कहते हैं, यथा—रेलगाड़ी, टिकटघर, जेलख़ाना, सीधा-सादा, टिकट-खिड़की। भाषा की व्यवस्था के विपरीत शब्दों का निर्माण खटक उत्पन्न करता है, यथा—ज़िलाधीश, कपड़ा मन्त्री, कोटा व्यवस्था, लाइसेंस शुदा/लाइसेंस-प्राप्त, पुलिस विभाग, प्रेस-अधिवेशन। संकर शब्द निर्माण के समय सह-प्रयोग (Collocation) का ध्यान रखना चाहिए। जंगे आज़ादी, स्वतन्त्रता संग्राम भाषा-व्यवस्था के अनुरूप हैं किन्तु आज़ादी संग्राम/आज़ादी का संग्राम, स्वतन्त्रता की जंग में खटक है। मौजूदा हालात/वर्तमान स्थिति, अमनपसन्द/शांतिप्रिय शैली भेद के आधार पर स्वीकार्य है। हिन्दी, उर्दू में सामान्य अंश (Common Core) बहुत-कुछ समान होने के कारण अनेक संकर शब्द प्रचलन में हैं, यथा—ख़ानापूरी, घरबार, पेशाबघर, मनपसन्द, धनदौलत, बालबच्चे, रंगढंग आदि।

3. प्रत्ययन

प्रत्ययन प्रक्रिया के अन्तर्गत किसी प्रकृति/शब्द के आदि/पूर्व/आरम्भ में जोड़े जानेवाला शब्दांश (/अक्षर/प्रत्यय अक्षर-समूह) **पूर्वप्रत्यय/उपसर्ग** कहा जाता है, यथा—'हार' में जोड़े गए 'वि-, आ-, प्र-, सं-' उपसर्गों/पूर्व प्रत्ययों से 'विहार, आहार, प्रहार, संहार, नये शब्द बने हैं।

किसी प्रकृति/शब्द के बाद/पश्चात्/अन्त में जोड़े जानेवाला शब्दांश (/अक्षर/प्रत्यय/अक्षर-समूह) **परप्रत्यय/प्रत्यय** कहा जाता है, यथा—'सोना, लोहा' में जोड़े गए '-आर' प्रत्यय से 'सुनार<सोनार, लुहार<लोहार' नये शब्द बने हैं।

'पूर्वप्रत्यय तथा परप्रत्यय' या 'उपसर्ग और प्रत्यय' प्रकृति के साथ संश्लिष्टावस्था में रहते हैं। इन का कोई स्वतन्त्र/मानसिक प्रतिबिम्बीय अर्थ न होने के कारण इन की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती, जब कि शब्द का कोई न कोई स्वतन्त्र अर्थ होने के कारण उस की स्वतन्त्र और पृथक् सत्ता होती है। शब्दों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग सम्भव है, किन्तु उपसर्ग, प्रत्ययों का स्वतन्त्र प्रयोग सम्भव नहीं है। उपसर्ग 'वि-, आ-, प्र-, सं-' और प्रत्यय '-आर' का कोई स्वतन्त्र अर्थ नहीं है किन्तु 'हार, सोना, लोहा' शब्दों के साथ जुड़ कर इन्होंने नये अर्थों में नये शब्दों का निर्माण किया है। उपसर्ग और प्रत्यय जिन शब्दों के साथ जुड़ते हैं, उन के अर्थ में परिवर्तन या कोई वैशिष्ट्य ला देते हैं। हिन्दी में प्रचलित उपसर्ग, प्रत्ययों को भाषा-स्रोत के आधार पर मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(क) संस्कृत उपसर्ग, प्रत्यय, (ख) हिन्दी उपसर्ग, प्रत्यय, (ग) अरबी-फ़ारसी आदि विदेशी भाषाओं के उपसर्ग, प्रत्यय।

उपसर्ग

उपसर्ग नामक शब्दांश सदैव एक ही रूप में रहने के कारण 'अव्यय' की कोटि में रखे जा सकते हैं। कभी-कभी एक से अधिक उपसर्ग भी एक मूल शब्द/प्रकृति में जुड़ जाते हैं, यथा—सुव्यवहार (सु- +वि- +अव- +हार), निरभिमान (निर्- +अभि- +मान), दुष्प्रयोग (दुष्- +प्र- +योग)

जिस प्रकार एक मूल शब्द या 'प्रकृति' में विभिन्न उपसर्ग जुड़ कर विभिन्न अर्थवाले शब्दों का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार एक ही उपसर्ग विभिन्न मूल शब्दों के साथ जुड़ने पर विभिन्न अर्थों का द्योतक बन जाता है, यथा—अति- (अतिसार, अत्याचार), अधि- (अधिकार, अध्ययन); प्र- (प्रकृति, प्रभात), उप- (उपनयन, उपवास)। यहाँ विभिन्न उपसर्ग उन के कुछ प्रमुख प्रचलित अर्थों में विभिन्न शब्दों के साथ लिखे जा रहे हैं।

संस्कृत उपसर्ग मुख्यतः संस्कृत शब्दों के साथ जुड़ते हैं, यथा—

अति- (अधिक, सीमोलंघन, परे)—अत्युक्ति, अत्युत्तम, अत्याचार, अतिरंजन, अत्यन्त, अतिवृष्टि, अतीत, अतिमानव

अधि- (श्रेष्ठ, मुख्य, ऊपर, स्थान में)—अधीश, अधीक्षण, अध्यादेश, अध्यक्ष, अधिकार, अधिराज, अधिदेव

अनु- (पीछे, समान, छोटा)—अनुज, अनुस्वार, अनुवाद, अनुशासन, अनुभाग

अप- (बुरा, विरुद्ध, अभाव, हीन)—अपकीर्ति, अपशब्द, अपकार अपशकुन, अपमान, अपयश, अपराध

अभि- (ओर, पास, सामने, इच्छा श्रेष्ठ)—अभिमुख, अभ्यागत, अभ्युदय, अभियुक्त, अभिप्राय, अभिलाषा, अभिसार, अभिजात

अव- (नीचे, अपकर्ष, हीन)—अवगाहन, अवतार, अवनति, अवगुण, अवरोह, अवगत, अवकाश

आ- (से, अल्पता, तक/पर्यन्त, सहित, विपरीत)—आजन्म, आशंका, आभास, आरक्त, आजानु, आसेतु, आजीवन, आमरण

उत्- (ऊपर, श्रेष्ठ)—उत्कण्ठा, उत्तम, उत्पत्ति, उत्कर्ष, उद्भव, उद्योग, उल्लास, उन्नति, उज्ज्वल, उच्छ्वास

उप- (समान, समीप, गौण/सहायक)—उपनयन, उपकूल, उपनाम, उपवन, उपमंत्री, उपाध्यक्ष, उपमान

दुर/दुस्- (कठिन, बुरा, दुष्ट)—दुर्गम, दुष्कर, दुर्लभ, दुस्तर, दुराचार, दुश्चरित्र; दुरवस्था, दुस्साहस

नि- (अन्दर/भीतर, नीचे, बड़ा/बहुत)—निमग्न, निरोध, निरूपण, निगूढ़, निष्ठा, न्याय, नियम, निपात

निर्/निस्- (बिना/निषेध, बाहर)—निर्दय, निर्बल, निर्गुण, निरपराध, निर्दोष, निश्शब्द, निष्कपट, निश्चय, निःश्वास

परा- (उलटा, पीछे, परे)—पराजय, पराक्रम, पराभव, परावर्तन, पराङ्मुख

परि- (आसपास/चारों ओर, पूर्ण, दोष-कथन)—परिवार, परिजन, परिवर्तन, परिक्रमा, परिहास, परिवाद, परिपक्व, परिश्रम

प्र- (अधिक, आगे, ऊपर, पूर्ण का एक खंड)—प्रबल, प्रताप, प्रकाश, प्रयास, प्रपौत्र, प्रगति, प्रयोग, प्रदेश, प्रभाग

प्रति- (निरुद्ध, बदला, सामने, समान, हरएक)—प्रतिकूल, प्रतिवाद, प्रतिकार, प्रतिमान, प्रतिभागी, प्रतिस्पर्धा, प्रतिदिन, प्रत्येक

वि- (विशेष, भिन्न, विरोध)—व्युत्पत्ति, व्यवहार, विनायक, विशुद्ध, विदेश, विजातीय, विधवा, विस्मरण

सम्/सं- (पूर्ण, अच्छा, साथ)—संकोच, सम्मान, संस्कार, संयोग, संसार, सन्तोष, संगीत, सम्मुख

सु (अच्छा, सहज)—सुपुत्र, सुकर्म, सुधार, सुगम, सुलभ

उपसर्गवत् प्रयुक्त कुछ संस्कृत-विशेषण, अव्यय (गति शब्द)

अ-/अन्- (अभाव, निषेध)—अकारण, अधर्म, अनीति, अभाव, अशक्त; अनधिकार, अनेक, अनन्त, अनाकर्षक, अनादर

अधस्/अधः- (नीचे)—अधोगति, अधःपतन, अधोवस्त्र, अधोभाग, अधोमुख

अन्तर्/अन्तः- (भीतर)—अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तःपुर, अन्तःकरण, अन्तर्गत

कु- (बुरा)—कुपुत्र, कुकर्म, कुरूप, कुयोग, कापुरुष (**का-** + पुरुष)

चिर- (देर का)—चिरकाल, चिरकुमार, चिरंजीवी

तत्- (वही)—तत्काल, तन्मय, तल्लीन, तत्सम

न- (अभाव)—नपुंसक, नास्तिक

पर- (अन्य)—परदेशी, पराधीन, परोपकार

पुनर्/पुनः- (फिर)—पुनर्विवाह, पुनर्जन्म, पुनरुक्त, पुनरुक्ति, पुनरुद्धार

पुरः- (सामने)—पुरस्कार, पुरश्चरण, पुरोहित

पुरा- (पहले)—पुरातत्व, पुरातन, पुरावृत्त

पूर्व- (पहला)—पूर्वपक्ष, पूर्वार्द्ध, पूर्वनिश्चित

बहिर्/बहिः- (बाहर)—बहिष्कार, बहिर्द्वार, बहिर्गमन

बहु- (अधिक)—बहुमत, बहुमूल्य, बहुवचन

स- (सहित)—सफल, सगोत्र, सजीव, सहर्ष, सचेत, सविनय

सत्/सद्- (अच्छा)—सत्पात्र, सत्कर्म = सद्व्यवहार, सदाचार, सज्जन

सह- (साथ)—सहोदर, सहपाठी, सहचर

स्व- (अपना, निजी)स्वतन्त्र, स्वदेशी, स्वराज्य, स्वकर्म, स्वदेश, स्वधर्म

स्वयं- (अपने आप, खुद)—स्वयंसेवक, स्वयंवर, स्वयंभू, स्वयंसिद्ध

हिन्दी-उपसर्ग (संस्कृत, हिन्दी शब्दों के साथ प्रयुक्त)

अ-(अभाव, नहीं)—अजान, अचेत, अछूत, अटल, अथाह

अन-(अभाव, नहीं)—अनमोल, अनगिनत, अनपढ़, अनसुनी, अनमना

उ-(भरा हुआ, से मुक्त)—उनींदा/उनींदी, उऋण

उन-<सं. ऊन (कम, थोड़ा)—उन्तीस, उनसठ, उनहत्तर

औ-<सं. अव (नीचे, हीन)—औतार, औगुन, औढर, औघट

क-/**कु**- (बुरा)—कपूत, कुठौर, कुटेव, कुचाली

दु-(सं. दुर्/दुः (बुरा)— दुबला, दुकाल, दुलार

नि<सं. निर्/निः (रहित)—निडर, निकम्मा, निधड़क, निहत्था, निपूता

स-/**सु**-(अच्छा)—सपूत, सचेत, सुडौल, सुजान, सुघड़

उपसर्गवत् प्रयुक्त कुछ हिन्दी शब्द

अध-<आधा<सं. अर्द्ध (आधा)—अधपका, अधकच्चा, अधकचरा, अधखिला, अधजला, अधमरा (ये सभी वाक्य/वाक्यांश स्तरीय रचनाएँ हैं)

दु-<दो<सं. द्वौ (दो)—दुगुना, दुधारी, दुपट्टा, दुमुँहा

बिन-<बिना (बिना)—बिनब्याही, बिनमाँगा, बिनबिका

भर-<भरा (पूरा)—भरसक, भरपेट, भरपूर

उर्दू-उपसर्ग (उर्दू, हिन्दी शब्दों के साथ प्रयुक्त)

अल-(निश्चित)—अलबत्ता, अलग़रज़, अलबिदा

ऐन-(ठीक)—ऐनवक़्त, ऐनमौक़े, ऐनजवानी

कम-(थोड़ा)—कमज़ोर; कमउम्र, कमसमझ। ('इतनी कम आमदनी से' में 'कम' विशेषण है)

ख़ुश-(अच्छा)—ख़ुशमिज़ाज, ख़ुशकिस्मत। ('आज वह बहुत ख़ुश है' में 'ख़ुश' विशेषण पूरक है)

ग़ैर-(दूसरा/भिन्न/अन्य)—ग़ैरहाज़िर, ग़ैरमुल्क, ग़ैरक़ानूनी, ग़ैरमुनासिब, ग़ैरजिम्मेदार। ('मैं कोई ग़ैर थोड़े ही हूँ' में 'ग़ैर' विशेषण है)

दर—(में)—दरकिनार, दरमियान, दरहक़ीकत, दरअसल/दरअस्ल। (ये शब्द वाक्यांश संरचना स्तरीय हैं, अतः 'दर' उपसर्गवत् प्रयुक्त है, उपसर्ग नहीं)

ना—(अभाव, कमी, बिना)—नापसन्द, नादान, नाख़ुश, नालायक़, नासमझ

फ़िल—(में)—फ़िलहाल

फ़ी—(प्रति)—फ़ी आदमी। (उपसर्गवत् प्रयुक्त विशेषण शब्द)

ब—(अनुसार, में, ओर)—बक़ौल, बदस्तूर, बनाम, बदौलत, बइजलास

भलाई), **-पन** (कालापन, पागलपन), **-हट** (चिकनाहट, कड़वाहट), **-आपा** (बुढ़ापा, रँड़ापा, मोटापा), **-आस** (मिठास, खटास), **-आयत** (बहुतायत), **-इख** (कालिख), **-औती** (बपौती, बुढ़ौती), **-ड़ा** (दुखड़ा, झगड़ा), **-त** (रंगत, संगत), **-नी** (चाँदनी), **-क** (ठंडक, धसक), **-आना** (ठिकाना), **-ठी** (कनैठी), **-गी** (ताज़गी, सादगी)

संस्कृत के -अ, -इमा, इमन्, ता, -त्व, -य से निर्मित भाववाचक संज्ञा शब्द, यथा— **-अ** (गौरव, कौशल, यौवन, शैशव, लाघव), **-इमा** (लालिमा, महिमा, रक्तिमा, लघिमा), **-ता** (सज्जनता, दुर्जनता, सुन्दरता), **-त्व** (ब्राह्मणत्व, सतीत्व, गुरुत्व, प्रभुत्व), **-य** (पांडित्य, माधुर्य, चांचल्य, धैर्य)

(घ) **लघुतासूचक तद्धित प्रत्यय**—संज्ञा शब्दों में जुड़ कर लघुता/लाघव/छोटेपन का बोध करानेवाले संज्ञा शब्दों का निर्माण करते हैं। इन्हें ऊनवाचक/लाघववाचक तद्धति प्रत्यय भी कहा जाता है। इन प्रत्ययों से बने कुछ शब्द हैं— **-आ** (बबुआ, पिलुआ), **-इया** (लुटिया, खटिया, डिबिया, अँबिया, गठरिया), **-ई** (लँगोटी, कटोरी, टोकरी, पहाड़ी), **-ड़ी** (चमड़ी, बछड़ी, पंखड़ी), **-ड़ा** (मुखड़ा, दुखड़ा, बछड़ा), **-वा** (बचवा, चमरवा), **-ओला** (खटोला, गढ़ोला, सँपोला), **-क** (ढोलक, तुपक), **-ची** (संदूकची, बगीची), **-टा** (रोंगटा), **-ली** (बटुली, खटुली)

(ङ) **कर्तृवाचक तद्धति प्रत्यय**— ये संज्ञा शब्दों में जुड़ कर 'करनेवाले, बनानेवाले/घड़नेवाले' आदि का बोध करानेवाले प्रत्यय हैं, यथा— **-आर** (सुनार, लुहार, कुम्हार), **-इया** (आढ़तिया, मखनिया), **-ई** (कोठारी, तेली, गंधी, भंडारी, योगी, दफ़्तरी), **-उआ** (मछुआ), **-एरा** (सँपेरा, कसेरा), **-वान** (हाथीवान, गाड़ीवान, पीलवान), **-वाल** (कोतवाल), **-वाला** (टोपीवाला, घरवाला), **-हारा** (पनिहारा, लकड़हारा, चुड़िहारा), **-ड़ी** (भँगेड़ी), **-गर** (जादूगर, कारीगर, कलईगर), **-ची** (मशालची, ख़ज़ानची), **-दार** (ज़मींदार), **-यारा** (घसियारा), **-दार** (लेनदार, देनदार); **-कर** (दिनकर, प्रभाकर, हितकर, सुखकर), **-कार** (स्वर्णकार, चर्मकार, कुंभकार, ग्रंथकार, चित्रकार), **-धर** (जलधर, हलधर, विषधर)

(च) **सम्बन्धवाचक तद्धति प्रत्यय**—ये संज्ञा शब्दों में जुड़ कर विभिन्न प्रकार के संबंधों/स्वजन संबंधों/नाते-रिश्तों/अपत्य (संतान) आदि का बोध करानेवाले प्रत्यय हैं, यथा— **-आयन** (वात्स्यायन, कौशल्यायन), **-इ** (दाशरथि), **-ई** (भागीरथी, आरुणी; पंजाबी, ईसाई, रामानन्दी), **-ईय** (भारतीय, महाराष्ट्रीय), **-एय** (वैनतेय, राधेय, कौन्तेय), **-अ** सं अण् (पांडव, वैष्णव, शैव, बौद्ध, जैन, सौमित्र, जामदग्न्य, दानव, मानव, यादव, काश्यप, पार्थ), **-आल** (ससुराल, ननिहाल), **-औती** (कठौती, **-औटी** (हथौटी), **-ज**<सं. जात (पंकज, जलज), **-जा** (भतीजा, भानजा), **-एरा** (ममेरा, फुफेरा, चचेरा), **-दान**/-दानी (पानदान, गुलाबदान, पीकदान, चायदानी, मच्छरदानी), **-ख़ाना** (डाकख़ाना, कारख़ाना), **-हर** (खंडहर), **-आना** (दस्ताना, नज़राना), **-का** (मायका/मैका), **-ची** (घड़ौंची)

बद—(बुरा)—बदनीयत, बदबू, बदनाम, बदहवास, बससूरत, बदकिस्मत, बदइन्तज़ाम। ('बद अच्छा बदनाम बुरा' में 'बद' संज्ञावत् प्रयुक्त)

बा—(अनुसार, सहित)—बाक़ायदा, बातमीज़, बाजाप्ता

बिला—(बिना)—बिलाशक, बिलाकसूर, बिलानागा

बे—(बिना)—बेचारा, बेरहम, बेईमान, बेचैन, बेजोड़, बेइज़्ज़त, बेगुनाह, बेकार, बेहोश, बेफ़िक्र, बेमतलब

ला—(बिना, सीमा का पार, अभाव)—लापरवाह, लाजवाब, लापता, लाचार, लावारिस

सर— (मुख्य)—सरपंच, सरताज, सरदार

हम—(साथी)—हमउम्र, हमदर्द, हमसफ़र, हमराज़

हर—(प्रत्येक)—हररोज़, हरघड़ी, हरदम, हरएक, हरकोई, हरसाल। (उपसर्गवत् प्रयुक्त विशेषण शब्द)

प्रत्यय

भाषा-व्यवस्था में मात्रा तथा गुण की दृष्टि से उपसर्गों की अपेक्षा प्रत्ययों का महत्त्व अधिक है। **प्रकार्य की दृष्टि से प्रत्ययों को दो वर्गों** में रखा जा सकता है—

1. **व्युत्पादक प्रत्यय**—शब्द स्तर पर कार्य करनेवाले इन प्रत्ययों को परिवर्तक प्रत्यय या शब्द-निर्माणक प्रत्यय भी कहा जाता है। व्युत्पादक प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं—(अ) **प्रतीक परिवर्तक** (आ) **वर्ग परिवर्तक**। प्रतीक परिवर्तक प्रत्यय संज्ञा शब्दों के लिंग में परिवर्तन लाते हैं और कुछ प्रत्यय विशेषण शब्दों के तुलनात्मक स्वरूप में स्तर परिवर्तन। इस आधार पर इन्हें (i) **लिंग परिवर्तक** (ii) **स्तर परिवर्तक** प्रत्यय कह सकते हैं। वर्ग परिवर्तक प्रत्यय एक वर्ग के शब्द को दूसरे वर्ग में परिवर्तित करते हैं। इस दृष्टि से ये पाँच प्रकार के हो सकते हैं—**(क) कर्तृवाचक संज्ञा निर्माणक प्रत्यय** (ख) **भाववाचक संज्ञा निर्माणक प्रत्यय** (ग) **लघुतासूचक संज्ञा निर्माणक प्रत्यय** (घ) **स्वजनतावाची संज्ञा निर्माणक प्रत्यय** (ङ) **गुणवाचक विशेषण निर्माणक प्रत्यय**। मूल रूप के साथ जुड़ने के आधार पर वर्ग परिवर्तक प्रत्ययों के तीन भेद हो सकते हैं—(i) तद्धित प्रत्यय (ii) कृत् प्रत्यय (iii) उभय क्षेत्रीय प्रत्यय।

(i) **तद्धित प्रत्यय**—वे प्रत्यय हैं जो क्रिया-धातु के अतिरिक्त अन्य किसी मूल या सिद्ध शब्द के पश्चात् जुड़ कर क्रिया के अतिरिक्त किसी अन्य **तद्धितांत** शब्द-भेद का निर्माण करते हैं, यथा— -त्व, -दार, -इया, -ता से निर्मित शब्द 'पुरुषत्व, समझदार, खटिया, विशेषता'

(ii) **कृत् प्रत्यय**—वे प्रत्यय हैं जो किसी क्रिया-धातु में जुड़ कर क्रियापद के अतिरिक्त किसी अन्य यौगिक शब्द-भेद (संज्ञा, विशेषण आदि) का निर्माण करते

यथा— -वट, -हट, -ऊ, -आक से निर्मित शब्द 'सजावट, अकुलाहट, कमाऊ, तैराक'। कृदन्त प्रत्यय जोड़ने से बने शब्द **कृदन्त** कहलाते हैं और तद्धित प्रत्यय जोड़ने से बने शब्द **तद्धितान्त**।

(iii) **उभय क्षेत्रीय प्रत्यय**—वे प्रत्यय हैं जो नाम रूपिमों और क्रिया-धातुओं के साथ जुड़ कर क्रिया शब्दों की रचना करते हैं। इन प्रत्ययों में से कुछ प्रत्यय नाम वर्ग के रूपिमों/शब्दों को क्रिया रूपों में परिवर्तित करते है; और कुछ प्रत्यय अकर्मक से सकर्मक, समकर्मक से अकर्मक, अकर्मक-सकर्मक से प्रेरणार्थक बनाते हैं,

2. **रूपान्तरक प्रत्यय**—वाक्य स्तर पर कार्य करनेवाले इन प्रत्ययों को व्याकरणिक प्रत्यय या परिचालक प्रत्यय या रूप-साधक प्रत्यय भी कहा जाता है। ये प्रत्यय मूलप्रकृति या व्युत्पन्न प्रकृति के शब्दों को पदों में रूपान्तरित करते हैं, यथा—भाई+ -ओं=भाइयों, बस+ -एँ=बसें। रूपान्तरक प्रत्ययों में वचन, कारक, कालादि सूचक प्रत्ययों की गणना की जाती है। भाइयों को, बसों में, बसों के ऊपर भी, भाइयों के पीठ पीछे ही आदि पदों/पदबन्धों में **विभक्ति** अंश (-ओं), **परसर्ग** अंश (को, में), **परसर्गाभास** अंश (के ऊपर, के पीठ पीछे), निक्षिप्त अंश **निपात** (भी, ही) प्रत्ययों की श्रेणी में रखे जाते रहे हैं।

(यहाँ केवल व्युत्पादक प्रत्ययों का विवरण ही प्रस्तुत किया जा रहा है, रूपान्तरक प्रत्ययों का विवरण सम्बद्ध अध्यायों में किया जाएगा)

तद्धित प्रत्यय-भेद—विभिन्न तद्धित प्रत्ययों को उन के प्रकार्य के आधार पर इन वर्गों में रखा जा सकता है—

(क) **लिंग परिवर्तक तद्धति प्रत्यय**—वे युग्मपूरक प्रत्यय हैं जो पुल्लिंग या स्त्रीलिंग बनाने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। ये मूल शब्द के प्रतीक में परिवर्तन लाते हैं, उस के वर्ग में नहीं। हिन्दी में कई लिंग परिवर्तक प्रत्यय हैं, यथा—आ→ई (लड़का→लड़की, थैला→थैली), ∅ →नी (शेर→शेरनी, मोर→मोरनी), ई→आ (मौसी→मौसा) आदि। (लिंग परिवर्तक प्रत्ययों की विस्तृत चर्चा अध्याय 14 'संज्ञा' में की जाएगी)

(ख) **स्तर परिवर्तक तद्धित प्रत्यय**—वे प्रत्यय हैं जो कुछ गुणवाचक विशेषणों के साथ जुड़ कर तुलनात्मक दृष्टि से उन के स्तर में परिवर्तन पैदा करते हैं, यथा—∅ →तर→तम (उच्च→उच्चतर→उच्चतम; अधिक→अधिकतर→अधिकतम) आदि। (स्तर परिवर्तक प्रत्ययों की विस्तृत चर्चा अध्याय 16 'विशेषण' में की जाएगी)

(ग) **भाववाचक तद्धित प्रत्यय**—ये संज्ञा या विशेषण शब्दों में जुड़ कर भाववाचक संज्ञा बनाते हैं, यथा— **-आ** (खटका, झोंका, बोझा), **-आई** (चिकनाई, ढिलाई, पंडिताई, भलाई), **-आन** (उँचान, निचान) **-ई** (खती, महाजनी, बुराई,

भलाई), **-पन** (कालापन, पागलपन), **-हट** (चिकनाहट, कड़वाहट), **-आपा** (बुढ़ापा, रँड़ापा, मोटापा), **-आस** (मिठास, खटास), **-आयत** (बहुतायत), **-इख** (कालिख), **-औती** (बपौती, बुढ़ौती), **-ड़ा** (दुखड़ा, झगड़ा), **-त** (रंगत, संगत), **-नी** (चाँदनी), **-क** (ठंडक, धसक), **-आना** (ठिकाना), -ठी (कनैठी), -गी (ताज़गी, सादगी)

संस्कृत के -अ, -इमा, इमन्, ता, -त्व, -य से निर्मित भाववाचक संज्ञा शब्द, यथा— **-अ** (गौरव, कौशल, यौवन, शैशव, लाघव), **-इमा** (लालिमा, महिमा, रक्तिमा, लघिमा), **-ता** (सज्जनता, दुर्जनता, सुन्दरता), **-त्व** (ब्राह्मणत्व, सतीत्व, गुरुत्व, प्रभुत्व), **-य** (पांडित्य, माधुर्य, चांचल्य, धैर्य)

(घ) **लघुतासूचक तद्धित प्रत्यय**—संज्ञा शब्दों में जुड़ कर लघुता/लाघव/छोटेपन का बोध करानेवाले संज्ञा शब्दों का निर्माण करते हैं। इन्हें ऊनवाचक/लाघववाचक तद्धति प्रत्यय भी कहा जाता है। इन प्रत्ययों से बने कुछ शब्द हैं— **-आ** (बबुआ, पिलुआ), **-इया** (लुटिया, खटिया, डिबिया, अँबिया, गठरिया), **-ई** (लँगोटी, कटोरी, टोकरी, पहाड़ी), **-ड़ी** (चमड़ी, बछड़ी, पंखड़ी), **-ड़ा** (मुखड़ा, दुखड़ा, बछड़ा), **-वा** (बचवा, चमरवा), **-ओला** (खटोला, गढ़ोला, सँपोला), **-क** (ढोलक, तुपक), **-ची** (संदूकची, बगीची), -टा (रोंगटा), **-ली** (बटुली, खटुली)

(ङ) **कर्तृवाचक तद्धति प्रत्यय**— ये संज्ञा शब्दों में जुड़ कर 'करनेवाले, बनानेवाले/घड़नेवाले' आदि का बोध करानेवाले प्रत्यय हैं, यथा— **-आर** (सुनार, लुहार, कुम्हार), **-इया** (आढ़तिया, मखनिया), **-ई** (कोठारी, तेली, गंधी, भंडारी, योगी, द़फ्तरी), **-उआ** (मछुआ), **-एरा** (सँपेरा, कसेरा), **-वान** (हाथीवान, गाड़ीवान, पीलवान), **-वाल** (कोतवाल), **-वाला** (टोपीवाला, घरवाला), **-हारा** (पनिहारा, लकड़हारा, चुड़िहारा), **-ड़ी** (भँगेड़ी), **-गर** (जादूगर, कारीगर, कलईगर), **-ची** (मशालची, ख़ानची), **-दार** (ज़मींदार), **-यारा** (घसियारा), **-दार** (लेनदार, देनदार); **-कर** (दिनकर, प्रभाकर, हितकर, सुखकर), **-कार** (स्वर्णकार, चर्मकार, कुंभकार, ग्रंथकार, चित्रकार), **-धर** (जलधर, हलधर, विषधर)

(च) **सम्बन्धवाचक तद्धति प्रत्यय**—ये संज्ञा शब्दों में जुड़ कर विभिन्न प्रकार के संबंधों/स्वजन संबंधों/नाते-रिश्तों/अपत्य (संतान) आदि का बोध करानेवाले प्रत्यय हैं, यथा— **-आयन** (वात्स्यायन, कौशल्यायन), **-इ** (दाशरथि), **-ई** (भागीरथी, आरुणी; पंजाबी, ईसाई, रामानन्दी), **-ईय** (भारतीय, महाराष्ट्रीय), **-एय** (वैनतेय, राधेय, कौन्तेय), **-अ सं · अण्** (पांडव, वैष्णव, शैव, बौद्ध, जैन, सौमित्र, जामदग्न्य, दानव, मानव, यादव, काश्यप, पार्थ), **-आल** (ससुराल, ननिहाल), **-औती** (कठौती, **-औटी** (हथौटी), **-ज**<सं. जात (पंकज, जलज), **-जा** (भतीजा, भानजा), **-एरा** (ममेरा, फुफेरा, चचेरा), **-दान**/-दानी (पानदान, गुलाबदान, पीकदान, चायदानी, मच्छरदानी), **-ख़ाना** (डाकख़ाना, कारख़ाना), **-हर** (खंडहर), **-आना** (दस्ताना, नज़राना), -का (मायका/मैका), **-ची** (घड़ौंची)

(छ) **गुणवाचक तद्धित प्रत्यय**—ये संज्ञा सर्वनाम शब्दों में जुड़ कर गुण का बोध करानेवाले प्रत्यय हैं, यथा— **-आ** (प्यासा, ठंडा, भूखा, कुबड़ा, निगोड़ा), **-आऊ** (पंडिताऊ, अगाऊ), **-इयल** (दढ़ियल), **-ई** (ख़ूनी, गुलाबी, गुणी, देशी, विदेशी), -ऊ (पेटू घरू, बाज़ारू, गरजू, ढालू), **-ईला** (रोबीला, गँठीला, रँगीला, रसीला, छबीला, ज़हरीला, सजीला), **-वर** (दिलावर, नामवर), **-आहा** (दखिनाहा, उतराहा), **-ऐल** (नखरैल, दुधैल, दँतैल), **-ऐया** (बनैया, घरैया), **-ऐत** (लठैत, नचैत, डकैत), **-एला** (बघेला, सौतेला), **ऐला** (बनैला, विषैला), **-ला** (अगला, पिछला), **-वाल** (काशीवाल, दिल्लीवाल), **-वाला** (आपवाला, श्यामवाला), -सा (ऐसा, वैसा), **-हर** (छुतहर, भुतहर), **-हरा** (सुनहरा, रुपहरा), **-हा** (छुतहा, भुतहा); **-दार** (मालदार, हिस्सेदार, जि़म्मेदार, इ़ज्ज़तदार, मज़ेदार), **-आना** (सालाना, दोस्ताना), **-गीन** (ग़मगीन), **-नाक** (दर्दनाक, ख़ौफ़नाक), **-बान** (निगहबान, मेहरबान), **-बन्द** (हथियारबन्द, मोर्चाबन्द), **-मन्द** (अक्लमन्द, दौलतमन्द), **-वर** (ताक़तवर, कूवतवर), **-वार** (घंटेवार, नम्बरवार, भाषावार), **-सार** (ख़ाकसार), **-गार** (मददगार), **-बाज़** (दग़ाबाज़); **-आलु** (दयालु, कृपालु), **-इक** (सामाजिक, धार्मिक, दैनिक, ऐतिहासिक, नैतिक, राजनैतिक, भौगोलिक, पौराणिक), **-इत** (खंडित, कलित, तरंगित, आनन्दित, पुलकित, दुःखित), **-इष्ठ** (गरिष्ठ, पापिष्ठ, बलिष्ठ), **-इष्ट** (स्वादिष्ट), **-ईय** (भारतीय, राष्ट्रीय, स्वर्गीय), **-ईन** (प्राचीन, अर्वाचीन, कुलीन, ग्रामीण), **-तन** (पुरातन) **-मय** (दयामय, जलमय, शांतिमय), **य** (ओष्ठ्य, कंठ्य, दन्त्य), **-मान्** (श्रीमान्, बुद्धिमान्, मतिमान्), **-वान्** (धनवान्, गुणवान्, ज्ञानवान्, विद्यावान्), -ल (वत्सल, श्यामल), **-वी** (तपस्वी, तेजस्वी, मायावी), **-वन्त** (कुलवन्त, दयावन्त)

(ज) **क्रमवाचक तद्धित प्रत्यय**—ये गणनावाचक शब्दों में जुड़ कर क्रम का बोध करानेवाले प्रत्यय हैं, यथा— **-ला** (पहला), **-रा** (दूसरा, तीसरा), **-था** (चौथा, **-ठा** (छठा), **-वाँ** (पाँचवाँ, सातवाँ, सौवाँ); **-म** (प्रथम, पंचम, सप्तम, नवम), **-तीय** (द्वितीय, तृतीय) **-थ** (चतुर्थ), **-ठ** (षष्ठ)

(झ) **सादृश्यवाचक तद्धित प्रत्यय**—ये संज्ञा/सर्वनाम/विशेषण शब्दों में जुड़ कर सादृश्य का बोध करानेवाले प्रत्यय हैं, यथा— **-सा** (आप-सा, आग-सा, काला-सा), **-वत्** (पुत्रवत्, सूर्यवत्)

(ञ) **अव्यय निर्माणक तद्धित प्रत्यय** – ये अव्यय शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों में जुड़ कर अव्ययों का निर्माण करनेवाले प्रत्यय हैं, यथा— **-आँ** (यहाँ, वहाँ, कहाँ, जहाँ), **-ओं** (कोसों, घंटों, पहरों, मुद्दतों), **-न** (मसलन, अन्दाज़न, क़ानूनन); **-इन** (येन केन प्रकारेण, सुखेन), **-चित्** (किंचित, कदाचित्, क्वचित्), **-तः** (विशेषतः, स्वतः, अंशतः, पूर्णतः), **-तया** (साधारणतया, पूर्णतया, सम्भवतया), **-था** (सर्वथा, अन्यथा), **-दा** (सर्वदा, एकदा), **-धा** (बहुधा, द्विधा), **-शः** (क्रमशः, अल्पशः), **-पूर्वक** (विधिपूर्वक, दृढ़तापूर्वक)

कृत् प्रत्यय-भेद—प्रकार्य के आधार पर कृत् प्रत्ययों के तीन भेद हो सकते हैं—1. संज्ञा-निर्माणक 2. विशेषण-निर्माणक 3. क्रियाविशेषण-निर्माणक। कृत् प्रत्ययों से बने कृदन्त शब्द असमापिका क्रियापद के रूप में भी कार्य करते हैं, यथा—ज़रा-ज़रा सी बात पर तुम्हारा **रूठना** मुझे अच्छा नहीं लगता (संज्ञा); **फटा/फटा हुआ** दूध दही नहीं बन सकता (विशेषण); तुम **उठ कर/उठते ही/उठते हुए** पहले क्या करते हो ? (क्रियाविशेषण)। श्याम शब्द संज्ञा, विशेषण और क्रियाविशेषण के अतिरिक्त असमापिका क्रिया का कार्य भी कर रहे हैं। **-आ**, **-ता**, **-ना** समापिका क्रिया के भी प्रत्यय हैं, यथा— मैं ने पत्र **लिखा**, मैं नहीं **जाता**, मुझे नहीं **जाना**। कृत् प्रत्यय व्युत्पादक तथा रूप-साधक होते हैं।

1. **संज्ञा-निर्माणक कृत् प्रत्यय**—इन प्रत्ययों के योग से विभिन्न संज्ञा शब्दों का निर्माण होता है। इन प्रत्ययों को इन के प्रकार्य के आधार पर चार वर्गों में रखा जा सकता है—(क) भाववाचक संज्ञा निर्माणक (ख) कर्तृवाचक संज्ञा निर्माणक (ग) करण/साधनवाचक संज्ञा निर्माणक (घ) कर्मवाचक संज्ञा निर्माणक

(क) **भाववाचक संज्ञा निर्माणक कृत् प्रत्यय**—ये प्रत्यय भाव (क्रियाव्यापार) का बोध करानेवाले शब्दों का निर्माण करते हैं, यथा— **Ø** (पहुँच, मार, सोच, विचार), **-अंत** (भिडंत, रटंत), **-अन** (शयन, गमन, लगन), **-आ** (पूजा, शिक्षा, घाटा, छापा, घेरा), **-आई** (पढ़ाई, लिखाई, सिलाई), **-आन** (उड़ान, मिलान, उठान), **-आप** (मिलाप), **-आव** (लगाव, बहाव, छिड़काव), **-आवट** (रुकावट, दिखावट, मिलावट), **-आवा** (पछतावा, दिखावा, बुलावा), **-आस** (निकास, हुलास, प्यास), **-इ** (कृषि, रुचि), **-ई** (हँसी, बोली, धमकी), **-एरा** (बसेरा, निबटेरा/निबटारा), **-औती** (मनौती, चुनौती), **-त** (बचत, खपत, लागत), **-ती** (बढ़ती, चढ़ती, घटती), **-न** (चलन, लेन, देन, मोहन, उच्चाटन), **-ना** (चलना, मरना, खाना), **-नी** (करनी, भरनी, होनी, छँटनी), **-वट** (मिलावट, दिखावट, सजावट), **-हट** (चिल्लाहट, गुंजलाहट) घबड़ाहट, झल्लाहट)

(ख) **कर्तृवाचक संज्ञा निर्माणक कृत् प्रत्यय**—ये प्रत्यय क्रिया-व्यापार के करनेवाले संज्ञा शब्दों का बोध कराते हैं, यथा— **-अ** (चर, चोर, सर्प), **-अक** (पाठक, लेखक), **-अन** (मोहन, साधन), **-इन्>ई** (कामी, लोभी, योगी), **-तृ>** र्ता/त्री (कर्ता, नेता, कर्त्री, नेत्री), **-आ** (भूँजा), **-का** (उचक्का), **-र** (झालर)। कई कर्तृवाचक शब्द विशेषणवत् होते हैं; विशेषण-निर्माणक प्रत्ययों में भी कई प्रत्यय कर्तृवाचक निर्माणक हैं।

(ग) **करण/साधनवाचक संज्ञा निर्माणक कृत् प्रत्यय**—ये प्रत्यय क्रिया-व्यापार के करण/साधनवत् प्रयुक्त होनेवाले संज्ञा शब्दों का निर्माण करते हैं, यथा— **-आ** (घोटा, झूला, ठेला, डोला), **-आनी** (मथानी), **-ई** (बुहारी, रेती, फाँसी, लग्गी), **-ऊ** (झाड़ू), **-औटी** (कसौटी), **-औना** (खिलौना), **-न** (बेलन, ढक्कन, झाड़न),

-ना (बेलना, ढकना, छनना/छन्ना, ओढ़ना), **-नी** (कतरनी, धौंकनी, बेलनी, घोटनी, छलनी, सुमरनी, कुरेदनी), **-पा** (खुरपा), **-री** (कटारी)

(घ) **कर्मवाचक संज्ञा निर्माणक कृत् प्रत्यय**—ये प्रत्यय क्रिया-व्यापार के कर्मवत् प्रयुक्त होनेवाले संज्ञा शब्दों का निर्माण करते हैं, यथा—Ø (दाल), **-औना** (बिछौना), **-ना** (ओढ़ना), **नी** (ओढ़नी, सुँघनी, खैनी)

2. **विशेषणनिर्माणक कृत् प्रत्यय**—इन प्रत्ययों के योग से विभिन्न विशेषण शब्दों का निर्माण होता है। इन प्रत्ययों को इन के प्रकार्य के आधार पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है—(अ) गुणवाचक विशेषण निर्माणक (आ) कर्तृवाचक विशेषण निर्माणक (इ) क्रियार्थी विशेषण निर्माणक

(अ) **गुणवाचक विशेषण निर्माणक कृत् प्रत्यय**—ये प्रत्यय विभिन्न गुणवाचक विशेषणों का निर्माण करते हैं, यथा— **-आऊ** (दिखाऊ, बिकाऊ, टिकाऊ), **-अनीय** (करणीय, निन्दनीय, स्मरणीय), **-वना** (डरावना, लुभावना, सुहावना), **-इया** (घटिया, बढ़िया), **-वाँ** (कटवाँ, ढलवाँ, चुसवाँ), **-उआ** (पड़ुआ), **-त** (कृत, मृत, श्रुत, नष्ट) **-इत** (कथित, विदित), **-य** (खाद्य, निन्द्य, पेय, देय), **-ई** (छली)

(आ) **कर्तृवाचक विशेषण निर्माणक कृत् प्रत्यय**—इन प्रत्ययों के योग से बने शब्दों से किसी प्राणी के कर्तृव्य का बोध होता है। शब्द व्यवहार प्रक्रिया में ये विशेषण शब्द कर्तृवाची होने के कारण संज्ञावत् भी प्रयुक्त होते हैं, यथा— **-आक** (तैराक), **-आका** (लड़ाका, उड़ाका), **-आड़ी** (खिलाड़ी), **-आलू** (झगड़ालू, लजालू, शरमालू), **-इयल** (अड़ियल, सड़ियल), **-इया** (जड़िया, धुनिया), **-ऊ/-आऊ** (करू, डरू, खाऊ, पीऊ, कमाऊ, उड़ाऊ), **-एरा** (लुटेरा, कसेरा), **-ऐत** (लड़ैत), -ऐया (बिठैया, रखैया), **-ओड़** (हँसोड़), **-ओड़ा** (भगोड़ा), **-ओरा** (चटोरा), **-क** (मारक, याचक, धारक), **-अक्कड़** (भुलक्कड़, घुमक्कड़, पियक्कड़, कुदक्कड़), **-ना/-नी** (रोना, रोनी—रोना बच्चा, रोनी (सूरत की) लड़की), **-वाला** (पढ़नेवाला, आनेवाली, बोलनेवाले), **-वैया** (गवैया, खिवैया < खेवैया), **-सार** (मिलनसार), **-हार** (होनहार), **-हारा** (राखनहारा)

(इ) **क्रियार्थी विशेषण निर्माणक कृत् प्रत्यय**—इन प्रत्ययों के योग से बने शब्द क्रिया-व्यापार का बोध कराने के साथ विशेषण का काम भी करते हैं। इन प्रत्ययों के योग से शब्द-निर्माण की प्रक्रिया शब्द-स्तर की न हो कर पदबन्ध स्तर की होती है। पदबन्ध स्तरीय ये शब्द असमापिका क्रिया के सूचक होते हैं। प्रकार्य के आधार पर इन्हें दो वर्गों में रख सकते हैं—(क) वर्तमानकालिक कृदन्त निर्माणक (ख) भूतकालिक कृदन्त निर्माणक

(क) वर्तमानकालिक कृदन्त निर्माणक कृत प्रत्यय—इन प्रत्ययों के योग से बने शब्द वर्तमानकालिक असमापिका क्रिया के रूप में विशेषण का कार्य करते हैं, यथा— **-ता/-ती/-ते** (दौड़ता लड़का, उड़ती चिड़िया, भूँकते कुत्ते से)

(ख) **भूतकालिक कृदन्त निर्माणक कृत प्रत्यय**—इन प्रत्ययों के योग से बने शब्द भूतकालिक असमापिका क्रिया के रूप में विशेषण का कार्य करते हैं, यथा—**-आ/-ई/-ए** (पढ़ा-लिखा आदमी, पढ़ी-लिखी औरत, पढ़े-लिखे लोग, दिया हुआ दान, खोई हुई अँगूठी, बिखरे हुए मोती)

संस्कृत '-त<क्त' से युक्त कृदन्त शब्द भी हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं, यथा—बहिष्कृत व्यक्ति, प्रज्वलित अग्नि; भुक्त, आहृत, गत, प्रचारित, प्राप्त, व्यक्त, प्रेषित, आगत, प्रदत्त, घोषित

(ई) **क्रियार्थी क्रियाविशेषण निर्माणक कृत् प्रत्यय**—इन प्रत्ययों के योग से बने शब्द क्रिया-व्यापार का बोध कराने के साथ क्रियाविशेषण का काम भी करते हैं। इन प्रत्ययों के योग से शब्द-निर्माण की प्रक्रिया शब्द-स्तर की न हो कर पदबन्ध स्तर की होती है। पदबन्ध स्तरीय ये शब्द असमापिका क्रिया के सूचक होते हैं। प्रकार्य के आधार पर इन्हें चार वर्गों में रख सकते हैं—(क) पूर्वकालिक कृदन्त निर्माणक (ख) तात्कालिक कृदन्त निर्माणक (ग) अपूर्णता सूचक कृदन्त निर्माणक (घ) पूर्णता सूचक कृदन्त निर्माणक

(क) **पूर्वकालिक कृदन्त निर्माणक कृत् प्रत्यय**—क्रिया धातु+कर के योग से पूर्वकालिक कृदन्त का निर्माण होता है, यथा— **-कर** (पानी में रह कर मगर से बैर, कुछ खो कर बहुत कुछ पाने की इच्छा)

(ख) **तात्कालिक कृदन्त निर्माणक कृत् प्रत्यय**—क्रिया धातु+ -ते के पश्चात् 'ही' या 'हुए' शब्द रख कर तात्कालिक का निर्माण होता है, यथा— **-ते ही/हुए** (खाते ही बोला, खाते हुए बोला)

(ग) **अपूर्णतासूचक कृदन्त निर्माणक कृत् प्रत्यय**—क्रिया धातु+ -ते के योग से अपूर्ण क्रियासूचक कृदन्त का निर्माण होता है, यथा— **-ते** मेरे रहते तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, वह मरते-मरते बची है)

(घ) **पूर्णतासूचक कृदन्त निर्माणक कृत् प्रत्यय**—क्रिया धातु+ -ए के योग से पूर्ण क्रियासूचक कृदन्त का निर्माण होता है, यथा— **-ए** (स्वतन्त्रता मिले कितने वर्ष हो गए, बैठे-बैठे सो गया)

उभय क्षेत्रीय प्रत्यय-भेद—प्रकार्य के आधार पर इन प्रत्ययों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—(क) नाम धातु निर्माणक प्रत्यय (ख) अकर्मक ←→ सकर्मक धातु निर्माणक प्रत्यय (ग) प्रेरणार्थक धातु निर्माणक प्रत्यय। (इन तीनों प्रकार के प्रत्ययों की चर्चा अध्याय 17 'क्रिया' के अन्तर्गत विस्तार से की जाएगी)

4. पुनरुक्ति

अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी में भी पुनरुक्ति प्रक्रिया से विविध प्रकार के शब्दों की रचना की जाती है। पुनरुक्ति (=दोहराना) को द्विरुक्ति, पुनरावृत्ति भी कहते हैं। जब एक शब्द/पद ज्यों का त्यों या स्वल्प परिवर्तन के साथ या उस के

समानार्थी के साथ दोहराया जाता है तो वह समस्त शब्द **पुनरुक्त/द्विरुक्त** या **पुनरावृत्त** शब्द/पद कहलाता है। पुनरुक्ति से शब्द के भाव में अधिक सबलता, स्पष्टता तथा प्रभाव आ जाता है। सन्दर्भानुसार पुनरुक्त शब्दों से पूर्णता, अपूर्णता, समग्रता, अनेकत्व, व्यष्टि, अतिशयता, निरन्तरता, पृथकता और सजातीयता आदि का बोध होता है, यथा—डगर-डगर (यथावत् ध्वनि-द्विरुक्ति), पानी-वानी (स्वल्प परिवर्तित ध्वनि-द्विरुक्ति), लाज-शर्म (समानार्थी शब्द द्विरुक्ति), दाना-पानी (समवर्गीय शब्द द्विरुक्ति), ऊँच-नीच (विलोमार्थी शब्द द्विरुक्ति); भिखारी पेट पालने के लिए **घर-घर** चक्कर लगाते हैं। (हर घर का); **पीले पीले** आम एक तरफ़ रखो और **हरे-हरे** एक तरफ़। (पीले आम, हरे आम अलग-अलग हैं); **चार-चार** लड़कियाँ एक-एक लाइन में खड़ी हों। (इतनी ही संख्या के समूह में); मैं तो दिन भर **बैठे-बैठे** थक गई। (कार्य लगातार हुआ); खाने-पीने को **कुछ-न-कुछ** तो चाहिए ही। ('कुछ' में अर्थ-वैशिष्ट्य); अरे, घर में कोई नहीं है, **बाल-बच्चे** कहाँ भेज दिए? (बाल-बच्चे = सारा परिवार अर्थ में बल/विस्तार); **बड़े-बड़े** अमरूद लाया हूँ। (आकार की अतिशयता)

द्विरुक्ति संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय शब्दों की हो सकती है। अपनी बात को ठीक से तथा प्रभावपूर्ण ढंग से सम्प्रेषित करने के उद्देश्य से वक्ता केवल शब्दों की ही नहीं, कभी-कभी वाक्य की भी पुनरुक्ति करता है, यथा—लड़की को देखने वे कब आ रहे हैं?···· आप ने कोई जवाब नहीं दिया—लड़की को देखने लड़केवाले कब आ रहे हैं? तुम ने अपने लाड़ले को बहुत बिगाड़ लिया है—ठीक कह रही हूँ न?—तुम अपने लाड़ले को खूब बिगाड़ रहे हो। यद्यपि भाषा के सभी अंग पुनरुक्त हो सकते हैं; तथापि अर्थयुक्त ढंग से उपवाक्य और प्रकार्यात्मक शब्दों की पुनरुक्ति नहीं हुआ करती। वाक्यांश-संरचना के अन्तर्गत शब्द रचना-स्तर पर ध्वनियों और रूपों की पुनरुक्ति अधिक प्राप्त होती है।

ध्वनि तथा अर्थ के आधार पर बने पुनरुक्त शब्द पाँच प्रकार के होते हैं—1. पूर्णध्वनीय पुनरुक्त 2. अपूर्ण ध्वनीय पुनरुक्त 3. समानार्थी पुनरुक्त 4. समवर्गीय पुनरुक्त 5. विलोमार्थी पुनरुक्त। पुनरुक्ति वाक्य के किसी भी अंग के रूप में व्यवहृत हो सकती है।

1. **पूर्ण ध्वनीय पुनरुक्त शब्द** में प्रथमांश और द्वितीयांश की ध्वनियाँ शत-प्रति शत समान होती हैं, यथा—गली-गली, घड़ी-घड़ी, घर-घर, टुकड़े-टुकड़े, मुहल्ले-मुहल्ले, हँसी-हँसी (संज्ञा); अपना-अपना, कोई-कोई (सर्वनाम); काले-काले, छोटे-छोटे, दो-दो, मीठे मीठे, अच्छा-अच्छा, थोड़ी-थोड़ी (विशेषण); चलते चलते, बैठे बैठे, पिला-पिला कर, बैठा बैठा, हँसते-हँसते (क्रिया); अलग-अलग ऊपर-ऊपर, वाह-वाह (अव्यय)। पूर्ण ध्वनीय पुनरुक्त शब्द ब (फ़ारसी पूर्वसर्ग), ही, सा, पर, का, में के योग से भी बनते हैं। **-'ब-'** से युक्त पुनरुक्ति आवृत्ति व्यक्त करती है

और घटना की व्यष्टिता प्रकट करती है, यथा—दिन ब दिन, साल ब साल, रोज़ ब रोज़; **-'ही-'** से युक्त पुनरुक्ति प्रसंगानुसार अर्थ पर बल डालती है और अनेकत्व या व्यष्टि को व्यक्त करती है, यथा—बर्फ़ ही बर्फ़, रेत ही रेत, बात ही बात, नोट ही नोट; **'-सा-'** से युक्त पुनरुक्ति बात की सामान्यता और तुच्छता को व्यक्त करती है, यथा—घर-सा-घर, मित्र-सा-मित्र, गली-सी-गली; **'-का-'** से युक्त पुनरुक्ति पूर्णता, समग्रता व्यक्त करते हुए अर्थ की सशक्तता, अनेकत्व या व्यष्टि व्यक्त करती है, यथा—साल का साल, घर का घर, पलटन की पलटन, झुंड का झुंड, झुंड के झुंड, हफ़्ते के हफ़्ते, महीने के महीने साल के साल; **'-पर-'** से युक्त पुनरुक्ति आवृत्ति के साथ-साथ घटना की व्यष्टिता व्यक्त करती है, यथा—दिन पर दिन, साल पर साल, क़दम पर क़दम, **'-का-···में'** से युक्त पुनरुक्ति मूल अर्थ पर बल डालती है, यथा—बात की बात में, दम के दम में, आन की आन में।

2. **अपूर्ण ध्वनीय पुनरुक्त शब्द** या **प्रतिध्वनिमूलक शब्द** में प्रथमांश और द्वितीयांश की ध्वनियों में थोड़ा-बहुत अन्तर हुआ करता है। इन शब्दों में एक अंश/शब्द सार्थक होता है, दूसरे अंश/शब्द की रचना पहले के स्वनिक अंश की प्रतिध्वनि जैसी होती है। ऐसे शब्दों में प्रतिध्वनित अंश/शब्द कभी पहले आता है, कभी बाद में, यथा—काग़ज़-वाग़ज़, झूठ-मूठ, मिठाई-विठाई, छेड़छाड़, छूतछात, भीड़-भाड़, खाट-वाट मालामाल, धूमधाम, टीमटाम (संज्ञा), मैं-वैं (सर्वनाम) खाली-खूली, इने-गिने, दूनादून, ढीलाढाला, टूटाटाटा, ठीकठाक (विशेषण), चाटना-चूटना, सुन-सुना कर (क्रिया), आमने-सामने, चुपचाप, सुनसान, बीचोबीच (अव्यय)

प्रथमांश या द्वितीयांश की प्रतिध्वनि या सादृश्य पर निर्मित होने के कारण ऐसे शब्दों को **प्रतिध्वनि शब्द** भी कहा जाता है। इस पुनरुक्ति में सार्थक तत्त्व का अर्थ और अधिक सशक्त हो जाता है। यह पुनरुक्ति अर्थ में अधिक सशक्तता लाने के साथ-साथ अनेकत्व को भी व्यक्त करती है, यथा—कहीं नहीं है उस के **दर्दवर्द**। **इज़्ज़त-विज़्ज़त** मैं कुछ नहीं जानती। कुछ अपूर्ण ध्वनीय पुनरुक्त शब्दों में प्रयुक्त दोनों अंश/शब्द अलग-अलग रहने पर निरर्थक ही कहे जा सकते हैं किन्तु एकसाथ आने पर अर्थवान् हो जाते हैं, यथा—अफ़रा-तफ़री- अंट-संट, अनाप-शनाप, अंड-बंड, ऊँटपटाँग, ऊबड़-खाबड़, दनादन, हक्का बक्का। ऐसे अपूर्ण ध्वनीय पुनरुक्त शब्द का एक अंश प्रायः स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त नहीं किया जाता। कुछ अन्य अपूर्ण ध्वनीय पुनरुक्त शब्द ये हैं—आस-पास, अदला-बदला, आमने सामने, इने-गिने, अक-बक, अता-पता, अड़ोसी-पड़ोसी, अगल-बगल, आर-पार, उलटा-पुलटा, छूतछात, धूमधाम, खाना वाना, रोटी-वोटी, काग़ज़-वाग़ज़, मिठाई-विठाई/सिठाई, पानी-वानी, चिट्ठी-विट्ठी, जूता-ऊता<वूता, झूठमूठ, सचमुच, पूछताछ, चुपचाप, ढूँढ़ढाँढ़, बचाखुचा, खालीखूली, ग़लत सलत, धोना धाना, टेढा मेढ़ा

3. **समानार्थी पुनरुक्त शब्द** में प्रथमांश, द्वितीयांश परस्पर समानार्थी/

लगभग समानार्थी होते हैं । ऐसे पुनरुक्त शब्द के दोनों अंशों में से प्रत्येक का स्वतन्त्र प्रयोग हो सकता है । ऐसे शब्दों को कुछ लोग **द्वन्द्व शब्द** भी कहते हैं, यथा—बाल-बच्चे, धन-दौलत, रंग-ढंग, आदर-सम्मान, कूड़ा-कचरा, साधु-सन्त, हाट-बाज़ार, कपड़ा-लत्ता (संज्ञा), थका-मांदा, भरा-पूरा, हृष्ट-पुष्ट, (विशेषण), काट-छाँट, मारना-पीटना, सोच-समझ कर, मिलना-जुलना, हिलते-डुलते (क्रिया), सदा-सर्वदा (अव्यय) । ये शब्द युग्म अर्थ को सशक्तता तथा समूह का भाव व्यक्त करते हैं, यथा—मेरे पास न धन-दौलत है, न महल-अटारी, और न नौकर-चाकर ।

4. **समवर्गीय पुनरुक्त शब्द** में प्रथमांश, द्वितीयांश अर्थ की दृष्टि से एक ही वर्ग के होते हैं, यथा—दूध-दही, दीन-ईमान, भूख-प्यास (संज्ञा), गूँगा-बहरा, दीन-दुःखी (विशेषण), गाना-बजाना, लिखना-पढ़ना, लेना-देना (क्रिया), जब-तब, जैसे-तैसे (अव्यय) । इस वर्ग के शब्द युग्म का अर्थ समाहारात्मक होता है ।

5. **विलोमार्थी पुनरुक्त शब्द** में प्रथमांश, द्वितीयांश अर्थ की दृष्टि से विपरीतार्थी होते हैं, यथा—उत्थान-पतन, उन्नति-अवनति, हित-अनहित, आय-व्यय, हानि-लाभ, धूप-छाँह (संज्ञा), तू-तू—मैं-मैं, अपना-पराया (सर्वनाम), नया-पुराना, कम-ज़्यादा (विशेषण), आना-जाना, लेना-देना (क्रिया), आज-कल, ऊपर-नीचे, इधर-उधर (अव्यय)

पुनरुक्त शब्दों पर तीन दृष्टियों से विचार किया जा सकता है—1. शब्द-गठन दृष्टि (संरचनापरक अध्ययन) 2. शब्द-अर्थ दृष्टि (अर्थपरक अध्ययन) 3. शब्द-प्रकार्य दृष्टि (व्याकरणिक अध्ययन) ।

(क) संरचनापरक अध्ययन में पुनरुक्त शब्द के दोनों अंशों के ध्वनि पक्ष की दृष्टि से विचार किया जाता है, यथा—गाँव-गाँव, हाय-हाय **विकरण रहित पूर्ण पुनरुक्त शब्द** हैं । गाँव का गाँव, हाथ पर हाथ, हाथ में हाथ, कहाँ से कहाँ, रेत ही रेत, हाथों हाथ **विकरण सहित पूर्ण पुनरुक्त शब्द** हैं । लप-लप, छम-छम, भड़भड़ **अनुरणात्मक पूर्ण पुनरुक्त शब्द** हैं । चमाचम, धड़ाधड़, सरासर, 'आ' **आगमयुत पूर्ण** पुनरुक्त शब्द हैं । ताला-वाला, बीज-ईज, हल्ला-गुल्ला, औने-पौने, ठीकठाक, चाट-चूट **अपूर्ण पुनरुक्त शब्द** हैं

(ख) अर्थपरक अध्ययन में पुनरुक्त शब्द के दोनों अंशों के अर्थ की दृष्टि से विचार किया जाता है, यथा—1. **अतिशयता बोधन**—दाने-दाने (को मुहताज), 2. **निरन्तरता बोधन**—बैठे-बैठे (थक गई), लड़ते-लड़ते (गिर पड़े) 3. **पुनरावृत्ति बोधन**—पूछते-पूछते (आ गया), पिघल-पिघल (कर खत्म हो गई) 4. **पृथकता बोधन**—रोम-रोम (काँप गया), घर-घर (की बात), पैसा-पैसा (जोड़ कर) 5. **भिन्नता बोधन**—तरह-तरह (की बातें), फूल-फूल (का सौन्दर्य) 6. **संख्या-समूह बोधन**—दो दो (लड़के आएँ), दस-दस (रुपये निकालो) 7. **सजातीयता बोधन**—लड़के-लड़के (इधर), लड़कियाँ-लड़कियाँ (उधर) 8. **अवधि बोधन**—लिखते-लिखते

(सवेरा हो गया), पीते-पीते (सुबह से शाम हो गई) 9. **स्थिति बोधन**— कहाँ से कहाँ (पहुँच गया), भीतर का भीतर (रह गया) 10. **रीति बोधन**—जल्दी-जल्दी (जाओ), घूँट-घूँट (पी) 11. **आवेग बोधन**—छि-छि ! अरे-अरे ! 12. **न्यूनता बोधन**—खट्टी-खट्टी (डकारें), उड़ी-उड़ी (-सी तबीयत) 13. **अपूर्णता बोधन**—मरते-मरते (बचे), पढ़ते-पढ़ते (सो गई) 14. **पारस्परिक सम्बन्ध बोधन**—भाई-भाई (का प्रेम), धर्म-धर्म (की एकता) 15. **निश्चय बोधन**—(हाँ, मैं यही काम) करूँगा-करूँगा; (निश्चय ही तुम आज शाम यहाँ) आओगी-आओगी 16. **संशय बोधन**—(वह) आई-आई न आई; जा रहा हूँ—जा रहा हूँ (कह रहे हो, पर……) 17. **अनिश्चय/अनिर्णय बोधन**—(कोई दिलचस्प) किताब-विताब (हमें भी दे दो) 18. **अनुमान बोधन**—(पैर में कोई) कील-वील (लग गई है क्या ?) 19. **भावपूर्ण संबोधन**—अब्बा-अब्बा ! (हमें भी ईदगाह ले चलो)

3. **व्याकरणपरक अध्ययन** में पुनरुक्त शब्द के दोनों अंशों के व्याकरणिक पक्ष की दृष्टि से विचार किया जाता है, यथा—**शब्द-आधार प्रातिपदिकीय पुनरुक्ति**—आटा-वाटा, कौन-कौन, गीला-वीला; **प्रातिपदिक-आधार धातु रूपीय पुनरुक्ति**—उलटा-पुलटा, देखा-दाखी, मारा-मूरी; **पदबन्ध-आधार पद पुनरुक्ति**—द्वार-द्वार, पूरा का पूरा, उठते-बैठते, भागे-भागे; **निजवाचक विशेषण पुनरुक्ति**—अपना-अपना ।

पुनरुक्त शब्दों में एक बड़ी संख्या '**अनुकरणात्मक शब्दों**' की है । ये शब्द किन्हीं ध्वनियों या दृश्यों के अनुकरण पर गढ़े गए हैं, यथा—खटपट, फटफटिया, चमाचम, झिलमिल, सकपकाना, छटपटाना, हिचकिचाहट । ऐसे शब्दों को 'अनुकरणमूलक/अनुरणनात्मक/अनुकार/प्रतिबिम्बित' शब्द भी कहा जाता है । अनुकरण-आधार पर ऐसे शब्दों के दो भेद हो सकते हैं—1. ध्वन्यात्मक शब्द 2. दृश्यात्मक शब्द ।

ध्वन्यात्मक शब्द किसी वस्तु या प्राणी की ध्वनि के अनुकरण के आधार पर बने होते हैं, यथा—(कौआ की) काँव-काँव; (बन्दर का) किकियाना; (मुर्गा की) कुकड़ू कूँ; (मोर का) कुहकना; (हंस का) कूजना; (कोयल का) कूकना; (भालू की) खों-खों; (भौंरे का) गुंजारना; (कबूतर की) गुटरगूँ; (बाघ का) गुर्राना; (उल्लू का) घुघुआना; (चिड़िया का) चहचहाना; (चूहे की) चूँ-चूँ; हाथी की (चिंघाड़); (तोते की) टें-टें; (मेंढक की) टर्र-टर्र; (साँड़ का) डकरना; (शेर की) दहाड़; (पपीहे की) पी-पी; (साँप की) फुफकार; (ऊँट का) बलबलाना; (कुत्ते का) भूँकना; (बकरी का) मिमियाना; (बिल्ली की) म्याऊँ-म्याऊँ; (गाय का) रँभाना; (गधे का) रेंकना; (घोड़े की) हिनहिनाहट ।

(बिजली का) कड़कना; (दाँतों का) कटकटाना; (पत्तों का) खड़कना; (चूड़ियों का) खनखनाना; (पायल का) छनछनाना; (बादलों का) गरजना; (चिता

का) चटचटाना; (जूते का) चरमराना; (झरने की) झर-झर; (घड़ी की) टिक-टिक; (नाव का) डगमगाना; (दिल का) धड़कना; (पंख/कपड़े का) फड़फड़ाना; (जीभ का) लपलपाना ।

दृश्यात्मक शब्द किसी दृश्य के अनुकरण के आधार पर बने होते हैं, यथा—(दीपक का) टिमटिमाना; (तारों का) झिलमिलाना; (गहनों की) चमाचम; (रंगीन कपड़े की) झकाझक; (बिन्दी की) चमक ।

अनुकरणात्मक शब्द सामान्यत: संज्ञाएँ और क्रियाएँ होते हैं, यथा—(स्त्री लिंग संज्ञाएँ) कुड़कुड़, कड़कड़, चहचहाहट, गुनगुन, कचकच, बड़बड़ चटचट अनुकरणात्मक क्रियाएँ प्राय: अनुकरणात्मक संज्ञाओं से व्युत्पन्न हैं, यथा—कड़कड़ाना, बड़बड़ाना, कुड़कुड़ाना कचकचाना, चहचहाना, गुनगुनाना, चटचटाना । ये क्रिया धातुएँ अकर्मक, सकर्मक हो सकती हैं, यथा—थपथपाना, खटखटाना सकर्मक हैं, चटचटाना, कड़कड़ाना अकर्मक हैं ।

शब्द भेद-उर्वरता के आधार पर अनुकरणात्मक शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—1. उर्वर 2. अनुर्वर

1. **उर्वर अनुकरणात्मक शब्द** वे हैं जिन के एकाधिक शब्द-भेद उपलब्ध हैं, यथा—भौं-भौं, भौंकना; में-में, मिमियाना; कड़ (कड़क, कड़का, कड़की, कड़ाका, कड़कड़, कड़कड़ाना); छप (छपक, छपाक, छपाका, छपछप, छपछपाना)

2. **अनुर्वर अनुकरणात्मक शब्द** वे हैं जिन के एकाधिक भेद उपलब्ध नहीं हैं; यथा—काँव-काँव; कुकड़ूँ-कूँ, चूँचूँ, गुटर-गूँ, ढिशुम-ढिशुम

हिन्दी में लगभग 175 अनुकरणात्मक धातुओं का प्रयोग होता है । गठन की दृष्टि से ये धातुएँ इन चार वर्गों में रखी जा सकती हैं—

(क) **मूल धातुएँ**, यथा—खट (ना), गड़ (ना), अचकचा (ना), सिटपिटा (ना) चमक (ना), भड़क (ना)

(ख) **संयुक्त धातुएँ**, यथा—किलबिला (ना), खटपटा (ना), खड़बड़ा (ना), छटपटा (ना)

(ग) **पूर्ण पुनरुक्त धातुएँ/नाम धातुएँ**, यथा—कटकटा (ना), खटखटा (ना), फड़फड़ा (ना), भिनभिना (ना), धड़धड़ा (ना). हिनहिना (ना)

(घ) **अपूर्ण पुनरुक्त धातुएँ**, यथा—कलबला (ना), कलभला (ना), खलभला (ना)

अनुकरणात्मक शब्दावली सर्वनामों (तू-तू, मैं-मैं, अपना-अपना) के अतिरिक्त शेष चार शब्दवर्गों (संज्ञा, विशेषण, क्रिया, अव्यय) सेसंबंधित होती है, यथा—

(अ) **अनुकरणात्मक संज्ञाएँ**—खखार, पोंपों, फटफटिया, भौंपू; खटखट, खनखन, चरमर, चूँ-चूँ, गुदगुदी, गिलगिली, तड़ातड़ी, सन्नाटा, सरसर

में विश्वास न रखता हो), **अथाह** (जिस की गहराई न नापी जा सके), **अनपढ़** (जो पढ़ा-लिखा न हो), **अभक्ष्य** (जो खाने के योग्य न हो), **अनुपम** (जिस की बराबरी न हो), **अतुलनीय** (जिस की तुलना न हो सके), **अवध्य** (मारने के अयोग्य), **अक्षरशः** (अक्षर-अक्षर के अनुरूप), **अज** (जिस का कभी जन्म न हुआ हो), **अमानुषिक** (जो मनुष्यता से दूर हो), **अपवाद** (साधारण नियम से भिन्न), **अभियोक्ता** (जो मुकदमा करे), **अभियुक्त** (जिस पर मुकदमा किया जाए), **अधमर्ण** (ऋण लेनेवाला), **अतिव्ययी** (जो अधिक खर्च करता हो), **आशुतोष** (शीघ्र प्रसन्न होने वाला), **उत्तमर्ण** (ऋण देनेवाला), **उद्दण्ड** (जिसे दण्ड का भय न हो), **कामचोर** (काम से जी चुरानेवाला), **कुलीन** (उच्च कुल का), **जिज्ञासु** (जानने की इच्छा रखनेवाला), **छिद्रान्वेषी** (दूसरों के दोष ढूँढ़नेवाला), **दिवालिया** (जो ऋण चुकाने में असमर्थ हो गया हो), **निर्लज्ज** (लज्जा न करनेवाला), **निर्बल** (जिस में शक्ति का अभाव हो), **निरीह** (जिस की कोई अभिलाषा न हो), **दुग्धाहारी** (केवल दूध पर निर्वाह करनेवाला), प्रातः स्मरणीय (प्रातः स्मरण करने योग्य), **पैतृक सम्पत्ति** (बाप-दादा से चलती आई हुई सम्पत्ति), **भूतपूर्व** (जो बात या घटना पहले हो चुकी हो), **मिथ्याभाषी** (जो झूठ बोलता हो), **सदाचारी** (जिस का आचरण अच्छा हो), **सहधर्मी** (समान धर्म को माननेवाला), **सहिष्णु** (जिस की सहनशक्ति अच्छी हो), **स्वयंसेवक** (जो अपनी इच्छानुसार सेवा करे)

यौगिक शब्दों में कुछ ऐसे शब्द उपलब्ध हैं जिन्हें **संक्षिप्त शब्द** कह सकते हैं। संक्षिप्त शब्दों का प्रयोग प्रायः उन लोगों की भाषा में अधिक होता है जो अँगरेज़ी भाषा-व्यवस्था से जाने-अनजाने प्रभावित हैं। उच्चारण और लेखन की सुविधा की दृष्टि से बड़े शब्दों को छोटा करने की अँगरेज़ी भाषा की प्रवृत्ति का अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी में भी अनुकरण होने लगा है। संक्षिप्त शब्दों का प्रयोग दैनन्दिन बोलचाल की भाषा में कम ही होता है। संरचना की दृष्टि से संक्षिप्त शब्दों को चार वर्गों में रखा जा सकता है—(क) पूर्व पदीय शब्द (ख) उत्तर पदीय शब्द (ग) प्रथमाक्षरी संक्षिप्ति (घ) प्रथमाक्षरी शब्द

(क) पूर्वपदीय शब्द/पूश—ऐसे संक्षिप्त शब्दों में यौगिक शब्दों के उत्तर पद को छोड़ते हुए पूर्व पद का प्रयोग किया जाता है, यथा—कॉपी (कॉपी बुक), फ़ोटो (फ़ोटोग्राफ़), माइक (माइक्रोफ़ोन), लैब (लैबोरेटरी), बाइक (बाइसिकल), वीडियो (वीडियो कैसेट), पाक (पाकिस्तान)

(ख) उत्तर पदीय शब्द/उश—ऐसे संक्षिप्त शब्दों में यौगिक शब्दों के पूर्व पद को छोड़ते हुए उत्तर पद का प्रयोग किया जाता है, यथा—फ़ोन (टेलीफ़ोन), प्लेन (एयरोप्लेन), बस (ऑमनी बस), मैटिनी (सिनेमा मैटिनी), अमेरिका (यूनाइटेड स्टेट ऑफ़ अमेरिका), शाला (पाठशाला)

(ग) प्रथमाक्षरी संक्षिप्ति/प्रसं—व्यंग्य, अव्यक्त कथन, गुप्त भाषा, लम्बे

व्यक्तिवाचक नामों आदि की संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया से निर्मित रूप को प्रथमाक्षरी संक्षिप्ति, प्रथमाक्षरी शब्द कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया में प्रायः यौगिक शब्द के विभिन्न पदों के प्रथम अक्षर को ले कर शब्द बना लिए जाते हैं। सामान्यतः संस्थाओं, परियोजनाओं, वैज्ञानिक आविष्कारों और उपकरणों आदि के लिए प्रथमाक्षरी संक्षिप्ति, प्रथमाक्षरी शब्द बनते रहते हैं। ज० द०/ज० लो० द० (जनता लोक दल), जद/जलोद में 'जद/जलोद' प्रश है तथा 'ज० द०/ज० लो० द० प्रसं। प्रसं में दो या तीन वर्णों का उच्चारण अलग-अलग स्वतन्त्र इकाई के रूप में अवरोध के साथ किया जाता है। प्रश, प्रसं बनाने की प्रवृत्ति अँगरेज़ी में बहुत अधिक है। पत्रकारिता तथा लेखकों के अतिरिक्त राजनेताओं को भी प्रसं तथा प्रंश की दैनन्दिन जीवन में आवश्यकता पड़ती है। हिन्दी में प्रचलित प्रसं के कुछ उदाहरण ये हैं—(अ) डॉ० (डॉक्टर), प्रो० (प्रोफ़ेसर), रु० (रुपया), पै० (पैसे), भू० (भूतपूर्व), स्व० (स्वर्गीय) (आ) उदा० (उदाहरणार्थ), एल० डी० सी० (लोअर डिवीज़न क्लर्क), यू० डी० सी० (अपर डिवीज़न क्लर्क), बी० एस० एफ़० (बॉर्डर सीक्योरिटी फ़ोर्स), डी० एस० पी० (डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट ऑफ़ पुलिस), उ० प्र० (उत्तर प्रदेश), आं० प्र० (आन्ध्र प्रदेश), हि० प्र० (हिमाचल प्रदेश), यू० एस० ए० (यूनाइटेड स्टेट ऑफ़ अमेरिका), यू० के० (यूनाइटेड किंगडम), एफ़० आर० जी० (फ़ेडरल रिपब्लिक ऑफ़ जर्मन), यू० एन० ओ० (यूनाइटेड नेशन्स ऑर्गेनाइज़ेशन), एन० सी० सी० (नेशनल कैडिट कोर), एल० टी० सी० (लीव ट्रेवल कन्सेशन), आई० ए० एस० (इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस), सी० ए० (चार्टेड एकाउन्टेन्ट), पी० एम० (प्राइम मिनिस्टर), जी० एम० (जनरल मैनेजर), टी० सी० (ट्रान्सफ़र सर्टीफ़िकेट), एस० एल० सी० (स्कूल लीविंग सर्टीफ़िकेट), एम० ए० (मास्टर ऑफ़ आर्ट्स), एम० एस-सी० (मास्टर ऑफ़ साइंस), एम० लिट० (मास्टर ऑफ़ लैटर्स/लिटरेचर), बी० ए० (बैचलर ऑफ़ आर्ट्स), बी० एस-सी० (बैचलर ऑफ़ साइंस), पी-एच० डी०/डी० फ़िल० (डॉक्टर ऑफ़ फ़िलोसफ़ी), डी० लिट० (डॉक्टर ऑफ़ लैटर्स/ लिटरेचर), एल० आई० सी० (लाइफ़ इंश्योरेंस कॉर्पोरेशन), डी० डी० ए० (दिल्ली डवलपमेन्ट अथॉरिटी), दि० न० नि० (दिल्ली नगर निगम)।

(घ) **प्रथमाक्षरी शब्द/प्रश**—हिन्दी में प्रचलित कुछ प्रश हैं—नभाटा (नवभारत टाइम्स), राउप (राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद्), भालोद (भारतीय लोकदल), भाक्रांद (भारतीय क्रांति दल), संसोपा (संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी), जद (जनता दल), मिधानि (मिश्र धातु निगम), दिननि (दिल्ली नगर निगम)। यूनेस्को, यूनिसेफ़, नाटो, सीटो, भेल (Bhel), बेल (Bel), इम्पा (Impa), इकार (Icar), इक्रिसैट (Icrisat) अँगरेज़ी से आगत, अनुकरण पर बने प्रश हैं।

में विश्वास न रखता हो), **अथाह** (जिस की गहराई न नापी जा सके), **अनपढ़** (जो पढ़ा-लिखा न हो), **अभक्ष्य** (जो खाने के योग्य न हो), **अनुपम** (जिस की बराबरी न हो), **अतुलनीय** (जिस की तुलना न हो सके), **अवध्य** (मारने के अयोग्य), **अक्षरशः** (अक्षर-अक्षर के अनुरूप), **अज** (जिस का कभी जन्म न हुआ हो), **अमानुषिक** (जो मनुष्यता से दूर हो), **अपवाद** (साधारण नियम से भिन्न), **अभियोक्ता** (जो मुकदमा करे), **अभियुक्त** (जिस पर मुकदमा किया जाए), **अधमर्ण** (ऋण लेनेवाला), **अतिव्ययी** (जो अधिक खर्च करता हो), **आशुतोष** (शीघ्र प्रसन्न होने वाला), **उत्तमर्ण** (ऋण देनेवाला), **उद्दण्ड** (जिसे दण्ड का भय न हो), **कामचोर** (काम से जी चुरानेवाला), **कुलीन** (उच्च कुल का), **जिज्ञासु** (जानने की इच्छा रखनेवाला), **छिद्रान्वेषी** (दूसरों के दोष ढूँढ़नेवाला), **दिवालिया** (जो ऋण चुकाने में असमर्थ हो गया हो), **निर्लज्ज** (लज्जा न करनेवाला), **निर्बल** (जिस में शक्ति का अभाव हो), **निरीह** (जिस की कोई अभिलाषा न हो), **दुग्धाहारी** (केवल दूध पर निर्वाह करनेवाला), प्रातः स्मरणीय (प्रातः स्मरण करने योग्य), **पैतृक सम्पत्ति** (बाप-दादा से चलती आई हुई सम्पत्ति), **भूतपूर्व** (जो बात या घटना पहले हो चुकी हो), **मिथ्याभाषी** (जो झूठ बोलता हो), **सदाचारी** (जिस का आचरण अच्छा हो), **सहधर्मी** (समान धर्म को माननेवाला), **सहिष्णु** (जिस की सहनशक्ति अच्छी हो), **स्वयंसेवक** (जो अपनी इच्छानुसार सेवा करे)

यौगिक शब्दों में कुछ ऐसे शब्द उपलब्ध हैं जिन्हें **संक्षिप्त शब्द** कह सकते हैं। संक्षिप्त शब्दों का प्रयोग प्रायः उन लोगों की भाषा में अधिक होता है जो अँगरेज़ी भाषा-व्यवस्था से जाने-अनजाने प्रभावित हैं। उच्चारण और लेखन की सुविधा की दृष्टि से बड़े शब्दों को छोटा करने की अँगरेज़ी भाषा की प्रवृत्ति का अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी में भी अनुकरण होने लगा है। संक्षिप्त शब्दों का प्रयोग दैनन्दिन बोलचाल की भाषा में कम ही होता है। संरचना की दृष्टि से संक्षिप्त शब्दों को चार वर्गों में रखा जा सकता है—(क) पूर्व पदीय शब्द (ख) उत्तर पदीय शब्द (ग) प्रथमाक्षरी संक्षिप्ति (घ) प्रथमाक्षरी शब्द

(क) पूर्वपदीय शब्द/पूश—ऐसे संक्षिप्त शब्दों में यौगिक शब्दों के उत्तर पद को छोड़ते हुए पूर्व पद का प्रयोग किया जाता है, यथा—कॉपी (कॉपी बुक), फ़ोटो (फ़ोटोग्राफ़), माइक (माइक्रोफ़ोन), लैब (लैबोरेटरी), बाइक (बाइसिकल), वीडियो (वीडियो कैसेट), पाक (पाकिस्तान)

(ख) उत्तर पदीय शब्द/उश—ऐसे संक्षिप्त शब्दों में यौगिक शब्दों के पूर्व पद को छोड़ते हुए उत्तर पद का प्रयोग किया जाता है, यथा—फ़ोन (टेलीफ़ोन), प्लेन (एयरोप्लेन), बस (ऑमनी बस), मैटिनी (सिनेमा मैटिनी), अमेरिका (यूनाइटेड स्टेट ऑफ़ अमेरिका), शाला (पाठशाला)

(ग) प्रथमाक्षरी संक्षिप्ति/प्रसं—व्यंग्य, अव्यक्त कथन, गुप्त भाषा, लम्बे

व्यक्तिवाचक नामों आदि की संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया से निर्मित रूप को प्रथमाक्षरी संक्षिप्ति, प्रथमाक्षरी शब्द कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया में प्रायः यौगिक शब्द के विभिन्न पदों के प्रथम अक्षर को ले कर शब्द बना लिए जाते हैं। सामान्यतः संस्थाओं, परियोजनाओं, वैज्ञानिक आविष्कारों और उपकरणों आदि के लिए प्रथमाक्षरी संक्षिप्ति, प्रथमाक्षरी शब्द बनते रहते हैं। ज० द०/ज० लो० द० (जनता लोक दल), जद/जलोद में 'जद/जलोद' प्रश है तथा 'ज० द०/ज० लो० द० प्रसं। प्रसं में दो या तीन वर्णों का उच्चारण अलग-अलग स्वतन्त्र इकाई के रूप में अवरोध के साथ किया जाता है। प्रश, प्रसं बनाने की प्रवृत्ति अँगरेज़ी में बहुत अधिक है। पत्रकारिता तथा लेखकों के अतिरिक्त राजनेताओं को भी प्रसं तथा प्रंश की दैनन्दिन जीवन में आवश्यकता पड़ती है। हिन्दी में प्रचलित प्रसं के कुछ उदाहरण ये हैं—(अ) डॉ० (डॉक्टर), प्रो० (प्रोफ़ेसर), रु० (रुपया), पै० (पैसे), भू० (भूतपूर्व), स्व० (स्वर्गीय) (आ) उदा० (उदाहरणार्थ), एल० डी० सी० (लोअर डिवीज़न क्लर्क), यू० डी० सी० (अपर डिवीज़न क्लर्क), बी० एस० एफ़० (बॉर्डर सीक्योरिटी फ़ोर्स), डी० एस० पी० (डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट ऑफ़ पुलिस), उ० प्र० (उत्तर प्रदेश), आं० प्र० (आन्ध्र प्रदेश), हि० प्र० (हिमाचल प्रदेश), यू० एस० ए० (यूनाइटेड स्टेट ऑफ़ अमेरिका), यू० के० (यूनाइटेड किंगडम), एफ़० आर० जी० (फ़ेडरल रिपब्लिक ऑफ़ जर्मन), यू० एन० ओ० (यूनाइटेड नेशन्स ऑर्गेनाइज़ेशन), एन० सी० सी० (नेशनल कैडिट कोर), एल० टी० सी० (लीव ट्रेवल कन्सेशन), आई० ए० एस० (इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस), सी० ए० (चार्टेड एकाउन्टेन्ट), पी० एम० (प्राइम मिनिस्टर), जी० एम० (जनरल मैनेजर), टी० सी० (ट्रान्सफ़र सर्टीफ़िकेट), एस० एल० सी० (स्कूल लीविंग सर्टीफ़िकेट), एम० ए० (मास्टर ऑफ़ आर्ट्स), एम० एस-सी० (मास्टर ऑफ़ साइंस), एम० लिट० (मास्टर ऑफ़ लैटर्स/लिटरेचर), बी० ए० (बैचलर ऑफ़ आर्ट्स), बी० एस-सी० (बैचलर ऑफ़ साइंस), पी-एच० डी०/डी० फ़िल० (डॉक्टर ऑफ़ फ़िलोसफ़ी), डी० लिट० (डॉक्टर ऑफ लैटर्स/ लिटरेचर), एल० आई० सी० (लाइफ़ इंश्योरेंस कॉर्पोरेशन), डी० डी० ए० (दिल्ली डवलपमेन्ट अथॉरिटी), दि० न० नि० (दिल्ली नगर निगम)।

(घ) **प्रथमाक्षरी शब्द/प्रश**—हिन्दी में प्रचलित कुछ प्रश हैं—नभाटा (नवभारत टाइम्स), राउप (राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद्), भालोद (भारतीय लोकदल), भाक्रांद (भारतीय क्रांति दल), संसोपा (संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी), जद (जनता दल), मिधानि (मिश्र धातु निगम), दिननि (दिल्ली नगर निगम)। यूनेस्को, यूनिसेफ़, नाटो, सीटो, भेल (Bhel), बेल (Bel), इम्पा (Impa), इकार (Icar), इक्रिसैट (Icrisat) अँगरेज़ी से आगत, अनुकरण पर बने प्रश हैं।

13
शब्द-रूपान्तरण

भाषा के शब्द-समूह/शब्द कोश के अनेकानेक सार्थक शब्दों में वाक्य-प्रयोग योग्यता नहीं होती। वाक्यों में प्रयोग करने से पूर्व उन में सन्दर्भ तथा वाक्य-संरचना के अनुरूप कुछ-न-कुछ परिवर्तन करना पड़ता है। वांछित अर्थ-सूचनार्थ वाक्य-संरचना के अनुरूप शब्दों में किया जानेवाला परिवर्तन **'शब्द-रूपान्तरण'** कहलाता है। वाक्य में प्रयुक्त कोशीय शब्दों को पारिभाषिक शब्दावली में **पद** कहा जाता है। शब्दों से पद बनाने की प्रक्रिया को **पदविचार** या **रूपविचार** कहा जाता है। विभक्तियों/सम्बन्ध तत्त्वों के योग से वाक्य में प्रयोगार्ह शब्दों में प्रयोग-योग्यता आती है अर्थात् उन में परस्पर **अन्वय** हो सकता है। अन्वय के अभाव में वाक्य की सार्थकता अस्पष्ट या अधूरी रह जाती है।

पद-रचना के लिए मुख्यतः **प्रकृति/अर्थ तत्त्व** तथा **प्रत्यय (रचना तत्त्व/विकारक तत्त्व/परिचालक तत्त्व)** की आवश्यकता होती है, यथा—लम्बा लड़का नाच रहा है; लम्बी लड़की नाच रही है; लम्बे लड़के नाच रहे हैं; लम्बी लड़कियाँ नाच रही हैं। इन वाक्यों में 'लम्बा, लम्बी, लम्बे' एक कोशीय शब्द के रूपान्तर हैं। इसी प्रकार 'लड़का, लड़की, लड़के, लड़कियाँ', 'रहा, रही, रहे', 'है, हैं' शब्द-रूपों/पदों के बारे में कहा जा सकता है।

प्रत्येक वाक्य में मूलतः दो तत्त्व होते हैं—1. प्रधान तत्त्व 2. गौण तत्त्व। प्रधान तत्त्व को **अर्थ तत्त्व** और गौण तत्त्व को **सम्बन्ध तत्त्व** कहा जाता है। **गौण** तत्त्व/सम्बन्ध तत्त्व का कार्य है—वाक्य में विभिन्न अर्थ तत्त्वों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना, यथा—शकुन्तला ने दुष्यन्त को पत्र लिखा। इस वाक्य में 'शकुन्तला, दुष्यन्त, पत्र, लिख (ना)' अर्थ तत्त्वों को 'ने, को-आ' सम्बन्ध तत्त्व परस्पर अन्वय योग्य बना रहे हैं।

वाक्यों में आए सभी शब्दों के रूपान्तर की प्रक्रिया समान नहीं हुआ करती। वाक्य में प्रयुक्त कुछ शब्द रूपान्तरशील होते हैं और कुछ रूपान्तर रहित। वाक्य-प्रयोग या रूप-परिवर्तन की दृष्टि से जो शब्द वर्ग रूपान्तरशील होते हैं, उन्हें **विकारी** शब्द कहा जाता है, अर्थात् 'लिंग, वचन, कारक, पुरुष, काल' आदि के कारण जिन

शब्दों में रूपपरिवर्तन या विकार होता है, उन्हें विकारी शब्द कहते हैं। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया विकारी शब्दों के शब्द **वर्ग** हैं। वाक्य-प्रयोग या रूप-परिवर्तन की दृष्टि से जो शब्द रूपान्तरशील नहीं होते, उन्हें **अविकारी** शब्द कहा जाता है, अर्थात् लिंग, वचन, कारक, पुरुष, काल आदि के कारण जिन शब्दों में रूप-परिवर्तन या विकार नहीं होता, उन्हें अविकारी शब्द कहते हैं। अविकारी शब्दों को अव्यय (जिन का व्यय नहीं होता, अर्थात् जो बिना किसी घट-बढ़ के ज्यों के त्यों बने रहते हैं) भी कहते हैं।

शब्द-रूपान्तरण/रूपविचार/पदविचार वैयाकरणों की दृष्टि से व्याकरण शास्त्र का मुख्य विषय है। कुछ विद्वानों ने व्याकरण को ऐसा शास्त्र माना है जो शब्दों के रूपों और प्रयोगों को निरूपित करता है। ध्वनि और शब्द-निर्माण उन की दृष्टि में व्याकरण से भिन्न विषय हैं।

विकारी शब्दों में दो प्रकार का विकार सम्भव है—1. आन्तरिक विकार 2. बाह्य विकार। शब्द/प्रकृति के अन्तर्गत होनेवाला ध्वनिगत विकार **आन्तरिक विकार** कहा जाता है, यथा—लड़का-लड़के-लड़को-लड़कों, लड़की-लड़कियाँ-लड़कियों-लड़कियो; मैं-मुझ-मुझे-मुझी-मेरा-मेरी-मेरे; हम-हमें-हमीं-हमारा-हमारा-हमारी आदि। शब्द/प्रकृति के अन्तर्गत कोई ध्वनिगत विकार न हो कर उस के साथ जुड़नेवाले तत्त्व में जो विकार होता है, उसे **बाह्य विकार** कहते हैं, यथा—श्याम (ने/को/से/में/पर आदि), लाऊँ-लाता-लाया-लाए-ला (चुका/रहा/सकता था—है होगा आदि)।

हिन्दी में प्राप्त सम्बन्ध तत्त्वों के ये रूप प्राप्त हैं—1. **पद-स्थान**—कुछ सामासिक शब्दों में पद-स्थान के परिवर्तन से सम्बन्ध तत्त्व और शब्दार्थ में अन्तर आ जाता है, यथा—**ग्राममल्ल**=**गाँव** का पहलवान, मल्लग्राम=पहलवानों का **गाँव**, धनपति=धन-स्वामी/कुबेर, पतिधन=पति का धन; सदनराज=गृहराज/बहुत बड़ा तथा सुन्दर घर, राजसदन=राजमहल। कभी-कभी शब्द-स्थान परिवर्तन से पद का व्याकरणिक कार्य परिवर्तित हो जाता है, यथा—**दाल** उफन रही है (कर्ता), मैं **दाल** बना रही हूँ (कर्म) 2. **शब्द मूल-रूप/शून्य योग**—कभी-कभी शब्दों को मूल रूप में रखते हुए या शब्द में शून्य योग से सम्बन्ध तत्त्व का काम लिया जाता है, यथा—तू **आ**; **घर** गिर पड़े; **लाल** साड़ियाँ; **हम** कहाँ हैं? **इन** वाक्यों में काले टाइप के पदों में शून्य योग से विभिन्न सम्बन्ध तत्त्वों (प्रत्यक्ष विधि, एकवचन, मध्यम पुरुष; बहुवचन, पुल्लिंग, कर्ता; बहुवचन, स्त्रीलिंग; कर्ता, बहुवचन, उत्तमपुरुष) का बोध कराया गया है। 3. **संबंध तत्त्व सूचक शब्द/शब्दांश**—'ने, को, से……, -आ-/ई/-ए, -ता/-ती-ते' आदि विभिन्न सम्बन्ध तत्त्व सूचक शब्द/शब्दांश हैं। 4. **ध्वनि-प्रतिस्थापन**—पद-प्रयोग के समय मूल शब्द की कुछ ध्वनियाँ (स्वर, व्यंजन, स्वर-व्यंजन) के प्रतिस्थापन से सम्बन्ध तत्त्व का कार्य सम्पन्न होता है, यथा—जा→गया; पुत्र→पौत्र; चाचा→चाची आदि। 5. **सुर**—काकु वक्रोक्ति, बलाघात से सम्बन्ध तत्त्व

का काम लिया जाता है, यथा—हौं सुकुमार नाथ बन जोगू !, वे जा रहे हैं ! वे जा रहे हैं ? वे जा रहे हैं !; √जा—जा (आज्ञा) √लिख—लिख (आदेश)।

हिन्दी पदों में अर्थतत्त्व और सम्बन्ध तत्त्व का अस्तित्व इन रूपों में प्राप्त है—(क) **पूर्ण संयोग**—अर्थ तत्त्व में सम्बन्ध तत्त्व का अस्तित्व पूर्णतः समीकृत हो जाता है, यथा—शून्य संबंध तत्त्व तथा सुर संबंध तत्त्व का अर्थ तत्त्व में समीकृत होना (ख) **अपूर्ण संयोग**—अर्थ तत्त्व और संबंध तत्त्व का अस्तित्व संयोग होने पर भी तिलतंडुलवत्/चावल-दाल मिश्रण के समान रहता है, यथा—जानता (जान+-ता), जाऊँगा (जा+-ऊँगा), लड़कों (लड़क्+-ओं) (ग) **अयोग**—अर्थतत्त्व और संबंध तत्त्व स्थान की दृष्टि से समीप होते हुए अयुक्त रहते हैं, यथा—लड़के ने, साँप को, लाठी से।

भाव-विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य से ही सम्भव होती है, किन्तु व्यवहार में अधिकतर वाक्य श्रोता या पाठक के अनेक तत्संबंधित प्रश्नों/जिज्ञासाओं का समाधान नहीं कर पाते। श्रोता या पाठक स्थूल रूप से संदर्भापेक्षी थोड़ा-बहुत अर्थ समझ कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। सम्बन्ध तत्त्व भाषा में अभिव्यंजना संबंधी सूक्ष्मता तथा निश्चयात्मकता उत्पन्न करते हैं। विकारी शब्दों में व्याकरणिक अर्थ/विशेषता द्योतन व्याकरणिक कोटियों से होता है। लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल, वृत्ति आदि व्याकरणिक कोटियों/विकारक तत्त्वों से यह सूक्ष्मता तथा निश्चयात्मकता लाने का प्रयास किया जाता है। हिन्दी के विकारी शब्दों में व्याकरणिक कोटियों के अनुरूप परिवर्तन/विकार होते हैं। रूप परिवर्तन के माध्यम से व्याकरणिक अर्थ प्रकट करनेवाला तत्त्व **व्याकरणिक कोटि** कहलाता है। हिन्दी भाषा में **व्याकरणिक कोटियों के ये रूप प्राप्त हैं**—

1. **लिंग**—लिंग शब्द का शाब्दिक अर्थ है—चिह्न, जिस से किसी चीज़ को पहचाना जाता है। लिंग संज्ञा शब्दों में निहित कोटि है जो अव्यक्त रहती है। संज्ञा शब्द के लिंग का ज्ञान उस की विशेषता या क्रिया की अन्विति से होता है। विशेषण तथा क्रिया में यह बिम्बित कोटि है। लिंग एक व्याकरणिक व्यवस्था का नाम है। इसी से मिलता-जुलता एक शब्द है 'यौन', जो प्रकृति या लोक में वर्तमान प्राणियों में नर-मादा का सूचक है। सभी भाषाएँ प्राकृतिक/लौकिक लिंग या यौन-व्यवस्था का शत-प्रतिशत अनुगमन नहीं करतीं, यथा—माता-पिता, स्त्री-पुरुष, गाय-बैल, लड़का-लड़की आदि शब्द प्राकृतिक लिंग/यौन-व्यवस्था के सूचक हैं, साथ ही व्याकरणिक लिंग-व्यवस्था के भी, किन्तु कान-नाक, पेट-पीठ, मुँह-मूँछ, स्तन-छाती, ग्रन्थ-पुस्तक आदि शब्द केवल व्याकरणिक लिंग-व्यवस्था के सूचक हैं। इन में प्राकृतिक या लौकिक लिंग/यौन-व्यवस्था का अभाव है। संस्कृत भाषा में पत्नीवाची शब्द सदैव स्त्रीलिंग में नहीं होते, यथा—दारा (पुल्लिंग), भार्या (स्त्रीलिंग) कलत्र (नपुंसकलिंग)। अँगरेज़ी में Sun (पुल्लिंग), Moon (स्त्रीलिंग) है। रूसी भाषा में चन्द्रमा

का सूचक शब्द 'लूना' स्त्रीलिंग है, सूर्य का सूचक शब्द 'सोन्त्से' नपुंसकलिंग है। कन्नड में 'बच्चा' शब्द नपुंसकलिंग है। अफ्रीका की चेचेन भाषा में छह लिंगों का विधान है।

व्याकरणिक लिंग का कोई तर्कसंगत आधार नहीं होता। किसी भाषा में लिंग-व्यवस्था का आधार 'नर-मादा' है, किसी में 'सचेतन-अचेतन', किसी में "श्रेष्ठता-हीनता" और किसी में इन का मिला-जुला रूप। हिन्दी में लिंग-व्यवस्था न तो पूर्ण रूप से व्याकरणिक (शब्दान्त रूप पर आधारित) है और न पूर्ण रूप से तार्किक (शब्द-अर्थ पर आधारित)। यह व्यक्त कोटि भी नहीं है, अर्थात् कुछ शब्दों में शब्द-रूप से लिंग का स्पष्ट बोध नहीं होता। हिन्दी में लिंग-व्यवस्था का पदबन्ध तथा वाक्य-स्तर पर व्याकरणिक अन्विति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया शब्दों की अन्विति लिंग-व्यवस्था के अनुसार रहती है, यथा—**थैला** फट **गया—थैली** फट **गई**। कल **मैं** घर में ही **थी**—कल मैं घर में ही था। **काला घोड़ा—काली घोड़ी**।

यथार्थ या कल्पित पुरुष/नर जाति के बोधक शब्द **पुल्लिग** माने जाते हैं, यथा—बच्चा, साँड़, नगर, वृक्ष। यथार्थ या कल्पित स्त्री/मादा जाति के बोधक शब्द **स्त्रीलिंग** माने जाते हैं, यथा—बच्ची, गाय, नगरी, लता। हिन्दी में लिंग संज्ञा तथा सर्वनाम की निहित कोटि है और विशेषण तथा क्रिया की बिम्बित। हिन्दी संज्ञा शब्दों में लिंग अव्यक्त रहता है, व्यक्त नहीं। हिन्दी में लिंग विभाजक कोटि का काम करता है, अर्थात् या तो शब्द पुल्लिग में होगा या स्त्रीलिंग में। हिन्दी में लिंग-सूचना सामान्यतः दो तरीकों से मिलती है—1. प्रत्यय-योग से 2. तत्संबंधी स्वतन्त्र शब्द अस्तित्व से, यथा—हिरन→हिरनी, बाघ→बाघिन, कुत्ता→कुतिया (प्रत्यय-योग); चतुर **पुरुष**—चतुर **स्त्री**, सुन्दर **राजा**—सुन्दर **रानी**, कागज़ जल **गए** हैं—कापियाँ जल **गई** हैं।

हिन्दी संज्ञा शब्दों के लिंग का बोध उपर्युक्त तरीकों से हो सकता है, किन्तु सर्वनाम शब्दों के लिंग निर्णय के लिए सन्दर्भ ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है, यथा—**श्याम** आया (**वह** आया), **गीता** आई (**वह** आई)। हिन्दी में संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया शब्दों में '-आ, -ई' लिंग कोटि के सूचक प्रमुख रूप-साधक प्रत्यय हैं, यथा—मेरा काला घोड़ा **दौड़ा था**—मेरी काली घोड़ी **दौड़ी थी**। हिन्दी में पदबन्ध स्तर तथा वाक्य स्तर पर पदों में लिंग-अन्विति का रहना अपरिहार्य है, यथा—लम्बे काले बालों**वाली लड़की**—लम्बे काले बालोंवाली **लड़की** नाच **रही** हैं। लम्बे काले बालों**वाला लड़का**—लम्बे काले बालोंवाला **लड़का** नाच **रहा** है।

हिन्दी में अर्थ की दृष्टि से लिंग-व्यवस्था दो रूपों में दृष्टिगत होती है—(1) केवल पुल्लिग/स्त्रीलिंग शब्द, यथा—पिता-माता, बैल-गाय, मोर-मोरनी, नद-नदी (2) दोनों लिंगों के जीवों को समाहित कर लेनेवाले केवल पुल्लिग/स्त्रीलिंग

शब्द (जो नर/मादा शब्द के साथ **निर्लिंगी** हो जाते हैं), यथा— कौए काँव-काँव कर रहे हैं (=केवल नर या केवल मादा या नर और मादा दोनों); कोयलें कुहू-कुहू कर रही हैं (=केवल नर या केवल मादा या नर और मादा दोनों)। पेड़ पर एक मादा कौआ है=पिंजड़े में एक नर कोयल है (कौआ, कोयल निर्लिंग सूचक है)। जड़ वस्तुओं के सन्दर्भ में हिन्दी के कुछ लिंग-प्रत्यय लिंग-भेद के साथ-साथ आकार की लघुता भी प्रकट करते हैं, यथा— रस्सा-रस्सी, लोटा-लुटिया, ताल-तलैया। कुछ प्रत्यय केवल आकार-लघुता ही प्रकट करते हैं, यथा—गठरी-गठरिया, खाट-खटिया, डिब्बी-डिबिया, बेटी-बिटिया।

2. **वचन**—लौकिक/प्राकृतिक व्यवस्था की संख्या-व्यवस्था का बोध व्याकरण में वचन-व्यवस्था से होता है। कुछ पुल्लिंग शब्दों को छोड़ कर अन्य संज्ञा शब्दों में वचन व्यक्त तथा निहित कोटि है। वचन क्रिया रूपों में भी बिम्बित होता है। संख्याओं के अनेक भेद हैं, किन्तु व्याकरण में वचन-व्यवस्था एक, अनेक के भेद पर आधारित है। एक के बोधन के लिए **एकवचन** और अनेक के बोधन के लिए **बहुवचन** की स्वीकृति है। संस्कृत, लिथुआनी में **द्विवचन** की भी स्वीकृति है। वचन-व्यवस्था लौकिक संख्या-व्यवस्था का सदैव शत-प्रतिशत अनुगमन नहीं करती। संख्या की दृष्टि से किसी समूह में अनेक व्यक्ति या वस्तुएँ होने पर भी समूहवाची शब्द एकवचन होते हैं, यथा—चाबियों का **गुच्छा** कहाँ है? पुलिस के डर से **भीड़** भागी जा रही है। 'जातौ एकवचनम्' नियम के अनुसार व्यक्ति/वस्तु की अनेकता होने पर भी जातिगत एकत्व के कारण एकवचन का ही प्रयोग किया जाता है, यथा—**कुत्ता** स्वामिभक्त होता है। **मनुष्य** सब से अधिक बुद्धिमान प्राणी है। इन वाक्यों में प्रयुक्त 'कुत्ता, मनुष्य' सभी कुत्तों (कुत्ता-जाति), मनुष्यों (मनुष्य-जाति) के बोधक होने के कारण एकवचन में प्रयुक्त हैं। संस्कृत में बीस से ऊपर के संख्यावाची शब्द एकवचन-रूपवाले होते हैं। संस्कृत में ही 'एक, दो, तीन, चार' तक के शब्द तीनों लिंगों में प्रयुक्त होते हैं, आगे यह लिंग-व्यवस्था-भेद भी समाप्त हो जाता है। संस्कृत में एक पत्नी का सूचक शब्द 'दाराः' रूप की दृष्टि से बहुवचन है। हिन्दी में 'लोग, दर्शन, होश, प्राण, समाचार, भाग्य, हस्ताक्षर' शब्द बहुत्व की भावना के कारण नित्य बहुवचन हैं। ख़ून-पसीना, पसीने-पसीने की भाँति आँसू की ताक़त, आँसू आ गए— एकवचन, बहुवचन में प्रयुक्त हैं।

हिन्दी संज्ञा और सर्वनाम में वचन व्यक्त कोटि है तथा विशेषण और क्रिया में बिम्बित। हिन्दी में वचन विस्तारक कोटि है अर्थात् प्रायः सभी संज्ञा शब्द कभी एकवचन में और कभी उस से व्युत्पन्न बहुवचन में व्यवहार में आते हैं। हिन्दी में आदर भाव के कारण एकार्थी एकवचन के स्थान पर आदरार्थी बहुवचन का प्रयोग करते हैं, यथा—**दोस्त**, इस समय **तुम** कहाँ जा रहे हो? हिन्दी में बहुवचन-व्यवस्था

दो रूपों में देखी जा सकती है—(क) +एक से अधिक—आदर (यथा—लड़कियाँ तैर रही हैं) (ख) +आदर+एक (यथा—राष्ट्रपति जा रहे हैं)।

हिन्दी में वचन-व्यवस्था का प्रभाव पदबन्ध तथा वाक्य-स्तर पर पड़ता है। हिन्दी में बहुवचन सर्वनाम शब्द प्रायः स्वतन्त्र शब्द हैं, किन्तु संज्ञा, विशेषण, क्रिया शब्दों में कुछ प्रत्यय (-ए, -एँ, -ईं आदि) जोड़ कर बहुवचन की सूचना दी जाती है, यथा—मैं-हम, किस-किन (सर्वनाम); छोटा बच्चा इधर बैठ सकता है—छोटे बच्चे इधर बैठ सकते हैं। छोटी बच्ची उधर सो सकती है—छोटी बच्चियाँ उधर सो सकती हैं।

3. **पुरुष**—कथ्य का कोई वक्ता (/लेखक), श्रोता (/पाठक) और विषय हुआ करता है। इस आधार पर सर्वनामों में व्याकरणिक पुरुष कोटि का अस्तित्व स्वीकार किया गया है, यथा—वक्ता—उत्तम पुरुष (अँगरेज़ी के अनुसार प्रथम पुरुष), श्रोता—मध्यम पुरुष (अँगरेज़ी के अनुसार द्वितीय पुरुष), विषय—अन्य पुरुष (अँगरेज़ी के अनुसार तृतीय पुरुष)। सभी संज्ञाएँ अन्य पुरुष की होती हैं क्योंकि सभी संज्ञाएँ वक्ता और श्रोता के मध्य विषय बनती हैं। सामान्यतः संज्ञा शब्दों के सम्बन्ध में पुरुष-कोटि की चर्चा नहीं की जाती। पुरुष की कोटि विशेषण में बिम्बित नहीं होती क्योंकि सामान्यतः सर्वनामों के विशेषण नहीं होते। पुरुष लिंग की भाँति विभाजक कोटि है। पुरुष तथा वचन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुरुष का क्रिया से परोक्ष सम्बन्ध है। पुरुष और वचन की संयुक्तता वाक्य स्तर पर कुछ क्रिया रूपों में स्पष्ट देखी जा सकती है, यथा—

मैं हूँ (-ऊँ)—उ० पु० एक०	हम हैं/हम लोग हैं (-एँ)—उ० पु० बहु०
तू है (-ऐ)—म० पु० एक०	तुम हो/तुम लोग हो (-ओ)—म० पु० बहु०
वह है (-ऐ)—अ० पु० एक०	वे हैं/वे लोग हैं (-एँ)—अ० पु० बहु०
	आप हैं/आप लोग हैं (-एँ)—म० पु० बहु० आदरार्थ

4. **कारक**—$\sqrt{}$कृ से निष्पन्न कारक शब्द का शाब्दिक अर्थ है—करनेवाला। व्याकरण में विभिन्न साधनों से क्रिया-निष्पादक को कारक कहा जाता है। संस्कृत भाषा में संज्ञा और क्रिया के मध्य रहनेवाला सम्बन्ध कारक कहलाता है। हिन्दी भाषा में वाक्यान्तर्गत संज्ञा/सर्वनाम पदों का पारस्परिक एवं क्रिया के मध्य का सम्बन्ध कारक कहा जाता है। विभिन्न भाषाओं में कारकों की संख्या भिन्न-भिन्न है, यथा—जर्मन में चार—कर्ता, कर्म, सम्प्रदान, संबंध; ग्रीक में पाँच—करण, अपादान, संबंध, अधिकरण, संबोधन; लैटिन में छह—कर्ता, कर्म, सम्प्रदान, अपादान, संबंध, संबोधन; रूसी में छह—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, संबंध, परसर्गीय; संस्कृत में छह—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण ; हिन्दी, कई

भारतीय भाषाओं में आठ—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, संबोधन।

कारक संज्ञा और सर्वनाम की व्यक्त कोटि है और विशेषणों की बिम्बित। कारक की अन्विति वाक्यांश के भीतर होती है। यह कोटि क्रिया वाक्यांश में बिम्बित नहीं होती। यह प्रकार्य बोधक एक व्याकरणिक कोटि है। वाक्य में शब्दों/पदों के मध्य उभरने/बननेवाला सम्बन्ध कारक कहा जाता है। वाक्य में आए नाम पद क्या कार्य कर रहे हैं—इस का प्रत्यक्षीकरण कारक से होता है। अर्थ/सम्बन्ध/प्रकार्य की दृष्टि से कारकों की संख्या आठ से भी अधिक हो सकती है। शब्दों के रूप-परिवर्तन और प्रयोगगत विशेषताओं को दिखाने की दृष्टि से कारकों की संकल्पना उपयोगी है। क्रिया से प्रत्यक्षतः संबंध कर्ता (क्रिया का करनेवाला), कर्म (क्रिया-व्यापार का परिणामी/फल-आधार), करण (क्रिया सम्पादन का साधन), अधिकरण (क्रिया-व्यापार सम्पादन का स्थल, समय) से है। सम्प्रदान (क्रिया-व्यापार सम्पादन का हेतु/फल भोक्ता, प्राप्त कर्ता), अपादान (क्रिया-स्थान/समय से अलगाव) से क्रिया का परोक्षतः सम्बन्ध है। संबंध कारक क्रिया के अतिरिक्त वाक्य के किसी अन्य पद से सम्बद्ध होता है। संबोधन कारक किसी को पुकारने या चेताने की (प्रक्रिया की) सूचना देता है। कारकों को सूचित करनेवाले चिह्नों को संस्कृत में विभक्ति (दो कारकों को विभक्त करनेवाला रूप) कहते हैं। हिन्दी में कारक-चिह्नों के लिए परसर्ग शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। कारकों के साथ लिंग, वचन की कोटियाँ सम्पृक्त रूप में रहती हैं। रूप-प्रक्रिया के आधार पर हिन्दी में तीन प्रकार से रूप परिवर्तित होते हैं—1. प्रत्यक्ष (/सरल/मूल/ऋजु) रूप विभक्ति या परसर्ग या कारक-चिह्न-रहित होते हैं 2. परोक्ष (/तिर्यक्) रूप विभक्ति या परसर्ग या कारक चिह्न सहित होते हैं 3. संबोधन रूप में केवल संबोधन तत्त्व रहता है।

कारक-अध्ययन तीन दृष्टियों से किया जा सकता है—1. अर्थ/प्रकार्य-दृष्टि 2. रूप रचना-दृष्टि 3. संकेत व्यवस्था-दृष्टि। अर्थ या प्रकार्य की दृष्टि से कारकों की संख्या आठ मानी जाती रही है। रूप रचना की दृष्टि से कारकों की संख्या तीन कही जा सकती है। संकेत व्यवस्था (वाक्य-घटकों के पारस्परिक संबंध को व्यक्त करनेवाले तत्त्व) की दृष्टि से कारक-संकेत मुख्यतः दो वर्गों में रखे जा सकते हैं—1. संश्लिष्ट विभक्ति 2. विश्लिष्ट विभक्ति। विश्लिष्ट विभक्ति को परसर्ग (मय परसर्गीय शब्दावली) कह सकते हैं।

5. **वृत्ति**—क्रिया-व्यापार के साथ वक्ता की मानसिकता/अभिवृत्ति वृत्ति-व्यवस्था का विषय है। वक्ता के किसी कथन में आज्ञा, आदेश, अनुरोध, चेतावनी, इच्छा, निश्चय, संदेह, सम्भावना, अनुमान, संकेत/शर्त, शक्यता आदि में से किसी एक का भाव पाया जा सकता है। वृत्ति क्रिया-वाक्यांश की व्यक्त

तथा विस्तारक कोटि है। इसे कुछ लोग अर्थ और कुछ लोग प्रकार या प्रयोग भी कहते हैं।

6. **पक्ष**—क्रिया-व्यवस्था के प्रति वक्ता के मन में अवस्थित पूर्णता (फल-प्रधानता) या अपूर्णता (क्रिया व्यापार-प्रधानता) की भावना का सम्बन्ध पक्ष कोटि से है। पक्ष का बोधन रंजक, सहायक क्रियाओं से प्रमुख रूप से होता है। यह क्रिया वाक्यांश की व्यक्त तथा विस्तारक कोटि है। हिन्दी में मुख्यत: दो पक्ष हैं—1. पूर्ण पक्ष 2. अपूर्ण पक्ष। अपूर्ण पक्ष की नौ दशाएँ हो सकती हैं—आरम्भ, आरम्भपूर्व, घटमान, अभ्यास, नित्यता, अवस्थिति, वर्धमान, समाप्ति, वीप्सा।

7. **काल**—व्याकरणिक काल-व्यवस्था और प्राकृतिक/लौकिक काल या समय-संकल्पना में पर्याप्त अन्तर है। लोक में केवल वर्तमान समय का क्षणिक अस्तित्व होता है। भाषायी व्यवहार में गत्यात्मक घटना-अनुक्रम बोध 'काल' है। घटनाओं के अनुक्रम बोध का क्षण प्रतीति-बिन्दु/**वर्तमान** कहलाता है। इस प्रतीति-बिन्दु से पूर्व घटित घटनाओं के अनुक्रम-बोध को वक्ता स्मृति, अनुभव के आधार पर **भूतकाल** में व्यक्त करता है। भाषा-व्यवहार में भूत 'स्मृत-अनुभूत घटना-अनुक्रम' है। प्रतीति-बिन्दु के पश्चात् घटनीय घटनाओं के अनुक्रम-बोध को वक्ता प्रत्याशा या संभावित दृष्टि से भविष्य काल में व्यक्त करता है। भाषा-व्यवहार में **भविष्य** 'प्रत्याशित घटना-अनुक्रम' है। क्रिया-व्यापार या घटनाओं और प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति क्रियापद से होती है, अतः काल का सम्बन्ध क्रियापद की रूप-प्रक्रिया से है। क्रिया-निष्पत्ति के क्षणों के आधार पर हिन्दी में तीन काल माने जाते हैं— 1. भूत 2. वर्तमान 3. भविष्य। संस्कृत और रूसी भाषा में क्रिया के काल भेद का आधार 'पक्ष' है। काल क्रिया वाक्यांश की व्यक्त तथा विस्तारक कोटि है।

8. **वाच्य**—वाक्य-संरचना की दृष्टि से वाच्य-व्यवस्था पर विचार किया जाता है। वाच्य में यह देखा जाता है कि क्रिया-व्यापार की दृष्टि से वाक्य में कर्ता की प्रधानता है, या कर्म की या केवल भाव/कार्य की। प्रधानता के आधार पर कर्तृवाच्य तथा कर्तेतर वाच्य माने जाते हैं। कर्तेतर वाच्य को पुन: तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—कर्मवाच्य, भाववाच्य, निर्वाच्य। कुछ लोग वाच्य को व्याकरणिक कोटियों में गणनीय नहीं मानते। वे इसे वाक्य रचना-प्रक्रिया के तत्त्वों/पक्षों (चयन, शब्दक्रम, अन्विति, नियमन, अनुतान) के साथ छठा तत्त्व मानते हैं। इस दृष्टि से भी वाच्य शब्द-रूपान्तरण का एक आधार है। भाषावैज्ञानिक नाइडा 1945) के अनुसार संसार की भाषाओं में 20 व्याकरणिक कोटियाँ हैं। उन्हों ने वाच्य, प्रेरणार्थक को भी व्याकरणिक कोटि कहा है।

भाषा-व्यवहार में प्रयुक्त अर्थ तत्त्व और सम्बन्ध तत्त्व के सूचक शब्दों/शब्दांशों को **वाक् भाग/वाग्भाग** कहते हैं। विकारी वाग्भाग चार हैं—संज्ञा, सर्वनाम,

विशेषण क्रिया। अविकारी वाग्भागों को 'अव्यय' अपने में समेट लेते हैं। अव्यय कई प्रकार के हैं—क्रियाविशेषण, समुच्चयबोधक, संबंधबोधक विस्मयादिबोधक, निपात आदि। उपर्युक्त सभी व्याकरणिक कोटियों पर संबंधित वाग्भागों की चर्चा करते समय विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

हिन्दी के संज्ञा शब्दों में तीन—लिंग, वचन, कारक; सर्वनामों में चार—लिंग, वचन, पुरुष, कारक; क्रियाओं में आठ—लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल, पक्ष, वृत्ति, वाच्य कोटियाँ प्राप्त हैं। विशेषण संज्ञा की कोटियों को ही बिम्बित करता है।

14
संज्ञा

संज्ञा—लोक में वर्तमान या कल्पित किसी भी प्राणी, पदार्थ, स्थान, गुण, भाव या कर्म के बोधक विकारी शब्द **संज्ञा** कहलाते हैं। भाषाओं में संज्ञा शब्द असंख्य होते हैं तथा सम्बन्धित भाषायी समाज की गतिविधियों के साथ घटते-बढ़ते रहते हैं। जीवित भाषाएँ अन्य भाषाओं के सम्पर्क में आने पर संज्ञा शब्दों को सरलता से और अधिक संख्या में ग्रहण करती हैं। बच्चा सबसे पहले संज्ञा शब्द ही बोलना सीखता है।

संस्कृत-व्याकरण में 'नाम' शब्द के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण की गणना की गई है। यद्यपि इन तीनों का सीमा-क्षेत्र लगभग समान है, तथापि तीनों में विशेष अन्तर होने के कारण तीन अलग-अलग शब्द हैं। सर्वनाम संज्ञा के स्थान पर आ सकता है किन्तु सम्बोधन के रूप में नहीं। संज्ञा, सर्वनाम की रूपावली के प्रत्यय अलग-अलग हैं। कुछ विशेषणों के संज्ञावत् प्रयोग सम्भव हैं, किन्तु विशेषणों की भाँति किसी संज्ञा के पूर्व 'अधिक, कम' जैसे प्रविशेषक (विशेषण का विशेषण) नहीं लग सकते। संज्ञा शब्द 'वस्तुत्व' अर्थ के बोधक होते हैं। व्याकरणिक दृष्टि से संज्ञा में लिंग, वचन, कारक और प्राणिवाचकता/अप्राणिवाचकता का अस्तित्व रहता है। संज्ञा शब्द एक रूप रचनात्मक प्रणाली के अनुसार बदलते हैं। वाक्य में ये मुख्यतः उद्देश्य तथा कर्म के रूप में आते हैं। प्रसंगशः इन के कुछ अन्य वाक्यगत प्रकार्य भी देखे जा सकते हैं।

संज्ञा-वर्गीकरण के सात आधार माने जाते हैं—1. स्रोत 2. संरचना 3. तत्त्व-बोधन 4. गणना 5. प्राणत्व 6. प्रकार्य 7. सम्बद्धता।

1. **शब्द-स्रोत की दृष्टि से** संज्ञा शब्दों को तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशी आदि वर्गों में बाँटा जा सकता है। (इन वर्गों के अनेक संज्ञा शब्द अध्याय 10 'शब्द-व्युत्पत्ति' में बताए जा चुके हैं)

2. **शब्द-संरचना की दृष्टि से** संज्ञा शब्दों को रूढ़ (/सरल/मूल), यौगिक (/व्युत्पन्न/उपसर्ग, प्रत्यययुक्त), समस्त (/सामासिक/ समासज) वर्गों में बाँटा जा सकता है। (इन वर्गों के अनेक संज्ञा शब्द अध्याय 12 'शब्द-रचना' में बताए जा चुके हैं।)

3. **तत्त्व-बोधन की दृष्टि से** संज्ञा शब्दों के दो मुख्य वर्ग हो सकते हैं—(क) पदार्थबोधक (ख) भावबोधक। किसी जड़ या चेतन पदार्थ/पदार्थ-समूह के बोधक शब्द **पदार्थबोधक संज्ञा** कहलाते हैं, यथा—रमेश, रानी, बकरा, कुर्सी, कलकत्ता, पानी, कक्षा, सेना आदि। पदार्थबोधक संज्ञाओं के दो वर्ग हो सकते हैं—(अ) व्यक्तिवाचक (आ) जातिवाचक; जातिवाचक संज्ञा शब्दों के अन्तर्गत (क) द्रव्य-बोधक, (ख) समुदायबोधक शब्दों का भी समावेश हो जाता है। इस प्रकार पदार्थ-वाचक संज्ञाओं के चार उपभेद हो जाते हैं—(i) व्यक्तिवाचक, (ii) जातिवाचक (iii) समूहवाचक (iv) द्रव्यवाचक। अतः तत्त्वबोधन की दृष्टि से संज्ञा शब्दों के पांच भेद किए जा सकते हैं—(क) व्यक्तिवाचक (ख) जातिवाचक (ग) भाववाचक (घ) द्रव्यवाचक (ङ) समूहवाचक। तत्त्वबोधन के स्थान पर कुछ लोगों ने इस वर्गीकरण को 'अर्थ' आधार कहा है, किन्तु यहाँ 'अर्थ' शब्द भ्रामक है।

(क) किसी प्राणी (व्यक्ति या पशु आदि), पदार्थ, देश, परिघटना आदि के विशिष्ट (व्यक्तिगत) नाम के द्योतक संज्ञा शब्द **व्यक्तिवाचक** कहलाते हैं, यथा—राजीव, सीता, किट्टी, शेरू, इलाहाबाद, रामायण, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, गंगा, चिलका आदि। व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्द एकवचन-सूचक होता है। यदि प्रयोग में व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्द बहुवचन का सूचक हो, तो वह जातिवाचक संज्ञा शब्द बन जाता है, क्योंकि उस समय उस से उस व्यक्ति/पदार्थ विशेष का बोध नहीं होता, वरन् उस के विशिष्ट धर्म/गुण आदि का बोध होता है, यथा—'कलियुग में भी **हरिश्चन्द्रों** की कमी नहीं है। प्राचीन काल से ही **विभीषणों** और **मीरजाफ़रों** से देश का अहित होता रहा है।' यहाँ काले टाइप में मुद्रित शब्दों का अर्थ क्रमशः है—सत्यवादियों, देशद्रोहियों, विश्वासघातियों। इसी प्रकार 'रावण, भीम, लक्ष्मी' आदि शब्दों का जातिवाचक संज्ञा के अर्थ में प्रयोग सम्भव है।

व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्द अपने बोधक पदार्थादि का किसी विशेष गुण/लक्षण का बोध नहीं कराते, यथा—'मद्रास, सतपुड़ा, सुन्दरलाल'। इन पदार्थादि को समाज कोई अन्य नाम भी दे सकता है/था। दिशाओं के नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा हैं, जिन के नामों में विकल्प मिलता है, यथा—पूर्व > पूरब, पश्चिम > पच्छिम, उत्तर, दक्षिण/दक्खिन। उर्दू में इन्हें क्रमशः 'मशरिक, मग़रिव/मग़रब, शुमाल, जनूब' कहते हैं। -ई जोड़ कर इन से व्यक्तिवाचक विशेषण बनते हैं। 'छोर, किनारा' से पहले उत्तरी या पश्चिमी आदि शब्द रखे जा सकते हैं किन्तु 'दिशा' से पहले उत्तर या पश्चिम शब्द ही जोड़ा जाता है। दाक्षिणात्य (=दक्षिणी), पाश्चात्य (=पश्चिमी) विशेषण शब्द हैं। दो दिशाओं के मध्य की दिशाओं के नाम हैं—उत्तर-पूर्व, उत्तर-पश्चिम, दक्षिण-पूर्व, दक्षिण-पश्चिम, पूर्वोत्तर, पश्चिमोत्तर, ईशान, नैर्ऋत/नैऋत, अग्निकोण, वायव्य। विक्रम संवत् के अनुसार महीनों के नाम हैं—चैत < चैत्र, बैसाख < वैशाख, जेठ < जेष्ठ, असाढ़ < आषाढ़, सावन < श्रावण, भादों

<भाद्रपद, क्वार<(आश्विन), कातिक<कार्तिक, अगहन<अग्रहायण (मार्गशीर्ष), पूस<पौष, माह/माघ<माघ, फागुन<फाल्गुन। अँगरेज़ी महीनों के हिन्दी में प्रचलित रूप हैं—जनवरी, फ़रवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर। सप्ताह/हफ़्ते के दिनों के नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा हैं, जिन के नामों में विकल्प मिलता है, यथा—रविवार/इतवार/भानुवार, सोमवार/चन्द्रवार, मंगलवार/भौमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार/गुरुवार/वीरवार, शुक्रवार, शनिवार/शनिश्चर/शनीचर/सनीचर। बोलचाल में इन्हें 'रवि सोम, मंगल, बुध, गुरु/बृहस्पति, शुक्र, शनि' कहते हैं। 'भानुवार, वीरवार, भौमवार' शब्द कम प्रचलित हैं। उर्दू में अरबी-फ़ारसी से आगत ये शब्द प्रचलित हैं—इतवार, पीर, मंगल/शेशंबा (<शंबा = दिन), चहार शंबा, जुमेरात, जुमा/जुम्मा, हफ़्ता। अरबी से आगत ये शब्द उर्दू साहित्य तक ही सीमित हैं—योम (=दिन) -उल- (=का) अहद (=रवि/इत), इस्नैन, सलासा, अरब आ, खमीस, जुमअ, सब्त। इन के पूर्व 'योम-उल' जुड़ता है।

(ख) प्राणियों, पदार्थों, परिघटनाओं, लक्षणों, अवस्थाओं आदि के सर्वसामान्य (जातिगत) नाम के द्योतक संज्ञा शब्द **जातिवाचक** कहलाते हैं, यथा—मनुष्य, औरत, नगर, कुत्ता, पुस्तक, संस्था, नदी, झील आदि। इसी प्रकार की अन्य अनेक चीज़ों के सूचक शब्द मूर्तवाचक/जातिवाचक संज्ञा कहलाते हैं। जब कभी कोई जातिवाचक संज्ञा शब्द एक विशिष्ट व्यक्ति या पदार्थ का बोध कराता है तब वह शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा बन जाता है, यथा—**गांधी** (=मोहनदास करमचंद गांधी) राष्ट्रपिता थे। मैं कल **पुरी** (=जगन्नाथ पुरी) जा रहा हूँ। गुरुद्वारे में **ग्रन्थ** (=गुरु ग्रन्थ साहब)-सेवा की जाती है। यहाँ काले टाइप के शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा हैं। इसी प्रकार 'देवी, दाऊ, संवत्, भारतेन्दु, गुसाईं' आदि शब्दों का व्यक्तिवाचक संज्ञा (दुर्गा, बलदेव, विक्रम, बाबू हरिश्चन्द्र, तुलसीदास) के अर्थ में प्रयोग सम्भव है। जातिवाचक संज्ञा शब्द अपने बोधक पदार्थादि के किसी गुण/लक्षण का बोध कराते हैं; यथा—'गाय, नगर, पशु, मनुष्य' आदि। इन पदार्थादि को समाज अब अन्य नाम नहीं दे सकता।

(ग) जिन संज्ञा शब्दों से अनेक वस्तुओं या प्राणियों के समूह का समग्र रूप में बोध होता है, उसे **समूहवाचक संज्ञा** कहा जाता है, यथा—गुच्छा, झुंड, परिवार, भीड़, संघ, सेना आदि। ये शब्द सजातीय वस्तुओं के समूह को एक इकाई के रूप में व्यक्त करते हैं। समूहवाचक संज्ञा जातिवाचक संज्ञा का ही एक उपभेद है। कुटुम्ब, सभा, दल आदि अलग-अलग प्राणियों/पदार्थों को नहीं कहा जा सकता।

(घ) जिन संज्ञा शब्दों से ऐसे अगणनीय पदार्थों का बोध हो जिन का परिमाण (माप, तोल) हो सकता है, उन्हें **द्रव्यवाचक/पदार्थवाचक** संज्ञा कहा जाता है, यथा—आटा, अन्न, घास, घी, दाल, जल, ताँबा, लोहा, सोना आदि। सामान्यत: द्रव्यों के अलग-

अलग खंड नहीं होते; खंड किए जाने पर उन खंडों को अलग-अलग नाम नहीं दिया जा सकता। द्रव्यवाचक संज्ञा को 'उपादानवाचक संज्ञा' भी कहा जाता है। द्रव्यवाचक संज्ञा शब्दों के बोधक पदार्थों से प्रायः दूसरी वस्तुएँ बनती हैं। द्रव्यवाचक संज्ञा जातिवाचक संज्ञा का ही एक उपभेद है। द्रव्यवाचक संज्ञा शब्द एकवचन के सूचक होते हैं। जब कभी कोई द्रव्यवाचक संज्ञा शब्द बहुवचन के रूप में किसी द्रव्य के प्रकारों का बोध कराता है, तब वह शब्द जातिवाचक संज्ञा बन जाता है, यथा—यह मेज़ चार प्रकार की **लकड़ियों** से बनी है। लगता है इस ग्लास में कई **शराबें** मिला दी गई हैं। यहाँ काले टाइप के शब्द जातिवाचक संज्ञा हैं।

(ङ) जिन संज्ञा शब्दों से (पदार्थादि में पाए जानेवाले अगणनीय) भाव/अवधारणा/दशा/अवस्था/धर्म/गुण या कार्य-व्यापार का बोध होता है, उन्हें **भाववाचक संज्ञा/अमूर्त संज्ञा** कहते हैं, यथा—क्रोध, हर्ष, शैशव, बुढ़ापा, धैर्य, वीरता, चौड़ाई, लंबाई, ऊँचाई, लिखाई, बुनावट, सिलाई, सुन्दरता, भद्दापन आदि। भाववाचक संज्ञा शब्दों से बोधक तत्त्वों/बातों की मन/हृदय से अनुभूति होती है, उस का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। प्रत्येक पदार्थ कुछ विशेष धर्मों (विशेषताओं) के मेल से बना हुआ तत्त्व है। प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक पदार्थ के समस्त धर्मों से सुपरिचित नहीं हो पाता, किन्तु उस के कम से कम एक धर्म से अवश्य परिचित होता है। पदार्थ का धर्म पदार्थ से अलग कर के अनुभूत नहीं किया जा सकता। जब कभी भाववाचक संज्ञा शब्दों से बहुवचन का बोध होता है, तब वे शब्द जातिवाचक संज्ञा कहलाते हैं, यथा—कल मुहल्ले में कई चोरियाँ हो गईं। भारत में तरह-तरह के **पहनावे** प्रचलित हैं। **बुराइयों** से बचना सीखो। यहाँ काले टाइप के शब्द जातिवाचक संज्ञा हैं।

भाव का यहाँ व्यापक अर्थ है—(क) **धर्म-गुण** आदि (यथा—गर्मी, शीतलता, मधुरता, धैर्य, बुद्धिमानी, क्रोध आदि), (ख) **अवस्था** आदि (यथा—पीड़ा, दरिद्रता, नींद, स्वच्छता, बीमारी, उजाला, अंधकार आदि), (ग) **क्रिया-व्यापार** आदि (यथा—भजन, दान, प्रार्थना, चढ़ाई, बहाव, दौड़, चाल, पढ़ना, सोचना, हँसना, रोना, बोलचाल आदि)। √बच > बचाव (पु०), बचत (स्त्री०)। शुरू > शुरूआत/शुरुआत; शुरू में (=आरम्भ में) यथा—नौकरी के शुरू में/आरम्भ के दिनों में; फिर से शुरू/आरम्भ करो; झगड़े/लड़ाई की शुरूआत। विशेषण—प्रारम्भिक समय—शुरू का वक़्त; आरम्भिक स्थिति—आरम्भ की स्थिति—शुरू की हालत। शुरुआत शुरू के पूर्व का आरम्भिक बिन्दु है और शुरू परवर्ती।

कुछ **भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण चार प्रकार के शब्दों से** होता है—1. क्रिया शब्दों से, यथा—काटना→काट, मारना→मार, छटपटाना→छटपटाहट; √कृ→कार्य, कृति, क्रिया; √मुह→मोह; √वंच→वंचना; चलना→चाल, चलन; चढ़ना→चढ़ाई 2. जातिवाचक संज्ञा शब्दों से, यथा—राजा→राज्य, पंडित→पंडिताई, मुनि→मौन, मनुष्य→मनुष्यता, मनुष्यत्व; बच्चा→बचपन 3. विशेषण

शब्दों से, यथा—मीठा→मिठास, पीला→पीलापन; भला→भलाई; धीर→धैर्य; लघु→लघिमा, लघुता; कड़ुआ→कड़ुआहट; कठोर→कठोरता; गर्म—गर्मी; चतुर—चतुराई 4. सर्वनाम शब्दों से, यथा—अहं—अहंकार, मम—ममता, ममत्व; अपना—अपनापन; आप—आपा। भाववाचक संज्ञा शब्दों में से अनेक शब्द '-ई, -त्व, -ता, -पन, -पा, -वट, -हट, -सा, -न्त' से युक्त होते हैं।

कुछ व्याकरणों में एक छठा भेद '**क्रियावाचक संज्ञा**' या **संज्ञार्थक क्रिया/क्रियार्थक संज्ञा**' भी माना गया है। वास्तव में इस भेद से व्यक्त संज्ञार्थी शब्दों (यथा—उस का यहाँ **आना**; सेब **काटने** की कला) का समावेश भाववाचक संज्ञा शब्दों में हो जाता है।

4. गणना के आधार पर संज्ञाओं के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं—(अ) गण्य/गणनीय (आ) अगणनीय/गणनेतर/गण्येतर। (अ) **गणनीय संज्ञाएँ** वे शब्द हैं जो गिने जा सकनेवाले प्राणियों या पदार्थों के बोधक होते हैं, यथा—पुस्तक, बच्चा, धोती, कुर्सी, कुत्ता आदि। इन के साथ संख्यावाची शब्दों का प्रयोग हो सकता है। इन संज्ञाओं के रूप वचन के अनुसार बदलते हैं। गणनीय संज्ञाओं का उत्तर 'कितने/कितनी' प्रश्न से मिलता है, यथा—कितनी किताबें? (एक किताब; चार किताबें), कितने थैले? (एक थैला; दो थैले) आदि। जातिवाचक संज्ञाएँ गणनीय संज्ञाएँ हैं। गणनीय संज्ञाएँ एकवचन तथा बहुवचन में प्रयुक्त हो सकती हैं, यथा—आशा-आशाएँ, विचार में-विचारों में। (आ) **अगणनीय संज्ञाएँ** वे शब्द हैं जो न गिने जा सकनेवाले पदार्थों, भावादि के बोधक होते हैं, यथा – भीड़, तेल, आनन्द, यौवन, प्रेम, प्यार आदि। अगणनीय संज्ञाओं का उत्तर 'कितना/कितनी' प्रश्न से मिलता है, यथा—कितना दूध? (एक लीटर/चार लीटर दूध), कितनी शर्म? (बहुत/ज़रा-सी शर्म) आदि। समूहवाचक, द्रव्यवाचक, भाववाचक संज्ञाएँ अगणनीय संज्ञाएँ हैं। अगणनीय संज्ञाएँ केवल एकवचन में होती हैं। सामान्यतः इन संज्ञा शब्दों के साथ संख्यावाची शब्दों का प्रयोग नहीं होता। कभी-कभी कुछ पदार्थवाचक तथा भाववाचक का बहुवचन में भी प्रयोग होता है, यथा—दिल की गहराइयों से; शांति की शक्तियों ने; तेज़ शराबों से।

5. प्राणत्व के आधार पर संज्ञाओं के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं—(क) **प्राणिवाचक** (ख) **अप्राणिवाचक**। **प्राणिवाचक** वे संज्ञा शब्द हैं जिन से विभिन्न प्राणियों के नामादि की सूचना मिलती है, यथा—महेश, लड़की, पक्षी, पतंगा आदि। **अप्राणिवाचक** वे संज्ञा शब्द हैं जिन से प्राणियों से भिन्न वास्तविक, कल्पित पदार्थादि के नाम, वंश, प्रकार, स्वरूप आदि के बारे में सूचना मिलती है, यथा—मैसूर, दिल्ली, कामायनी, गोदान, आम, संतरा, गेहूँ, बाजरा, प्रेम, दया, क्षमा, आशा, विचार, स्वीकृति भेंट आदि प्राणिवाचक संज्ञाओं को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(i) मानववाची (ii) मानवेतरवाची। (i) **मानववाची** वे प्राणिवाचक संज्ञा शब्द हैं जिन से पुरुष या स्त्री के नाम, वंश, वर्ग या जाति के बारे में सूचना मिलती है, यथा—वसुदेव, देवकी,

दशरथ, कौशल्या, मनुष्य, स्त्री, हिन्दू, ईसाई आदि। (ii) **मानवेतरवाची वे** प्राणि-वाचक संज्ञा शब्द हैं जिन से मानवों से भिन्न अन्य प्राणियों के नाम, वंश, वर्ग या जाति आदि के बारे में सूचना मिलती है, यथा—पप्पी, जॉन, भूरा, पूसी (पालतू कुत्ते-बिल्लियों के नाम); कुत्ता, गाय, बुलबुल, चींटा, मक्खी आदि।

प्राणिवाचक संज्ञाएँ संकेतक/विशेषक के बिना आने पर भी कर्म के प्रकार्य में नियमित विकारी कारक के रूप में प्रयुक्त होती हैं, यथा—हम वहाँ **बकरियों** का झुंड देख रहे हैं। अप्राणिवाचक संज्ञाएँ संकेतक/विशेषक के साथ आने पर भी प्रधान कर्म के प्रकार्य में अविकारी कारक के रूप में प्रयुक्त होती हैं, यथा—हमारा बेटा यह **दूध नहीं** पीएगा।

हिन्दी भाषा में व्यक्ति (पुरुष/स्त्री) के सामाजिक रिश्ते कई प्रकार के होते हैं। रिश्तों के सूचक ये शब्द प्रायः निदर्शनात्मक/संकेतक (Referencial) होते हैं। कुछ शब्द संबोधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं। कुछ प्रतिनिधि स्वजन शब्दों के लिए बोलियों/संस्कृत/उर्दू/अँगरेज़ी के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है, यथा—**पिता** (बाप, वालिद, अब्बा, पापा), (बड़ी) **बहन** (दीदी, जीजी, भगिनी, सहोदरी, आपा, सिस्टर), **जीजा** (बहनोई), **साला** (निस्बती बिरादर), **पोता** (पौत्र), **नाती** (दौहित्र, नवासा)। चचेरा/ममेरा/फुफेरा भाई (/बहन) के अतिरिक्त कभी-कभी सगा/धर्म/मुँहबोला भाई (/बहन) का प्रयोग भी मिलता है। सभी बड़े भाइयों की पत्नियों को 'भाभी', सभी बड़ी बहनों के (छोटी बहनों के भी) पतियों को 'जीजा, बहनोई' कहते हैं। अपने से छोटे सभी भाइयों, भानजों, भतीजों की पत्नियों को 'बहू' कहते हैं।

6. **प्रकार्य के आधार पर** संज्ञा शब्द वाक्य में 'कर्ता, कर्म, पूरक, संबोधन' के रूप में आ सकते हैं। संज्ञा पदबन्ध में ये शब्द अक्ष/शीर्ष/केन्द्रीय घटक या संबंधी विशेषक के रूप में आ सकते हैं, यथा—**बच्चों** ने अभी तक ताजमहल नहीं देखा है। (कर्ता); कल बच्चियों ने जी भर **मिठाई** खाई थी। (कर्म); अकबर ने कुछ दिनों के लिए फ़तेहपुरसीकरी को अपनी **राजधानी** बनाया था (पूरक); **दोस्तो**, हमें इस मसले पर गहराई से सोचना है। (संबोधन); कोई घोषणा करने से पूर्व हम अपनी-अपनी **जेबें** देख लें। (अक्ष स्थान); अब हमें अपनी छोटी **बेटी** की शादी कर देनी चाहिए। (संबंधी विशेषक)।

7. **सम्बद्धता के आधार पर** वाक्य के अन्य पदों के साथ **प्रयोग-योग्यता की दृष्टि से** संज्ञा शब्दों के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं, यथा—(क) विशेषण सम्बद्ध (ख) क्रिया सम्बद्ध। (क) **विशेषण सम्बद्ध वे** संज्ञा शब्द हैं जो किसी विशेष विशेषण शब्द के साथ सम्बद्ध होने की प्रयोग-योग्यतावाले होते हैं, यथा—काला वस्त्र (/आदमी/मुँह/साँप/चोर/नमक/पानी/बादल) आदि। (ख) **क्रिया सम्बद्ध वे** संज्ञा शब्द हैं जो किसी विशेष क्रिया शब्द के साथ सम्बद्ध होने की प्रयोग-योग्यतावाले

होते हैं । विभिन्न क्रिया शब्दों के साथ प्रयोग हो सकने या न हो सकने की योग्यता रखने वाले संज्ञा शब्दों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—(i) सहज प्रयोज्य (ii) आरोपित प्रयोज्य (iii) अप्रयोज्य । (i) **सहज प्रयोज्य वे** संज्ञा शब्द हैं जो विभिन्न क्रियाओं के व्यापार वैशिष्ट्य के आधार पर लोक में सहज/सामान्य रूप से प्रयुक्त हो सकते हैं, जैसे—'खाना' के साथ विविध खाद्य पदार्थ, यथा—रोटी, भात, तम्बाकू, पान, मिठाई, सब्ज़ी, फल, मांस आदि सहज प्रयोज्य हैं । इसी प्रकार 'पहनना' के साथ विविध धारणीय पदार्थ, यथा—वस्त्र, आभूषण, जूते, मुखौटा, पदक आदि; 'सोना' के साथ स्वभावतः सोनेवाले प्राणियों के बोधक शब्द, यथा—बच्चा, महिला, गाय, शेर, बाज, साँप आदि । 'चलना' के साथ गतिशील पदार्थवाची शब्द, यथा—बच्चा, लड़की, गाय, बकरा, गिद्ध, इंजन, मोटर आदि । (ii) **आरोपित प्रयोज्य** वे संज्ञा शब्द हैं जो विभिन्न क्रियाओं के व्यापार वैशिष्ट्य के आधार पर लोक में विशेष रूप से सन्दर्भ, आवश्यकता के अनुसार आरोपित प्रयोज्य होते हैं, जैसे—'खाना' के साथ विविध असामान्य खाद्य पदार्थ, यथा—मल, ब्लेड, कंकड़-पत्थर, पत्ता, कागज़, सिर, जूता, लात-घूँसा, घूस, कमीशन, दलाली आदि । 'पहनना' के साथ विविध असामान्य धारणीय पदार्थ, यथा—मुंडमाल, जूतों की माला, कागज़, वल्कल आदि । 'सोना' के साथ असामान्य प्राणरोपित शब्द, यथा—पैर, पुष्पकली, दुनिया, नदी, जंगल, चक्की आदि । 'चलना' के साथ असामान्य गतिशील पदार्थवाची शब्द, यथा—नल, रिश्वत, पेट रेल, बस, गाड़ी, मन, लेन-देन, तीर, गोली, लाठी, पत्ता, मोहरा, गोट आदि । (iii) **अप्रयोज्य वे** संज्ञा शब्द हैं जो विभिन्न क्रियाओं के व्यापार वैशिष्ट्य के आधार पर भाषा में व्यवहार में नहीं लाए जाते, जैसे—'खाना' क्रिया के साथ विविध अखाद्य पदार्थों के बोधक शब्द, यथा—आसमान, पहाड़, स्टोव, पंखा, बचपन आदि; 'पहनना' क्रिया के साथ विविध अधारणीय पदार्थ, यथा—पेन्सिल, मेज़, चूल्हा, रोटी, नाश्ता आदि । 'सोना' क्रिया के साथ अप्राणिवाचक शब्द, जैसे—श्यामपट, चॉक, कपड़ा, पुस्तक, तेल आदि । 'चलना' क्रिया के साथ गतिहीन पदार्थसूचक, यथा—मकान, पहाड़, तेल, चित्र, क्रोध आदि ।

संज्ञा शब्दों का रूपान्तरण—संज्ञा शब्दों का रूपान्तरण एक मिश्रित व्याकरणिक संरचना है । प्रत्येक संज्ञा पद का नाभि अंश पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग प्रातिपदिक होता है जिस में वचन-प्रत्यय तथा कारक-सूचक प्रत्यय/विभक्ति का योग होता है । इस प्रकार संज्ञा की तीन व्याकरणिक कोटियाँ हैं—1. लिंग, 2. वचन, 3. कारक । संज्ञा शब्दों का लिंग एक आन्तरिक या अन्तर्निहित व्याकरणिक कोटि है । पुल्लिंग या स्त्रीलिंग प्रत्येक संज्ञा प्रातिपदिक से प्रसंग-निरपेक्ष रूप में सदैव जुड़ा हुआ रहता है । कोई संज्ञा प्रातिपदिक किस लिंग में है—इस का निर्णय रूढ़ या लोक-प्रयोग से होता है । लिंग-ज्ञान हेतु जन-प्रयोग, शब्द-कोश और अभ्यास की

आवश्यकता है। संज्ञा शब्दों के रूपान्तरण में उन के कोशीय तथा व्याकरणिक/सन्दर्भीय पक्ष का प्रभाव पड़ता है। कोशीय दृष्टि से वक्ता/लेखक शब्द-चयन में स्वतन्त्र है किन्तु उस शब्द का लिंग, रूप/आकार स्वतः निर्धारित रहता है। संस्कृत संज्ञा शब्दों की भाँति ही शब्द की अंतिम ध्वनि के स्वरूप के अनुरूप संज्ञा शब्दों का रूपान्तरण होता है, किन्तु हिन्दी में रूपतालिका की दृष्टि से संज्ञा शब्दों के केवल 4 उपवर्ग हैं—उपवर्ग 1. (आकारान्त पुंल्लिग वर्ग, यथा—बेटा आदि शब्द), उपवर्ग 2. (अविकारी आकारांत तथा शेष पुंल्लिग शब्द, यथा—बालक आदि शब्द), उपवर्ग 3. (इ/ई/याकारान्त स्त्रीलिंग शब्द, यथा—बेटी आदि शब्द), उपवर्ग 4. (शेष स्त्रीलिंग शब्द, यथा—बालिका आदि शब्द)। इन उपवर्गों के अन्तर्गत आनेवाले कुछ शब्द ये हैं—**उपवर्ग 1 के अन्तर्गत आनेवाले कुछ शब्द**—बेटा, लड़का, घोड़ा, बकरा, मुर्ग़ा, कमरा, थैला, साया, नाला, साला, रोआँ। **उपवर्ग 2 के अन्तर्गत आनेवाले कुछ शब्द**—बालक, मनुष्य, पुरुष, सिंह, रीछ, घर, जहाज़, हाथी, भाई, दही, पानी, घी, आदमी, माली, बहनोई, मुनि, पति, गुरु, भानु; साधु, डाकू, आलू, चौबे, दुबे, गेहूँ, जौ, कोदों, रासो। **उपवर्ग 3 के अन्तर्गत आनेवाले कुछ शब्द**—बेटी, लड़की, घोड़ी, बकरी, मुर्ग़ी कोठी, नाली, नदी, भाभी, साली, शक्ति, मति, बुद्धि, जाति, हानि, रीति, चिड़िया, गुड़िया, डिबिया, बुढ़िया फुड़िया। **उपवर्ग 4 के अन्तर्गत आनेवाले कुछ शब्द**—बालिका, पुस्तक, किताब, मेज़, बस, परात, बहन, चम्मच, तस्वीर, चप्पल, छाँह, माला, शोभा, सभा, हवा, प्रार्थना, घटना, रसना, छाया, धेनु, धातु, लू, बालू, जूँ, बहू, साड़ू, गौ, सरसों। **उपवर्ग 1 के ये अपवाद शब्द उपवर्ग 2 में गणनीय हैं**—पिता, योद्धा, देवता, राजा, विधाता, महात्मा, वक्ता, नेता, भ्राता, दाता, परमात्मा, विजेता, श्रोता, विक्रेता, अभिनेता, कर्ता, ब्रह्मा, गुणा, नाना, दादा, काका, चाचा, मामा, बाबा, दादा, जीजा, फूफा, बाप-दादा, पापा, अगुआ, मुखिया, अँखुआ, पुरखा, लाला, समस्त व्यक्तिवाचक नाम, यथा—एशिया, अफ्रीका, अमेरिका, न्याग्रा, आस्ट्रेलिया, जिनेवा, कनाडा; गयाना/गाइना, ल्हासा, पटना (पटने जाना = पटना शहर को जाना/प्रेम में फँसने जाना), गया, अयोध्या, मथुरा, आगरा, दरभंगा, अगरतला, रावतपाड़ा, कोटला, वज़ीरपुरा, द्वारका, अवंतिका, गौंडा, वर्धा, गोलकुंडा, विजयवाड़ा, गुलबर्गा, बड़ौदा; अब्बा, मुल्ला, अल्ला, मौला, आक़ा, मियाँ, दादरा, अल्फ़ा, गामा, बीटा आदि।

हिन्दी में संज्ञा शब्दों की रूपावली इन तीन कारक-रूपों से बनती है—1. अविकारी 2. विकारी 3. संबोधन। अविकारी को मूल/सरल/ऋजु भी कहते हैं और विकारी को तिर्यक्।

	उपवर्ग—1 'बेटा' वर्ग		**उपवर्ग—2 'बालक' वर्ग**	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
ऋजु—	बेटा (∅)	बेटे (-ए)	बालक (∅)	बालक (∅)

तिर्यक्—	बेटे ने (-ए)	बेटों ने (-ओं)	बालक से (∅)	बालकों से (-ओं)
संबोधन—	बेटे ! (-ए)	बेटो ! (-ओ)	बालक ! (∅)	बालको ! (-ओ)

कोष्ठक बद्ध सुप्-प्रत्यय वचन तथा विभक्ति के संमिश्रित प्रत्यय हैं जिन में से वचन, विभक्ति के अंश को अलग कर पाना दुःसाध्य है ।

	उपवर्ग—3 'बेटी' वर्ग		उपवर्ग—4 'बालिका' वर्ग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
ऋजु—	बेटी (∅)	बेटियाँ (-आँ)	बालिका (∅)	बालिकाएँ (-एँ)
तिर्यक्—	बेटी को (∅)	बेटियों को (-ओं)	बालिका का (∅)	बालिकाओं का (-ओं)
संबोधन—	बेटी ! (∅)	बेटियो ! (-ओ)	बालिका ! (∅)	बालिकाओ ! (-ओ)

'बाप-दादे, बाप-दादों, राजे-महाराजे' रूप कुछ विशिष्ट प्रसंगों में ही विरल प्रयुक्त है । उपवर्ग—2 के ईकारान्त, उकारान्त शब्दों में-ओं जुड़ने से पूर्व ई>इ, ऊ>उ हो जाता है । इ- -ओं/-ओ/-आँ के मध्य उच्चारण-सुविधा के लिए -य- का आगम हो जाता है, यथा—हाथियों, डाकुओं ।

उपर्युक्त चारों उपवर्गों के ऋजु, तिर्यक्, सम्बोधन शब्द-रूप अलग-अलग इतने होते हैं—बेटा, बेटे, बेटों, बेटो (4); बालक, बालकों, बालको (3), बेटी, बेटियाँ, बेटियों; बेटियो (4), बालिका, बालिकाएँ, बालिकाओं, बालिकाओ (4)

व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों के सामान्यतः तिर्यक् रूप नहीं बनते । -वाला/-बाज़/-दान/-दानी से युक्त बने संयुक्त शब्दों का मूल शब्द तिर्यक् रूप में आता है, यथा—कपड़ा, चना, मसख़रा, चूना, कूड़ा→कपड़ेवाला, चनेवाला, मसख़रेबाज़ (नख़रेबाज़), कूड़ेदान, चूनेदानी ; छापाख़ाना+में = छापेख़ाने में

संज्ञा शब्दों की लिंग-व्यवस्था—हिन्दी संज्ञा शब्दों के लिंग विधान पर संज्ञा शब्दों के वर्ग-विभाजन का प्रभाव देखा जा सकता है । संज्ञाएँ चेतन (मानव, मानवेतर), जड़ (पदार्थ—भौतिक, अपदार्थ—भाव-विचारादि) वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं । मानवेतर को उच्चवर्गीय, निम्नवर्गीय चेतन प्राणियों में विभक्त कर सकते हैं । हिन्दी में सभी संज्ञाओं (व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, समूहवाचक, द्रव्यवाचक, भाववाचक) के शब्द पुल्लिंग या स्त्रीलिंग में होते हैं, यथा—**पुल्लिंग शब्द**—मदनमोहन, रैदास, महादेव, नागपुर; कौआ, मच्छर, टोप, भवन; बंडल, कुटुंब, गिरोह, झुंड, गुच्छा; स्वर्ण, तेल, दूध, अनाज; शैशव, बुढ़ापा, क्रोध, उत्तर, लोभ, जाना, झगड़ना आदि । **स्त्रीलिंग शब्द**—राधा, मीरा, लक्ष्मीबाई, जगन्नाथ पुरी; मछली, मुर्ग़ी, सड़क, साड़ी; सेना, कक्षा, सभा, टोली, मंडली; धातु, चाँदी, मिट्टी, गिट्टी, चाय; हँसी, इच्छा, मुस्कराहट, मूर्खता, बुद्धिमानी, थकान, सूचना, सेवा, करनी ।

प्राणिवाचक संज्ञा शब्दों में कुछ शब्द **नित्य पुल्लिंग** होते हैं—पक्षी, उल्लू, नेवला, कौआ, भेड़िया, मेमना, चीता, कछुआ, भुनगा, पतंगा, खटमल, केंचुआ, तोता, मच्छर, चींटा । इन का स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'मादा' शब्द जोड़ा जाता है,

यथा—मादा उल्लू, मादा चीता। प्राणिवाचक संज्ञा शब्दों में कुछ शब्द **नित्य स्त्रीलिंग** होते हैं—कोयल, मैना, चील, मछली, जोंक, बटेर, गिलहरी, मकड़ी, मक्खी, तितली, दीमक, चींटी, गिलहरी। इन का पुल्लिंग बनाने के लिए 'नर' शब्द जोड़ा जाता है, यथा—नर कोयल, नर तितली। कुछ प्राणिवाचक स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द केवल स्त्रियों के विशिष्ट धर्म के सूचक होते हैं, अतः उन के पुल्लिंग शब्द नहीं होते, यथा—अप्सरा, अहिवाती<अभिवाद (सौभाग्यवती स्त्री), गर्भवती, गाभिन, चुड़ैल, डायन, धाय, सुहागिन, सौत। हिन्दी में कुछ शब्दों को स्पष्टतः पुल्लिंग या स्त्रीलिंग का नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये शब्द दोनों लिंगों में व्यवहृत हैं, अतः इन्हें **उभयलिंगी शब्द** कहना उचित रहेगा, यथा—मन्त्री, सचिव, डॉक्टर, राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, इंजीनियर, वकील, जज, इंस्पेक्टर, कलाकार आदि पद-सूचक तथा व्यवसाय बोधक शब्द, जैसे—हमारे मन्त्री/राष्ट्रपति/डॉक्टर—हमारी मन्त्री/राष्ट्रपति/डॉक्टर।

हिन्दी में संज्ञा शब्दों के लिंग की अभिव्यक्ति दो स्तरों पर होती है—(i) रूपप्रक्रियात्मक स्तर पर (अर्थात् संज्ञा के बहुवचन रूप द्वारा), यथा—इस कमरे में तीन **दरवाज़े** और चार **खिड़कियाँ** हैं (-ए पुं० अन्त्य प्रत्यय;—आँ स्त्री० अन्त्य प्रत्यय) (ii) वाक्य स्तर पर विकारी विशेषण, क्रमवाची संख्या शब्द, सर्वनाम, कृदन्त, क्रिया के पुरुषनियत रूप, परसर्ग 'का', सादृश्यवाचक '-सा/-जैसा' की तत्संबंधी संज्ञा से (लिंग संबंधी) अन्विति होती है, यथा—यह **बड़ा** कमरा है; यह **तीसरा** भवन है; वह **मेरा** दोस्त है; शैतान हँस **रहा था**; नौकरानी **आएगी**; सोने **की** जंजीर पहन कर मत जाओ; ये काजू कुछ **कड़वे-से** हैं।

अप्राणिवाचक संज्ञा शब्दों के लिंग-बोध का कोई व्यापक तथा सिद्ध नियम नहीं है। एक ही तत्त्व के बोधक भिन्न-भिन्न संज्ञा शब्दों में कुछ शब्द पुल्लिग होते हैं, कुछ शब्द स्त्रीलिंग, जैसे—नेत्र (पुं०)—आँख (स्त्री०), मार्ग (पुं०)—बाट (स्त्री०)। इसी प्रकार समान ध्वनि से अन्त होनेवाले भिन्न-भिन्न संज्ञा शब्दों में कुछ शब्द पुल्लिग होते हैं, कुछ शब्द स्त्रीलिंग, यथा - कोदों (पुं०)—सरसों (स्त्री०)। **अप्राणिवाचक संज्ञा शब्दों के लिंग-निर्णय के अव्यापक तथा अपूर्ण कुछ नियम** दो आधारों पर बनाए गए हैं—(i) तत्त्व बोधन (ii) शब्दान्त रूप। तत्त्व बोधन को कई व्याकरणों में 'अर्थ' लिखा है जो तार्किक दृष्टि से भ्रामक है। शब्दान्त को कई व्याकरणों में 'रूप' लिखा है जो तार्किक दृष्टि से भ्रामक आधार ही कहा जाएगा। प्राणिवाचक अनेक शब्दों का लिंग-निर्णय भी प्रायः तत्त्व-बोधन आधार पर होता है। प्राणिवाचक जोड़ों में पुरुषबोधक संज्ञा शब्द पुल्लिग में, स्त्रीबोधक संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग में होते हैं, यथा—लड़का, बकरा, मोर (पुं०), लड़की, बकरी मोरनी (स्त्री०)। संतान, सवारी नित्य स्त्रीलिंग हैं। प्राणियों के समुदायवाचक कुछ शब्द व्यवहार के अनुसार पुं० या स्त्री० में होते हैं—परिवार, समुदाय, कुटुंब, समूह, संघ, दल, मंडल

(पुं०); सभा, प्रजा, सरकार, टोली, फ़ौज, भीड़ (स्त्री०)। मानववर्गीय संज्ञा शब्दों का लिंग लैंगिकता/यौन पर आधारित है।

तत्त्व-बोधन की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार के संज्ञा शब्द **पुंल्लिंग** होते हैं। लगभग प्रत्येक वर्ग के कुछ अपवाद शब्द हैं—

(क) धातु वर्ग—लोहा, सोना, ताँबा, पीतल, सीसा, काँसा, पारा, रूपा, टिन, राँगा (चाँदी, धातु, मिट्टी, सिलवर स्त्री०)

(ख) रत्न वर्ग—हीरा, मोती, मूँगा, माणिक, नीलम, पन्ना (पन्नी, मणि स्त्री०)

(ग) भोजन वर्ग—पराठा, भात, रायता, पूआ, रसगुल्ला, लड्डू, पेड़ा, हलवा/हलुआ, समोसा, मोहनभोग, फल, (रोटी-दाल, पूड़ी, कचौड़ी, खीर, सब्ज़ी, तरकारी, मेवा, मिठाई, जलेबी, इमरती, गुलाबजामुन, खिचड़ी, कढ़ी स्त्री०)

(घ) धान्य वर्ग—गेहूँ, जौ, चना, धान, चावल, बाजरा, उड़द, तिल (मक्का, अरहर, ज्वार, मूँग, मसूर, मटर स्त्री०)

(ङ) द्रव वर्ग—घी, पानी, तेल, सिरका, इत्र, दूध, दही, शर्बत, मही/मट्ठा आसव (छाछ, स्याही, मसि स्त्री०)

(च) जल-थल वर्ग—द्वीप, पहाड़, पर्वत, हिमालय, विन्ध्याचल, सतपुड़ा, अरावली, समुद्र, सरोवर, सागर, अरब सागर (नदी, झील, घाटी, पहाड़ी स्त्री०)

(छ) वृक्ष वर्ग—अशोक, नीम, बबूल, पीपल, बरगद, गूलर, शीशम, सागौन, कदम्ब (मौलसिरी, कचनार स्त्री०)

(ज) देश-प्रदेश वर्ग—देश, प्रदेश, नगर, गाँव, ग्राम, शहर, भारत, रूस, जापान, इटली, अमेरिका, इंग्लैंड, महाराष्ट्र, पंजाब, उत्तर प्रदेश

(झ) ग्रह वर्ग—सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, आकाश, पाताल (पृथ्वी स्त्री०)

(ञ) माह-दिन वर्ग—चैत, बैसाख, जनवरी फ़रवरी, सोमवार, मंगलवार

(ट) फल वर्ग—आम, पपीता, तरबूज़, खरबूज़, सेब, केला, संतरा, नीबू, (जामुन, लीची, नारंगी, ककड़ी स्त्री०)

(ठ) शरीरांग वर्ग—सिर, मस्तक, तालु, ओठ, दाँत, दंत, मुख/मुँह, पेट, पैर, कान, बाल, गाल, हाथ, पाँव, रोम, नख, नाखून, खून, चमड़ा, सींग, खुर, अयाल (आँख, नाक, जीभ, पीठ, जाँघ, खाल, चमड़ी, नस, स्त्री०)

(ड) वर्ण वर्ग—अ, आ, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, क, ख, ग………(इ, ई, ऋ स्त्री०)

(ढ) सामान्यत: कर्कश, कठोर, बृहदाकार, भयावह समझे जानेवाले जीव, पदार्थ, यथा—शेर, रीछ, पहाड़, पत्थर, वृक्ष, अँधेरा

तत्त्व-बोधन की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार के संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। लगभग प्रत्येक वर्ग के कुछ अपवाद शब्द हैं—

(क) सामान्यतः कोमल, मृदु, लघ्वाकार, मनोहर समझे जानेवाले जीव, पदार्थ—चुहिया, मछली, नदी, लता

(ख) नदी-झील वर्ग—गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, ताप्ती, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा, नील, साँभर, चिलका; सोन, सिंधु, ब्रह्मपुत्र ('ब्रह्मपुत्र नद' पुं.)

(ग) नक्षत्र वर्ग—आर्द्रा, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, अश्विनी

(घ) तिथि वर्ग—पड़वा, प्रतिपदा, दौज, द्वितीया, तीज, चौथ, पूर्णमासी, पूर्णिमा, पूनम, अमावस्या, अमावस

(ङ) किराना वर्ग—लौंग, इलायची, सौंफ, सुपाड़ी, जावित्री, जायपत्री, दालचीनी, काली मिर्च, रतनजोत (कपूर, तेजपात पु०)

(च) भाववाची शब्द—इच्छा, ऋद्धि, सिद्धि, अर्चना, गरिमा, महिमा, लघिमा, कटुता, ईर्ष्या (प्रेम, प्यार, क्रोध, स्नेह पुं०)

(छ) अनुकरणात्मक शब्द—झकझक, झंझट, बड़बड़, हड़बड़ी, झंझट

(ज) आहार वर्ग—रोटी, पूड़ी, कचौड़ी, दाल, तरकारी, खिचड़ी, खीर, कढ़ी, तरी, गुझिया (फुलका, हलवा/हलुआ, भात, रायता, पूआ, मगौड़ा, बड़ा, मोहन भोग पुं०)

(झ) भाषा-बोली, लिपि-नाम—हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, उर्दू, अँगरेज़ी, देवनागरी, रोमन, बंगला, तमिळ, कन्नड़

शब्दान्त की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार के संज्ञा शब्द **पुल्लिंग** होते हैं। कुछ वर्गों में अपवाद शब्द भी प्राप्त हैं—

(क) खान्त, जान्त संस्कृत शब्द—दुःख, नख, मुख, लेख, शंख, सुख, अनुज, जलज, मलयज, सरोज, जलज, पिंडज, स्वेदज, सरोज

(ख) अकारान्त संस्कृत शब्द—कौशल, त्याग, पाक, मोह, दोष, क्रोध, वाद, वेद, शैशव, स्पर्श (हिन्दी हार-जीत के सादृश्य पर संस्कृत जय-विजय स्त्री० में प्रयुक्त)

(ग) -अन प्रत्ययान्त संस्कृत शब्द—गठन, दान, बन्धन, गमन, दमन, नयन, बन्धन, मोहन, वचन, साधन, पोषण, हरण, पालन, पवन

(घ) त्र अन्तवाले संस्कृत शब्द—क्षेत्र, गोत्र, चरित्र, चित्र, नेत्र, पात्र, शस्त्र, शास्त्र

(ङ) तान्त संस्कृत, हिन्दी शब्द—गणित, गीत, अक्षत, मत, स्वागत, विश्वासघात, घात-प्रतिघात; भात, करैत, गात < गात्र, पूत < पुत्र, मूत < मूत्र, मीत < मित्र, पात < पत्र (विद्युत, रजत, रंगत, बात, रात स्त्री०)

(च) नान्त संस्कृत शब्द—प्रश्न, यत्न, स्वप्न

(छ) -त्य/-त्व/-व/-र्य प्रत्ययान्त संस्कृत शब्द—कृत्य, नृत्य, कृतित्व, गुरुत्व, बहुत्व, मनुष्यत्व, सतीत्व, गौरव, लाघव, माधुर्य, धैर्य, कार्य, सौन्दर्य

(ज) -आय/-आर/-आस अन्तवाले संस्कृत शब्द—अध्याय, उपाय, समुदाय, विकार, विस्तार, संसार, उल्लास, विलास, हास-परिहास

(झ) -य प्रत्ययान्त संस्कृत शब्द—सत्य, व्यय, साम्य, ऐक्य, स्वातन्त्र्य (आय, सहाय स्त्री०)

(ट) -आन्त हिन्दी शब्द—आटा, कपड़ा, गन्ना, घड़ा, माथा, पैसा, पहिया, चमड़ा, घेरा, जोड़ा, झटका, झगड़ा, फेरा, बोझा, रगड़ा

(ठ) -आव/-आवायुक्त हिन्दी शब्द—घुमाव, पड़ाव, बहाव, सुझाव, छलावा, बहकावा, भुलावा

(ड) -ना युक्त संज्ञार्थक क्रिया—आना, गाना, चलना, जागना, तैरना, देना, लेना, सोना, रोना

(ढ) -आव/-आन/-पन/-पा प्रत्ययांत हिन्दी शब्द—चढ़ाव, बहाव, मिलान, उठान, खानपान, लगान, पिसान, नहान (उड़ान, पहचान, मुस्कान स्त्री०)

(ण) -आब युक्त उर्दू शब्द—कबाब, गुलाब, जवाब, हिसाब (कमखाब, किताब, ताब, मिह्राब/मेह्राब, शराब स्त्री०)

(त) -ख़ाना प्रत्ययान्त उर्दू (अरबी-फ़ारसी शब्द)—गाड़ीख़ाना, डाकख़ाना, चिड़ियाख़ाना

(थ) -आन/-आर युक्त उर्दू शब्द—अहसान, इम्तिहान, मकान, सामान, इक़रार, इनकार, इश्तिहार (दुकान, तक़रार, सरकार स्त्री०)

(द) -दान प्रत्ययान्त अरबी-फ़ारसी शब्द—इत्रदान, कमलदान, गुलाबदान, फूलदान

(ध) -ह >-आ युक्त उर्दू शब्द—किस्सा, गुस्सा, तमग़ा, पर्दा, चश्मा (दफ़ा स्त्री०)

(न) -त युक्त अरबी-फ़ारसी शब्द—ख़त, तख़्त वक़्त, बालिश्त, गोश्त शहतूत, दस्तख़त

(प) बहु० -आत प्रत्यय युक्त उर्दू (अरबी-फ़ारसी) शब्द—सवालात, मकानात, ताल्लुकात, इंतज़ामात, वाकयात, काग़ज़ात

शब्दान्त की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार के संज्ञा शब्द **स्त्रीलिंग** होते हैं। कुछ वर्गों में अपवाद शब्द भी प्राप्त हैं—

(क) -ना युक्त संस्कृत शब्द—प्रस्तावना, प्रार्थना, कल्पना, घटना, भावना, बन्दना, वेदना, सान्त्वना, रचना, सूचना, प्रेरणा

(ख) -आ युक्त संस्कृत शब्द—कृपा, क्षमा, दया, पूजा, माया, लज्जा, शिक्षा, शोभा, सेवा, सभा

(ग) -इ युक्त संस्कृत शब्द—अग्नि, केलि, छवि, कृषि, निधि, परिधि, राशि, रुचि, विधि, मति, रति, गति, जाति, तृप्ति, प्रीति, शक्ति, ग्लानि, हानि, योनि, बुद्धि, सिद्धि, ऋद्धि, समृद्धि (आदि, गिरि, जलधि, बलि, वारि, पाणि पुं०)

(घ) -या/ -सा युक्त संस्कृत शब्द—क्रिया, विद्या, पिपासा, मीमांसा

(ङ) -इमा प्रत्ययान्त संस्कृत शब्द—कालिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, लालिमा

(च) -ता प्रत्ययान्त संस्कृत शब्द—एकता, गम्भीरता, दरिद्रता, योग्यता, महत्ता, महानता, जड़ता, नम्रता, प्रभुता, समता, समानता, स्वतन्त्रता, सुन्दरता, मान्यता, काम्यता, लघुता

(छ) -ई युक्त हिन्दी शब्द—उदासी, रोटी, गली, चिट्ठी, टोपी, नदी, रस्सी (जी, घी, दही, पानी, भाई, मोती, मही, हाथी पुं०)

(ज) -इया प्रत्ययान्त हिन्दी शब्द—खटिया, डिबिया, पुड़िया, फुड़िया, लुटिया

(झ) -ऊ युक्त हिन्दी शब्द—झाड़ू, दारू, बालू, लू (आलू, आँसू, टेसू, रतालू, गेहूँ, गेरू पुं०)

(ञ) -ख युक्त हिन्दी शब्द—आँख, ईख, काँख, कोख, चीख, देखरेख, परख, भूख, मेख, राख, लाख (<लाक्षा), साख (रूख, पाख<पक्ष पुं०)

(ट) -त युक्त हिन्दी शब्द—बचत, खपत, लागत, रंगत, चाहत, छत, बात, रात, लात, घात, प्रीत, रीत, कीरत, मूरत, संगत<संगति, गत<गति, जात< जाति (खेत, गात, दाँत, भात, सूत पुं०)

(ठ) धातुज संज्ञा शब्द—अकड़, कराह, कूक, खोज, चमक, चहक, चोट, छाप, छूट, जाँच, झपट, तड़प, देखभाल, दौड़, पकड़, पहुँच, पुकार, फूट, मार, लगन, लूट, समझ, संभाल (उतार, खेल, नाच, बिगाड़, बोल, मेल पुं०)

(ड) -अन युक्त हिन्दी शब्द—उलझन, जलन, रहन, सूजन, लगन (रहन-सहन, चलन, चालचलन पुं०)

(ढ) -ट/ -वट/ -हट युक्त हिन्दी शब्द—झंझट, बनावट, मिलावट, सजावट, आहट, घबराहट, चिकनाहट, चिल्लाहट, दिखावट

(ण) -स युक्त हिन्दी शब्द—निंदास, प्यास, मिठास, रास (=लगाम), साँस (काँस, निकास, बाँस, रास (=नृत्य) पुं०)

(त) -आई प्रत्ययान्त हिन्दी शब्द—ऊँचाई, गहराई, चौड़ाई, लम्बाई, अच्छाई, बुराई, भलाई, लड़ाई, सगाई, मिठाई, बनवाई, बुनाई, सिलाई

(थ) -ँ युक्त हिन्दी शब्द—खड़ाऊँ, गौं (=सुयोग), जोखों<जोखिम, चूँ, दौं/धौं, सरसों (कोदों, सोहूँ पुं०)

(न) -श युक्त अरबी-फ़ारसी शब्द—कोशिश, तलाश, नालिश, बारिश, मालिश, लाश (होश, ताश पुं०)

(प) -ई युत उर्दू-भाववाचक शब्द—गर्मी, ग़रीबी, चालाकी, तैयारी, नवाबी, सर्दी, बीमारी

(फ) -त युत अरबी-फ़ारसी शब्द—अदालत, इज़्ज़त, कसरत, क़ीमत, दौलत, सूरत, सीरत, बुत, बात, इनायत, पर्त/परत, नफ़रत, मुलाक़ात, हजामत, हिमायत, हिमाकत, शराफ़त,<शरीफ़, ज़रूरत, फ़जीहत, ख़ुराफ़ात, नौबत, सोहबत, ख़िदमत, ताक़त, खैरात, दवात, दावत, नफ़रत, दहशत, मुहब्बत, रिश्वत, मात, मिल्कियत, राहत, तबीयत, क़ीमत (शर्बत; दस्तख़त, बन्दोबस्त, वक़्त, तख़्त पु०)

(ब) -आ/-ह युक्त अरबी-फ़ारसी शब्द—जमा, दवा, बला, दुनिया, सज़ा, हवा, दग़ा, आह, तरह, राह, सलाह, सुबह, सुलह (मज़ा, गुनाह, माह पु०)

(भ) -ईर/-ईल युक्त उर्दू शब्द—जागीर, तसवीर, तफ़सील, तहसील, तामील

अँगरेज़ी से आगत संज्ञा शब्दों का लिंग-निर्णय तत्त्व-बोधन तथा शब्दान्त-ध्वनि के आधार पर किया जाता है। जिन शब्दों के लिंग-निर्णय के सम्बन्ध में दुविधा की स्थिति हो, उन्हें सामान्यतः पुल्लिंग में गणनीय माना जाता है। अँगरेज़ी से आगत कुछ शब्दों का लिंग-निर्णय निम्नलिखित है—

(अ) समानार्थी हिन्दी शब्द का लिंग स्वीकृत—कोट (अँगरखा), बूट (जूता), नम्बर (अंक), लेक्चर (व्याख्यान), लैम्प (दीपक), वारंट (चालान)—पुल्लिंग। कमेटी (सभा), कम्पनी (मंडली), चेन (साँकल), फ़ीस (दक्षिणा)—स्त्रीलिंग।

(आ) आकारान्त पुल्लिंग—कैमरा, डेल्टा, सोडा

(इ) ईकारान्त स्त्रीलिंग—गिनी, चिमनी, डिक्शनरी, म्यूनिसिपेल्टी, लायब्रेरी, हिस्ट्री

(ई) व्यंजनांत स्त्रीलिंग—अपील, कांग्रेस, काउंसिल/कौंसिल, रिपोर्ट, प्लेग, मोटर, रेल, पिस्तौल। पुल्लिंग—स्टेशन, मेल

हिन्दी में **समान ध्वनि से अन्त होनेवाले** अनेक शब्द **पुल्लिंग, स्त्रीलिंग** होते हैं, यथा—

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
अश्रु, तालु, मधु, हेतु, सेतु	आयु, मृत्यु, वायु
औचित्य, स्वातन्त्र्य, स्वास्थ्य, सामर्थ्य, कथ्य	बलाय<बला
परमात्मा, क़िला, पुतला	आत्मा, कला

आलू, गेरू, पहलू, बाजू	उर्दू, बालू
नमक, फाटक	चेचक, नाक, लीक, पीक
ढोंग, दाग़, दिमाग़, प्लेग	उमंग, लाग, लौंग
अखरोट, पनघट, मुकुट	ईंट, ओट, प्लेट, लट, सिगरेट
ओठ, काठ	गाँठ, सोंठ
नीड़, पहाड़, पापड़	आड़, जड़, भीड़
खेत, भात, सूत	छत, बात, रात, लात
गुलाब, हिसाब	किताब, शराब
आम, मरहम, मोम	अफ़ीम, कलम, चिलम, फ़िल्म, सेम
उतार, पनीर, पहर	खीर, नहर, मार
खेल, बाल, मील, मेल	खपरैल, खाल, झील, पिस्तौल, बग़ल, सँभाल, साइकल
निकास, पलास, रास	नस, बास, मिठास
निकाह, विवाह, ब्याह, मुँह	जगह, बाँह, राह

सामान्यतः समासज शब्दों का लिंग पर/उत्तर पद का लिंग होता है, यथा—माँ-बाप (पु०), धर्मशाला (स्त्री०), रसोईघर (पु०)

पुल्लिग-स्त्रीलिंग निर्माण-नियमादि—1. -आ, -आइन, -आनी, -इका, -इन, -इया, -ई, -नी प्रत्यय जोड़ कर पुल्लिंग से स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों का निर्माण होता है, यथा—

-आ— पंडित-पंडिता, पात्र-पात्रा, पूज्य-पूज्या, प्रिय-प्रिया, बाल-बाला, अध्यक्ष-अध्यक्ष, आचार्य-आचार्या, शिष्य-शिष्या, कृष्ण-कृष्णा, शूद्र-शूद्रा, सुत-सुता, शिव-शिवा, वैश्य-वैश्या, महाशय-महाशया। (-आ युत इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग संस्कृतनिष्ठ शैली में होता है। हिन्दी में सामान्यतः 'पंडित, अध्यक्ष, पात्र, पूज्य' का दोनों लिंगों में प्रयोग प्रचलित); मुद्दई-मुद्दइया, वालिद-वालिदा, साहब-साहिबा, ख़ालू-ख़ाला

-आइन— ठाकुर-ठकुराइन, दुबे-दुबाइन, चौबे-चौबाइन, पाठक-पठकाइन, पाँड़े-पँड़ाइन, पांडे-पंडाइन, बनिया-बनियाइन, बाबू-बबुआइन, मिसिर-मिसिराइन, लाला-ललाइन, सुकुल-सुकुलाइन (हिन्दी में आजकल ऐसे स्त्रीलिंग शब्दों का प्रयोग कम ही होता है)

-आनी— चौधरी-चौधरानी, खत्री-खत्रानी, जेठ-जिठानी/जेठानी, देवर-देवरानी, नौकर-नौकरानी, पंडित-पंडितानी, मेहतर (मिहतर)-मेहतरानी/मिहतरानी), सेठ-सेठानी; इन्द्र-इंद्राणी; भव-भवानी, रुद्र-रुद्राणी, वरुण-वरुणानी, शर्व-शर्वाणी

-इका— लेखक-लेखिका, याचका-याचिक, वाचक-वाचिका, सहायक-सहायिका, उपदेशक-उपदेशिका, नायक-नायिका, पाठक-पाठिका, पुत्रक-पुत्रिका, गायक-गायिका, बालक-बालिका, सेवक-सेविका; मलिक-मलिका ।

-इन — अहीर-अहीरिन, कुँजड़ा-कुँजड़िन, तेली-तेलिन, धोबी-धोबिन, नाती-नातिन, बाघ-बाघिन, माली-मालिन, लुहार-लुहारिन, साँप-साँपिन, सुनार-सुनारिन, जमादार-जमादारिन, चमार-चमारिन, जुलाहा-जुलाहिन, भंगी-भंगिन, कहार-कहारिन, मज़दूर-मज़दूरिन

-इया— कुत्ता-कुतिया, बच्छा-बछिया, बंदर-बँदरिया, बुड्ढा/बूढ़ा-बुढ़िया, बेटा-बिटिया, गगरा-गगरिया, चूहा-चुहिया, फोड़ा-फुड़िया, लोटा-लुटिया

-ई— कूकर-कूकरी, गधा-गधी, गीदड़-गीदड़ी, घोड़ा-घोड़ी, तीतर-तीतरी, चेला-चेली, लड़का-लड़की, पुतला-पुतली, टोकरा-टोकरी, बकरा-बकरी, बंदर-बँदरी, मेंढ़क-मेंढ़की, हिरन-हिरनी, बेटा-बेटी, आजा-आजी, काका-काकी, लठ-लाठी; भगवान् < भगवत्-भगवती, राजा < राजन्-राज्ञी, विद्वान् < विद्वस्-विदुषी, श्रीमान् < श्रीमत्-श्रीमती; कर्ता < कर्तृ-कर्त्री, कवि/कवयिता < कवयितृ-कवयित्री, ग्रंथकर्ता < ग्रंथकर्तृ-ग्रंथकर्त्री, नेता < नेतृ-नेत्री; मुर्ग़ा-मुर्ग़ी, शाहज़ादा-शाहज़ादी

-नी— ऊँट-ऊँटनी, टहलुआ-टहलनी, बाघ-बाघनी, सिंह-सिंहनी, सूअर-सूअरनी, इंस्पेक्टर-इंस्पेक्टरनी, मुल्ला-मुल्लानी, हाथी-हथिनी, सियार-सियारनी, तपस्वी-तपस्विनी

2. कुछ पुल्लिग संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों में प्रत्यय लगाकर बनाए जाते हैं, यथा—जीजी-जीजा, ननद-ननदोई, फूफी-फूफा, बहन-बहनोई, मौसी-मौसा, राँड़-रँड़ुआ, भेड़-भेंड़ा, भैंस-भैंसा

3. कुछ संज्ञा शब्द रूप की दृष्टि से परस्पर पुल्लिग-स्त्रीलिंग के जोड़े-से प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में वे शब्द तत्त्व बोधन तथा सन्दर्भ की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं, यथा—'कुर्ता-कुर्ती, चोला-चोली, जूता-जूती, टुकड़ा-टुकड़ी, डिब्बा-डिब्बी, चमड़ा-चमड़ी, कंठा-कंठी, झंडा-झंडी, चिट्ठा-चिट्ठी, शीशा-शीशी, पापड़-पापड़ी/पपड़ी, ताला-ताली, भट्टा-भट्टी, चौका-चौकी, किनारा-किनारी, बीड़ा-बीड़ी जाला-जाली

('कोयल-कोयला, चींटी-चींटा, घड़ा-घड़ी, अँगूठी-अँगूठा, कोठी-कोठा' जैसे शब्द **भ्रामक स्त्रीलिंग-पुल्लिग शब्द-युग्म** हैं । इन में पुल्लिग शब्दों का स्त्रीलिंग शब्दों से तात्विक दृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं है ।)

4. कुछ पुल्लिग संज्ञा शब्दों के एक से अधिक स्त्रीलिंग शब्द होते हैं, यथा—आचार्य-आचार्या (= शिक्षिका)/आचार्याणी (=आचार्य-पत्नी); उपाध्याय-उपाध्याया (= शिक्षिका), उपाध्यायी/उपाध्यायानी (= उपाध्याय-पत्नी); क्षत्रिय-क्षत्रियी

(=क्षत्रिय-पत्नी), क्षत्रिया/क्षत्रियाणी (= क्षत्रिय वर्ण की महिला); मातुल-मातुली/मातुलानी; पंडित-पंडिता, पंडिताइन/पंडितानी, साला-साली (=पत्नी-बहन)/सलहज (=साला-पत्नी), भाई-बहन, भाभी/भावज/भौजाई (=भाई-पत्नी), बेटा-बेटी, बहू (बेटा-पत्नी), पति-पत्नी, पतिवन्ती (=सधवा); ख़ान-ख़ानम, बेगम

5. कुछ पुल्लिग संज्ञा शब्दों के स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द स्वतन्त्र होते हैं, यथा—मर्द/आदमी-औरत, पिता-माता, पुरुष-स्त्री, बैल/साँड़-गाय, बाप-माँ, राजा-रानी, ससुर-सास, नर-मादा, साहब-मेम, बादशाह-बेगम, विधुर-विधवा, सम्राट्-सम्राज्ञी, पुत्र-कन्या, बेटा-बहू, वर-वधू, भाई-बहन/भाभी

6. संस्कृत में पदसूचक, व्यापार-कर्तृत्वसूचक, व्यावसायिक, प्रशासनिक, सामाजिक स्थिति के बोधक कुछ शब्दों के पुल्लिग, स्त्रीलिंग अलग-अलग थे, यथा—कवि-कवयित्री, मंत्री-मंत्राणी, अधिष्ठाता-अधिष्ठात्री, विद्वान्-विदुषी, दाता-दात्री, किन्तु हिन्दी में ये पुल्लिग शब्द उभयलिंगी (/एकलिंगी/अलिंगी/निर्लिंगी) बन गए हैं। स्पष्ट लिंग-द्योतन के लिए ऐसे शब्दों के पूर्व पुरुष, महिला/स्त्री/औरत शब्द का प्रयोग करना पड़ता है, यथा—हमारे प्रधानमन्त्री-हमारी/(महिला) प्रधानमन्त्री, डॉक्टर-महिला डॉक्टर, मजदूर, औरत मज़दूर, पुरुष छात्रावास-महिला छात्रावास, सचिव-महिला सचिव, राष्ट्रपति-महिला राष्ट्रपति, ज़िलाधीश-महिला-ज़िलाधीश, जज-महिला जज। लिपिक, निदेशक, सचिव, पुलिस, डॉक्टर, लेखा-अधिकारी, संयोजक, न्यायमूर्ति, राजदूत, नियन्त्रक, अध्यक्ष, सहायक निरीक्षक पुल्लिग, स्त्रीलिंग के लिए समान रूप से प्रयोग में लाए जा रहे हैं, किन्तु 'विमान-परिचारिका' तो है, 'विमान-परिचारक' शब्द अभी प्रचार में नहीं आया है।

7. मनुष्येतर प्राणिवाचक कुछ विशेष (निर्लिंगी) शब्दों के पूर्व पुल्लिग के लिए 'नर', स्त्रीलिंग के लिए 'मादा' शब्द जोड़ा जाता है, यथा—नर मछली-(मादा) मछली, (नर) खरगोश-मादा खरगोश। अन्य शब्द हैं—जोंक, कोयल, खटमल, बाज, चीता, लोमड़ी, गिलहरी, मैना, कौआ, उल्लू, भेड़िया, गैंडा, तोता, मक्खी।

8. हिन्दी में आगत संस्कृत के कुछ शब्द संस्कृत से भिन्न लिंग में प्रयुक्त होते हैं, यथा—अग्नि (पुं०→स्त्री०), **आत्मा** (पुं०→स्त्री०), आयु (नपुं०→स्त्री०), **जय** (नपुं०→स्त्री०), **तारा** (स्त्री०→पुं०), **देवता** (स्त्री→पुं०), **देह** (पुं०→स्त्री०) **पुस्तक** (नपुं०→स्त्री०), **वस्तु** (नपृ०→स्त्री०), **राशि** (पुं०→स्त्री०), **व्यक्ति** (स्त्री०→पुं०), **शपथ** (पुं०→स्त्री०)।

उर्दू **'चर्चा'** पु० हिन्दी में स्त्री० है।

9. कुछ समस्वनीय शब्द पुं० स्त्री० में भिन्न अर्थों के द्योतक हैं, यथा—**कल** पुं० आनेवाला/बीता हुआ दिन ; स्त्री० **चैन**, मशीन का पुर्ज़ा), **काँच** (पुं० शीशा; स्त्री० गुदा का अंग, काछ), **चाप** (पु० धनुष ; स्त्री० पैरों की ध्वनि), **टीका** (पुं० तिलक, स्त्री० व्याख्या), **बाट** (पु० तोल-मान ; स्त्री० रास्ता/राह), **बेल** (पु०

बिल्वफल, स्त्री० लता), **हार** (पुं० गले की माला ; स्त्री० पराजय), तारा (पुं० नक्षत्र, स्त्री० किसी स्त्री का नाम)

10. कुछ लगभग समानार्थी शब्दों में लिंग-भेद प्राप्त है, यथा—पुल्लिग शब्द (अभ्यास, इन्तज़ाम, इंतज़ार, इम्तिहान, ख़ून ; नुकसान, प्रयत्न, न्यायालय, पल/क्षण/लमहा, मकान/भवन, मदरसा/स्कूल, साया)→स्त्री० शब्द (आदत, व्यवस्था, प्रतीक्षा, परीक्षा, हत्या, हानि, कोशिश, अदालत/कचहरी, घड़ी, इमारत, पाठशाला, छाया)। आईना/शीशा/दर्पण, अपराध/दोष/गुनाह के स्त्रीलिंग समानार्थी अप्राप्त हैं। सेवा/ख़िदमत, भित्ति/दीवार, तारीफ़/स्तुति/प्रशंसा, शिक्षा-तालीम, शर्म/लज्जा, जीभ/ज़ुबान, आशा/उम्मीद, दृष्टि/नज़र के पुल्लिग समानार्थी शब्द अप्राप्त हैं।

संज्ञा शब्दों की वचन-व्यवस्था—सामान्यत: व्यक्तिवाचक, भाववाचक, द्रव्यवाचक संज्ञा शब्दों का प्रयोग एकवचन में होता है। जब इन संज्ञाओं के सूचक शब्द बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं तो वे जातिवाचक संज्ञा बन जाते हैं। जातिवाचक और समूहवाचक संज्ञा शब्द दोनों वचनों में प्रयोज्य हैं।

हिन्दी में संख्या (एक से अधिक) के आधार पर तो बहुवचन की सूचना मिलती ही है, संख्या की दृष्टि से एक होने पर भी आदरार्थ/समाहार्थ बहुवचन का प्रयोग होता है, जिस की सूचना सन्दर्भ से मिलती है, यथा—**पिता जी** सो रहे हैं। आज **प्रिन्सीपल साहब** कार्यालय में नहीं आए। **महाराजा शिवाजी** भारत के सच्चे सपूत थे। **प्राचार्य महोदय** सूचना प्रसारित करा रहे हैं। मेरे **बड़े भाई** बहुत भोले हैं। **दयानन्द सरस्वती** ब्रह्मचारी थे। भाइयो ! हमारे **नेता जी** अपनी माँग मनवाने के लिए अहिंसक आन्दोलन का रास्ता अपनाएँगे। 'महाशय, शास्त्री, स्वामी, बाई, देवी, श्रीमान्, श्री, श्रीयुत, श्रीमती, कुमारी, महात्मा' आदि सम्मानसूचक शब्दों का भी प्रयोग होता है। 'बाबूजी, बाबू' शब्दों के प्रयोग में अर्थभेद, वचन भेद है। बाबूजी = स्व-पिता, पिता तुल्य वृद्ध व्यक्ति के लिए निदर्शनात्मक, सम्बोधन सूचक आदरार्थ शब्द; बाबू = क्लर्क (बड़े बाबू, छोटे बाबू, डाकबाबू में सम्मान ; बाबू तबका, बाबू मनोवृत्ति); निकट के औपचारिक मित्रों के नाम के बाद संबोधन में आदरार्थ, यथा—कहिए, गोपाल बाबू ! आजकल क्या हाल-चाल हैं ?

संज्ञा शब्दों के एकवचन-बहुवचन बनाने के नियमादि निम्नलिखित हैं—

1. मूल/अविकृत/सरल/ऋजु रूप में पुल्लिग आकारान्त एकवचन संज्ञा शब्द को बहुवचन में एकारान्त कर दिया जाता है, यथा—केला-केले, संतरा-संतरे। बापदादा-बापदादे, छापाख़ाना—छापेख़ाने, लड़का बच्चा-लड़के बच्चे। (अपवाद शब्दों की सूची पहले लिखी जा चुकी है।)

2. ऋजु रूप में -आ से इतर ध्वनि होने पर पुल्लिग शब्द दोनों वचनों में समान रहते हैं, यथा—एक या दस घर (/ऋषि/मुनि/गुरु/भाई/पक्षी/बालक/साधु/

आलू/डाकू/चौबे/रासो/जो)। इन शब्दों के बहुवचन की सूचना के लिए शब्द से पूर्व दो या दो से अधिक संख्यासूचक शब्द अथवा संज्ञा शब्द के बाद 'लोग, जन, गण, वर्ग, वृन्द' शब्द रखते हैं, यथा—योद्धा लोग, शिक्षकगण, गुरुजन, पाठक वर्ग, देवतावृन्द।

3. ऋजु रूप में '-ई, -इ, -इया' से अन्त होनेवाले स्त्रीलिंग एकवचन संज्ञा शब्दों के बहुवचन '-आँ' जोड़ कर बनते हैं। कुछ शब्दों में -आँ जुड़ने पर थोड़ा-सा ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है, यथा—जाति-जातियाँ, तिथि-तिथियाँ, टोपी-टोपियाँ, नदी-नदियाँ, खटिया-खटियाँ, गुड़िया-गुड़ियाँ

4. ऋजु रूप में '-इ -ई/-इया' से इतर ध्वनि होने पर स्त्रीलिंग एकवचन संज्ञा शब्दों के बहुवचन '-एँ' जोड़ कर बनते हैं, यथा—आँख-आँखें, गाय-गायें, कथा-कथाएँ, अप्सरा-अप्सराएँ, जूँ-जुँएँ, लू-लुएँ, गौ-गौएँ, वस्तु-वस्तुएँ।

5. ने/को/से/में/पर/का/की/के आदि जुड़ने पर लगभग सभी एकवचन संज्ञा शब्दों के बहुवचन में -ओं जोड़ते हैं। कुछ शब्दों में -ओं जुड़ने पर थोड़ा-सा ध्वनि परिवर्तन हो जाता है, यथा—ऋषि को-ऋषियों को, माली का-मालियों का, हिन्दू के-हिन्दुओं के।

6. सम्बोधन में बहुवचन के लिए '-ओ' जोड़ा जाता है, यथा—लड़को !, बहनो !, भाइयो !, बहुओ ! सम्बोधन एकवचन में तिर्यक् एकवचन का रूप रखा जाता है, यथा—लड़के !, बेटी !, बहन !, बहू !, माली !, कुछ संस्कृत शब्दों के एकवचन संबोधन रूप हिन्दी, संस्कृत-व्यवस्था के अनुसार प्रचलित हैं, यथा—हे राजा/प्रभु/मुनि/देवी/माता/सीता—हे राजन्/प्रभो/मुने/देवि/मातः/सीते

7. अरबी-फ़ारसी से आगत कुछ बहुवचन संज्ञा शब्द (-आत, -आन युक्त) यथावत् प्रचलित हैं, यथा—काग़ज़ात, ख़यालात, मकानात, जंगलात, काश्तकारान, मालिकान, साहबान आदि। कुछ बहुवचन शब्द एकवचन में प्रचलित हैं, यथा—अख़बार, असबाब, औक़ात, औलाद, औलिया, क़वाइद, तवारीख़, तहक़ीक़ात, वारदात आदि। अवहाल<हाल, अतराफ़<तरफ़, हक़ूक़<हक़ जैसे शब्द सामान्यतः हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होते; प्रयोग करने पर उर्दू शैली कही जाएगी। कुछ शब्दों में एकवचन, बहुवचन के अर्थ में अन्तर आ गया है, यथा—जौहर-जवाहिर; ख़बर-अख़बार; तारीख़-तवारीख़; वक़्त-औक़ात; अजब-अजायब (घर); जुर्म-जरायम (पेशा)।

8. विदेशी भाषाओं से आगत संज्ञा शब्दों का बहुवचन प्रायः हिन्दी-व्यवस्था के अनुसार बनता है, यथा—एक फ़ुट-चार फ़ुट, स्कूल में-स्कूलों में, पालसी-पालसियाँ, अलमारी-अलमारियाँ, कॉपी-कॉपियाँ, टाइयाँ, डायरियाँ, डिग्रियाँ, पार्टियाँ, बेगम-बेगमें, शाहज़ादा-शाहज़ादे, हकीम से-हकीमों से, एक मेम-पाँच मेमें, दवा-दवाएँ, लेडी-लेडियाँ)

9. समस्त जाति के स्वभाव के बोधन के लिए एकवचन संज्ञा का प्रयोग होता है, यथा—गधा बुद्धू होता है। बंदर चंचल होता है। कुत्ता स्वामिभक्त जानवर है। वर्ग-सदस्य बहुवचन में आता है; वर्ग-प्रतिनिधि के वचन से अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता, यथा—उधर एक औरत बैठी है—उधर कई औरतें बैठी हैं। (हरियाणा का) किसान बहुत मेहनती होता है—(हरियाणा के) किसान बहुत मेहनती होते हैं।

10. 'चार बीघा ज़मीन; दो सौ रुपया; पाँच मीटर की साड़ी; दस रुपये का नोट' समाहारात्मक इकाई का बोध करानेवाले संज्ञा शब्द एकवचन में प्रयुक्त होते हैं।

11. पदार्थों की बड़ी संख्या, परिमाण, समूह-बोधन के लिए एकवचन जाति-वाचक संज्ञा शब्दों का प्रयोग होता है, यथा—कृषि प्रदर्शनी में सभी ओर गाँव का आदमी ही दिखाई दे रहा था। भिखारी के पास काफ़ी रुपया निकला। इस साल संतरा बहुत हुआ है।

12. 'केश, रोम, अश्रु, प्राण, दर्शन, हस्ताक्षर, समाचार, दाम, होश, भाग्य/करम' प्राय: नित्य बहुवचन हैं, यथा—उस के केश बहुत लम्बे हैं। तुम्हारे तो भाग्य खुल गए। लोग कहते हैं कि.......। पिछले जाड़ों में, अगली गर्मियों में (यहाँ जाड़ा, गर्मी, सर्दी ऋतु अर्थ में बहुवचन में हैं)। मेरे बाल गिरने लगे हैं; लेकिन 'रोटी दाल बाल आ गया'। 'हाल, मिज़ाज़, ठाठ, रुतबे, रोब, जलवे, हल्ले' को उच्च स्तरीय व्यक्ति के संबंध में व्यक्त करते समय बहुवचन में प्रयोग करते हैं। स्वयं वक्ता अपने लिए इन का एकवचन में प्रयोग करता है, यथा—मेरा हाल कुछ न पूछो; पर आप बताइए, आप के क्या हाल हैं?

13. संस्कृत से आगत कुछ शब्दों के साथ 'दल, वृन्द, जन, वर्ग, गण' जोड़ कर और हिन्दी के शब्दों के साथ 'लोग' जोड़ कर बहुत्व का बोध कराया जाता है, यथा—अध्यापकवृन्द, प्रजाजन, तारागण, सेवादल, बच्चेलोग, महिला वर्ग।

14. 'जल, प्रेम, गिरि, याचना, क्षमा, क्रोध, वारि, छाया, पानी' आदि कुछ शब्द दोनों वचनों में समान रहते हैं।

15. दम्पति (दम = स्त्री, पति = पुरुष) Couple एक० पु० की भाँति पति-पत्नी के कारण बहुवचन में प्रयुक्त, यथा—हमारे पड़ोस में एक अफ़्रीकी दम्पत्ति (रहता है) रहते हैं।

16. 'आँसू, पसीना, साँस (सासें फूलना) प्राय: बहुवचन में प्रयुक्त, यथा—आँसू (/पसीने) बह रहे थे। आँसू, पसीने का कण व्यक्त होते समय एकवचन में प्रयोग, यथा—एक आँसू की क़ीमत एक मोती से भी ज़्यादा है। ख़ून पसीना एक करना; पसीना बहा कर; पसीने की कमाई।

वचन-भेद से अर्थ-भेद, यथा—जाड़ा/गर्मी लगना—गर्मियों में/जाड़ों में। **दाढ़ी** (एकवचन), मूँछें (बहुवचन), बाल (एक०, बहु०), **केश** (बहु०), कपड़ा (बिना सिला)—कपड़े (सिले हुए); छाती (पेट-गर्दन के मध्य का भाग)—छातियाँ (स्तन), पैसा (एक रु० का 100. वाँ भाग; धन)—पैसे (कई पैसे)

17. Account/Accounts 'लेखा' पारिभाषिक पु० एक० शब्द है। इस से सम्बद्ध शब्द हैं—लेखा विभाग (/परीक्षण/अधिकारी/लिपिक/विवरण)। ☆लेखे/☆लेखों/☆लेखाओं का प्रयोग अनुपयुक्त।

18. कई मुहावरों में बहुवचन रूप का ही प्रयोग, यथा—आम के **आम** गुठलियों के **दाम**; **नाज़ों** पालना; **भूखों** मरना; **बाँसों** उछलना; **खीसें** निपोरना; **बातों**-बातों में; **बगलें** झाँकना; **दाँतों** तले उँगली दबाना; लातों के **देव** बातों से नहीं मानते, **हौसले** बुलंद हैं।

19. कुछ संयुक्त/सामासिक शब्द लिंग-वचन की दृष्टि से 'और, या', पर्याय-संबंध के कारण कभी-कभी जटिलता उत्पन्न करते हैं, यथा—माँ-बाप (बहु०), भाई-बहन (बहु०)—भाई-बहनों (केवल 'बहन' का तिर्यक् रूप); ईमान-धरम (एक०), किताब-कॉपी (स्त्री० एक०/बहु०)—किताब-कापियाँ (स्त्री० बहुवचन)।

20. गाय-भैंसें, रीति-रिवाजों, गाय-बैलों, भाई-बहनों, कपड़े-लत्ते, कपड़े-लत्तों, गद्दे-तकिये—गद्दे-तकियों, बच्चे-बूढ़े—बच्चे-बूढ़ों, बूढ़े-बुढ़ियाँ—बूढ़े-बुढ़ियों में दूसरा घटक तिर्यक् बहुवचन रूप लेता है।

21. पदार्थवाची संज्ञाएँ, यथा—सोना, चाँदी, दूध, आटा, लोहा, पानी आदि एकवचन में प्रयुक्त। भाववाचक (गुण, विशेषता, व्यापार, अवस्थासूचक) संज्ञाएँ, यथा—लम्बाई, चौड़ाई, पढ़ाई, दृढ़ता, मिठास, जवानी, प्रेम (एकवचन में), बीमारी-बीमारियाँ (बहुवचन में भी प्रयुक्त)। व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ, यथा—कृष्ण, ताजमहल, दिल्ली, मद्रास एकवचन में। कुछ गोत्र/आस्पद नाम समूहवाची अर्थ में आने पर बहुवचन में प्रयुक्त, यथा—बिरलाओं, टाटाओं को राष्ट्रीय हित सर्वोपरि रखना चाहिए। कुछ समूह तथा इकाई सूचक शब्द, यथा—रुपया, पैसा, माल, ताश, सामग्री आदि एकवचन में।

संज्ञा शब्दों की कारक-व्यवस्था—वाक्य में संज्ञा रूपों से प्रकार्य के अनुसार व्यक्त स्थान नाम 'कारक' कहलाते हैं। कारकों की अभिव्यक्ति कारक-चिह्नों (अश्लिष्ट, श्लिष्ट विभक्तियों या परवर्गों तथा पारसर्गीय शब्दावली) से होती है।

वाक्य में किसी पद/पद-समुच्चय के पश्चात् आबद्ध रूप में प्रयुक्त अंश **पश्चाश्रयी** कहलाते हैं। पश्चाश्रयी अंश विभक्ति, परसर्ग (परसर्गीय शब्दावली/जटिल परसर्ग), निपात के रूप में देखे जा सकते हैं। **विभक्ति** अंश मुक्त अवस्था में अर्थहीन होते हैं, किन्तु बद्ध अवस्था में सार्थकता ग्रहण कर कर्म, सम्प्रदान कारकीय संबंध

(केवल सर्वनामों के साथ आ कर) व्यक्त करते हैं, यथा —वह>उस+-ए =उसे, तुम>तुम्ह+-एँ=तुम्हें। विभक्ति पदबन्ध के प्रत्येक घटक से जुड़ी होती है किन्तु परसर्ग अन्तिम नियन्त्रित शब्द के बाद आता है, यथा—'हमारे बड़े बेटे की शादी में' में 'हमारा, बड़ा, बेटा' विभक्ति युक्त हैं तथा विकारी/तिर्यक् रूप में प्रयुक्त हैं। जिन आबद्ध अंशों के जुड़ने पर पद बनते हैं, उन्हें विभक्ति कहा जाता है और पदों के पश्चात् जो आबद्ध अंश (को, में आदि) व्याकरणिक सम्बन्ध व्यक्त करते हुए वाक्यांशीय/पदबन्धीय रचना बनाते हैं, उन्हें **परसर्ग** कहा जाता है। विभक्तियों और प्रातिपदिकों या धातुओं के मध्य युक्त संक्रमण होता है किन्तु परसर्गों और पदों के मध्य (कुछ सर्वनाम पदों को छोड़ कर) मुक्त संक्रमण होता है, यथा—लड़का+-ए/-ओं=लड़के, लड़कों; लड़के+ से=लड़के से; लड़कों+का=लड़कों का। परसर्ग तथा विकारी कारक रूप के मध्य अवधारक निपात आ सकता है किन्तु विभक्ति और शब्द के मूल रूप/विकारी रूप के मध्य नहीं, यथा—रास्ते ही में; तुझ ही में। परसर्गीय शब्दावली या जटिल परसर्गों की प्रकार्य-प्रकृति परसर्ग के समान ही है। रचना की दृष्टि से परसर्गों को दो मुख्य वर्गों में रखा जा सकता है— 1. **अव्युत्पन्न/सामान्य परसर्ग** दूसरे शब्द भेदों से व्युत्पन्न नहीं होते, यथा—ने, को, से, में, पर, का आदि 2. **व्युत्पन्न परसर्ग** दूसरे शब्द भेदों से व्युत्पन्न होते हैं। सामान्य परसर्ग 'समेत, सहित' जटिल परसर्ग और संयुक्त परसर्ग व्युत्पन्न होते हैं। 'समेत, सहित' संस्कृत कृदन्तों से बने हैं। व्युत्पन्न जटिल परसर्गों के चार वर्ग हैं—(क) **नामजात व्युत्पन्न जटिल परसर्ग** संज्ञाओं, विशेषणों से बनते हैं, यथा—की ओर (संज्ञा); के योग्य (विशेषण) (ख) **अव्ययजात व्युत्पन्न जटिल परसर्ग**, यथा—के भीतर, के सामने, से पीछे (ग) **क्रियाजात व्युत्पन्न जटिल परसर्ग**, यथा—के लिए के मारे (घ) **पूर्वसर्गजात व्युत्पन्न जटिल परसर्ग**—के बग़ैर, के बिना।

पश्चाश्रयी रचना में पश्चाश्रितों (परसर्गों, निपात) के **संयुक्त प्रयोग** भी मिलते हैं। संयुक्त पश्चाश्रयी रचनाएँ तीन प्रकार की मिलती हैं—(अ) **परसर्गीय संयुक्त प्रयोग** में एक परसर्ग के पश्चात् दूसरा परसर्ग भी आता है, यथा—चोर छत **पर से** हो कर भागा है। इन पुस्तकों **में से** देख कर नोट बनाओ। (आ) **निपातीय संयुक्तः प्रयोग** में एक साथ दो निपात आते हैं, यथा—तुम्हारे यहाँ होने **मात्र ही** से पिता जी को आपत्ति हो सकती है। यह तुमने **ही तो** कहा था। तुम **भी तो** आओगी। (इ) **उभय संयुक्त प्रयोग** में या तो परसर्ग के पश्चात् निपात आता है या निपात के पश्चात् कोई परसर्ग या तीन अथवा अधिक पश्चाश्रयी, यथा—बहन **मेरी, मेरे** (/उस के) **तो** एक लड़की ही हुई। उस लड़के **ने ही** चोरी की होगी। मानव **मात्र की** सेवा करनी चाहिए। इसे अपने **तक ही** सीमित रखना। एक घंटे **भर में ही** समस्या का हल निकाल लूँगा।

वचन-भेद से अर्थ-भेद, यथा—जाड़ा/गर्मी लगना—गर्मियों में/जाड़ों में। दाढ़ी (एकवचन), मूँछें (बहुवचन), बाल (एक०, बहु०), केश (बहु०), कपड़ा (बिना सिला) —कपड़े (सिले हुए); छाती (पेट-गर्दन के मध्य का भाग)—छातियाँ (स्तन), पैसा (एक रु० का 100. वाँ भाग; धन)—पैसे (कई पैसे)

17. Account/Accounts 'लेखा' पारिभाषिक पु० एक० शब्द है। इस से सम्बद्ध शब्द हैं—लेखा विभाग (/परीक्षण/अधिकारी/लिपिक/विवरण)। ☆लेखे/☆लेखों/☆लेखाओं का प्रयोग अनुपयुक्त।

18. कई मुहावरों में बहुवचन रूप का ही प्रयोग, यथा—आम के **आम** गुठलियों के **दाम**; **नाज़ों** पालना; **भूखों** मरना; **बाँसों** उछलना; **खीसें** निपोरना; **बातों**-बातों में; **बगलें** झाँकना; **दाँतों** तले उँगली दबाना; लातों के **देव** बातों से नहीं मानते, **हौसले** बुलंद हैं।

19. कुछ संयुक्त/सामासिक शब्द लिंग-वचन की दृष्टि से 'और, या', पर्याय-संबंध के कारण कभी-कभी जटिलता उत्पन्न करते हैं, यथा—माँ-बाप (बहु०), भाई-बहन (बहु०) —भाई-बहनों (केवल 'बहन' का तिर्यक् रूप); ईमान-धरम (एक०), किताब-कॉपी (स्त्री० एक०/बहु०)—किताब-कापियाँ (स्त्री० बहुवचन)।

20. गाय-भैंसें, रीति-रिवाज़ों, गाय-बैलों, भाई-बहनों, कपड़े-लत्ते, कपड़े-लत्तों, गद्दे-तकिये —गद्दे-तकियों, बच्चे-बूढ़े—बच्चे-बूढ़ों, बूढ़े-बुढ़ियाँ—बूढ़े-बुढ़ियों में दूसरा घटक तिर्यक् बहुवचन रूप लेता है।

21. पदार्थवाची संज्ञाएँ, यथा—सोना, चाँदी, दूध, आटा, लोहा, पानी आदि एकवचन में प्रयुक्त। भाववाचक (गुण, विशेषता, व्यापार, अवस्थासूचक) संज्ञाएँ, यथा—लम्बाई, चौड़ाई, पढ़ाई, दृढ़ता, मिठास, जवानी, प्रेम (एकवचन में), बीमारी-बीमारियाँ (बहुवचन में भी प्रयुक्त)। व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ, यथा—कृष्ण, ताजमहल, दिल्ली, मद्रास एकवचन में। कुछ गोत्र/आस्पद नाम समूहवाची अर्थ में आने पर बहुवचन में प्रयुक्त, यथा—बिरलाओं, टाटाओं को राष्ट्रीय हित सर्वोपरि रखना चाहिए। कुछ समूह तथा इकाई सूचक शब्द, यथा—रुपया, पैसा, माल, ताश, सामग्री आदि एकवचन में।

संज्ञा शब्दों की कारक-व्यवस्था—वाक्य में संज्ञा रूपों से प्रकार्य के अनुसार व्यक्त स्थान नाम 'कारक' कहलाते हैं। कारकों की अभिव्यक्ति कारक-चिह्नों (अश्लिष्ट, श्लिष्ट विभक्तियों या परसर्गों तथा पारसर्गीय शब्दावली) से होती है।

वाक्य में किसी पद/पद-समुच्चय के पश्चात् आबद्ध रूप में प्रयुक्त अंश **पश्चाश्रयी** कहलाते हैं। पश्चाश्रयी अंश विभक्ति, परसर्ग (परसर्गीय शब्दावली/जटिल परसर्ग), निपात के रूप में देखे जा सकते हैं। **विभक्ति** अंश मुक्त अवस्था में अर्थहीन होते हैं, किन्तु बद्ध अवस्था में सार्थकता ग्रहण कर कर्म, सम्प्रदान कारकीय संबंध

(केवल सर्वनामों के साथ आ कर) व्यक्त करते हैं, यथा —वह>उस+-ए =उसे, तुम>तुम्ह+-एँ=तुम्हें। विभक्ति पदबन्ध के प्रत्येक घटक से जुड़ी होती है किन्तु परसर्ग अन्तिम नियन्त्रित शब्द के बाद आता है, यथा—'हमारे बड़े बेटे की शादी में' में 'हमारा, बड़ा, बेटा' विभक्ति युक्त हैं तथा विकारी/तिर्यक् रूप में प्रयुक्त हैं। जिन आबद्ध अंशों के जुड़ने पर पद बनते हैं, उन्हें विभक्ति कहा जाता है और पदों के पश्चात् जो आबद्ध अंश (की, में आदि) व्याकरणिक सम्बन्ध व्यक्त करते हुए वाक्यांशीय/पदबन्धीय रचना बनाते हैं, उन्हें **परसर्ग** कहा जाता है। विभक्तियों और प्रातिपदिकों या धातुओं के मध्य युक्त संक्रमण होता है किन्तु परसर्गों और पदों के मध्य (कुछ सर्वनाम पदों को छोड़ कर) मुक्त संक्रमण होता है, यथा—लड़का+-ए/-ओं=लड़के, लड़कों; लड़के+ से=लड़के से; लड़कों+का=लड़कों का। परसर्ग तथा विकारी कारक रूप के मध्य अवधारक निपात आ सकता है किन्तु विभक्ति और शब्द के मूल रूप/विकारी रूप के मध्य नहीं, यथा—रास्ते ही में; तुझ ही में। परसर्गीय शब्दावली या जटिल परसर्गों की प्रकार्य-प्रकृति परसर्ग के समान ही है। रचना की दृष्टि से परसर्गों को दो मुख्य वर्गों में रखा जा सकता है— 1. **अव्युत्पन्न/सामान्य परसर्ग** दूसरे शब्द भेदों से व्युत्पन्न नहीं होते, यथा—ने, को, से, में, पर, का आदि 2. **व्युत्पन्न परसर्ग** दूसरे शब्द भेदों से व्युत्पन्न होते हैं। सामान्य परसर्ग 'समेत, सहित' जटिल परसर्ग और संयुक्त परसर्ग व्युत्पन्न होते हैं। 'समेत, सहित' संस्कृत कृदन्तों से बने हैं। व्युत्पन्न जटिल परसर्गों के चार वर्ग हैं—(क) **नामजात व्युत्पन्न जटिल परसर्ग** संज्ञाओं, विशेषणों से बनते हैं, यथा—की ओर (संज्ञा); के योग्य (विशेषण) (ख) **अव्ययजात व्युत्पन्न जटिल परसर्ग**, यथा—के भीतर, के सामने, से पीछे (ग) **क्रियाजात व्युत्पन्न जटिल परसर्ग**, यथा—के लिए के मारे (घ) **पूर्वसर्गजात व्युत्पन्न जटिल परसर्ग**—के बग़ैर, के बिना।

पश्चाश्रयी रचना में पश्चाश्रितों (परसर्गों, निपात) के **संयुक्त प्रयोग** भी मिलते हैं। संयुक्त पश्चाश्रयी रचनाएँ तीन प्रकार की मिलती हैं—(अ) **परसर्गीय संयुक्त प्रयोग** में एक परसर्ग के पश्चात् दूसरा परसर्ग भी आता है, यथा—चोर छत **पर से** हो कर भागा है। इन पुस्तकों **में से** देख कर नोट बनाओ। (आ) **निपातीय संयुक्त प्रयोग** में एक साथ दो निपात आते हैं, यथा—तुम्हारे यहाँ होने **मात्र ही** से पिता जी को आपत्ति हो सकती है। यह तुमने **ही तो** कहा था। तुम **भी तो** आओगी। (इ) **उभय संयुक्त प्रयोग** में या तो परसर्ग के पश्चात् निपात आता है या निपात के पश्चात् कोई परसर्ग या तीन अथवा अधिक पश्चाश्रयी, यथा—बहन मेरी, मेरे (/उस के) **तो** एक लड़की ही हुई। उस लड़के **ने ही** चोरी की होगी। मानव **मात्र की** सेवा करनी चाहिए। इसे अपने **तक ही** सीमित रखना। एक घंटे **भर में ही** समस्या का हल निकाल लूँगा।

15

सामान्य/सरल, जटिल तथा संयुक्त परसर्ग कारकीय सम्बन्ध (वे सम्बन्ध जो वाक्य में विभिन्न शब्दों के मध्य बनते हैं) व्यक्त करते हैं। परसर्ग वस्तुओं के मध्य वस्तु और क्रिया-व्यापार या अवस्था के मध्य समयवाचक, स्थानवाचक, कर्मवाचक आदि सम्बन्ध इंगित करते हैं। परसर्ग सहायक शब्द हैं और स्वतन्त्र शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं। वाक्य के पदों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा प्रकार्य या अर्थ की दृष्टि से हिन्दी में आठ कारक माने जाते रहे हैं—

1. **कर्ता**—क्रिया व्यापार का सम्पादक। वाक्य में जिस के विषय में क्रिया कुछ विधान करे, उसे कर्ता कहते हैं। इस कारक के सूचक हैं—ø, ने, जैसे—**लड़का** भागा। **लड़की** हँसी। **लड़का** मिठाई खा रहा है। **लड़की** ने मिठाई खाई। **सूर्य** चमक रहा है। **स्टेशन** आनेवाला है। **पतंग** उड़ रही है। ये सभी संज्ञा वाक्यांश हैं।

2. **कर्म**—जिस संज्ञा पर क्रिया-व्यापार का प्रभाव या फल पड़ता है उसे कर्म कहते हैं। इस कारक के सूचक हैं—ø, को, जैसे—लड़की **लड्डू** खा रही है। किसान ने **साँप को** मार डाला। ये सभी संज्ञा वाक्यांश हैं। अप्राणिवाचक को $कर्म_1$, प्राणिवाचक को $कर्म_2$ कहा जाता है।

3. **करण**—जिस साधन से क्रिया-व्यापार का सम्पादन हो उसे करण कहते हैं। इस कारक के सूचक हैं—ø, से, के द्‌वारा, के कारण, जैसे—बच्चे को **चम्मच से** खिलाओ। यह सूचना **नौकर के द्‌वारा** आज ही पहुँचानी है। **बीमार होने के कारण** मैं कॉलेज न जा सका। ये रीतिवाची क्रियाविशेषण वाक्यांश हैं।

4. **सम्प्रदान**—जिस प्राणी या वस्तु के हित के लिए क्रिया-व्यापार का सम्पादन किया जाता है, उसे सम्प्रदान (सम्+प्र+दान) कहते हैं। इस कारक के सूचक हैं—को, के लिए, जैसे—**बीमार को** समय पर खाना दो। **निर्धनों के लिए** दान देना चाहिए। डाकुओं ने बिलखती **माँ को** उस का बच्चा लौटा दिया। ये प्राप्तिवाची संज्ञा वाक्यांश हैं।

5. **अपादान**—जिस संज्ञा से क्रिया-व्यापार का अलगाव हो उसे अपादान कहते हैं। इस कारक के सूचक हैं—ø, से, जैसे—तेल **हाथोंहाथ** बिक गया। गुंडों ने उस का सिर **धड़ से** उड़ा दिया। गंगा **हिमालय से** निकलती है। ये स्थान तथा काल सम्बद्ध अलगाववाची वाक्यांश हैं।

6. **सम्बन्ध**—वाक्य में क्रिया से भिन्न किसी अन्य पद से सम्बन्ध सूचित करनेवाला संज्ञा शब्द-रूप संबंध कहलाता है। इस कारक के सूचक हैं—का/की/के, जैसे—**लड़के का** नाम क्या है। **लड़के** की मेज कहाँ है? **लड़के** के पिता जी कहाँ चले गए? सर्वनाम शब्दों में 'का/की/के' का स्थान '-रा/-री/-रे, -ना/-नी/-ने' ले लेते हैं, यथा—मेरा/मेरी/मेरे, अपना/अपनी/अपने। यद्‌यपि इस कारक का क्रिया से प्रत्यक्षतः सम्बन्ध नहीं जुड़ता, किन्तु अस्तित्ववाची क्रियाओं के साथ पूरक स्थानीय

संज्ञा का संबंध जुड़ता है, यथा—वह पुस्तक **श्याम की** है/थी। 'श्याम की पुस्तक' विशेषणवत् वाक्यांश की आंतरिक रचना है।

7. **अधिकरण**—जो संज्ञा-रूप क्रिया-व्यापार का आधार होता है, उसे अधिकरण कहते हैं। इस कारक के सूचक हैं—∅, में, पर, के ऊपर, के नीचे, के भीतर आदि, जैसे—**जेब में** पैसे नहीं हैं। **मेज पर** पुस्तकें रख दो। **मकान के भीतर** चोर है। **छत के नीचे** बल्ली लगा दो। ये स्थान तथा काल सम्बद्ध आधारवाची वाक्यांश हैं।

8. **सम्बोधन**—जिस संज्ञा को सम्बोधित किया (पुकारा या चेताया) जाए, उसे सम्बोधन कारक कहते हैं। इस कारक के सूचक हैं—हे, ओ, अरे, ए, ऐ, हलो आदि उद्गारबोधक शब्द तथा आरोही सुर, जैसे—हे/ओ/अरे/ए/ऐ **लड़के**! इधर आना। मेरे **दोस्तो और भाइयो**, अब तो जाग जाओ। ये स्वयं वाक्यवत् रचनाएँ हैं।

किसी संज्ञा के बारे में सूचना देनेवाली संज्ञा को **समानाधिकरण संज्ञा** कहते हैं; जिस के बारे में सूचना दी जाती है उसे **मुख्य संज्ञा** कहते हैं। समानाधिकरण संज्ञा के लिंग, वचन तथा कारक मुख्य संज्ञा के अनुरूप ही रहते हैं; यथा—ननकू **कुम्हार** आगे बढ़ कर बोला। पकड़ लो, **बदमाश** नटवर को। अँगरेजों ने **बादशाह** अकबर से व्यापार की आज्ञा ली थी। इन वाक्यों में काले शब्द समानाधिकरण संज्ञा हैं और 'ननकू, नटवर, अकबर' मुख्य संज्ञा हैं।

कारक चिह्नों/सूचकों का वितरण तथा प्रयोग निम्नलिखित संदर्भों/स्थितियों और अर्थों में होता है—

(∅)—सन्दर्भ के अनुसार शून्य-चिह्न युक्त एक ही शब्द विभिन्न कारकों में प्रयुक्त हो सकता है, यथा—उस का **हाथ** दुख रहा है। (कर्ता); तुम ने मेरा **हाथ** क्यों पकड़ा? (कर्म); नौकर के **हाथ** सब्जी भेज देना (करण); एक चिड़िया भी मेरे **हाथ** नहीं आई। (अधिकरण)।

यदि बिना कारक-चिह्न प्रयोग के वाक्य-अर्थ स्पष्ट हो तो कारक-चिह्न का प्रयोग नहीं किया जाता, किन्तु यदि अर्थ में अस्पष्टता हो तो कारक-चिह्न का प्रयोग किया जाना आवश्यक है, यथा—बच्चा **चित्र** देख रहा है।* बच्चा भाई देख रहा है, वाक्य का अर्थ अस्पष्ट है, अतः 'बच्चे को भाई देख रहा है' या 'बच्चा भाई को देख रहा है' वाक्यों में 'को' की आवश्यकता पड़ रही है।

शून्य चिह्न का प्रयोग इन अर्थों तथा प्रयोग-संदर्भों में होता है—1. **उद्देश्य**—**आँधी** आई। 2. **उद्देश्यपूर्ति**—यह कुत्ता बहुत **वफादार** है। साधु **डाकू** निकला। 3. **स्वतन्त्र कर्ता**—हमारे **पिताजी** मैसूर गए हैं। 4. **स्वतन्त्र उद्देश्यपूर्ति**—बुड्ढे का **शादी** करना सब को बुरा लगा। 5. **मुख्य कर्म** माँ **रोटियाँ** बना रही है। 6. **कर्मपूर्ति**—राजा ब्राह्मण को **गुरु** माना करते थे। 7. **सजातीय कर्म**—

इस सिपाही ने कई लड़ाइयाँ लड़ी हैं । 8. **अपरिचित/अनिश्चित कर्म** —मैं ने (बबर) शेर नहीं देखा है । हम पाठ पढ़ते हैं । 9. **क्रियाकर का कर्म**—स्वीकार/त्याग करना; दिखाई/सुनाई देना । 10. **साधन**—भूखों/जाड़ों मरना; ऐसा तो न आँखों देखा और न कानों सुना । 11. **आवश्यकता-बोधक क्रिया का अप्राणिवाची कर्म**—मुझे पत्र डलवाना था/है; ठीक समय पर दवा पिलानी चाहिए । 12. **स्थानवाची/कालवाची संज्ञा**—इन दिनों/समय उस का दिमाग़ सातवें आसमान पर था । चलो, उधर चलें, इस जगह बहुत भीड़ है । आजकल पाँच बजे सूरज डूब जाता है ।

ने –1. भूलना, लाना (लेकर आना), समझना (understand) के अतिरिक्त अन्य पूर्ण पक्ष (धातु+-आ/-ई/-ए) की क्रियाओं के **कर्ता** के साथ, यथा—बच्ची ने दूध नहीं पिया (/पिया है/पिया था/पिया होगा) । लड़कों ने सारा खेत गोड़ दिया (/दिया है/दिया था/दिया होगा) । क्या यह पत्र तुम्हारे पिता जी ने लिखा है? (शायद) बच्चे ने कहा हो (/होता) ।

2. खाँसना, छींकना, मूतना, पादना उद्वेगी क्रियाओं के पूर्ण पक्ष की क्रियाओं के **कर्ता** के साथ, यथा—बच्चे ने खाँसा/छींका/मूता/पादा है । 'नहाना' के साथ कुछ लोग 'ने' का प्रयोग करते हैं; कुछ लोग 'स्नान करना' के साथ 'ने' का प्रयोग करते हैं किन्तु 'नहाना' के साथ नहीं, यथा—पिता जी अभी नहीं नहाए। बहन जी ने अभी तक स्नान भी नहीं किया ।

3. मुख्य सकर्मक क्रिया + सहायक सकर्मक क्रिया (एक पूर्ण कृदन्तीय इकाई) होने पर **कर्ता** के साथ 'ने' का प्रयोग होता है, यथा—मेहमानों ने खाना खा लिया है । लड़के ने पुस्तक दे दी (/लौटा दी/बेच दी/फाड़ दी) । डाकुओं ने ज़मीदार को मार डाला । बेटी ने यह सब क्या लिख मारा है (/डाला है)/ कह रखा है ।

4. अनुमतिबोधक (रहने दिया/रखने दिया/बोलने दिया), इच्छाबोधक (देखना चाहा/पढ़ना चाहा/लेना चाहा/पीना चाहा), अवधारणबोधक (समझ लिया/लिख लिया/लिख दिया/फाड़ डाला/तोड़ डाली/सी लिया) संयुक्त सकर्मक क्रियाओं के **कर्ता** के साथ ।

5. **कर्ता** के साथ 'ने' आने पर सकर्मक क्रिया के लिंग, वचन, कर्म के अनुरूप रहते हैं, यथा—बच्चे ने मिठाई खाई (/पापड़ खाया/चार लड्डू खाए) । लड़की ने लड़के को लात मारी थी (/डंडा मारा था/कई थप्पड़ मारे थे)

6. (क) कर्म का प्रयोग न होने पर, (ख) कर्म उपवाक्य के रूप होने पर, (ग) प्रश्नवाचक सर्वनाम कर्म होने पर, (घ) केवल 'को' युक्त कर्म होने पर **कर्ता** के साथ 'ने' आने पर क्रिया एकवचन पुंल्लिग में रहती है, यथा—सब लोगों ने (/बच्चियों ने) शाम को ही खा लिया था । कल ही पत्नी ने मुझे/बच्चे को बताया था कि.........। तुम्हारे पिता जी ने उन से क्या पूछा (/पूछा था) ? माँ ने बेटी को (बेटों को) पीटा (/पीटा था)

7. इन स्थितियों/संदर्भों में कर्ता के साथ 'ने' का प्रयोग नहीं होता—(i) 'भूलना, लाना, बोलना (speak) के पूर्ण कृदन्तीय रूप के साथ (ii) अकर्मक धातुओं के साथ (दे/लि सहा० क्रि० होने पर भी) (iii) सकर्मक धातुओं के अपूर्ण कृदन्तीय रूप के साथ (iv) मुख्य सकर्मक क्रिया+सहायक अकर्मक क्रिया (चुक, बैठ, पड़, जा, सक, रह, चल, उठ, उठ, आ, लग, मर)/पा/कर होने पर भी।

8. बोलना (Utter, Dictate, Hinder), समझना (Deem) का पूर्ण पक्षीय रूप होने पर कर्ता के साथ, यथा—बच्चे ने सत्य/झूठ बोला था; अध्यापक ने श्रुतलेख बोला था (/इमला बोली थी); क्या लड़के ने तुम से कुछ बोला था (=छेड़छाड़ की थी) ? बच्चों ने समझा कि पेड़ के पास कोई खड़ा है।

को—'को' परसर्ग कुछ सर्वनामों के साथ -ए/-एँ/-हें विभक्ति रूप में आता है, यथा—मुझे, तुझे, इसे, उसे, किसे; हमें; तुम्हें, उन्हें, इन्हें, किन्हें आदि। 'को' का प्रयोग कर्ता, कर्म, सम्प्रदान, अधिकरण कारकों में होता है, यथा—**कर्ता+को**— 1. **बाध्यताबोधक क्रिया का कर्ता**, यथा—श्याम (/रेखा/मुझ) को वहाँ जाना है (/होगा/पड़ेगा/था) 2 **औचित्यबोधक क्रिया का कर्ता**, यथा—अध्यापकों (/हम) को इस मुद्दे पर ठंडे दिलोदिमाग़ से सोचना चाहिए। इस रचना में सजीव संज्ञा+को+क्या/कुछ+क्रिया आती है, यथा—भाई साहब को कुछ (/क्या) चाहिए (/हो गया है)। इस रचना में निर्जीव संज्ञा+को+संज्ञा+क्रिया आती है, यथा—पौधों को खाद (/गोड़ना/काटना/छाँटना/पानी/धूप/हवा) चाहिए। 3. **निष्क्रिय क्रिया का कर्ता**, यथा—बेटे को (/उन्हें) बहू पसन्द है। बहू को (/उसे) घी अच्छा नहीं लगता। हर भारतीय किसान को भी दार्शनिक बातें मालूम हैं। 'ज्ञात, विदित, स्मरण, याद, लग+है' इसी प्रकार की क्रियाएँ हैं, यथा—मधु को ज्ञात (/विदित/स्मरण/याद) है। सुनीता को राकेश बुद्धू (/चतुर/चालाक/प्यारा/सुन्दर) लगता है। इस रचना में सजीव संज्ञा+को+संज्ञा+क्रिया आती है, यथा—बच्ची को प्यास (/भूख/शर्म/लाज/नींद/डर/भर) लग रही (/रहा) है। उन्हें इस समय क्रोध (/गुस्सा/होश/बेहोशी/शर्म/नींद) आ रहा (/रही) है। उन्हें धोखा (/होश/क्लेश/दु:ख/सुख/संतोष/आनन्द/खेद/आश्चर्य) हुआ। पिता जी को तुम्हारी बातों से दु:ख (/सुख/आराम/क्लेश/संतोष/शांति) पहुँचेगा (/पहुँचेगी)। क्या आप की बेटी को नाचना (/गाना/बजाना/खेलना/पढ़ना/लिखना) आता है। बच्चों को फल (/दूध/दवा/मिठाई/खिलौना/मारना/भगाना/पीटना/भागना/दौड़ना) चाहिए। विद्यार्थी को पुस्तक (/इनाम/फल/सज़ा/दूध/दण्ड/पुरस्कार/उपाधि) दो (/मिलो/मिला)। 4. **अधिकारी कर्ता+को अधिकारित पूरक** (मानसिक/नैसर्गिक आवेगादि), यथा—बच्चे को बुखार (/खाँसी/दमा/टी. वी./हैजा/घृणा/क्रोध/चिन्ता है (/था/थी/होगा/होगी)। बच्ची को डर लगा (/प्यास लगी/दु:ख/खेद/अफ़सोस/रंज हुआ/हँसी आई/बुखार चढ़ा हुआ है)। 5. **कर्ता+को+**

संज्ञार्थक क्रिया + √ह/√थ, यथा—पिता जी को जाना (/आना/सोना/लिखना) है, था)। 6. **कर्ता + को + संज्ञा + चाहिए**, यथा—माता जी को साड़ी (/रुपये/नौकर/नौकरानी/टॉनिक) चाहिए (चाहिए था)।

कर्म + को—1. **कर्म$_2$** (/संकेतक + कर्म$_1$) + **को**, यथा—हरी को वहाँ मत भेजो। बच्चे को मत मारो/पीटो। निश्चयात्मकता के लिए 'को' का प्रयोग अवश्य किया जाता है, यथा—क्या तुम ने बिल में साँप को (/साँप) देखा था? इस में प्राणिवाचक कर्म आता है। इस चित्र को बनाओ। 2. **कर्म$_2$ + को + कर्म$_1$**, यथा—मैं ने श्याम को अपनी भैंस बेच दी। अभी जा कर सुशीला को उस की पुस्तक लौटा आओ। इस रचना में द्विकर्मक क्रिया आती है। 3. **कर्म$_1$ + को + कर्म$_2$ + को**, यथा—इस साड़ी को माता जी को भी दिखाना है/था। 4. **कर्म$_2$ + को ± संज्ञा से + कर्म$_1$ + प्रेरणार्थक क्रिया**, यथा—बेटी को (मनी-ऑर्डर से) पैसे भिजवा दीजिए। बेटे को (नौकर के हाथों) सारा सामान पहुँचवाना है/था। इस रचना में 'बुलवाना, लगवाना, करवाना' आदि का प्रयोग होता है। 5. **सजीव कर्म + को (/निर्जीव कर्म ± को) + विशेषण**, यथा—खिड़की (को) बन्द कर दो। आँगन (को) साफ़ कर दिया। सभी छात्रों को पास कर देना। स्वामी को प्रसन्न रखो। इस रचना में 'कम, अधिक, नष्ट, भ्रष्ट, अच्छा, चंगा, पास, फ़ेल, उत्तीर्ण, राज़ी, ख़ुश, नाराज़, प्रसन्न, दुरुस्त, ठीक, गन्दा, परेशान, तंग' आदि विशेषणों का प्रयोग हो सकता है। 6. **सजीव कर्म + को (/निर्जीव कर्म ± को) + स्थान/दिशा**, यथा—बच्ची को इधर सुलाना (/सुला दो) और पिल्ले को उधर। फ़्रिज (को) उधर सरका दो और डाइनिंग टेबल (को) इधर लगा दो। इस रचना में 'यहाँ, वहाँ, यहाँ-वहाँ, इधर, उधर, इधर-उधर, ऊपर, नीचे, ऊपर-नीचे, दायें, बायें' आदि और 'रखना, करना, सरकाना, हटाना, बिछाना, लिटाना, बुलाना, सुलाना, खड़ा करना, बिठाना, बाँधना' आदि आते हैं। 7. **सजीव/निर्जीव कर्म + को + कर्मपूर्ति**, यथा—परिश्रमी मिट्टी को सोना बना देता है। इस रचना में 'करना, बनना, समझना, मानना' आदि क्रियाएँ आती हैं।

सम्प्रदान + को—1. **सजीव संज्ञा + को + निर्जीव संज्ञा**, यथा—नौकर को पूरे पैसे दो। माँ को कम से कम सौ रुपये प्रतिमाह भेजा करो। 2. **निर्जीव संज्ञा + को + सजीव संज्ञा + को**, यथा—मिठाई की इस प्लेट को नौकर को दे दो। इन दोनों रचनाओं में द्विकर्मक क्रिया आती है। 3. **सजीव संज्ञा + को + भाव० संज्ञा (± क्रिया)**, यथा—(मेरी ओर से) बच्चों को प्यार (करना)। परिवार के सभी सदस्यों को नमस्कार (/शुभकामनाएँ/बधाई/स्नेह/राम-राम/आशीर्वाद)। सेनानायक को सलामी दो।

अधिकरण + को—1. **स्थान०/दिशा० ± को**, यथा—थोड़ा पीछे (को) लौटो। बायें/दायें (को) हटो (/मुड़ो/बढ़ो/लौटो)। नीचे (को) झुको। ऊपर (को)

देखो। 2. **काल०+कों**, यथा—(आज, परसों, नरसों, प्रातः, सबेरे, सुबह के अतिरिक्त) सोमवार को; शाम/दोपहर/रात/आधी रात को; पहली/दूसरी/छठी तारीख़ को; दिनांक आठ/दस को।

उद्देश्य बोधन, साधन, प्रारम्भपूर्वता, आसन्न भविष्य द्योतन के लिए 'को' का प्रयोग होता है, यथा—मारने (को) दौड़ा; पढ़ने को उठा; पीने को दूध, खाने को मिठाई; कहने को बहुत है; करने को क्या है; देने को कुछ नहीं; आने को वे आ भी सकते थे; कहने को कह देंगे पर करेंगे नहीं; पाने को क्या पाया; देखने-सुनने को यही सब था; भागने को तैयार (/उद्यत/कटिबद्ध/उत्सुक); देखने को तरस गई, खाने को मन करता है। काटने को छुरी; मारने को डंडा। चलने को हुए लेकिन फिर बैठ गए। आँधी आने को है।

'को' से इन अर्थों की सूचना मिलती है—1. **के लिए**—सुनने को तुम भी सुन लो, 2. **के समय**—अब जाओ, रात को आना 3. **के मन में**—उसे तुम से प्यार है 4. **के शरीर में**—दादा जी को बुख़ार है 5. **के प्रति** तुम ने उसे गाली क्यों दी? 6. **की ओर**—नाव पश्चिम को जा रही है 7. **के ऊपर**—बच्चे को क्यों पीटते हो?

'शाम को नौकर को बच्चे को इस दवा को पिलाना था' जैसे अस्पष्ट/क्लिष्ट अर्थवाले वाक्य न बोल (/लिख) कर इस प्रकार बोले/लिखे जाने चाहिए—नौकर को शाम के समय बच्चे को यह दवा पिलानी थी।

से—'से' का प्रयोग कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण कारकों में होता है, यथा—**कर्ता+से**—1. **कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के कर्ता के साथ,** यथा—आजकल उन से (/बच्चे से) चला भी नहीं जाता। बुढ़िया से चर्ख़ा नहीं चलाया जाता। इतना वज़न नौकर से ही उठ पाएगा, मुझ से नहीं। मुझ से आजकल जल्दी नहीं उठा जाता। 2. **प्रेरित कर्ता$_1$ के साथ**, यथा—आजकल वे अपना सारा काम नौकरानी से ही कराती हैं। 3. **प्रेरित कर्ता$_2$ के साथ**, यथा—माँ बच्चे को आया से कपड़े पहनवा रही है।

कर्म+से—1. **गौण कर्म के साथ,** यथा—वह आप से/मालिक से कुछ कहना चाहती थी। इस का उत्तर अपने पिता जी से ही पूछना।

करण+से—1. **साधन के साथ**, यथा—गोली से छलनी कर दिया। मेहनत से काम करो 2. **रीति के साथ**, यथा—चूहा बहुत तेज़ी से भागा। जल्दी से चलो। धीरे से-धीरे बोलिए। इस रचना में रीतिवाचक+से आते हैं। 3. **कारण के साथ**, यथा—धूप से बेल सूख गई। दर्द से परेशान (/व्याकुल/बेचैन/छटपटा रहा) है। 4. '**के द्वारा**' के अर्थ में यथा—यह चित्र बड़े सधे हुए हाथों से बनाया गया है। उसी हलवाई से काम कराना। 5. '**के प्रति**' के अर्थ में, यथा—

बिलौटा कुत्ते से लड़ रहा है। बेटी माँ से घृणा (/ईर्ष्या/प्यार) करती है। वे दोनों एक दूसरी से घृणा करती हैं। 6. **'के साथ'** के अर्थ में, यथा—आग से मत खेलो। बुराई से लड़ो। शाम को मुझ से मिलना। 7. **भोज्य पदार्थ के सहकारी के साथ** यथा—निर्धन लोग चटनी से (प्याज़ से/नमक-मिर्च से) ही रोटी खा लेते हैं।

सम्प्रदान+से—1. **के लिए/के वास्ते** के अर्थ में, यथा—तुम तो अपने मतलब से आई हो।

अपादान+से—1. **अलगाव**, यथा—वह कब तक मुझ से छिपता फिरेगा ? इस रचना में संज्ञा+से (± अव्यय ± विशेषण ± संज्ञा)+क्रिया आते हैं, यथा—पहाड़ से (बड़ी तेज़ी से बहुत बड़ा पत्थर) लुढ़का। यहाँ से भाग जाओ (स्थान/दिशा+से) 2. **निकास**, यथा—अनेक नदियाँ हिमालय से निकलती हैं। इस रचना में संज्ञा+से (±अव्यय ± विशेषण ± संज्ञा)+क्रिया आते हैं, यथा—इन तिलों से इतना तेल नहीं निकलेगा। 3. **पतन**, यथा—पेड़ से पत्ते झड़ रहे हैं। इस रचना में संज्ञा+से (±अपव्यय± विशेषण±संज्ञा)+क्रिया आते हैं, यथा—मेरी गोद से बच्चा धीरे-धीरे ज़मीन पर गिर पड़ा। 4. **निष्कासन**, यथा—क्या तुमने भाभी को घर से निकाल दिया है ? 5. **भय**, यथा—बिल्ली कुत्ते से डरती है। कमज़ोर से कौन डरेगा ? 6. **दूरी**, यथा—आगरा से मद्रास कितनी दूर है ? न्यूयार्क से लन्दन बहुत दूर है। इस रचना में 'संज्ञा+से+विशेषण+क्रिया' आते हैं। 7. **आरम्भ**, यथा—यहाँ से आगे बढ़ो। कल से काम पर आना। शनिवार से आ जाया करना। इधर से जाओ। इस रचना में स्थान/समय+से आते हैं। 8. **तुलना**, यथा—वह तुम से गोरी है। वह सबसे सुन्दर है। इस रचना में 'संज्ञा+से+विशेषण' आते हैं या 'विशेषण+से+विशेषण+संज्ञा' आते हैं, यथा—ज़्यादा से ज़्यादा काम; खट्टे से खट्टा आम; दिल्ली में मद्रास से अधिक ठंड पड़ती है। 9. **ग्रहण**, यथा—यह चतुराई तुम अपनी माँ से सीख कर आई होगी। ये सारी बातें किस गुरु से सीखी हैं ? 10. **विरोध**, यथा—वे कभी बच्चों को शोर मचाने से नहीं रोकते। 11. **श्रवण-स्रोत**, यथा—यह सब तुम ने किस से सुना ? तुम ने गिरिजाबाई से दादरा सुना होगा। 12. **'के अनुसार' के अर्थ में**, यथा—समय से उठा करो। समय से काम करो। 13. **'के भीतर' के अर्थ में**, यथा—दिल से सच्चा (/कपटी/साफ़/बेईमान/खाली) है। इस रचना में 'संज्ञा+विशेषण+से' आते हैं। 14. **'के बाद' के अर्थ में**, यथा—परसों से मत आना। इस रचना में 'समय+से+क्रिया' आते हैं।

'से' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—1. **के द्वारा**—चाकू से काटा। नौकर से झाड़ू लगवाओ 2. **के ऊपर से**—आसमान से पत्थर गिरे। 3. **पर से**—गंगा, यमुना हिमालय से निकलती हैं। 4. **में से**—तुम्हारी याद अभी तक दिल से निकल नहीं पाई है। 5. **की तुलना में**—लड़का लड़की से कमज़ोर है। 6. **के कारण से**—

सर्दी से गला जकड़ गया है। 7. **का**—दिल से काली/साफ़ 8. **के साथ**—मुझ से दुश्मनी करना महँगा पड़ेगा। 9. **के अनुसार**—जाओ, समय से आया करो। 10. **के प्रति**—ईश्वर से प्रार्थना करना सीखो।

'से' के स्थान पर कभी-कभी 'के द्वारा/द्वारा' का भी प्रयोग मिलता है, यथा—सामर्थ्य या असामर्थ्य-प्रदर्शन हेतु कर्मवाच्य/भाववाच्य का कर्ता+के द्वारा, यथा—इस का उद्घाटन तो आपके द्वारा ही होना है। आचार्य द्वारा यह आदेश निकलवाया गया है। हनुमान के द्वारा ही समुद्र-लंघन का कार्य सम्भव हो सका था। नौकरानी के द्वारा तो यह बात नहीं बन पाएगी।

के साथ 'से' का समानार्थी बनता जा रहा है। संज्ञा 'साथ' में 'के' जुड़ कर यह परसर्गीय शब्द/जटिल परसर्ग बना है। इस का अर्थ 'इकट्ठा होना' भी है। तेज़ी/प्यार/होशियारी/मिहनत/सावधानी।ज़ोर/रुखाई'+से; से लड़ना (/बातें करना/बोलना) प्रयोगों में 'के साथ' आ सकता है किन्तु उस की बेवकूफ़ी से; आँधी/वर्षा से; मिल बन्द होने/खुलने से प्रयोगों में 'से' के स्थान पर 'के साथ' नहीं आता।

साधन के साथ 'से' का लोप—कानों सुनी बात; आँखों देखी घटना; हाथों-हाथ बिक गया। 'समेत, सहित' साहचर्य, सहार्थ व्यक्त करते हैं, यथा—वे अपने परिवार समेत गाँव छोड़ कर शहर चले आए। भारत सहित कई देश अणु बम निर्माण के विरुद्ध हैं। तू अपने पिल्लों सहित यहाँ क्यों आई है? 'संबंधी' (=से संबंधित) कर्मवाचक विशेषक संबंध व्यक्त करता है, यथा—शांति संबंधी प्रयास। वेतन वृद्धि संबंधी प्रश्न। शांति, भूमि और श्रम संबंधी चिन्तन।

में—'में' का प्रयोग सम्प्रदान, अधिकरण कारकों में होता है। **सम्प्रदान+में**—1. **संज्ञा+में**; प्रयोग अर्थ '**के लिए**', यथा—इस मकान में काफ़ी ख़र्च हो गया।

अधिकरण+में—1. **समयवाचक संज्ञा+में**। इस रचना में 'में' का प्रयोग इन संदर्भों/अर्थों में होता है—(i) **निश्चित अवधि**, यथा—यह काम दो महीने (/चार घंटे/पाँच मिनट) में पूरा होना है। (ii) **लगभग**, यथा—मरहम लगा लो, पाँच मिनट में ठीक हो जाओगे। आप का काम दो-तीन दिन में पूरा हो जाएगा। (iii) **की अवधि के भीतर**, यथा—सप्ताह में दो बार नाच सिखाने आना होगा। इतना सारा काम एक महीने से कम में पूरा नहीं हो पाएगा। (iv) **की अवधि के अन्त में**, यथा—सातवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्र कहीं से कहीं पहुँच चुका होगा। (v) **के बाद**, यथा—वह आई तो थी लेकिन एक मिनट में ही लौट गई थी। (vi) **के मध्य**, यथा—इतने में उस की पत्नी आ गई। 2. **स्थानवाचक संज्ञा+में**। इस रचना में 'में' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—(i) **के भीतर**, यथा—कमरे में (/घर में) चोर है। (ii) **विस्तार**, यथा—जंगल में आग लग गई है। आसमान में तारे चमक रहे हैं।

ज़मीन में पानी नहीं है। भारत की राजधानी दिल्ली में है। 'यहाँ, वहाँ, कहाँ, जहाँ, इधर, उधर, किधर, जिधर' स्थानवाची अव्यय शब्दों के साथ 'में' का प्रयोग नहीं होता। 'घर चलो; शायद वे घर हों' में भी 'में' का प्रयोग नहीं होता। 3. **स्थितिबोधक संज्ञा+में** यथा—आरम्भ (/शुरू/प्रारम्भ/मध्य/बीच/अन्त/आख़िर) में··· 4. **संज्ञा+में**। इस रचना में 'में' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—(i) **तरार्थ में**, यथा—मधु और रेखा में कौन सुन्दर है? इन दोनों (लड़कों) में कौन मोटा है? बच्चे-बच्चे में अन्तर होता है। (ii) **तमार्थ में/ के समूह में से**, यथा—उन चारों भाइयों में राम सब से बड़े थे। संस्कृत कवियों में कालिदास का स्थान अलग है। इन सब में लम्बी यही है। 5. **संज्ञा+में+संज्ञा**। इस रचना में 'में' का प्रयोग इन अर्थों में होता है. यथा—(i) **गुण**, यथा—फूलों में ख़ुशबू; खाने में कड़वा (ii) **मूल्य**, यथा—यह घर कितने में ख़रीदा है; एक रुपये में छह केले (iii) **अंगांगी भाव**, यथा—पैर में छह उँगलियाँ (iv) **अन्तुर्भुक्ति**, यथा—इस पुस्तक में तार्किक शैली में विषय को प्रस्तुत किया गया है। इस लेख में शुरू से ले कर आख़िर तक क्रांतिकारी विचार भरे पड़े हैं। (v) **मनोभाव/स्वभाव**, यथा—उस औरत में दया (/करुणा/साहस/हिम्मत/अहंकार/ईमानदारी/आत्मबल/मनोबल/आत्मविश्वास/घमंड) है। (vi) **एकवर्गता**, यथा—तुम लोगों में अधिकांश की गणना छात्रों (/विद्यार्थियों/मज़दूरों/विद्वानों/मूर्खों) में की जाती है। (vii) **सदस्यता**, यथा—आप के परिवार में कितने सदस्य हैं? (viii) **अधिकार में/पास में होना**, यथा—किसी की ज़िन्दगी में सच्चा सुख नहीं हुआ करता। तुम्हारे हाथ में तो काफ़ी पैसा है। 6. **संज्ञा+में+भाववाचक संज्ञा**। इस रचना में 'में' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—(i) **अच्छी/-बुरी दशा**, यथा—परिस्थिति में बदलाव (/सुधार/परिवर्तन), इंजन में ख़राबी (/गड़बड़ी/सुधार); पीने में स्वादिष्ट (/ठीक/बढ़िया/ख़राब) 7. **भाववाचक संज्ञा+में (± संज्ञा)+क्रिया**। इस रचना में 'में' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—(i) **मानसिक स्थिति**, यथा—वे इस समय गुस्से (/क्रोध/चिन्ता/परेशानी/ख़तरे/मुसीबत/आशा/उम्मीद/नशे/बेहोशी) में (काँप/जो/दिन काट रहे) हैं। 8. **संज्ञा+संज्ञा+में**। इस रचना में 'में' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—(i) **पारस्परिकता/के मध्य**, यथा—मयूर और मीता में झगड़ा (/प्रेम/प्यार) है। क्या उन लोगों में फूट पड़ गई है? 9. **संज्ञा+में+विशेषण**। **प्रयोग-अर्थ**—(i) **सामर्थ्य/असामर्थ्यबोधन**, यथा—आने (/जाने/खेलने/खाने/उठने/बैठने) में समर्थ (/असमर्थ/मजबूर/विवश/परेशान) (ii) **लीनताबोधन**, यथा—लिखने (/पढ़ने/गाने/खेलने/खाने/काम/चोरी/नशे) में व्यस्त (लीन/मशगूल/खोया/तल्लीन/डूबा/लगा) (iii) **गुणबोधन**; यथा—पढ़ने-लिखने (/कला/काम/बेईमानी) में तेज़ (/दक्ष/चतुर/सुस्त/प्रवीण/होशियार/ख़राब/निपुण/कमज़ोर/बोदा> 10. **संज्ञार्थक क्रिया+में+√आ**। प्रयोग-अर्थ—(i) **असमर्थता-बोधन**, यथा—इतनी भयंकर आग थी कि बुझने में ही नहीं आ रही थी। उस के पास इतना रुपया है कि गिनने में ही नहीं आ रहा है। (ii) **की क्रिया में/ज्ञात-अज्ञात**

बोधन, यथा—देखने (/सुनने/पढ़ने) में आया है कि………। ऐसा तो कभी देखने (/सुनने/पढ़ने) में नहीं आया कि…… 11. **अव्यय ± में**। प्रयोग-अर्थ—(i) **स्थिति**, यथा—पास (/निकट//अकेले/अकेले-दुकले/निकट भविष्य/बाद) में।

'के अन्दर' कुछ सन्दर्भों में 'में' का पर्याय है; कुछ में दोनों सूक्ष्म अर्थ भेद रखते हैं, यथा—स्वास्थ्य मन्त्री ने चिकित्सालय में/के अन्दर प्रवेश किया। रोगी को अस्पताल में (/ के अन्दर) दाखिला नहीं मिल सका। 'एक महीने में' अवधि-मात्रा का सूचक है, 'एक महीने के अन्दर' अवधि की उच्चतम सीमा का सूचक है।

पर—'पर' का प्रयोग सम्प्रदान, अधिकरण कारक में होता है। इस के पदबन्ध रचना-सूत्र, वितरण तथा प्रयोग-अर्थ निम्नलिखित हैं—

सम्प्रदान+पर 1. **संज्ञा+पर**। प्रयोग-संदर्भ—**धन/समय**, यथा—इस काम (/मकान/कोठी/बीमारी/घोड़े) पर बहुत खर्च किया जा चुका है।

अधिकरण+पर 1. **संज्ञा+पर**। प्रयोग-संदर्भ—(i) **सजीव/निर्जीव वस्तु पर (/के ऊपर) सजीव/निर्जीव वस्तु की अवस्थिति**, यथा—घोड़े पर राजा; ऊँट पर काठी; सोफे पर आदमी; बिस्तर पर कूड़ा (ii) **की सतह पर**, यथा—गाल पर तिल; टेलीविज़न पर फ़िल्म; कुर्ते पर दाग़ (iii) **के ऊपर लटकती/चिपकी हुई**, यथा—दीवार पर चित्र (/तस्वीर/फ़ोटो) (iv) **के ऊपर स्थित**, यथा—ऊँचाई पर मन्दिर (v) **के किनारे**, यथा—श्री टॉकीज बाईपास रोड पर है; उस कोने पर (vi) **स्थान**, यथा—हर चौराहे पर; स्थान-स्थान पर; दसवें किलोमीटर पर; चार मीटर पर; किस स्थान (/मुक़ाम/स्थल/जगह) पर; छत पर; घर पर (vii) **समय (/होते ही होते)**, यथा—पाँच बज कर पैंतालीस मिनट (पाँच सैकण्ड) पर; चार-चार घंटे पर; हर पाँच मिनट पर; दस-दस घंटे (/मिनट/सैकण्ड) पर (viii) **साधन**, यथा—दीवार (/पहाड़/सीढ़ियों/ज़ीने) पर चढ़ना (ix) **विस्तार**, यथा—सर्प (/शेर/छत/दीवार) पर नज़र पड़ी (x) **संज्ञार्थक क्रिया के बाद क्रिया का घटित होना**, यथा—आप के आने (/जाने/नाराज़ होने/डाँटने/बिगड़ने/ठीक होने/उठने/बैठने) पर वह भाग गया था। सोचने पर सिर फटना (xi) **के बाद**, यथा—आम पर दूध और खरबूज़ पर शर्बत; इस पर तुर्रा यह है कि……(xii) **शरीर पर**, यथा—उस पर धोती-कुर्ता ख़ूब फबता है। (xiii) **के कारण**, यथा—चोरी करने पर; उस के कहने पर 2. **संज्ञा+पर+संज्ञा**। प्रयोग-संदर्भ—(i) **सजीव वस्तु की दुर्वस्था**, यथा—बेचारे शिशु पर आपत्ति (/विपत्ति/मुसीबत/मुसीबतों का पहाड़/संकट/आफ़त/दुःख का बोझ) (ii) **सजीव वस्तु का दायित्व बोधन**, यथा—पत्नी पर दायित्व (/उत्तरदायित्व/ज़िम्मेदारी) (iii) **लाभालाभ बोधन**, यथा—भैंस पर लाभ (/मुनाफ़ा/हानि) (iv) **आक्रमणादि बोधन**, यथा—देश पर आक्रमण (/हमला/धावा/चढ़ाई) (v) **कर बोधन** यथा—जनता पर कर (/आयकर/बिक्रीकर/सम्पत्तिकर/व्ययकर/मृत्युकर) (vi) **निन्दाबोधन**, यथा—ऐसे आदमी पर लानत (/ख़ुदा का कहर/दोषारोपण/दोष) (vii) **दण्डबोधन**, यथा—

क्रांतिकारियों पर दण्ड (/जुर्माना/अर्थदण्ड/आरोप/अभियोग/अर्थदण्ड) (viii) **नियन्त्रण बोधन**, यथा—शराब पर नियन्त्रण (/पाबन्दी/रोक) (ix) **के उत्तर में**, यथा—नहले पर दहला (x) **के विषय में**, यथा—अणुबम पर भाषण 3. **संज्ञा+पर+ (भाववाचक) संज्ञा**। प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **सजीव वस्तु के प्रति (/के ऊपर) प्रतिक्रिया**, यथा—औरतों पर विश्वास (/भरोसा/सन्देह/क्रोध/गुस्सा/शक/शुबहा/तरस/गर्व/प्रसन्नता/अभिमान/कृपा/दया); ईश्वर पर विश्वास (ii) **के लिए**, यथा—सौ रुपयों पर ईमान बेचना (iii) **निरन्तरता**, यथा—गाली पर गाली देना 4. **भाववाचक संज्ञा+पर+भाववाचक संज्ञा**। प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **किसी के प्रति प्रतिक्रिया**, यथा—विषय पर प्रकाश; समस्या पर बातचीत; स्थिति पर विचार; झगड़े पर निर्णय; मुकदमे पर फ़ैसला; बात पर ग़ौर; बात (-बात) पर गुस्सा (/क्रोध/शर्म/लज्जा); दार्शनिकता पर विवाद; नीति पर चर्चा; गतिरोध पर बहस; बिक्री पर छूट (/रियायत); आशाओं पर तुषारापात् (/गाज/बिजली/वज्रपात्); लाभ पर लाभ; मूल पर ब्याज; हानि पर हानि। 5. **भाववाचक संज्ञा+पर+विशेषण**। प्रयोग-संदर्भ—(i) **किसी के प्रति प्रतिक्रिया**, यथा—बात (/प्रण) पर अटल (/दृढ़); वायदे पर डटना; बात पर नाराज़ (/जमना); इरादों पर दृढ़; सोचने पर मजबूर (ii) **के सहारे**, यथा—आप की दया (/मिहरबानी) पर पलना (iii) **के अनुसार**; यथा—बड़ों के कहने पर चलो। 6. **संज्ञा+पर+क्रिया**। प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **किसी के प्रति (/के ऊपर) प्रतिक्रिया**, यथा—किसी समस्या (/प्रश्न/मसले) पर सोचना; दिमाग़ पर ज़ोर डालना; यात्रा (/दौरे) पर जाना (/निकलना); निर्णय (/निष्कर्ष/स्थिति) पर पहुँचना; टुकड़े (/टुकड़ों/पैसों) पर पलना; बोतल पर जीना; दया (/मिहरबानी) पर जीना (ii) **की शक्ल का**, यथा—बाप (/माँ/मामा/नानी/दादा/दादी) पर गया है; (iii) **मूल्य**, यथा—वह यह साड़ी 150/- पर नहीं देगा। 7. **स्थान बोधक±पर**। प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **स्थान**, यथा—यहाँ (/वहाँ/कहाँ) (पर) 8. **समय बोधक+पर**। प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **के लिए**, यथा—आज का काम कल पर न छोड़ो (/टालो)।

'पर' तथा 'के ऊपर' संरचना, प्रयोग-अर्थ/सन्दर्भ की दृष्टि से कुछ-कुछ समान और कुछ-कुछ असमान हैं, यथा—मेज़ पर (/के ऊपर) घड़ी; चोर की पीठ पर (/के ऊपर) लाठी से प्रहार; ईश्वर पर (/के ऊपर) भरोसा। पाँच बज कर पचास मिनट पर (* के ऊपर)। सिर पर (* के ऊपर) पैर रख कर भागना। गाली पर (* के ऊपर) गाली। सोचने पर (* के ऊपर) सिर चकराना। भाई साहब घर पर नहीं हैं—भाई साहब घर के ऊपर नहीं हैं। (दोनों वाक्यों में अर्थ-वैभिन्न्य है)। इस रेखा पर दूसरी रेखा खींचो—इस रेखा के ऊपर दूसरी रेखा खींचो। (दोनों वाक्यों में अर्थ-वैभिन्न्य है)।

'पर' का प्रयोग संज्ञा/अव्यय के बाद होता है, 'ऊपर' का प्रयोग 'के/-रे/-ने' के बाद। 'ऊपर' की द्विरुक्ति सम्भव है (यथा—ऊपर-ऊपर से), किन्तु 'पर' की

नहीं। 'पर' शब्द-निर्माणक नहीं है, 'ऊपर' शब्द-निर्माणक है, यथा—ऊपरवाला, ऊपरी, (उपरोक्त)

का—हिन्दी में सम्बन्ध के लिए 'का/-रा/-ना' (का/की/के,-रा/ -री/-रे, -ना/-नी/-ने) का प्रयोग होता है। '-रा' का प्रयोग उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष में, -'ना' का प्रयोग निजवाचक सर्वनाम में और 'का' का प्रयोग शेष स्थलों पर होता है, यथा—मोहन/राधा/उस/उन का (/की/के), मेरा/हमारा (/मेरी/मेरे/हमारी/हमारे), अपना (/अपनी/अपने)। 'का, -रा, -ना' के योग से विशेषण शब्दों का भी निर्माण होता है, यथा—भारत का /की/के (=भारतीय), समाज का/की/के (=सामाजिक), नगर का/की/के (=नागरिक/नगरवाला/नगरवाली/नगरवाले), ऊपर का/की/के (=ऊपरी)। एक वाक्य में 'का' का प्रयोग कई बार सम्भव है, यथा—आज मेरे मित्र के छोटे भाई की अध्यापिका के बड़े बेटे की शादी है।

'का' का प्रयोग संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय के साथ (पहले, बाद में) हो सकता है। इस का प्रयोग सम्प्रदान, अपादान तथा सम्बन्ध कारकों में होता है।

सम्प्रदान+का—1. संज्ञार्थक क्रिया+का/की/के । प्रयोग-सन्दर्भ तथा अर्थ—(i) **के लिए, यथा**--रहने का स्थान (/की जगह/के कमरे) नहीं है (/हैं/था/थी/थे)।

अपादान+का—1. समयसूचक+का/की/के। प्रयोग-सन्दर्भ तथा अर्थ—(i) **से**, यथा—वह (/वे) कब का (/की/के) इन्तज़ार कर रहा (/रही/रहे) **है** (/हैं)।

सम्बन्ध+का—1. संज्ञा+का/की/के+संज्ञा। प्रयोग-सन्दर्भ तथा अर्थ—(i) **अधिकारी, अधिकृत वस्तु (/स्वामित्व)**, यथा—हमारा रेडियो; पत्नी के आभूषण; आप की पुस्तक (ii) **अधिकृत वस्तु, अधिकारी**, यथा—घर की मालकिन; महाविद्यालय के प्राचार्य; दुकान का स्वामी (iii) **अंगी-अंग**, यथा—साँड़ का शरीर, हाथी की आँखें, शुतरमुर्ग के पर (iv) **अवयव-उपअवयव**, यथा—पैर का अँगूठा; हाथ की उँगलियाँ; उँगलियों के नाख़ून (v) **पूर्ण, भाग**, यथा—पलंग का पाया; कुर्सी की टाँग; टीम के खिलाड़ी (vi) **स्वजन, सम्बन्ध**, यथा—हमारा परिवार; आप का बेटा; तुम्हारी भतीजी (vii) **सामाजिक सम्बन्ध**, यथा—हमारा विद्यालय; तुम्हारे दोस्त; रेखा की सहेली (viii) **लक्ष्य**, यथा—हमारा लक्ष्य (/उद्देश्य/मतलब/स्वार्थ) (ix) **स्थिति तथा मनोभाव**, यथा—परिवार की स्थिति (/परिस्थिति/बीमारी/परेशानी); उन का क्रोध (/गुस्सा/प्यार), बच्ची का निश्चय (/साहस/उत्साह/सहयोग/निर्णय/तर्क), उस की दुष्टता (/शक्ति/हिम्मत); माँ की ममता; डाकू की कठोरता; (x) **कार्य**, यथा—जनता की आवाज़; रात की ड्यूटी; हाथ का काम; तुम्हारे लेख (xi) **मूल सामग्री, निर्मित वस्तु (से बनी)**, यथा—सोने के आभूषण; मिट्टी का खिलौना; चांदी की प्लेट (xii) **सदस्य, जाति/वर्ग**; यथा—कदम्ब का पेड़; ब्राह्मण

की जाति; गेंदे के फूल (xiii) **संस्था, कर्मचारी,** यथा—कार्यालय का लिपिक; क्लब की स्टेनो; स्कूल के चपरासी (xiv) **जन सामान्य, नेता,** यथा—डाकुओं का सरदार; जनता की नेता श्रीमती·······; चोरों के मुखिया को (xv) **द्वारा की गई,** यथा—पैन की लिखावट (xvi) **कारण,** यथा—लॉटरी का सुख; जोड़ों के दर्द से (xvii) **गुणी, गुण,** यथा—गालों की लालिमा; सूरज के तेज से; मुख का सौंदर्य (xviii) **समानाधिकरण,** यथा—हत्या का पाप; चोरी का दोष (xix) **कर्तृ, कर्म** (से रचित), यथा—जयशंकर प्रसाद की कामायनी; मीराँ के पद; तुलसी का मानस (xx) **कर्म, कर्तृ** (के लेखक), यथा—गोदान के प्रेमचन्द; कविता का रचयिता; लेख की लेखिका। इन के अतिरिक्त अन्य प्रयोग सन्दर्भ तथा अर्थ ये भी हैं—**में रखा/रखी,** यथा—ग्लास का दूध; शीशी की दवाई; **रखने का पात्र,** यथा—दूध का ग्लास; दवा की शीशी; **में लगे (हुए),** यथा—क्यारी के पौधे; गमले की तुलसी; **की क़ीमत का,** यथा—दस रुपये के गेहूँ; सौ रुपये का घी; **लम्बा,** यथा—नौ गज़ की साड़ी; छह मीटर का साफ़ा; **भर की,** यथा—चार घंटे की छुट्टी; दो घंटे का अवकाश; **के लिए,** यथा—खाने की जगह, लेटने का स्थान; पीने का पानी; पूजा के फूल; **पूरा/सब,** यथा—बरात की बरात; कुनबा का कुनबा; **अधिक,** यथा—झुंड के झुंड; के **स्थान पर,** यथा—राई का पर्वत; राजा का रंक; **सिर्फ़/केवल/महज़;** यथा—यह तो बात की बात है (/थी); **से/द्वारा किया हुआ;** यथा—नौकरानी का काम; मज़दूर का काम; **से उत्पन्न,** यथा—छूत की बीमारी, बड़े बाप का बेटा; चाँद की चाँदनी; दशरथ के पुत्र 2. **संज्ञा+के+संज्ञा।** प्रयोग-संदर्भ—(i) **नियमितता,** यथा—रोज़ के रोज़; साल के साल; महीने के महीने (ii) **स्वजनता,** यथा—दशरथ के तीन रानियाँ थीं। मेरे एक बेटा हुआ (/है/हुआ है/हुआ था)। मधु के एक बेटी और दो बेटे हैं। तुम्हारे (±पास) दो गायें हैं तो मेरे (±पास) भी दो भैंसे हैं। 3. **संज्ञा+का/की/के+विशेषण।** प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **की दृष्टि से,** यथा—बात का धनी; दिल की छोटी; घर के ग़रीब 4. **संज्ञा+का/की/के+क्रिया।** प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **उपयुक्त,** यथा—यह तो मेरे काम की है, पर वह किसी काम की नहीं है। तुम तो कुछ मतलब के हो भी, लेकिन वे तो किसी मतलब के नहीं निकले (/हैं) 5. **संज्ञा+का/की/के+पूर्ण कृदन्त।** प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **के द्वारा,** यथा—शीला की (/मेरी) लिखी हुई पुस्तक; तुम्हारा देखा हुआ मकान; बच्चों के बनाए हुए खिलौने। यह पुस्तक मेरी लिखी हुई है। वह मकान तुम्हारा देखा हुआ था। ये खिलौने बच्चों के बनाए हुए होंगे। 6. **संज्ञा+की±बात।** प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **से संबंधी,** यथा—काफ़ी समझाया, पर उसने मेरी एक (बात) न मानी। आने की (बात) भी तय हो जाए; दिल की (बातें) दिल में ही रह गईं। **7. नहीं+संज्ञार्थक क्रिया+का/की/के।** प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **असमर्थता,** यथा—वे (आज) नहीं आने के (=वे आज नहीं आएँगे); हरीश का मकान इस महीने नहीं पूरा होने का (=हरीश का मकान इस महीने पूरा नहीं हो पाएगा); मीता

बैंगन की सब्ज़ी नहीं खाने की (= मीता बैंगन की सब्ज़ी नहीं खाएगी) 8. **विशेषण +का/की/के+ विशेषण**। प्रयोग-सन्दर्भ —(i) **निरादर**, यथा—मूर्ख का मूर्ख; बुद्धू का बुद्धू; बेवकूफ़ के बेवकूफ़, तुम बुद्धू की बुद्धू ही रहीं, (ii) **अविकार**, यथा—कोरा का कोरा; यह घड़ा कोरा का कोरा रखा है। 9. **कहाँ/कहीं/कब+ का/की/के**। प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **निषेध**, यथा—तुम कहाँ/कब के ईमानदार (/पहलवान) हो (=तुम ईमानदार/पहलवान नहीं हो); वह कहाँ/कब का लेखक (/कवि/चिन्तन/साहित्यकार/योद्धा/सच्चा/ईमानदार/भलामानस) है? (ii) **निरादर**, यथा—उल्लू (/गंदा/बेईमान/दुष्ट/चोर/नालायक/बदमाश) कहीं का। (यह पदबन्ध क्रियारहित वाक्य होता है) (iii) **देर/ (से)**, यथा—वह (/वे) कब की (/का/के) बैठी (/बैठा/बैठे) हैं (/हैं) (= वह बहुत देर से बैठी/बैठा है) 10. **स्थान/समय+ का/की/के**। प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **-वाला (/घटित)**, यथा – कल की मीटिंग; आज की बातें; कल का नाश्ता; उधर का गुसलखाना; ऊपर का कमरा; नीचे की सीढ़ियाँ (ii) **निरादर**, यथा – कल की छोकरी; कल का लौंडा; चार दिन का छोकरा 11. **स्थानवाचक**+का/की/के+स्थानवाचक। प्रयोग-सन्दर्भ—(i) **विशेष परिवर्तन/ अपरिवर्तन**, यथा—वह कहाँ की कहाँ पहुँच गई और तुम वहीं की वहीं रह गईं। मैं तो जहाँ का तहाँ रह गया और तुम कहाँ के कहाँ पहुँच गए।

जटिल परसर्ग/परसर्गीय शब्दावली—की/के/से+संज्ञा/विशेषण/क्रियाविशेषण कृदन्त/पूर्वसर्ग/अव्यय से बने परसर्ग जटिल परसर्ग कहे जाते हैं। इन के उत्तर भाग का शाब्दिक अर्थ प्रायः यथावत् रहता है और नियमतः वही सारे परसर्ग का अर्थ होता है। उत्तर भाग के पुल्लिंग होने पर 'के/से'; स्त्रीलिंग होने पर 'की' का प्रयोग होता है। 'से' से युक्त छह जटिल परसर्ग हैं—समयवाची (से पहले, से पूर्व), स्थानवाची (से ऊपर, से आगे, से पीछे, से बाहर)। जटिल परसर्गों के दोनों घटकों के मध्य अवधारक निपात या अन्य स्पष्टीकरण शब्द आ सकते हैं, यथा—मन्दिर के ही सामने; पोस्ट ऑफ़िस के ठीक ऊपर; देश के काफ़ी अन्दर तक। समयवाची शब्दों के पूर्व संख्यावाची शब्द आने पर 'के/से' का लोप हो जाता है, यथा—चार दिन पूर्व; कई सप्ताह पहले; कुछ महीने बाद। 'के' के साथ आ कर जटिल परसर्ग बनानेवाले शब्द हैं—आगे/सामने/सम्मुख/समक्ष/पीछे/पहले/बाद/मध्य/ बीच/दौरान/दरम्यान/वक़्त/समय/कारण/मारे/बहाने/प्रति/लिए/वास्ते/साथ/ अतिरिक्त/ बिना/अलावा/सिवा/अन्दर/भीतर/अन्तर्गत/ऊपर/पास/आसपास/निकट/बदले/बजाए/नीचे/ अधीन/मातहत/समान/बराबर/लगभग/क़रीब/अनुसार/मुताबिक/लायक/योग्य/क़ाबिल/ अनुकूल/प्रतिकूल/विरुद्ध/ख़िलाफ़/बावजूद। '**की**' के साथ आ कर जटिल परसर्ग बनानेवाले शब्द हैं—बदौलत/बाबत/ख़ातिर/तरफ़/ओर/जगह/अपेक्षा/बनिस्बत।

संयुक्त परसर्ग—दो सामान्य या एक जटिल+एक सामान्य परसर्ग से बने परसर्ग को 'संयुक्त परसर्ग' कहते हैं; यथा—में से, पर से, के आधार पर,

के बारे में, के संबंध में, के सिलसिले में, के उपलक्ष में, के संदर्भ में, के बराबर में, के क़रीब में, के नज़दीक में, के स्थान में, के बग़ल से, की वजह से, की तुलना में, की ओर से, की तरफ़ से, के सामने से, के आगे से, के अन्दर से, के नीचे से, के बीच से, के ऊपर से, के ऊपर तक, के अन्दर तक, के बीच तक। इन परसर्गों के उत्तर भाग में 'से/तक' और पूर्व भाग में 'में/पर/की/के' आते हैं।

स्थानसूचक जटिल रसर्ग दिशा सूचना के लिए 'से' आदि परसर्ग लेते हैं, यथा—गुब्बारा मुंडेर के ऊपर गिरा—गुब्बारा मुंडेर के ऊपर से गिरा। स्थान-वाची, कालवाची अव्यय तथा इन से बने जटिल परसर्गों के अर्थ में विशेष अन्तर नहीं होता, यथा—मैं अन्दर सोता हूँ—मैं मकान के अन्दर सोता हूँ। माँ ऊपर गई हैं—माँ मकान के ऊपर गई हैं—चोर मकान के ऊपर से गया है। इन वाक्यों में स्थान; दिशा+स्थान, संदर्भित स्थान+दिशा का बोध हो रहा है। 'इस, उस, किस, किसी, इसी, उसी, के बाद 'के' का ऐच्छिक लोप हो जाता है; यथा—इस/इसी संबंध में, इसी/उसी ओर/ऐसा 'बीच, लिए, बारे में, संबंध में, तरह, समय- वक़्त, ओर' के साथ होता है। जटिल तथा संयुक्त परसर्गों के प्रयोग-सन्दर्भ तथा अर्थ निम्नलिखित हैं—

के आगे—(1) दो वस्तुओं/व्यक्तियों का आगे-पीछे होना, यथा—मयूर, मेरे पीछे नहीं मेरे आगे (-आगे) चलो। (2) किसी वस्तु का अग्र भाग, यथा—गली के आगे एक छोटा-सा मन्दिर है (3) वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ना, यथा—अच्छा, आगे बोलो, क्या हुआ? पीछे नहीं, आगे आओ (4) स्थिति का सामना, यथा—तानाशाही के आगे हम नहीं झुकेंगे (5) समक्ष, यथा—बड़े भिखारी के आगे छोटे भिखारी ने हाथ पसार दिया (6) बाद में, यथा—लाक्षागृह की घटना के आगे पांडवों का क्या हुआ? (7) 'से आगे' -तर, -तम भाव, यथा—पढ़ाई में मयूर मंजरी से (/सभी छात्रों से) आगे है। (8) 'से आगे' दूरी क्रम में आगे बढ़ना, यथा—तुम इधर से आगे बढ़ोगे तो एक नाला पड़ेगा (9) 'आगे से' वस्तु; दूरी, समय के अग्र भाग से संबंधित, यथा—गन्ने को आगे से तोड़ कर फेंक दो। चलो, आगे से ही मिठाई लेंगे। कसम खाओ, आगे से ऐसा नहीं करोगे। **के सामने**—(1) दो वस्तुओं का एक दूसरी की ओर मुँह कर के होना, यथा—मन्दिर के सामने ही मस्जिद है। (2) परिस्थिति का सामना, यथा—उन्हों ने अत्याचार के सामने झुकना नहीं सीखा था। (3) 'सामने से' वर्तमान स्थिति से अलगाव, यथा—भाग जाओ, मेरे सामने से। **के समक्ष/सम्मुख**—(1) किसी वस्तु/व्यक्ति का किसी के सामने प्रस्तुत होना, यथा—आप के समक्ष हम लोग निवेदन करते हैं कि ....। अपराधी को कल ही मेरे सम्मुख/समक्ष उपस्थित किया जाए। **के पीछे**—(1) दो वस्तुओं/व्यक्तियों का आगे-पीछे का क्रम, यथा—राम के पीछे सीता और सीता के पीछे लक्ष्मण थे (2) सामने की विरुद्ध दिशा, यथा—मन्दिर के पीछे बड़ा तालाब है। (3) परिस्थिति का सामना, यथा—तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो? (4) 'पीछे'

बाद में, यथा—इस मुद्दे पर पीछे विचार किया जाएगा। (7) 'से पीछे' -तर, -तम भाव, यथा—पिछड़ेपन में हमारा देश किसी से पीछे नहीं है (5) के लिए, यथा—झूठी शान के पीछे वह बरबाद हो गया। (6) के कारण, शराब के पीछे तुम्हें क्या-क्या नहीं सुनना पड़ता। **के पहले**—(1) स्थान-क्रम, यथा—रामबाग के पहले बाईपास का जवाहर पुल पड़ता है (2) काल-क्रम, यथा—शाम पाँच बजने के पहले ही यह काम पूरा होना है (3) क्रिया-क्रम, यथा—मैसूर जाने के पहले आप को हमारे यहाँ आना है (4) 'स्थान/काल सूचक विशेषक+के पहले', यथा—दिल्ली के 195 किलोमीटर पहले आगरा पड़ता है। सूरज डूबने के कुछ देर पहले ही हम वहाँ पहुँच जाएँगे। (5) 'से पहले' स्थान/काल/क्रिया बिन्दुओं का अलगाव, यथा—रामबाग से पहले बाईपास का जवाहर पुल है। शाम छह बजने से पहले ही तुम वहाँ चले जाना। आगरा जाने से पहले आप हमारे यहाँ अवश्य आएँ। **के पश्चात्/के बाद**—(1) स्थान काल/क्रिया-क्रम, यथा—ग्वालियर के बाद कौन-सा बड़ा स्टेशन पड़ेगा। रात को नौ बजे के बाद घर से बाहर निकलना उचित नहीं है। मेरे लौट आने के बाद ही तुम वहाँ से जा पाओगे। तुम्हारे लौट आने के कुछ देर बाद ही...... (2) 'के बाद से' किसी समय विशेष के बाद किसी क्रिया-व्यापार का आरम्भ होना, यथा—साढ़े दस बजे के बाद से (शाम साढ़े पाँच बजे तक) मिट्टी का तेल बँटेगा (3) 'बाद में' संज्ञा न होने पर काल-क्रम, यथा—ऐसा न हो कि बाद में तुम्हें पछताना पड़े। तुम खा लो, बाद में मैं खा लूँगा। **के बीच में/के मध्य**—(1) स्थान/काल/क्रिया-व्यापार का मध्यवर्ती क्रम, यथा—गली के बीच में क्यों खड़े हो ? कल सुबह नौ और दस बजे के बीच में आना। तुम कुछ कहने के बीच में ही क्यों रुक गये थे ? (2) 'के बीच से/बीच से' क्रिया-व्यापार के मध्यवर्ती बिन्दु से आरम्भ, यथा—इस लकड़ी को बीच से काटो। गली के बीच से जाओगे तो जल्दी पहुँचोगे। (3) संज्ञा न होने पर 'बीच में' यथा—तुम बीच में मत बोला करो। बीच में क्यों खड़े हो ? बोलते-बोलते बीच में क्यों रुक गए ? **के दौरान/के दरम्यान**—(1) किसी क्रिया-व्यापार की पूर्ण अवधि के मध्य सम्पन्न अन्य क्रिया-कलाप, यथा—विदेश यात्रा के दौरान/के दरम्यान आप को क्या-क्या अनुभव हुए। प्रधानमन्त्री के भाषण के दौरान/के दरम्यान कई बार तालियाँ बजीं। **के समय/के वक़्त**—(1) किसी क्रिया-व्यापार की अवधि के मध्य, यथा—कश्मीर-यात्रा के समय/के वक़्त शुरू से ही परेशानियों का सामना करना पड़ा था। **के कारण/की वजह से**—(1) कारण-सूचना, यथा—पसीने में पानी पीने के कारण (/की वजह से) तुम्हें ज़ुकाम हुआ है। **के मारे**—(1) प्रायः कष्टप्रद कारण-सूचना, यथा—भूख/प्यास के मारे दम निकला जा रहा है। तुम्हारे मारे तो मैं परेशान हो गया। **के आधार पर**—(1) किसी कार्य-व्यापार का किसी अन्य कार्य-व्यापार आदि पर आधारित होना, यथा—इन गवाहियों के आधार पर यह माना जा

सकता है कि ......**के बहाने** (±से)—(1) अवास्तविक कारण को कार्य का कारण बनाना, यथा—चाय पीने के बहाने (से) लोग कार्यालय से दो-दो घंटे ग़ायब रहते हैं। **की बदौलत**—(1) प्रायः किसी अच्छे कार्य के कारण की सूचना, यथा—मुझे इतनी अच्छी नौकरी आप की बदौलत ही मिल सकी है। **के सम्बन्ध में/के बारे में/की बाबत**—(1) किसी वस्तु/घटना/क्रिया से किसी विचार का संबंध, यथा—इस लेख के संबंध में (/के बारे में/की बाबत) आप की क्या राय है? मुझे तुम्हारी बेटी से संबंध में (/के बारे में/की बाबत) कुछ नहीं मालूम। **के सन्दर्भ में**—(1) प्रसंग विशेष के संबंध में विचार, यथा—कार्यशाला के सन्दर्भ में हमें लोगों से खुल कर चर्चा करनी चाहिए। **के सिलसिले में**—(1) किन्हीं दो घटनाओं का क्रम तथा संबंध बोध, यथा—बिजनेस के सिलसिले में इधर आना-जाना पड़ता ही है। **के उपलक्ष में**—(1) किसी कार्य को कारण मानते हुए दूसरा कार्य करना, यथा—पुत्र-जन्म के उपलक्ष में अच्छा-सा भोज देना ही पड़ेगा। **के प्रति**—(1) किसी के संदर्भ में उत्पन्न विचार आदि, यथा—आप सब कर्मचारियों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ। **के लिए**—(1) साधन, यथा—नहाने के लिए एक बाल्टी गर्म पानी चाहिए। (2) प्रयोजन, यथा—यह साड़ी किस के लिए ख़रीदी है? (3) सम्बन्ध, यथा—इधर-उधर घूमने के लिए मेरे पास समय कहाँ है? (4) क्रिया-क्रम, यथा—अब आप बोलने के लिए खड़े हो जाइए। (5) कारण, यथा—सभी को देखने के लिए आँखें, सुनवे के लिए कान मिले हैं। (6) स्थान/समय/विचारादि के सन्दर्भ में, यथा—सभी गाँवों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था होनी चाहिए। कुछ भविष्य के लिए भी बचा कर रखना चाहिए। आगरा के विकास के लिए कुछ तो किया जाना चाहिए। (7) 'के नाम पर', यथा—भगवान के लिए (/के नाम पर) मुझे छोड़ दो। **के वास्ते/की ख़ातिर**—(1) प्रयोजन, यथा—तुम्हारे वास्ते (/तुम्हारी ख़ातिर) मैं जान की बाज़ी लगा दूँगा। **के अतिरिक्त**—(1) निश्चित जानकारी के आधार पर अन्य जानकारी की जिज्ञासा, यथा—वेतन के अतिरिक्त और क्या सुविधाएँ मिलेंगी? **के सिवा/के अलावा**—(1) दो विचारादि का व्यतिरेक, यथा—उस की शर्त मानने के सिवा (/के अलावा) और कोई चारा भी तो नहीं था। (2) विचारादि का साहचर्य, यथा—कुछ लोग घर के अलावा कार्यालय को भी आरामगाह मानते हैं। **के बिना**—(1) अनिवार्य साहचर्य, यथा—मैं तुम्हारे बिना अकेली नहीं रह सकती। (2) अनिवार्य साधन, यथा—तुम चश्मे के बिना कैसे पढ़ लेते हो! (3) अनिवार्य क्रिया-व्यापार, यथा—उन से पूछे बिना मैं कहीं नहीं जाऊँगी। **की माफ़त/के ज़रिए/के द्वारा**—(1) करण, यथा—तार की माफ़त (के ज़रिए/के द्वारा) भी मनीऑर्डर भेजा जा सकता है। (2) भौतिक साधन, यथा—इस छोटी-सी मशीन की माफ़त (/के ज़रिए/के द्वारा) तुम दुनिया भर की जानकारी प्राप्त कर सकते हो। (3) प्रेरित कर्ता के साथ, यथा—नौकर की माफ़त (/के ज़रिए/के द्वारा) गोपनीय काम कराना ख़तरा मोल लेना है। **के आसपास**—(1) चारों ओर की निकटता, यथा—हमारे

घर के आसपास कई अफ्रीकन रह रहे हैं। **के निकट**—(1) के नज़दीक, यथा—मेरे निकट आ कर बैठो। **के पास**—(1) अधिकार, यथा—मेरे पास भी ओल्ड टेस्टामेन्ट है (2) गन्तव्य, यथा—कल डॉक्टर के पास जाना (3) निकटता, यथा—मन्दिर के पास ही नाला बहता है **की तरफ़/की ओर**—(1) दिशा सूचन, यथा—गाय घर की ओर/तरफ़ जा रही है (2) के बारे में, यथा—आप अपनी तन्दरुस्ती (/अपने खाने-पीने) की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते (3) निर्दिष्ट दिशा, यथा—इस/उस/दोनों/किस/दायीं/बायीं/चारों ओर (4) **'की ओर से'**—(i) संबद्ध दिशा से अलगाव, यथा—दोनों ओर से ईंट-पत्थर फेंके गए थे (ii) सम्बद्ध वस्तु/क्रिया/व्यक्ति से अलगाव, यथा—आप को इस बच्चे (/घर/काम) की ओर से निश्चिन्त रहना चाहिए (iii) प्रतिनिधित्व, यथा—संस्थान के कर्मचारियों की ओर से मैं आप को धन्यवाद देता हूँ। **के नीचे**—(1) दिशा, यथा—आओ, उस पेड़ के नीचे बैठें। (2) अधीनता, यथा—तुम्हारे नीचे कितने लोग काम करते हैं? (3) 'नीचे'—अवनति, यथा—स्वस्थ नागरिकता के अभाव में देश नीचे गिरता चला जा रहा है। (4) **'के नीचे से'**—नीचे से ऊपर की ओर, यथा—छप्पर के नीचे से ज़रा बाहर तो आओ। **के अधीन/के मातहत**—(1) अधीनता, यथा—तुम्हारे मातहत (/अधीन) कितने लड़के काम करते हैं। **के समान**—(1) समानता, यथा—मेघनाद बादल के समान गरजता था। **की तरह**—(1) समानता, यथा—आदर्शवादी की दृष्टि से तो हमें हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी बनना चाहिए। (2) विशिष्ट समानता, यथा—वे तुम्हारी तरह ग़ैर ज़िम्मेदारी से काम नहीं करते। **के बराबर**—(1) भौतिक समानता, यथा—मन्त्री को उन के वज़न के बराबर सिक्कों से तोला गया (2) वैचारिक समानता, यथा—हमारे ख़्यालात गहराई में कबीर साहब के ख़्यालात के बराबर होने चाहिए। (3) निकटता, यथा—हमारे कॉलेज के बराबर एक नदी बहती है (4) लगभग/संख्या में निकट साम्य, यथा—मीटिंग में 200 (के बराबर) लोग तो आए ही होंगे (5) गुण साम्य, यथा—पड़ोसी हर बात में हमारे बराबर होना चाहता है। (6) समय साम्य, यथा—इस आसन में भी पहलेवाले आसन के बराबर समय लगाना चाहिए (7) स्थान साम्य, यथा—महात्मा गांधी रोड की चौड़ाई ठंडी रोड की चौड़ाई के बराबर होगी। **के बदले/के स्थान पर/की जगह**—(1) व्यक्ति/वस्तु/क्रिया-स्थानापत्ति, यथा—शैम्पू की जगह शिकाकाई का प्रयोग किया करो। **की तुलना में**—(1) वैषम्यमूलक तुलना, यथा—मेरे बाप की तुलना में मेरी माँ ज़्यादा काम करती है। **के बजाए/की बनिस्वत/की अपेक्षा**—(1) वैषम्यमूलक तुलना, यथा—घोड़े की अपेक्षा खच्चर ज़्यादा बोझ ढो सकता है। (2) कुछ लोग पढ़ाने की अपेक्षा (/के बजाए/की बनिस्वत) नक़ल कराने में ज़्यादा विश्वास रखते हैं। **के बग़ल में**—(1) भौतिक निकटता, यथा—कॉलेज के बग़ल में ही मेरा घर है। **के अनुसार/के मुताबिक़**—(1) व्यवहार-अनुसरण, यथा—तुम ने मेरे कहने के अनुसार (/के मुताबिक़) काम पूरा नहीं किया (2) समय/वक़्त की पाबन्दी, यथा—हमारे पिता

जी सब काम समय सारिणी के अनुसार पूरा करते हैं। **के योग्य/के क़ाबिल/के लायक**—(1) योग्यतासूचना, यथा—सुनिए, यह मुहल्ला (/काम) आप के योग्य (/क़ाबिल/लायक) नहीं है। **के अनुकूल**—(1) दो व्यवहारों की अनुकूलता, यथा—पंजाब की जलवायु नारियल के अनुकूल नहीं है। **के प्रतिकूल**—(1) दो व्यवहारों की प्रतिकूलता, यथा—तुम्हारा यह आचरण कुल की मर्यादा के प्रतिकूल है। **के विरुद्ध/के ख़िलाफ़**—(1) विरोधसूचना, यथा—तुम मेरी आज्ञा के विरुद्ध (/के खिलाफ़) कोई भी काम नहीं करोगे। **के बावजूद**—(1) कारण-कार्य विरोध, यथा—इतनी सारी मुसीबतों के बावजूद (भी) वह आगे बढ़ता ही गया। **के लगभग**—(1) संख्या युक्त परिमाण साम्य, यथा—वह एक बार में आधा किलो के लगभग घी खा लेता है। **के क़रीब**—(1) संख्यायुक्त परिमाण साम्य; यथा—मैं तुम्हें रोज़ाना एक घंटे के क़रीब पढ़ा दिया करूँगा। (2) स्थान-नैकट्य, यथा—भीड़ पार्लियामेंट के क़रीब पहुँच कर नारेबाज़ी करने लगी।

में से—(1) अलगाव, यथा—उन में से एक सेब तुम भी ले सकती हो। **पर से**—1. अलगाव, यथा—चोर छत पर से हो कर भागा है। **में का/की/के**—(1) अवस्थित, यथा—इस डिब्बे में का एक लड्डू मुझे भी चाहिए। **पर का/की/के**—(1) अवस्थित, यथा—उस के चेहरे (पर) की सारी रौनक़ ख़त्म हो चली है। **तक का/की/के**—(1) निश्चित सीमा, यथा—देर रात तक की घटनाओं का समाचार। चंडीगढ़ से अमृतसर तक के गांव और कस्बे। **की/के में**—(1) सम्बद्ध वस्तु के अन्दर, यथा—मेरी घड़ी पांच बजा रही है, आप की में क्या बज रहा है? **के अन्दर तक की**—(1) सम्बद्ध वस्तु की निर्दिष्ट सीमा से संबंधित, यथा—पड़ोसिन को हमारे घर के अन्दर तक की सभी बातें पता हैं। **के ऊपर तक की**—(1) सम्बद्ध वस्तु की निर्दिष्ट सीमा से संबंधित, यथा—क़िले के ऊपर तक की दीवार पर पहुँचना मुश्किल था। **के पहले तक का**—(1) सम्बद्ध घटना की निर्दिष्ट सीमा से संबंधित, यथा—पुलिस के आने के पहले तक की बयानबाज़ी और बाद की बातों में काफ़ी फ़र्क़ है।

15
सर्वनाम

वे विकारी शब्द जो संबोधन के अतिरिक्त अन्य कारकों में संज्ञा का स्थान ले सकते हैं, **सर्वनाम** कहलाते हैं, यथा—मैं, हम, कोई, कुछ आदि। भाषा-व्यवहार में सुगमता स्पष्टता, कसाव तथा सुन्दरता लाने की दृष्टि से सब (<सर्व) नामों (संज्ञा, विशेषण) के स्थान पर प्रयोग किए जानेवाले शब्दों 'सर्वनामों' की आवश्यकता पड़ती है। सभी भाषाओं में पाए जानेवाले सर्वनाम आकार में छोटे और संख्या में कम होते हैं। सर्वनामों की रूपतालिका अन्य शब्द-भेदों से भिन्न, विचित्र होती है। उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष सर्वनामों को प्रधान और शेष सर्वनामों को अप्रधान पुरुष कह सकते हैं। वाक्यों में सर्वनाम कर्ता, कर्म, पूरक स्थान पर आ सकते हैं, यथा—आप कहाँ जा रहे हैं? (कर्ता)। सिपाही उसे पीट रहा था। (कर्म)। वे कौन हैं? (पूरक)।

सर्वनाम संज्ञा, विशेषण से कुछ बातों (स्थानापत्ति) में समान होते हैं, किन्तु कुछ बातों (रूप-रचना) में भिन्न होते हैं। संज्ञा संबोधन स्थान पर आ सकता है, किन्तु सर्वनाम कभी सम्बोधन स्थान पर नहीं आ सकता। संज्ञा, सर्वनाम के सुप् प्रत्यय भिन्न-भिन्न होते हैं। विशेषण की भाँति प्रधान पुरुष सर्वनाम कभी भी संज्ञा के पूर्व विशेषक के स्थान पर नहीं आ सकते और न सर्वनामों में तुलनात्मक कोटियाँ होती है। सर्वनामों, विशेषणों के सुप् प्रत्यय भी भिन्न-भिन्न होते हैं। संरचना की दृष्टि से सर्वनाम दो प्रकार के होते हैं—(1) सरल/सामान्य (2) संयुक्त। **सरल/सामान्य सर्वनाम** एक शब्द इकाई होते हैं, यथा—मैं, आप, कोई, क्या आदि। **संयुक्त सर्वनाम** एकाधिक शब्द-इकाई होते हैं, यथा—जो कोई, कोई-न-कोई, हर एक आदि।

प्रयोग तथा अर्थ की दृष्टि से सरल/सामान्य सर्वनाम छह प्रकार के होते हैं—1. पुरुषवाचक 2. निर्देशवाचक 3. अनिश्चयवाचक 4. सम्बन्धवाचक 5. प्रश्नवाचक 6. निजवाचक

1. **पुरुषवाचक सर्वनाम** वक्ता, श्रोता तथा विषय का बोध कराते हैं, यथा—मैं, तुम, वह। वक्ता (बोलनेवाला/कहनेवाला) लेखक (लिखनेवाला) स्वयं को 'मैं' या 'हम' कहते हैं 'मैं, हम' **उत्तम पुरुष** या प्रथम पुरुष कहलाते हैं। श्रोता (सुननेवाले) / पाठक (पढ़नेवाले) को 'तू, तुम, आप' कहा जाता है। 'तू, तुम, (आदरार्थ) आप' **मध्यम पुरुष** या द्वितीय पुरुष कहलाते हैं। कथ्य विषय (वस्तु या व्यक्ति) को 'यह, वह' से संकेतित किया जाता है। समीपस्थ 'यह', दूरस्थ 'वह', आदरार्थ 'आप' **अन्यपुरुष** या तृतीय पुरुष कहलाते हैं। इन के अतिरिक्त अन्य सभी सर्वनाम 'कोई, कुछ, जो, सो, क्या, कौन' भी अन्य पुरुष कहलाते हैं। प्रमुखता की दृष्टि से उत्तम, मध्यम पुरुष को प्रधान तथा अन्य पुरुष को अप्रधान पुरुष कहते हैं। पुरुषवाचक सर्वनामों की कुछ प्रयोग विशेषताएँ ये हैं—

(क) आदरार्थ 'आप' के साथ बहुवचन की क्रिया आती है। (ख) कुछ सन्दर्भों में 'मैं' में अहंभाव की झलक होने पर प्रायः नम्रता-प्रदर्शनार्थ 'हम' का प्रयोग किया जाता है। (ग) राजा-महाराजा, मन्त्री, उच्च पदस्थ व्यक्ति दर्प/बड़प्पन/श्रेष्ठता के कारण 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग करते हैं। (घ) सम्पादक, लेखक, समाज-प्रतिनिधि आदि प्रतिनिधित्व के कारण 'मैं' के स्थान पर हम' का प्रयोग करते हैं। (ङ) नगरों में उच्च परिवारों की, अच्छी पढ़ी-लिखी महिलाएँ महत्त्व/उच्चता -प्रदर्शन के कारण 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग करती हैं। (च) अपने साथियों की ओर से सामूहिक प्रतिनिधि के रूप में बोलनेवाला वक्ता 'हम' का प्रयोग करता है। ऐसे वाक्यों में अनेकार्थी बहुवचन न हो कर समाहार्थी बहुवचन होता है। (छ) कुछ स्थलों पर 'हम' का प्रयोग एक व्यक्ति के लिए होने के कारण बहुवचन-निश्चितता के लिए 'हम लोग, हम सब, हम दोनों' का प्रयोग होने लगा है, यथा—हम (/हम लोग/हम दोनों) इस काम को कर लेंगे, तुम निश्चिन्त रहो (ज) वक्ता, श्रोता दोनों का समाहार प्रदर्शन 'हम तुम, हम दोनों' से किया जाता है, यथा –माँ को बाज़ार जाने दो, हम तुम (/हम दोनों) दावत में चलेंगे। यह हम दोनों की अपनी सम्पत्ति है। (झ) 'तू' का प्रयोग छोटे बच्चे, गँवार/अशिक्षित या निम्नस्तरीय व्यक्ति; पति-पत्नी के मध्य प्यार के अधिक उद्वेग में, बराबरवाले, अधिक सामीप्य/आत्मीयता प्रदर्शनार्थ माँ, बड़ी बहन, ईश्वर के लिए; क्रोध में उपेक्षा/अनादर/अवज्ञा/तिरस्कार/तुच्छता/अपमान प्रदर्शन या गाली देने के समय किसी के लिए भी किया जाता है। सामान्य बोलचाल में घनिष्ठ संबंध न होने पर 'तू' का प्रयोग असभ्यता की निशानी माना जाता है। (ञ) नित्य बहुवचन 'आप' का प्रयोग औपचारिकतावश अपरिचित व्यक्ति के लिए; आदर प्रदर्शन के लिए प्रत्यक्ष/परोक्ष में एक व्यक्ति के लिए किया जाता है। (ट) अधिक आदर/श्रद्धा व्यक्त करने के लिए अन्य पुरुष के लिए भी 'आप' का प्रयोग किया जाता है, यथा—लालबहादुर शास्त्री यद्यपि निर्धन परिवार में जन्मे थे, तथापि आप के विचार

बहुत ऊँचे थे। (ठ) 'तुम' का प्रयोग अनौपचारिकता में; परिचित/अपरिचित व्यक्ति के लिए बराबर का या स्वयं से छोटा दर्जा प्रदर्शन के समय किया जाता है। (ड) एक से अधिक श्रोता होने पर प्रायः 'तुम, आप' के साथ 'सब/लोग' का प्रयोग किया जाता है। (ढ) अधिक नम्रता-प्रदर्शन के समय 'मेरा' के स्थान पर 'आप का' का प्रयोग देखा जाता है, यथा—गुप्ता जी, यह बच्चा किस का है?—जी, आप का ही बच्चा है।

2. **निर्देशवाचक सर्वनाम**—पास या दूर के विषय (व्यक्ति, पदार्थ) का निश्चित निर्देश करते हैं। इस सर्वनाम को निश्चयवाचक/संकेतवाचक भी कहा जाता है। निर्देशवाचक सर्वनामों को दो वर्गों में बाँट सकते हैं—(क) सामान्य (ख) विशिष्ट। सामान्य निर्देशवाचक के दो भेद किए जाते हैं—1. **निकटवर्ती/समीपवर्ती निर्देशक** पहुँच के अन्दर निकटस्थ या प्रत्यक्ष विषय वस्तु की ओर 'यह, ये' से संकेत करते हैं। 2. **दूरवर्ती निर्देशक** दूरस्थ, अप्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष किन्तु पहुँच से दूर विषय वस्तु की ओर 'वह, वे' से संकेत करते हैं। **विशिष्ट निर्देशक** आदरार्थ 'आप' किसी व्यक्ति (निकटवर्ती या दूरवर्ती) को संकेतित करता है।

(क) एक ही वाक्य में प्रयुक्त दो संज्ञाओं में से पहली के लिए दूरवर्ती, दूसरी के लिए निकटवर्ती सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है, यथा—सन्तों और असन्तों में मुख्य अन्तर यह है कि **वे** अन्य-रक्षा में स्व-प्राण देते हैं, और **ये** स्व-रक्षा में अन्यों के प्राण हर लेते हैं। (ख) निश्चयवाचक सर्वनाम पदबन्ध, उपवाक्य के स्थानापन्न भी होते हैं, यथा—भारत कृषि प्रधान देश है, **यह** सब जानते हैं। तुम ने यथाशक्ति परिश्रम किया, **इसी** से अच्छे अंकों में उत्तीर्ण हुए हो। (ग) कभी-कभी एक व्यक्ति के लिए 'यह, वह' के स्थान पर आदरार्थ 'ये, वे' का प्रयोग होता है, यथा—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी युग-प्रवर्तक लेखक माने जाते हैं। **उन** का जन्म रायबरेली ज़िले में सन् 1864 ई० में हुआ था। (घ) संस्कृत के 'सः, सा, तत्', अँगरेज़ी के 'ही, शी, इट' पुरुषवाचक अन्य पुरुष सर्वनाम हैं; अँगरेज़ी 'दिस, दैट' निश्चयात्मक हैं। हिन्दी में इस प्रकार का विभाजन नहीं है।

3. **अनिश्चयवाचक सर्वनाम**—पास या दूर के किसी अनिश्चित विषय (व्यक्ति, वस्तु) के बारे में बोध कराते हैं। किसी अनिश्चित व्यक्ति के बारे में 'कोई' शब्द से सूचना मिलती है। किसी अनिश्चित (अप्राणिवाचक) पदार्थ के बारे में 'कुछ' शब्द से सूचना मिलती है, यथा—वहाँ तो **कोई** सो रहा है। पैरों में **कुछ** पहन तो लो। 'क्या, कुछ' प्रायः अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण और अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण की भाँति प्रयुक्त होते हैं, यथा—कोई लड़की, कोई बात; कुछ लोग, कुछ फल; उधर कुछ (औरतें) नहा रही हैं, कुछ (लड़कियाँ) कपड़े धो रही हैं।

4. **सम्बन्धवाचक सर्वनाम** पूर्ववर्ती संज्ञा या सर्वनाम की व्याख्या करनेवाले

परवर्ती उपवाक्य से पूर्व आ कर दोनों उपवाक्यों में सम्बन्ध स्थापित करते हैं, यथा—यह मेरी (वह) बहन है जो दिल्ली में रहती है। मुझे वही चाहिए जो मैं कल लाया था। 'जो' व्यक्ति, पदार्थ के लिए प्रयुक्त हो सकता है। 'ओ' के साथ प्रायः 'वह' का प्रयोग होता है। कभी-कभी 'सो' का प्रयोग भी किया जाता है, यथा—जो करेगा सो भरेगा। 'जो, जिस, जिन' विशेषण का भी काम करते हैं। 'सो, तिस, तिन' विशेष्य के रूप में आ सकते हैं। 'सो' जो के साथ ही आने के कारण **नित्य संबंधी सर्वनाम** भी कहा जाता है। कुछ लोग 'सो' की गणना निर्देशवाचक 'दूरवर्ती' सर्वनाम में करते हैं। यथा—जो बोले सो (/वह) घी को जाए। संबंधवाची 'जो', नित्य संबंधी 'सो' एक ही संज्ञा के बदले आते हैं।

5. **प्रश्नवाचक सर्वनाम**—किसी व्यक्ति, पदार्थ या घटनादि के बारे में प्रश्न का बोध कराते हैं, यथा—'कौन' प्रायः प्राणियों के लिए और 'क्या' प्रायः अप्राणिवाचक (मानवेतर प्राणिवाचक) पदार्थों तथा भाववाचक संज्ञाओं के लिए प्रयुक्त होता है। (क) कर्ता कारक के दोनों वचनों में 'कौन' का एक ही रूप रहता है। 'क्या' अपरिवर्तित रहता है। (ख) लक्षण-ज्ञान हेतु अप्राणिवाचक के लिए 'कौन' और प्राणिवाचक के लिए 'क्या' का प्रयोग हो सकता है, यथा—साँप क्या है और मनुष्य क्या है, तुम नहीं जानते। पाप कौन है और पुण्य कौन है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

(ग) 'कौन, क्या' के कुछ विशिष्ट प्रयोग ध्यान देने योग्य हैं—वे मेरा क्या कर लेंगे ? तू मुझे क्या (ख़ाक) मारेगा ! तुम ने नाश्ते में आज क्या (/क्या-क्या) बनाया है ? कुछ ही घंटों में क्या से क्या हो गया ! घर में कौन (/कौन-कौन) बैठे हैं ? आप कौन-सी (कोठी) में रहते हैं ? क्या दिन में भी सो रहे हो ? (क्या = क्यों)। अरे, तुम यह क्या कर बैठे ?

6. **निजवाचक सर्वनाम**—पुरुषवाचक सर्वनाम का समानाधिकरण होता है। निजवाचक सर्वनाम 'आप' दोनों वचनों और तीनों पुरुषों में समान रूपी रहता है। 'आप' के अन्य समानार्थी शब्द 'स्वयं, (अपने) आप, ख़ुद, स्वतः, ख़ुद-ब-ख़ुद का अर्थ है—बिना किसी की सहायता या प्रेरणा के, यथा—वे आप/स्वयं आ जाएँगे। वह ख़ुद/आप ही गड्ढे में गिर रहा है। (क) निजवाचक 'आप' के साथ केवल '-ना/-नी/-ने' ही आते हैं, जब कि पुरुषवाचक 'आप' के साथ 'का/की/ के' आते हैं। (ख) वाक्य में कर्ता से सम्बद्ध संबंध कारक में केवल 'अपना/अपनी/अपने' का विशेषणवत् प्रयोग होता है, यथा—मीता ने अपनी पुस्तक पढ़ ली है ('मीता की' अशुद्ध प्रयोग)। उन्हों ने अपना घर बेच दिया ('उन का' अशुद्ध प्रयोग)। कौन अपने पिता के साथ आया है ! ('किस के' अशुद्ध प्रयोग)। मैं/वह/वे आप को अपना मानते हैं। (ग) एक से अधिक उपवाक्यों में तत्संबंधी कर्ता के साथ अपना/अपनी/अपने का प्रयोग होता है, यथा—मधु ने अपनी साड़ी पहनी है और रेखा ने

अपना सूट। (घ) संज्ञावत् प्रयुक्त 'अपने' के पश्चात् आवश्यकतानुसार 'को, से, में, पर, लिए' का प्रयोग होता है, यथा—तुम अपने को पहचानो। वे अपने में ही मग्न रहते हैं। वह अपने से ही कुछ कहता रहता है। मुझे अपने पर ही बहुत क्रोध आ रहा है। (ङ) अधिक बल देने के लिए 'अपने' के साथ अवधारक 'आप' का प्रयोग किया जाता है, यथा—तुम अपने-आप को पहचानो। वे अपने-आप में ही मग्न रहते हैं। वह अपने-आप से ही कुछ कहता रहता है। मुझे अपने-आप पर बहुत क्रोध आ रहा है। (च) अव्यय वत् प्रयुक्त 'अपने-आप' के स्थान पर 'स्वयं/ख़ुद' का प्रयोग सम्भव हैं, यथा—क्या इतना सारा काम तुम ने अपने-आप (/स्वयं/ख़ुद) किया है? (छ) कर्ता के तुरन्त बाद 'आप' का प्रयोग व्यावर्ती अवधारक (Exclusive emphatic) की भाँति होता है। यहाँ कर्ता बिना किसी अन्य की इच्छा के स्वयं ही क्रियाशील रहता है यथा—रोओ मत, बच्चे आप ही आ रहे होंगे (यह भी अव्ययवत् प्रयोग है। इसे निजवाचक का कर्तृरूप नहीं माना जा सकता)। (ज) अपना = निजी (विशेषणवत्) प्रयुक्त, यथा—क्या संस्थान किराये के भवन में है?—नहीं, संस्थान का अपना भवन है। क्या यह आप के भाई की गाड़ी है?—जी नहीं, यह मेरी अपनी गाड़ी है (झ) बहुवचन कर्ता होने पर 'अपना' की पुनरुक्ति, यथा—आप सब अपने-अपने स्थान पर बैठ जाएँ। बच्चो! सब अपनी-अपनी कॉपी निकालो। (ञ) सम्बन्ध कारक सर्वनाम (विशेषणवत् प्रयुक्त) पर बल देने के लिए अपना का प्रयोग, यथा—यह हमारा अपना काम है। रेल आप की अपनी सम्पत्ति है। उस की भी अपनी कोई मजबूरी होगी। (ट) 'अपना' का अनावश्यक तथा अशुद्ध प्रयोग—☆ अपना कौन है इस दुनिया में। ☆ अपने (/अपन) को भी कुछ मिल जाता तो भला हो जाता। ☆अपनी राय यही है कि………… । (ठ) कर्ता से असम्बद्ध कारक में 'अपना' नहीं आता, यथा—मैं/वह/वे उसके कमरे पर गए। (ड) कर्ता, कर्म (प्राणिवाचक) होने पर 'अपना' कर्ता से सम्बद्ध, यथा—उन्हों ने हनीफ़ को अपनी कोठी दिखाई। एक दिन मैं तुम सब को अपने घर ले जाऊँगा। अब हम तुम्हें तुम्हारे हाल पर छोड़े जा रहे हैं। (इस प्रयोग में कर्म के अनुरूप सम्बन्ध कारकीय शब्द आता है—'मुझे मेरे हाल पर; हमें हमारे हाल पर; आप को आप के हाल पर' आदि)। (ढ) वाक्य के कर्ता से 'अपना' का सम्बन्ध जुड़ता है, यथा—मैं ने अपने बच्चों को अपनी बहन के घर भेज दिया है। मैं ने अपने बच्चों को उन की बहन के घर भेज दिया है। मैं ने उन के बच्चों को अपनी बहन के घर भेज दिया है। मैं ने उन के बच्चों को उन की बहन के घर भेज दिया है। (ण) आप मुझे अपनी डायरी पढ़ लेने दें (डायरी आप की है/डायरी मेरी है) जैसे समस्यात्मक वाक्य का शब्द-क्रम से वांछित अर्थ प्राप्त हो सकता है—आप अपनी डायरी मुझे पढ़ लेने दें (—डायरी आपकी है)। आप, मुझे अपनी डायरी पढ़ लेने दें (—डायरी मेरी है)। (त) निजवाचक 'आप' का प्रयोग किसी अन्य व्यक्ति के निराकरण के लिए भी होता है, यथा—उन्हों ने मुझ से तो ठहरने को कहा और आप न जाने किधर

खिसक गए। तुम औरों को नहीं, अपने को सुधारने की सोचो। (थ) अवधारणार्थ 'आप' के साथ 'ही' जोड़ते हैं, यथा—मैं तो आप ही चला आया करूँगा। क्या तुम इस काम को आप ही कर लोगे ? यह पेड़ आप ही गिर गया।

संयुक्त सर्वनाम अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से सम्बन्धवाचक, निश्चयवाचक और अनिश्चयवाचक के समान हैं तथा संरचना की दृष्टि से दो सामान्य/सरल सर्वनामों तथा विशेषण आदि का योग होते हैं, यथा—जो कोई, सब कोई, हर कोई, और कोई, कोई और, जो कुछ, सब कुछ, और कुछ, कुछ और, कोई एक, कोई भी, कुछ एक, कुछ भी; हर एक, प्रत्येक; कोई न कोई, कुछ न कुछ; कोई-कोई, कुछ-कुछ

सर्वनाम-रूपान्तर—पुरुष, वचन तथा कारक के आधार पर होता है। सर्वनामों में लिंग भेद का अभाव है। संज्ञा की भाँति सर्वनामों के भी कारक-चिह्न रहित 'ऋजु' (/मूल/सरल/अविकृत) तथा कारक चिह्न-सहित 'तिर्यक्' (/विकृत) रूप होते हैं। वचन और कारक के आधार पर रूपावली की दृष्टि से सर्वनामों के चार उपवर्ग बनते हैं—

उपवर्ग—1. पुरुषवाचक (उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष) सर्वनामों की रूपावली
एक० **मैं**—मैं, मैं ने, मुझ को (/से/में/पर), मुझे, मेरा/मेरी/मेरे
बहु० **हम**—हम, हम ने (को/से/में/पर), हमें, हमारा/हमारी/हमारे
एक० **तू**—तू, तू ने, तुझ को (/से/में/पर), तुझे, तेरा/तेरी/तेरे
बहु० **तुम**—तुम, तुमने (/को/से/में/पर), तुम्हें, तुम्हारा/तुम्हारी/तुम्हारे
उभय० **आप**—आप, आप ने (/को/से/में/पर/का/की/के)

अवधारक 'ही' निपात के साथ आने पर इन के तिर्यक् रूप 'मुझ, हम, तुझ, तुम, आप' के रूप इस तरह के होते हैं—मुझी, हमीं, तुझी, तुम्हीं, आप ही।

उपवर्ग—2. निश्चयवाचक-(समीपवर्ती, दूरवर्ती), सर्वनामों की रूपावली
एक० **यह**—यह, इस ने (/को/से/में/पर/का/की/के), इसे
बहु० **ये**—ये, इन्हों ने, इन को (/से/में/पर/का/की/के), इन्हें
एक० **वह**—वह, उस ने (/को/से/में/पर/का/की/के), उसे
बहु० **वे**—वे, उन्हों ने, उन को (/से/में/पर/का/की/के), उन्हें

अवधारक 'ही' निपात के साथ आने पर इन के तिर्यक् रूप 'इस, इन्हों, उस उन्हों' के रूप इस तरह के होते हैं—इसी, इन्हीं, उसी, उन्हीं।

उपवर्ग—3. प्रश्नवाचक, सम्बन्धवाचक सर्वनामों की रूपावली
एक० **कौन, क्या**—कौन, क्या, किस ने (को/से/में/पर/का/की/के), किसे
बहु० **कौन, क्या**—कौन, क्या, किन्हों ने, किन को (/से/में/पर/का/की/के), किन्हें

एक० **जो**—जो, जिस ने (/को/से/में/पर/का/की/के), जिसे
बहु० **जो**—जो, जिन्हों ने, जिन को (से/में/पर/का/की/के), जिन्हें
एक० **सो**—सो, तिस ने (/को/से/में/पर/का/की/के), तिसे
बहु० **सो**—सो, तिन्हों ने, तिन को (/से/में/पर/का/की/के, तिन्हें
नित्य संबंधी 'सो' उस के अन्य रूपों का बहुत कम प्रयोग होता है।
उपवर्ग—4. अनिश्चयवाचक सर्वनामों की रूपावली
एक० **कोई**—कोई, किसी ने (/को/से/में/पर/का/की/के)
बहु० **कोई**—किन्हीं, ने (/को/से/में/पर/का/की/के)
उभय० **कुछ**—कुछ, कुछ ने (को/से/में/पर/का/की/के)

(1) **'हम'** समाहारार्थी बहुवचन है, 'मैं' का अनेकवाची बहुवचन नहीं क्योंकि किसी भी क्षण अनेक 'मैं' नहीं हुआ करते। (2) स्थानापन्न संज्ञा के वचन से सर्वनाम का वचन प्रभावित होता है और सर्वनाम के वचन से क्रिया का वचन। (3) प्रश्नवाचक; अनिश्चयवाचक, संबंधवाचक सर्वनामों के ऋजु रूप का वचन-भेद क्रिया रूपों से व्यक्त होता है, सर्वनाम रूपों से नहीं। (4) क्रिया के पुरुष भेद से सर्वनाम के पुरुष भेद की अभिव्यक्ति होती है। (5) क्रिया के लिंग भेद से सर्वनाम के लिंग भेद की अभिव्यक्ति होती है। (6) प्रश्नवाचक तथा अनिश्चयवाचक कर्ता के चयन में प्राणी-अप्राणी भेद का प्रभाव पड़ता है। (7) 'कौन, क्या, जो, उस, कोई' की पुनरुक्ति से कथ्य में कुछ बल आ जाता है, यथा—**कौन-कौन** आ गया है (/आ गए हैं); बेटे; अब तक तुम ने **क्या-क्या** पढ़ लिया है? **जो-जो** आता जाए (/आते जाएँ) **उस-उस** (/**उन-उन**) को सही जगह पर बिठाते जाओ। **कोई-कोई** काफ़ी समझदार होता है (/होते हैं) इतना दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है, **कोई-न-कोई** आ ही रहा होगा। **किसी-न-किसी** ने तो तुम्हें देखा ही होगा। (8) सर्वनाम संयोगों/संयुक्त सर्वनामों में 'कोई/किसी' दूसरे सदस्य के रूप में होने पर 'अनिश्चय का भाव' बढ़ जाता है, यथा—**जो कोई** प्रथम आएगा, पहला इनाम पाएगा। **जिस किसी** के पास कोई भी अतिरिक्त सामग्री हो, उसे इसी समत यहाँ रख जाए। (9) कुछ अन्य प्रयोगार्थ—**मैं आप** आया हूँ (=स्वतः)—मैं **अपने आप** आया हूँ (=अपनी इच्छा से)। वह **आप-ही-आप** बोल रही थी (=अन्य श्रोता नहीं था)। **जो** सोएगा **सो** खोएगा (=निश्चय)—**जो कोई** सोएगा······ (अनिश्चय)। **जो-जो** जाए, उसे जाने दो (=एक से अधिक)। **कोई** आया है / आए हैं (=अनिश्चित एक/अनिश्चित अनेक)। **कोई-कोई** यह भी कहते हैं······ (=कुछ लोग)। **सब कोई** ऐसा कहते हैं (=सब)। **हर कोई** ऐसा ही कहता है (=प्रत्येक व्यक्ति)। **कोई-न-कोई** कार्यालय में होगा (=एक-न-एक)। **कोई-सी** साड़ी पहन लो (=अनेक में से कोई)। **कोई और** (/**कोई दूसरा/और कोई/कई अन्य**) इस बात को न जाने। खाने को **कुछ** हो तो दो खाने को **सब कुछ** तो है। खाने को **बहुत कुछ** (/**इतना कुछ**) तो है। खाने को **कुछ और** चाहिए। (=पदार्थ मात्र)। खाने को **और कुछ** चाहिए (=पदार्थ-प्रकार)। खाने को

कुछ-न-कुछ तो चाहिए ही (=कोई भी पदार्थ)। उन्हें **कुछ-कुछ** हरारत है (=थोड़ी)। उन्हों ने **कुछ का कुछ** मान लिया (=कुछ भिन्न)। उधर **कौन** है (=एक)—उधर **कौन-कौन** है (/हैं) (प्रत्येक के विषय में जिज्ञासा/एक के विषय में जिज्ञासा)। वे **कौन-सा** (उपन्यास) पढ़ रहे थे? कल **और कौन** आया था? (=परिचित से इतर)।

सर्वनामों के प्रकार्य—विभिन्न सर्वनामों का वितरण तथा प्रयोग-अर्थ/प्रकार्य ये हैं—

(1) वाक्यों में सर्वनाम मुख्यतः कर्ता, कर्म के स्थान पर और कभी-कभी पूरक स्थान पर आते हैं। पदबन्धों में ये शीर्ष स्थान पर, सम्बन्धवाचक विशेषण के स्थान पर आते हैं, यथा—**मैं** नहा रहा (/रही) हूँ। (कर्ता); सिपाही **उसे** (/उस को/उन्हें/उन को/किसे/किस को/किन्हें/किन को/किसी को/उसी को पीट रहा था। (कर्म); आप (वे/ये) **कौन** हैं (/थे)? (पूरक); तू **मुझ से** (/हम से/उस/से/उन से) क्यों डरता (/डरती) है? (शीर्ष स्थान)। **मुझ पर** (/हम पर/उस पर/उन पर/किसी पर) कुछ तो विश्वास करो। (शीर्ष स्थान)। बच्ची उन **के साथ** (/किस के साथ/किन के साथ) बाज़ार गई है (/थी)? (शीर्ष स्थान)। वहाँ जा कर तुम **मेरा नाम** (/उस का/आप का/हमारा/उन का/किसी का नाम) मत लेना। (सम्बन्धवाचक विशेषण के स्थान पर)

(2) सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' केवल मिश्रवाक्यों के आश्रित विशेषण उपवाक्यों में ही आता है, यथा—**जो** सोता है सो खोता है। **जिस** ने ऐसा कहा था, वह कहाँ गया?

(3) सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' के बिना न आनेवाले नित्य सम्बन्धी 'सो' केवल मिश्रवाक्यों के प्रधान उपवाक्यों में आता है, यथा—जो बोएगा **सो** काटेगा।

(4) पुरुषवाचक 'मैं, हम, तू, तुम, आप' संज्ञा के पूर्व कभी भी विशेषण-वत् प्रयुक्त नहीं होते,

(5) निजवाचक 'आप' कभी भी कर्ता कारक में प्रयुक्त नहीं होता। इस के दो रूप 'अपने; अपने आप' हैं। वे रूप दोनों लिंगों, दोनों वचनों और तीनों पुरुषों के लिए आ सकते हैं। 'अपने आप' से अर्थ में अधिक सशक्तता आ जाती है। 'अपने आप' के साथ से/को/में/पर/के लिए आदि भी आ सकते हैं।

(6) निश्चयवाचक, प्रश्नवाचक, अनिश्चयवाचक सर्वनाम विशेषणवत् भी प्रयुक्त होते हैं तथा संबोधन के अतिरिक्त अन्य सभी कारकों में आते हैं, यथा—यह (औरत) उधर जा रही है, और वह (औरत) इधर आ रही है। आप क्या/कौन-सी (मिठाई) खाएँगे? घर में कोई (आदमी) नहीं है।

(7) सम्बन्धवाचक तथा नित्यसंबंधी सर्वनाम केवल मिश्रवाक्यों में आते हैं।

वे विशेषणवत् भी प्रयुक्त होते हैं और पहले सातों कारकों में आते हैं, यथा—जिस (थाली) में खाते हो उसी में छेद करते हो। जो जागेगा सो पाएगा।

(8) 'मुझ, हम, तुझ, तुम, इस, उस, इन, उन, किस, किन' में निश्चयार्थी -ई<ही के योग से निश्चयार्थक रूप बनते हैं। -ई<ही के योग के समय कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी हो जाता है, यथा—मुझी, हमीं, तुझी, तुम्हीं, इसी, उसी, इन्हीं, उन्हीं, किसी, किन्हीं'

(9) एकवचन 'कुछ' परिमाणबोधक और बहुवचन 'कुछ' संख्याबोधक है।

(10) तुम, आप आदरार्थ एकवचन के शब्दों में 'तुम' निश्चित कोटि का शब्द है। इन के बहुवचन होते हैं—तुम लोग, आप लोग। वक्ता की दृष्टि से श्रोताओं में यदि एक भी 'आप' स्तर का है, तो वक्ता 'तुम लोग' न कह कर 'आप लोग (/आप सब/आप दोनों/आप सभी) कहता है।

(11) मुझे आप को (/तुम्हें) दस रुपये देने थे (/तुम्हें या आप को मुझे दस रुपये देने थे) में व्याकरणिक कर्ता, प्राप्तिकर्ता दोनों में 'को' के कारण अर्थ में श्लेष है। ऐसे वाक्यों की संदिग्धता को इस प्रकार दूर किया जा सकता है—मेरे आप (/तुम) पर दस रुपये थे या आप के (/तुम्हारे) मुझ पर दस रुपये थे। 'मुझे/मुझ को, हम पर' के स्थान पर 'मेरे को, हमारे पर' जैसे प्रयोग अमानक हैं।

(12) 'तू' तुम, आप' के चयन में उच्चता (Power), घनिष्ठता (Solidarity) का प्रभाव पड़ता है। उच्चता के प्रभावित करनेवाले तत्त्व हैं—वय, पद, शक्ति, धन, लैंगिकता का सामाजिक महत्त्व, संस्थागत सम्बन्ध, रिश्ता आदि। घनिष्ठता को प्रभावित करनेवाले तत्त्व हैं—रिश्तेदारी, मित्रता, नौकरी का पुरानापन आदि। तू-तुम-आप के चयन पर उच्च, सामान्य/मध्य, निम्न स्तर-भेद का सापेक्षिक प्रभाव पड़ता है, घनिष्ठता का अधिक। तुम-आप, तू-तुम के चयन में घनिष्ठता का प्रभाव पड़ता है। सामान्यत: अघनिष्ठ→घनिष्ठ→अतिघनिष्ठ के क्रम में आप→तुम →तू का प्रयोग होता है। नया (कभी-कभी पुराना भी) घरेलू नौकर छोटे मालिक को 'आप' कहता है। मध्यमवर्गीय परिवारों में पिता के लिए 'आप'; माँ के लिए 'तुम' का प्रयोग सामान्य है। सम्भ्रान्त/उच्च वर्गीय परिवारों में दोनों 'आप' हैं; निम्नवर्गीय परिवारों में दोनों 'तू' हैं। भाई, बहन आदि के साथ भी इन शब्दों के चयन में विभिन्न स्तरीय परिवारों में भिन्नता देखी जाती है।

'आप' के साथ 'आओ/जाओ/मत खाओ' जैसे प्रयोग पंजाबी के प्रभाव के कारण चल पड़े हैं, जो हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप न होने के कारण अमानक हैं। कभी-कभी व्यंग्य में या दिखावटी/बनावटी आदर दिखाने के लिए निम्नस्तरीय व्यक्ति को 'आप' कह देते हैं। आरम्भिक कक्षाओं के अहिन्दी भाषी छात्रों को 'तू' सिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मराठी गुजराती भाषी 'आप' के स्थान पर प्राय: 'तुम' का प्रयोग करते हैं क्योंकि दोनों भाषाओं में 'आप' के समानार्थी शब्द क्रमश:

'तुम्हीं, तमे' हैं। इन भाषाओं में 'तुम' के लिए क्रमशः 'तूं, तुं' हैं। आजकल मानक हिन्दी में 'आप' का प्रयोग अधिक बढ़ रहा है।

(13) 'आप' का अनियमित रूप 'आपस, केवल सम्बन्ध कारक तथा अधिकरण कारक में आता है, यथा—आपस की फूट से लोग बर्बाद हो जाते हैं। पति-पत्नी को आपस में सन्तुलन बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए।

(14) उर्दू शैली के प्रभाव के कारण 'वह, वे' के स्थान पर 'वो' का उच्चारण अधिक सुनाई पड़ता है, यथा—उन के देखे से जो आती है रौनक़ मुँह पर, 'वो' (<वह) समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

(15) 'यह' का एक प्रयोग क्रियाविशेषणवत् भी मिलता है, यथा—लो, मैं तो यह चली अपने नैहर।

(16) 'किस' के स्थान पर कुछ बोलियों में, उर्दू बोलनेवालों में, काहे को/से/के लिए/का' आदि प्रयोग मिलते हैं। हिन्दी में ये अमानक प्रयोग माने जाते हैं।

सर्वनामों की पुनरुक्ति—व्यष्टि, अवधारण, विकल्प आदि अर्थ व्यक्त करती है, यथा—तुम तो बताते ही नहीं कि उस ने **क्या-क्या** कहा था? **किस-किस** को दावत में बुला रहे हो? पता नहीं वे **किन-किन** को न्यौता दे आए हैं। **जिस-जिस** से पूछा, **उस-उस** ने सिर हिला दिया। सब को **अपनी-अपनी** सूझती है। इन कविताओं में से तुम ने **कौन-कौन सी** पढ़ ली हैं? इन मिठाइयों में से तुम्हें **कौन-कौन सी** अच्छी लगती हैं?

क्या (+का/से+) क्या का अर्थ है—बहुत या बिलकुल बदल जाना, यथा—छह महीने में ही वह **क्या का (/से) क्या** हो गया! किसी को पता ही नहीं चला कि क्या से क्या हो गया।

सब के सब मेले की ओर लपके जा रहे थे। वहाँ जितनी दुकानें थीं **सारी की सारी** जल कर राख हो गईं। अब तो तुम ठीक हो गई हो? हाँ, हो तो गई हूँ **कुछ-कुछ**।

वैसा (+का) वैसा का अर्थ है—पहले जैसा ही/पहली स्थिति में/पहले जैसी ही, यथा—ज़मींदार की इज्ज़त ऊपर से तो **वैसी की वैसी** बनी हुई है, लेकिन भीतर से खोखली हो चुकी है।

कोई/कुछ (+न) कोई/कुछ विकल्प सूचक हैं, यथा—जच्चा-बच्चा के पास आज रात **किसी न किसी** को रहना ही चाहिए। हाँ, **कोई न कोई** तो रहेगा ही। आप को **कुछ न कुछ** तो लेना ही होगा। 'कोई-कोई' व्यष्टि के पुट के साथ अनिश्चित अनेकत्व का सूचक है, यथा—**कोई-कोई** ऐसा भी कहते हैं ......। **किसी-किसी** को ही ऐसी सुविधा मिल पाती है।

ख़ुद (+ -ब-) ख़ुद का अर्थ है—कार्य का स्वयं होना, यथा—तुम इस मामले को एक दिन में **ख़ुद ब ख़ुद** समझ जाओगे।

संयुक्त सर्वनामों के प्रयोग—संबंधवाचक, निश्चयवाचक तथा अनिश्चयवाचक सर्वनामों की भाँति संयुक्त सर्वनामों का स्वतन्त्र और विशेषक के रूप में प्रयोग होता है, यथा—**सब कोई** जानते हैं कि वह अच्छी औरत नहीं है। **हर कोई** उस की कमाई का स्रोत जानता है। तुम नहीं, यहाँ **कोई और** ठहरेगा। **किसी और** से यह मत कह देना कि··· । मैं ने **जो कुछ** जाना अपने पिता से जाना। आज तुझे **सब कुछ** बताना ही पड़ेगा। **कोई एक** आप से मिलने आया है। ऐसी घड़ी तो **कोई-भी** (/कोई-कोई) ख़रीद सकता है। **हर एक** को उस की क्षमता तथा योग्यता के अनुसार काम मिलना चाहिए। तुम हर बार **कोई न कोई** चीज़ माँगती ही रहती हो। **किसी न किसी** को तो घर पर रहना ही होगा। तुम्हें **कुछ न कुछ** तो लेना ही होगा। पिताजी को आराम है ?— हाँ, **कुछ-कुछ** है।

वितरण के आधार पर सर्वनामों का वर्गीकरण—वाक्य के अन्य शब्दों के साथ आने की दृष्टि से सर्वनामों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता हैं—1. संज्ञा-सर्वनाम 2. संज्ञेतर सर्वनाम। अपने प्रकार्य के आधार पर एक ही सर्वनाम संज्ञा-सर्वनाम भी हो सकता है और संज्ञेतर सर्वनाम भी, यथा—**कोई** आ रहा है (संज्ञा-सर्वनाम), **कोई** लड़की आ रही है (संज्ञेतर सर्वनाम)। चाहे **यह** ले लो, या वह—चाहे **यह** साड़ी ले लो या **वह** शाल। **संज्ञा-सर्वनाम** संज्ञा शब्दों को इंगित करते हैं और संज्ञाओं की भाँति ही वे उद्देश्य, कर्म या विधेय के नामिक अंश होते हैं। संज्ञा-सर्वनामों में इन शब्दों की गणना की जाती है—मैं, हम, तू, तुम, आप, यह, ये, वह, वे; कौन, क्या; स्वयं, आप; जो; अपना; सब; कोई, कुछ। 'आप, स्वयं, कुछ' के अतिरिक्त अन्य सभी के रूप बदलते हैं। 2. **संज्ञेतर सर्वनाम** संज्ञा से इतर शब्दों (विशेषण, संख्या, क्रियाविशेषण) को इंगित करते हैं। वाक्य में ये विशेषक का काम करते हैं। संज्ञेतर सर्वनामों में इन की गणना की जाती है—यह, वह, ये, वे, ऐसा, वैसा; क्या, कौन, कैसा, कौन-सा; मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा, अपना; जो, जैसा; आप, स्वयं, ख़ुद, सब, सारा, समस्त, समूचा, तमाम, हर, प्रति, कोई, कुछ; इतना, उतना; कितना; जितना; कई, अनेक, चन्द, बाज़। संज्ञेतर सर्वनामों के विकारी और अविकारी रूप विशेषणवत् होते हैं।

कई **सर्वनामों के अवधारक रूप** एकवचन में ही/-ई से युक्त हो कर तथा बहुवचन में ही/-ई से युक्त हो कर अर्थ को और अधिक सशक्त बना देते हैं। सर्वनामों के अवधारक अविकारी और विकारी रूप ये हैं—मैं ही, हम ही/हमीं, तू ही, तुम ही/तुम्हीं, यही, ये ही, वही, वे ही; मुझी, हमीं, तुझी, तुम्हीं, इसी, इन्हीं, उसी, उन्हीं। अन्य पुरुषवाचक और निर्देशवाचक सर्वनामों के अवधारक रूप एक-से ही होते हैं। निश्चयबोधक 'सब' का अवधारक रूप 'सभी' बनता है। सर्वनामों के ये अवधारक रूप उद्देश्य, कर्म तथा विधेय के नामिक अंश के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं, यथा—क्या चुहलबाज़ी के लिए **हमीं** रह गए हैं। **तुम्हीं** जाओ और **उन्हीं को** बुला लाओ। आप की डायरी **वही** थी। **सभी** जा चुके हैं।

16
विशेषण

संज्ञा या सर्वनाम (कभी-कभी विशेषण) शब्दों की विशेषता या वस्तु के लक्षण बतानेवाले शब्द **विशेषण** या विशेषक होते हैं। जिस संज्ञा या सर्वनाम शब्द की विशेषता बताई गई हो, वह **विशेष्य** कहलाता हैं, यथा—उस का घर **बड़ा** (/**नया**/**विशाल**) है। मैं **बड़ा** (/**विशाल**/**नया**) घर ख़रीदना चाहता था। विशेषण का प्रयोग विशेष्य के पूर्व भी हो सकता है, विशेष्य के पश्चात् भी। विशेषण शब्द वस्तु के गुण, लक्षण या विशेषता को नामोद्दिष्ट करते हैं। ये विकारी तथा अविकारी होते हैं। विकारी विशेषण (अपने विशेष्य के) लिंग, वचन तथा कारक के अनुसार बदलते हैं। वाक्य में ये विशेषक तथा विधेय के अंश होते हैं। कभी-कभी ये उद्देश्य, कर्म या अन्य अंग भी हो सकते हैं।

विशेषण-भेद—व्यक्तियों तथा पदार्थों में अनेक प्रकार की विशेषताएँ (/गुण-अवगुण) पाई जाती हैं। व्यक्तियों/पदार्थों में प्राप्त विशेषताओं के आधार पर विशेषणों के तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं—1. गुणबोधक 2. संख्याबोधक 3. परिमाणबोधक। रचना की दृष्टि से विशेषणों के दो प्रकार होते हैं—(क) मूल (ख) व्युत्पन्न। उपर्युक्त तीन वर्ग मूल विशेषणों के प्रकार हैं। व्युत्पत्ति के आधार पर भी विशेषणों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—1. सार्वनामिक 2. कृदन्ती 3. सादृश्यवाचक। इन में कुछ विशेषण एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ संबंध-लक्षण व्यक्त करते हैं, अतः उन्हें **संबंधवाचक** विशेषण भी कह सकते हैं। इन विशेषणों से व्यक्त लक्षण वस्तु में निहित रहते हैं, कम या अधिक नहीं हो सकते। ये प्रायः संज्ञा, क्रिया, शब्दों से बनते हैं, यथा—उद्योग→औद्योगिक, पहाड़→पहाड़ी, निकलना→निकला (हुआ), फटना→फटी, भीतर→भीतरी, ऊपर→ऊपरी।

1. **गुणबोधक/गुणवाचक विशेषण**—संज्ञा (विशेष्य) के इन्द्रियों से अनुभूत विविध गुणों-अवगुणों/लक्षणों का बोध कराते हैं। ये विशेषण अपने विशेष्यों के अग्रलिखित वर्गों के गुणावगुण का बोध कराते हैं—

(1) **गुण**—मीठा तरबूज़, झूठी बात, चतुर लड़की, अशान्त चित्त, सूनी माँग, सहृदय माँ। मूर्ख, मज़बूत, उद्यमी, भला, बुरा, सच्ची, झूठी आदि।

(2) **आकार/आयतन/परिमाण**—लम्बा पेड़, चौड़ी स्क्रीन, चौकोर/गोल मैदान, लंबी/छोटी लड़की, बड़े-बड़े कंकड़। मोटा, पतला, ठिगना, चिपटा, सुडौल, तिरछा, नुकीला, सीधा, टेढ़ा, सँकरा, तिकोना, नाटा, नीचा, ऊँचा आदि।

(3) **रंग**—लाल वस्त्र, पीले गाल, नीला ब्लाउज़, हरी घास, श्वेत पत्र, काली साड़ी, भूरा खरगोश, सफ़ेद कागज़। चंपई, गेंदई, गुलाबी, बैंगनी, सुरमई, नारंगी, आसमानी, तामई, रूपहला, सुनहरी, चमकीला, धुँधला, फीका, मटमैला, सिन्दूरी, ख़ाकी, गेरुआ, जामनी/जामुनी, फ़ालसई/फ़ालसी, प्याज़ी, अंगूरी, बादामी, धानी, मूँगिया, गेहुँआ, फ़ीरोज़ी।

हिन्दी में सात मूल/आधारभूत तथा अन्य व्युत्पन्न रंग-नाम हैं। इन में से कुछेक के संस्कृत, उर्दू समानार्थी भी प्राप्त हैं, यथा—लाल (रक्तिम/सुर्ख़), पीला (पीत/ज़र्द), हरा (/हरित/सब्ज़), नीला (/नील), भूरा (/पिंगल), काला (/श्याम/स्याह), सफ़ेद (/श्वेत)। रंगों की छटाएँ/तीव्रता 'हलका/गहरा/गाढ़ा' शब्द जोड़ कर व्यक्त करते हैं। कभी-कभी रंग से मिलती-जुलती चीज़ का प्रयोग किया जाता है, यथा—हल्दी जैसा पीला, ख़ून-सा लाल, काई-सा हरा, थोथे जैसा नीला, दूध-सा सफ़ेद, कोलतार जैसा काला आदि। कभी-कभी केवल रूढ़ रंगों की पुनरुक्ति का प्रयोग किया जाता है, यथा—काले-काले बाल, भूरी-भूरी आँखें, लाल-लाल गाल, हरे-हरे पत्ते आदि। व्यक्ति गोरे, काले, साँवले, पीले होते हैं, भूरे, सफ़ेद नहीं। मुहावरों में प्रायः आधारभूत रंग शब्द प्रयुक्त होते हैं, यथा—काली करतूत, लाल टोपी, तबीयत हरी होना, मुँह काला करना, काले कारनामे, काला युग, मन काला होना, लाल फ़ीता, लाल बत्ती, चेहरा नीला (/फ़क/पीला) पड़ना, मन साफ़ होना, गाल लाल होना।

(4) **दशा**—पतला दूध, सूखे पत्ते। घना, गाढ़ा, पिघला, गीला, सूखा, ग़रीब, निर्धन, धनवान, मालदार।

(5) **काल**—प्राचीन कथा, नवीन विचार, भावी योजना, विगत दिवस, परसों की बात, सुबह का भूला। अर्वाचीन, आधुनिक, अपभ्रंशकालीन, सायंकालीन, प्रातःकालीन, नया, पुराना, ताज़ा, बासी, मौसमी, भूत, वर्तमान, भविष्य, अगला, पिछला, दोपहर का, सवेरे का, रात का, रात्रिकालीन, आगामी आदि।

(6) **स्थान**—बनारसी साड़ी, कश्मीरी महिला, रूसी बेले, ग्रामीण भाषा, नागरिक लोग, पहाड़ी रास्ता, मद्रासी लोग, भारतीय संविधान, ईरानी भाषा। भीतरी, बाहरी, स्थानीय, पड़ोसी, दूरवर्ती, निकटवर्ती आदि।

(काल, स्थान वर्ग के विशेषणों में स्थान/समय से वस्तु-घटनादि का संबंध होता है, तथा देश/जाति के होने का भाव होता है)

(7) **स्वभाव**—अच्छा मालिक, भला बेटा, सीधी बच्ची, दुष्ट अधिकारी, नेक नौकर, चिड़चिड़ा बच्चा। दयालु, आलसी, बुरा, कायर, वीर, पालतू, पापी, दानी, न्यायी, शांत आदि।

(8) **शारीरिक स्वास्थ्य लक्षण/अवस्था/आयु**—स्वस्थ महिला, जवान बधिया बीमार बच्ची। बूढ़ा/बूढ़ी, अन्धा/अन्धी, लँगड़ा/लँगड़ी, लूला/लूली, बाँझ, दुबला, पतला मोटा, रोगी, बहरा, मजबूत, कमजोर। कई दिन से बीमार ☆केन्सर से बीमार—केन्सर की बीमारी), बीमार/बीमारों की देखभाल (संज्ञावत्)

(9) **मानसिक स्वास्थ्य/चरित्र तथा बुद्धि-विशेषताएँ**—पागल औरत, बावला बुड्ढा, बेवकूफ़ नौकर। चतुर, होशियार, बुद्धिमान्, चालाक, क्रुद्ध, बहादुर, उदार, लालची।

(10) **दिशा**—पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी, दक्षिणी, पुरवाई, पछाँही, दखनी/दखनाई आदि।

(11) **पदार्थ**—रेशमी साड़ी, रजतपत्र, फ़ौलादी तलवार, ऊनी, सूती, कागज़ी आदि।

(12) **विज्ञान/तकनीक/समाज-सम्बद्ध अवधारणा**—वैज्ञानिक खोज, रासायनिक, परीक्षण, सामाजिक सुधार। भौगोलिक, पारिभाषिक, प्रावधिक आदि।

(13) **तापमान**—गर्म, ठंडा।

(14) **भार**—हलका लट्ठा, भारी सन्दूक, वज़नी हॉकी।

(15) **धरातल**—ऊँचा पहाड़, नीचा/गहरा/छिछला/उथला गड्ढा।

(16) **गति**—तेज/मन्द चाल, तीव्र।

(17) **प्रतीति**—सुखद, सुन्दर, अटपटा, आनन्ददायक, प्रीतिकर।

(18) **स्पर्श**—नरम गद्दा, कठोर, खुरदरा, मुलायम, चिकना, लिजलिजा।

(19) **वस्तुगत मूल्यांकन वैशिष्ट्य**—आवश्यक, अनावश्यक, लाभदायक, हानिकारक, उचित, अनुचित, महत्त्वपूर्ण, सही, ग़लत, मानक, मानकेतर, परिनिष्ठित आदि।

(20) **स्वाद**—खट्टा, मीठा, नमकीन, कड़वा, तीता, तीखा, कसैला, आँवला, चरपरा, सीठा, कटु, मधुर।

(21) **गन्ध**—सोंधी, खुशनुमा, मोहक, तेज़, भीनी, हलकी।

(22) **दृश्य**—स्वच्छ, साफ़, निर्मल, मलिन, मैला, गन्दा, उजाड़, भरापूरा

गुणवाचक विशेषण प्रायः विशेषक (यथा—उस का भाषण **कटु** सत्य पूर्ण था), विधेय के नाभिक अंश (यथा—उस के शब्द भले ही **मामूली** हों लेकिन उन का भाव **मामूली** नहीं था। इस साड़ी में तुम **कितनी सुन्दर** लगती हो) के रूप में प्रयुक्त होते

हैं। संबंधवाचक विशेषण भी विशेषक (यथा—इस स्कूल के बच्चे **फ़ौजी** वर्दी पहनते हैं), विधेय के नाभिक अंश (यथा—इस प्रकार का चिन्तन ही **वैज्ञानिक** माना जाता है) के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं।

2. **संख्याबोधक/संख्यावाची विशेषण** प्रायः जातिवाचक संज्ञा (विशेष्य) की संख्या (गिनती, क्रम, आवृत्ति आदि) का बोध कराते हैं। संख्या शब्द अंकगणितीय संख्या, वस्तु-मात्रा और उन का क्रम व्यक्त करते हैं। इन में गणनावाची शब्द अविकारी हैं तथा क्रमवाचक और आवृत्तिवाचक शब्द लिंग, वचन तथा कारक के अनुसार रूप बदलते हैं। विकारी विशेषणों की भाँति वे भी लिंग, वचन तथा कारक में संज्ञा से अन्वित होते हैं। संख्या शब्द अमूर्त अंकों के नाम होते हैं। ये विशेषणों के विशेष्य नहीं होते। अधिकांश संख्या शब्दों का लिंग, वचन नहीं होता। संख्या निश्चित, अनिश्चित हो सकती है, अतः संख्याबोधक विशेषण दो प्रकार के होते हैं—(क) निश्चित संख्यावाचक (ख) अनिश्चित संख्यावाचक।

(क) **निश्चित संख्यावाचक** छह प्रकार के होते हैं—1. गणनावाची 2. खंडवाची 3. क्रमवाची 4. गुणावाची 5. समुदायवाची 6. प्रत्येकवाची (1) **गणना/पूर्णांक बोधक** संख्याएँ एक-सी वस्तुओं/व्यक्तियों आदि की अमूर्त संख्या की अवधारणा को व्यक्त करती हैं, यथा—एक, दो, तीन, दस, सौ, हज़ार, दस हज़ार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, दस अरब, खरब, दस खरब, नील, दस नील, पद्म, दस पद्म, शंख, दस शंख, महाशंख। दस लाख के स्थान पर 'मिलियन' अँगरेज़ी शब्द का प्रयोग बढ़ने लगा है। 'सहस्र, लक्ष, कोटि' का प्रयोग साहित्यिक हिन्दी में क्रमशः 'हज़ार, लाख, करोड़' के लिए होता है। **सामान्य गणनावाची** शब्दों में केवल एक ही घटक होता है, यथा—एक, नौ, हज़ार, लाख आदि। **जटिल गणनावाची** शब्दों में दो घटक होते हैं, यथा—ग्यारह, अठारह, इक्कीस, अड़तीस, नवासी, निन्नानवे जटिल शब्द हैं किन्तु 'उन्नीस, उनतीस, उनतालीस, उनसठ' आदि शब्द दहाइयों के शब्दों में पूर्व उन <ऊन उपसर्ग लगा कर बने शब्द हैं। **संयुक्त गणनावाची** शब्दों में दो से अधिक सामान्य या जटिल संख्या शब्द होते हैं, यथा—चार सौ बीस, तीन हज़ार पाँच सौ सैंतीस। गणनावाची संख्या शब्दों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से भी तथा संज्ञाओं के साथ भी हो सकता है, यथा—उन में से **चार** मर गए। अब नहीं लूँगा, सुबह से **तीन** पी चुका हूँ। आज कक्षा में **दस** बच्चे ही क्यों हैं? गणनावाचक संख्या शब्द अविकारी हैं। गणनावाचक संख्या शब्दों की पुनरुक्ति व्यष्टि का अर्थ देती है, यथा—सभी बच्चों को **दो-दो** रुपये दिए जाएँगे। 'एक' अनिश्चयवाचक 'कोई' के अर्थ में एकवचन तथा अनिश्चितता व्यक्त करता है, यथा—कल आप को **एक** आदमी पूछ रहा था।

उच्चारण तथा वर्तनी की एकरूपता की दृष्टि से पूर्णांक संख्यावाची विशेष शब्दों को यहाँ लिखा जा रहा है—

एक दो तीन च [illegible] तीन चार पाँच छह सात आठ नौ दस ग्यारह बारह तेरह चौदह पन्द्रह सोलह सत्रह अठारह उ[illegible] उन्नीस बीस इक्कीस बाईस तेईस चौबीस पच्चीस छब्बीस सत्ताईस अठाईस उन्तीस तीस इ[illegible] इकतीस बत्तीस तेतीस चौंतीस पैंतीस छत्तीस सैंतीस अड़तीस उनतालीस चालीस इ[illegible] इकतालीस बयालीस तेतालीस चौवालीस पैंतालीस छयालीस सैंतालीस अड़तालीस [illegible] उनचास पचास इकावन बावन तिरपन चौवन पचपन छप्पन सतावन अटावन उनस[illegible] उनसठ साठ इकसठ बासठ तिरसठ चौंसठ पैंसठ छियासठ सड़सठ अड़सठ उनहत्तर सत्तर [illegible] इकहत्तर बहत्तर तिहत्तर चौहत्तर पचहत्तर छिहत्तर सतहत्तर अठहत्तर उनासी अस्सी इकासी बयासी तिरासी चौरासी पचासी छियासी सतासी अठासी नवासी नव्वे [illegible] इकानवे बानवे तिरानवे चौरानवे पचानवे छियानवे सतानवे अठानवे न्यानवे सौ

(कुछ गणनावा[illegible] वाची शब्दों के अन्य क्षेत्रीय रूप भी प्रचलित हैं, यथा—अट्ठारह, अट्ठाईस, तैंतीस, तैंता[illegible] तालीस, बयालीस, इक्यावन, त्रेपन, सत्तावन, अट्टावन, त्रेसठ, इक्यासी, सत्तासी, अट्[illegible] अट्ठासी, नब्बे, इक्यानवे, सत्तानवे, निन्यानवे)

हिन्दी में 10 [illegible] से ऊपर 99 तक की संख्याएँ इकाई+दहाई के क्रम में आ कर समस्त शब्द के रूप [illegible] में प्रयुक्त होती हैं, यथा—12 बारह (बा = 2 + रह < दह = 10), 21 इक्कीस [illegible] (इक = 1, ईस < बीस = 20)

(ii) अपूर्णांक[illegible] बोधक/खंडवाची शब्द अपूर्ण संख्याओं की सूचना देते हैं, यथा—$\frac{1}{4}$ पाव, (एक) चौथाई, $\frac{1}{2}$ आधा, अर्ध, 1/3 (एक) तिहाई, $\frac{3}{4}$ पौन, तीन चौथाई, 1/5 पाँचवाँ भाग, 2/3 दो तिहाई, $1\frac{1}{4}$ सवा, $1\frac{1}{2}$ डेढ़, $1\frac{3}{4}$ पौने दो, $2\frac{1}{4}$ सवा दो, $2\frac{1}{2}$ ढाई (अढ़ाई), 2 3/4 पौने तीन, $3\frac{1}{2}$ साढ़े तीन, 5 3/4 पौने छह, $7\frac{1}{2}$ साढ़े सात आदि, 225 सवा दो सौ, 1500 डेढ़ हज़ार, 3500 साढ़े तीन हज़ार; (1250 सवा हज़ार/एक हज़ार दो सौ पचास, साढ़े बारह सौ, 1500 पन्द्रह सौ/एक हज़ार पाँच सौ)

(iii) क्रमवाची [illegible] संख्या शब्द वस्तुओं/व्यक्तियों आदि की गिनती करते समय उन का क्रम निर्दिष्ट कर[illegible] ते हैं, यथा—पहला (/पहली/पहले), दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ, नौवाँ (/नवाँ), दसवाँ, ग्यारहवाँ; एक सौ एकवाँ, दो सौ तीनवाँ आदि। संस्कृत से आगत 'प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, न[illegible] म, दशम, एकादश, द्वादश' आदि शब्द साहित्य में प्रयुक्त होते हैं, यथा—चतुर्थी [illegible] भक्ति; अष्टमी तिथि; परीक्षा में प्रथम आया/आई)

(iv) आवृत्तिवा[illegible] ची/गुणावाची संख्या शब्द वस्तु आदि की आवृत्ति या गुना की सूचना देते हैं, यथा—[illegible] दुगुना/दोगुना, तिगुना/तीनगुना; चौगुना/चारगुना, पँचगुना/ पाँचगुना, छँगुना/छहगुना [illegible] सतगुना/सातगुना, अठगुना/आठगुना, नौगुना, दसगुना आदि। 'गुना' के अतिरि[illegible] '-हरा' प्रत्यय जोड़ कर भी आवृत्तिवाची विशेषक शब्द बनते हैं, यथा—इकहरा, दुहरा, तिहरा, चौहरा, पँचहरा, छँहरा, सतहरा, अठहरा,

नौहरा, दसहरा आदि । इन के रूप -आ/-ई/-ए जोड़ कर विशेष्य के लिंग; वचन के अनुरूप बनते हैं, यथा—दुगुना-दुगुने-दुगुनी, दुहरा-दुहरे-दुहरी आदि । इकहरी धोती, इकहरे बदन का बच्चा; इस घर के हर कमरे में दुहरे रोशनदान और दुहरी खिड़कियाँ हैं । दोगुना का एक रूप दूना भी प्रचलित है ।

(v) **समुदायवाची** संख्या शब्द वस्तुओं आदि की संख्या को एक समूह के रूप में व्यक्त करते हैं । ये अविकारी शब्द हैं, यथा—दोनो, तीनो, चारो (/दोनों, तीनों/चारों) आदि । बीसों, पचासों, हज़ारों, लाखों में सभी कथित इकाइयों की समाविष्टि के अतिरिक्त अधिक का भाव भी निहित है ।

(vi) **प्रत्येकवाची** संख्या शब्द वस्तु आदि की कथित संख्या के एक समूह को सूचित करता है, यथा—प्रति, हर, फ़ी । प्रति दो व्यक्तियों को, हर तीन बच्चों को, फ़ी आदमी ।

(ख) **अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण** शब्द वस्तु आदि की निश्चित संख्या के बारे में बोध नहीं कराते । ये छह प्रकार के होते हैं—1. लगभगवाची 2. बहुवाची 3 अल्पवाची 4. अनुमानवाची 5. पर्याप्तवाची 6. इतरवाची ।

(i) **लगभगवाची** शब्द अभिव्यक्ति के आधार पर तीन प्रकार होते हैं—(क) लगभग चार, क़रीब/तक़रीबन हज़ार ये संख्या तथा परिमाण के सूचक हैं । (ख) कोई पाँच सौ (ग) बीस-एक (☆बीसेक), पचास-एक (☆पचासेक) ।

(ii) **बहुवाची** शब्द व्यक्ति आदि के संख्या के बहुत्व के बोधक होते हैं, यथा—बहु, बहुत, बहुतेरे, सब, सैकड़ों, हज़ारों/लाखों (=कई हज़ार/लाख) सर्व, अनेक, कई, बहुत-से, दसियों, बीसियों, अधिक, और दसियों/बीसियों (=कई) दर्ज़नों (=अनेक), दर्ज़न = 12 'सब, कई' से कुछ लोग 'सबों; कइयों' रूप बनाने लगे हैं । इसी प्रकार कुछ लोग 'अनेक' से 'अनेकों' रूप बनाने लगे हैं । कई = बहुत-से, अनेक = अन + एक अर्थात् एक से अधिक है । बहुत्व, अधिकता का सूचक अनेकता (अनेकता में एकता) प्रचलित है । अनेकानेक = कई-कई का सूचक पुनरुक्त शब्द है । अनेक निश्चित संख्या/परिमाण का सूचक है । 'कई, सब' सर्वनाम के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं । बहुत = अधिक/ज़्यादा, यथा—लोटे में बहुत दूध है, मुझ से नहीं पिया जाएगा । बहुत-सा = कई, यथा—आज तो तुम्हें बहुत-से ग्रीटिंग कार्ड मिले हैं ।

(iii) **अल्पवाची** शब्द व्यक्ति आदि की संख्या के अल्पत्व के सूचक होते हैं, यथा—अल्प, कम, थोड़े, कुछ आदि । थोड़ा/थोड़ी तथा अन्य अल्पवाची शब्द अनिश्चित संख्या/परिमाण के सूचक हैं ।

(iv) **अनुमानवाची** शब्द व्यक्ति आदि की संख्या के अन्दाज़ या अनुमान के सूचक हैं, यथा—एक-दो, तीन-चार, पचास-सौ, दस-बीस, सौ-पचास, उन्नीस-बीस, हज़ार-पाँच सौ आदि ।

(v) **पर्याप्तवाची** शब्द व्यक्ति आदि की पर्याप्तता के सूचक हैं, यथा—पर्याप्त, काफ़ी, अपर्याप्त, नाकाफ़ी । ये शब्द ही अनिश्चित संख्या/परिमाण के सूचक हैं ।

(vi) **इतरवाची** शब्द वर्गीय अनिश्चित अनुपस्थित सदस्य की सूचना देते हैं, यथा—अन्य, और, दूसरे लोग

संख्यावाची शब्दों के प्रयोग आदि के बारे में विशेष—(1) दसी, बीसी, सैकड़ा; दुक्का, चौका, पंजा.......' **गणनक शब्द** संज्ञाएँ हैं, **संख्यावाचक** शब्द नहीं । इन्हें अंकों में नहीं लिखा जाता । इन के साथ अन्य संज्ञा शब्दों की भाँति विशेषक आ सकते हैं । इन का व्याकरणिक लिंग होता है । (2) 1 ला, 2 रा, 3 रा, 4 था, 5 वाँ, 6 ठा, 7 वाँ आदि मराठी के प्रभाव से हिन्दी में श्रम, समय-बचत की दृष्टि से प्रचलित हो चले हैं । (3) वर्ग सदस्य + जातिवाचक संज्ञा तथा व्यक्तिवाचक संज्ञा + वर्ग की रचना में 'एक' का प्रयोग होता है, यथा—तोता एक पक्षी है । गुड़हल एक फूल है । लौकी एक तरकारी है । श्यामा एक अच्छी लड़की है । बीजापुर एक ऐतिहासिक नगर है । इन वाक्यों में से 'एक' हटाने पर भिन्न प्रकार की रचना होगी । यहाँ 'एक' किसी तथ्य के पहली बार उल्लेख का सूचक है । वर्ग-सदस्य की इकाई की संख्या की सूचना के लिए 'एक' संख्यावाचक विशेषण का प्रयोग, यथा—मेज़ पर पाँच-पाँच के कुछ नोट पड़े हैं, तुम उन में से एक नोट उठा लो । आज मैं ने एक खरबूज़ खाया था । अँगरेज़ी में पहली बार उल्लेख की सूचना के लिए 'a' का प्रयोग होता है और पूर्व निर्दिष्ट वस्तु के लिए 'the' का प्रयोग । हिन्दी में पूर्व निर्दिष्ट वस्तु का ही प्रयोग होता है । कभी-कभी 'यह/वह' का भी प्रयोग होता है, यथा—घर में कौन है ?—एक चोर है ? (वह/चोर) कहाँ है ?—(वह/चोर) एक कमरे में है । कौन-से कमरे में ?—शयन कक्ष में । (4) अनिर्दिष्ट समय/स्थान की सूचना के लिए 'एक' का तथा अनिश्चय की सूचना के लिए 'किसी' का प्रयोग, यथा—एक (/किसी) ज़माने में, एक (/किसी) देश में, एक (/कोई) बादशाह था । एक (/किसी) दिन तुम्हें मेरी याद आएगी । (5) साल महीना, ह़फ़्ता, घंटा, मिनट के साथ 'एक' का प्रयोग संख्यावाचक विशेषण के रूप में ही, अनिश्चय की सूचना के लिए नहीं । 'एक-न-एक' अनिश्चयात्मक है । किसी साल/महीने/ह़फ़्ते/दिन आ जाना (✱एक साल/महीने/ह़फ़्ते/दिन आ जाना) । एक बार/समय (/किसी समय) । एक प्रकार से, एक हिसाब से । (6) 'एक में शामिल/समन्वित' अर्थ के रूप में 'एक' मूल शब्द के साथ जुड़ कर प्रयुक्त, यथा—एकतन्त्र, एकजुट, एकनिष्ठ, एकदम, एकवचन, एकरूप, इकतरफ़ा<एकतरफ़ा, एकमुश्त राशि, एकमत हो कर । वे एक मत से चुनाव जीते थे—वे एकमत से चुनाव जीते थे—(7) हरेक (/हर एक), कुछेक (/कुछ एक), कई एक में 'एक' अनिश्चयबोधक, महत्त्वहीन-सा है, यथा—हर (/हर एक/हरेक) बच्चे को दो लड्डू दो । संज्ञावाचक

शब्दों के साथ एक **'लगभग'** अर्थ-सूचक है, यथा—कक्षा में बीस एक छात्र हो सकते हैं। रोज़ाना कोई सौ एक रुपये मिल जाते हैं, ज़्यादा नहीं। **(8)** इतरवाची शब्दों के प्रयोग, यथा—क्यों, तुम तीन ही क्यों आए हो, **और** (/अन्य/दूसरे) लोग कहाँ हैं? तुम्हारा **और** (/शेष) सामान कहाँ है? क्या तुम्हारे पास और (/अन्य/दूसरे) भी पैन्ट पीस हैं। इन दो से ही नहीं, आप **और** ('अन्य/दूसरे) बच्चों से भी पूछें। **'और'** का पूरकवत् प्रयोग, यथा—अभी एक गुंडा **और** है जो अभी-अभी भाग गया है। अभी अन्दर कितने लोग **और** हैं। घड़ियों के अलावा मेरे पास केलक्यूलेटर **और** हैं, कहें तो दिखाऊँ? **(9)** अन्य विशेषण शब्द प्रश्नवाचक शब्दों से तुरन्त पूर्व नहीं आते किन्तु **'और'** का प्रयोग सम्भव, यथा—अभी **और** कितना (/कहाँ/किधर/कब) चलना है? और कैसा (/कैसे/कितने/कितना/क्या) चाहिए? **(10)** **'और'** समय तथा स्थानवाची शब्दों को विशेषीकृत करता है, यथा—आज जाओ, और (फिर) कभी आना। यहाँ नहीं, और कहीं जाओ। **(11)** **'और'** कुछ सर्वनामों को और इन का विशेषण के रूप में प्रयोग होने पर विशेषीकृत करता है, यथा—कक्षा में **और** कोई (लड़का) है या नहीं? क्या आप को **और** कुछ (सामान) लेना है? **(12)** **'और'** का प्रयोग इन शब्दों के बाद में अधिक प्रचलित है, यथा—कभी **और**, कहीं **और**, कोई **और**, कुछ **और**। **(13)** ज़्यादा/अधिक के अर्थ में **'और'** का काफ़ी प्रयोग मिलता है, यथा—अभी **और** लिखो। अभी तुम्हें **और** पढ़ना (/आराम) करना चाहिए। **(14)** बहुवाची **'और** बहुत की भाँति प्रबलक (intensifier) है, यथा—**और** बड़ा (/छोटा/अच्छा/बुरा/दूर/पास/तेज़ी से·····)। **और थोड़ा** = पहले की मात्रा से कम; **और छोटा** = पहले के छोटे से भी छोटा—तुलनात्मक रूप। **(15)** निश्चित संख्यावाचक शब्दों से तिथिसूचक स्त्रीलिंग संज्ञाओं का निर्माण होता है। पूर्णिमा→पूर्णिमा के दिनों को कृष्ण पक्ष (पूर्णिमा परवर्ती प्रतिपदा→अमावस्या), शुक्लपक्ष (अमावस्या परवर्ती प्रतिपदा→पूर्णिमा) में बाँटा गया है। प्रत्येक पक्ष (>पाख>पखवाड़े) में 15 तिथियाँ होती हैं, यथा—पड़वा<प्रतिपदा, दूज~दोज<द्वितीया, तीज<तृतीया, **चौथ**<चतुर्थी, पाँचें<पंचमी, छठ<षष्ठी, सातें<सप्तमी, आठें<अष्टमी, **नौमी**<नवमी, दसमी<दशमी, एकादसी<एकादशी, द्वादस/द्वादसी<द्वादशी, तेरस<त्रयोदशी, चौदस<चतुर्दशी, मावस~अमावस<अमावस्या, पूनम~**पूनो**<पूर्णिमा, पूर्णमासी। हिन्दी क्षेत्र में कई त्योहार इन तिथियों से संबंधित हैं, यथा—भैया दूज, करवा चौथ, गणेश चतुर्थी, जन्माष्टमी/कृष्णाष्टमी, रामनवमी, धनतेरस, अनन्त चौदस, मौनी मावस, गुरु पूर्णिमा। **(16)** आधा/आधी/आधे संज्ञा के लिंग-वचन से अन्वित। पौन, सवा आदि संज्ञा के लिंग-वचन से अन्वित नहीं होते। सवा, डेढ़ एकवचन में आते हैं। पौने दो, दो से आगे की संख्याएँ बहुवचन में आती हैं, यथा—सवा रुपया चढ़ाओ। डेढ़ घंटा बाद जाना। पौने दो रुपये ले लेना। **(17)** आधा, चौथाई, पौना संज्ञा शब्द की भाँति भी प्रयुक्त, यथा—चौथाई/आधे/पौन (से कुछ कम/अधिक)। खंडवाचक संख्या शब्द अकेले तथा

एक दो तीन चार पाँच छह सात आठ नौ दस ग्यारह बारह तेरह चौदह पन्द्रह सोलह सत्रह अठारह उन्नीस बीस इक्कीस बाईस तेईस चौबीस पच्चीस छब्बीस सत्ताईस अठाईस उन्तीस तीस इकतीस बत्तीस तेतीस चौंतीस पैंतीस छत्तीस सैंतीस अड़तीस उनतालीस चालीस इकतालीस बयालीस तेतालीस चौवालीस पैंतालीस छयालीस सैंतालीस अड़तालीस उनचास पचास इकावन बावन तिरपन चौवन पचपन छप्पन सतावन अटावन उनसठ साठ इकसठ बासठ तिरसठ चौंसठ पैंसठ छियासठ सड़सठ अड़सठ उनहत्तर सत्तर इकहत्तर बहत्तर तिहत्तर चौहत्तर पचहत्तर छिहत्तर सतहत्तर अठहत्तर उनासी अस्सी इकासी बयासी तिरासी चौरासी पचासी छियासी सतासी अठासी नवासी नव्वे इकानवे बानवे तिरानवे चौरानवे पचानवे छियानवे सतानवे अठानवे न्यानवें सौ

(कुछ गणनावाची शब्दों के अन्य क्षेत्रीय रूप भी प्रचलित हैं, यथा—अट्ठारह, अट्ठाईस, तैंतीस, तैंतालीस, चवालीस, इक्यावन, त्रेपन, सत्तावन, अट्टावन, त्रेसठ, इक्यासी, सत्तासी, अट्ठासी, नब्बे, इक्यानवे, सत्तानवे, निन्यानवे)

हिन्दी में 10 से ऊपर 99 तक की संख्याएँ इकाई+दहाई के क्रम में आ कर समस्त शब्द के रूप में प्रयुक्त होती हैं, यथा—12 बारह (बा=2+रह<दह =10), 21 इक्कीस (इक=1, ईस<बीस=20)

(ii) **अपूर्णांकबोधक/खंडवाची** शब्द अपूर्ण संख्याओं की सूचना देते हैं, यथा—$\frac{1}{4}$ पाव, (एक) चौथाई, $\frac{1}{2}$ आधा, अर्ध, 1/3 (एक) तिहाई, $\frac{3}{4}$पौन, तीन चौथाई, 1/5 पाँचवाँ भाग, 2/3 दो तिहाई, $1\frac{1}{4}$ सवा, $1\frac{1}{2}$ डेढ़, $1\frac{3}{4}$ पौने दो, $2\frac{1}{4}$ सवा दो, $2\frac{1}{2}$ ढाई (अढ़ाई), 2 3/4 पौने तीन, $3\frac{1}{2}$ साढ़े तीन, 5 3/4 पौने छह, $7\frac{1}{2}$ साढ़े सात आदि, 225 सवा दो सौ, 1500 डेढ़ हज़ार, 3500 साढ़े तीन हज़ार; (1250 सवा हज़ार/एक हज़ार दो सौ पचास, साढ़े बारह सौ, 1500 पन्द्रह सौ/एक हज़ार पाँच सौ)

(iii) **क्रमवाची** संख्या शब्द वस्तुओं/व्यक्तियों आदि की गिनती करते समय उन का क्रम निर्दिष्ट करते हैं, यथा—पहला (/पहली/पहले), दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ, नौवाँ (/नवाँ), दसवाँ, ग्यारहवाँ; एक सौ एकवाँ, दो सौ तीनवाँ आदि। संस्कृत से आगत 'प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश, द्वादश' आदि शब्द साहित्य में प्रयुक्त होते हैं, यथा—चतुर्थी विभक्ति; अष्टमी तिथि; परीक्षा में प्रथम आया/आई)

(iv) **आवृत्तिवाची/गुणावाची** संख्या शब्द वस्तु आदि की आवृत्ति या गुना की सूचना देते हैं, यथा—दुगुना/दोगुना, तिगुना/तीनगुना, चौगुना/चारगुना, पँचगुना/पाँचगुना, छँगुना/छहगुना, सतगुना/सातगुना, अठगुना/आठगुना, नौगुना, दसगुना आदि। 'गुना' के अतिरिक्त '-हरा' प्रत्यय जोड़ कर भी आवृत्तिवाची विशेषक शब्द बनते हैं, यथा—इकहरा, दुहरा, तिहरा, चौहरा, पँचहरा, छँहरा, सतहरा, अठहरा,

नौहरा, दसहरा आदि । इन के रूप -आ/-ई/-ए जोड़ कर विशेष्य के लिंग; वचन के अनुरूप बनते हैं, यथा—दुगुना-दुगुने-दुगुनी, दुहरा-दुहरे-दुहरी आदि । इकहरी धोती, इकहरे बदन का बच्चा; इस घर के हर कमरे में दुहरे रोशनदान और दुहरी खिड़कियाँ हैं । दोगुना का एक रूप दूना भी प्रचलित है ।

(v) **समुदायवाची** संख्या शब्द वस्तुओं आदि की संख्या को एक समूह के रूप में व्यक्त करते हैं । ये अविकारी शब्द हैं, यथा—दोनो, तीनो, चारो (/दोनों, तीनों/चारों) आदि । बीसों, पचासों, हज़ारों, लाखों में सभी कथित इकाइयों की समाविष्टि के अतिरिक्त अधिक का भाव भी निहित है ।

(vi) **प्रत्येकवाची** संख्या शब्द वस्तु आदि की कथित संख्या के एक समूह को सूचित करता है, यथा—प्रति, हर, फी । प्रति दो व्यक्तियों को, हर तीन बच्चों को, फी आदमी ।

(ख) **अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण** शब्द वस्तु आदि की निश्चित संख्या के बारे में बोध नहीं कराते । ये छह प्रकार के होते हैं—1. लगभगवाची 2. बहुवाची 3 अल्पवाची 4. अनुमानवाची 5. पर्याप्तवाची 6. इतरवाची ।

(i) **लगभगवाची** शब्द अभिव्यक्ति के आधार पर तीन प्रकार होते हैं—(क) लगभग चार, क़रीब/तक़रीबन हज़ार ये संख्या तथा परिमाण के सूचक हैं । (ख) कोई पाँच सौ (ग) बीस-एक (☆बीसेक), पचास-एक (☆पचासेक) ।

(ii) **बहुवाची** शब्द व्यक्ति आदि के संख्या के बहुत्व के बोधक होते हैं, यथा—बहु, बहुत, बहुतेरे, सब, सैकड़ों, हज़ारों/लाखों (=कई हज़ार/लाख) सर्व, अनेक, कई, बहुत-से, दसियों, बीसियों, अधिक, और दसियों/बीसियों (=कई) दर्ज़नों (=अनेक), दर्ज़न = 12 'सब, कई' से कुछ लोग 'सबों; कइयों' रूप बनाने लगे हैं । इसी प्रकार कुछ लोग 'अनेक' से 'अनेकों' रूप बनाने लगे हैं । कई = बहुत-से, अनेक = अन + एक अर्थात् एक से अधिक है । बहुत्व, अधिकता का सूचक अनेकता (अनेकता में एकता) प्रचलित है । अनेकानेक = कई-कई का सूचक पुनरुक्त शब्द है । अनेक निश्चित संख्या/परिमाण का सूचक है । 'कई, सब' सर्वनाम के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं । बहुत = अधिक/ज़्यादा, यथा—लोटे में बहुत दूध है, मुझ से नहीं पिया जाएगा । बहुत-सा = कई, यथा—आज तो तुम्हें बहुत-से ग्रीटिंग कार्ड मिले हैं ।

(iii) **अल्पवाची** शब्द व्यक्ति आदि की संख्या के अल्पत्व के सूचक होते हैं, यथा—अल्प, कम, थोड़े, कुछ आदि । थोड़ा/थोड़ी तथा अन्य अल्पवाची शब्द अनिश्चित संख्या/परिमाण के सूचक हैं ।

(iv) **अनुमानवाची** शब्द व्यक्ति आदि की संख्या के अन्दाज़ या अनुमान के सूचक हैं, यथा—एक-दो, तीन-चार, पचास-सौ, दस-बीस, सौ-पचास, उन्नीस-बीस, हज़ार-पाँच सौ आदि ।

(v) **पर्याप्तवाची** शब्द व्यक्ति आदि की पर्याप्तता के सूचक हैं, यथा—पर्याप्त, काफ़ी, अपर्याप्त, नाकाफ़ी। ये शब्द ही अनिश्चित संख्या/परिमाण के सूचक हैं।

(vi) **इतरवाची** शब्द वर्गीय अनिश्चित अनुपस्थित सदस्य की सूचना देते हैं, यथा—अन्य, और, दूसरे लोग

संख्यावाची शब्दों के प्रयोग आदि के बारे में विशेष—(1) दसी, बीसी, सैकड़ा; दुक्का, चौका, पंजा.......' **गणनक शब्द** संज्ञाएँ हैं, संख्यावाचक शब्द नहीं। इन्हें अंकों में नहीं लिखा जाता। इन के साथ अन्य संज्ञा शब्दों की भाँति विशेषक आ सकते हैं। इन का व्याकरणिक लिंग होता है। (2) 1 ला, 2 रा, 3 रा, 4 था, 5 वाँ, 6 ठा, 7 वाँ आदि मराठी के प्रभाव से हिन्दी में श्रम, समय-बचत की दृष्टि से प्रचलित हो चले हैं। (3) वर्ग सदस्य+जातिवाचक संज्ञा तथा व्यक्ति-वाचक संज्ञा+वर्ग की रचना में 'एक' का प्रयोग होता है, यथा—तोता एक पक्षी है। गुड़हल एक फूल है। लौकी एक तरकारी है। श्यामा एक अच्छी लड़की है। बीजापुर एक ऐतिहासिक नगर है। इन वाक्यों में से 'एक' हटाने पर भिन्न प्रकार की रचना होगी। यहाँ 'एक' किसी तथ्य के पहली बार उल्लेख का सूचक है। वर्ग-सदस्य की इकाई की संख्या की सूचना के लिए 'एक' संख्यावाचक विशेषण का प्रयोग, यथा—मेज़ पर पाँच-पाँच के कुछ नोट पड़े हैं, तुम उन में से एक नोट उठा लो। आज मैं ने एक खरबूज़ खाया था। अँगरेज़ी में पहली बार उल्लेख की सूचना के लिए 'a' का प्रयोग होता है और पूर्व निर्दिष्ट वस्तु के लिए 'the' का प्रयोग। हिन्दी में पूर्व निर्दिष्ट वस्तु का ही प्रयोग होता है। कभी-कभी 'यह/वह' का भी प्रयोग होता है, यथा—घर में कौन है?—एक चोर है? (वह/चोर) कहाँ है?—(वह/चोर) एक कमरे में है। कौन-से कमरे में?—शयन कक्ष में। (4) अनिर्दिष्ट समय/स्थान की सूचना के लिए 'एक' का तथा अनिश्चय की सूचना के लिए 'किसी' का प्रयोग, यथा—एक (/किसी) ज़माने में, एक (/किसी) देश में, एक (/कोई) बादशाह था। एक (/किसी) दिन तुम्हें मेरी याद आएगी। (5) साल महीना, हफ़्ता, घंटा, मिनट के साथ 'एक' का प्रयोग संख्यावाचक विशेषण के रूप में ही, अनिश्चय की सूचना के लिए नहीं। 'एक-न-एक' अनिश्चयात्मक है। किसी साल/महीने/हफ़्ते/दिन आ जाना (✡एक साल/महीने/हफ़्ते/दिन आ जाना)। एक बार/समय (/किसी समय)। एक प्रकार से, एक हिसाब से। (6) 'एक में शामिल/समन्वित' अर्थ के रूप में 'एक' मूल शब्द के साथ जुड़ कर प्रयुक्त, यथा—एकतन्त्र, एकजुट, एकनिष्ठ, एकदम, एकवचन, एकरूप, इकतरफ़ा <एकतरफ़ा, एकमुश्त राशि, एकमत हो कर। वे एक मत से चुनाव जीते थे—वे एकमत से चुनाव जीते थे—(7) हरेक (/हर एक), कुछेक (/कुछ एक), कई एक में 'एक' **अनिश्चयबोधक**, महत्त्वहीन-सा है, यथा—हर (/हर एक/हरेक) बच्चे को दो लड्डू दो। संज्ञावाचक

शब्दों के साथ एक 'लगभग' अर्थ-सूचक है, यथा—कक्षा में बीस एक छात्र हो सकते हैं। रोज़ाना कोई सौ एक रुपये मिल जाते हैं, ज़्यादा नहीं। (8) इतरवाची शब्दों के प्रयोग, यथा—क्यों, तुम तीन ही क्यों आए हो, और (/अन्य/दूसरे) लोग कहाँ हैं? तुम्हारा और (/शेष) सामान कहाँ है? क्या तुम्हारे पास और (/अन्य/दूसरे) भी पैन्ट पीस हैं। इन दो से ही नहीं, आप और (/अन्य/दूसरे) बच्चों से भी पूछें। 'और' का पूरकवत् प्रयोग, यथा—अभी एक गुंडा और है जो अभी-अभी भाग गया है। अभी अन्दर कितने लोग और हैं। घड़ियों के अलावा मेरे पास केलक्यूलेटर और हैं, कहें तो दिखाऊँ? (9) अन्य विशेषण शब्द प्रश्नवाचक शब्दों से तुरन्त पूर्व नहीं आते किन्तु 'और' का प्रयोग सम्भव, यथा—अभी और कितना (/कहाँ/किधर/कब) चलना है? और कैसा (/कैसे/कितने/कितना/क्या) चाहिए? (10) 'और' समय तथा स्थानवाची शब्दों को विशेषीकृत करता है, यथा—आज जाओ, और (फिर) कभी आना। यहाँ नहीं, और कहीं जाओ। (11) 'और' कुछ सर्वनामों को और इन का विशेषण के रूप में प्रयोग होने पर विशेषीकृत करता है, यथा—कक्षा में और कोई (लड़का) है या नहीं? क्या आप को और कुछ (सामान) लेना है? (12) 'और' का प्रयोग इन शब्दों के बाद में अधिक प्रचलित है, यथा—कभी और, कहीं और, कोई और, कुछ और। (13) ज़्यादा/अधिक के अर्थ में 'और' का काफ़ी प्रयोग मिलता है, यथा—अभी और लिखो। अभी तुम्हें और पढ़ना (/आराम) करना चाहिए। (14) बहुवाची 'और बहुत की भाँति प्रबलक (intensifier) है, यथा—और बड़ा (/छोटा/अच्छा/बुरा/दूर/पास/तेज़ी से······)। और थोड़ा = पहले की मात्रा से कम; और छोटा = पहले के छोटे से भी छोटा—तुलनात्मक रूप। (15) निश्चित संख्यावाचक शब्दों से तिथिसूचक स्त्रीलिंग संज्ञाओं का निर्माण होता है। पूर्णिमा→पूर्णिमा के दिनों को कृष्ण पक्ष (पूर्णिमा परवर्ती प्रतिपदा→अमावस्या), शुक्लपक्ष (अमावस्या परवर्ती प्रतिपदा→पूर्णिमा) में बाँटा गया है। प्रत्येक पक्ष (>पाख>पखवाड़े) में 15 तिथियाँ होती हैं, यथा—पड़वा<प्रतिपदा, दूज∾दोज<द्वितीया, तीज<तृतीया, चौथ<चतुर्थी, पाँचें<पंचमी, छठ<षष्ठी, सातें<सप्तमी, आठें<अष्टमी, नौमी<नवमी, दसमी<दशमी, एकादसी<एकादशी, द्वादस/द्वादसी<द्वादशी, तेरस<त्रयोदशी, चौदस<चतुर्दशी, मावस∼अमावस<अमावस्या, पूनम∼पूनो<पूर्णिमा, पूर्णमासी। हिन्दी क्षेत्र में कई त्योहार इन तिथियों से संबंधित हैं, यथा—भैया दूज, करवा चौथ, गणेश चतुर्थी, जन्माष्टमी/कृष्णाष्टमी, रामनवमी, धनतेरस, अनन्त चौदस, मौनी मावस, गुरु पूर्णिमा। (16) आधा/आधी/आधे संज्ञा के लिंग-वचन से अन्वित। पौन, सवा आदि संज्ञा के लिंग-वचन से अन्वित नहीं होते। सवा, डेढ़ एकवचन में आते हैं। पौने दो, दो से आगे की संख्याएँ बहुवचन में आती हैं, यथा—सवा रुपया चढ़ाओ। डेढ़ घंटा बाद जाना। पौने दो रुपये ले लेना। (17) आधा, चौथाई, पौना संज्ञा शब्द की भाँति भी प्रयुक्त, यथा—चौथाई/आधे/पौन (से कुछ कम/अधिक)। खंडवाचक संख्या शब्द अकेले तथा

गणनावाची संख्या शब्दों के साथ संज्ञा से पूर्व आते हैं, यथा—चौथाई/आधा समय; एक तिहाई काम। डेढ़, ढाई का प्रयोग संज्ञाओं से पूर्व भी होता है और गणनावाची (सौ, हज़ार, लाख ······) संख्या शब्दों से पहले भी। पौने, सवा, साढ़े केवल गणनावाची संख्या के साथ आते हैं, यथा—'साढ़े' तीन या अधिक गणनावाची संख्या के पूर्व आता है। (18) क्रमवाची संख्या शब्द अपने विशेष्य के लिंग, वचन, कारक से अन्वित होते हैं, यथा—तीसरा लड़का, तीसरे लड़के को, तीसरे लड़के ! तीसरी लड़की, तीसरी लड़की से, तीसरी लड़की ! (19) संयुक्त क्रमवाची संख्या शब्द में उस की अंतिम संख्या का ही रूप बदलता है, यथा—तीन सौ बत्तीसवाँ सिपाही; एक सौ सोलहवें क़ैदी को; दो सौ पच्चीसवीं स्त्री (ने)। (20) वाक्य में क्रमवाची संख्या शब्द विशेषक या विधेय के नामिक अंश के रूप में आते हैं, यथा—सुशीला का सोलहवाँ साल चल रहा है। आप का डिब्बा इंजन से छठा है। प्रथम/द्‌वितीय विश्वयुद्‌ध। (21) प्रतिशत की अभिव्यक्ति के लिए गणनावाची संख्या शब्द के बाद प्रतिशत/फ़ी सदी रख कर की जाती है, यथा—(15%) पन्द्रह प्रतिशत (/फ़ी सदी) साधारण ब्याज की दर से; भारत की आबादी का 70 प्रतिशत गाँवों में रहता है। (22) गणनावाची संख्या शब्दों में गुना (अर्थ प्रत्यय) जोड़ कर बने आवृत्तिवाची संख्या शब्द विशेष्य के लिंग, वचन से अन्वित होते हैं, यथा—दुगुनी उपज, तिगुनी खपत। वाक्य में आवृत्तिवाची संख्या शब्द विशेषक या विधेय के अंश के रूप में आते हैं, यथा—इस योजना का दुगुना विस्तार किया जाना चाहिए। भारत के कई नगरों में आबादी चौगुनी बढ़ (/हो) गई है। घी का भाव पिछले वर्ष की तुलना में इस वर्ष दुगुना (/तीन गुना अधिक) है। महँगाई बढ़ने से प्रत्येक परिवार का खर्च चौगुने से ले कर छह गुने तक बढ़ गया है। (23) 'कई' के साथ आ कर गुना अनिश्चित अनेकत्व की सूचना देता है, यथा—पिछले पाँच वर्षों में भारत और जापान के मध्य लोहे का व्यापार कई गुना बढ़ गया है।

संख्यावाची शब्दों/अंकों के कुछ अन्य प्रयोग—(1) संस्कृत समासों में संस्कृत संख्याओं का प्रयोग होता है, यथा—त्रिकाल, त्रिभुज, त्रिलोक, चतुरंग, चतुर्युग, चतुर्भुज, पंचरात्र, पंचाग्नि, पंचदेव, षट्कोण, षड्यन्त्र, षड्रस, सप्तर्षि, सप्ताह, सप्तद्‌वीप, अष्टांग, अष्टभुज, अष्टछाप, नवरात्र, नवग्रह, नवरत्न आदि। (2) 100 से कम की संख्याओं के साथ **पौने** (एक इकाई का चौथाई कम), **सवा** (एक इकाई का चौथाई अधिक), **साढ़े** (एक इकाई का आधा अधिक) अर्थ को व्यक्त करते हैं। सौ, हज़ार, लाख आदि के साथ ये एक इकाई से संबंध नहीं रखते, बल्कि सम्बद्‌ध संख्या से संबंध रखते हैं, यथा—275 पौने तीन सौ, 225 सवा दो सौ, 4500 साढ़े चार हज़ार। हिन्दी में पौने सौ (/हज़ार/लाख) बोलने का प्रचलन नहीं है, इन के स्थान पर पचहत्तर, सात सौ पचास तथा पचहत्तर हज़ार बोला जाता है। (3) पौने, सवा, डेढ़, ढाई, साढ़े का प्रयोग समय/बजे बताने के लिए भी होता है। हिन्दी में 'पौने एक, सवा एक' के स्थान पर 'पौन, सवा' का अधिक प्रचलन है।

(4) खंडवाची शब्दों के लिए प्राचीन हिन्दी में खड़ी पाई (।) का प्रयोग भी होता था, यथा—। चौथाई, ।। आधा, ।।। पौन, १। सवा, १।। डेढ़, १।।। पौने दो, 2।। ढाई, ३।। साढ़े तीन। रुपये-आने-पैसे इस प्रकार लिखे जाते थे—)। एक पैसा, –) एक आना, १।।। ☰)।।। एक रुपया पन्द्रह आने तीन पैसे (5) 2500 ढाई हज़ार/पच्चीस सौ/दो हज़ार पाँच सौ; 3·50 रु० साढ़े तीन रुपये/तीन रुपये पचास पैसे; 1·25 रु० सवा रुपया/एक रुपया पच्चीस पैसे; 1·50 रु० डेढ़ रुपया/एक रुपया पचास पैसे; 3·75 रु० पौने चार रुपये/तीन रुपये पचहत्तर पैसे; 2·15 सवा दो बजे/दो बजकर पन्द्रह मिनट; 10·45 पौने ग्यारह बजे/दस बजकर पैंतालीस मिनट; 3 4/5 तीन सही चार बटे पाँच; 3/5 तीन बटे/बटा पाँच (पाँच में से तीन भाग/हिस्से; गणनावाची शब्द/भाज्य + √ बँटना का कृदन्त 'बटा/बटे' + गणनावाची शब्द/भाजक); 9/10 नौ बटे/बटा दस (नौ दसवें भाग/हिस्से) ; 1/7 सातवाँ भाग/हिस्सा, एक बटे/बटा सात; 2 5/7 दो सही पाँच बटा/बटे सात (6) **दशमलव भिन्न**—0·9 शून्य दशमलव नौ; 5·68 पाँच दशमलव छह आठ; एक पंक्ति में नुक्ता/बिन्दु युत लिखे गए अंक—3 8/15 + 2 35 तीन सही आठ बटे पन्द्रह धन दो दशमलव तीन पाँच।

3. **परिमाणबोधक विशेषण** विशेष्य (पदार्थवाचक या द्रव्यवाचक संज्ञा) के परिमाण (मात्रा, नाप-माप-तौल) की सूचना देते हैं। परिमाण निश्चित, अनिश्चित हो सकता है, अतः परिमाणवाची विशेषण भी दो प्रकार के होते हैं—(क) निश्चित परिमाणवाचक (ख) अनिश्चित परिमाणवाचक।

(क) **निश्चित परिमाणवाचक विशेषण** किसी वस्तु का निश्चित संख्या/मात्रा में परिमाण व्यक्त करते हैं, यथा—एक पाव (/सेर/लीटर/किलो) दूध/आटा, पौन किलो चने, एक किलो चावल (/किलो भर/मन भर चावल), लोटा भर घी, एक कनस्तर/टिन तेल, चार योजन दूरी, पाँच फ़ुट लकड़ी, तीन मीटर कपड़ा। एक चौथाई वेतन किराये में चला जाता है। अभी केवल तीन चौथाई काम पूरा हुआ है।

(ख) **अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण** किसी वस्तु का न्यूनाधिक अनिश्चित परिमाण व्यक्त करते हैं, यथा—बहुत, अधिक, ज़्यादा, थोड़ा, कम, ज़रा, तनिक, बेसी; ढेरों, मनों, टनों; पूरा, अधूरा; इतना, उतना, जितना, कितना; ढेर सारा, थोड़ा-सा, तनिक-सा, ज़रा, ढेर-सा, सारा, सब, कुछ; क़रीब-क़रीब। थोड़ा काम; थोड़ा (=कुछ) अच्छा/बीमार; थोड़ी गरम/शरारती लड़की; ज़्यादा मेहनत; थोड़ी-सी शैतान (/चंचल/मोटी/दुबली)।

कुछ लड़कियाँ (अनिश्चित संख्यावाचक)—कुछ दूध (अनिश्चित परिमाण-वाचक); और बच्चे (अनिश्चित संख्यावाचक)—और दूध (अनिश्चित परिमाण-वाचक); पुस्तक क़रीब-क़रीब पूरी हो चुकी है। गिनती या मात्रावाली संज्ञाओं के

गणनावाची संख्या शब्दों के साथ संज्ञा से पूर्व आते हैं, यथा—चौथाई/आधा समय; एक तिहाई काम। डेढ़, ढाई का प्रयोग संज्ञाओं से पूर्व भी होता है और गणनावाची (सौ, हज़ार, लाख ……) संख्या शब्दों से पहले भी। पौने, सवा, साढ़े केवल गणनावाची संख्या के साथ आते हैं, यथा—'साढ़े' तीन या अधिक गणनावाची संख्या के पूर्व आता है। (18) क्रमवाची संख्या शब्द अपने विशेष्य के लिंग, वचन, कारक से अन्वित होते हैं, यथा—तीसरा लड़का, तीसरे लड़के को, तीसरे लड़के ! तीसरी लड़की, तीसरी लड़की से, तीसरी लड़की ! (19) **संयुक्त क्रमवाची संख्या शब्द** में उस की अंतिम संख्या का ही रूप बदलता है, यथा—तीन सौ बत्तीसवाँ सिपाही; एक सौ सोलहवें क़ैदी को; दो सौ पच्चीसवीं स्त्री (ने)। (20) वाक्य में क्रमवाची संख्या शब्द विशेषक या विधेय के नामिक अंश के रूप में आते हैं, यथा—सुशीला का **सोलहवाँ** साल चल रहा है। आप का डिब्बा इंजन से **छठा** है। प्रथम/द्वितीय विश्वयुद्ध। (21) **प्रतिशत** की अभिव्यक्ति के लिए गणनावाची संख्या शब्द के बाद प्रतिशत/फ़ी सदी रख कर की जाती है, यथा—(15%) पन्द्रह प्रतिशत (/फ़ी सदी) साधारण ब्याज की दर से; भारत की आबादी का 70 प्रतिशत गाँवों में रहता है। (22) गणनावाची संख्या शब्दों में गुना (अर्थ प्रत्यय) जोड़ कर बने आवृत्तिवाची संख्या शब्द विशेष्य के लिंग, वचन से अन्वित होते हैं, यथा—दुगुनी उपज, तिगुनी खपत। वाक्य में आवृत्तिवाची संख्या शब्द विशेषक या विधेय के अंश के रूप में आते हैं, यथा—इस योजना का दुगुना विस्तार किया जाना चाहिए। भारत के कई नगरों में आबादी चौगुनी बढ़ (/हो) गई है। घी का भाव पिछले वर्ष की तुलना में इस वर्ष दुगुना (/तीन गुना अधिक) है। महँगाई बढ़ने से प्रत्येक परिवार का खर्च चौगुने से ले कर छह गुने तक बढ़ गया है। (23) 'कई' के साथ आ कर गुना अनिश्चित अनेकत्व की सूचना देता है, यथा—पिछले पाँच वर्षों में भारत और जापान के मध्य लोहे का व्यापार कई गुना बढ़ गया है।

संख्यावाची शब्दों/अंकों के कुछ अन्य प्रयोग—(1) संस्कृत समासों में संस्कृत संख्याओं का प्रयोग होता है, यथा—त्रिकाल, त्रिभुज, त्रिलोक, चतुरंग, चतुर्युग, चतुर्भुज, पंचरात्र, पंचाग्नि, पंचदेव, षट्कोण, षड्यन्त्र, षड्रस, सप्तर्षि, सप्ताह, सप्तद्वीप, अष्टांग, अष्टभुज, अष्टछाप, नवरात्र, नवग्रह, नवरत्न आदि। (2) 100 से कम की संख्याओं के साथ **पौने** (एक इकाई का चौथाई कम), **सवा** (एक इकाई का चौथाई अधिक), **साढ़े** (एक इकाई का आधा अधिक) अर्थ को व्यक्त करते हैं। सौ, हज़ार, लाख आदि के साथ ये एक इकाई से संबंध नहीं रखते, बल्कि सम्बद्ध संख्या से संबंध रखते हैं, यथा—275 पौने तीन सौ, 225 सवा दो सौ, 4500 साढ़े चार हज़ार। हिन्दी में पौने सौ (/हज़ार/लाख) बोलने का प्रचलन नहीं है, इन के स्थान पर पचहत्तर, सात सौ पचास तथा पचहत्तर हज़ार बोला जाता है। (3) पौने, सवा, डेढ़, ढाई, साढ़े का प्रयोग समय/बजे बताने के लिए भी होता है। हिन्दी में 'पौने एक, सवा एक' के स्थान पर 'पौन, सवा' का अधिक प्रचलन है।

(4) खंडवाची शब्दों के लिए प्राचीन हिन्दी में खड़ी पाई (।) का प्रयोग भी होता था, यथा—। चौथाई, ।। आधा, ।।। पौन, १। सवा, १।। डेढ़, १।।। पौने दो, 2।। ढाई, ३।। साढ़े तीन। रुपये-आने-पैसे इस प्रकार लिखे जाते थे—)। एक पैसा, –) एक आना, १।।। ≡)।।। एक रुपया पन्द्रह आने तीन पैसे (5) 2500 ढाई हज़ार/पच्चीस सौ/दो हज़ार पाँच सौ; 3·50 रु० साढ़े तीन रुपये/तीन रुपये पचास पैसे; 1·25 रु० सवा रुपया/एक रुपया पच्चीस पैसे; 1·50 रु० डेढ़ रुपया/एक रुपया पचास पैसे; 3·75 रु० पौने चार रुपये/तीन रुपये पचहत्तर पैसे; 2·15 सवा दो बजे/दो बजकर पन्द्रह मिनट; 10·45 पौने ग्यारह बजे/दस बजकर पैंतालीस मिनट; 3 4/5 तीन सही चार बटे पाँच; 3/5 तीन बटे/बटा पाँच (पाँच में से तीन भाग/हिस्से; गणनावाची शब्द/भाज्य + √ बँटना का कृदन्त 'बटा/बटे' + गणनावाची शब्द/भाजक); 9/10 नौ बटे/बटा दस (नौ दसवें भाग/हिस्से) ; 1/7 सातवाँ भाग/हिस्सा, एक बटे/बटा सात; 2 5/7 दो सही पाँच बटा/बटे सात (6) **दशमलव भिन्न**—0·9 शून्य दशमलव नौ; 5·68 पाँच दशमलव छह आठ; एक पंक्ति में नुक़्ता/बिन्दु युत लिखे गए अंक—3 8/15 + 2 35 तीन सही आठ बटे पन्द्रह धन दो दशमलव तीन पाँच।

3. **परिमाणबोधक विशेषण** विशेष्य (पदार्थवाचक या द्रव्यवाचक संज्ञा) के परिमाण (मात्रा, नाप-माप-तौल) की सूचना देते हैं। परिमाण निश्चित, अनिश्चित हो सकता है, अतः परिमाणवाची विशेषण भी दो प्रकार के होते हैं—(क) निश्चित परिमाणवाचक (ख) अनिश्चित परिमाणवाचक।

(क) **निश्चित परिमाणवाचक विशेषण** किसी वस्तु का निश्चित संख्या/मात्रा में परिमाण व्यक्त करते हैं, यथा—एक पाव (/सेर/लीटर/किलो) दूध/आटा, पौन किलो चने, एक किलो चावल (/किलो भर/मन भर चावल), लोटा भर घी, एक कनस्तर/टिन तेल, चार योजन दूरी, पाँच फ़ुट लकड़ी, तीन मीटर कपड़ा। एक चौथाई वेतन किराये में चला जाता है। अभी केवल तीन चौथाई काम पूरा हुआ है।

(ख) **अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण** किसी वस्तु का न्यूनाधिक अनिश्चित परिमाण व्यक्त करते हैं, यथा—बहुत, अधिक, ज़्यादा, थोड़ा, कम, ज़रा, तनिक, बेसी; ढेरों, मनों, टनों; पूरा, अधूरा; इतना, उतना, जितना, कितना; ढेर सारा, थोड़ा-सा, तनिक-सा, ज़रा, ढेर-सा, सारा, सब, कुछ; क़रीब-क़रीब। थोड़ा काम; थोड़ा (= कुछ) अच्छा/बीमार; थोड़ी गरम/शरारती लड़की; ज़्यादा मेहनत; थोड़ी-सी शैतान (/चंचल/मोटी/दुबली)।

कुछ लड़कियाँ (अनिश्चित संख्यावाचक)—कुछ दूध (अनिश्चित परिमाणवाचक); और बच्चे (अनिश्चित संख्यावाचक)—और दूध (अनिश्चित परिमाणवाचक); पुस्तक क़रीब-क़रीब पूरी हो चुकी है। गिनती या मात्रावाली संज्ञाओं के

साथ 'थोड़ा-सा' का प्रयोग, अन्यत्र 'थोड़ा' का प्रयोग होता है, यथा--थोड़ी-सी चाय (/चीनी/कमीज़), थोड़ी देर (/तकलीफ़) थोड़ा दर्द (/आराम)।

4. **सार्वनामिक विशेषण** विशेष्य (संज्ञा) से पूर्व आनेवाले मूल या व्युत्पन्न सर्वनाम शब्द होते हैं। मूल सर्वनाम कारक-चिह्न सहित (यथा—मेरा/मेरी/मेरे, उस का/की/के आदि) और कारक-चिह्न रहित (यथा – यह, वह, इस, उस, इन, उन आदि) प्रयुक्त होते हैं। व्युत्पन्न सर्वनाम रूप सादृश्यवाची, परिमाणवाची होते हैं, यथा—ऐसा, वैसा, कैसा, जैसा, तैसा; इतना, उतना, जितना, कितना, (तितना)। मेरी टाई, तुम्हारा कोट, यह लड़का, वह लड़की, कोई-सी पुस्तक, कौन-सी पुस्तक, कोई नेता, कौन अभिनेता, जो बच्चे, ऐसी साड़ी, ऐसी-वैसी चीज़, कैसा मेला, कितना घी। यह टोपी **मेरी** है, **तुम्हारी** नहीं (सर्वनाम) – यह **मेरी** टोपी है—**तुम्हारी** नहीं (विशेषण)। सार्वनामिक विशेषणों के मूल, व्युत्पन्न रूप—यह (>ऐसा/ऐसी/ऐसे, इतना/इतनी/इतने), वह (>वैसा··· , उतना) क्या (>कैसा·······, कितना ·······), जो (>जैसा·······, जितना·······), सो (>तैसा ····, तितना·······)

किसी की बात को दुहराने या उस के बदले में 'अमुक/फ़लाँ/फ़लाना' का प्रयोग होता है। ये शब्द प्रत्यक्ष उक्ति में नहीं आते, यथा—प्रत्यक्ष उक्ति—तुम (किसी दिन/शाम को/20 तारीख़ के) सबेरे वुडलैंड होटल में मिलो। इस वाक्य की पुनः अभिव्यक्ति होगी—उस ने (/उन्हों ने) मुझ से कहा कि मैं फलाँ दिन (/तारीख़ को) फ़लाँ होटल में उस से (/उन से) मिलूँ।

उर्दू से आगत 'ऐन' शब्द 'ठीक/उसी' अर्थ में प्रयुक्त है, यथा—ऐन वक़्त पर, ऐन मौक़े पर·······।

5. **कृदन्ती विशेषण** भूतकालिक तथा वर्तमानकालिक कृदन्तों से व्युत्पन्न विशेषण हैं। यथा—फटा (/फटा हुआ) कपड़ा ; टूटा (/टूटा हुआ) प्याला ; बहता (/बहता हुआ) पानी ; उड़ती (/उड़ती हुई) चिड़िया ; जमा राशि (/भीड़); कुल जमा पूँजी (/पाँच सौ रुपये)। दो जमा (/धन) पाँच = सात। (कृदन्तों के बारे में विस्तार से अध्याय 17 में लिखा गया है)।

6. **सादृश्यवाची विशेषण** संज्ञा, विशेषण शब्दों के साथ '-सा, जैसा, सरीखा' रख कर बनते हैं, यथा—फूल-सा बदन, कमल-सी आँखें, चाँद-सा मुखड़ा, सिंह-सा ताक़तवर; रेशम जैसे बाल (/रेशम-से बाल), नागिन जैसी चोटी, हथिनी जैसी चाल; हरिश्चन्द्र सरीखा सत्यवादी, अशोक सरीखा राजा। '-सा' निकटता/के लगभग अर्थ का द्योतक है। शहद जैसी (-सी) मिठास, शहद जैसा (/-सा) मीठा। -सा/जैसा/सरीखा लगने पर शब्द तिर्यक् रूप में आता है, यथा—घर जैसा खाना, घोड़े जैसी चाल, बूढ़ों जैसी बातें, बच्चों जैसी चंचलता, तुझ जैसा नालायक़, हथिनी सरीखी भारी-भरकम। संज्ञा + -सा + विशेषण प्रयोग उपयुक्त है, किन्तु संज्ञा + -सा + संज्ञा के प्रयोग के समय 'का' का प्रयोग कहीं विकल्प से, कहीं अनिवार्य होता है,

यथा—उस जैसा मतलबी, शहद जैसी मिठास; घर-सा खाना/घर का -सा खाना/घर जैसा खाना/घर के खाने जैसा ही खाना ।

'नीला-सा, थोड़ा-सा, बहुत-सा' में '-सा' निकट के अर्थ का द्योतक है । अच्छा-सा कम्बल, बड़ी-सी दुकान । मात्रा-द्योतन के लिए 'बहुत-सा' आता है, यथा—उन्हों ने बहुत-सा खाना खाया । क्रिया-व्यापार की अधिकता के लिए 'बहुत' आता है, यथा—वे बहुत खाना खाते हैं (/पानी पीते हैं), तुम बहुत बातें करते/बनाते हो ।

विशेषण शब्दों की विशेषता/मात्रा (गुण, लक्षण के विभिन्न स्तर) बतानेवाले विशेषण शब्द **प्रविशेषण/प्रबलक** कहलाते हैं, यथा—**बहुत** अधिक चिन्ता करना स्वास्थ्य के लिए **बहुत** घातक है । 'बहुत' अधिक, ज़्यादा, थोड़ा, कम, अति, क़तई, कहीं, ज़रा, किंचित्, और भी, कुछ, बड़ा, काफ़ी, बिलकुल' शब्द प्रविशेषण के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं, यथा—तुम्हारी यह साड़ी तो **बहुत** अच्छी है । उन्हें क्रिया-विशेषण मानना/कहना भ्रमात्मक है । आजकल क़तई का प्रयोग 'बिलकुल' के अर्थ में किया जाने लगा है, यथा—जी हाँ, आप की यह बात क़तई वाजिब है । मुझे तुम्हारी यह चुहलबाज़ी क़तई नापसन्द है । सही प्रयोग है—'क़तई नहीं', यथा—मुझे तुम्हारी इन बातों पर क़तई विश्वास/यक़ीन नहीं है । मुझे तुम्हारी यह हँसी-मज़ाक क़तई पसन्द नहीं है । ब्रज आदि हिन्दी-बोलियों में कुछ लोग ज़्यादह के स्थान पर 'जास्ती' तथा कम के स्थान पर 'कमती' शब्द का प्रयोग करते हैं जो अमानक प्रयोग हैं । कम>कमी संज्ञा है, कमती विशेषण अमानक है ।

काफ़ी/पर्याप्त का प्रयोग प्रविशेषण/प्रबलक के रूप में तो ठीक है, यथा—कल का कार्यक्रम काफ़ी/पर्याप्त अच्छा कहा जा सकता है । शताब्दी एक्सप्रेस काफ़ी/पर्याप्त तेज़ दौड़ती है ; किन्तु 'कई/अधिक/बहुत' के अर्थ में इन का प्रयोग त्याज्य है, यथा—☆कमरे में काफ़ी कुर्सियाँ थीं । ☆बच्चे ने काफ़ी चाकलेट खा ली हैं ।

'वाला' अर्ध प्रत्यय का हिन्दी में विशेषण के रूप में व्यापक स्तर पर प्रयुक्त होता है । क्रिया को छोड़ कर अन्य शब्दों के साथ यह निर्देश तथा पहचान की सूचना देता है, यथा—नीलीवाली, मोटीवाली, सब से ऊपर/नीचेवाली पुस्तक; पगड़ीवाला/मूँछोंवाला/टोपीवाला आदमी । माँ, बाहर कोई/एक पगड़ीवाला (आदमी) खड़ा है । परसोंवाली घटना, पार्कवाली बात, कॉलेजवाला झगड़ा/मामला । 'का' के प्रयोग से संबंध में अन्तर आ जाता है, यथा—पार्कवाली बात—पार्क की बात । 'वाली' से एक से अधिक बातों में से एक की ओर संकेत हो रहा है, जब कि 'की' से बात का संबंध पार्क से भी जुड़ा रहा है । 'कपड़ेवाले जूते, चमड़ेवाला बैग, ज़रीवाली साड़ी' में साधन तथा वस्तु का अंगांगी संबंध है जो 'का' से भी व्यक्त हो सकता है, किन्तु 'वाला' से किसी एक की सूचना मिल रही है । सम्भावित परिणाम का संकेत 'वाला'

से, निश्चित सम्बन्ध 'का' से प्रकट होता है, यथा—नुकसानवाली बात से……—नुकसान की बात से; झगड़ेवाले मामले में……—झगड़े के मामले में।

संज्ञार्थक क्रिया+वाला विशेषण की भाँति काम करते हैं, यथा—नाचनेवाली लड़की, भाषण देनेवाले के पास, लोग आनेवाले हैं, गाड़ी छूटने ही वाली थी कि…। कहीं-कहीं यह 'निर्देश' की सूचना भी देता है, यथा—तबला बजानेवाले से पूछो; क्या आप आज रुकनेवाले हैं? किन्तु 'आँधी आने ही वाली है; थोड़ी देर में अध्यक्ष जी पधारने ही वाले हैं' में निर्देश नहीं है।

'वाला' की स्थानापत्ति कुछ सन्दर्भों में 'जो' से होती है, यथा—हज को जानेवाले……(जो लोग हज को जा रहे हैं……); हॉल में घुसनेवालों की……(जो लोग हॉल में घुसेंगे/प्रवेश करेंगे उन की……); हमेशा भौंहें चढ़ा कर बोलने वाली……(जो हमेशा भौंहें चढ़ा कर बोलती है……); 'वाला' से कार्य की निकटता, अनुमान की सूचना मिलती है, यथा—जल्दी चढ़ो, गाड़ी चलनेवाली है। लगता है वर्षा आनेवाली है। दावत में कितने लोग आनेवाले हैं (/आ रहे हैं)? लगता है आज बिजली नहीं आनेवाली (/बिजली नहीं आएगी)। पिता जी (अभी) सोने वाले हैं—पिताजी अभी सोएँगे।

वाक्य में वितरण, प्रयोग के आधार पर विशेषणों को उद्देश्य विशेषण, विधेय विशेषण कहते हैं। **उद्देश्य (/विशेष्य) विशेषण** विशेष्य के तुरन्त-पूर्व आते हैं, यथा—**काली** गाय **लम्बे-चौड़े** खेत में **हरी-हरी** घास चर रही हैं। **विधेय विशेषण** विशेष्य के बाद या क्रिया के पूरक के रूप में आते हैं, यथा—यह लड़का **बहुत बदमाश** है। वे सारे लोग **ग़ुलाम** थे।

विशेषण-रूपान्तर विशेष्य के लिंग, वचन तथा कारक से प्रभावित होता है। कुछ विशेषण शब्द रूपान्तर के समय शून्य प्रत्यय से युक्त होने के कारण अपने मूल रूप में यथावत् रहते हैं, कुछ शब्द रूपान्तर के समय -आ/-ई/-ए प्रत्यय से युक्त होने के कारण रूप परिवर्तन करते हैं। रूप-परिवर्तन के आधार पर विशेषणों को दो वर्गों में रखा जाता है—आ/आँ युत विकारी शब्द वर्ग—काला वर्ग; -आ/आँ रहित अविकारी शब्द वर्ग—सफ़ेद वर्ग। विकारी वर्ग के विशेषण संज्ञा से अन्वित होते हैं। इन के लिंग, वचन और कारक रूप स्वतन्त्र नहीं होते, संज्ञा पर आश्रित रहते हैं। अविकारी वर्ग के विशेषण संज्ञा से अन्वित नहीं होते और न उन में कोई रूपान्तर होता है।

काला वर्ग (अच्छा, बुरा, छोटा, बड़ा, चौड़ा, लम्बा; दायाँ, बायाँ, ढलवाँ आदि)।

	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
ऋजु रूप	एक०	बहु०	एक०	बहु०
	काला (हाथी)	काले (हाथी)	काली (हथिनी)	काली (हथिनियाँ)
तिर्यक रूप	काले (हाथी ने)	काले (हाथियों ने)	काली (हथिनी को	काली (हथिनियों को

सफ़ेद वर्ग (गोल, लाल, सुन्दर, सुडौल, बासी, असली, वज़नी, सुरमई, बाज़ारू आदि)।

	पुल्लिग		स्त्रीलिंग	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
ऋजु रूप	सफ़ेद (घोड़ा)	सफ़ेद (घोड़े)	सफ़ेद (घोड़ी)	सफ़ेद (घोड़ियाँ)
तिर्यक् रूप	सफ़ेद (घोड़े पर)	सफ़ेद (घोड़ों पर)	सफ़ेद (घोड़ों का)	सफ़ेद (घोड़ियों से)

नाना (=अनेक), सवा, ज़रा, घटिया, ताज़ा, बढ़िया, उम्दा, ज़्यादा, ज़िन्दा, पुख़्ता, अदना, आवारा, ख़स्ता, चोखा, दुतरफ़ा, ख़ुशनुमा, सालाना, चुनिन्दा, पेचीदा, शर्मिन्दा, नादाँ, आमादा, पैदा, जुदा, जमा, फ़िदा, ख़फ़ा, अदा, बिदा, सफ़ा; समस्त संख्यावाची शब्द 'काला' वर्ग के अपवाद हैं। इन के रूप अपरिवर्तित रहते हैं।

सार्वनामिक विशेषणों का सर्वनामों की भाँति ही रूपान्तर होता है, यथा—उन को—उन लड़कों को, हमारा/हमारी/हमारी (बेटा/बेटी, बेटियाँ/बेटे)। संस्कृत-व्यवस्था से प्रभावित कुछ लोग कुछ रूपान्तरित संस्कृत विशेषणों का प्रयोग करते हैं, यथा—रूपवान्-रूपवती, सुन्दर-सुन्दरी, चंचल-चंचला, सुशील-सुशीला, बुद्धिमान्-बुद्धिमती, शांतिमय-शांतिमयी, अपराधी-अपराधिनी, कार्यकारी-कार्यकारिणी, महान्-महती, युवक-युवती, साधु-साध्वी, विद्वान्-विदुषी। हिन्दी में 'सुन्दर (/चंचल/बुद्धिमान्/सुशीला) पुरुष/महिला' का प्रयोग सर्वस्वीकृत है।

संज्ञावत् प्रयुक्त विशेषणों के रूप संज्ञा शब्दों के समान रहते हैं, यथा—**बड़ों** (/बड़े लोगों) का कहना मानना चाहिए। **वीरों** (/वीर पुरुषों/महिलाओं) ने क्या कुछ नहीं किया है। मैं ने **सुन्दरी** (/सुन्दर लड़की) से रोने का कारण पूछा।

उर्दू से आए कुछ अविकारी विशेषण विकारी होते जा रहे हैं, यथा—गन्दा, सस्ता, सादा, ताज़ा।

विशेषण-तुलनावस्था—दो या अधिक प्राणियों या पदार्थों के गुणावगुणों का मिलान 'तुलना' कहा जाता है। तुलना के आधार पर विशेषण शब्द रूपों की तीन अवस्थाएँ/स्थितियाँ होती हैं—(1) मूल स्थिति 2. उत्तर स्थिति 3. उत्तम स्थिति। **1. मूल अवस्था** में किसी से तुलना न होने के कारण विशेषण अपने मूल (/प्रथम) रूप में रहता है। मूल कोटि रूप के आधार पर अन्य दोनों कोटियों के रूप बनते हैं। यथा—यह पलंग **बड़ा** है। यह **अच्छा** भी है। **(2) उत्तर अवस्था** (= -तर रूप) में दो विशेष्यों की तुलना होने के कारण विशेषण शब्द-रूप अपनी उत्तर (/द्वितीय) अवस्था में रहता है। हिन्दी में उत्तर (उत्+ -तर Better) रूप का प्रयोग नहीं होता, यथा—यह पलंग उस पलंग **से (काफ़ी) बड़ा** है, यह उस **से अच्छा** भी है। **(3) उत्तम अवस्था** (उत्+ -तम) (= -तम/तृतीय अवस्था) में दो से अधिक

विशेष्यों की तुलना (वस्तु में गुण/लक्षण/विशेषता न्यूनतम या अधिकतम) होने के कारण विशेषण शब्द-रूप अपनी उत्तम अवस्था में रहता है, यह पलंग उन सभी पलंगों **से (काफ़ी) बड़ा** है, यह उन सब **से अच्छा** भी है। हिन्दी में उत्तम (Best) के लिए सर्वोत्तम का प्रयोग चल पड़ा है।

उत्तर, उत्तम अवस्थाओं के सूचक -तर, -तम संस्कृत-प्रत्यय हैं। संस्कृत से आगत अनेक विशेषण शब्दों का हिन्दी में -तर, -तम प्रत्ययों का प्रयोग होता है, यथा—सुन्दर-सुन्दरतर-सुन्दरतम, उच्च-उच्चतम, अधिक-अधिकतर-अधिकतम, प्राचीन-प्राचीनतर-प्राचीनतम, लघु-लघुतर-लघुतम, गुरु-गुरुतर-गुरुतम, महान्-महत्तर-महत्तम, बृहत्-बृहत्तर-बृहत्तम, तीव्र-तीव्रतर-तीव्रतम, न्यून-न्यूनतर-न्यूनतम, निकृष्ट-निकृष्टतर निकृष्टतम, उत्कृष्ट-उत्कृष्टतर-उत्कृष्टतम, कुटिल-कुटिलतर-कुटिलतम, विशाल-विशालतर-विशालतम, अन्य-अन्यतर-अन्यतम। संस्कृत में प्रयुक्त -ईयस् (श्रेयस्), -इष्ठ (श्रेष्ठ) प्रत्ययों में से केवल -इष्ठ प्रत्यय से युक्त आगत कुछ शब्दों का हिन्दी में रूढ़ अर्थ में प्रयोग होता है, तुलना के रूप में नहीं, यथा—घनिष्ठ, बलिष्ठ, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, कनिष्ठ, गरिष्ठ, वरिष्ठ। हिन्दी में इन विशेषणों में इन का उत्तमावस्थावाला अर्थ लुप्त प्राय है। इन विशेषणों का प्रयोग प्रायः इन की मूलावस्थावाले अर्थ में किया जाता है। उत्तर, उत्तम अवस्था सूचित करने के लिए कुछ लोग इन में -तर, -तम प्रत्यय लगाते हैं, जो व्याकरणिक व्यवस्था के आधार पर ग़लत प्रयोग ही कहा जाएगा, यथा—ज्येष्ठतर-ज्येष्ठतम, श्रेष्ठतर-श्रेष्ठतम। संस्कृतनिष्ठ शैली में संस्कृत के -तर, -तम प्रयोगों से युक्त शब्दों का प्रयोग होता है, यथा—महानतम व्यक्ति, उच्चतर शिक्षा, न्यूनतम वेतन आदि। हीनतम, कोमलतम जैसे—शब्दों का प्रयोग भी सही है।

तुलनावस्था को इस प्रकार भी विश्लेषित किया जा सकता है—(1) निरपेक्ष अवस्था (2) सापेक्ष अवस्था—(क) उत्तरावस्था (ख) उत्तमावस्था। निरपेक्षावस्था/मूलावस्था में यद्यपि किसी दूसरे विशेष्य की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी कुछ प्रयोगों में परोक्षतः तुलना-भाव झलकता रहता है, यथा—वह बहुत ही आकर्षक है। यह कपड़ा कुछ भद्दा-सा है। बच्ची अत्यन्त (/अति) प्यारी है।

उत्तरावस्था, उत्तमावस्था के लिए हिन्दी में विशेषण की मूलावस्था के साथ 'से, की अपेक्षा, से अधिक, से कम, से कहीं, से बढ़कर, से घटकर, की बनिस्वत, की तुलना में, के मुकाबले, के आगे, के सामने' शब्दों का प्रयोग किया जाता है, यथा—हेमा रेखा से (/की अपेक्षा) सुन्दर है। यह मेज़ उस मेज़ से कहीं (/की बनिस्वत) अच्छी है। मेरे पड़ोसी का पुत्र उस की पुत्री से कम (/से अधिक समझदार है। हेमा इन सब लड़कियों से (/की अपेक्षा) सुन्दर है। यह मेज़ उन मेज़ों से कहीं (/की बनिस्वत) अच्छी है। मेरे पड़ोसी का पुत्र उस के अन्य बच्चों से कम (/से अधिक) समझदार है। उत्तरावस्था में 'दोनों में, दोनों में से', उत्तमावस्था में 'सब से, सब में, सभी में/से/में से' शब्दों का प्रयोग भी किया जा सकता है, यथा—

इन दोनों में (/दोनों में से) कौन-सी घड़ी बढ़िया है? इन घड़ियों में सब से बढ़िया घड़ी कौन-सी है? अच्छी से अच्छी पुस्तक; बड़ी से बड़ी कोठी; बढ़िया से बढ़िया चावल; बड़े से बड़ा आदमी आदि।

आजकल 'अधिकतर' का अर्थ 'से अधिक' न रहकर most, mostly जैसा हो गया है, यथा—आज अधिकतर लोग शासन-व्यवस्था में परिवर्तन चाहते हैं। कुछ लोग अधिकांश (अधिक+अंश) का प्रयोग लोग, व्यक्ति, जनता जैसे शब्दों के साथ भूल से कर देते हैं। इस का प्रयोग अप्राणिवाची शब्दों के साथ ही किया जाना चाहिए, यथा—मेरी अधिकांश सम्पत्ति; आप का अधिकांश समय; लोगों की अधिकांश शक्ति। इस का प्रयोग अधिकतर के स्थान पर नहीं किया जाता।

हिन्दी में उर्दू (फ़ारसी) के -तर, -तरीन प्रत्यय डिग्री-भेद नहीं दिखाते, यथा – बेहतर (=अच्छा), बेहतरीन (=बहुत अच्छा)। पेशतर, ताज़ा-तरीन साहित्यिक उर्दू शैली के शब्द हैं। सफ़ेदतर? मज़बूततर? सफ़ेदतरीन, मज़बूत-तरीन का प्रयोग कम प्रचलित। आम बोलचाल में स्तर-भेद 'अधिक, बहुत अधिक, अत्यधिक, ज़्यादा, बहुत ज़्यादा' आदि शब्दों से प्रकट किया जाता है, यथा—आजकल वह ज़्यादा ही ख़ुश नज़र आती है। वाक्य-स्तर पर स्तर-भेद 'इतना…… कि' से भी व्यक्त किया जाता है, यथा—यह साड़ी इतनी अच्छी थी कि क्या कहूँ। वह शतरंज खेलने में इतना होशियार हो गया है कि अपने पिता (/सब साथियों) को हरा देता है। अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषणों में 'अधिक' ज़्यादा, कम' की तुलना कोटियाँ हैं। कुछ गुणावाचक विशेषणों की तुलना कोटियाँ नहीं होतीं, यथा—अभिन्न, अक्षम्य, अचल, अटूट आदि; नकारात्मक अर्थबोधक विशेषण; अन्धा, बहरा, गूँगा, नंगा आदि इंगित गुणों/लक्षणों के सूचक विशेषण जिन की शाब्दिक अर्थों में तुलना नहीं हो सकती।

विशेषण निर्माण-आधार—कुछ शब्द वाक्य प्रयोग की दृष्टि से मूलतः विशेषण होते हैं तथा कुछ विशेषण शब्द व्युत्पन्न किए जा सकते हैं। रचना के स्तर पर व्युत्पन्न विशेषणों के निर्माण के आधार हैं—संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया शब्द। कुछ विशिष्ट प्रत्ययों के योग से व्युत्पन्न विशेषणों का निर्माण किया जा सकता है, यथा—
(i) **संज्ञा शब्दों से विशेषण-निर्माण** के लिए '-इक, '-इत, -इम, -इर, -इल, -ई, -ईन, -ईय, -ईला, -निष्ठ, -नीय, -मती, -मय, -मान्, -य, -र, -रत, -ल, -वती, -वान्, -वी, -शाली, -स्थ' प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, यथा—**(-इक)** अर्थ-आर्थिक, अलंकार-आलंकारिक, अंश-आंशिक, इतिहास-ऐतिहासिक, करुणा-कारुणिक, कल्पना-काल्पनिक, तत्त्व-तात्त्विक, दिन-दैनिक, दैव-दैविक, धर्म धार्मिक, नीति-नैतिक, पक्ष-पाक्षिक, परिवार-पारिवारिक, बुद्धि-बौद्धिक, शब्द-शाब्दिक, संकेत-सांकेतिक, संस्कृति-सांस्कृतिक, समाज-सामाजिक, साम्प्रदाय-साम्प्रदायिक, साहित्य-साहित्यिक, स्वर्ग-स्वर्गिक, हृदय-हार्दिक। **(-इत)** अंक-अंकित, अपमान-अपमानित, अवलम्ब-

अवलम्बित, कुसुम-कुसुमित, क्षुधा-क्षुधित, तरंग तरंगित, ध्वनि-ध्वनित, पल्लव-पल्लवित, पिपासा-पिपासित, लोह-लोहित, सम्मान-सम्मानित, सुरभि-सुरभित। (**-इम**) आदि-आदिम, रक्त-रक्तिम, स्वर्ण-स्वर्णिम। (**-इर**) मद-मदिर, रुचि रुचिर। (**-इल**) ऊर्मि-ऊर्मिल, जटा-जटिल, पंक-पंकिल, फेन-फेनिल। (**-ई**) अधिकार-अधिकारी, अनुभव-अनुभवी, अनुराग-अनुरागी, उपयोग-उपयोगी, ऋण-ऋणी, काम-कामी, ज्ञान-ज्ञानी, दुःख-दुःखी, नाम-नामी, पाप-पापी, प्रेम-प्रेमी, पराक्रम-पराक्रमी, बल-बली, भीतर-भीतरी, विजय-विजयी, विनय-विनयी, विरोध-विरोधी, संयम-संयमी। (**-ईन**) कुल-कुलीन, ग्राम-ग्रामीण, प्रातःकाल-प्रातःकालीन, मध्यकाल-मध्यकालीन, रात्रि-रात्रिकालीन, विश्वजन-विश्वजनीन। (**-ईय**) आत्मा-आत्मीय, ईश्वर-ईश्वरीय, कथन-कथनीय, क्षेत्र-क्षेत्रीय, चिन्तन-चिन्तनीय, जाति-जातीय, दर्शन-दर्शनीय, दानव-दानवीय, देश-देशीय, नरक-नारकीय, पर्वत-पर्वतीय, प्रान्त-प्रान्तीय, भारत-भारतीय, मानव-मानवीय, वर्णन-वर्णनीय, विदेश-विदेशीय, शास्त्र-शास्त्रीय, शासक-शासकीय, सम्पादक-सम्पादकीय, स्थान-स्थानीय, स्मरण-स्मरणीय, स्वर्ग-स्वर्गीय। (**-ईल**) कंकर-कँकरीला, खर्च-खर्चीला, चमक-चमकीला, जोश-जोशीला, नोंक-नुकीला, पत्थर-पथरीला, बर्फ़-बर्फ़ीला, रंग-रँगीला। (**-निष्ठ**) धर्म-धर्मनिष्ठ, सत्य-सत्यनिष्ठ। (**-नीय**) आदर-आदरणीय, पठ-पठनीय, पूजा-पूजनीय, मान-माननीय। (**-मती**) बुद्धि-बुद्धिमती, श्री-श्रीमती। (**-मय**) जल-जलमय, दुःख-दुःखमय, सुख-सुखमय। (**-मान्**) बुद्धि-बुद्धिमान्, मति-मतिमान्, शक्ति-शक्तिमान्, श्री-श्रीमान्। (**-य**) अन्त-अन्त्य, कंठ-कंठ्य, कथा-कथ्य, क्षमा-क्षम्य, चिन्ता-चिन्त्य, जन-जन्य, धन-धन्य, निन्दा-निन्द्य, पूजा-पूज्य, मान-मान्य, मृत्यु-मर्त्य, वन-वन्य, वश-वश्य, सखा-सख्य, सभा-सभ्य, सन्ध्या-सान्ध्य, सेवा-सेव्य। (**-र**) मधु-मधुर। (**-रत**) कर्म-कर्मरत, धर्म-धर्मरत। (**-ल**) वाचा-वाचाल। (**-वती**) गुण-गुणवती, पुत्र-पुत्रवती, रूप-रूपवती। (**-वान**) गुण-गुणवान्, नाश-नाशवान्, रूप-रूपवान्, सत्य-सत्यवान्। (**-वी**) ओजस्-ओजस्वी, तपस्-तपस्वी, तेजस्-तेजस्वी, मनस्-मनस्वी। (**-शाली**) गौरव-गौरवशाली, प्रतिभा-प्रतिभाशाली, बल-बलशाली, भाग्य-भाग्यशाली। (**-स्थ**) गृह-गृहस्थ, शरीर-शरीरस्थ। (ii) **सर्वनाम शब्दों से विशेषण-निर्माण** के लिए '-सा, -तना' प्रत्यय जोड़े जाते हैं, यथा—(**-सा**) यह-ऐसा, वह-वैसा, कौन-कैसा, जो-जैसा। (**-तना**) यह-इतना, वह-उतना, कौन-कितना, जो-जितना। (iii) **क्रिया शब्दों से विशेषण-निर्माण** के लिए '-आ/-ई/-ए, -इत, अनीय, -वाला' प्रत्यय जोड़े जाते हैं, यथा— (**-आ/-ई/-ए**) उड़-उड़ा/उड़ी/उड़े, बीत-बीता/बीती/बीते (हुआ/हुई/हुए)। (**-इत**) पठ्-पठित, पत्-पतित। (**-अनीय**) पूज्-पूजनीय, वन्द्-वन्दनीय। (**-वाला**) पालना-पालनेवाला/पालनेवाली/पालनेवाले, भागना-भागनेवाला/भागनेवाली/भागनेवाले।

पुनरुक्त/संयुक्त विशेषण के दोनों शब्द समान लिंग, वचन में रहते हैं तथा दूसरा घटक तिर्यक् बहुवचन में आता है, यथा—अच्छा-अच्छा/अच्छी-अच्छी/अच्छे-

अच्छे; छोटे-बड़े-छोटे-बड़ों को। विशेषण शब्द की पुनरुक्ति गुण, लक्षण या विशेषता को अधिक सशक्त, भावपूर्ण तथा अभिव्यंजनात्मक बनाती है, यथा—छोटे-छोटे बच्चे; लम्बे-लम्बे बालोंवाली महिला की गोरी-गोरी बाहें। कभी-कभी पुनरुक्ति से उत्तम कोटि की अभिव्यक्ति होती है, यथा—नयी-नयी किताब। पूर्णता और समग्रता व्यक्त करनेवाले विशेषण 'का' के साथ पुनरुक्त रूप में और सशक्त अर्थ व्यक्त करते हैं, यथा—उस ने पूरा का पूरा रसगुल्ला मुँह में रख लिया था।

विशेषणों का संज्ञाकरण—व्यक्तियों की विशेषताएँ व्यक्त करने वाले कुछ विशेषण पूर्णतः संज्ञा रूपों में संक्रमित हो सकते हैं और कुछ बिना किसी रूप-परिवर्तन के संज्ञाओं की भाँति प्रयुक्त होते हैं। विशेषणों का संज्ञाकरण होने पर वे संज्ञा की भाँति कार्य करते हैं, न कि विशेषण की भाँति, यथा—अमीर, अपराधी, अन्धा/अन्धी, बहरा/बहरी, गूँगा/गूँगी, ग़रीब, जवान, प्रधान। कैदी, बन्दी (संबंधवाची विशेषण) का संज्ञाओं में पूर्ण संक्रमण हो जाता है। संज्ञाकृत विशेषणों का रूपान्तर तत्संबंधी लिंग तथा अन्त्य स्वन/प्रत्ययवाली संज्ञा के समान ही होता है, यथा—अन्धा-अन्धे अन्धों-अन्धो। अन्धी-अन्धियाँ अन्धियों-अन्धियो। धनी-धनी-धनियों-धनियो। ग़रीब-ग़रीब-ग़रीबों-ग़रीबो।

17
क्रिया

भाषा-व्यवहार के लिए प्रत्येक वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से क्रिया की सत्ता अनिवार्य है। क्रिया वाक्य-रचना की दृष्टि से वाक्य का अनिवार्य घटक है, इसीलिए क्रिया को वाक्य का मूलाधार/प्राण भी कहा जाता है। **क्रिया** वह शब्द/शब्द-समूह है जिस से किसी कार्य-व्यापार के होने या करने (अथवा किसी सत्ता/स्थिति, घटना, व्यापार/संक्रिया, प्रक्रिया या परिवर्तन) की सूचना मिलती है, यथा—ईश्वर **है**। आसमान में बादल **हैं**। बसें **टकरा गईं**। बच्चा खिलौनों से **खेल रहा है**। दवा पीते ही दर्द **समाप्त हो गया**। दर्जी ने बहुत बढ़िया सूट **सिया है**।

प्रत्येक क्रिया के मूल रूप को **धातु** कहते हैं। धातु में -ना प्रत्यय जोड़ने से **क्रिया का सामान्य रूप** बनता है, यथा—'शकुन्तला ने पत्र लिखा' वाक्य में 'लिखा' क्रिया का मूल रूप 'लिख' है तथा क्रिया का सामान्य रूप है 'लिखना'। हिन्दी भाषा में क्रिया/क्रियापद वाक्यान्त में आने के कारण **समापिका** क्रिया कहलाता है। हिन्दी में भाषा-व्यवहार के समय सामान्यतः चार स्थानीय क्रिया रूपों का प्रयोग प्राप्त है, यथा—ले लिया गया था; कहा जा सकता है। पाँच स्थानीय क्रिया रूपों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम ही होता है, यथा—बिना खाए-पीए सोना पड़ रहा है। दिनोंदिन कोठी गिरती चली जा रही थी।

यद्यपि हिन्दी भाषा और उस की बोलियों में पाई जानेवाली क्रिया-धातुओं की संख्या लगभग 1000 से अधिक है तथापि मानक हिन्दी में लगभग 600 क्रिया-धातुओं का ही प्रयोग प्रचलित है। क्रियामूलक अभिव्यक्ति की विभिन्न छवियों की पूर्ति के लिए हिन्दी में **क्रियाओं का निर्माण** पाँच प्रकार से किया जाता है—1. **धातु से क्रिया-निर्माण**, यथा—पढ़-पढ़ना, लिख-लिखना, सुन-सुनना 2. **धातु-इतर शब्दों से क्रिया-निर्माण**, यथा—(क) **संज्ञा** शब्दों से—अकड़-अकड़ना, आलस्य-अलसाना, ख़रीद-ख़रीदना, जन्म-जनमना, ठग-ठगना, डर-डरना, धिक्कार-धिक्कारना, फटकार-फटकारना, फ़िल्म-फ़िल्माना, रंग-रँगना, हाथ-हथियाना आदि (ख) **विशेषण** शब्दों से—गर्म-गरमाना, दुहरा-दुहराना, मोटा-मुटाना, लँगड़ा-लँगड़ाना, सुस्त-सुस्ताना आदि (ग) **सर्वनाम** शब्द से—अपना-अपनाना (घ) **अनुकरणात्मक** शब्दों से, यथा—खटखटाना,

थपथपाना, गड़गड़ाना आदि। 3. **क्रिया-इतर शब्द+क्रिया संयोग से क्रिया-निर्माण**, यथा—दिखाई देना, सुनाई पड़ना, क्षमा करना, स्वीकार होना आदि। इन्हें **यौगिक क्रिया** कहा जाता है। कुछ लोग इन्हें नामबोधक क्रिया/नामिक क्रिया/जटिल नामिक क्रिया भी कहते हैं। 4. **क्रिया+क्रिया के योग** से **क्रिया-निर्माण**, यथा—कह उठना, गिर पड़ना, मार डालना आदि। इन्हें **संयुक्त क्रिया** कहा जाता है। 5. **क्रिया-इतर शब्द+क्रिया अनुक्रम से क्रिया-निर्माण**, यथा—बात करना, काम करना। इन्हें **स्वल्प मिश्र क्रिया** कह सकते हैं।

हिन्दी क्रिया-रूपों का सही विश्लेषण केवल उन की ध्वन्यात्मक तथा अर्थपरक दृष्टि से नहीं हो सकता। इस के लिए उन के प्रकार्य तथा प्रयोजन को भी ध्यान में रखना होगा, यथा—(क) कौए **उड़** रहे हैं। (ख) पतंग **उड़** रही है। (ग) नौकर कौए **उड़ा** रहा है। (घ) नौकर पतंग **उड़ा** रहा है। इन वाक्यों में (क) मूल अकर्मक धातु 'उड़' का मूल कर्ता, व्याकरणिक कर्ता 'कौए' है, (ख) व्युत्पन्न अकर्मक 'उड़' धातु के मूल कर्ता (उड़ानेवाला) का अध्याहार है, व्याकरणिक कर्ता 'पतंग' (कर्म कर्तृक) है। (ग) में 'उड़' के व्युत्पन्न प्रेरणार्थक-आभासी रूप 'उड़ा' (सकर्मक) का व्याकरणिक तथा प्रेरक कर्ता 'नौकर' है और मूल कर्ता, व्याकरणिक कर्म 'कौए' हैं। (घ) में सकर्मक 'उड़ा' का मूल कर्ता, व्याकरणिक कर्ता 'नौकर' है तथा मूल कर्म पतंग है। इस प्रकार सकर्मक तथा अकर्मक क्रियाएँ अपने स्वरूप में दो-दो प्रकार की होती हैं—**मूल** (जैसे—खा, देख, लिख सकर्मक; उठ, चल, बैठ अकर्मक); **व्युत्पन्न** (जैसे उठ>उठा; चल>चला सकर्मक; देख>दिख बजा>बज, सी>सिल अकर्मक)

हिन्दी क्रिया-भेद के सात आधार माने जाते हैं—1. क्रिया-व्यापार का परिणाम/कर्म-अस्तित्व 2. क्रिया-व्यापार का सम्पादन 3. वक्ता का अभिप्रेत अर्थ 4. कर्म-पूर्ति 5. कर्म-संख्या 6. कार्य-व्यापार प्रधानता 7. तथ्यात्मकता। वाक्य में क्रिया के अस्तित्व के साथ ही किसी-न-किसी (प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न) रूप में उस के सामान्य या व्याकरणिक कर्ता/सम्पादक या अभिकर्ता/भोक्ता/प्रेरक/प्रेरित कर्ता का अस्तित्व रहता है। प्रत्येक क्रिया के अस्तित्व या कार्य आदि का सम्बन्ध उस क्रिया के कर्ता से प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न रूप से अवश्य जुड़ा रहता है। कुछ क्रियाओं का सम्बन्ध कर्ता के अतिरिक्त उन के कर्म से भी जुड़ता है। (1) क्रिया-व्यापार के परिणाम या **कर्म के आधार पर** क्रिया के दो भेद माने जाते हैं—1. सकर्मक 2. अकर्मक

1. **सकर्मक क्रिया**—जिस क्रिया के प्रयोग में 'कर्म' की आवश्यकता होती है अथवा वाक्य में जिस क्रिया के कार्य-व्यापार का परिणाम (/प्रभाव) स्वयं क्रिया करने वाले कर्ता या अभिकर्ता पर न पड़ कर प्रत्यक्षतः कर्म पर पड़ता है, उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं, यथा—करना, लेना, कहना, करवाना, खाना, पीना, भेजना, पढ़ाना, लिखना, लिखाना, देना, चलाना आदि। उदा०—अध्यापक छात्रों को **पढ़ा रहा है**।

हबीब ने सिनेमा **देखा होगा**। मैं थोड़ी देर बाद मिठाई **खाऊँगा**। नीलिमा आम **खा रही है**। हनीफ़ किताब **पढ़ रहा है**।

यद्यपि इन वाक्यों के क्रियापदों के व्यापार का परोक्ष प्रभाव 'अध्यापक, हबीब, मैं, नीलिमा, हनीफ' कर्ता/अभिकर्ता पर पड़ रहा है तथापि इन क्रियाओं का प्रत्यक्ष परिणाम क्रमश: 'छात्रों, सिनेमा, मिठाई, आम, किताब' पर पड़ रहा है जो 'पढ़ा रहा है, देखा होगा, खाऊँगा, खा रही है, पढ़ रहा है' क्रियाओं के कर्म हैं। सकर्मक क्रिया का कर्म 'क्या/किस को/किन को' प्रश्न का उत्तर होता है, यथा—किन को पढ़ा रहा है ? (उ०—छात्रों को), क्या देखा होगा ? (उ०—सिनेमा), क्या खाऊँगा (उ० मिठाई), क्या खा रही है ? (उ०—आम), क्या पढ़ रहा है ? (उ०—किताब)। **प्रधान कर्म** पर या तो व्यापार का प्रभाव पड़ता है (जैसे—रोटी खाना) या वह व्यापार के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है (जैसे—रोटी बनाना)।

2. **अकर्मक क्रिया**—जिस क्रिया के प्रयोग में 'कर्म' की आवश्यकता नहीं होती अथवा वाक्य में जिस क्रिया के कार्य-व्यापार का प्रभाव प्रत्यक्षत: स्वयं क्रिया के कर्ता/ अभिकर्ता पर पड़ता है, उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं, यथा—आना, घूमना, जाना, दौड़ना, सोना, होना, हँसना, कटना, गिरना, सिलना, हिलना, रोना, जीना, डरना, डोलना, ठहरना, फाँदना, भीगना, भागना, अकड़ना, बरसना, बैठना, उगना, उछलना, कूदना, घटना, चमकना, जागना, मरना आदि। उदा०—पिताजी **सो रहे हैं**। तुम हमेशा बात-बात पर इतने क्यों **हँसते** हो ? सड़क पर मोटर **दौड़ी जा रही थी**। पेड़ **कट गया है**। कोट **सिल चुका है**। इन वाक्यों के क्रियापदों के कार्य-व्यापार का परिणाम स्वयं इन क्रियाओं के अभिकर्ता या कर्ता 'पिताजी, तुम, मोटर, पेड़, कोट' पर पड़ रहा है न कि किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु पर।

क्रियाओं की अकर्मकता तथा सकर्मकता उन के प्रयोगगत अर्थ पर निर्भर होने के कारण अर्थ के बदलने पर सकर्मक क्रिया अकर्मक रूप में प्रयुक्त हो सकती है, यथा—मैं प्रेमचन्द का 'गोदान' **पढ़** रहा हूँ (सकर्मक), सुशीला बी० ए० में मेरे साथ **पढ़ी** थी (अकर्मक)। अकर्मक क्रियाओं के साथ प्रधान कर्मवत् शब्द प्रयुक्त होने पर वे सकर्मक बन जाती हैं, यथा—बोलना (अकर्मक) धावा बोलना (सकर्मक), खेल खेलना, चाल चलना, लड़ाई लड़ना, संग्राम लड़ना।

कुछ क्रियाएँ प्रयोग के अनुसार अकर्मक तथा सकर्मक दोनों होती हैं। ऐसी क्रियाओं को **उभयविध**/द्विविध या दुरंगी क्रियाएँ कह सकते हैं, यथा—खुजलाना, घबड़ाना, ललचाना, भरना, घिसना, बदलना, ऐंठना, भूलना, कसना, फाँदना, लहराना आदि। उदा०—

अकर्मक प्रयोग	**सकर्मक प्रयोग**
उसका पैर **खुजलाता** है।	वह अपना पैर **खुजलाता** है
मेरा जी **घबड़ा** रहा है।	परीक्षा की चिन्ता उसे **घबड़ा** रही है
रबड़ी देख कर मेरा जी **ललचाता** है।	मिठाई दिखा कर उसे क्यों **ललचाते** हो ?

कप में चाय **भरी** है ।	माँ ने कप में चाय **भरी** है ।
रस्सी **घिस** गई है ।	क्यों पैर **घिस** रहे हो ?
प्रत्येक ऋतु में प्रकृति **बदल** जाती है ।	वह अपना स्वभाव **बदल** चुका है ।
पानी में रस्सी **ऐंठती** है ।	नौकर रस्सी **ऐंठ** रहा है ।
अभी मैं **भूल** रहा हूँ, बाद में बताऊँगा ।	अभी मैं उसका नाम **भूल** गया हूँ, बाद में याद आने पर बताऊँगा ।

कुछ मूल तथा व्युत्पन्न अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं के युग्म हैं—उखड़ना-उखाड़ना, उठना-उठाना, उड़ना-उड़ाना, उबलना-उबालना, खुलना-खोलना, गड़ना-गाड़ना, छिड़ना-छेड़ना, छूटना-छोड़ना, जुड़ना-जोड़ना, जुतना-जोतना, टूटना-तोड़ना, डूबना-डुबाना, पिटना-पीटना, पिसना-पीसना, फटना-फाड़ना, फूटना-फोड़ना, बजना-बजाना, बिकना-बेचना, बुझना-बुझाना, भीगना-भिगोना, रहना-रखना, लुटना-लूटना, लेटना-लिटाना, सिकुड़ना-सिकोड़ना, सूखना-सुखाना आदि । इन युग्मों में सामान्यतः व्युत्पन्न क्रिया रूप में ध्वनि-परिवर्तन की यह दिशा मिलती है—आ > अ; ई/ए > इ; अ/ओ > उ । कुछ में व्यंजन-परिवर्तन भी है ।

अकर्मक क्रिया एकत्र घटना या प्रक्रिया होती है जिसे कोई एकल करनेवाला (कर्ता) होता है । जब घटना या प्रक्रिया के प्रति कर्ता निरपेक्ष भाव में रहता है तो वह अकर्मक क्रिया सत्तार्थक या **अस्तित्ववाची** क्रिया कहलाती है, यथा—होना (है, हैं, था, थी आदि । सामान्यतः अकर्मक क्रिया की घटना या प्रक्रिया के प्रति कर्ता सापेक्ष भाव में रहता है; यथा—रोना, जागना, दौड़ना आदि । सकर्मक क्रिया भी एकत्र घटना या प्रक्रिया होती है जिसे कोई एकल करनेवाला (कर्ता) होता है और साथ ही उस एकत्र घटना या प्रक्रिया का कोई परिणामी (कर्म) होता है । एकल परिणामी होने पर एक कर्मक क्रिया को सकर्मक तथा एकाधिक परिणामी होने पर सकर्मक क्रिया को **द्विकर्मक** कहा जाता है ।

सामान्यतः अकर्मक क्रियाओं के व्यापार का फल किसी अन्य पर न पड़ कर सीधे कर्ता पर पड़ता है, यथा—कटना, खिचना, घिरना, घिसना, चटकना आदि । जब सकर्मक क्रिया के व्यापार का प्रभाव किसी विशिष्ट पदार्थादि पर न पड़ कर सर्वमान्य पर पड़ता है, तब उस क्रिया के कर्म का प्रायः उल्लेख नहीं किया जाता, यथा—भगवान की अनुकम्पा से बहरा (±सब कुछ) **सुनता** है और गूँगा (±सब कुछ) **बोलता** है । इस विद्यालय में कितने छात्र (±भौतिक विज्ञान) **पढ़ते** हैं ?

(2) **क्रिया-व्यापार सम्पादन की दृष्टि से** अकर्मक क्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं—1. गतिबोधक/गत्यर्थक 2. अवस्थाबोधक/अवस्थार्थक ।

1. **गतिबोधक अकर्मक क्रियाएँ** वे हैं जिन के क्रिया-व्यापार के समय अभिकर्ता या कर्ता गतिमान रहता है, यथा—जाना, आना, दौड़ना, पहुँचना, घूमना, चलना, भागना, उड़ना, उठना, गिरना आदि । गत्यर्थक क्रिया (सदैव) द्विस्थान द्योतक होती है—1. उद्गम/आरम्भ स्थान 2. गन्तव्य/लक्ष्य स्थान । यह आवश्यक नहीं है

कि हिन्दी वाक्यों में इन दोनों स्थानों का प्रत्यक्ष उल्लेख रहे। इन दोनों स्थानों के साथ क्रमशः 'से, तक' परसर्ग आते हैं। गन्तव्य का उल्लेख होने पर वह बिना परसर्ग के भी तिर्यक् रूप में आता है, यथा—तुम **उस जगह** पहुँचो। वे ठीक नौ बजे **अपने दफ्तर** पहुँच जाते हैं। गन्तव्य सूचक शब्द के साथ 'को/में' नहीं आता। 'में' किसी कार्य/संस्था/संगठन में प्रतिभागी या सदस्य के रूप में सम्मिलित होने की सूचना देता है न कि गन्तव्य स्थल की, यथा—वे **आगरा** जा रहे हैं (गन्तव्य)। हम आप के **शहर में** आए हैं (प्रेक्षक/प्रवासी के रूप में)। क्या तुम **मर्फी कम्पनी** जा रहे हो? (गन्तव्य)—क्या तुम **मर्फी कम्पनी में** जा रहे हो? (नौकरी पर)। आइए, हम **नदी किनारे** चलें (गन्तव्य)—आओ, हम दोनों **सेना में** चलें (भर्ती होने)।

गन्तव्य के साथ प्रायः 'तक' का प्रयोग होता है, यथा—कहाँ जा रहे हो?—कहीं नहीं, यहीं मन्दिर/स्कूल/बाज़ार तक। गत्यर्थक क्रियाएँ जाना, चलना परिपूरक हैं। वक्ता, श्रोता के मध्य 'चलना, जाना' का प्रयोग होता है, यथा—तुम भी हमारे साथ मन्दिर **चलो**। तुम मेरे साथ नहीं, पिता जी के साथ **जाना**। मैं तो तुम्हारे साथ ही **चलूँगी**, भाई साहब के साथ नहीं **जाऊँगी**। 'साथ चलना' मुहावरेदार प्रयोग है 'साथ जाना' नहीं'। आप स्टेशन जा रहे हैं तो मैं भी **साथ चलूँगी**। पड़ोसिन बाज़ार जा रही है, मैं भी उस के **साथ जाऊँ**। किसी संस्था/संगठन में सम्मिलित होने के अर्थ में 'चलना' का प्रयोग अमानक है, यथा—*मैं (तुम्हारे साथ) एक गांव में/होटल में/सेना में/ केन्टीन में चलूँगा।

2. **अवस्था बोधक अकर्मक क्रियाएं** वे हैं जिन के व्यापार के समय अभि-कर्ता या कर्ता या तो तटस्थ (स्थिर) रहता है या अत्यल्प गतिमान, यथा—सोना, पड़ना, जलना, खिलना, लेटना, बैठना, रहना, मुरझाना आदि। उदा०—उठो मत, लेटे रहो। फूल मुरझा गए हैं।

(3) **वक्ता के अभिप्रेत अर्थ की दृष्टि से** अकर्मक क्रियाओं को दो प्रकार का माना जाता है—1. पूर्ण अकर्मक 2. अपूर्ण अकर्मक।

1. **पूर्ण अकर्मक क्रियाएँ** वे हैं जिन के कथन से वक्ता का अभिप्रेत अर्थ पूर्ण हो जाता है। इन क्रियाओं से युक्त वाक्यों में सभी अनिवार्य घटक होने के कारण वे अर्थ बोधन में पूर्ण समर्थ होती हैं, यथा—मैं **सो** नहीं रहा हूँ। घोड़ा **दौड़** रहा है। वह घर में **है**। पं० जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री **थे**।

2. **अपूर्ण अकर्मक क्रियाएँ** वे हैं जिन के कथन से वक्ता के अभिप्रेत अर्थ की पूर्ति के लिए कर्ता से संबंध रखनेवाले किसी शब्द विशेष (कर्तृपूरक/उद्देश्यपूर्ति) की आवश्यकता हो, यथा—कुछ ही दिनों में वह (मन्त्री) **बन** गया। मुझे नहीं पता था कि तुम इतने (आलसी) **निकलोगे**। मेरा दोस्त (बीमार) **हो** गया है। कौआ (चालाक पक्षी) है। इन वाक्यों में कोष्ठकबद्ध शब्द 'मन्त्री, आलसी, बीमार, चालाक पक्षी' कर्तृपूरक हैं, कर्म नहीं। अपूर्ण अकर्मक के कर्ता की पूर्ति के लिए प्रयुक्त शब्द **'कर्तापूर्ति'** या **'उद्देश्यपूरक'** कहलाते हैं, यथा—हरीश **होशियार** है तथा श्यामा

परिश्रमी। हिमालय **गिरिराज** कहलाता है। मनोज **इंजीनियर** बनेगा। मेरा पड़ोसी **बहुत चालाक** निकला।

वाक्य में कर्ता के होते हुए भी अपूर्ण अकर्मक क्रिया अर्थ बोधन में असमर्थ रहती है। पूर्ण अर्थ बोधन के लिए उस वाक्य में कोई **पूरक** (अर्थ पूर्ण करनेवाला शब्द) जोड़ा जाना अनिवार्य है, यथा—'पं० जवाहरलाल नेहरू भारत के थे' वाक्य संरचना की दृष्टि से सही होते हुए भी अर्थ बोधन की दृष्टि से अधूरा है। पूर्ण अर्थ बोधन की दृष्टि से इस में 'प्रथम प्रधानमन्त्री' पूरक (कर्तृ पूरक) जोड़ना अनिवार्य है—पं० जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री थे। अपूर्ण अकर्मक क्रियावाले वाक्य में पूर्ण अर्थ बोधन के लिए कर्ता से संबंधित जिस शब्द की पूर्ति की जाती है, उसे **कर्तृ पूरक** कहते हैं क्योंकि ऐसे शब्द का सीधा संबंध कर्ता से रहता है।

(4) **कर्म-पूर्ति की दृष्टि से** सकर्मक क्रियाओं को दो प्रकार का माना जाता है—1. पूर्ण सकर्मक, 2. अपूर्ण सकर्मक।

1. **पूर्ण सकर्मक क्रियाएँ** वे हैं जिन के कथन से वक्ता का अभिप्रेत अर्थ पूर्ण हो जाता है। इन क्रियाओं से युक्त वाक्यों में सभी अनिवार्य घटक होने के कारण ये अर्थ बोधन पूर्ण समर्थ होती हैं, यथा—कुम्हार घड़ा **बनाता** है। छात्र पाठ **याद कर** रहे हैं। छात्रों ने हरीश को मॉनीटर **बनाया**।

2. वाक्य में एक गौण/मुख्य कर्म होते हुए भी अपूर्ण सकर्मक क्रिया अर्थ बोधन में अक्षम रहती है। पूर्ण अर्थ बोधन के लिए उस वाक्य में दूसरे मुख्य/गौण कर्म की पूर्ति अनिवार्य हो जाती है, अत: **अपूर्ण सकर्मक क्रियाएँ** वे हैं जिन के कथन से वक्ता के अभिप्रेत अर्थ की पूर्ति के लिए कर्म से संबंध रखनेवाले किसी शब्द विशेष (कर्मपूरक/कर्म पूर्ति) की आवश्यकता हो, यथा—'छात्रों ने हरीश को बनाया; छात्रों ने मॉनीटर बनाया' वाक्य संरचना की दृष्टि से सही होते हुए भी अर्थ बोधन की दृष्टि से अधूरे हैं। पूर्ण अर्थ बोधन की दृष्टि से इन में मुख्य/गौण कर्म 'मॉनीटर/हरीश को' जोड़ना अनिवार्य है—छात्रों ने हरीश को मॉनीटर बनाया। इसी प्रकार 'मैं तुम्हें (भाई) मानती हूँ। हम तो नौकर को (चतुर) समझते थे। सिपाही (जुआरी को) दंड देना चाहता था।' अपूर्ण सकर्मक क्रियावाले वाक्य में पूर्ण अर्थ बोधन के लिए जिस मुख्य/गौणकर्म की पूर्ति की जाती है, उसे **कर्मपूरक/कर्म पूर्ति** कहते हैं, जैसे उपर्युक्त वाक्यों के कोष्ठकबद्ध शब्द 'भाई, चतुर, जुआरी को'।

(5) **कर्म प्रयोग-संख्या की दृष्टि से** सकर्मक क्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं—1. एक कर्मक क्रिया 2. द्विकर्मक क्रिया।

1. **एक कर्मक क्रियाएँ** वे हैं जो वाक्य में प्राणिवाचक या अप्राणिवाचक में से एक (मुख्य) कर्म ही लेती हैं, यथा—कुत्ते ने बकरी को **काट** लिया। वह नक्शा **बना** रहा है। मैं खाना **खा** रहा हूँ। दर्जी कपड़े **सी** रहा है। लड़की गीत **गा** रही थी। वाक्यों की इन क्रियाओं में से प्रत्येक का केवल एक ही कर्म है।

2. **द्विकर्मक क्रियाएँ** वे हैं जो वाक्य में एक साथ प्राणिवाचक (गौण कर्म)

तथा अप्राणिवाचक (मुख्य कर्म) दोनों कर्म लेती हैं, यथा—भिखारियों को पैसे नहीं, खाना-कपड़ा **दो**। उषा ने मुझे गीत **सुनाया**। मैं ने हबीब को तैरना **सिखाया**। वह तुम्हें सफलता का रहस्य **बताएगा**। इन वाक्यों में -ए/को युक्त प्राणिवाचक शब्द 'भिखारियों को, मुझे, हबीब को, तुम्हें' गौण कर्म हैं और अप्राणिवाचक शब्द 'पैसे/खाना-कपड़ा, गीत, तैरना, रहस्य' मुख्य कर्म हैं।

(6) वाक्य में **कार्य-व्यापार की प्रमुखता के आधार पर** क्रियाओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है—1. मुख्य क्रिया, 2. सहायक क्रिया।

1. **मुख्य क्रिया**—वाक्य में कार्य-व्यापार की प्रधानता/प्रमुखता को सूचित करनेवाली क्रियाएँ मुख्य क्रिया कहलाती हैं, यथा—चोर कमरे में **था**। वह आज-कल बीमार **है**। पता नहीं, वे इस समय कहाँ **होंगे**। क्या आप ने खाना **खा** लिया है? वह चार घंटे से **सो** रही है। तुम एक घंटे से **बोलते** चले जा रहे हो। इन वाक्यों में काले टाइप के क्रिया शब्द मुख्य क्रिया हैं।

मुख्य क्रिया पाँच प्रकार की होती है—(क) कार्यद्योतक, (ख) घटना द्योतक, (ग) अस्तित्व द्योतक, (घ) योजक, (ङ) अधिकार द्योतक।

(क) **कार्य द्योतक क्रिया**—जिस क्रिया से किसी कार्य के किए जाने की सूचना मिलती है, उसे कार्य द्योतक क्रिया कहते हैं, यथा—बच्ची **सो** रही है। कुत्ता **दौड़** रहा था। उन्हों ने **फल** खाए। आप कब नहाएँगे? इस वर्ग की क्रियाओं की संख्या सब से अधिक है।

(ख) **घटना द्योतक क्रिया**—जिस क्रिया से किसी घटना के होने की सूचना मिलती है, उसे घटना द्योतक क्रिया कहते हैं, यथा—बच्चा **गिर** गया। घड़ा **फूट** गया था।

(ग) **अस्तित्व द्योतक क्रिया**—जिस क्रिया से किसी वस्तु या प्राणी के अस्तित्व या उस की स्थिति की सूचना मिलती है, उसे अस्तित्व द्योतक क्रिया या **स्थैतिक** क्रिया कहते हैं, यथा—चूहा अलमारी में **है**। कुत्ता बाहर **था**। वह कमरे में **होगी**।

(घ) **योजक क्रिया**—जिस क्रिया से उद्देश्य, उस के पूरक के योजन की सूचना मिलती है, उसे योजक क्रिया कहते हैं, यथा—मेरी बहन डॉक्टर **है**। हनीफ़ बीमार **था**। अब वह स्वस्थ **होगा**।

(ङ) **अधिकार द्योतक क्रिया**—जिस क्रिया से विधेय पर उद्देश्य के अधिकार की सूचना मिलती है, उसे अधिकार द्योतक क्रिया कहते हैं, यथा—दशरथ के तीन रानियाँ **थीं**। उन के पास दो भैंसें **हैं**। तुम्हारे कितनी बेटियाँ **हैं/हुईं**?

अस्तित्व द्योतक, योजक तथा अधिकार द्योतक क्रियाएँ काल-सूचना भी देती हैं।

2. **सहायक क्रिया**—वाक्य की मुख्य क्रिया की किसी-न-किसी रूप में सहायता करनेवाली क्रिया सहायक क्रिया कहलाती हैं, यथा—मैं ने खाना खा **लिया था**।

वे अभी तक सो **रहे हैं**। तू इतनी देर से बोलती ही **चली जा रही है**। इन वाक्यों में काले टाइप के क्रिया शब्द सहायक क्रिया हैं।

मुख्य क्रिया के साथ आ कर सहायक क्रियाएँ छह प्रकार के कार्य करती हैं, अतः उन के **कार्य के आधार पर** सहायक क्रियाओं को छह वर्गों में बाँटा जा सकता है—(क) काल द्योतक, (ख) वाच्य द्योतक, (ग) पक्ष द्योतक, (घ) वृत्ति द्योतक, (ङ) रंजक, (च) क्रियाकर।

(क) **काल द्योतक सहायक क्रिया**—मुख्य क्रिया के काल की सूचना देनेवाली क्रिया काल द्योतक सहायक क्रिया कहलाती है, यथा—बच्ची खेल रही **है** (/**थी**/होगी)। कल हम इस समय सिनेमा **देखेंगे** (/देख रहे **होंगे**)।

(ख) **वाच्य द्योतक सहायक क्रिया**—मुख्य क्रिया के वाच्य की सूचना देनेवाली क्रिया वाच्य द्योतक सहायक क्रिया कहलाती है, यथा—बुढ़िया से चने नहीं चबाए **जा** रहे हैं। ऐसी घुटन में मुझ से कैसे बैठा **जाएगा**? इस पेड़ के सारे आम तोड़ लिए **गए** हैं। हिन्दी में केवल 'जा' धातु वाच्य द्योतन का भी काम करती है।

(ग) **पक्ष द्योतक सहायक क्रिया**—मुख्य क्रिया के पक्ष (पूर्णता, अपूर्णता आदि) की सूचना देनेवाली क्रिया पक्ष द्योतक सहायक क्रिया कहलाती है, यथा—मेहमान भोजन कर **चुके** हैं। मेहमान अभी भोजन कर रहे हैं।

(घ) **वृत्ति द्योतक सहायक क्रिया**—मुख्य क्रिया के वक्ता की वृत्ति/मनोवृत्ति की सूचना देनेवाली क्रिया वृत्ति द्योतक सहायक क्रिया/**वृत्तिक क्रिया** कहलाती है, यथा—उसे जाना **चाहिए** (/**पड़ेगा**/**होगा**)।

(ङ) **रंजक क्रिया**—मुख्य क्रिया के अर्थ में रंजकता (भाव-वैशिष्ट्य/अर्थ-गहनता/सुस्पष्टता) उत्पन्न करनेवाली क्रिया रंजक क्रिया कहलाती है, यथा—तुम ने पत्र लिख **दिया** (/**लिया**)। यह बदमाश कहाँ से आ **मरा** (/**टपका**)। मैं ने नहीं सोचा था कि तुम यह सब लिख **मारोगी**। इस रचना में रंजक क्रिया का कोशीय अर्थ महत्वहीन हो जाता है तथा अर्थ में आया वैशिष्ट्य उभर आता है।

(च) **क्रियाकर**—किसी संज्ञा या विशेषण के साथ आ कर मुख्य क्रिया का निर्माण करनेवाली क्रिया को क्रियाकर (Verblizer) कहते हैं। इस प्रक्रिया से निर्मित मुख्य क्रिया **संमिश्र क्रिया** कहलाती है, यथा—याद **करो**, तुम्हें कल रात क्या सुनाई **पड़ा** (/**दिया**) था? यह सोफ़ा कितने में मोल **लिया** गया था? इन वाक्यों में 'याद करो, सुनाई पड़ा/सुनाई दिया, मोल लिया' संमिश्र क्रिया हैं। कार्य-व्यापार के आरंभ होने के लिए 'शुरू हुआ/हुई/हुए' का प्रयोग; शुरू करना' भी प्रयुक्त।

(7) **तथ्यात्मकता की दृष्टि से** हिन्दी क्रियाएँ दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं—1. तथ्यपरक क्रियाएँ, 2. तथ्येतर क्रियाएँ।

1. **तथ्यपरक क्रियाएँ**—जब वाक्य के कथ्य सन्दर्भ में क्रिया-व्यापार या स्थिति तथ्य/सत्य रूप हो। इन क्रियाओं में काल, पक्ष होता है। काल की दृष्टि से ये वर्तमान ('हैं'), या भूत ('था') में होती हैं। पक्ष की दृष्टि से ये पूर्ण (वस्तुस्थिति में क्रिया की समाप्ति, यथा—खाया) या अपूर्ण (क्रिया का वर्तमान रहना, यथा—

तथा अप्राणिवाचक (मुख्य कर्म) दोनों कर्म लेती हैं, यथा—भिखारियों को पैसे नहीं, खाना-कपड़ा **दो**। उषा ने मुझे गीत **सुनाया**। मैं ने हबीब को तैरना **सिखाया**। वह तुम्हें सफलता का रहस्य **बताएगा**। इन वाक्यों में -ए/को युक्त प्राणिवाचक शब्द 'भिखारियों को, मुझे, हबीब को, तुम्हें' गौण कर्म हैं और अप्राणिवाचक शब्द 'पैसे/खाना-कपड़ा, गीत, तैरना, रहस्य' मुख्य कर्म हैं।

(6) वाक्य में **कार्य-व्यापार की प्रमुखता** के आधार पर क्रियाओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है—1. मुख्य क्रिया, 2. सहायक क्रिया।

1. **मुख्य क्रिया**—वाक्य में कार्य-व्यापार की प्रधानता/प्रमुखता को सूचित करनेवाली क्रियाएँ मुख्य क्रिया कहलाती हैं, यथा—चोर कमरे में **था**। वह आज-कल बीमार **है**। पता नहीं, वे इस समय कहाँ **होंगे**। क्या आप ने खाना **खा** लिया है? वह चार घंटे से **सो** रही है। तुम एक घंटे से **बोलते** चले जा रहे हो। इन वाक्यों में काले टाइप के क्रिया शब्द मुख्य क्रिया हैं।

मुख्य क्रिया पाँच प्रकार की होती है—(क) कार्यद्योतक, (ख) घटना द्योतक, (ग) अस्तित्व द्योतक, (घ) योजक, (ङ) अधिकार द्योतक।

(क) **कार्य द्योतक क्रिया**—जिस क्रिया से किसी कार्य के किए जाने की सूचना मिलती है, उसे कार्य द्योतक क्रिया कहते हैं, यथा—बच्ची **सो** रही है। कुत्ता **दौड़** रहा था। उन्हों ने **फल** खाए। आप कब नहाएँगे? इस वर्ग की क्रियाओं की संख्या सब से अधिक है।

(ख) **घटना द्योतक क्रिया**—जिस क्रिया से किसी घटना के होने की सूचना मिलती है, उसे घटना द्योतक क्रिया कहते हैं, यथा—बच्चा **गिर** गया। घड़ा **फूट** गया था।

(ग) **अस्तित्व द्योतक क्रिया**—जिस क्रिया से किसी वस्तु या प्राणी के अस्तित्व या उस की स्थिति की सूचना मिलती है, उसे अस्तित्व द्योतक क्रिया या **स्थैतिक क्रिया** कहते हैं, यथा—चूहा अलमारी में **है**। कुत्ता बाहर **था**। वह कमरे में **होगी**।

(घ) **योजक क्रिया**—जिस क्रिया से उद्देश्य, उस के पूरक के योजन की सूचना मिलती है, उसे योजक क्रिया कहते हैं, यथा—मेरी बहन डॉक्टर **है**। हनीफ़ बीमार **था**। अब वह स्वस्थ **होगा**।

(ङ) **अधिकार द्योतक क्रिया**—जिस क्रिया से विधेय पर उद्देश्य के अधिकार की सूचना मिलती है, उसे अधिकार द्योतक क्रिया कहते हैं, यथा—दशरथ के तीन रानियाँ **थीं**। उन के पास दो भैंसें **हैं**। तुम्हारे कितनी बेटियाँ **हैं/हुईं**?

अस्तित्व द्योतक, योजक तथा अधिकार द्योतक क्रियाएँ काल-सूचना भी देती हैं।

2. **सहायक क्रिया**—वाक्य की मुख्य क्रिया की किसी-न-किसी रूप में सहायता करनेवाली क्रिया सहायक क्रिया कहलाती हैं, यथा—मैं ने खाना खा **लिया था**।

वे अभी तक सो **रहे हैं**। तू इतनी देर से बोलती ही **चली जा रही है**। इन वाक्यों में काले टाइप के क्रिया शब्द सहायक क्रिया हैं।

मुख्य क्रिया के साथ आ कर सहायक क्रियाएँ छह प्रकार के कार्य करती हैं, अतः उन के **कार्य के आधार पर** सहायक क्रियाओं को छह वर्गों में बाँटा जा सकता है—(क) काल द्योतक, (ख) वाच्य द्योतक, (ग) पक्ष द्योतक, (घ) वृत्ति द्योतक, (ङ) रंजक, (च) क्रियाकर।

(क) **काल द्योतक सहायक क्रिया**—मुख्य क्रिया के काल की सूचना देने वाली क्रिया काल द्योतक सहायक क्रिया कहलाती है, यथा—बच्ची खेल रही **है** (/**थी**/होगी)। कल हम इस समय सिनेमा **देखेंगे** (/देख रहे **होंगे**)।

(ख) **वाच्य द्योतक सहायक क्रिया**—मुख्य क्रिया के वाच्य की सूचना देने वाली क्रिया वाच्य द्योतक सहायक क्रिया कहलाती है, यथा—बुढ़िया से चने नहीं चबाए **जा** रहे हैं। ऐसी घुटन में मुझ से कैसे बैठा **जाएगा**? इस पेड़ के सारे आम तोड़ लिए **गए** हैं। हिन्दी में केवल 'जा' धातु वाच्य द्योतन का भी काम करती है।

(ग) **पक्ष द्योतक सहायक क्रिया**—मुख्य क्रिया के पक्ष (पूर्णता, अपूर्णता आदि) की सूचना देनेवाली क्रिया पक्ष द्योतक सहायक क्रिया कहलाती है, यथा—मेहमान भोजन कर **चुके** हैं। मेहमान अभी भोजन कर रहे हैं।

(घ) **वृत्ति द्योतक सहायक क्रिया**—मुख्य क्रिया के वक्ता की वृत्ति/मनोवृत्ति की सूचना देनेवाली क्रिया वृत्ति द्योतक सहायक क्रिया/**वृत्तिक क्रिया** कहलाती है, यथा—उसे जाना **चाहिए** (/**पड़ेगा**/**होगा**)।

(ङ) **रंजक क्रिया**—मुख्य क्रिया के अर्थ में रंजकता (भाव-वैशिष्ट्य/अर्थ-गहनता/सुस्पष्टता) उत्पन्न करनेवाली क्रिया रंजक क्रिया कहलाती है, यथा—तुम ने पत्र लिख **दिया** (/**लिया**)। यह बदमाश कहाँ से आ **मरा** (/**टपका**)। मैं ने नहीं सोचा था कि तुम यह सब लिख **मारोगी**। इस रचना में रंजक क्रिया का कोशीय अर्थ महत्वहीन हो जाता है तथा अर्थ में आया वैशिष्ट्य उभर आता है।

(च) **क्रियाकर**—किसी संज्ञा या विशेषण के साथ आ कर मुख्य क्रिया का निर्माण करनेवाली क्रिया को क्रियाकर (Verblizer) कहते हैं। इस प्रक्रिया से निर्मित मुख्य क्रिया **संमिश्र क्रिया** कहलाती है, यथा—याद **करो**, तुम्हें कल रात क्या सुनाई **पड़ा** (/**दिया**) था? यह सोफ़ा कितने में मोल **लिया** गया था? इन वाक्यों में 'याद करो, सुनाई पड़ा/सुनाई दिया, मोल लिया' संमिश्र क्रिया हैं। कार्य-व्यापार के आरंभ होने के लिए 'शुरू हुआ/हुई/हुए' का प्रयोग; शुरू करना' भी प्रयुक्त।

(7) **तथ्यात्मकता की दृष्टि से** हिन्दी क्रियाएँ दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं—1. तथ्यपरक क्रियाएँ, 2. तथ्येतर क्रियाएँ।

1. **तथ्यपरक क्रियाएँ**—जब वाक्य के कथ्य सन्दर्भ में क्रिया-व्यापार या स्थिति तथ्य/सत्य रूप हो। इन क्रियाओं में काल, पक्ष होता है। काल की दृष्टि से ये वर्तमान ('हैं'), या भूत ('था') में होती हैं। पक्ष की दृष्टि से ये पूर्ण (वस्तुस्थिति में क्रिया की समाप्ति, यथा—खाया) या अपूर्ण (क्रिया का वर्तमान रहना, यथा—

खाता, होता) होती हैं। तथ्यपरक क्रियाओं की वास्तविकता एक भौतिक सत्य है। पूर्ण पक्ष के कृदन्त के लिंग-वचन भेद के आधार पर इन के चार रूप प्राप्त हैं—खाया-खाई-खाए-खाईं; लिया, दिया, ली, दी; लिए, दिए, लीं, दीं आदि।

2. **तथ्येतर क्रियाएँ**—इन क्रियाओं के होने के बारे में (सुदृढ़) अनुमान ही किया जा सकता है। वस्तुस्थिति में उस क्रिया की अभी वास्तविकता नहीं है, और न भौतिक सत्य है। कालबोधक क्रिया रूप 'है/था' तथ्येतर क्रियाओं के साथ नहीं आता। इन क्रियाओं में संभावनार्थ '-ए' का योग होता है, यथा—खाए, करे, ले, पिएगा, छुएगा।

क्रिया-धातु—धातु शब्द का एक अर्थ है 'मूल'। क्रिया शब्द के सामान्य रूप (यथा—खाना, सोना, खुजलाना आदि) में से 'ना' शब्दांश को पृथक् करने पर क्रिया-धातु (यथा—खा, सो, खुजला) शेष रहती है। क्रिया-धातु क्रिया पद के विविध रूपों में वर्तमान रहती है, तथा कोशीय क्रिया-व्यापार का बोधक होती है, यथा—हँसना, हँसो, हँसता, हँसूँ, हँसे, हंसें, हँसूँगी, हँसो आदि में 'हँस' धातु है। इसे √हँस से भी व्यक्त कर सकते हैं।

रचना की दृष्टि से क्रिया-धातु दो प्रकार की होती हैं—1. सरल (सामान्य/रूढ़/मूल) धातु, 2. यौगिक धातु।

1. **सरल धातु**—वे क्रिया-धातु जो भाषा में रूढ़ शब्द के रूप में प्रचलित हैं **सरल धातु** कहलाती हैं, यथा—पढ़, सो, खा, रो, लिख, पढ़, ले, दे, हो आदि।

प्रकार्य के आधार पर सरल धातुओं का एक उपभेद कालद/कालबोधक धातु है। कालद धातु दो हैं—'ह, थ'। ये क्रमशः वर्तमान तथा भूतकाल के सूचक हैं। ये दोनों पक्षसूचक क्रियाओं के साथ भी आते हैं। 'है' से युक्त क्रियाएँ व्यापार या स्थिति की सत्यता को वक्ता के कथन के सत्य के साथ जोड़ती हैं। 'है' कथन के समय वक्ता के समक्ष उपस्थित होता है। स्थिति या व्यापार कथन के समय समक्ष न होने पर 'था' का प्रयोग किया जाता है। स्थितिसूचक वाक्यों में 'है, था' अकेले आते हैं। ये पक्ष की क्रियाओं के साथ भी आते हैं।

2. **यौगिक धातु**—वे क्रिया धातु जो किसी सरल धातु में कोई प्रत्यय जोड़ कर या किसी अन्य शब्द में किसी प्रत्यय अथवा सरल धातु के योग से बनाई जाती हैं, यौगिक धातु कहलाती हैं, यथा—चल+-आ (ना)=चला (ना); रँग+-आ (ना)=रँगा (ना); लिख+-वा (ना)—लिखवा (ना)। रचना की दृष्टि से यौगिक धातु तीन प्रकार से बनाई जाती हैं—1. सरल धातु में कोई प्रत्यय जोड़ कर, यथा—पढ़+-आ=पढ़ा (ना), पढ़+-वा=पढ़वा (ना); 2. एकाधिक सरल धातुओं को जोड़ कर अर्थात् अनुक्रम में रख कर, यथा—लिख दे (ना); फाड़ डाल (ना); 3. क्रिया-इतर शब्द में कोई प्रत्यय जोड़ कर, यथा—बात से बतियाना; घिन से घिनाना।

संरचना, प्रकार्य तथा प्रयोजन की दृष्टि से यौगिक धातु छह प्रकार की होती

हैं—1. संमिश्र धातु, 2. पुनरुक्त धातु, 3. नाम धातु, 4. अनुकरणात्मक धातु, 5. प्रेरणार्थक धातु, 6. संयुक्त धातु ।

1. **संमिश्र धातु**—कुछ विशिष्ट संज्ञाओं तथा विशेषणों के साथ आ, कर, दे, पड़, लग, ले, हो' के योग से बनी धातु संमिश्र कही जाती हैं, यथा—नज़र/याद/पसन्द+**आ** (ना); (ϕ) याद/पसन्द/ग्रहण/स्वीकार/अंगीकार/आरम्भ, (को) याद/पसन्द/स्वीकार/अंगीकार/प्रणाम/विदा/दाखिल, (±को) नष्ट/बन्द/जुदा/(ϕ) प्राप्त/विसर्जित/आयोजित+**कर** (ना); दिखाई/सुनाई/(+कोई वस्तु) उधार/नक़द/इनाम/दान+**दे** (ना); (ϕ) पार/हाथ+**लग** (ना); (+कोई वस्तु) उधार/मोल/इनाम/नक़द/अपना+**ले** (ना); (ϕ) आरम्भ, शुरू/दाखिल/भर्ती/बन्द/विसर्जित/भंग/मालूम/याद/भस्म/विदा/मंजूर/नष्ट/माफ़/पार/नाराज़/खुश+**हो** (ना) । कुछ विद्वानों ने संमिश्र क्रिया को 'नॉमिनल कम्पाउंड, नामबोधक क्रिया, विशिष्ट संयुक्त क्रिया, कंजक्ट बर्व, वर्ब्ज़ कम्पाउण्डेड विद नाउन्ज़ एण्ड एडजेक्टिव, मिश्र क्रिया' कहा है । संयुक्त क्रिया की संरचना में शीर्ष स्थान पर क्रिया रहती है, संमिश्र क्रिया की संरचना में शीर्ष स्थान पर संज्ञा या विशेषण शब्द सहायक रूप में युक्त होनेवाली क्रिया का अभिन्न अंग बन कर व्याकरणिक संरचना तथा अर्थ की दृष्टि से एक इकाई के रूप में व्यक्त होता है, यथा—क्या आप को वह पुस्तक **पसन्द आई** ? अपना पाठ **याद करो** । रक्षाबंधन पर बहनें भाइयों को **याद करती हैं** । अध्यक्ष ने दस मिनट बाद ही सभा **विसर्जित कर दी** । क्या तुम्हें भी छत पर किसी के पैरों की आवाज़ **सुनाई दी थी** ? माँ को बच्चे का रोना **सुनाई (नहीं) पड़ा** । बँटवारे में मेरे यह दुकान हाथ **लगी** है । तुम ने उस से कितने रुपये **उधार लिए थे** ? मेरे साथ मेरी बहन भी स्कूल में **भर्ती हुई है** ।

भाषा-व्यवहार में संमिश्र धातु 'संमिश्र संयुक्त धातु' का रूप भी ले लेती है, यथा—दान दे देना, बन्द हो जाना, दान दे चुकना, बन्द हो चुकना, प्रणाम कर देना/लेना, नज़र आ जाना/चुकना आदि ।

(की) प्रतीक्षा/(का) इन्तज़ार/पीछा/भरोसा/जिक्र/(पर) हमला/प्रहार/आक्रमण/भरोसा+**कर** (ना) की संरचना से संमिश्र धातु का निर्माण नहीं होता, यथा—मैंने स्टेशन पर कई घंटे आप की प्रतीक्षा की । इंस्पेक्टर ने बहुत दूर तक स्मगलर का पीछा किया । भूमिगत विद्रोहियों ने सेना पर एक दिन में चार-चार बार हमले किए हैं । इन वाक्यों में 'प्रतीक्षा, पीछा, हमले' 'की, किया' तथा 'किए हैं' क्रिया के क्रमशः कर्म हैं । इसी प्रकार 'माँ ने भिखारिन को दान दिया' में 'दान 'दिया' क्रिया का कर्म है किन्तु 'माँ ने भिखारिन को एक किलो आटा दान दिया' में 'दान' 'दिया' क्रिया का कर्म नहीं है, वरन् संमिश्र क्रिया 'दान दिया' का शीर्ष है ।

2. **पुनरुक्त धातु**—किसी एक या अधिक सार्थक धातुओं के कुछ अंश की पुनरुक्ति से निर्मित धातु पुनरुक्त धातु कहलाती हैं, यथा—कर (ना)-धर (ना);

बोल (ना)-चाल (ना); हो (ना)-हवा (ना)। पुनरुक्त धातु के दो रूप हैं—(क) पूर्ण पुनरुक्त धातु, यथा—उठ-उठ, बैठ-बैठ, देख-देख, झाँक-झाँक आदि (ख) अपूर्ण पुनरुक्त धातु, यथा—फूट-फाट, कूट-काट, उलट-पलट, चीर-फाड़, घूम-फिर आदि।

पुनरुक्त धातुएँ वाक्य में निम्नलिखित अर्थ-छवि की अभिव्यक्ति करती हैं—**निरन्तरता**, यथा—लड़ते-लड़ते (मर गई), खड़े-खड़े (थक गया)। **पौनः पुन्यार्थकता**, यथा—रह-रह (कर रोती रही), पूछते-पूछते (वहाँ पहुँच ही गए)। **संशयात्मकता**, यथा—चलेंगे-चलेंगे (कहते हैं, पर पता नहीं कब चलेंगे), तुम्हारा क्या ठिकाना, आए-आए न आए न आए। **निश्चयात्मकता**, यथा—(तुम) आओगी-आओगी; (मैं यह न) लूँगा न लूँगा। **अवधिसूचना**, यथा—पीते-पीते (बेहोश हो गए), पहुँचते-पहुँचते (शाम हो जाएगी)। **अपूर्णता**, यथा—मरते-मरते (बची है), जाते-जाते (क्यों रुक गया?)

3. **नाम धातु**—कुछ विशिष्ट संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण शब्दों से (कभी-कभी कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन कर के) जो क्रिया-धातु बना ली जाती हैं, उन्हें धातु कहते हैं, यथा—**संज्ञा शब्दों से**—लाज/लज्जा-लजा (ना), लहर-लहरा (ना), लालच-ललचा (ना), आलस्य-अलसा (ना), पीतल-पितरा (ना), ठोकर-ठुकरा (ना), बात-बतिया (ना), लात-लतिया (ना), धक्का-धकिया (ना), हाथ-हथिया (ना), शर्म-शरमा (ना), पत्थर-पथरा (ना), स्वीकार-स्वीकार (ना), (व्यापार में सकारना), लाठी-लठिया (ना), टक्कर-टकरा (ना), चक्कर-चकरा (ना), खुजली-खुजला (ना), झगड़ा-झगड़ (ना), गुज़र-गुज़र (ना), बदल-बदल (ना), ख़र्च-ख़र्च (ना), ख़रीद-ख़रीद (ना), दाग़-दाग़ (ना), आजमाइश-आजमा (ना), दुख-दुख (ना), पानी-पनिया (ना), रिस-रिसा (ना), आदि। **सर्वनाम शब्द से**—अपना-अपना (ना), **विशेषण शब्दों से**—चिकना-चिकना (ना), मोटा-मुटा (ना), साठ-सठिया (ना), गर्म-गरमा (ना), ठंडा-ठंडा (ना), सुस्त-सुस्ता (ना), आकुल-अकुला (ना), दुहरा-दुहरा (ना), लँगड़ा-लँगड़ा (ना), बूढ़ा-बुढ़ा (ना)।

हिन्दी में 'आ, खा, गा, जा, भा, ला' कुछ एकाक्षरी धातुओं के अतिरिक्त केवल प्रेरणार्थक अनुकरणात्मक, और नाम धातु ही आकारान्त हैं। कुछ आलोचक, लेखक मनमाने ढंग से नामधातु गढ़ने लग जाते हैं। उन में से कुछ तो भाषा की आन्तरिक प्रकृति के अनुकूल हो सकती हैं किन्तु कुछ हास्यापद ही ठहरती हैं, यथा—विचारना, संकोचना, कविताना, जल्दी-जल्दिया (ना), छलाँग-छलाँग (ना), ऊपर-उपरा (ना), तेज-तेजा (ना), धीरे-धिरा (ना) आदि।

हिन्दी नाम-धातुओं का निर्माण शून्य, -आ, -इया प्रत्यय या योग से होता है। संज्ञार्थक क्रिया के रूप में नाम धातुओं का प्रयोग संभव है।

4. **अनुकरणात्मक धातु**—क्रिया प्राणी या वस्तु की वास्तविक या कल्पित ध्वनि या दृश्य के अनुकरण पर निर्मित क्रिया-धातु को अनुकरणात्मक या **आवृत्त धातु** कहते हैं, यथा—**खटखट-खटखटा (ना), टनटन-टनटना (ना),** भनभन-भनभना

(ना), घी-घी-घिघिया (ना), गिड़गिड़-गिड़गिड़ा (ना), भुनभुन-भुनभुना (ना), फुसफुस-फुसफुसा (ना), थरथर-थरथरा (ना), सनसन-सनसना (ना), थपथप-थपथपा (ना), छल-छला(ना), हिनहिना (ना), चहचहा (ना), टिमटिमा (ना), चमचमा (ना), जगमगा (ना), झिलमिला (ना), तमतमा (ना), फड़फड़ा (ना), किटकिटा (ना), मिमिया (ना), झनझना (ना), टरटरा/टर्रा (ना), भौंक (ना), थूक (ना), थिरक (ना) भी इसी वर्ग के धातु माने जा सकते हैं। घिग्घी > घिघिया (ना)=घी-घी करना, रिरिया (ना)=री-री|रें-रे करना, मिमिया (ना)=मे-मे करना, चुचुआ (ना), चू-चू करना, धुँधआ (ना)=धूँ-धूँ करना।

नाम धातु तथा अनुकरणात्मक धातु अकर्मक तथा सकर्मक कोटि की होती हैं। सभी बहु आक्षरिक नाम धातु तथा अनुकरणात्मक धातु आकारान्त तथा पुल्लिग होती हैं। हिन्दी में लगभग 175 अनुकरणात्मक धातुओं का प्रयोग होता है। इन धातुओं को संरचना की दृष्टि से चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—1. सरल धातु—(क) एकाक्षरी, यथा—कड़, खट, गड़, धम, आदि (ख) द्व्यक्षरी, यथा—अचकचा, गिटपिटा, सिटपिटा, आदि। 2. संयुक्त धातु, यथा—छटपटा, किलकिला, खटपटा, खड़बड़ा आदि 3. पुनरुक्त धातु, यथा—कलमला, कलबला, आदि 4. आवृत्त धातु, यथा—खरखरा, कड़कड़ा, गड़गड़ा, टनटना, कटकटा, भिनभिना, फड़फड़ा, बुदबुदा आदि (सरल धातु की आवृत्ति)। अनुकरणात्मक धातुओं का निर्माण-आ (ना), -क (ना) से होता है, यथा—कड़कड़-कड़कड़ा (ना), चरमर-चरमरा (ना), आदि; कड़-कड़क (ना), खट-खटक (ना) आदि।

5. **प्रेरणार्थक धातु**—मूल या सरल धातु में '-आ-ला' जोड़कर प्रथम प्रेरणार्थक और '-वा (-ला/-लवा)' जोड़ कर द्वितीय प्रेरणार्थक धातु का निर्माण किया जाता है, यथा—बैठ-बिठा-बिठवा, सो-सुला-सुलवा, चल-चला-चलवा, पी-पिला-पिलवा, जाग-जगा-जगवा, कह्-कहला-कहलवा, देख-दिखा-दिखवा, लिख-लिखा-लिखवा, पढ़-पढ़ा-पढ़वा, उड़-उड़ा-उड़वा, दौड़-दौड़ा-दौड़वा आदि।

क्रियापद के जिस रूप से यह ज्ञात हो कि वास्तविक क्रिया-व्यापार को सम्पादित करनेवाला अभिकर्ता किसी अन्य की प्रेरणा से उस कार्य को करने में प्रवृत्त होगा या हुआ है तो वह क्रियारूप 'प्रेरणार्थक रूप' कहलाता है। यथा—माँ बच्चे को दूध पिला (/पिलवा) रही है। पिता पुत्र से पत्र लिखवा रहा है। मालिक (नौकरों से) पेड़ कटवा रहा है। इन वाक्यों में 'पिला/पिलवा, लिखवा, कटवा' क्रियाओं के वास्तविक कर्ता/अभिकर्ता क्रमशः बच्चा (दूध पीनेवाला), पुत्र (पत्र लिखनेवाला), नौकर (पेड़ काटनेवाले) हैं। इन को मूल क्रिया-व्यापार में प्रवृत्त करने वाले कर्ता क्रमशः माँ, पिता, मालिक हैं। कार्य-व्यापार में प्रवृत्त करनेवाला या प्रेरणा देनेवाला कर्ता **'प्रेरक कर्ता'** कहलाता है। मूल कार्य-व्यापार में प्रवृत्त होने वाला या प्रेरित होनेवाला कर्ता **'प्रेरित/प्रेर्य/प्रयोज्य/योज्य/-कर्ता'** कहलाता है। प्रेरित कर्ता 'को, से' से युक्त होने के कारण कर्म, करण जैसा प्रतीत होता है, यथा—बच्चे

ने दवा **पी ली** (बच्चे ने बिना किसी की प्रेरणा/सहयोग से स्वत: दवा पीने का कार्य किया), माँ ने बच्चे को दवा पिलाई (बच्चे ने माँ की प्रेरणा/सहयोग से दवा पीने का कार्य किया), माँ ने (नौकर से) बच्चे को दवा पिलवाई (माँ ने नौकर को प्रेरणा दी कि वह बच्चे को दवा पिलाए। बच्चे ने नौकर की प्रेरणा/सहयोग से दवा पीने का कार्य किया)

व्याकरण धरातल पर प्रेरणार्थक वाक्यों में प्रेरक कर्ता ही व्याकरणिक कर्ता होता है और 'को' युक्त मूल कर्ता (/अभिकर्ता) कर्मवत् रहता है किन्तु 'से' युक्त अभिकर्ता करणवत् रहता है। नौकर बालक को चलाता है। माँ (नौकर से) लकड़ी कटवाती है। पिता जी मुझे (नौकर से) स्कूल पहुँचवाते हैं।

वाक्य-संरचना की दृष्टि से धातुओं के तीन प्रकार के प्रयोग होते हैं—

1. **स्वार्थिक प्रयोग**—जब वाक्य में क्रिया-व्यापार का तात्त्विक कर्ता/अभिकर्ता वर्तमान होता है अर्थात् बिना किसी की प्रेरणा से किए जानेवाले क्रिया-व्यापार की क्रिया '**स्वार्थिक**' होती है, यथा—नौकर पेड़ काट रहा है। बच्चा दूध पी रहा था। मैं यह गठरी नहीं उठा सकता। तुम मुझ पर क्यों बिगड़ रहे हो? तुम मेरा क्या बिगाड़ लोगे? 2. **कर्मादिकर्तृक प्रयोग**—जब वाक्य में क्रिया-व्यापार का तात्त्विक कर्ता या अभिकर्ता वर्तमान न हो या प्रच्छन्न हो, यथा -- पेड़ कट रहा है; दूध पिया जा रहा है; मुझ से यह गठरी नहीं उठ सकती; आजकल यह सड़क दिन-रात चलती रहती है। ऐसी क्रिया '**कर्मकर्तृक क्रिया**' कही जाती है। 3. **प्रेरणार्थक प्रयोग**—जब वाक्य में क्रिया-व्यापार का तात्त्विक कर्ता/अभिकर्ता 'प्रेरित कर्ता' के रूप में हो अर्थात् किसी की प्रेरणा से होनेवाले क्रिया-व्यापार की क्रिया '**प्रेरणार्थक**' या द्विकर्तक होती है, यथा—नौकर बालक को चलाता है (प्रेरक कर्ता 'नौकर', प्रेरित कर्ता 'बालक)। वे (नौकर से) घास कटवा रहे हैं। माँ बच्चे को कपड़े पहनवा रही है। इस गठरी को नौकर से बँधवा लो। तुम (उस से) सारा काम बिगड़वा लोगे।

प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया सकर्मक या कभी-कभी द्विकर्मक क्रिया होती है। यथा—हँस-हँसा, रो-रुला, सो-सुला, खेल-खिला, दौड़-दौड़ा, उड़-उड़ा, चल-चला; खा-खिला, पी-पिला, पढ़-पढ़ा, सीख-सिखा, पहन-पहना। हिन्दी की तथाकथित प्रथम प्रेरणार्थक क्रियाएँ संरचना की दृष्टि से या तो सकर्मक क्रियाएँ होती हैं या द्विकर्मक। 'बच्चा कबूतर (/पतंग) **उड़ा** रहा है,' में 'उड़ा' क्रिया का कर्म कबूतर (/पतंग) है किन्तु 'कबूतर (/पतंग) उड़ रहा (/रही) है' में 'उड़' क्रिया का अभिकर्ता (प्राणिवाची होने के कारण) 'कबूतर' तो है, 'पतंग' नहीं। यहाँ पतंग व्याकरणिक कर्ता या कर्मकर्तृक है। 'नौकर बच्चे को खाना खिला रहा है' में संरचनागत दो कर्म (बच्चा, खाना) हैं। तात्त्विक दृष्टि से बच्चा 'खा' क्रिया का कर्ता/अभिकर्ता है। 'मालिक नौकर से पेड़ कटवा रहा है' वाक्य में 'नौकर' प्रेरित कर्ता तथा 'काट'

क्रिया का कर्ता/अभिकर्ता है। संरचना स्तर पर 'को' कर्मत्व का सूचक है और 'से' कर्तृत्व का।

उमेठना, उलटना, खदेड़ना, ढकेलना, पटकना आदि सकर्मक क्रियाओं का फल/प्रभाव कर्म तक ही सीमित रहता है, यथा—नौकर ने रस्सी उमेठ दी (? ली); नौकर ने चोर को खदेड़ दिया (? लिया); नौकर ने लट्ठा ढकेल दिया (? लिया); नौकर ने बच्चे को पटक दिया (? लिया)। खाना, पीना, पहनना, सीखना, सुनना आदि सकर्मक क्रियाओं का फल/प्रभाव कर्म तक सीमित न रह कर कर्ता तक पहुँचता है। इन में 'खाना, पीना' आदि भोगार्थक क्रियाएँ हैं तथा 'सीखना, सुनना' आदि ज्ञानार्थक क्रियाएँ हैं। इन क्रियाओं को **'कर्तृगामी फलद' क्रियाएँ** कह सकते हैं। इन के साथ 'लेना' रंजक क्रिया का प्रयोग सामान्य रूप से सम्भव है, यथा—बच्चे ने दूध पी लिया (? दिया), मैं ने साइकल चलाना सीख लिया है (? दिया)। केवल कर्तृगामी फलद क्रियाएँ ही कर्म के अतिरिक्त कर्ता की विशेषता बताती हैं, यथा—पढ़ा हुआ बच्चा (/अख़बार) (*उमेठा हुआ बच्चा, किन्तु उमेठा हुआ अख़बार), पिया हुआ नौकर (/पानी) (*पटका हुआ आदमी, किन्तु पटकी हुई मेज़)। कर्तृगामी फलद क्रियाओं के फल का आश्रय कर्ता भी होने के कारण उस में कर्म का गुण भी वर्तमान रहता है और इसीलिए द्विकर्मक बनते ही इन क्रियाओं का कर्ता 'को' के साथ कर्म में परिवर्तित हो जाता है, यथा—माँ गाय को गुड़-दाल खिला रही है। प्रेरणार्थक क्रियाओं की चर्चा में 'को', 'से' का प्रयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा वैशिष्ट्यपूर्ण है, यथा—अध्यापक छात्रों को निबन्ध लिखा/लिखवा रहा है—अध्यापक छात्रों से निबन्ध लिखा/लिखवा रहा है। मान्त्रिक ने लड़की को चिल्लवाया—मान्त्रिक ने लड़की से चिल्लवाया। इन में 'को' युक्त व्यक्ति तो क्रिया के फल से प्रभावित हैं किन्तु 'से' युक्त व्यक्ति क्रिया-फल से अप्रभावित हैं।

हिन्दी में द्विप्रेरणार्थक/द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाओं का बहुत कम प्रयोग होता है। व्यवहार में द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाओं के साथ वास्तविक कर्त्ता का उल्लेख (सदैव) आवश्यक नहीं हुआ करता, यथा—हम यहाँ चार बजे पहुँचे। सारा सामान ठीक से रखवाया। कमरा तथा चौका साफ़ कराया; बाज़ार से कॉफ़ी मँगवाई, खुद पी और साथ आए दोस्तों को पिलवाई।

तात्त्विक कर्ता या अभिकर्ता की प्रच्छन्न अवस्था में सम्पन्न होनेवाले क्रिया-व्यापार की क्रिया को **'कर्मकर्तृक क्रिया'** कहते हैं, यथा—पेड़ कट रहे हैं; कपड़े सिल रहे थे। ऐसी क्रियाओं में तात्त्विक कर्म वाक्य-संरचना की दृष्टि से कर्ता या व्याकरणिक कर्ता रहता है। इन क्रियाओं को 'अकर्तृक क्रिया' कहने से भ्रम होता है क्योंकि प्रत्येक क्रिया का कोई-न-कोई कर्ता अवश्य होता है। तात्त्विक कर्ता या अभिकर्ता की प्रच्छन्न अवस्था में किसी उपकरण के द्वारा सम्पन्न होनेवाले क्रिया-व्यापार की क्रिया को 'करणकर्तृक कह सकते हैं, यथा—राणा प्रताप की **तलवार** शत्रुओं के सिर काट-काट कर गिरा रही थी। राम के **बाणों ने** रावण के दस सिरों को छेद दिया

था। आजकल मेरी **कलम** कोई काम नहीं करती। काले टाइप के शब्द मूलतः करण या उपकरण हैं किन्तु यहाँ कर्ता (व्याकरणिक कर्ता) की भाँति प्रयुक्त हैं। इसी प्रकार सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण कर्तृक क्रियाएँ भी हो सकती हैं, यथा—**मुझे** कल दिल्ली जाना है। उसका **फोड़ा** बह रहा है। यह **रास्ता** बहुत चलता है।

प्रथम प्रेरणार्थक क्रियाओं का प्रेरणा स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित नहीं होता, किन्तु इनका अभिकर्ता (संरचना स्तर पर सकर्मक क्रिया का कर्ता) स्वयं कार्य करने के लिए उपस्थित रहता है, यथा—'दादा जी बच्चों को कविता **सुना** रहे हैं। माँ बच्ची को **पढ़ा** रही है। अध्यापक छात्रों को **दौड़ाता** है।' इन वाक्यों का अप्रेरणार्थक रूप होगा—बच्चे (दादा जी से) कविता सुन रहे हैं। बच्ची (माँ से) पढ़ रही है। (अध्यापक के आदेश पर) छात्र दौड़ते हैं। द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाओं का कर्ता स्वयं कार्य न कर किसी अन्य को कार्य करने की प्रेरणा देता है। इन क्रियाओं का प्रेरणा रूप स्पष्ट परिलक्षित रहता है, यथा—दादा जी ने (नौकर से) बच्चों को कविता **सुनवाई**। माँ (अध्यापिका से) बच्ची को **पढ़वा** रही है। प्रधानाचार्य (अध्यापक से) छात्रों को **दौड़वाते** हैं। इन वाक्यों में 'दादा जी, माँ, प्रधानाचार्य, प्रेरक कर्ता हैं; 'नौकर, अध्यापिका, अध्यापक' प्रेरित प्रेरक कर्ता हैं; 'बच्चों, बच्ची' छात्रों, प्रेरित कर्ता (कर्म) हैं। इन वाक्यों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—दादा जी ने नौकर से बच्चों को कविता सुनाने के लिए कहा; नौकर ने बच्चों को कविता सुनाई; बच्चों ने कविता सुनी। माँ अध्यापिका से बच्चों को पढ़ाने के लिए कहती है। अध्यापिका बच्चों को पढ़ा रही है। बच्चे पढ़ रहे हैं। प्रधानाचार्य अध्यापक से बच्चों को दौड़ाने के लिए कहता है। अध्यापक बच्चों से दौड़ने के लिए कहता है। बच्चे दौड़ते हैं। इस प्रकार द्वितीय प्रेरणा ही वास्तविक प्रेरणार्थक होती है। **प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के नियम** निम्नलिखित हैं—

(1) कुछ वैयाकरणों के अनुसार 'आना, कुम्हलाना, गरजना, घिघियाना, टकराना, तुतलाना, पछताना, पड़ना, लँगड़ाना, सिसकना, आना जाना, खोना, गँवाना, पाना, मिलना, चाहना, रुचना, सोचना, पुकारना, जानना, जँचना, होना' का प्रेरणार्थक नहीं बनता। प्रेरणार्थक के गहरे विश्लेषण के सन्दर्भ में इन पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। (2) अकर्मक धातुएँ प्रेरणार्थक होने पर सकर्मक हो जाती हैं और सकर्मक धातुएँ द्विकर्तृक (कभी-कभी द्विकर्मक भी) हो जाती हैं, यथा—चल-चला (ना), उठ-उठा (ना), खा-खिला (ना)-खिलवा (ना), देख-दिखा (ना)-दिखवा (ना)। (3) प्रेरणार्थक धातुओं की रचना स्वार्थिक धातु में '-आ, -ला, -रा, -लवा' प्रत्यय लगा कर की जाती है, यथा—पढ़-पढ़ा-पढ़वा; कह-कहा-कहला-कहलवा; देख-दिखा-दिखला-दिखवा-दिखलवा (4) सभी धातुओं के सब रूप नहीं बनते। (5) (क) इन में धातु अपरिवर्तित रहता है—कर-करा, करवा; चर-चरा, चरवा; घिस-घिसा, घिसवा; घुल-घुला, घुलवा; धुल-धुला, धुलवा; पढ़-पढ़ा, पढ़वा; फिर-फिरा, फिरवा; मिट-मिटा, मिटवा; लिख-लिखा, लिखवा; सुन-सुना, सुनवा। (ख) कुछ धातुओं में प्रत्यय

जुड़ने पर स्वरों में आवश्यक परिवर्तन कर लिया जाता है, यथा—आ >अ, ई/ए/ऐ > इ, ऊ/ओ/औ >उ, उदा० काट-कटा, कटवा; नाच-नचा, नचवा; जाग-जगा, जगवा; नहा-नहला, नहलवा; रीझ-रिझा, रिझवा; बीत-बिता, बितवा; सीख-सिखा, सिखवा; लेट-लिटा, लिटवा; खेल-खिला, खिलवा; देख-दिखा, दिखला; दिखवा, दिखलवा; भेज-भिजवा; बैठ-बिठा, बिठवा; भूल-भुला, भुलवा; सूख-सुखा, सुखवा; बोल-बुला, बुलवा; खोद-खुदा,खुदवा; घोट-घुटा, घुटवा; जोत-जुता, जुतवा। (ग) दीर्घ स्वरान्त धातुओं में प्रायः -ला जुड़ने पर स्वर में ह्रस्वता आ जाती है, यथा—खा-खिला, खिलवा; नहा-नहला, नहलवा; पी-पिलवा; जी-जिला, जिलवा; सी-सिला, सिलवा; दे-दिला, दिलवा; रो-रुला, रुलवा; ढो-ढुलवा; सो-सुला, सुलवा; धो-धुला, धुलवा। (6) कुछ मूल अकर्मक, सकर्मक धातुओं के व्युत्पन्न प्रथम, द्वितीय प्रेरणार्थक तथा कर्मकर्तृक (व्युत्पन्न अकर्मक) रूप इस प्रकार बनाए जा सकते हैं—

मूल अकर्मक धातु	मूल सकर्मक धातु	व्युत्पन्न प्रेरणार्थक धातु	कर्मकर्तृक रूप
उठ	उठा	उठवा	
चल	—	चला, चलवा	चल
गल	—	गला, गलवा	
बैठ	—	बिठा, बिठवा, बिठला, बिठलवा	
सो	—	सुला, सुलवा	
डूब	डुबो	डुबा, डुबवा	
जाग	—	जगा, जगवा	
मर	मार	मरा, मरवा	
—	कह	कहला, कहलवा	
—	काट	कटवा	कट
—	खटका	खटकवा	
—	पढ़	पढ़ा, पढ़वा	
—	पढ़ा	पढ़वा	
—	देख	दिखा, दिखवा, दिखला, दिखलवा	
—	पहन	पहना, पहनवा	
—	तोड़	तुड़ा, तुड़वा	टूट
—	खा	खिला, खिलवा	
—	सी	सिला, सिलवा	सिल
—	पी	पिला, पिलवा	
—	फाड़	फड़वा	फट
—	फोड़	फुड़ा, फुड़वा	फूट
—	खोल	खुला, खुलवा	खुल

यह आवश्यक नहीं है कि नियमों के आधार पर जो व्युत्पन्न प्रेरणार्थक रूप

बनाए जा सकते हैं, उन सब का दैनन्दिन भाषा-व्यवहार में प्रयोग होता ही हो; यथा—'माँ आया से बच्चे को दूध पिलवाती है; अरे भाई, अपने नौकर से हमें ठंडा पानी/गर्म चाय पिलवाओ' जैसे वाक्य हिन्दी क्षेत्र में शायद ही कहीं, कभी बोले जाते हों या साहित्य-विधाओं में प्रयोग में आते हों। व्यवहार में 'बच्चे को दूध पिला/पिलवा देना; अरे भाई, ज़रा ठंडा पानी/गर्म चाय तो पिलाओ/पिलवाओ' जैसे वाक्य ही बोले जाते हैं क्योंकि द्वितीय प्रेरणार्थक में प्रायः वास्तविक कर्ता का उल्लेख नहीं किया जाता।

6. **संयुक्त धातु**—कभी-कभी वक्ता/लेखक अपने भाव-विचार को पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए एक से अधिक क्रिया पदों का प्रयोग करता है। एकाधिक मूल धातुओं के योग से बनी धातु संयुक्त धातु कही जाती हैं, यथा—खा ले (ना), दे दे (ना), लिख चुक (ना), कर डाल (ना), बोल उठ (ना), पी चुक (ना), आ जा (ना) आदि। जब किसी विशिष्ट अर्थ बोध हेतु एकाधिक भिन्नार्थी (ले, दे समानार्थी भी) क्रियाएँ मिल कर एक पूर्ण समापिका क्रिया (पदबन्ध) का निर्माण करती हैं तो उस क्रिया (पदबंध) को **संयुक्त क्रिया** कहते हैं, यथा—दुर्घटना को देख कर मेरा हृदय पीड़ा से **भर गया**। बिदा होते समय लड़कियाँ प्रायः **रो उठती** हैं। इन वाक्यों में भरना, जाना, रोना, उठना भिन्नार्थी क्रियाएँ हैं किन्तु पहली दोनों, दूसरी दोनों भिन्नार्थी क्रियाएँ परस्पर के सहयोग से दो विशिष्ट अर्थों का बोध करा रही हैं। सामान्यतः प्रत्येक युग्म की पहली क्रिया मुख्य क्रिया तथा दूसरी क्रिया सहकारी/सहायक क्रिया होती है। मुख्य क्रिया वक्ता/लेखक के अभिप्रेत क्रिया-व्यापार की सूचक होती है, जबकि सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के क्रिया-व्यापार के सम्पन्न होने आदि के वैशिष्ट्य की सूचक होती है।

संयुक्त क्रियापदों की रचना निम्नलिखित रीतियों से होती है—

(1) मुख्य क्रियापद + एक या अधिक सहायक क्रियापद, यथा—वह (खाना) खा चुका। तुम्हीं बोलते चले जा रहे हो। उसे मिटा दिया जा सकता है।

मुख्य क्रियापद के रूप में 'सक, ग' के अतिरिक्त सभी क्रिया-धातुएँ प्रयुक्त हो सकती हैं, यथा—क्या तुम्हारा कर्ज अब भी नहीं चुका? आप वकील हैं। वे बीमार थे। चिड़िया उड़ी। 'वह चला आ रहा है। वह चला जाएगा' में 'चलना' मुख्य क्रियापद नहीं है किन्तु 'आना, जाना' ही मुख्य क्रियापद है। अतः 'चला आना/चला जाना' उपर्युक्त नियम के अन्दर नहीं आता।

मुख्य क्रियापद के तुरन्त बाद **पहले स्थान पर** 'आना, उठना, करना, चलना, चुकना, जाना, टपकना, डालना, देना, धमकना, पड़ना, पाना, बनना, बसना, बैठना, मारना, रखना, रहना, लगना, लेना, सकना, होना' में से कोई भी क्रिया आ सकती है, यथा—यह बदमाश कहाँ से आ **टपका**? वह रोज़ हमारे यहाँ आ **धमकता** है। बेचारा छोटी उम्र में ही चल **बसा**। जो भी जी में आया, वही लिख **मारा**। मुख्य

क्रियापद के बादवाले क्रियापद के बाद **दूसरे स्थान पर** 'आना, करना, चुकना, जाना, देना, पड़ना, रहना, लगना, सकना, होना' में से कोई भी क्रिया आ सकती है, यथा—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दिया जा **चुका** है। ज़रा, उसे अपने यहाँ ठहर जाने **देना**। सारा हॉल झंडियों से सजाया जाने **लगा**। वह अभी सो रहा **होगा**। मुख्य क्रियापद के बाद **तीसरे स्थान** पर 'रहना, सकना, होना' में से कोई भी क्रिया आ सकती है, यथा—घोड़ी भागी चली आ **रही** थी। उन से तुम्हारे बारे में पूछ लिया जा **सकता** है। बच्चों को यहाँ के रीति-रिवाज़ के बारे में बता ही दिया गया **होगा**। मुख्य क्रियापद के बाद **चौथे स्थान पर** कालबोधक धातुएँ 'ह, थ, ग' ही आती हैं, यथा—इस बारे में सब बता दिया जाता रहा **है** (/**था**/**होगा**)।

इस प्रकार क्रियापदों का यह बितरण 1, 2, 3, 4, 5 स्थान के रूप में होता है जिस में 'सकना' के अतिरिक्त पूर्ववर्ती स्थान के क्रियापद परवर्ती स्थान पर नहीं आते किन्तु परवर्ती स्थान के क्रियापद पूर्ववर्ती स्थान पर आ सकते हैं, यथा—वह कमरे में **था**। वह कमरे में **सोया था**। वह कमरे में **सो** गया **था**। (वह)/उसे कमरे में सुलाया जा रहा **था**। उसे कमरे में सुला दिया जा सकता **था**।

'गिर, डूब, निकल, निकाल, पहुँच, फिर, भाग, ला' से पूर्ववर्ती मुख्य क्रियापद स्थानीय कुछ क्रियाएँ मुख्य क्रिया न होकर पूर्वकालिकता का बोध कराती हैं, यथा—पतंग कहाँ **जा** गिरी ? वह तुम्हें भी **ले** डूबेगा। चोर पुलिस की निगाह से बच कर जेल से **निकल** भागा। उसे यहाँ **पकड़** लाओ। तुम यहाँ कैसे **आ** पहुँचे ?

(2) √+-आ+√जा+-ता/-ती/-ते, यथा—बस, नौकर आया ही जाता है। मारे बदबू के सिर फटा जाता था। अरी क्यों, मारे कंजूसी के मरी जाती है। **(तत्परता बोधन)**

(3) √+-आ+√कर, यथा—गाया करता था; सुना करता हूँ; आया करता है। बारह बरस दिल्ली रहे, पर भाड़ ही झोंका किए। वे हमें देखें न देखें, हम उन्हें देखा करें। **(अभ्यास बोधन)**

(4) √+-ना+√चाह, यथा—करना चाहा; मरना ही चाहती थी; पूछना चाहूँगा। **(इच्छा बोधन)**। कहीं-कहीं √+-आ प्रयोग (विशेषतः पुरानी हिन्दी में) प्राप्त, यथा—बारह बजा चाहते हैं। रेलगाड़ी आया चाहती है। लड़के ने लड़की को देखा चाहा।

(5) √+सक, यथा—दौड़ सकते थे; सुन सकते हो; दौड़ नहीं सकता। **(शक्ति बोधन)**। प्रभुता-प्रदर्शन हेतु कुछ लोग आदेशात्मक क्रिया-प्रयोग के स्थान पर शक्ति बोधक क्रिया का प्रयोग करते देखे जाते हैं, यथा—तुम जाओ (/जा सकते हो), वह जाए (/जा सकती है)।

(6) √+चुक, यथा—पढ़ चुका हूँ; पहुँच चुका था; लिख चुकूँगा। **(पूर्णता बोधन)**।

(7) √+-ने+√लग, यथा—गाने लगा; बन्द करने लगा; जाने

लगेगा। **(आरम्भ बोधन)**। 'क्यों' साथ आने पर नकारात्मकता या असम्भवता की सूचना मिलती है, यथा—वह यहाँ क्यों आने लगी (=वह यहाँ नहीं आएगी)।

(8) √+-ने+√दे, यथा—जाने दो; समाप्त कर लेने दो; सुनने दीजिए। **(अनुमति बोधन)**

(9) √+√पा, यथा—खा पाया; लिख पाओगे; चल पाई। **(प्राप्ति बोधन/अवकाश बोधन)** पुरानी हिन्दी में √+-ने प्रयोग प्राप्त, यथा—तुम यहाँ से इतनी जल्दी जाने (जा) न पाओगी। पूरी बात न होने (हो) पाई थी कि·····।

(10) √+-ता/-ती/-ते+√आ, यथा—होती आई है; कहता आया हूँ; देखते आए हैं **(नित्यता बोधन)**। बेचारी बचपन से ही न जाने कितने दुःख सहती आई है।

(11) √+-ता/-ती/-ते/-ए+√जा, यथा—बोलते जाओ; कहे जाओ; खाए जा रहा है; सुनती जाइए **(सातत्य बोधन)**। भीड़ नारे लगाती जाती है (=भीड़ नारे लगाते हुए जा रही थी) में 'लगाती जाती है' संयुक्त क्रिया नहीं है।

(12) √+-ता/-ती/-ते/+ए+√रह, यथा—सोती रहती है; पहले रहता था; सोए रहता है। **(निरन्तरता बोधन)**। 'जाता रहना' का मुहावरेदार प्रयोग, यथा—मेरी माँ मेरे बचपन में ही जाती रही (=मर गई); इस हार की सारी चमक जाती रही (=नष्ट हो गई); एक महीने में यह नौकर भी जाता रहेगा (=चला जाएगा)

(13) √+उठ/बैठ/आ/जा/ले/दे/पड़/डाल/रह/रख/निकल **(अवधारण बोधन)**, यथा—चौंक उठा, रो उठी, चिल्ला उठे, बोल उठता है **(अचानकता बोधन)**। मार बैठूँगी, कह बैठी, चढ़ बैठा, खो बैठना, उठ बैठा **(अचानकता बोधन)**। देख आना, लौट आइए, बादल घिर आए, मौत के मुँह में से भी बच आया **(क्रिया-व्यापार वक्ता की ओर से)**। खो जाना, भूल जाना, छा जाना, छू जाना, सी जाना, **(पूर्णता, शीघ्रता बोधन)**, हाथी के पैर के नीचे कोई कुचल गया; देखो मत पी जाओ। खा लेना, पी लेना, छीन लेना, समझ लेना **(क्रिया-व्यापार लाभ कर्ता को प्राप्त)**, जब तक कोई बात नहीं हो लेती, तब तक·······**(पूर्णता बोधन)**। कर देना, सुना देना, समझा देना, कह देना, त्याग देना **(क्रिया-व्यापार लाभ कर्ता से भिन्न के लिए)**, चल देना, रो दिया, छींक देगा, हँस दो **(अचानकता बोधन)**। सुन पड़ा, जान पड़ता है, देख पड़ना, सूझ पड़ा, समझ पड़ा **(अप्रत्याशित आकस्मिकता बोधन)**, गिर पड़ा, चौंक पड़े, हँस पड़ी, आ पड़ना **(अचानक घटित घटना)**। फोड़ डाल, काट डाला, फाड़ डालो, तोड़ डालना, कर डालना **(उग्रता बोधन)**, मार दूँगा=चाँटे आदि से चोट पहुँचा दूँगा; मार डालूँगा=प्राण ले लूँगा। खेल रहा है/था/होगा, खा रही है/थी/होगी **(निरन्तरता बोधन)**। समझ रखा है, रोक रखी है, 'छोड़ रखना' के स्थान पर प्रायः 'रख छोड़ा' का प्रयोग **(आत्मनेपदी रूप)**। आ निकला, चल निकली **(अप्रत्याशित आकस्मिकता बोधन)**

(14) √+-ते+√बन, यथा—मुझ से पहाड़ पर चढ़ते नहीं बना; पढ़ते नहीं बनती; देखते ही बनती है **(योग्यता बोधक)**

(15) √+-ए+ . ले/दे/डाल, यथा—मैं यह आम लिए लेता हूँ। मैं वह किताब फाड़े देती हूँ। वह बच्चे को मारे डालता है। **(निश्चय बोधन)**

(16) √+√+कर/√+-ते+√+-ते, यथा—पढ़-पढ़ कर मर जाना; खा-खाकर मुटिया गई है। चलते-चलते थक गई; खाते-खाते पेट फटा जा रहा है। **(क्रिया-व्यापार की अतिशयता)**

संयुक्त क्रिया-प्रकार्य—संयुक्त क्रियापदों की सहायता से अभिव्यक्त क्रिया-व्यापार सम्पादन की **रीतियाँ** कई प्रकार की होती हैं। कुछ लोग इन रीतियों को संयुक्त क्रियापद से व्यक्त 'अर्थ' कहते हैं जो वास्तव में संयुक्त क्रियाओं के प्रकार्य हैं, यथा—1. **निश्चयबोधन**, यथा—मैं ने उन्हें पत्र लिख दिया है। एक ही कप कॉफ़ी मँगाई गई थी। तुम्हारी चीजें कल लेता आऊँगा। 2. **निरन्तरता बोधन**, यथा—बछड़ा दूध पिए ही चला जा रहा था। बोलते जाओ, मैं सब सुन रहा हूँ। इस प्रकार की भूलें कब तक करते जाओगे? बादल घिरे चले आ रहे हैं। 3. **तत्काल बोधन**, यथा—चाय पी कर जाना, अभी तैयार किए देती हूँ। अब ज्यादा देर न लगेगी, जो कुछ लिखना है लिखे डालता हूँ। तुम्हारा टिकट मैं ही लिए देता/लेता हूँ। 4. **इच्छा बोधन**, यथा—इतना खा चुका हूँ कि पेट फटना ही चाहता है। कितनी सुन्दर गुड़िया है, लगता है बोलना चाहती है। चढ़ना चाह रहा था कि गाड़ी चल दी। 5. **आवश्यकता बोधन**, यथा—हमें मन्दिरों को समाज-सुधारक का रूप देना चाहिए। यह तो तुम्हें पहले ही सोच लेना चाहिए था। 6. **विवशता बोधन**, यथा—लिखना तो नहीं चाहता था, पर लिखना पड़ गया। लगता है अब यहाँ से भागना ही पड़ेगा। पिताजी की तबीयत ख़राब है तो चार दिन रुकना पड़ सकता है। उसे बचाने के लिए मुझे भी झूठ बोलना होगा/पड़ेगा। सभी को अपने कर्मों का फल भोगना है/पड़ेगा। 7. **अभ्यास बोधन**, यथा—तुम रोज़ाना कितना दूध पिया करते हो? कभी-कभी यहाँ भी हो जाया करो। वह रोज़ाना/हमेशा कुछ-न-कुछ पढ़ा या लिखा करती थी। 8. **सामर्थ्य बोधन/क्षमता बोधन/शक्यता बोधन**, यथा—मैं नहीं समझता कि उस से कुछ कहते बन पाएगा। नक्कारख़ाने की आवाज़ में तूती की आवाज़ कौन सुन पाता है। दो मिनट में क्या बोल पाओगे? वह तुम्हें पीट सकता है, लेकिन तुम उसे नहीं पीट सकते। राममूर्ति स्टार्ट की हुई कार को रोक सकते थे। तुम कितना दूध पी सकते हो? 9. **असामर्थ्य बोधन/अशक्यता बोधन**, यथा—क्या तुमसे उस के सामने बोलते बन सकेगा। मेरे सामने तो उस बेचारी से बोलते ही नहीं बनता। 10. **आरम्भ बोधन**, यथा—आँधी आने लगी। उत्तर प्रदेश में विद्यालय मई से बन्द होने लगते हैं। वह बचपन से ही तुतलाने लगी थी। 11. **समाप्ति बोधन**, यथा—क्या वे स्नान कर चुके हैं? रेखा गा चुकी, अब मधु गाएगी। उस ने छोटी-सी ज़िन्दगी में सब कुछ पा लिया है। मैं ने काफ़ी देर पहले ही खा-पी लिया था। हम ने

अपना पुराना मकान बेच दिया है। पता नहीं इतनी सारी मलाई कौन खा गया? 12. **नित्यता बोधन/निरन्तरता बोधन**, यथा—महात्मा गांधी प्रतिदिन सूत काता करते थे। इस दफ्तर के बड़े बाबू ठीक 9·30 पर दफ्तर (में) पहुँचते रहे हैं। अंडमान में तो लगभग प्रति मास पानी बरसता रहता है। तू हमेशा कुछ-न-कुछ बोलती ही रहती है। तुम किधर चलते चले गए। 13. **आकस्मिकता बोधन**, यथा—तुम बीच में ही क्यों बोल उठते हो? यह तुम क्या कर बैठे? बच्चा कीचड़ में गिर पड़ा। 14. **अन्तराल बोधन/ अवकाश बोधन**, यथा—अब तुम यहाँ से निकल नहीं पाओगी। अभी उस मुद्दे पर चर्चा हो भी न पाई थी कि····। वह जा भी न पाया था कि····। 15. **अनिष्ट बोधन/अनिच्छा बोधन**, यथा—भैंस को पागल कुत्ते ने काट खाया था। यह सब तुम ने क्या लिख मारा है? 16. **अतिशयता बोधन**, यथा—बच्ची रोते-रोते सो गई। तुम्हारी शिकायतें सुन-सुन कर मेरे तो कान पक गए। मैं तो दिन भर बैठे-बैठे थक जाती हूँ।

संयुक्त धातुओं से निर्मित क्रियापद में मुख्य क्रिया के साथ आनेवाली क्रिया (**रंजक क्रिया**) अपना कोशीय अर्थ त्याग कर लाक्षणिक अर्थ ग्रहण कर लेती है। रंजक क्रियाओं की संख्या के बारे में मतभेद है किन्तु ये क्रियाएँ मुख्य क्रिया के साथ आ कर अपने मूल अर्थ को छोड़ कर मुख्य क्रिया के व्यापार-सम्पादन में कोई-न-कोई विशेषता उत्पन्न कर देती हैं—आ, जा, उठ, बैठ, ले, दे, निकाल, पा, लग, रह, रख, कर, सक, चुक, चाह, चल, पड़, बन, डाल, मर, मिल, गुज़र, मार। रंजक क्रियाओं का प्रयोग प्रक्रियाबोधक नामों के साथ भी होता है। **प्रक्रिया बोधक नाम** ऐसा संज्ञा, विशेषण, अव्यय शब्द होता है जिस के अर्थ में प्रक्रियात्मकता का आभास रहता है, यथा—उधार लेना, कष्ट उठाना, वर्णन करना, नमस्कार करना, धन्यवाद देना, घूस देना, पसन्द आना, डुबकी मारना, दया आना/करना, शान्त करना, फीका पड़ना, अटपटा लगना, लंबा करना, नंगा करना, ठंडा पड़ना, आसान करना/पड़ना, जल्दी करना/दिखाना/मचाना, पीछे पड़ना, ना/हाँ करना आदि। प्रक्रियाबोधक नाम अर्थ स्तर पर तो मुख्य क्रिया के समान कार्य करते प्रतीत होते हैं, किन्तु संरचना-स्तर पर ये क्रियापद की भाँति रूप ग्रहण नहीं कर सकते। इन के साथ आनेवाली रंजक क्रिया ही वाक्य में समापिका क्रिया का कार्य करती है, यथा—आप ने मेरे लिए बहुत **कष्ट उठाया है**। इस कमीज़ का रंग **कच्चा पड़ गया है**। तुम क्यों मेरे **पीछे पड़े हुए हो**?

विभिन्न प्रक्रियाबोधक नामों तथा रंजक क्रियाओं के मध्य दो प्रकार का संबंध मिलता है—1. धनात्मक (सकारात्मक), यथा—कष्ट+उठ/मिल, नमस्कार+कर/कह/बोल/लिख/पहुँच 2. ऋणात्मक (नकारात्मक), यथा—कष्ट+(*लग/सक/पड़/बन), नमस्कार+(*आ/जा/पा/रख)। प्रक्रियाबोधक नामों के अतिरिक्त मूल धातुओं, व्युत्पन्न धातुओं के साथ भी रंजक क्रियाओं का धनात्मक तथा

ऋणात्मक संबंध होता है, यथा—कट/काट/कटा/कटवा+ले/सक/पड़/दे/चाह/डाल। रंजक क्रिया-धातुएँ **द्विप्रकार्यात्मक** होती हैं क्योंकि वे मुख्य क्रिया या मुख्य क्रिया-स्थानीय किसी घटक को विशिष्ट अर्थ-छवि प्रदान करने के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर स्वयं मुख्य क्रिया का स्थान भी ले सकती हैं। रंजक क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य क्रिया-धातुएँ एक प्रकार्यात्मक ही होती हैं। रंजक क्रिया युक्त क्रिया पद-रचना में रंजक क्रिया ही समापिका क्रिया का भार ग्रहण करती है। समापिका क्रिया का कार्य मूल अथवा व्युत्पन्न धातु ही कर सकती है। इस प्रकार संरचनात्मक दृष्टि से धातु +कृत् प्रत्यय=क्रियापद होता है जो वाक्य में विधेय स्थान पर समापिका रूप में आता है।

क्रिया-रूपान्तरण—संरचनात्मक दृष्टि से वाक्य में क्रिया दो रूपों में आती है—1. **समापिका रूप** (क्रिया का वह रूप जो वाक्य-समापन की सूचना देता है) 2. **असमापिका रूप** (क्रिया का वह रूप जो वाक्य-समापन की सूचना न दे कर अन्य प्रकार के कार्य-व्यापार की सूचना देता है), यथा—वे **खा कर** आए थे। **चलते** बैल को मत मारो। हम **टहलने** चलें। **फटा** दूध मत पीओ। तार **पढ़ते ही** वह रो पड़ी। मुझे पानी चाहिए तुम हमारे साथ चलना। इन वाक्यों में काले टाइप की क्रियाएँ असमापिका क्रियाएँ हैं तथा 'आए थे, मारो, **चलें,** पीओ, रो पड़ी, चाहिए, चलना' समापिका क्रियाएँ हैं। समापिका क्रिया वाक्य में **एकल पद, एकाधिक पद** के रूप में आती है। एकल पद के रूप में यह **योजक** (उद्देश्य, विधेय का योजन), **सहज व्यापार सूचक** (सहज रूप से व्यापार-अभिव्यक्ति) होती है, यथा—ईश्वर **है;** तुम डॉक्टर **हो;** गाय दुबली **थी**। बच्चे घर **गए;** तुम अभी तक नहीं **नहाए;** आप कल **आइए**। एकाधिक पद के रूप में यह व्यापारों का **धनात्मक योग,** व्यापारों की **गुणात्मक संश्लिष्टि** होती है, यथा—वे बाज़ार **जा रहे हैं;** वे कल भी **आए थे;** बच्चे कमरे में **बैठे होंगे**। तुम आज फिर **आ गए;** आप यह क्या **कह बैठे;** वह बिस्तर पर **जा पड़ी**। धनात्मक योग में अर्थ की एकलयता पाई जाती है, गुणात्मक संश्लिष्टि में मूलार्थ चमत्कृत हो कर व्यक्त होते हैं।

हिन्दी क्रियापद/क्रियापदबंध (समापिका क्रिया) को संरचना की दृष्टि से सभी व्याकरणिक कोटियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभावित करती हैं। क्रियापद की इन व्याकरणिक कोटियों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—1. विकारोत्पादक, 2. प्रयोग-नियामक। **विकारोत्पादक व्याकरणिक कोटियाँ** क्रिया की रूपावली को दो रूपों में प्रभावित करती हैं—(क) **आन्तरिक प्रभावकारी व्याकरणिक कोटियाँ** क्रियापद की अन्तःप्रकृति को किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रभावित करती हैं। इन कोटियों में '**वृत्ति, पक्ष, काल**' की गणना की जाती है। (ख) **बाह्य प्रभावकारी व्याकरणिक कोटियाँ** क्रियापद की बाह्य प्रकृति को प्रभावित करते हुए वाक्य के नाम पद के साथ अन्वित करती हैं। इन कोटियों में '**लिंग, वचन, पुरुष**' की गणना की जाती है। **प्रयोग-नियामक व्याकरणिक कोटियाँ** 'क्रियापदीय और **कारकीय**

अपना पुराना मकान बेच दिया है। पता नहीं इतनी सारी मलाई कौन खा गया ? 12. **नित्यता बोधन/निरन्तरता बोधन**, यथा—महात्मा गांधी प्रतिदिन सूत काता करते थे। इस दफ्तर के बड़े बाबू ठीक 9·30 पर दफ्तर (में) पहुँचते रहे हैं। अंडमान में तो लगभग प्रति मास पानी बरसता रहता है। तू हमेशा कुछ-न-कुछ बोलती ही रहती है। तुम किधर चलते चले गए। 13. **आकस्मिकता बोधन**, यथा—तुम बीच में ही क्यों बोल उठते हो ? यह तुम क्या कर बैठे ? बच्चा कीचड़ में गिर पड़ा। 14. **अन्तराल बोधन/ अवकाश बोधन**, यथा—अब तुम यहाँ से निकल नहीं पाओगी। अभी उस मुद्दे पर चर्चा हो भी न पाई थी कि····। वह जा भी न पाया था कि····। 15. **अनिष्ट बोधन/अनिच्छा बोधन**, यथा—भैंस को पागल कुत्ते ने काट खाया था। यह सब तुम ने क्या लिख मारा है ? 16. **अतिशयता बोधन**, यथा—बच्ची रोते-रोते सो गई। तुम्हारी शिकायतें सुन-सुन कर मेरे तो कान पक गए। मैं तो दिन भर बैठे-बैठे थक जाती हूँ।

संयुक्त धातुओं से निर्मित क्रियापद में मुख्य क्रिया के साथ आनेवाली क्रिया (**रंजक क्रिया**) अपना कोशीय अर्थ त्याग कर लाक्षणिक अर्थ ग्रहण कर लेती है। रंजक क्रियाओं की संख्या के बारे में मतभेद है किन्तु ये क्रियाएँ मुख्य क्रिया के साथ आ कर अपने मूल अर्थ को छोड़ कर मुख्य क्रिया के व्यापार-सम्पादन में कोई-न-कोई विशेषता उत्पन्न कर देती हैं—आ, जा, उठ, बैठ, ले, दे, निकाल, पा, लग, रह, रख, कर, सक, चुक, चाह, चल, पड़, बन, डाल, मर, मिल, गुज़र, मार। रंजक क्रियाओं का प्रयोग प्रक्रियाबोधक नामों के साथ भी होता है। **प्रक्रिया बोधक नाम** ऐसा संज्ञा, विशेषण, अव्यय शब्द होता है जिस के अर्थ में प्रक्रियात्मकता का आभास रहता है, यथा—उधार लेना, कष्ट उठाना, वर्णन करना, नमस्कार करना, धन्यवाद देना, घूस देना, पसन्द आना, डुबकी मारना, दया आना/करना, शान्त करना, फीका पड़ना, अटपटा लगना, लंबा करना, नंगा करना, ठंडा पड़ना, आसान करना/पड़ना, जल्दी करना/दिखाना/मचाना, पीछे पड़ना, ना/हाँ करना आदि। प्रक्रियाबोधक नाम अर्थ स्तर पर तो मुख्य क्रिया के समान कार्य करते प्रतीत होते हैं, किन्तु संरचना-स्तर पर ये क्रियापद की भाँति रूप ग्रहण नहीं कर सकते। इन के साथ आनेवाली रंजक क्रिया ही वाक्य में समापिका क्रिया का कार्य करती है, यथा—आप ने मेरे लिए बहुत **कष्ट उठाया है**। इस कमीज़ का रंग **कच्चा पड़ गया है**। तुम क्यों मेरे **पीछे पड़े हुए हो** ?

विभिन्न प्रक्रियाबोधक नामों तथा रंजक क्रियाओं के मध्य दो प्रकार का संबंध मिलता है—1. धनात्मक (सकारात्मक), यथा—कष्ट+उठ/मिल, नमस्कार+कर/कह/बोल/लिख/पहुँच 2. ऋणात्मक (नकारात्मक), यथा—कष्ट+(*लग/सक/पड़/बन), नमस्कार+(*आ/जा/पा/रख)। प्रक्रियाबोधक नामों के अतिरिक्त मूल धातुओं, व्युत्पन्न धातुओं के साथ भी रंजक क्रियाओं का धनात्मक तथा

ऋणात्मक संबंध होता है, यथा—कट/काट/कटा/कटवा+ले/सक/पड़/दे/चाह/डाल। रंजक क्रिया-धातुएँ **द्विप्रकार्यात्मक** होती हैं क्योंकि वे मुख्य क्रिया या मुख्य क्रिया-स्थानीय किसी घटक को विशिष्ट अर्थ-छवि प्रदान करने के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर स्वयं मुख्य क्रिया का स्थान भी ले सकती हैं। रंजक क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य क्रिया-धातुएँ एक प्रकार्यात्मक ही होती हैं। रंजक क्रिया युक्त क्रिया पद-रचना में रंजक क्रिया ही समापिका क्रिया का भार ग्रहण करती है। समापिका क्रिया का कार्य मूल अथवा व्युत्पन्न धातु ही कर सकती है। इस प्रकार संरचनात्मक दृष्टि से धातु +कृत् प्रत्यय=क्रियापद होता है जो वाक्य में विधेय स्थान पर समापिका रूप में आता है।

क्रिया-रूपान्तरण—संरचनात्मक दृष्टि से वाक्य में क्रिया दो रूपों में आती है—1. **समापिका रूप** (क्रिया का वह रूप जो वाक्य-समापन की सूचना देता है) 2. **असमापिका रूप** (क्रिया का वह रूप जो वाक्य-समापन की सूचना न दे कर अन्य प्रकार के कार्य-व्यापार की सूचना देता है), यथा—वे **खा कर** आए थे। **चलते** बैल को मत मारो। हम **टहलने** चलें। **फटा** दूध मत पीओ। तार **पढ़ते ही** वह रो पड़ी। **मुझे** पानी चाहिए तुम हमारे साथ चलना। इन वाक्यों में काले टाइप की क्रियाएँ असमापिका क्रियाएँ हैं तथा 'आए थे, मारो, चलें, पीओ, रो पड़ी, चाहिए, चलना' समापिका क्रियाएँ हैं। समापिका क्रिया वाक्य में **एकल पद**, **एकाधिक पद** के रूप में आती है। एकल पद के रूप में यह **योजक** (उद्देश्य, विधेय का योजन), **सहज व्यापार सूचक** (सहज रूप से व्यापार-अभिव्यक्ति) होती है, यथा—ईश्वर **है**; तुम डॉक्टर **हो**; गाय दुबली **थी**। बच्चे घर **गए**; तुम अभी तक नहीं **नहाए**; आप कल **आइए**। एकाधिक पद के रूप में यह व्यापारों का **धनात्मक योग**, व्यापारों की **गुणात्मक संश्लिष्टि** होती है, यथा—वे बाज़ार **जा रहे हैं**; वे कल भी **आए थे**; बच्चे कमरे में **बैठे होंगे**। तुम आज फिर **आ गए**; आप यह क्या **कह बैठे**; वह बिस्तर पर **जा पड़ी**। धनात्मक योग में अर्थ की एकलयता पाई जाती है, गुणात्मक संश्लिष्टि में मूलार्थ चमत्कृत हो कर व्यक्त होते हैं।

हिन्दी क्रियापद/क्रियापदबंध (समापिका क्रिया) को संरचना की दृष्टि से सभी व्याकरणिक कोटियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभावित करती हैं। क्रियापद की इन व्याकरणिक कोटियों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—1. विकारोत्पादक, 2. प्रयोग-नियामक। **विकारोत्पादक व्याकरणिक कोटियाँ** क्रिया की रूपावली को दो रूपों में प्रभावित करती हैं—(क) **आन्तरिक प्रभावकारी व्याकरणिक कोटियाँ** क्रियापद की अन्तःप्रकृति को किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रभावित करती हैं। इन कोटियों में '**वृत्ति, पक्ष, काल**' की गणना की जाती है। (ख) **बाह्य प्रभावकारी व्याकरणिक कोटियाँ** क्रियापद की बाह्य प्रकृति को प्रभावित करते हुए वाक्य के नाम पद के साथ अन्वित करती हैं। इन कोटियों में '**लिंग, वचन, पुरुष**' की गणना की जाती है। **प्रयोग-नियामक व्याकरणिक कोटियाँ** 'क्रियापदीय और **कारकीय**

अनुकूलता' के अतिरिक्त '**वाच्य**' को व्यक्त करती हैं। हिन्दी क्रियापदों की संरचना में इन सभी व्याकरणिक कोटियों का प्रभाव अत्यन्त संश्लिष्ट रूप में पड़ता है। कहीं-कहीं एक ही प्रत्यय एक से अधिक व्याकरणिक कोटियों को व्यक्त करता है और कहीं-कहीं प्रत्यय-हीनता (शून्य प्रत्यय) से ही व्याकरणिक कोटियों का बोध होता है।

वृत्ति या अभिवृत्ति का सामान्य अर्थ है—मनस्थिति, मानसिकता या मनोभाव। वक्ता में कथन के क्षण कोई-न-कोई वृत्ति या अभिवृत्ति अवश्य होती है। वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद का रूप वक्ता की एक या एकाधिक मनोवृत्ति का बोध कराता है। कभी-कभी उच्चारण-सुर के उतार-चढ़ाव से एक ही क्रियापद एकाधिक वृत्तियों को व्यक्त करता है, यथा—'मैं पढ़ रहा हूँ' वाक्य के क्रियापद से निश्चयात्मक, तिरस्कारात्मक, उपेक्षात्मक, विनयात्मक वृत्ति आदि की सूचना मिलती है किन्तु वक्ता का मुख्य ध्येय (वृत्ति) है—किसी को यह बताना कि वह (वक्ता) पढ़ने का कार्य कर रहा है। वृत्ति को अँगरेज़ी में 'मूड' कहते हैं जिस का अर्थ है—मस्तिष्क, मन या आत्मा की अवस्था। 'वृत्ति' को कुछ व्याकरणों में 'क्रिया के अर्थ', 'क्रिया के प्रकार', 'क्रिया की अवस्था', 'क्रिया के भाव', 'क्रिया की विधि' कहा गया है। पारिभाषिक शब्दावली या तकनीकी दृष्टि से ये सभी नाम भ्रामक हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विभिन्न मनोभाव दो प्रकार की वृत्तियों में विभक्त किए जा सकते हैं—1. तटस्थ/विचारमूलक 2. विधानात्मक/इच्छामूलक। तटस्थ या विचारमूलक वृत्ति के समय वक्ता आत्मकेन्द्रित रहते हुए किसी कार्य-व्यापार के बारे में निश्चयात्मक, संदेहात्मक, सम्भावनात्मक या संकेतात्मक दृष्टि से विचार करता या सोचता है। विधानात्मक या इच्छामूलक वृत्ति के समय वक्ता किसी क्रिया-व्यापार को किसी अन्य के द्वारा सम्पादित किए जाने की इच्छा रखता है। इस प्रकार हिन्दी की क्रियाओं को दो वर्गों में बाँट सकते हैं—1. तथ्यपरक क्रियाएँ 2. तथ्येतर क्रियाएँ। **तथ्येतर क्रियाओं** से निर्दिष्ट क्रिया-व्यापार के होने का केवल अनुमान किया जा सकता है अथवा आशा/आशंका की जा सकती है क्योंकि ये क्रिया-व्यापार **तथ्यपरक क्रियाओं** के क्रिया-व्यापार की भाँति वस्तु-जगत् में घटित या घटमान सत्य या वास्तविक नहीं होते। अँगरेज़ी में तथ्येतर क्रियाओं को Subjunctive कहते हैं और हिन्दी में इन्हें रूप के आधार पर संभावनार्थ/संदेहार्थ कहते हैं। क्रियापद-संरचना की दृष्टि से वृत्ति की अभिव्यक्ति दो रूपों में होती है—1. **मुक्त रूप** शुद्ध रूप में वृत्ति बोधन के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। इच्छार्थक (-ऊँ,-ए,-एँ, -ओ), आज्ञार्थक (ϕ,-ओ,-इए) वृत्तियों के प्रत्यय इसी प्रकार के हैं। 2. **सन्नद्ध रूप** अन्य कोटियों को व्यक्त करनेवाले प्रत्ययों तथा नित्यत्व-बोधक 'होना' के विविध रूपों के योग से व्यक्त होते हैं, यथा—हो, था, -गा, ता, -आ, -ऊँ आदि। वृत्तिबोधक शब्दों 'यदि, अगर, अनुमान, संदेह, शायद, संभावना, निश्चय' के प्रयोग से वृत्ति-रूपों में परिवर्तन भी हो सकता है।

हिन्दी में विचारमूलक तथा इच्छामूलक वृत्ति को तीन रूपों में देखा जा सकता

है—1. निश्चयात्मक 2. सम्भावनात्मक 3. विध्यात्मक। सम्भावनात्मक वृत्ति के दो और उपभेद किए जा सकते हैं—(क) संदेहात्मक (ख) प्रतिबन्धात्मक। इस प्रकार इन पाँच वृत्तियों में सभी प्रकार की वृत्तियों का समाहार हो जाता है।

1. **निश्चयात्मक वृत्ति**—क्रियापद का वह रूप जिस से क्रिया-व्यापार के सम्पादन के बारे में निश्चय की सूचना मिले, यथा—मैं आज तुम्हारे घर आऊँगा। आज छुट्टी है, स्कूल नहीं खुलेगा। क्या तुम्हारे पिता जी बाज़ार गए हैं ? निश्चयात्मक वृत्ति में क्रिया के बारे में कथन, वर्णन, प्रश्न, निषेध के रूप में सूचना मिलती है। निश्चयात्मक वृत्ति में क्रियापद की संरचना के ये रूप होते हैं—$\surd$ + -ता/-ती/-ते/-आ/-ई/-ए + हूँ/हैं/है/हो; $\surd$ + -ऊँ/-एँ/-ए/-ओ + -गा/-गी/गे; $\surd$ + -ता/-ती/-ते/-आ/-ई/-ए + था/थी/थे/थीं; $\surd$ + -आ/--ई/-ए/-ईं। 2. **विध्यात्मक वृत्ति**—क्रियापद का वह रूप जिससे मध्यम पुरुष के सन्दर्भ में क्रिया-व्यापार के सम्पादन के बारे में विधि (आज्ञा/आदेश/सुझाव/अनुरोध/चेतावनी/इच्छा/आश्वासन/निषेध/प्रार्थना/उपदेश/आग्रह/निर्देश) की सूचना मिले, यथा—इधर आओ, यहाँ बैठो। लड़कियो! चुप रहो; शोर मत मचाओ। आप उन की राय अवश्य मानिए। हे भगवान ! इन पर दया करो। दीनों के साथ हमेशा प्रेम का व्यवहार करो। सदैव निष्ठा के साथ कर्तव्य-पालन करो। तुम वहाँ जाना और उन्हें समझाना। एक ही खुराक लेना, ज्यादा नहीं। आदर प्रदर्शन के लिए धातु + -इए/-इएगा का प्रयोग होता है, यथा—आप आइए/उठिए/बैठिए/देखिए। कभी हमारे घर भी आइए/आइएगा/पधारिए/पधारिएगा। लीजिए, दूध पीजिए। थोड़ा हमें भी दीजिए/दीजिएगा। निषेध युक्त विध्यात्मक वृत्ति में 'न, मत' का प्रयोग होता है। 'नहीं' का प्रयोग प्रायः नहीं होता। आदर प्रदर्शन के समय केवल 'न' का प्रयोग होता है, यथा—अभी (तू) घर मत जा। अभी (तुम) घर मत जाओ। अभी (आप) घर न जाना/जाइए। उत्तम (प्रथम), अन्य (तृतीय) पुरुष में आदेश नहीं दिया जाता, केवल मध्यम (द्वितीय) पुरुष को ही आदेश दिया जाता है। विध्यात्मक वृत्ति में क्रियापद की संरचना के ये रूप होते हैं—$\surd + \phi$/-ओ/-इए/-इएगा/-ऊँ/-ए/-एँ। आज्ञा, सम्भावना के रूपों में बहुत कुछ समानता है। 'वह यहाँ बैठे; (क्या) मैं जाऊँ' से आज्ञा, कर्तव्य, प्रार्थना की सूचना मिल रही है। इसे 'आज्ञार्थ/प्रवर्तनार्थ/विध्यर्थ' भी कहते हैं। 3. **सम्भावनात्मक वृत्ति**—क्रियापद का वह रूप जिस से क्रिया-व्यापार के बारे में सम्भावना (अनुमान, आशंका, इच्छा या कामना, प्रार्थना, सुझाव, हिदायत, अनुमति/सम्मति, कर्तव्य) की सूचना मिलती है, यथा—शायद आज वह आए। शायद वह भी सिनेमा जा रही हो। सम्भव है, मैं कल भी आऊँ। भगवान तुम्हें सद्बुद्धि दे। ईश्वर करे वह स्वस्थ हो जाए। हमें चाहिए कि हम अपने माँ-बाप का कहना मानें। अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि हम प्रतिदिन योगासन का अभ्यास करें। क्या हम भी आप के साथ चलें ? अब तो आप उसे बुला ही लें। संभावनात्मक वृत्ति में

क्रियापद की संरचना के ये रूप होते हैं—√+-ऊँ/-ओ/-ए/-एँ। सम्भावनात्मक, प्रतिबन्धात्मक या संकेतात्मक वृत्तियों का प्रयोग अंशतः एक-सा होता है। शायद संभावना का द्योतक भी है और उस का तिरस्कार भी करता है, यथा—शायद बच्चे आज न आएँ। शायद आज आँधी/वर्षा आए/वे शायद ही आएँ। मिट्टी का तेल आज शायद ही मिले। विध्यात्मक तथा संभावनात्मक वृत्ति में क्रिया के रूप प्रायः समान होते हैं। संदर्भ-भेद से वृत्ति-भेद की जानकारी मिलती है। 4. **संदेहात्मक वृत्ति**—क्रियापद का वह रूप जिस से क्रिया-व्यापार के सम्पादन के बारे में सन्देह (क्रिया-व्यापार के बारे में अनिश्चय) का बोध हो, यथा—उन्हों ने/तुम ने खाना खाया होगा। तुम्हें मेरा पत्र मिला होगा। (शायद) वह आ रहा होगा। बच्चा आता (ही) होगा। सन्देहात्मक वृत्ति वर्तमान, भूत की क्रियाओं में मिलती है। 'न, नहीं' का योग होने पर इस वृत्ति के वाक्य निश्चयात्मक वृत्ति के हो जाते हैं, यथा—वह आती होगी; वह आई होगी—वह नहीं आती; वह नहीं आई। संदेहात्मक वृत्ति की क्रिया-संरचना के ये रूप होते हैं—√+-ता/-ती/-ते/-आ/-ई/-ए/+हो/ह+-ऊँ/-ए/-ओ/एँ+-गा/-गी/-गे। इसे संदिग्धार्थ/अनुमानार्थ भी कहते हैं। 5. **प्रतिबन्धात्मक वृत्ति**—क्रियापद का वह रूप जिस से कार्य-कारण का सम्बन्ध रखनेवाली क्रियाओं की असिद्धि/असम्पन्नता की सूचना मिलती है। शर्त या प्रतिबन्ध होने के कारण इस वृत्ति के वाक्य सरल वाक्य नहीं होते, मिश्र वाक्य होते हैं। इसे संकेतार्थक/शर्तसूचक/हेतुहेतुमान भी कहते हैं। उदा०—तुम चाहे जितना कमाओ, पूरा नहीं पड़ सकता। उस ने किसी अच्छे स्कूल में शिक्षा तो पाई नहीं, फिर उस में सभ्यता कहाँ से आती? ओला पत्थर से बचती तो फ़सल खलिहान में आती। मुझे अवकाश मिलता तो मैं पत्र लिखता (/ और मैं पत्र न लिखता)। यदि वह आया होता तो मैं अवश्य चली गई होती। जो/यदि तुम ने परिश्रम किया होता तो सफलता मिली होती। यदि तुम जाते तो···· / यदि तुम जाते होते तो····/यदि तुम गए होते तो····। प्रतिबन्धात्मक वृत्ति की क्रिया-संरचना के ये रूप होते हैं—√+-आ/-ई/-ए+हो+-ता/-ती/-ते।

पक्ष—क्रिया-व्यापार की स्थिति या दशा का बोध करानेवाली व्याकरणिक कोटि को 'पक्ष' कहते हैं। पक्ष को 'अवस्था' भी कहा जाता है। क्रियापद के जिस रूप से यह पता लगे कि कार्य-व्यापार पूर्ण हो चुका है या अपूर्ण है उसे क्रिया की अवस्था या पक्ष कहा जाता है। इस प्रकार पक्ष क्रिया-व्यापार के आरम्भ से ले कर उस की समाप्ति तक की विभिन्न स्थितियों/दशाओं/अवस्थाओं का द्योतक है। क्रिया-व्यापार का पूर्ण हो जाना 'पूर्ण पक्ष' तथा क्रिया-व्यापार का अपूर्ण रहना (आरम्भ-पूर्वत्व, आरम्भत्व, घटमानत्व, वर्धमानत्व, वीप्सा, अभ्यास, नित्यत्व तथा स्थिति) 'अपूर्ण पक्ष' कहा जाता है। -ता वर्तमान का प्रत्यय है और वर्तमान निरन्तर होने के कारण अपूर्ण है। इसी प्रकार -गा भी अपूर्णता का सूचक है। -आ भूत का प्रत्यय है और समाप्ति या पूर्णता का सूचक है। पक्षबोधक रंजक क्रियाओं (लग,

रह, चुक) तथा मुख्य क्रिया; √+-ने वाला/को के योग से बने रूप को **मूल पक्ष** कह सकते हैं, यथा—हवा चलने लगी (आरम्भत्वसूचक), बच्ची चीखती रही (घटमानत्वसूचक), मैं खा चुका (समाप्तिसूचक), गाड़ी आनेवाली है/थी (आरम्भपूर्वत्व सूचक), ईंट गिरने को है/हुई (आरम्भपूर्वत्व सूचक) कालवाची सहायक क्रिया तथा प्रत्ययों के योग से बने रूप को **सम्बद्ध पक्ष** कह सकते हैं। सम्बद्ध पक्ष में संयुक्त होनेवाले तत्व कालबोधक होते हैं, अतः ऐसे काल को **पक्षीय काल** भी कह सकते हैं। यह पक्ष काल की सूचना के साथ-साथ क्रिया-व्यापार की अवस्था/दशा की सूचना भी देता है, यथा—बच्चा हँसता है (/था/होता/होगा/गया) अपूर्ण पक्ष सूचक; बच्चा हँसा (है/था/होगा) पूर्णपक्ष सूचक। पूर्ण पक्ष फल-प्रधान होता है तथा अपूर्ण पक्ष व्यापार-प्रधान, यथा—रोगी ने दवा खा ली। वे यहाँ आई थीं। जयशंकर प्रसाद ने कामायनी लिखी है। मैं यह उपन्यास पढ़ चुका हूँ। (पूर्ण पक्ष)। बच्चे स्कूल जा रहे हैं/जा रहे थे/जा रहे होंगे। हम सवेरे प्रार्थना करते हैं। (अपूर्ण पक्ष)।

हिन्दी में अपूर्ण पक्ष की क्रियाएँ व्यापार की आठ दशाओं से सम्बन्धित हैं, यथा—

1. **आरम्भपूर्वत्व**—गाड़ी आने/छूटने (ही) वाली है। चूहा ज्यों ही रोटी खाने को हुआ········। 2. **आरम्भत्व**—गोली खाते ही रोगी सोने लगा। अगले सप्ताह से मुझे पूरी तनख्वाह मिलने लगेगी। 3. **घटमानत्व**—समुद्र में बहुत ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं। लक्ष्मण को परशुराम की बातें से क्रोध आ रहा था। 4. **वर्धमानत्व**—चुपचाप सुनते जाइए। ऐसा तो यहाँ होता ही रहता है/था/रहेगा 5. **वीप्सा**—मैं कभी-कभी पी लिया करता हूँ/था (/करूँगा)। वह अपनी सहेली के साथ हमारे घर आया करती है (/थी)। 6. **अभ्यास**—वे दिन-रात लिखते रहते हैं/थे। जब वे जा चुके होते हैं, तब वह आती है। 7. **नित्यत्व**—सूर्य की तरह पूरा चन्द्रमा भी पूर्व में निकलता है। ध्रुवतारा हमेशा उत्तर में चमकता/रहता है। 8. **स्थिति**—वे डॉक्टर हैं। माँ बीमार है। पूर्ण पक्ष की क्रिया-संरचना है—√+-आ/-ई/-ए/-ईं, यथा—लिखा/लिखी/लिखे/लिखीं, गिरा/गिरी/गिरे/गिरीं। स्वरान्त धातुओं में केवल -आ प्रत्यय जुड़ते समय 'य' का आगम हो जाता है, यथा—खाया/खाई/खाए/खाईं; जा > ग—गया/गई/गए/गईं; जी > जि—जिया/जी/जिए/जीं; पी > पि—पिया/पी/पिए/पीं; रोया/रोई/रोए/रोईं; ले > लि—लिया/ली/लिए/लीं; दे > दि–दिया/दी/दिए/दीं; सेया/सेई/सेए/सेईं; सी > सि—सिया/सी/सिए/सीं; सोया/सोई/सोए/सोईं। 'हो' तथा 'कर' धातु के विशिष्ट रूप हैं—हो > हु—हुआ/हुई/हुए/हुईं'; कर > कि—किया/की/किए/कीं। अपूर्ण पक्ष (आवृत्ति, स्वभाव, सातत्य आदि) का द्योतन √+-ता/-ती/-ते/-तीं (है/था/होगा); √+रहा/रही/रहे+है/हैं/हो/हूँ/था/थी/थे/थीं से होता है।

काल—किसी क्रिया-व्यापार के (पूर्व या अपूर्व) होने या करने में लगनेवाले समय (अवधि) को व्याकरण में काल कहते हैं। यद्यपि समय/अवधि Time का विभाजन अन्य भौतिक पदार्थों की भाँति नहीं हो सकता तथापि मनुष्य अपनी स्मरण

शक्ति तथा वैज्ञानिक उपकरणों (घड़ी आदि), प्राकृतिक उपादानों (सूर्य, चन्द्रमा, तारे) के सहारे काल Tense को तीन वर्गों में बाँटता रहा है—1. वर्तमान, 2. भूत, 3. भविष्य। भाषा-व्यवहार में काल गत्यात्मक घटनाओं के अनुक्रम का बोध है। घटना-अनुक्रम बोध का क्षण प्रतीति बिन्दु कहा जा सकता है। यह प्रतीति बिन्दु वक्ता के कथन के क्षण से जुड़ता है। कथन का वह क्षण वर्तमान है तो अनुभूत (स्मृति के आधार पर) क्षणों का अनुक्रम भूत और प्रत्याशा में क्षणों का सम्भावित अनुक्रम भविष्य कहा जाता है, यथा—

←भाषा प्रयोग/कथन-क्षण→

स्मृत-अनुभूत अनुक्रम	प्रतीति बिन्दु	सम्भावित अनुक्रम
(भूत)	(वर्तमान)	(भविष्य)
वह तैरी	वह तैर रही है	वह तैरेगी

काल का व्याकरणिक अर्थ है—कथन के क्षण से व्यापार अथवा अवस्था के क्षण का सम्बन्ध। यह सम्बन्ध पूर्वकालिकता, अनुक्रमिकता और समकालिकता के रूप में व्यक्त किया जाता है। अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी में भी सिद्धान्ततः काल के तीन भेद लाक्षणिक हैं, जगतिक सत्य नहीं। समय के आधार पर काल के दो ही भेद हैं—भूत, अ-भूत। अ-भूत को वर्तमान तथा भविष्य में बाँटा जा सकता है। हिन्दी में अन्य भाषाओं की भाँति कभी-कभी भविष्य के लिए वर्तमान का प्रयोग होता है, यथा—आज शनिवार है, कल रविवार है (? होगा)। आज की छुट्टी है, कल भी छुट्टी है (? होगी)। हिन्दी में काल-रूपों की विविधता का कारण है उन में पक्ष तथा वृत्ति तत्त्व का भी निहित रहना। इस प्रकार हिन्दी के काल-रूप तिहरा कार्य करते हैं, अर्थात् वे काल-द्योतन के साथ-साथ पक्ष तथा वृत्ति का द्योतन भी करते हैं। केवल कथन के क्षण से सम्बन्धित क्रिया का काल-रूप **निरपेक्ष काल रूप** कहा जाता है और किसी अन्य व्यापार के काल से संबंधित क्रिया-रूप **सापेक्ष काल रूप** कहा जाता है। हिन्दी की समापिका तथा असमापिका क्रियाओं में काल का अस्तित्व रहता है किन्तु सामान्यतः समापिका क्रियापदों के काल-भेद की चर्चा ही प्रमुख रूप से की जाती है। समापिका क्रियापद की संख्या के आधार पर काल-स्वरूप को दो रूपों में देखा जा सकता है—1. **सरल काल/मूल काल** एक दिशात्मक या परिधीय होता है, यथा—राम विनम्र थे। मेरे एक बेटा है। राधा पायलट बनेगी। कमला बाज़ार गई। मैं चाय नहीं पीता। तुम घर जाओ। 2. **संयुक्त काल/पक्षीय काल** सरल काल की परिधि के अन्तर्गत एक बिन्दु होता है, यथा—पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया था/है। मैं संस्कृत पढ़ता था/हूँ। (था/है/हूँ की परिधि के अन्तर्गत-आ/-ता के बिन्दु)। संयुक्त काल की मुख्य क्रिया पक्ष की और सहायक क्रिया वृत्ति की सूचना भी देती है। काल की सूचना दोनों क्रियाओं के संलग्न प्रत्ययों के गुणात्मक सम्बन्ध से मिलती है, यथा—'वह पढ़ा होता····' में -आ (पूर्ण पक्ष भूत,) -ता (प्रतिबन्धात्मक वृत्ति वर्तमान), पढ़ा होता (वर्तमानपूर्वत्व आरोपित

भूतकाल)। हिन्दी कालसूचक धातुएँ तथा प्रत्यय ये हैं—√हो नित्यत्व/सातत्य बोधक→√थ (भूत) √ह (वर्तमान), √-ग (भविष्य), कृत् प्रत्यय -आ (भूत), -ता (वर्तमान), तिङ् प्रत्यय वृत्तिसूचक हैं जो व्यापार को संकेतित करते हैं, व्यापार घटित होने की सूचना नहीं देते। इन्हें वर्तमानोत्तर सूचक कह सकते हैं, यथा—-ऊँ,-एँ,-ए,-ओ,-इए। हिन्दी में भूत, वर्तमान, भविष्य, वर्तमानोत्तर सरल कालों के नामों में अधिक मतभेद नहीं है किन्तु संयुक्त कालों के नामों तथा संख्या में बहुत मतभेद है क्योंकि हिन्दी में काल के साथ पक्ष, वृत्ति जुड़े होने के कारण संयुक्त कालों के नाम और संख्या काल-आधारित, वृत्ति-आधारित, पक्ष-आधारित है।

परम्परागत ढंग से 'काल' के तीन भेद माने जाते हैं क्योंकि व्यक्ति वस्तु जगत् से अपना सम्बन्ध इसी सन्दर्भ में देखता, समझता तथा मानता है—जो बीत चुका है, जो है, जो आगे होने वाला है। क्रिया की अवस्था (पक्ष सहित) के आधार वर्तमान, भूत, भविष्य क्रिया की सामान्य, अपूर्ण और पूर्ण अवस्था से जुड़ कर $3 \times 3 = 9$ काल बनाते हैं, यथा—

काल/अवस्था→ ↓	सामान्य	अपूर्ण	पूर्ण
वर्तमान	1. बच्चा सोता है	4. बच्चा सो रहा है	7. बच्चा सोया है
भूत	2. बच्चा सोया	5. बच्चा सोता था	8. बच्चा सोया था
भविष्य	3. बच्चा सोएगा	6. बच्चा सोता रहेगा	9. बच्चा सो चुकेगा

इन 9 कालों में वाक्य संख्या 4, 6, 9 एक से अधिक क्रिया (संयुक्त क्रिया) वाले हैं। अतः एक ही क्रिया के अवस्था के आधार पर छह काल बनते हैं—1. सामान्य वर्तमान 2. पूर्ण वर्तमान 3. सामान्य भूत 4. अपूर्ण भूत 5. पूर्ण भूत 6. सामान्य भविष्यत्। काल और पक्ष से युक्त क्रिया रूप को एक इकाई मानने से विश्लेषण में जटिलता आती है। इन्हें अलग-अलग रख कर क्रिया-रूप इन घटकों में विभक्त किए जा सकते हैं—1. है 2. था 3. आया 4. आया है 5. आया था 6. आया हो 7. आया होगा 8. आया होता 9. आता 10. आता है 11. आता था 12. आता हो 13. आता होगा 14. आता होता 15. आएगा 16 आए।

क्रिया-वृत्ति (/भाव/अर्थ) की दृष्टि से वर्तमान काल के पाँच भेद माने जाते हैं—1. सामान्य 2. प्रत्यक्ष विधि 3. सम्भाव्य 4. संदिग्ध 5. पूर्ण। इसी आधार पर भूतकाल के आठ भेद माने जाते हैं—1. सामान्य 2. अपूर्ण 3. पूर्ण 4. सम्भाव्य 5. सन्दिग्ध 6. सामान्य संकेत 7. अपूर्ण संकेत 8. पूर्ण संकेत। इसी आधार पर भविष्यकाल के तीन भेद माने जाते हैं—1. सामान्य 2. परोक्ष विधि 3. सम्भाव्य। वृत्ति (/अर्थ/भाव) की दृष्टि से इन काल-भेदों को इन वर्गों में रखा जा सकता है—निश्चयार्थ (6)—1. सामान्य वर्तमान 2. सामान्य भूत 3. सामान्य भविष्यत् 4. अपूर्ण भूत 5. पूर्ण भूत 6. पूर्ण वर्तमान। सन्दिग्धार्थ (2)—1. सन्दिग्ध वर्तमान 2. सन्दिग्ध भूत। सम्भावनार्थ (3)—1. सम्भाव्य वर्तमान 2. सम्भाव्य भूत 3. सम्भाव्य भविष्यत्। संकेतार्थ (3)—1. सामान्य संकेतार्थ 2. पूर्ण संकेतार्थ 3. अपूर्ण संकेतार्थ/आज्ञार्थ (2)—1. प्रत्यक्ष विधि (वर्तमान) 2. परोक्ष विधि (भविष्यत्)। चार्ट में इन काल-भेदों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

काल/वृत्ति ↓ →	निश्चय	विधि	संभावना	संदेह/संदिग्ध	संकेत/शर्त
वर्तमान	1. सामान्य वर्तमान वह सोता है	7. प्रत्यक्ष विधि तुम सोओ	9. सम्भाव्य वर्तमान वह सोता हो	12. संदिग्ध वर्तमान वह सोता होगा	×
	2. पूर्ण वर्तमान वह सोया है	×	×	×	×
भूत	3. सामान्य भूत वह सोया	×	10. सम्भाव्य भूत वह सोया हो	13. संदिग्ध भूत वह सोया होगा	14. सामान्य संकेत वह सोता
	4. अपूर्ण भूत वह सोता था	×	×	×	15. अपूर्व संकेत वह सोता होता
	5. पूर्ण भूत वह सोया था	×	×	×	16. पूर्ण संकेत वह सोया होता
भविष्यत्	6. सामान्य भविष्यत् वह सोएगा	8. परोक्ष विधि तुम सोना	11. सम्भाव्य भविष्यत् सोए वह	×	×

इन 16 कालों में 4 की रचना धातु से मूल धातु में प्रत्यय जोड़ कर हुई है, यथा—1. सम्भाव्य भविष्यत् (√+-ए), 2. सामान्य भविष्यत् (√+-ए+-गा), 3. प्रत्यक्ष विधि (√+-ओ) 4. परोक्ष विधि (√+-ना)। 6 कालों की रचना √+-ता (वर्तमानकालिक कृदन्त रूप) जोड़ कर हुई है, यथा—1. सामान्य संकेतार्थ (√+-ता), 2. सामान्य वर्तमान (√+-ता+-है), 3. अपूर्ण भूत (√+-ता+था), 4. सम्भाव्य वर्तमान (√+-ता+हो), 5. संदिग्ध वर्तमान (√+-ता+होगा), 6. अपूर्ण संकेतार्थ (√+-ता+होता)। 6 कालों की रचना √+-आ (भूतकालिक कृदन्त रूप) जोड़ कर हुई है, यथा—1. सामान्य भूत (√+-आ), 2. पूर्ण वर्तमान (√+-आ+है), 3. पूर्ण भूत (√+-आ+था), 4. सम्भाव्य भूत (√+-आ+हो), 5. संदिग्ध भूत (√+-आ+होगा), 6. पूर्ण संकेत (√+-आ+होता)। <इन कालों के प्रयोग और प्रकार्य के बारे में वाक्य-व्यवस्था अध्याय 22 में लिखा जाएगा)।

क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष—हिन्दी क्रियाओं में दो लिंग (पुल्लिंग, स्त्रीलिंग), दो वचन (एकवचन, बहुवचन), तीन पुरुष (उत्तम/प्रथम, मध्यम/द्वितीय, अन्य/तृतीय) होते हैं। वाक्य में स्त्रीलिंग संज्ञा पद (अभिकर्ता/प्राप्तिकर्ता की वस्तु/निर्विभक्तिक कर्म) होने पर क्रिया स्त्रीलिंग में बदल जाती है, अन्यथा उसका रूप पुल्लिंग ही रहता है, यथा—बच्चा खेलता है→बच्ची खेलती है। नौकर ने कप तोड़ दिया→नौकर ने प्लेट तोड़ दी। श्यामा को इनाम मिला→श्यामा को साड़ी मिली। वाक्य में स्त्रीलिंग संज्ञापद के बहुवचन के साथ क्रियापद में अनुनासिकता जुड़ती है। भूतकाल के वाक्यों के अतिरिक्त पुल्लिंग क्रिया रूप में भी अनुनासिकता आती है। पुल्लिंग बहुवचन की अभिव्यक्ति के लिए क्रियापद (एकवचन) आ→(बहुवचन) ए हो जाता है, यथा—बच्चा तैरा (/था/है/तैरता होता)→बच्चे तैरे (/थे/हैं/तैरते होते)। बच्ची तैरी (/थी/है/तैरती होती)→बच्चियाँ तैरीं (/तैरी थीं/हैं/तैरती होतीं)। लड़का गया (/जाएगा/जाता होगा)→लड़के गए (/जाएँगे/जाते होंगे)। लड़की गई (/जाएगी/जाती होगी)→लड़कियाँ गईं (/जाएँगी/जातीं होंगी)। पुरुष कोटि का क्रियापद पर अनियमित प्रभाव देखने को मिलता है। काल की दृष्टि से यह केवल वर्तमान एवं भविष्य में मिलता है। उत्तम पुरुष एकवचन 'मैं' कर्ता की क्रिया-ऊँ लेती है (यथा—मैं हूँ, मैं बताऊँ), मध्यम पुरुष एकवचन तथा अन्य पुरुष एकवचन 'तू', 'वह' कर्ता की क्रिया -ऐ लेती है (यथा—तू है, वह है), मध्यम पुरुष बहुवचन 'तुम/तुम लोग' कर्ता की क्रिया -ओ लेती है (यथा—तुम हो, क्या तुम लोग सोते हो?), उत्तम पुरुष बहुवचन 'हम/हम लोग', मध्यम पुरुष आदरार्थ 'आप/आप लोग', अन्य पुरुष बहुवचन 'वे/वे लोग' कर्ता की क्रिया -एँ लेती है (यथा—हम/वे/आप पढ़ाते हैं। हम लोग/वे लोग/आप लोग पढ़ाते हैं)

वाच्य—क्रिया-व्यापार किसी-न-किसी प्रकार सम्पन्न हुआ करता है। कभी उस व्यापार की सम्पन्नता का स्पष्ट सम्बन्ध अभिकर्ता/कर्ता से प्रत्यक्षतः दिखाई देता

है (यथा—गाय घास चर रही है), कभी परोक्षतः (यथा—पत्र लिख दिया गया है) और कभी यह संबंध निरपेक्ष रहता है (यथा—यहाँ कैसे बैठा जाए?)। यह सम्बन्ध-बोध क्रिया के 'वाच्य' से होता है, अतः **वाच्य** क्रियापद के उस रूप को कहते हैं जिससे यह ज्ञात हो कि क्रिया-व्यापार की सम्पन्नता (या क्रिया के मुख्य विषय) का सम्बन्ध अभिकर्ता, कर्ता या कर्म में से किस से है या निरपेक्ष है, यथा—नौकर पेड़ काट रहा है। (अभिकर्ता की प्रमुखता), गाड़ी आ रही है। (कर्ता/व्याकरणिक कर्ता की प्रमुखता), (नौकर द्वारा) पेड़ काटा जा रहा है/पेड़ कट रहा है। (कर्म की प्रमुखता), (मुझ से) अब लगातार नहीं बैठा जाता। (क्रिया-व्यापार/भाव की प्रमुखता)।

अँगरेजी Voice ने अनुकरण पर 'वाच्य' की चर्चा करने पर 'भाववाच्य' नामक वाच्य का कोई अस्तित्व नहीं रहता। वाच्य को सही अर्थ में व्याकरणिक कोटि नहीं कहा जा सकता क्योंकि हिन्दी के सभी पूरक वाक्यों में वाच्य-परिवर्तन नहीं होता और कर्ता +को (भोक्ता) की रचनाओं में भी वाच्य-परिवर्तन नहीं मिलता। हिन्दी के सभी वाक्यों को कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य में नहीं बाँटा जा सकता। अस्तित्वसूचक क्रियाओं से युक्त वाक्यों को दबी जुबान ही कर्तृवाच्य कहा जाएगा, यथा—शीला बड़ी भोली बच्ची है। माँ रसोईघर में है। वाच्य को वाक्य-रचना प्रक्रिया के अन्तर्गत विचारणीय तत्त्व माना जा सकता है क्योंकि वाक्य-प्रयोक्ता की दृष्टि में वाक्य-प्रयोग के समय कौन-सा तत्त्व अधिक महत्त्वपूर्ण है, अर्थात् क्रिया-व्यापार को करनेवाला 'कर्ता' या फल को भोगनेवाला 'कर्म' या स्वयं कार्य 'क्रिया'; अतः वाच्य वाक्य-रूपान्तरण का एक प्रकार है न कि शुद्ध व्याकरणिक कोटि। वाच्य में वाक्य-रूपान्तरण की प्रक्रिया पूर्ण पक्षीय कृदन्त +जा से संबंधित है। रूपान्तरण की यह प्रक्रिया भी सभी वाक्यों के साथ सम्भव नहीं है, कुछ विशिष्ट सन्दर्भों में ही ऐसा सम्भव है। इस आधार पर कर्मकर्तृक (/अकर्तृत्व बोधक) वाच्य और असमर्थता बोधक वाच्य माने जा सकते हैं। हिन्दी व्याकरण-परम्परा में कर्ता, कर्म, क्रिया (भाव) की प्रमुखता के आधार पर तीन वाच्य माने जाते रहे हैं—1. कर्तृवाच्य 2. कर्मवाच्य 3. भाववाच्य।

1. **कर्तृवाच्य**—क्रियापद का वह रूप जिस से यह ज्ञात हो कि क्रिया-व्यापार वास्तविक या व्याकरणिक कर्ता से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित है, यथा—हरेन्द्र पुस्तक पढ़ रहा है। पुलिस ने चोर को पकड़ लिया। मकान गिर पड़ा। ऐसे क्रियापदों का वास्तविक कर्ता चेतन, प्राणिवाचक होता है, व्याकरणिक कर्ता अचेतन, अप्राणिवाचक। यद्यपि व्याकरणिक कर्ता में कर्तृत्व-क्षमता (/कार्य व्यापार-सम्पादन प्रतिभा) नहीं होती, तथापि वक्ता उस पर कर्तृत्व-सामर्थ्य का आरोप कर उसे कर्ता के समान प्रयुक्त कर लेता है। कर्तृवाच्य का कर्ता ϕ या ने से युक्त रहता है। इस वाच्य की क्रियाएँ अकर्मक तथा सकर्मक दोनों प्रकार की हो सकती है। क्रियापद-संरचना में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से '-जा' रूप रहता है।

2. **कर्मवाच्य**—क्रियापद का वह रूप जिस से यह ज्ञात हो कि क्रिया-व्यापार वास्तविक कर्ता से परोक्षतः सम्बन्धित है, यथा—कपड़े सिए जा रहे हैं। विवाह की चिट्ठियाँ शीघ्र ही भेज दी जाएँगी। पत्थरों को उतरवा लिया जाए। सभी कर्मचारियों को सूचित किया जाता है कि····। कल तक इस सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी जाए (/जानी चाहिए)। कल फैसला सुना दिया जाएगा। चोरी पकड़ी गई। यहाँ के काफ़ी सैनिक मारे गए। इस वाच्य में वाक्य का केन्द्रीय तत्त्व कर्म होता है तथा क्रिया-व्यापार को कर्म के ऊपर घटित होता दिखाया जाता है। ऐसे वाक्यों में वास्तविक कर्ता अनुपस्थित रहता है। मूल कर्म ही वाक्य का उद्देश्य होता है। कर्मवाच्य का रचना सूत्र है—√सकर्मक+-आ/-ई/-ए+सहायक क्रिया जा।

3. **भाववाच्य**—क्रियापद का वह रूप जिस से यह ज्ञात हो कि क्रिया के कर्ता या कर्म में से कोई भी वाक्य का उद्देश्य नहीं है, यथा—इस तेज़ धूप में कैसे बैठा जाएगा ? बिना बिस्तर के कहीं सोया जा सकता है। यहाँ धीमी आवाज़ में बोलजाए (/जाता है)। गुदगुदे बिस्तरपर अच्छी तरह सोया गया (/जाता है/जाएगा) अब तुम्हीं सोचो तुम्हारी बातों पर हँसा जाए या रोया जाए। कल से प्रतिदिन प्रातः पाँच बजे उठा जाए और टहलने जाया जाए। इस वाच्य में केवल अकर्मक क्रियाएँ ही आती हैं। भाववाच्य का रचना सूत्र है—√अकर्मक+-आ+सहायक क्रिया जा। भाववाच्य के वाक्यों में वाक्य-प्रयोक्ता की दृष्टि क्रिया, उस के भाव पर ही होती है, कर्ता या कर्म पर नहीं।

'बच्चा पलंग पर है। आजकल पिता जी बीमार हैं। मेरा पड़ोसी व्यापारी है। कल काफ़ी गर्मी थी। उस लड़के के हाथ में छह उँगलियाँ हैं। तुम्हें उस घटना के बारे में जानकारी थी। मुझे उस से नफ़रत रहेगी मुझे तुम्हारा उस के घर जाना पसन्द नहीं (है)' जैसे वाक्यों को कुछ लोग कर्तृवाच्य के स्थान पर '**निर्वाच्य**' कहना अधिक उचित मानते हैं किन्तु कर्तृवाच्य की परिभाषा-सीमा में आने के कारण इन्हें कर्तृवाच्य मानना असंगत नहीं है क्योंकि 'कर्तृवाच्य क्रिया का वह रूप है जिस से यह पता चलता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता है।'

परम्परागत लीक से हट कर हिन्दी वाक्यों का वाच्य-विभाजन इस रूप में किया जा सकता है—1. **अकर्तृत्वबोधक (/कर्मकर्तृक) वाच्य**—इस वाच्य में मूल कर्ता का उल्लेख नहीं होता तथा कर्म व्याकरणिक कर्ता के रूप में क्रिया के साथ अन्वित होता है। ऐसे वाक्यों में या तो कर्ता गौण होता है या अज्ञात अथवा अस्पष्ट तथा क्रिया-व्यापार का उल्लेख ही पर्याप्त होता है, यथा—हमारे विद्यालय में प्रति सप्ताह हिन्दी फ़िल्म दिखाई जाती थी। सड़क पर रास्ता रोक दिया गया है। उत्तर प्रदेश के कई नगरों में चीनी बनाई जाती है। व्याकरण की अनेक पुस्तकों में प्रायः इस प्रकार के वाच्य-परिवर्तन के उदाहरण दिए जाते हैं—राम ने रावण मारा→? राम से रावण मारा गया। उन्हों ने खाना खाया→? उन से खाना खाया गया। बच्चों ने कविता सुनाई→? बच्चों से (/द्वारा) कविता सुनाई गई। हिन्दी भाषा-

व्यवहार की व्यवस्था तथा सन्दर्भ की दृष्टि से ये तीनों परिवर्तित वाक्य अग्राह्य हैं। इस प्रकार के वाक्यों में मूल कर्ता का उल्लेख नहीं हुआ करता और व्यवहार में वाक्यों का यह रूप प्रयुक्त होता है—रावण मारा गया। खाना खाया गया। कविता सुनाई गई।

कार्यालयों के क्रिया-व्यापार वैयक्तिक न हो कर संस्थागत होने के कारण पत्र-व्यवहार में अकर्तृत्वबोधक वाच्य का प्रयोग अधिक मिलता है, यथा—इस कार्यालय से आप को भेजे गए दिनांक 8 के पत्र की अनुवृत्ति में……। आप को दुबारा सूचना दी जा रही है कि……। सभी कर्मचारियों को सूचित किया जाता है कि बढ़ा हुआ वेतन/भत्ता इस माह की 5 तारीख़ को दिया जाएगा। कुछ सन्दर्भों में अभिकरण (Agency) का उल्लेख ज़रूरी होता है, यथा—इस निगम द्वारा आरम्भ की गई पहली चार परियोजनाएँ……। लोकसभा-स्पीकर द्वारा ज़ारी की गई विशिष्ट सूचना……। प्रधानाचार्य द्वारा उठाए गए अनुशासनात्मक क़दम का कॉलेज मैनेजर ने……। ऐसे प्रयोग सामान्य भाषा में प्रयुक्त नहीं होते। 'आप के द्वारा आपत्ति किए जाने पर……; पड़ोसी की लड़की द्वारा चप्पल से पिटाई किए जाने पर उस ने……' वाक्यांशों को इस प्रकार व्यवहृत किया जाता है—'आप के आपत्ति करने पर……; पड़ोसी की लड़की से चप्पलों से पिटने पर/पिट कर उस ने……'। अकर्तृत्वबोधक वाक्य 'कि' उपवाक्य में रूपांतरित होने पर दोनों उपवाक्य +जा वाच्य में आते हैं, यथा—कार्यशाला 14 अगस्त को रखने का निश्चय किया गया है→यह निश्चय किया गया है कि कार्यशाला 14 अगस्त को रखी जाए/हो/*रखें। मुझ से कुछ महीने और मैसूर में रुकने को कहा गया था→मुझ से कहा गया था कि मैं कुछ महीने और रुकूँ (इस वाक्य में अभिकर्ता उपस्थित होने के कारण दूसरा उपवाक्य +-जा वाच्य में नहीं है)

तथ्येतर कार्य-व्यापारों की क्रिया संभावनार्थ में आती है तथा कर्ता परोक्ष में रहता है, यथा—आइए, यहाँ थोड़ी देर बैठा जाए। आज कोई अँगरेज़ी फ़िल्म देखी जाए। अगर पत्र मिल गया होता तो ऐसी गलतफ़हमी न होती। कर्ता का प्रयोग होने पर वाक्य की रचना दूसरे प्रकार से होती है, यथा—लिखे जाने पर→उन के लिखने पर; पीटे जाने के कारण→उस के पिटने के कारण; पूछे जाने के बाद→तुम्हारे पूछने के बाद; दिया गया काम……→आप ने जो काम दिया था, वह……; इतने परिश्रम से बनाई गई मिठाई→तुम ने इतने परिश्रम से जो मिठाई बनाई थी……; केवल पूछे गए प्रश्न का ही उत्तर मुझे चाहिए→मैं ने जो प्रश्न पूछा है केवल उसी का उत्तर चाहिए। प्रत्यक्ष निषेध के अकर्तृक वाच्य के कुछ वाक्य हैं—(मछली) ऐसे नहीं पकड़ी जाती। (चने का साग) ऐसे नहीं काटा जाता। तुम्हारी तरह नहीं पूछा जाता।

अकर्तृत्वसूचक वाक्यों की संरचना तीन प्रकार की होती है—1. √+-आ+√जा, यथा—यह तय किया गया है कि……; चलिए, कहीं पार्क में बैठ कर

मूँगफलियाँ चबाई जाएँ। इस संरचना को कुछ लोग 'सही' वाच्य कहते हैं। 2. कर्ता के उल्लेख के बिना कर्मवाचक वाक्यों की क्रिया अकर्मक रखी जाने पर 'मिथ्यावाच्य' (Pseudo-passive) कहलाता है, यथा—खिड़की खुली (खिड़की खोली गई), पेड़ कटा (पेड़ कट गया), रसगुल्ले नहीं बने (रसगुल्ले नहीं बन सके/बन पाए/बनाए गए)। +जा के सन्दर्भ में कार्य करनेवाले किसी-न-किसी व्यक्ति का अस्तित्व स्वीकार करना ही पड़ता है। 'टूट' के साथ करणकर्ता का प्रयोग होता है, यथा—नौकर से केतली टूट गई। उन से ग़लती से दो गिलास टूट गए। हिन्दी में 'खाना, पीना, लिखना, पढ़ना, देखना, भेजना, ख़रीदना' आदि क्रियाओं के अकर्मक रूप नहीं मिलते। इसलिए +जा वाच्य व्यापक है और मिथ्यावाच्य सीमित होता है। 3. वाच्य के समान एक अकर्तृत्वसूचक वाक्य संरचना का प्रयोग आजकल कुछ कम हो गया है, यथा—सुनने में आया है (=सुना गया है), देखने में आता है (=देखा जाता है), कुछ कहने में नहीं आ रहा है (=कुछ कहा नहीं जा रहा है)। इन के साथ 'मेरे/हमारे/तुम्हारे/उस के' आदि रूपवाले कर्ता का उल्लेख भी किया जा सकता है, यथा—ऐसी घटना मेरे सुनने में तो अब तक नहीं आई।

2. **असमर्थता सूचक वाच्य** में √+-आ+ जा के साथ कर्ता (+से+नहीं) का उल्लेख रहता है तथा कार्य की अक्षमता की सूचना मिलती है। असमर्थता बोधन में दो संरचनाएँ आ सकती हैं—यह बिस्तर मुझ से नहीं बँध रहा है/बाँधा जा रहा है। क्या वह ताला तुमसे भी नहीं खुला/खोला गया ? अम्मा जी से अब चला नहीं जा रहा है। ऐसा खाना बच्चों से नहीं खाया जाएगा। असमर्थतासूचक वाच्य में संभावनार्थ क्रिया नहीं आती, अतः विधि, सुझाव, कामना या आशंका व्यक्त करने वाली रचनाएँ नहीं आतीं। असामर्थ्य की सूचना के लिए 'सक, पा' का भी प्रयोग किया जाता है, यथा—बच्चे न जाग सकें/पाएँ तो अच्छा रहे। ऐसा न हो कि पिता जी लौट ही न सकें/पाएँ।

कारक तथा क्रिया-अनुकूलता—सन्दर्भ के अनुरूप कभी परसर्ग क्रियापद के रूप को नियन्त्रित करते हैं, यथा—'ने' क्रियापद को सकर्मक तथा पूर्ण पक्ष (भूत) में रहने के लिए नियन्त्रित करता है (यथा—तुम ने आज कुछ नहीं खाया है); कभी क्रियापद परसर्ग को नियन्त्रित करते हैं, यथा—'चाहिए' क्रियापद 'कर्ता+को' के रूप में नियन्त्रित करता है (यथा—मुझे आज ही पैसे चाहिए)। क्रिया तथा कारक अनुकूलता को नियमन/अभिशासन (Government) भी कहते हैं। (इस विषय पर वाक्य व्यवस्था भाग में अध्याय 22 'वाक्य सार्थकता' में विस्तार से लिखा जाएगा)।

अन्विति अथवा प्रयोग—'अन्विति' में वाक्य और पदबन्ध के विभिन्न घटकों के मध्य अन्तरपदबन्धीय तथा अन्तर्पदबन्धीय अनुकूलन पाया जाता है, यथा—'अच्छा बच्चा' में विशेषक (अच्छा) और विशेष्य (बच्चा) के मध्य अन्तर्पदबन्धीय अनुकूलन है। यह अनुकूलन दोनों में समान कोटि (लिंग, वचन) का है। 'बच्चा गिर गया'

में कर्ता पदबन्ध (बच्चा) और क्रिया पदबन्ध (गिर गया) के मध्य अन्तरपदबन्धीय अनुकूलन है। यह अनुकूलन दोनों में समान कोटि (लिंग, वचन) का है। अन्विति को अनेक व्याकरणों में 'प्रयोग' कहा गया है। प्रयोग को किसी-किसी व्याकरण में वाच्य कह दिया गया है और किसी में उसे वाच्य के साथ जोड़ दिया गया है। (अन्विति का क्षेत्र पदबन्ध तथा वाक्य से संबंधित होने के कारण इस पर वाक्य व्यवस्था भाग में अध्याय 26 'वाक्य विन्यास' में विस्तार से लिखा जाएगा।)

कृदन्त—क्रिया के जिन रूपों का उपयोग दूसरे शब्द-भेदों के समान होता है, उन्हें कृदन्त (कृत्+अन्त) कहते हैं, यथा—टहलना (संज्ञावत्), दौड़ता खरगोश (विशेषणवत्), सोच कर (क्रियाविशेषणवत्), मारे, लिए (सम्वन्ध सूचकवत्)। क्रिया-धातु में कुछ प्रत्यय जोड़ कर क्रिया-व्यापार आभासी जो संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण तथा संबंधसूचकवत् शब्द बनते हैं, उन्हें 'कृदन्त' कहते हैं। धातु में जुड़नेवाले प्रत्यय 'कृत्' प्रत्यय कहलाते हैं, यथा—कतरनी, जलन, उड़ान, पहचान, बहाव, अनुसरण, अनुगमन (संज्ञा), पढ़ता हुआ, किया हुआ, चलती, बढ़ता (विशेषण) जाते-जाते, करते हुए, चल कर (क्रियाविशेषण), मारे, लिए (संबंधसूचक)।

कृदन्त-भेद—नौ प्रकार के कृदन्तों के दो मुख्य वर्ग हैं—1. विकारी कृदन्त (1. नामार्थक कृदन्त 2. कर्तृवाचक कृदन्त 3. वर्तमानकालिक कृदन्त 4. भूतकालिक कृदन्त) 2. अविकारी कृदन्त (1. तात्कालिक कृदन्त 2. मध्यकालिक कृदन्त 3. पूर्वकालिक कृदन्त 4. पूर्ण कृदन्त 5. अपूर्ण कृदन्त)।

1. **नामार्थक कृदन्त**—इसे प्रायः क्रियार्थक संज्ञा या उत्तरकालिक संज्ञा कहा जाता रहा है। वास्तव में यह नामार्थक क्रिया है। धातु के बाद -ना/-नी/-ने जोड़कर नामार्थक या संज्ञार्थक कृदन्त की रचना होती है। सम्बोधन के अतिरिक्त नामार्थक कृदन्त का प्रयोग ऋजु, तिर्यक् कारक में हो सकता है, यथा—सवेरे टहलना स्वास्थ्यप्रद है। अकेले जाने में मुझे डर लगता है। नामार्थक कृदन्त का सामान्य रूप $\sqrt{}$+-ना (पुल्लिग, एकवचन) 'क्रिया का साधारण रूप' है। क्रिया का साधारण रूप 'क्रिया' नहीं होता। विधि/आज्ञा के अतिरिक्त इस का प्रयोग संज्ञा (भाववाचक) वत् होता है। नामार्थक कृदन्त का प्रयोग विशेषण के समान होने पर उस का रूप उस की पूर्ति या कर्म (विशेष्य) के लिंग, वचन के अनुसार बदलता है, यथा—तुम्हें मेरी परीक्षा लेनी हो तो ले लो। वनयुवतियों की छवि रनिवास की स्त्रियों में मिलनी दुर्लभ है।

नामार्थक कृदन्त का प्रयोग संयुक्त क्रिया के रूप में 'चाहना, पड़ना, होना, चाहिए' के साथ होता है, यथा—वह जाना चाहती थी; ऐसा सुनना पड़ता है/था/होगा। बात सुननी चाहिए। संज्ञा, विशेषण, क्रिया के रूप में नामार्थक कृदन्त के प्रयोग इस प्रकार हो सकते हैं—संज्ञावत् प्रयोग—दौड़ना अच्छा है/था/होगा/रहेगा।

दौड़ने से शक्ति बढ़ती है/बढ़ेगी। दौड़ने में मज़ा आता है। दौड़ने की बात मत करो। विशेषणवत् प्रयोग—मुझे चिट्ठी लिखनी थी। हमें ये पुस्तकें पढ़नी थीं। आप को कई पत्र लिखने हैं। क्रियावत् प्रयोग—दौड़ना चाहिए/चाहिए था। दौड़ना पड़ा। दौड़ने लगा। वहाँ दौड़ना। नामार्थक कृदन्त में क्रिया का आभास भी रहने के कारण उस का कर्म भी आ सकता है, यथा—यह लड़का गणित समझने में बहुत होशियार है। वह गीत गाने में पटु है।

नामार्थक कृदन्त संज्ञा शब्दों की भाँति प्रयुक्त हो सकते हैं, यथा—मैं लड्डू (/जाना) चाहता हूँ। मुझे अभी मिठाई (/जाना) चाहिए। मुझे बुखार (/जाना) है। मुझे रबड़ी (/टहलना) पसन्द है। कर्ता के साथ परसर्ग आने पर सकर्मक क्रिया की अन्विति कर्म के अनुसार होने के नियम के आधार पर नामार्थक कृदन्त का रूप बदलता है, यथा—मुझे पत्र लिखना है (/ था/चाहिए/पड़ेगा/होगा)। तुम्हें साड़ी धोनी है (/थी/चाहिए/पड़ेगी/होगी)। अन्यत्र पुल्लिग एकवचन रूप आता है, यथा—बारिश होना शुरू हो गया। तुम्हें अँगरेज़ी बोलना आता है। उसे तस्वीर बनाना पसन्द है। मैं फ़िल्म देखना चाहता हूँ। 'खाना, गाना, गोदना' वस्तु, व्यापार (दोनों) के सूचक हैं, अतः ये शब्द एकसाथ कर्म, क्रिया बन कर आते हैं' यथा—खाना खाना, गाना गाना, गोदना गोदना। तुम्हारे पढ़ने से क्या लाभ ? (नामार्थक कृदन्तीय रूप—क्रियाप्रधान), तुम्हारे गाने से क्या लाभ ? (नामार्थक कृदन्तीय रूप—क्रिया एवं संज्ञा रूप समान स्तरीय-गाना/गीत)। तुम्हें खाना मिला या नहीं। (मात्र संज्ञा)। कथनी < कथन, करनी < करना, होनी < होना, मँगनी < माँगना, भरनी < भरना, मनमानी < मानना, छननी < छानना, चलनी < चालना, धौंकनी < धौंकना, कतरनी < कतरना, ओढ़नी < ओढ़ना जैसे शब्द नामार्थक कृदन्त से बने स्त्रीलिग संज्ञा शब्दों के रूप में प्रचलित हैं, यथा—जैसी करनी वैसी भरनी।

2. **कर्तृवाचक कृदन्त**—√-ने+वाला/वाली/वाले अर्थात् नामार्थक कृदन्त के विकारी रूप में 'वाला' जोड़ कर कर्तृवाचक कृदन्त की रचना की जाती है। इस कृदन्त रूप से कर्तृवाचक संज्ञा बनती है तथा कर्ता (कार्य करनेवाले) की सूचना मिलती है, यथा—पाँच किलो रबड़ी खानेवाला (आदमी) रात मर गया। मंच पर नाचनेवाली (लड़की) आ रही है। पत्र पानेवाले (अपने रिश्तेदार) का पता बोलो। पकड़ो, भागनेवालों को पकड़ो। 'आदमी, लड़की, अपने रिश्तेदार' के साथ आने पर ये कृदन्त 'विशेषण' का काम भी कर रहे हैं, अकेले आने पर कर्ता का। है/हैं/हूँ/हो/था/थी/थे/थीं के साथ आने पर इस से आसन्न भविष्य (भविष्य कालिक कृदन्त विशेषण) की सूचना मिलती है, यथा—मैं आप से यही पूछनेवाली थी। मैं आप से यही पूछने ही वाली थी। गाड़ी आने वाली है। गाड़ी आने ही वाली है। बच्चे आज आनेवाले हैं।

3. **वर्तमानकालिक कृदन्त**—√+-ता/-ती/-ते की रचनावाले इन कृदन्तों को 'घटमान कृदन्त' भी कहते हैं। इन के साथ हुआ/हुई/हुए भी जुड़ सकते हैं। इन

कृदन्तों का प्रयोग विशेषण तथा संज्ञा के रूप में होता है, यथा—बहता (/बहता हुआ) पानी; चलती (/चलती हुई) गाड़ी; उड़ते (/उड़ते हुए) पक्षी; रमता जोगी बहता पानी। ढलती उम्र में शादी ! । दौड़ते घोड़ों की लगाम खींच कर रखना । डूबते को तिनके का सहारा । मरता क्या न करता । भागतों के पीछे क्या भागना ! सहायक क्रियाओं के योग से ये मुख्य क्रिया का काम करते हैं, यथा—बच्चा चलता है (/था/होगा/रहा/रहेगा/रहता था) ।

4. **भूतकालिक कृदन्त**—√+-आ/-ई/-ए की रचनावाले इन कृदन्तों को 'घटित कृदन्त' भी कहते हैं । इन के साथ हुआ/हुई/हुए भी जुड़ सकते हैं । इन कृदन्तों का प्रयोग विशेषण तथा संज्ञा के रूप में होता है, यथा—बीता (हुआ) समय; पका (हुआ) फल; पके (हुए) फल; सड़ी (हुई) लकड़ी । मुरझाए (पौधे) में खाद और सूखे में पानी दो। ये तो पढ़े-लिखों की बातें हैं । मरे को मारे शाहे मदार । मूल अकर्मक धातु से निर्मित भूतकालिक कृदन्त विशेषण कर्तृवाच्य के होते हैं, यथा—डूबा हुआ बच्चा; बढ़े हुए पत्ते; खिले हुए फूल; आया हुआ माल । सकर्मक धातु से निर्मित भूतकालिक कृदन्त विशेषण कर्मवाच्य के होते हैं, यथा—लगाया हुआ पौधा; बेचे हुए कपड़े; बनाई हुई तस्वीर (/ लगाया गया पौधा; बेचे गए कपड़े; बनाई गई तस्वीर) । -आ/-ई/-ए/-ओ से अन्त होनेवाली धातु में भूतकालिक कृदन्त प्रत्यय -आ जुड़ने पर 'य' श्रुति का आगम हो जाता है, यथा—ला-लाया, खा-खाया, कहला-कहलाया, पी-पिया, जी-जिया, सी-सिया, खे-खेया, से-सेया, बो-बोया, रो-रोया, डुबो-डुबोया । -ई/-ए जुड़ने पर 'य' श्रुति का आगम नहीं होता, यथा—लाई, लाए, खाई, खाए, कहलाई, कहलाए, पी, पिए, जी, जिए, सी, सिए, खेई, खेए, सेई, सेए, बोई, बोए, रोई, रोए, डुबोई, डुबोए । 'हो, कर, जा, दे, ले' के रूप विशिष्ट हैं—हुआ, हुई, हुए; किया, की, किए; गया, गई, गए; दिया, दी, दिए; लिया, ली, लिए ।

5. **तात्कालिक कृदन्त**—√+-ते ही की रचनावाले इन कृदन्तों से कृदन्तीय क्रिया के समाप्ति के क्षणों के साथ ही मुख्य क्रिया का होना सूचित होता है, यथा—वे आते ही कहने लगे । चाकू लगते ही वह मर गया । तात्कालिक कृदन्त क्रियाविशेषण की भाँति काम करते हैं, कभी-कभी तात्कालिक कृदन्त तथा मुख्य क्रिया के लक्ष्य/कार्य में भिन्नता भी हो सकती है, यथा—सूरज निकलते ही सूरजमुखी खिल उठती है । अध्यापक के आते ही छात्र खड़े हो जाते हैं । तात्कालिक कृदन्त को क्रियाविशेषणार्थक कृदन्त भी कह सकते हैं ।

6. **मध्यकालिक कृदन्त**—√+-ते अथवा √+-ए (अर्थात् अपूर्ण या पूर्ण कृदन्त) की द्विरुक्ति से बना कृदन्तीय रूप । इस कृदन्त से सूचित क्रिया के होने के मध्य में ही मुख्य क्रिया के हो जाने/सकने की सूचना मिल जाती है, यथा—तुम (तो) बैठे-बैठे (ही) सो लिए । तुम मुझे सारी घटना चलते-चलते सुना सकते थे (/हो) । इस कृदन्त से नित्यता, अतिशयता की सूचना मिलती है, यथा—मैं तो यहाँ बैठे-बैठे थक गया । इतना सारा बोझा लादे-लादे और कितना चलना पड़ेगा ?

7. **पूर्वकालिक कृदन्त**—√+कर की रचनावाले इन कृदन्तों से मुख्य क्रिया से पूर्व कृदन्तीय क्रिया के होने या किए जाने की सूचना मिलती है, यथा—अब यहाँ चुपचाप बैठ कर कहानी सुनो। जो कुछ कहना चाहते हो सोच कर कहो। बच्चे केवल दो-दो पूड़ियाँ खा कर गए हैं। √ कर के साथ 'के' का योग होता है, यथा—काम पूरा कर के ही आराम करूँगा। कभी केवल धातु से ही पूर्वकालिक कृदन्त का काम लिया जाता है, यथा—वह बेचारी ससुराल छोड़ कहाँ जा सकती थी? तौलिया मेरे हाथ में थमा (/पकड़ा) नौकर न जाने कहाँ गुम हो गया? जब पूर्वकालिक कृदन्त की द्विरुक्ति (समानार्थी दो धातुओं की भी) होती है, तब 'कर' केवल उत्तर पद में ही जुड़ता है, यथा—मैं तुम्हें पानी पी-पी कर कोसूँगी। यह सब सोच-सोच कर तो मेरा दम निकला जा रहा है। अच्छा अब खा-पी कर सो जाओ। पूर्वकालिक कृदन्त क्रियाविशेषण का कार्य करता है, यथा—चिलमची यार किस के, दम लगा के (/कर) खिस के। दो घूँट पानी पी कर वह आगे बढ़ गया। मैं अभी उन से जा कर पूछती हूँ। आओ, दौड़ कर आओ।

कभी-कभी पूर्वकालिक कृदन्त का लक्ष्य मुख्य क्रिया से भिन्न भी हो सकता है, यथा—अभी दस बज कर पच्चीस मिनट ही हुए हैं। पंचारिष्ट से पाचन क्रिया दुरुस्त हो कर स्वास्थ्य-वृद्धि होती है। इस काम में खर्च काट कर काफी बचत होने की सम्भावना है। पूर्वकालिक कृदन्त के कुछ विशिष्ट प्रयोग हैं—मोटर दिल्ली (से) हो कर जाएगी। दो-दो कर के बैठते जाओ। वहाँ से ले कर यहाँ तक एक भी दरख्त दिखाई नहीं दिया। हमारे लिए तुम से बढ़ कर कौन है? विशेष कर (के) तुम्हारी इसी अदा पर हम फ़िदा हैं।

वर्तमान तथा भूतकाल की भाँति 'पूर्वकाल' नाम की कोई काल-व्यवस्था नहीं होती। इस दृष्टि से यह परम्परागत नाम सही नहीं कहा जा सकता। क्रिया-व्यापार के पूर्व घटित होने के आधार पर इसे 'पूर्वघटित कृदन्त' कहना उचित रहेगा।

8. **पूर्ण कृदन्त**—√+-ए की रचनावाले इन कृदन्तों से प्रायः मुख्य क्रिया के साथ होनेवाले व्यापार की पूर्णता का बोध होता है। यह कृदन्त सदैव क्रिया विशेषण का काम करता है, यथा—वे हाथों में मशाल लिये जा रहे थे। दिन चढ़े जाना ठीक रहेगा। इतनी रात गए कहाँ गई थीं? तेरे कहे क्या होगा? इस घटना को घटे कई साल गुज़र गए। आज तेरी मरम्मत के लिए लगता है माँ कमर कसे बैठी है। पूर्ण कृदन्त के साथ कभी-कभी 'हुए' भी जोड़ा जाता है, यथा—मालिक नौकर के सिर पर टोकरा रखवाए हुए जा रहा था।

9. **अपूर्ण कृदन्त**—√+-ते की रचनावाले इन कृदन्तों से प्रायः मुख्य क्रिया के साथ होनेवाले व्यापार की अपूर्णता का बोध होता है, यथा—पराया माल पचाते उसे ज़रा भी झिझक नहीं लगी। आज मुझे घर लौटते देर हो सकती है। हम ने सैकड़ों बगुलों को एक पंक्ति में उड़ते देखा। यहाँ तुम्हें रास्ता चलते कष्ट होने

की कोई संभावना नहीं है। कुछ लोग अँधेरे में घूमते गाँव के पास देखे गए हैं।

(कृदन्तों के प्रयोग वैशिष्ट्य पर वाक्य व्यवस्था भाग के 'वाक्य विन्यास' अध्याय 26 में लिखा जाएगा)।

कुछ विशिष्ट धातुओं के प्रयोग तथा अर्थ छाया-भेद—हिन्दी की कुछ विशिष्ट धातुओं की प्रयोग-आवृत्ति अन्य धातुओं की अपेक्षा अधिक है। इन धातुओं के विविध प्रयोग होने से उन मे विविध अर्थ छाया-भेद भी प्राप्त हैं। यहाँ अकारादि क्रम से ऐसी कुछ धातुओं के प्रयोग तथा अर्थ छाया-भेद के बारे में लिखा जा रहा है—

1. √आ—(1) वक्ता या उल्लिखित स्थान की ओर गति। उद्गम स्थान के साथ 'से' तथा गन्तव्य स्थान के साथ 'तक' या ϕ का प्रयोग, यथा—क्या तुम बाज़ार मे आ रहे हो ? मैं मन्दिर से यहाँ तक पाँच मिनट में आ गया। (2) कौशल जानने के सन्दर्भ में कर्ता (ज्ञाता) के साथ 'को' का प्रयोग, यथा—क्या आप को अँगरेज़ी आती है ? उन्हें तैरना नहीं आता। यहाँ आना=जानना का सूचक है, यथा—क्या आप अँगरेज़ी जानते हैं ? वे तैरना नहीं जानते। इस अर्थ में इस के 'आया, आ रहा है, आएगा' रूपों का प्रयोग नहीं होता। किसी का विवरण जानने के अर्थ में केवल 'मालूम, जानना' का प्रयोग होता है, यथा—क्या आप को उस का पता मालूम है ?/ क्या आप उस का पता जानते हैं ? (3) शारीरिक तथा मानसिक उद्वेग एवं क्रिया-व्यापार के संदर्भ में कर्ता (भोक्ता) के साथ 'को' का प्रयोग, यथा—बच्चे को नींद (/खाँसी/उलटी/मितली/उबकाई/सुस्ती/टट्टी/जँभाई/हँसी) आ रही है। बच्चे को बुख़ार (/ज्वर/पेशाब/गुस्सा/प्यार/क्रोध) आ रहा है। उस समय मुझे तुम्हारी बात (/सीख/नसीहत/चीज़) याद आई। क्या आप को मेरी यह कविता पसन्द नहीं आई ? (4) फ़िट होने के सन्दर्भ में कर्ता (भोक्ता) के साथ 'को' का प्रयोग होता है, यथा—पहन कर देखो, तुम्हें यह ब्लाउज़ (/कुर्ता/पाजामा/लँहगा/गरारा/सरारा/कच्छा) फ़िट/ठीक आएगा। 'अटना' के सन्दर्भ में पात्र के साथ 'में' का प्रयोग होता है, यथा—इस डिब्बे में दो किलो दूध (/घी/गुड़/नमक/तेल/पानी) नहीं आ सकता। (5) 'मूल्य से प्राप्त' होने के सन्दर्भ में मूल्य के साथ 'में' का प्रयोग होता है, यथा—आजकल रुपये का एक केला आता है, कभी-कभी दो आ जाते हैं। एक लीटर मिट्टी का तेल चार रुपये में आ रहा था। (6) काल/स्थान-गति के सन्दर्भ में, यथा—रजाई भरवा लो, जाड़े आ रहे हैं। लो, बातों-बातों में स्टेशन भी आ गया (=हम स्टेशन पहुँच गए)। (7) होने/पैदा होने/विकसित होने के सन्दर्भ में, यथा—गुलाब में ढेर सारे फूल आ रहे हैं। इस वर्ष खूब तरबूज़-खरबूज़ आएँगे। पाँच वर्ष में ही बेटी तुम्हारे कंधों तक आ गई। रंजक क्रिया के रूप में 'आ' से दो प्रकार का रंजकत्व व्यक्त होता है—(1) धीमी गति में/धीरे से प्रवाह या गति की सूचना, यथा—बादल घिर आए। घटाएँ झुक आईं। उस की आँखें भर आईं। उन के दिल में प्यार उमड़ आया। (2) वक्ता या उल्लिखित वस्तु की दिशा में कार्य होने की सूचना, यथा—

तुम यहाँ फिर आ धमके। मिठाई छिपा लो, चील आ झपटेगी। यह कमबख्त इस समय कहाँ से आ टपका।

2. √कह—(1) सकर्मक तथा 'ने' युक्त 'कह' सामान्यतः अँगरेज़ी say का समानार्थी है, यथा—क्या इस विषय में आप कुछ कहना चाहते हैं? तुम ने अभी-अभी कुछ कहा था। (2) सम्बद्ध व्यक्ति/श्रोता के साथ 'से' आता है, यथा—उन से कहो। साहब से कहना कि······ (3) पुनः कथन, यथा—उन्हों ने कहा है कि······ (4) बताना, यथा—सच-सच कहो। कसम से कहता हूँ मैं ने पैसे नहीं चुराए।

3. √चल—(1) चेतन प्राणियों का चलने के अवयवों से गतिमान होना, यथा—हम पैरों से चलते हैं। कुम्भ के मेले में एक साधु हाथों के बल चल रहा था। कछुआ धीरे-धीरे चलता है किन्तु शुतरमुर्ग तेज़ चलता है। (पैर-हीन/पैरों की अस्पष्ट गतिवाले प्राणियों के चलने के लिए अलग-अलग शब्द हैं, यथा—चिड़ियों का उड़ना/फुदकना; चीटियों/साँपों/केंचुओं आदि का रेंगना; मछलियों का तैरना)। जिज्ञासा के सन्दर्भ में, यथा—क्या साँप भी चलता है? चिड़ियाँ ज़मीन पर कैसे चलती हैं? (2) चलनेवाले पुर्ज़ों की मशीनों के लिए, यथा—बिजली ही नहीं है तो पंखा (/कूलर/रेडियो/टीवी/इंजन) कैसे चलेगा? भारतीय रेल के इंजन कोयला/डीज़ल/बिजली से चलते हैं। ऊँटगाड़ी बहुत धीरे-धीरे चलती है। (3) अप्राणिवाचक पदार्थों में गति-कल्पना करने पर, यथा—हवा चल रही है। पहाड़ भी चल सकता है क्या? नल चल रहा है, बन्द कर दो। (4) गति के आरम्भ होने का बोधन, यथा—तीन बजे के सिनेमा के लिए ठीक ढाई बजे चलेंगे। सीटी बजते ही गाड़ी चलेगी (/चल देगी/चल पड़ेगी/चल दी)। (5) वक्ता और श्रोता के मध्य साथ जाने के प्रसंग में, यथा—मैं (/वह) भी आप के साथ सिनेमा चलूँगा (/चलेगा)। चलो, कहीं चाय पी जाए। (6) किसी संस्था/संगठन में सम्मिलित होना, यथा—तुम यह नौकरी छोड़ कर सेना में क्यों नहीं चले जाते (/ भर्ती हो जाते)? हम दोनों दिनेश की शादी में जा रहे हैं, क्या तुम भी चलोगे (/आओगे/जाओगे)? (7) किसी कार्य-व्यापार की अवधि-सूचना, यथा—ईरान-इराक़ में आठ वर्ष तक लड़ाई चली। हमारे यहाँ शोले फ़िल्म पूरे एक साल चली थी। नाच-गाना रात के दो बजे तक चला (/चला था/चलता रहा/चलता रहा था/चलता रहेगा)। (8) -ता कृदन्त युत क्रियाओं के साथ निरन्तरतासूचक, यथा—सुनते चलो (/जाओ); देखते चलिए (/जाइए); बढ़ते चलो (/जाओ); करते चलो (/जाओ); (9) किसी साधन/माध्यम का किसी कार्य के लिए लगभग उपयुक्त होना, यथा—भाई, इस समय मेरे पास पाँच सौ रुपये तो नहीं हैं, तीन सौ हैं; क्या इन से तुम्हारा काम चल जाएगा? हाँ, किसी-न-किसी प्रकार चल ही जाएगा। दो चम्मच घी से कैसे चलेगा? (अर्थात् यह काफ़ी नहीं है)। (10) कुछ मुहावरेदार प्रयोग—मेरे सामने तेरी एक नहीं चलेगी। सूती कपड़ों की अपेक्षा नाइलोन के कपड़े ज्यादा चलते हैं। तुम्हें मेरे

साथ ऐसी चाल नहीं चलनी चाहिए थी। बम्बई का फैशन दूसरे शहरों में चलता है। भारत में रुपया चलता है, पौंड या डॉलर नहीं।

4. √**चाह**—(1) कर्म की उपस्थिति में 'चाह, चाहिए' कुछ सीमा तक समानार्थी हैं, यथा—हमें खूब गर्म कॉफ़ी चाहिए (/हम खूब गर्म कॉफ़ी चाहते हैं)। 'चाहिए' आवश्यकता/अनिवार्यता का सूचक है, 'चाह' इच्छा का। अनिवार्यता, इच्छा में अन्तर-मात्रा कम होने पर दोनों का विकल्प से प्रयोग सम्भव है। (2) 'है' के अतिरिक्त अन्य सभी सहायक क्रियाओं का 'चाहिए' के साथ प्रयोग, यथा—चाहिए था (/होगा/हो/होता/होता है)। इन में 'था' की आवृत्ति सब से अधिक है, होता, अन्य की काफ़ी कम। 'उन्हें आराम करना चाहिए—वे आराम करना चाहते हैं।' में क्रमशः अनिवार्यता; इच्छा या आवश्यकता की ध्वनि है। (3) नामार्थक क्रिया कर्म के साथ अन्वित होती है, यथा—सभी छात्रों को कड़ी मेहनत करनी चाहिए—(सभी छात्र कड़ी मेहनत करना चाहते हैं)। कर्म की अनुपस्थिति में नामार्थक क्रिया सदैव पुल्लिग, एकवचन में, यथा—अब हमें सोना चाहिए—अब हम सोना चाहते हैं। (4) चाहिए से पूर्व नामार्थक क्रिया होने पर केवल सहायक क्रिया 'था' का प्रयोग, यथा—उन्हें अब तक आ जाना चाहिए (/चाहिए था/*हो/*होगा/*होता)। (5) 'चाह' विकारी है किन्तु 'चाहिए' अविकारी। (6) कुछ लोग भ्रम/अल्पज्ञान या व्यक्ति बोली के प्रभाव से 'चाहिएँ' उच्चारण करते हैं। (7) (व्याकरणिक) कर्ता मनुष्येतर प्राणी या अप्राणी हो तो कर्ता में '-ए/को' नहीं जुड़ता, यथा—इतनी देर हो गई, गाड़ी आ जानी चाहिए थी (········भेड़ें आ जानी चाहिए थीं) (8) 'चाहिए' के प्रयोग में अर्थवैविध्य, यथा—(क) ये गिट्टियाँ यहाँ से हट जानी चाहिए। (अनिवार्यता); (ख) फ़सल सूख रही है, अब तो बारिश होनी ही चाहिए। (कामना); (ग) उस कलमुँहे का तो सत्यानाश ही हो जाना चाहिए। (दुष्कामना); (घ) यह कपड़ा अवश्य ही टिकाऊ होना चाहिए। (अनुमान) (9) व्यक्ति के नियन्त्रण से बाहर के व्यापार कामना-सूचक होते हैं, 'है' के रूपान्तरवाला वाक्य अनुमान-सूचक माना जा सकता है, यथा—कपड़ों से तो उसे किसी बड़े घर का होना चाहिए→कपड़ों से तो वह किसी बड़े घर का है। (10) 'चाहिए' के मूल तथा रूपान्तरित समानार्थी वाक्य अनिवार्यतासूचक, चेतनकर्ता युक्त होते हैं। (11) 'कि' युक्त उपवाक्य की क्रिया संभावनार्थी होती है और दोनों उपवाक्यों का कर्ता समान होता है, यथा—उसे उस समय बोलना नहीं चाहिए था—उसे चाहिए था कि वह उस समय न बोलता।

5. √**चुक**—(1) वृत्तिसूचक (modal) क्रिया 'लग, सक' के समान; कार्य-समाप्ति (किए जा चुके या हो चुके कार्य) की सूचना का बोधक, यथा—वे खाना खा चुके हैं (=उन्हों ने खाना खा लिया है)। मैं उन्हें पत्र लिख चुका हूँ (=मैं ने उन्हें पत्र लिख दिया है); सब मेहमान जा चुके हैं (=सब मेहमान चले गए हैं)। (2) वांछित क्रिया तथा क्रिया-समाप्ति हेतु यत्नपूर्वक प्रयास के सन्दर्भ में ही, यथा—आप की कमीज़ सिल चुकी थी) (=आप की कमीज़ सिल गई थी) किन्तु *आप की कमीज़

फट चुकी थी। (3) चुका था=कर लिया था; हम ने कल ही तार भेज दिया था—हम कल ही तार भेज चुके हैं/थे। चुका हो=कर लिया हो; शायद उन्हों ने खाना बना लिया हो—शायद वे खाना बना चुके हों। चुका होगा=कर लिया होगा; बारिश बन्द हो चुकी होगी और सब लोग जा चुके होंगे—बारिश बन्द हो गई होगी और सब लोग चले गए होंगे। चुका होता=कर लिया होता; वह जा चुकी होती तो हमें सूचना मिल गई होती। (4) जब तुम चित्र पूरा कर चुकोगे (/चुके होगे), तब मैं आऊँगी। यही हालत रही तो कल तक रोगी मर चुकेगा (/लेगा/जाएगा)। जब तक दमकल पहुँचेगी, तब तक तो दो-चार घर स्वाहा हो चुकेंगे। जब तक तुम बाज़ार से लौटोगे, तब तक मैं घर का सारा काम समाप्त कर चुकूँगी। (5) मुहावरेदार प्रयोग, यथा—इस महँगाई की मार से हम टूट चुके हैं। (6) 'नहीं' के अर्थ में मुहावरेदार प्रयोग (व्याकरणिक कर्ता क्रिया के बाद)—तुम जा रहे हो बाज़ार, तब तो आ चुकी सब्ज़ी और बन चुका खाना (अर्थात् सब्ज़ी नहीं आ पाएगी और खाना नहीं बन पाएगा)। (7) 'चुक' के असम्भव प्रयोग—रंजक क्रियाओं के साथ*कर ले चुका था;*भेज दे चुका हूँ; *चले जा चुके थे। 'रहा' के साथ *चुक रहा है/था। कृदन्त रूप *चुकते-चुकते; *चुके-चुके। इच्छा, विधि *वे चाहते थे कि हम काम कर चुकें। *तुम खाना खा चुको। 'नहीं' के साथ *छात्र काम नहीं कर चुका है। (छात्र काम कर चुका है। छात्र ने काम ख़त्म/समाप्त/पूरा कर लिया है—छात्र ने काम ख़त्म/समाप्त/पूरा नहीं किया है)। 'ने' के साथ *सब ने खाना खा चुके थे। (8) जब सब लोग खा चुकें, तब मुझे बता देगा। क्या सब लोग खा चुके? (किन्तु क्या सब लोग आ चुके/सो चुके नहीं)। 'चुकेगा' की आवृत्ति बहुत कम तथा सन्देहास्पद।

6. √**जम**—(1) केवल दही/आइसक्रीम आदि जमने या ज़माने में जमना-जमाना का साम्य है, अन्यत्र दोनों भिन्न-भिन्न हैं, यथा—मैं ने उस को दो घूँसे जमा दिए। यह सूट तुम पर खूब जम रहा है। आज जम कर बारिश हुई है। कई दिनों बाद आज मैं ने जम कर खाया है। कल भी आज जैसी ही महफ़िल जमेगी। (2) मुहावरेदार प्रयोग—रंग जमना/जमाना; खून जमना/जमाना; रोब जमना/जमाना; धाक जमना/जमाना; काम जमना/जमाना। (3) कृदन्त रूप—जमा दही; जमी बर्फ़; जमा खून; जमा पानी।

7. √**जा**—(1) एक स्थान से दूसरे स्थान तथा पहुँचने के लिए गति युक्त क्रिया, यथा—मैं बंगलौर जा रहा हूँ। वे आगरा गए थे। (पूर्ण पक्ष)। तुम इन दिनों कहाँ जाया करते हो? (निरन्तरता)। अब सब बच्चे अपने-अपने घर चले जाएँ (रंजक)। (2) रंजक एवं वाच्य के रूप में, यथा—किया/देखा/बैठा/पढ़ा/लिखा जाना; मुझ से नहीं वहाँ जाया जाता। (3) 'बिना' के साथ 'गए' का अधिक प्रचलन, 'जाए' भी कभी-कभी प्राप्त यथा—तुम से मना किया था, लेकिन तुम वहाँ गए बिना माने नहीं। तुम से कितना ही मना क्यों न किया जाए, तुम वहाँ गए (/जाए) बिना मानोगे थोड़े ही। (4) यौगिक/संयुक्त क्रिया-रचना में सामान्य क्रिया 'जाना' से पूर्व

की धातु में प्रायः 'कर' का लोप, यथा—वे अपनी पुस्तकें ले गए (/ले कर गए)। आप मेरी यह सूचना उन्हें दे जाना (/दे कर जाना)। सब लोग अपने पते रजिस्टर में लिख जाएँ (/लिख कर जाएँ) (5) रंजक क्रिया 'जाना' से पूर्व 'कर' की गुंजाइश नहीं, यथा—क्या आप को राशन की चीनी मिल गई। (/* मिल कर गई)। (6) रंजक क्रिया के रूप में प्रायः अकर्मक क्रियाओं के साथ प्रयोग, यथा—आँधी आ गई। बिजली चली गई। (7) रंजक क्रिया के रूप में उन स्थलों पर प्रयुक्त जहाँ पूर्वज्ञान/पूर्व सूचना सम्बन्धी बात का उल्लेख (/के उल्लेख की सम्भावना) हो, यथा —लो, बारिश शुरू हो गई। क्या सब लोग आ गए हैं? क्या तुम्हें वेतन मिल गया? पंजाब में आतंकवादियों की गोली से पन्द्रह किसान मर गए और कई घायल हो गए। हमारा क़ीमती सेट टूट गया। जब हमारे घर में आग लगी थी तब सारा ही सामान जल गया था (/*जला/* जला था)। पाँच वर्ष के बाद बच्चों को अधिक पोषण की आवश्यकता होती है (/* हो जाती है)। उचित पोषण न मिलने पर बच्चों का विकास रुक जाता है (/* रुकता है)। (8) सकर्मक क्रियाओं के साथ रंजक क्रिया के रूप में 'खा लेना, पी लेना, दे देना' आदि के व्यतिरेक में, यथा—कड़वी है तो क्या हुआ, आँखें बन्द कर एक ही घूंट में पी जाओ (/पी लो-का व्यवहार कम)। माँ-माँ, हरीश ने तुम्हारी दवा पी ली (/हरीश तुम्हारी दवा पी गया—स्थानीय प्रयोग)। कल की भयंकर बाढ़ सैकड़ों वृक्ष गिरा गई (/बाढ़ ने·······गिरा दिए—कम प्रयुक्त) भूखा बच्चा चार ही कौर में पूरी रोटी खा गया (/भूखे बच्चे ने········खा ली—कम प्रयुक्त)। क्या आप के पड़ौसी यह मकान छोड़ गए/खाली कर गए?

8. **√ठहर (√रुक, √रह)**—(1) 'ठहरना' कहीं अस्थायी रूप से रहना/इन्तज़ार में रुकना, यथा—क्या आप मद्रास में होटल में ठहरेंगे? तुम लोग यहीं ठहरो, मैं अन्दर देखता हूँ। (2) 'रुकना' किसी कार्य के मध्य उसे निलम्बित कर क्रियाहीन हो जाना, यथा—रुक जाओ, भागो मत; नहीं तो गोली मार दूँगा। कहते-कहते बीच में ही रुक क्यों गई? कन्याकुमारी पहुँचने से पूर्व हम बंगलौर, मैसूर, कोल्लम और तिरुवनन्तपुरम् (में) रुके थे। अब रात में कहाँ जाएँगे, यहीं रुकिए; हमारे यहाँ ही ठहरिए। (3) 'रहना' (=निवास), यथा—हम आगरा में रहते हैं। तुम श्रीनगर में कितने वर्षों (/दिनों) से रह रहे हो? (4) 'रहना' से अस्थायी उपस्थिति की सूचना, यथा—मेले में अपने भाई के साथ ही रहना। मैं एक दिन ही दिल्ली (में) रुकूँगा, दूसरे दिन आगरा पहुँचूंगा/जाऊँगा। (5) कुछ प्रसंगों में तीनों की परस्पर स्थानापत्ति भी, यथा—दीमापुर आओ तो हमारे घर ही रहना/ठहरना/रुकना। अरे भाई, ज़रा रुको/ठहरो। कोल्लम में हम डॉ० एन० आई० नारायणन् के घर रुके/ठहरे/रहे। (6) सामान्यतः धर्मशाला/होटल में ठहरना; चलते हुए पंखे/इंजन/मशीन/व्यक्ति को रोकना; होते हुए या किए जाते हुए काम को बीच में ही रोकना।

9. **√डाल**—(1) किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाना/रखना/फेंकना, यथा—लॉन में दो कुर्सियाँ और एक मेज़ डाल दो। बिस्तर में खटमल

हैं, इसे यहाँ से नीचे डाल दो । तुम ने मेरी टाई उधर क्यों डाल दी ? (2) किसी वस्तु में कोई वस्तु जोड़ना, यथा—दूध में ज्यादा पानी मत डालना । इस सब्जी में क्या-क्या डाला है ? मटर का अचार कैसे डाला जाता है ? (3) किसी जगह कोई चीज़ जोड़ना, यथा—उस ने मेरे कुर्ते पर रंग डाल दिया । छत पर मिट्टी डलवानी है । (4) किसी व्यक्ति को प्रभावित करना, यथा—व्यर्थ में ही अपना रोब मत डाला करो । बेचारे पर (काम का/पैसों का) इतना बोझ मत डालो । (5) रंजक क्रिया के रूप में 'जान-बूझ कर कार्य करना', यथा—कर डालो; धो डाला; बना डालूँ; लिख डाली आदि ।

10. √त्याग—(<त्याग=कुरबानी, >त्यागी) । (1) बहुधा रंजक क्रिया 'देना' के साथ महानता के गुण के बोधक रूप में प्रयुक्त, यथा—अब उस ने शराब पीना (पीने का दुर्गुण) त्याग दिया है । बुद्ध ने भरी जवानी में अपना गृह-संसार त्याग दिया था । (2) 'त्याग करना' में महानता की भावना का अभाव, यथा—मल त्याग करना (=मल का त्याग करना) ।

11. √दे—(1) द्विकर्मक क्रिया के साथ; 'मुख्य कर्म' (देय वस्तु/प्राणी) तथा 'गौण कर्म' (प्राप्तक/अनुभवकर्ता), यथा—बच्चों को रुपया (/घड़ी/मिठाई/धोखा/प्यार/शिक्षा/उपदेश/पिल्ले/कबूतर आदि) देना । माँ को बच्चा (/बच्ची/बच्चे) देना । (2) प्राप्तिकर्ता के स्थान पर स्थल/विचार का आना, यथा—किसी बात (/विचार/सिद्धान्त) पर बल देना । किसी बात (/दृश्य) पर ध्यान देना । (3) रंजक क्रिया के रूप में किसी अन्य के लिए (पूर्वज्ञात किसी) किए गए कार्य का द्योतन, यथा—तुम ने पिता जी को मनीऑर्डर भेज दिया ? आतंकवादियों ने कई बस यात्रियों को मार दिया । उन्होंने अपना मकान बेच दिया (/किराये पर उठा दिया) । नौकरानी ने कूड़े के साथ घड़ी भी बाहर फेंक दी थी । बेटे, टी०वी० बन्द कर दिया है न ? (4) अकर्मक क्रियाओं के साथ 'पड़ना' के समान आकस्मिकता-सूचक, यथा—वे मेरी सही बात पर भी हँस दिए (/उठ कर चल दिए/मुस्करा दिए) । अरे, तुम क्यों रो दिए ? (5) '-ने देना' में कार्य करने की अनुमति, यथा—उन्हें इधर मत आने देना (/उधर जाने देना) । कल मुझे भी तो कहने (/करने/खाने/बोलने) देना । (6) '-ने दो' में व्यापार की प्रतीक्षा करने/कार्य की अनुमति देने/परवाह न करने की भावना, यथा—अभी जाड़े तो आने दो । चलेंगे, पहले बस तो आने दो । बारिश होने दो तब देखना कितने केंचुए निकलते हैं । अरे भाई, जाने भी दो, क्यों झगड़ा बढ़ाते हो ? (7) मुहावरेदार प्रयोग, यथा—बाहर बैठा क्या अंडा (/बच्चा) दे रहा है ? क्या तुम अन्त तक मेरा साथ दोगी ? अरी, वह तो मुझ पर जान देता था । मसले (/मामले/कार्य/योजना) को प्रमुखता (प्रधानता/विस्तार/तरजीह/प्रमुखता) देना । काम के लिए समय देना और पत्र का उत्तर जल्दी देना ।

12. √पड़—(1) अप्रत्याशित तथा आकस्मिक व्यापार सूचक रंजक क्रिया, यथा—आ पड़ना, गिर पड़ना, टपक पड़ना, फिसल पड़ना आदि । (2) अपेक्षित व्यापार सूचक, यथा—उतर पड़ना, चल पड़ना, निकल पड़ना । (3) तीव्र प्रति-

क्रियात्मक व्यापार सूचक, यथा—टूट पड़ना, पिल पड़ना, बरस पड़ना (ये तीनों मुहावरेदार प्रयोग हैं)। (4) मुहावरेदार प्रयोग, यथा—गाल पर एक ऐसा चाँटा पड़ेगा कि·······। लोगों पर काम का काफ़ी बोझ पड़ रहा है। बीमार पड़ना; असर/प्रभाव पड़ना; फीका पड़ना; दौरे पर दौरा पड़ना; गर्मी/सर्दी/ठंड/पानी पड़ना। (5) रंजक क्रिया 'जा' के साथ, यथा—डकैती की बात सुनते ही उस का चेहरा फक पड़ गया। दावत में सब्ज़ी कम पड़ गई थी। (6) पूर्ण पक्षीय कृदन्त रूप, यथा—बच्ची धूप में पड़ी हुई है। बच्ची पड़ी-पड़ी सो गई। उधर किस के पैसे पड़े (हुए) हैं? (7) लागत/मूल्य/दाम/समय की सूचना मुहावरेदार प्रयोग में, यथा—ऑफ़िस की यह कुर्सी कितने में पड़ी है? एक थ्री पीस सूट कुल मिला कर कितने में पड़ सकता है? होली किस तारीख़ को पड़ेगी? रक्षाबन्धन किस दिन पड़ेगा? अगले रविवार को कौन-सी तिथि (/तारीख़) पड़ेगी? (8) कुछ अन्य मुहावरेदार प्रयोग, यथा—(किसी से किसी का कुछ/कोई) काम पड़ना; (किसी का किसी से) पाला पड़ना; (किसी का किसी के) पीछे पड़ना। जो मन में आए करो, मुझे क्या पड़ी है?

13. √पा—(1) 'नहीं' के साथ रंजक क्रियारूप, यथा—दर्द के मारे रोगी रात भर सो नहीं पाया (/सका)। 'रहा' के साथ, यथा—मुँह में छाले होने के कारण वह बोल नहीं पा रहा है। 'सक, चुक' की भाँति विधि, सम्भावना में प्रयोग नहीं। (2) तात्कालिक, अनुभूत, वास्तविक व्यापारों के सन्दर्भ में अक्षमता/असमर्थतासूचन, यथा—लाख कोशिश करने पर भी तुम मुझ से आगे नहीं निकल पाओगे (/सकोगे)। आप के घर आना तो चाहता था, किन्तु आ नहीं पाया (/सका)। ठंड के कारण वे सबेरे जल्दी उठ नहीं पाते (/सकते)। अरे, उसे सहारा दे कर उठाओ, बेचारी उठ नहीं पा रही है (*सक)। (3) 'पा' में कर्ता का इच्छापूर्वक प्रयत्न, यथा—चाहते हुए भी मैं एक किलो दूध पी नहीं पाता (/सकता)। इस में से आधी ले जाओ, इतनी मिठाई मैं नहीं खा पाऊँगा (/सकूँगा)। (4) कुछ वांछित व्यापारों के साथ 'पा, सक' का समान प्रयोग, यथा—वे बीमार हैं, बोल नहीं पाएँगे (/सकेंगे)। बस समय पर नहीं पहुँच पाई (/सकी)। मैं सोच नहीं पा (*सक) रहा हूँ कि अब आगे क्या करना चाहिए? (5) कुछ सीमित क्रियाओं के-ने रूप के साथ, यथा—रोके रखना, जाने/निकलने/भागने/सोने न पाए (*जाने न पाओगे,*करने नहीं पाया—जा न पाओगे/पाया; कर नहीं पाओगे/पाया)। (6) मूल क्रिया के कर्ता के साथ 'ने' प्रयोग, यथा—हम ने इन 42 वर्षों में क्या खोया, क्या पाया, यह समय ही बताएगा। (*हम ने अपने गाँव का विकास भी नहीं कर पाया। *तुम ने अभी तक यह मैगज़ीन नहीं पढ़ पाई)

14. √बता—बात > बता। (1) कोई सूचना/जानकारी देना, यथा—तुम अपना नाम, पता और काम बताओ। आप ने अपना पता नहीं बताया। आज मेरी सहेली ने अपनी टीचर के बारे में एक बड़ी मजेदार बात बताई। (उस ने कहानी/

कविता सुनाई, न कि*बताई) (2) बताई गई बात/सूचना की ओर संकेत, यथा—पिता जी ने बताया था कि······· । सच-सच बताओ। आप अभी-अभी क्या बता (/बोल/कह) रहे थे। बताइए (/कहिए) क्या हाल-चाल हैं? बताओ (/बोलो) घड़ी कहाँ गिरा दी। (3) श्रोता/कर्म के साथ 'को', यथा—बच्चे ने सब को बता दिया। कुछ हमें भी तो बताइए। (बोलियों; बम्बई और हैदराबाद में बताना 'दिखाना' के अर्थ में प्रयुक्त, यथा—मेरे साथ चलकर ज़रा उन का घर बता दो। अपना लाइसेन्स बताओ। अरे, वे चूड़ियाँ बताना।)

15. √**बन**—(1) 'बनाना' का अकर्मक तथा कर्मकर्तृक (/अकर्तृबोधक) रूप, यथा—माँ ने हलुआ बनाया→हलुआ बनाया गया→हलुआ बन गया। क्या खाना बन गया? सड़क के लिए पुल बन रहा है। अगले वर्ष उन का पोता डॉक्टर बन जाएगा। (2) सुन्दर बनना, यथा—बन-ठन कर; बन सँवर कर; बनाव शृंगार। (3) एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित होना, यथा—अब तो वह अच्छा (/होशियार/विद्वान्/सीधा-सच्चा/ईमानदार) बन गया है। (4) दुश्मनी/मतभेद/अनबन के अर्थ में, यथा—इन दिनों पड़ोसिनों (/पति-पत्नी) में एक पल को भी नहीं बनती। मेरी उस से कभी नहीं बनी। (5) असामर्थ्यसूचन, यथा—तुम से इतना-सा काम भी करते नहीं बना (/बनता/बन रहा है/बनेगा)। 'करते' की भाँति 'कहते/खाते/पीते/बोलते' आदि के साथ। (6) मुहावरेदार प्रयोग, यथा—उल्लू बनना (/बुद्धू/मूर्ख/बेवकूफ़ बनना); बनी-बनाई बात; बात यों बनी।

16. √**बोल**—(1) मुँह खोल कर उच्चारण करने का भौतिक व्यापार, यथा—बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ बोलती (/करती) है। तुम बहुत ज़ोर से बोलते हो। सच बोलो। (जड़ वस्तुएँ सामान्यत: आवाज़ करती हैं, बोलती नहीं, यथा—घड़ी टिक-टिक करती है और किवाड़ें चिर-चिर करती हैं)। (2) भाषण देने के सन्दर्भ में, यथा—आज की सभा में कौन-कौन बोलेंगे? वे इस विषय पर कुछ बोलना (/कहना) चाहते हैं। (3) कर्म होने पर 'ने' का (विकल्प से) प्रयोग, यथा—तुम ने फिर झूठ बोला (/तुम फिर झूठ बोले)। कल अध्यापिका ने बहुत कठिन श्रुतलेख बोला था (/लिखवाया था)। जैसे मैं ने 'ढ़' बोला है, वैसे ही तुम बोलने (/उच्चारण करने) की चेष्टा करो। (4) 'ने-रहित' प्रयोग, यथा—कल मैं हिन्दी में बोला (/बोलूँगा)। (5) बोलना व्यापार मात्र, श्रोता अनिवार्य नहीं, यथा—वह कुछ-न-कुछ बोलता ही रहता है। बाहर किसी के बोलने की आवाज़ आ रही है। जब वे बोलते (/बताते) हैं तब······· । (दिल्ली, हैदराबाद आदि कुछ स्थानों पर लोग 'कहना, बताना' को लगभग प्रत्येक सन्दर्भ में बोलना से स्थानापन्न कर देते हैं।)

17. √**मना**—(1) त्योहार आदि खुशी के कार्यक्रमों का आयोजन, यथा—होली (/दीवाली/दशहरा/स्वतन्त्रता दिवस/गणतन्त्र दिवस/दो अक्टूबर/ईद/ओणम्/बड़ा दिन/उत्सव/खुशियाँ आदि) मनाना (/मनाया जाना) (/मनना कम प्रचलित)। (2) रूठे हुए को प्रसन्न/खुश करना, यथा—अब उन्हें मना भी लाओ, कब तक रूठी

रहोगी ? मैं उन्हें कैसे मनाऊँ ? (मान जाना=मान छोड़ना), अरे, अब मान भी जाओ, बेचारी कितनी देर से मना रही है। (मान करना के अर्थ में 'मान जाना' अप्रचलित)। (3) किसी को अपनी बात मनवाने का प्रयास, यथा—क्या तुम उस से अपनी बात भी नहीं मनवा सकतीं ? वे कभी तो मना लेते हैं, और कभी नहीं मनाते।

18. √**मान**—(1) बात/कहना मानना के अर्थ में रंजक क्रियारूप 'मान जाना/मान लेना', यथा—वे कभी तो मान जाते (/लेते) हैं और कभी नहीं मानते। लो, अब तो मैं मान गई। मैं ने तो कल ही तुम्हारा कहना मान लिया था। (2) रूठना छोड़ना, यथा—क्या वह अब मान (/मन) गया ? (3) धर्म/मनौती/मनसा, यथा—क्वारी लड़कियां गौरा-पार्वती से मनौती मानती हैं। आप किस धर्म को मानते हैं ?

19. √**माप**, (नाप, तोल, गिन)—(1) परिमाणवाले (प्रायः द्रव) पदार्थ की मात्रा का पता लगाना 'मापना'; दूरी/लम्बाई आदि की मात्रा का पता लगाना 'नापना'; ठोस (कभी-कभी द्रव) पदार्थ की मात्रा का पता लगाना 'तोलना' और गण-नीय पदार्थों की संख्या का पता लगाना 'नापना', यथा—कितने लीटर/गैलन तेल (माप) दूँ ? कितने किलो चीनी (/घी/तेल) तोलूँ ? इस कमरे की लम्बाई मीटर (/गज़) में नाप लो। इंच/फुट/मीटर/किलो-मीटर/गज़/मील से लम्बाई या दूरी नापते हैं। थर्मामीटर/बिरोमीटर से गर्मी/हवा का दबाव मापते/नापते हैं। (2) मुहावरेदार प्रयोग, यथा—वे नपी-तुली (=बहुत सोच-समझ कर आवश्यक) बातें करने में विश्वास करते हैं।

20.√**मार**—(1) हाथ/हथियार आदि से किसी (के शरीर) पर आघात करना, यथा—दीदी ने मुझे (चाँटा/घूँसा/थप्पड़/बेंत/डंडा/पत्थर) मारा। मुझे क्यों मारते हो, मैं ने कुछ नहीं चुराया (/कोई गाली नहीं दी)। (2) (जान से) मार डालना/देना (=हत्या करना) रंजक रूप, यथा—आतंकवादी रोज़ ही दो-चार को मार देते (/डालते) हैं। तुम ने उसे तड़पा-तड़पा (-कुढ़ा-कुढ़ा-भूखों/प्यासा) मार डाला (/दिया)। अब मैं तुम्हें मार ही दूँगा (-डालूँगा), जिन्दा नहीं छोड़ सकता। (3) कुछ विशेष प्रयोग, यथा—धक्का मारना (=धक्का लगाना/देना); ज़ोर मारना (=शक्ति लगाना/तीव्रता से कार्य करना); आँख मारना (=एक आँख से किसी प्रकार का गुप्त संकेत करना)। (4) 'नहीं' के साथ रंजक क्रिया का प्रयोग न होने के कारण सन्दर्भ से ही 'मारना' का अर्थ स्पष्ट होना सम्भव, यथा—मुझे किसी ने नहीं मारा, मैं गिर गई थी। उन्हें शायद डाकुओं ने नहीं, किसी और ने मारा होगा। नहीं, मैं ने नहीं, तुम्हें इस ने (धक्का) मारा है। (5) मारना का प्रेरणार्थक मरवाना, मराना, यथा—सेठ उसे अपने गुंडों से मरवाए बिना नहीं मानेगा (=सेठ के गुंडे उसे मारे बिना नहीं मानेंगे)। (गुदा-योनि) 'मराना' केवल गाली के रूप में ही

प्रयुक्त, यथा=तुम साले (-साली) किस-किस से मराते (-मराती) रहते (-रहती) हो।

21. √मिल=(1) दाता-प्रदाता के उल्लेख के बिना प्राप्ति-अप्राप्ति की सूचना; प्राप्तकर्ता के साथ 'को' का प्रयोग, यथा—क्या कल (हमें/हम लोगों को) वेतन मिलेगा (/मिलने वाला है)? तुम्हें कभी समय पर कोई चीज़ मिलती है! क्या आप को आज यहाँ आने की फ़ुर्सत मिल गई? (2) श्रम, साधना से अर्जन 'पाना' कहीं-कहीं मिलना का स्थानापन्न, यथा—जब तुम्हें काम से फ़ुर्सत मिल जाए (/जब तुम काम से फ़ुर्सत पा जाओ) तब........। किन्तु 'काम से फ़ुर्सत पा कर (/पाने के बाद)........के स्थान पर *काम से फ़ुर्सत मिल कर (/'मिलने के बाद' प्रयोज्य)। वेतन (मिलने) का दिन (*पाने)। उसे बड़ी दौड़-धूप के बाद यह नौकरी मिली है (/उस ने........पाई है)। जैसा दोगे (/बोओगे) वैसा पाओगे (/मिलेगा/काटोगे)। (3) (कर्ता तथा सहकर्ता के) पारस्परिक व्यापार की क्रिया, यथा—जब मैं उन से पहली बार होटल में मिली........(=जब मैं और वे पहली बार होटल में एक-दूसरे से मिले)। मैं तो आप से घर पर ही मिलना चाहता था लेकिन आप मुझ से घर पर मिलना ही नहीं चाहते थे। (4) केवल कर्ता की ओर से सक्रियता होना, यथा—रास्ते में मुझे तुम्हारे पिता जी मिले थे। मेले में तुम्हें कौन मिला था? (5) साम्य/समानता होना, यथा—बच्चे की शक्ल तो इस के बाबा से मिलती है। हेमा मालिनी का चेहरा श्रीदेवी के चेहरे से मिलता (-जुलता) है। (6) दो वस्तुओं का योग/संयोजन, यथा—इस दूध में तो बहुत पानी मिला हुआ है। पीला और लाल रंग मिल कर नारंगी रंग बन जाते हैं। (7) मुहावरेदार प्रयोग, यथा—मन मिलना; मिल कर काम करना; मिल-जुल कर रहना; मिली भगत, मिलनसार आदि।

22. √लग—(1) मानसिक/शारीरिक संवेदना (/उद्वेग) प्रकट होने के समय अनुभवकर्ता के साथ 'को,' यथा—बच्चे को भूख (/प्यास/ठंड/गर्मी/शर्म/चिन्ता) लग (/चिन्ता हो) रही है। उन्हें घर में ख़ून देख कर डर/आश्चर्य लगा (-आश्चर्य हुआ)। परेशानी, अफ़सोस के साथ केवल 'हो' (ना)। गुस्सा/शर्म आना प्रयोज्य; गुस्सा लगा अप्रयोज्य 'वह गुस्सा हुआ' क्षेत्रीय प्रयोग। (2) 'अनुभव होना' अर्थ कर्म, कर्म पूरक के साथ, यथा—तुम्हें तो सभी (लोग) बुद्धू (/मूर्ख/होशियार/चालाक/बदमाश/ईमानदार/बेईमान/बेचैन/परेशान/निष्ठावान्/परिश्रमी) लगते हैं। क्या मैं इन कपड़ों में भी (तुम्हें) अच्छी (/सुन्दर/कुरूप/बदसूरत/आकर्षक/अनाकर्षक/भद्दी) लग रही हूँ? बताओ, यह घड़ी तुम्हें कैसी लगती है? (3) मुहावरेदार प्रयोग, यथा—बुरा/अच्छा/बढ़िया लगना। वह दृश्य देख कर कुछ अच्छा नहीं लगा। (4) अनुभव तथा अनुमान का व्यतिरेक, यथा—मुझे यह कॉफ़ी ज़्यादा मीठी लगती है→मुझे लगता है कि यह कॉफ़ी ज़्यादा मीठी है (/होगी)। क्या तुम्हें वह पागल लगता है→क्या तुम्हें लगता है कि वह पागल है (/होगा)? मुझे इस तरह की पत्रिकाएँ अच्छी नहीं लगतीं। → मुझे

लगता है कि इस तरह की पत्रिकाएँ अच्छी नहीं होतीं (/हुआ करतीं/होंगी)। (मुझे) लगता है (कि) आज नौकरानी नहीं आएगी। (5) लगना/लगाया जाना 'लगाना' का अकर्मक रूप, यथा—आगरा नगर महापालिका उन दिनों सुभाष पार्क में बहुत-से पेड़ लगा रही थी→(आगरा नगर महापालिका द्वारा) उन दिनों सुभाष पार्क में बहुत--से पेड़ लगाए जा रहे थे उन दिनों सुभाष पार्क में बहुत-से पेड़ लग रहे थे। चलिए, खाना लग गया है। अरे भाई, अभी तक कुर्सी-मेज़ भी नहीं लगीं? क्या सभी लोग अपने-अपने काम पर लग गए। उस ने अपनी पत्नी के सब गहने बेच कर व्यापार में लगा दिए। (6) मुहावरेदार प्रयोग, यथा—दिल/मन लगना; ज़ोर लगना; दाँव लगना; मुँह लगना, हाथ लगना आदि। (7) मुख्य क्रिया के रूप में, यथा—उन दिनों मुझे पान खाने की (बुरी) लत लग गई थी। मौक़ा लगा तो हम फिर मिलेंगे। देखो, गुलाब में कितने फूल लगे हैं। लिखते-लिखते बेचारे की आँख लग गई (मुहावरेदार प्रयोग)। (8) किसी वस्तु का किसी अन्य में जा लगना, यथा—क्या उँगली में ब्लेड लग गया? मुझे उस की एकही बात लग (/चुभ) गई। भूल से नौकर को गोली लग गई। (9) किसी क्रिया-व्यापार, धन्धे आदि में समय आदि का व्यय होना, यथा—आगरा से दिल्ली पहुँचने में 2½-3 घंटे लगते हैं। इतना खाना बनाने (/बनवाने) में कितना पैसा लगेगा? अच्छी कहानी लिखने में बहुत श्रम तथा समय लगता है। इस काम को अपनी पूरी शक्ति लगा कर करना। अन्य स्थलों पर लगाना अप्रचलित/अप्रयोज्य। (10) वृत्तिसूचक क्रिया के रूप में कार्य-आरम्भ की सूचना, यथा—बच्चे खेलने/रोने/सोने/गाने/डरने/नाचने लगे (=बच्चों ने खेलना/………शुरू किया)। (11) 'नहीं; रहा, निरन्तरता सूचक कृदन्त, रंजक क्रिया-योग के रूप में अप्रयोज्य, यथा—* वह सोने लग रहा है। *वह गाने नहीं लगी। कभी-कभी विधि के रूप में प्रयुक्त, यथा—उस की देखा-देखी तुम भी रोने लगो (=रोना शुरू कर दो)। (12) लगना का सकर्मक रूप 'लगाना' का कुछ सन्दर्भों में प्रयोग, यथा—सब लोगों को काम पर लगा दो। इस कोठी को बनवाने में कितना (पैसा) लगा दिया? (13) कुछ मुहावरेदार प्रयोग, यथा—आस लगाना, घात लगाना; जान लगाना; ज़ोर लगाना; दाँव/बाज़ी लगाना; दिल/मन लगाना; मुँह लगाना; हाथ लगाना आदि।

23. **ललचा**—(1) लालच > ललचा (ना) नाम धातु अकर्मक रूप, यथा—कुछ खट्टा (/चटपटा/मीठा/तीखा/नमकीन) खाने के लिए मेरा (/बहू का) जी ललचा रहा है। 'क्यों बच्चे को ललचा रहे हो?' कम प्रचलित प्रयोग। ललचा > ललच (ना) अत्यल्प प्रयुक्त रूप।

24. **√ले**—(1) कहीं-कहीं देना का विपरीतार्थी, द्विकर्मक क्रिया रूप, यथा—मालिक ने नौकर को तनख़्वाह के पूरे रुपये नहीं दिए (अर्थात् नौकर ने मालिक से तनख़्वाह के पूरे रुपये नहीं लिए/प्राप्त किए या नौकर को……मिले)। तुम ने मुझे बहुत कष्ट दिया है (अर्थात् तुम से….मिला है। * मैं ने तुम से बहुत कष्ट लिया है। (2) ऐसा क्रिया-व्यापार जहाँ 'देना' निहित न हो, यथा—अटैची भारी है, सिर पर ले लो (/रख लो)। अरे भाई, ज़रा यह गठरी यहाँ तक ले चलो। (3) पूर्व

ज्ञान पर आधारित रंजक क्रिया तथा प्रयोजन साम्य होने पर व्यापार का फल कर्ता को प्राप्त, यथा—थोड़ी देर आराम कर (/सो/लेट) लो। आप खाना खा लीजिए। कुत्ता भी पांडवों के साथ हो लिया। काम कराना है तो निदेशक से मिल लो (प्रयोजन असाम्य की स्थिति में 'लेना' अप्रयुक्त, यथा—* फेंक/दे/भगा/मरवा लेना)। दाँतों से अपनी ही उँगली काट ली। जितना चाहें काट लीजिए (=काट कर)। (4) 'आत्म/स्वयं के' उद्देश्य हेतु किया गया (/स्वयं पर किया गया) कार्य 'लेना' से व्यक्त, यथा—पेन्सिल छीलते समय बच्चे ने अपनी उँगली काट ली (* दी) (5) समर्थताबोधक 'लेना' (यथा—कर लेना; पढ़ लेना; लिख लेना आदि रंजक क्रियाभासवत्) अपूर्ण पक्ष में प्रयुक्त। पूर्ण पक्ष, रहा, नहीं के साथ अप्रयुक्त, यथा—क्या आप उर्दू पढ़-लिख लेते हैं ? जी हाँ, मैं उर्दू लिख भी लेता हूँ और पढ़ भी लेता (/सकता) हूँ। (6) रंजक क्रिया 'जा' के साथ, यथा—ऐसी खटारा गाड़ी को भी वह 30 किलोमीटर की रफ़्तार से चला ले गया। (7) वार्तालाप/प्रसंग आरम्भक शब्द, यथा—लो, आँधी (भी) आ गई। लीजिए, वे सब इधर ही (चले) आ रहे हैं। (8) अगवानी करना, यथा—एक बहुत पुराने दोस्त आ गए थे, उन्हें (ही) लेने स्टेशन चला गया था। (9) मुहावरेदार प्रयोग, यथा—दवा (/चाय/कॉफ़ी/पान/सिगरेट/शराब) लेना; बदला (भाग/कम/रुचि) लेना; (किसी का) दोष अपने सिर (पर) लेना; ज़िम्मेदारी हाथ में लेना।

25. √सक—वृत्तिसूचक यह क्रिया दो अर्थों में प्रयुक्त—(1) कुशलता/निपुणता/दक्षता/सूचना के लिए '-ता है/-ता था' के साथ, यथा—क्या तुम भाला फेंक प्रतियोगिता में भाग ले सकते हो ?—नहीं, मैं (भाला फेंक प्रतियोगिता में) भाग नहीं ले सकता। हाँ, मैं (भाला फेंक प्रतियोगिता में) भाग ले सकता हूँ। मेरी बेटी उन दिनों अच्छी तरह मलयाळम् बोल सकती थी। (क) पूर्ण पक्ष में ऐसा प्रयोग नहीं होता, यथा—* मेरी बेटी....बोल नहीं सकी। पूर्ण पक्ष में यह असमर्थतासूचक है, यथा—मेहमान आ नहीं सके। (ख) '-गा' के साथ 'सक' का प्रयोग निपुणता की सम्भावना का सूचक नहीं है, इस के लिए 'लेना' क्रिया का प्रयोग करना पड़ता है, यथा—मैं मोटरकार चलाना भी सीख लूँगा। (ग) 'सकूँगा' सामर्थ्यसूचक है। कुशलतासूचक 'सक' का प्रयोग विधि, सम्भावना में तथा 'रहा' के साथ नहीं होता। इस 'सक' के स्थान पर कभी-कभी 'लेना' का प्रयोग किया जाता है, यथा—क्या वह हिन्दी में आशु लेखन कर सकती है ? वह हिन्दी में आशु लेखन तो नहीं कर सकती, टंकण कर लेती है। (घ) 'लेना' भी 'सक' की तरह न पूर्ण पक्ष में आता है और न 'नहीं' के साथ। यह पूर्ण क्षमता का सूचक भी नहीं है, हाँ किसी तरह काम पूरा करने की सामान्य-सी क्षमता का द्योतक है, यथा—तुम तमिळ पढ़ सकते हो ?—अच्छी तरह नहीं पढ़ सकता, धीरे-धीरे पढ़ लेता हूँ। पूर्णरूपेण कुशल होने के अर्थ में 'लेगा' का प्रयोग नहीं होता, सामर्थ्य सूचना के रूप में यह आ सकता हैं, यथा—*यह अगले छह महीने में तमिळ बोल लेगी। वह अगले छह महीने में

हिन्दी आशु लेखन भी सीख लेगी। (2) सामर्थ्य/क्षमता की सूचना, यथा—बिजली न आने के कारण मैं पढ़-लिख नहीं सका। इस अर्थ में 'सक' का प्रयोग विधि, संभावना में तथा 'रहा' के साथ नहीं होता। (क) पूर्ण पक्ष में 'नहीं' के साथ आने पर असमर्थतासूचक, यथा—वे पूरा भाषण नहीं दे सके। बच्चे पूरी रात अच्छी तरह सो नहीं सके। बिना 'नहीं' के सामर्थ्य सूचना हेतु कुछ विशेष वाक्यांश का प्रयोग आवश्यक, यथा—(किसी तरह) बड़ी मुश्किल से (/राम-राम कर के) आज खाना बना सकी। क्या बच्चे तुम से मिल सके थे? (ख) अपूर्ण पक्ष में 'सक' दो भिन्न अर्थों में आता है—समर्थता एवं इच्छा; असमर्थता एवं अनिच्छा, यथा—क्या तुम गा सकती हो?—जी नहीं, मैं गा नहीं सकती (/मैं नहीं गा सकती)। मैं गा नहीं सकूँगी (/मैं नहीं गा सकूँगी)। (ग) असमर्थता या अनिच्छा काल-निरपेक्ष हैं—मैं माँस नहीं खा सकता। 'सकूँगा' सम्भावना सूचक है, यथा—क्या तुम आ सकोगे? मुझे आशा नहीं (/नहीं लगता) कि तुम समय पर आ सकोगे (/आओगे)? (*सकते हो)। हमें नहीं लगता कि वह दौड़ सकेगी। वह नहीं दौड़ सकेगी। कुछ सन्दर्भों में 'सकता है, सकेगा' समान क्षणों में प्रयुक्त हो सकते हैं, यथा—क्या आप मुझे कुछ देर के लिए अपनी गाड़ी दे सकते हैं? क्षमा कीजिए, इस समय नहीं दे सकूँगा। सामर्थ्यसूचक 'सक' का समानार्थी 'पा' केवल अक्षमता/अशक्तता सूचित करता है, अनिच्छा नहीं। (3) शर्त सूचक वाक्य, बीते समय में अपूर्ण पक्ष की क्रिया बिना सहायक क्रिया के प्रयुक्त होती है, यथा—अगर तुम चलतीं तो मैं भी तुम्हारे साथ चला चलता। अगर तुम कहतीं तो मैं जा सकता था (/चला जाता)।

26. √ह, √हो, √रह—(1) 'है' निश्चित वस्तु के सन्दर्भ में उस में वर्तमान/सततकालीन गुण, स्थिति (समयबद्ध स्थिति) आदि का सूचक, यथा—पृथ्वी का भीतरी भाग गर्म है। यह नौकर बहुत मेहनती है। वह बहुत लम्बी/ज़िद्दी औरत है। यह नीला गुलाब है और वह सफ़ेद है। कुमटा उत्तर कर्नाटक में है। क्या आज छुट्टी (/सोमवार) है? अभी पिता जी घर (पर) ही हैं। इन दिनों (/आजकल) बहुत गर्मी (/ठंड) है। (2) स्थितिसूचक 'है' की स्थानापन्न तीन क्रियाओं के विशिष्ट प्रयोग—'ठहर'—महाराज, आप ठहरे साधु-सन्त (/महाराज, आप साधु-सन्त हैं)। 'रह'—भाई वाह, यह भी ख़ूब रही (/है)। लीजिए, ये रहे आप के काग़ज़ (/लीजिए, ये आप के काग़ज़ हैं)। बहुत ठीक, यह अच्छी (बात) रही (/यह अच्छी बात है)। 'हो'—देखा, यह हुई न बात (/देखा, यह बात ठीक है)। तो बात यों हुई (/तो यह बात है)। (3) 'होता है' वर्ग के सर्वसामान्य गुण धर्म का सूचक, यथा—पक्षियों में प्रायः नर पक्षी मादा की अपेक्षा अधिक सुन्दर होता है (/होते हैं)। ज़्यादातर लड़कियाँ सुन्दर होती हैं। पंजाबी किसान परिश्रमी होते हैं। कुत्ता वफ़ादार होता है। गुलाब प्रायः गुलाबी होता है। पंजाबी परिश्रमी होता है। (4) अपूर्ण पक्ष में प्रायः/अक्सर/हमेशा आदि शब्दों के साथ होता/रहता, यथा—यहाँ हर दूसरे शनिवार को आधे दिन की छुट्टी होती है (/रहती है)। आजकल यहाँ (/बसों

में) बहुत भीड़ होती है। बंगलौर में जून-जुलाई में (/आजकल/ इन दिनों) सर्दी होती है (/रहती है), जनवरी-फ़रवरी में गर्मी। हरिद्वार में सदैव गंगा का पानी ठंडा होता है (/रहता है)। (5) निश्चित समय-बिन्दु का उल्लेख होने पर, यथा—मैं जब (/जब-जब) इधर से गुज़रता हूँ, यह पागल यहीं बैठी/सोती होती है। जब मैं घर से निकलती हूँ, तभी वह गुंडा सामने से आता होता है। आप जब देर रात गए घर आते हैं, बच्चे सोए होते हैं। जब भी मैं आप के कमरे में आती हूँ, आप पढ़ते (/सोए/सोते/लिखते) होते हैं, बत्ती जल रही होती है; पंखा चल रहा होता है। (6) 'रहता है', 'है' का एक प्रकार्य, विस्तार तथा अवधि सूचना के साथ, यथा—वह अक्सर बीमार रहती है—वह आज बीमार है। स्कूलों में लगभग पाँच महीने छुट्टी रहती है—स्कूलों में इस महीने छुट्टी है। मेरे घुटनों में बराबर (/हमेशा लगातार/बहुत दिनों से) दर्द रहता है। क्या आप के पड़ोस की यह दुकान प्रतिदिन बारह बजे तक बन्द (ही) रहती है? एकल वस्तु के सन्दर्भ में—वर्तमान में स्थिति-सूचक 'है'; काल-अवधि में स्थिति-सूचक 'रहता है'। वर्ग के सन्दर्भ में—सामान्य गुण-धर्मसूचक होता है'; आवृत्ति सूचक 'होता है'/रहता है। इस मार्केट में ठीक दस बजे सभी दुकानें खुली होती हैं। (इस मार्केट में कुछ दुकानें रात भर खुली रहती हैं)। क्या इस मार्केट में रात बारह बजे कोई दुकान खुली नहीं होती? (क्या इस मार्केट में रात बारह बजे तक दुकानें खुली नहीं रहतीं/खुली रहती हैं?) तुम ध्यान ही नहीं रखतीं, जब देखो कोई-न-कोई नल खुला होता है (/रहता है)। (7) इन वाक्यों की रचना का अन्तर द्रष्टव्य है—चिड़िया एक नभचर है—चिड़िया नभचर होती है—चिड़ियाँ नभचर हैं और पशु थलचर (हैं)—चिड़ियाँ नभचर होती हैं। (8) 'है' कालसूचक सहायक क्रिया है तथा 'होना' क्रिया-व्यापार तथा स्थिति सूचित करनेवाली क्रिया। 'करना' और 'होना' के अर्थ की निश्चितता साथ आनेवाली क्रियाओं से स्पष्ट, यथा—सहायता करना, काम करना, नुकसान करना, बातें करना, दुःख होना, भला होना, नुकसान होना। कुछ मानसिक स्थितियों में 'है', 'हो' परस्पर स्थानापन्न, यथा— बच्चे को पीट कर माँ दुःखी है (/दुःखी हो रही है/दुःखी होती है)। बच्चे को पीटने के बाद माँ को दुःख था (/हुआ)। किन्तु 'यहाँ से डाक-घर दूर है; यह घड़ी इतनी अच्छी नहीं है; आज यहाँ बहुत ठंड है' स्थितिसूचक वाक्यों में क्रिया-व्यापार सूचक 'हो' की स्थानापत्ति असम्भव। (9) कर्म-प्रधान वाक्य में 'होना', यथा—तुम्हारा व्याकरण पूरा हुआ या नहीं? कल किस का भाषण हुआ था? (10) स्थितिसूचक 'होना' का प्रेरणार्थक रूप 'करना' सकर्मक वाक्यों में, यथा—तुम्हारी इन बातों (/शैतानियों) ने तो हमें परेशान (/दुःखी) कर दिया है। (तुम्हारी इन बातों/शैतानियों से तो हम परेशान/दुःखी हैं।) (11) स्थितिसूचक 'है' के तथ्येतर क्रियारूप—'होगा, हो, होता', यथा—यदि आप को मुझ से कोई काम हो तो मुझे बताइए। यदि मुझे आप से कोई काम न होता तो मैं यहाँ आता

ही क्यों ? लगता है, उन्हें आप से कोई काम होगा, इसीलिए बेचारे इतनी दूर से आए हैं। (12) हो (कर) आना=जा कर आना, यथा—क्या तुम मैसूर हो आए ? (=क्या तुम मैसूर जा कर वहाँ से लौट आए ?) मैं यहाँ तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा, तुम वहाँ जल्दी हो आओ। (यहाँ 'आ कर जाना/जाना' का प्रयोग प्राप्त; *वह स्कूल जा कर आता है' अप्रयुक्त)। 'हो आना' कर-लोप से बनी क्रिया, अत: 'कर' का पुन: योग नहीं, यथा—मैं दफ़्तर से लौट कर (/*हो आकर) तुम से बातें करूँगा। (/मैं दफ़्तर हो आया, अब तुम से बातें करूँगा)।

18
अव्यय

अव्यय—वाक्य में शब्द-प्रयोग के आधार पर वे शब्द या शब्दांश अव्यय कहलाते हैं जिन की मूलावस्था में वाक्य स्तर पर कोई विकार (/परिवर्तन) नहीं होता अर्थात् उन्हें रूपान्तर की प्रक्रिया प्रभावित नहीं करती, यथा—अत्र, अभी यहाँ, यहीं, अत्यन्त, केवल, यथा, त्यों, ही, नहीं, सहित, और, भी, अरे, वाह आदि। इन शब्दों में कोई आन्तरिक विकार (यथा—लड़की-लड़कियाँ) तथा वाह्य विकार (यथा—घर-घर में) नहीं होता। यद्यपि अनेक संज्ञा शब्दों, सफ़ेद/लाल वर्ग के विशेषणों, कुछ सर्वनाम भी अविकारी-जैसे लगते हैं किन्तु किसी-न-किसी स्तर पर उन में विकार होता ही है, यथा—घरों में, लाल रंगों में, हमें आदि। 'लाल' वर्ग के शब्द 'काला' वर्ग के शब्दों के स्थानापन्न हैं और काला-काली-काले-कालों जैसे रूपों में विकार स्पष्ट परिलक्षित होता है। कुछ अविकारी शब्द दूसरे वर्ग के शब्दों से व्युत्पन्न होते हैं किन्तु यह व्युत्पत्ति विकार नहीं कहलाता। 'न' हाँ' का प्रयोग कभी-कभी संज्ञा शब्द की भाँति मिलता है, यथा—इस विषय में मैं तुम्हारी 'न/नहीं नहीं सुनूँगी। 'हाँ, करना/कहना जितना आसान है, उसे निभाना उतना आसान नहीं है। कुछ अव्ययों के पश्चात् हिन्दी में परसर्ग 'से, का, में, पर, के लिए' का प्रयोग भी मिलता है, यथा—यहाँ से; आज का/की/के, बगल में; कल के लिए, उधर के आदि। इन प्रयोगों के कारण अव्यय वर्ग के अधिकांश शब्दों का शब्द-वर्ग परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

अनेक व्याकरण ग्रन्थों में अँगरेज़ी व्याकरणों के अनुकरण पर क्रियाविशेषणों का संबंध क्रियाओं, विशेषणों, क्रियाविशेषणों (अन्य लक्षणों का लक्षण व्यक्त करने वाले) से जोड़ा गया है। विशेषण शब्दों की विशेषता बतानेवाले शब्दों को **'प्रविशेषण'**, क्रियाविशेषण शब्दों की विशेषता बताने वाले शब्दों को **'प्र-क्रियाविशेषण'** और केवल क्रिया शब्दों की विशेषता बतानेवाले शब्दों को **'क्रियाविशेषण'** कहा जाना चाहिए।

रचना के आधार पर अव्यय-भेद—रचना की दृष्टि से अव्ययों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—1. रूढ़/मूल 2. यौगिक। **रूढ़/मूल अव्यय**—वे अव्यय शब्द हैं

जिन के सार्थक खंड नहीं हो सकते, अर्थात् जो किन्हीं दूसरे शब्दों के योग से नहीं बनते, यथा—झट, मत, फिर, अब, दूर, थोड़ा, यों, ठीक, अचानक, नहीं, न, आज, अन्दर, आदि। **यौगिक अपव्यय**—वे अपव्यय शब्द हैं जिन के सार्थक खंड होना सम्भव है, अर्थात् जो किन्हीं दूसरे शब्दों में प्रत्यय आदि जोड़ने पर बनते हैं, यथा—अत्यधिक (अति+अधिक), प्रतिदिन (प्रति+दिन), जैसे-तैसे (जैसे+तैसे), व्यर्थ (वि+अर्थ), मन से (मन+से), चुपके से (चुपके+से) देखते हुए (देखते+हुए), वहाँ पर (वहाँ+पर), यहाँ तक (यहाँ+तक) आदि। **यौगिक अव्ययों की रचना के कई प्रकार हैं**—(1) उपसर्ग जोड़कर, यथा—प्रतिदिन, सम्मुख, अधोमुख, निधड़क, बेकार, बेखटके, अनुदिन, तत्काल, आजीवन, अलग, व्यर्थ, भरपेट आदि। (2) प्रत्यय जोड़कर, यथा—सम्भवतः, क्रमशः, अन्यत्र, सर्वत्र, पूर्णतः, पूर्णतया, विधिपूर्वक, दृढ़तापूर्वक, द्विधा, बहुधा आदि। (3) आकारान्त संज्ञा/विशेषण को एकारान्त कर के, यथा—सामना→सामने, पीछा→पीछे, सवेरा→सवेरे, तड़का→तड़के, आता हुआ→आते हुए आदि। (4) शब्द-द्विरुक्ति से, यथा—आर-पार, घर-घर, साफ़-साफ़, घड़ी-घड़ी, धीरे-धीरे, चलते-चलते, चलते-फिरते, कुछ-कुछ, थोड़ा-थोड़ा, बैठे-बैठे, कभी-कभी, कहीं-कहीं, कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं आदि। (5) विशेषण+संज्ञा शब्दों से, यथा—हरदम, एकदम, एकसाथ, हरपल, हरदिन आदि। (6) परसर्ग जोड़ कर, यथा—(शाम को, रात को, दिन को) अब से, कब से, अभी से, यहाँ से; (सावधानी से, ध्यान से, गाड़ी से); इसलिए, किसलिए, अपने लिए; आने पर, जाने पर; (दिन में, दोपहर में, रात में; इतने में); करने में; (दोपहर तक, सबेरे तक), यहाँ तक, कहाँ तक आदि। (7) -कर जोड़ कर, यथा—बैठ कर, पहुँच कर, हो कर, दौड़ कर आदि। (8) सार्वनामिक विशेषण+संज्ञा शब्दों से, यथा—इसी क्षण, उसी समय, उन दिनों, इस समय, उस वक्त आदि। (9) दो अव्यय एक साथ रख कर, यथा—यहीं-कहीं, इधर-उधर, आजकल, जब कभी, आगे-पीछे, जहाँ कहीं, थोड़ा-बहुत, ज्यों-त्यों, ऐसे-वैसे, ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर, दाएँ-बाएँ, कल रात, आज सुबह, कल सवेरे, कल शाम तक, परसों दोपहर तक, फिर कभी आदि। (10) कुछ सर्वनाम शब्दों में परिवर्तन कर के, यथा—

सर्वनाम	**गन्तव्य स्थल/ स्थानबोधक**	**दिशाबोधक**	**रीतिबोधक**	**परिमाणबोधक**	**कालबोधक**
यह	यहाँ, यहीं	इधर	यों, ऐसे	इतना	अब अभी
वह	वहाँ, वहीं	उधर	— वैसे	उतना	— —
क्या	कहाँ, कहीं	किधर	क्यों, कैसे	कितना	कब, कभी
जो	जहाँ, (जहीं)	जिधर	ज्यों, जैसे	जितना	जब, जभी
(सो > तो)	तहाँ, (तहीं)	(तिधर)	त्यों, तैसे	(तितना)	तब, तभी

प्रकार्य/अर्थ की दृष्टि से अव्यय 10 **प्रकार** के होते हैं—1. कालवाचक 2. स्थानवाचक 3. प्रश्नवाचक 4. क्रियाविशेषण 5. सम्बन्धसूचक (परसर्ग तथा पर-

सर्गीय शब्दावली) 6. समुच्चयबोधक 7. मनोभावबोधक (/विस्मयादि बोधक) 8. उपसर्ग 9. प्रत्यय 10. निपात।

1. **कालवाचक**—वे अव्यय हैं जिन से क्रिया-व्यापार के समय या अवधि के बारे में जानकारी मिलती है, यथा—अभी सो जाओ। पहले खाना खा लो, बाद में पढ़ना। निश्चयात्मकता के आधार पर कालवाचक शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—(1) निश्चित कालवाचक, यथा—आज, कल, परसों, अभी, झट, तुरन्त, फ़ौरन, पूर्व, उपरान्त आदि। (2) अनिश्चित कालवाचक, यथा—सदा, हमेशा, निरन्तर, लगातार, प्रायः, अक्सर, फिर, कभी आदि। समय-सीमा/मात्रा के आधार पर कालवाचक शब्दों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—(1) समयबोधक, यथा—अब, तब, जब, आज, कल, परसों, (तरसों, नरसों), फिर, सवेरे, सुबह, तड़के, झटपट, झट, शीघ्र, तुरन्त, फ़ौरन, अभी, तभी, कभी, जभी, पूर्व, पहले, पीछे, तदन्तर, तत्पश्चात्, एकदम, तत्काल, तत्क्षण, सम्प्रति, बाद में, दिन चढ़े, शाम ढले आदि में। (2) अवधिबोधक, यथा—निरन्तर, लगातार, सदा, सर्वदा, नित्य, आजकल, जब तक, तब तक, दिन भर, दिन में, इतने में, कब से, कब का, जब से, अब से, अभी से, सुबह से शाम तक, रात को आदि। (3) पुनर्भावबोधक, यथा—पुनः, फिर, प्रायः, अक्सर, फिर-फिर, प्रतिदिन, बहुधा, हर रोज़, घड़ी-घड़ी, हर बार, बार-बार, एक बार, कई बार, घंटे-घंटे, यदा-कदा आदि। तड़का, भोर, सुबह, दोपहर, शाम, रात, रात्रि, दिन, घंटा, मिनट आदि शब्द सामान्यतः परसर्ग रहित रूप में प्रयुक्त होने पर कालवाचक अव्यय होते हैं तथा परसर्ग सहित या बहुवचन या कर्ता कारक में होने पर संज्ञा होते हैं, यथा—वे सुबह चार बजे उठ जाया करते हैं। मुझे सारी रात नींद नहीं आई। (कालवाचक); सुबह का दृश्य कितना सुहावना है। जंगल में बरसाती रातें ख़तरे से ख़ाली नहीं होतीं। भोर हुई।

हिन्दी की कुछ बोलियों में 'आगे का प्रयोग भूतकाल के लिए भी होता है, यथा—बेचारी ने आगे (/पहले ही) काफ़ी तकलीफ़ सही है। हिन्दी की कुछ बोलियों में 'पीछे' का प्रयोग भविष्यकाल के लिए भी होता है, यथा—मैं अभी जा रही हूँ, आप पीछे (/मेरे बाद) आ जाना। हम लोग आगे क्या करेंगे, अभी नहीं बताया जाएगा, समय आने पर बाद में (/पीछे) बताया जाएगा। 'के बाद' पूर्व तथा पर के क्रम को व्यक्त करता है, यथा—अब तुम होली के बाद आना (काल-क्रम); अच्छे बच्चे हाथ-मुँह धोने के बाद ही कुछ खाते-पीते हैं (कार्य व्यापार-क्रम); चपरासी इंस्पेक्टर के बाद आया (व्यक्ति क्रम)। 'पहले' के अर्थ के विलोम रूप में 'बाद' क्रम-सूचक नहीं रहता, यथा—अभी जाओ, फिर बाद में आना। (*चार दिन के बाद में); उस ने पहले लिपस्टिक लगाई, बाद में बिन्दी। (*लिपस्टिक लगाने के बाद में); पहले आप सुनाइए, बाद में हम सुनाएंगे। (*आप के बाद में)। समय-सूचक इकाइयों के साथ 'बाद' का प्रयोग होता है, यथा—चार घंटे (/दिन/हफ्ते) बाद; कोई साल भर (/दो साल) बाद; महीनों (/दिनों/सालों/

ह.फ्तों/) बाद; 20-25 मिनट (/2-3 महीने/3-4 साल) बाद । (*दस मिनटों*दिनों/ हफ्तों/महीनों/वर्षों के बाद । के बाद में)

2. **स्थानवाचक**—वे अव्यय हैं जिन से क्रिया-व्यापार की सम्पन्नता के स्थान या दिशा के बारे में जानकारी मिलती है, यथा—यहाँ मत बैठो । वह अन्दर सो रहा है । निश्चयात्मकता के आधार पर स्थानवाचक शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—(1) निश्चित स्थानवाचक, यथा—ऊपर, नीचे, दायें, बायें, दाहिने, आगे, पीछे आदि (2) अनिश्चित स्थानवाचक, यथा—निकट, पास, दूर परे, बग़ल, तरफ, ओर आदि । स्थिति तथा दिशा के आधार पर स्थानवाचक शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है (1) स्थितिबोधक, यथा—यहाँ, वहाँ, जहाँ, तहाँ, ऊपर, नीचे, तले, बाहर, भीतर, पास, आगे, पीछे, सामने, साथ, सर्वत्न, अन्यत्न, कहीं, यहीं, वहीं, अन्दर, आसपास, यत्न-तत्न-सर्वत्न । (2) दिशाबोधक, यथा—इधर, उधर, जिधर, (तिधर), दायें, बायें, इस तरफ, उस ओर, चारों ओर, सामने, दाहिने आदि । 'यहाँ, इधर' की कुछ प्रसंगों में स्थानापत्ति सम्भव है, यथा—बेटी यहाँ आओ (/मेरे पास); बेटी, इधर आओ (/मेरी ओर या तरफ़) । आइए, हम वहाँ (/उधर) चलें जहाँ (/जिधर) पीली कोठी है । कुछ मुहावरेदार प्रयोग—बोरा फट गया और सारे अमरूद इधर-उधर बिखर गए । तुम्हारी बड़ी बुरी आदत है, चीज़ों को जहाँ-तहाँ छिपा (/रख) देती हो । 'यहाँ से/इधर से' के प्रयोग में अर्थ-भेद, यथा—18 नंबर की बस यहाँ (=अशोक स्तम्भ) से जाती है (=आरम्भ होती है); 18 नंबर की बस इधर से (=अशोक स्तम्भ के पास से हो कर) जाती है; 25 नम्बर की बस यहाँ (=अशोक स्तम्भ) तक आती है (*इधर तक) । ओर=तरफ़ दिशासूचक स्त्रीलिंग शब्द हैं जो देखना, जाना आदि क्रियाओं के साथ आते हैं, यथा—लोग मन्दिर की ओर/तरफ़ (/हमारी ओर∼तरफ़) आ (/देख) रहे हैं । इन के पहले दोनों/चारों संख्यावाचक विशेषण आने पर 'की' के स्थान पर 'के' आता है, यथा—घर के दोनों (/चारों) ओर । 'आगे' प्रयोग के विभिन्न सन्दर्भ—मन्दिर से आगे एक गिरजाघर है । आगे बढ़ो (/जाओ), यहाँ कुछ नहीं मिलेगा । क्यू में तुम्हें मेरे पीछे खड़ा होना है, मेरे आगे नहीं । वे ज़िन्दगी में आगे और आगे ही बढ़ते चले गए । दौड़ में मैं उस से आगे नहीं निकल सकता । मैं तुम्हारे (/झूठ के) आगे (/सामने) झुक नहीं सकता । भिखारी सभी के आगे (/सामने) हाथ पसारते हैं । 'पीछे, आमने-सामने' के कुछ प्रयोग—राम-रावण युद्ध में दोनों योद्धा आमने-सामने थे, राम के सामने रावण और रावण के सामने राम । ज़िन्दगी की दौड़ में वह बहुत पीछे रह गया (/पिछड़ गया) ।

कुछ कालवाचक तथा स्थानवाचक शब्दों के तिर्यक् रूप—इस (/उस/इसी/उसी) जगह; इस (/उस/इसी/उसी) स्थान पर; के घर में; इस (/उस) ओर∼तरफ़; इस (/उस/इसी/उसी) रास्ते; इस (/उस/इसी/उसी) क्षण (/दिन/ह.फ्ते/महीने/साल/वर्ष); अगले (पिछले/दूसरे) क्षण (/दिन/ह.फ्ते/महीने/साल/वर्ष); इन (/उन/इन्हीं/उन्हीं) दिनों; जुलाई में, सोमवार को, 1947 ई० में ।

(अनेक व्याकरणों में कालवाचक, स्थानवाचक अव्ययों को क्रियाविशेषण का उपभेद लिखा गया है। कालवाचक तथा स्थानवाचक अव्यय वास्तव में क्रिया की विशेषता—गुण या वैशिष्ट्य नहीं बताते। क्रिया की विशेषताएँ उस के सम्पन्न होने की रीति या परिमाण से प्रकट होती हैं)।

3. **प्रश्नवाचक**—वे अव्यय हैं जिन से क्रिया-व्यापार के बारे में किसी प्रकार का प्रश्न किया जाए, यथा—वे कहाँ गए हैं ? तुम कब जाओगे ? बच्चा क्यों रो रहा है ? प्रश्नवाचक अव्यय शब्द ये हैं—क्या, कहाँ, कब, किधर, कैसे, क्यों, किस-लिए, कितना, क्योंकर। प्रश्नवाचक शब्दों के कुछ प्रयोग—यह हवाई जहाज़ कहाँ (/*किधर) जाता है ? तुम्हारा कॉलेज कहाँ~किधर है ? क्या वे पढ़ रहे हैं ? क्या लड़की इस बारे में जानती है ? 'क्या' युत जैसे प्रश्नों के उत्तर 'हाँ/नहीं' में होते हैं। वे क्या पढ़ रहे हैं ? लड़की इस बारे में क्या जानती है ? 'क्या' युत जैसे प्रश्नों के उत्तर व्याख्यात्मक/सूचनात्मक होते हैं। इसी प्रकार अन्य प्रश्नवाचक शब्दों के उत्तर विस्तार से देने होंगे। ये प्रश्नवाचक शब्द अकर्मक तथा सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं के साथ आ सकते हैं।

4. **क्रियाविशेषण**—वे अव्यय हैं जिन से क्रिया-व्यापार के बारे में किसी प्रकार की विशेषता व्यक्त होती है, यथा—वह बहुत धीरे-धीरे खाता है। श्यामा सितार काफ़ी अच्छा बजा लेती है। आप इतने चिन्तित न हों। इन वाक्यों में 'धीरे-धीरे, अच्छा, इतने' शब्द क्रिया-व्यापार 'खाता है, बजा लेती है' क्रृदन्त 'चिन्तित' की रीति; गुण, परिमाण या स्थिति के सूचकहैं। 'बहुत, काफ़ी' अपने परवर्ती क्रिया विशेषणों का परिमाण बता रहे हैं, अतः ये '**प्र-क्रियाविशेषण**' हैं। अनेक व्याकरणों में विशेषण, क्रियाविशेषण के परिमाणबोधक शब्दों को क्रियाविशेषण लिखा गया है किन्तु ये प्रविशेषण तथा प्र-क्रियाविशेषण होते हैं, यथा—'बहुत अधिक मनोरंजक पुस्तक' में 'मनोरंजक' विशेषण; 'अधिक' मनोरंजक का प्रविशेषण; 'बहुत' अधिक का प्रविशेषण। दोनों प्रविशेषण। 'तुम इतना सुन्दर कैसे लिख लेते हो ?' में 'कैसे' क्रियाविशेषण; 'सुन्दर' क्रियाविशेषण 'कैसे' का प्र-क्रियाविशेषण; 'इतना' प्र-क्रिया-विशेषण सुन्दर का प्र-क्रियाविशेषण।

शब्द-रचना की दृष्टि से क्रियाविशेषण दो प्रकार के होते हैं—रूढ़, यौगिक। **रूढ़** या **मूल** क्रियाविशेषणों के सार्थक खण्ड नहीं होते, यथा—अब, आज, दूर, पास, यों, थोड़ा, बहुत आदि। **यौगिक क्रियाविशेषण** उपसर्ग, प्रत्यय या अन्य शब्दों के योग से बनते हैं, तथा उन के सार्थक खंड हो सकते हैं, यथा—प्रतिदिन, जैसे-तैसे, अत्यधिक, सर्वत्र, बेशक, यथासम्भव आदि। अर्थ या प्रकार्य की दृष्टि से क्रिया-विशेषण दो प्रकार के होते हैं—परिमाणवाचक, रीतिवाचक। 1. **परिमाणवाचक क्रियाविशेषण** वे क्रियाविशेषण हैं जिन से क्रिया-व्यापार या क्रृदन्त की सम्पन्नता की मात्रा का अनुमान हो, यथा—ख़ूब खाओ-खेलो। ज़रा तो सोचो। परिमाणवाचक विशेषण की भाँति ही परिमाणवाचक क्रियाविशेषण के पाँच भेद हो सकते हैं—

(1) अधिकताबोधक, यथा—अति, अत्यन्त, निपट, अतिशय, सर्वथा, बहुत, बड़ा, खूब, बिल्कुल। (2) न्यूनताबोधक, यथा—किंचित्, लगभग, प्रायः थोड़ा, ज़रा, कुछ, (टुक)। (3) पर्याप्तिबोधक, यथा—पर्याप्त, यथेष्ट, अस्तु, बस, बराबर, ठीक, चाहे, केवल। (4) तुलनाबोधक, यथा—से+अधिक, कम, बढ़ कर; इतना, उतना, जितना। (5) श्रेणिबोधक, यथा—थोड़ा-थोड़ा, क्रम-क्रम से, तिल-तिल, यथाक्रम, एक-एक कर, बारी-बारी से। **रीतिवाचक क्रियाविशेषण** वे क्रियाविशेषण हैं जिन से क्रिया-व्यापार के सम्पन्न होने की रीति/ढंग/विधि/प्रकार का अनुमान हो, यथा—लड़की ने रोते-रोते कहा। बच्चे चुपचाप पढ़ने चला गया। सिपाही काफ़ी तेज़ दौड़ा लेकिन चोर को न पकड़ सका। में 'रोते-रोते, चुपचाप, तेज़, कहने, चले जाने, दौड़ने की रीति के सूचक हैं। रीतिवाचक या विधिवाचक क्रियाविशेषणों में क्रिया-व्यापार की विशेषता बतानेवाले गुणवाचक विशेषण शब्दों का भी समाहार हो जाता है। ऐसे विशेषणों, क्रियाविशेषणों के प्रयोग में सूक्ष्म अर्थ-भेद रहता है, यथा—मैं **साफ़** कपड़े पहनता हूँ। (उद्देश्य विशेषण); मेरे पहनने के कपड़े **साफ़** हैं। (विधेय विशेषण); मैं पहनने के कपड़े **साफ़** धोता हूँ। (क्रियाविशेषण); तुम **टेढ़ी** कील क्यों गाड़ रहे हो? (उद्देश्य विशेषण); तुम्हारी गाड़ी हुई कील **टेढ़ी** है; (विधेय विशेषण); तुम कील **टेढ़ी** क्यों गाड़ रहे हो? (क्रियाविशेषण)।

गुणवाचक विशेषणों की भाँति रीतिवाचक क्रियाविशेषणों की संख्या भी काफ़ी है। प्रकार्य के आधार पर रीतिवाचक क्रियाविशेषणों को इन वर्गों में रख सकते हैं—(क) प्रकारवाची, यथा—धीरे, तेज़, मन्द, शीघ्र, सहसा, सहज, साक्षात्, ज़ोर से, क्रमशः, ऐसे, वैसे, जैसे, (तैसे), जैसे-तैसे, यथा, धम से; तथा, मानों, अचानक, अनायास, वृथा, यों ही, (हौले), पैदल, स्वयं, स्वतः, आप ही आप, परस्पर, धीरे-धीरे, एकाएक, ध्यानपूर्वक, मन से, रीत्यनुसार, यथाशक्ति, क्योंकर, सुखेन, फटाफट, ज्यों-त्यों कर के, तड़ातड़, फट से, येन-केन-प्रकारेण, अकस्मात्, क्योंकर, कैसे आदि। (ख) निश्चयवाची, यथा—अवश्य, निश्चय, सचमुच, निःसन्देह, बेशक, ज़रूर, वस्तुतः, दरअसल, यथार्थ में, सही, अलबत्ता, विशेष कर के, मुख्य कर के आदि। (ग) अनिश्चयवाची/संभावनावाची, यथा—कदाचित्, शायद, सम्भवत., बहुत कर के, यथासम्भव। (घ) कारणवाची, यथा—इसलिए, क्यों, (काहे को), भूल कर, मजबूरन (ङ) मनोरथवाची, यथा—जानबूझ कर, किसलिए, यों ही (च) सहार्थवाची, यथा—मिल कर, एकसाथ, साथ-साथ। (छ) पार्थक्यवाची, यथा—बारी-बारी से, एक-एक कर के, अकेले, अकेले-अकेले। कुछ व्याकरणों में 'शीघ्र, जल्द, जल्दी, झट, धीरे, धीमे, आहिस्ता, चुपचाप, वीरतापूर्वक, साफ़, व्यर्थ, ध्यानपूर्वक, किसी-न-किसी तरह, खुशी-खुशी, ज़ोर से, तेज़ी से, लापरवाही से, बुद्धिमानी से, बहादुराना' आदि को 'गुणवाचक' क्रियाविशेषण लिखा है। ये शब्द क्रिया-व्यापार का कोई गुण न बता कर उस की सम्पन्नता की रीति ही बताते हैं। 'ज़रूर' क्रियाविशेषण, 'ज़रूरी' विशेषण तथा 'ज़रूरत' संज्ञा है। 'कहीं-कहीं, जहाँ-जहाँ, वहाँ-वहाँ, धीमे-धीमे, धीरे-

धीरे, अकेले-अकेले, जल्दी-जल्दी, सवेरे ही सवेरे' आदि में पुनरुक्ति से समूह-बोध, पार्थक्य बोध आदि का अर्थ बोधन और भी सशक्त हो जाता है।

5. **सम्बन्धसूचक**—वे अव्यय हैं जो संज्ञा या संज्ञावत् प्रयुक्त शब्द के बाद आ कर पदबन्ध या वाक्य के विभिन्न घटकों के अन्तःसम्बन्ध को व्यक्त करते हैं, यथा—क्या वह आप के यहाँ आया था? बच्चे की चतुराई देख कर लोग दाँतों तले उँगली दबाने लगे। इन वाक्यों में 'के यहाँ' आप के साथ, 'तले' शब्द दाँतों के साथ संबंध व्यक्त कर रहा है, साथ ही ये शब्द इन शब्दों का संबंध 'आया था', 'दबाने लगे' क्रिया से व्यक्त कर रहे हैं। सम्बन्धसूचक शब्द प्रायः तिर्यक् रूप में आते हैं। सम्बन्धसूचक शब्दों के पश्चात् परसर्ग का प्रयोग नहीं होता। इन शब्दों का प्रयोग प्रायः संज्ञा शब्दों के साथ होता है। यद्यपि हिन्दी में मूल संबंध सूचकों की संख्या न के बराबर है, तथापि भिन्न-भिन्न शब्दों के प्रयोग संबंधसूचक के समान होते हैं। संबंधसूचकों के पूर्व प्रायः 'के/की/-रे/-री' आते हैं। कुछ संबंधसूचक अव्यय बिना परसर्गों के भी आते हैं, यथा—दिया तले अँधेरा; पीठ पीछे बुराई; भरी सभा बीच; धन बिना जीना।

रचना की दृष्टि से सम्बन्धसूचक दो प्रकार के होते हैं—रूढ़, यौगिक। रूढ़ या मूल संबंध सूचकों में परसर्गों तथा कुछ अन्य अव्यय शब्दों की गणना की जाती है, यथा—ने, को, से, का/की/के, में, पर, बिना, पर्यन्त, पूर्वक, (नाईं)। यौगिक संबंधसूचक शब्दों में विभिन्न संज्ञा शब्दों तथा कुछ अन्य शब्द वर्गों की गणना की जाती है, यथा—(क) कालसूचक (आगे, पीछे, पूर्व, अनन्तर, पश्चात्, उपरांत, पहले, बाद), (ख) स्थानसूचक (आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, तले, सामने, पास, निकट, समीप, नज़दीक, यहाँ, बीच, बाहर, परे, दूर, भीतर, रूबरू)। (ग) दिशासूचक (ओर, तरफ़, आरपार, आसपास, (घ) साधनसूचक (ज़रिए, द्वारा, हाथ, मार्फ़त, ज़बानी, सहारे), (ङ) हेतुसूचक (लिए, निमित्त, वास्ते, ख़ातिर, सबब, मारे, कारण, हेतु), (च) व्यतिरेक/राहित्य सूचक (सिवा, अलावा, बिना, बग़ैर, अतिरिक्त, रहित), (छ) विनिमयसूचक (बदले, जगह, एवज) (ज) सादृश्यसूचक (सम, समान, तरह, भाँति, नाईं, बराबर, तुल्य, योग्य,लायक़, सदृश, सरीखा, सा, ऐसा, वैसा, अनुसार, अनुकूल, अनुरूप, मुताबिक), (झ) विरोधसूचक (विरुद्ध, विपरीत, उल्टा, खिलाफ़), (ञ) साहचर्यसूचक (संग, साथ, समेत, सहित, स्वाधीन, अधीन, पूर्वक, वश), (ट) तुलनासूचक (अपेक्षा आगे, सामने, बनिस्वत), (ठ) विषय/उद्देश्य सूचक (बाबत, हेतु, लिए, निमित्त, नाम, नामक, भरोसे, जान, लेखे, मद्धे)। (ड) कारण सूचक (कारण, मारे), (ढ) पार्थक्य सूचक (दूर, परे, आगे)। इन यौगिक संबंध सूचकों में कुछ शब्द संज्ञा, विशेषण, कालवाचक, स्थानवाचक, क्रिया शब्दों से बने हैं, यथा—संज्ञा से (वास्ते, ओर, अपेक्षा, विषय, मार्फ़त, नाम, लेखे आदि), विशेषण से (तुल्य, समान, ऐसा, जैसा, योग्य, सरीखा, ज़बानी, उलटा आदि), कालवाचक से (आगे, पीछे, पश्चात्, उपरान्त आदि)

स्थानवाचक से (आगे, पीछे, यहाँ, वहाँ, समीप, दूर, भीतर आदि), क्रिया से (लिए, कर के, मारे, जान) ।

वितरण की दृष्टि से सम्बन्धसूचकों के दो भेद हैं—1. सम्बद्ध 2. अनुबद्ध । सम्बद्ध संबंधसूचक अव्यय 'के, की, -री, -रे, से' के बाद आते हैं, यथा—धन के बिना; पूजा से पहले; मेरे पास; सिंह की नाईं आदि । अनुबद्ध संबंध सूचक अव्यय संज्ञादि के तिर्यक् रूप के साथ आते हैं, यथा—दोस्तों सहित, किनारे के पास, पुत्रियों समेत आदि । अनुबद्ध संबंध सूचक बिना परसर्ग के आते हैं ।

प्रयोग (या अर्थ) के आधार पर संबंधसूचकों का वर्गीकरण तर्कसंगत नहीं है । यौगिक सम्बन्ध सूचकों के निर्माणक शब्द-वर्गों को कुछ व्याकरणों में अर्थ के अनुसार उन के भेद का आधार लिखा गया है ।

अनेक कालवाचक, स्थानवाचक अव्यय प्रयोग के आधार पर सम्बद्ध संबंधसूचक अव्यय बन जाते हैं, यथा—अन्दर मत जाओ ('अन्दर' स्थानवाचक अव्यय); कमरे के अन्दर मत जाओ ('के अन्दर' सम्बद्ध संबंधसूचक अव्यय); तुम्हें ऐसा पहले सोचना चाहिए था ('पहले' कालवाचक अव्यय); यह काम शाम होने से पहले पूरा हो जाना चाहिए ('से पहले' सम्बद्ध संबंधसूचक अव्यय) ।

'ओर, तरफ़, मार्फ़त, नाईं, ख़ातिर, तरह, बदौलत, अपेक्षा-सी' से पूर्व 'की' आता है । ('ओर' से पूर्व संख्यावाचक विशेषण होने पर 'के' का प्रयोग होता है, यथा—सड़क के दोनों ओर; घर के चारों ओर); 'आगे, पीछे, पहले, ऊपर, नीचे, बाहर' के पूर्व 'के, से' में से कोई भी आ सकता है, यथा—घर के आगे; घर से आगे; घर के बाहर, घर से बाहर आदि । 'परे, रहित, हीन' के पूर्व 'से' आता है, यथा—भ्रष्टाचार से रहित (/परे) । 'के' के बाद आनेवाले कुछ शब्द हैं—यहाँ, पूर्व, आगे, अतिरिक्त, अनुकूल, अनुसार, बाद, अनन्तर, अलावा, अन्दर, आस पास, आसरे, आर पार, इर्द-गिर्द, उपरान्त, ऊपर, नीचे, कारण, चलते (पूर्वी हिन्दी में), दरमियान, क़रीब, ख़िलाफ़, निमित्त, द्वारा, नज़दीक, परे, पार, पास, पीछे, प्रतिकूल, बजाय, बदले, बराबर, बहाने, बिना, बीच, मध्य, मारे, वश, वास्ते, विरुद्ध, विपरीत, समान, सहारे, साथ, सामने, सिवा, सम्मुख, संग, लिए, समक्ष ।

कभी-कभी 'के मारे, के बिना' का क्रम प्रयोग के समय बल देने के कारण बदल जाता है, यथा—मारे प्यास के दम निकला जा रहा है । बिना चीनी के कहीं चाय भी पी जा सकती है । आप के कहे अनुसार; आप के कहे बिना; बिना सोचे-समझे । 'आगे, पीछे, तले, रहित, सहित, समेत, पर्यन्त बिना' से पूर्व कुछ संदर्भों में कोई परसर्ग नहीं आता, यथा —कुछ दिन आगे चल कर; पीठ पीछे बुराई करना; पैरों तले की ज़मीन; जल बिन मीन उदासी; सखियों सहित; दोस्तों समेत; मृत्यु पर्यन्त; पाप रहित ।

परसर्ग तथा संबंधसूचक अव्यय (/परसर्गीय शब्दावली) प्रकार्य की दृष्टि से समान हैं । परसर्ग स्वतन्त्र शब्द न होने के कारण परसर्गीय शब्दावली के शब्दों की

भाँति कोई सार्थक मानसिक बिम्ब का निर्माण नहीं करते। परसर्गों का वितरण क्षेत्र परसर्गीय शब्दावली (संबंधसूचक शब्दों) की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। कुछ संबंधसूचक अव्ययों के पश्चात् परसर्ग का प्रयोग नहीं होता, ये संबंधसूचक सज्ञा या संज्ञावत् शब्द से युक्त होते हैं, यथा—नाईं, प्रति, पर्यन्त, पूर्वक, सहित, रहित। हिन्दी में भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग संबंधसूचक के समान होता है।

6. **समुच्चयबोधक अव्यय—वे** अव्यय हैं जो दो या अधिक शब्दों, पदों, पदबंधों, उपवाक्यों को जोड़ते या अलग करते हैं और उन के मध्य अर्थपूर्ण संबंध व्यक्त करते हैं, यथा—भाई और बहन; दोस्त या दुश्मन; स्वयं करो अथवा किसी से कराओ, मुझे काम चाहिए। कल उसे बुखार था इसलिए उसने खाना नहीं खाया। इन में 'और, या, अथवा, इसलिए' समुच्चयबोधक अव्यय हैं। समुच्चयबोधक को कुछ व्याकरणों में, 'योजक' कहा गया है। योजक शब्द केवल योजन तक ही सीमित रह जाता है जबकि समुच्चयबोधक योजन के साथ-साथ वियोजन तक पहुँचता है। **शब्द-रचना की दृष्टि से** हिन्दी के समुच्चय-बोधक अव्युत्पन्न/रूढ़ (यथा—तथा, एवं, अथवा, वा, और, पर, कि, या आदि) तथा व्युत्पन्न/यौगिक (क्रियाविशेषणों, निपातों, अन्य शब्दबंधों से बने) होते हैं, यथा—मानो < मानना; चाहे < चाहना; क्योंकि < क्यों + कि; चूंकि < चूं + कि; न कि < न + कि; इसलिए कि < यह + लिए + कि, चाहे····चाहे; न····न; नहीं तो आदि।

समुच्चय होनेवाले वाक्यांशों के स्तर-भेद के आधार पर या वाक्यगत प्रकार्य की दृष्टि से समुच्चयबोधक अव्ययों के दो मुख्य भेद हैं—1. समानाधारी या समानाधिकरण 2. असमानाधारी या व्यधिकरण। इन दोनों प्रकारों के शब्दों में कुछ शब्द विभिन्न संदर्भों में दोनों प्रकार का प्रकार्य करने के कारण दोनों भेदों में सम्मिलित हो जाते हैं।

प्रयोग-आवृत्ति की दृष्टि से समुच्चयबोधक तीन प्रकार के होते हैं—(क) सामान्य (एक बार प्रयुक्त, यथा—और, तथा, लेकिन, पर, कि), (ख) पुनरुक्त (दो बार प्रयुक्त, यथा—न····न, चाहे····चाहे, या····या, क्या····क्या), (ग) द्विपदी, यथा—ही नहीं····पर, न सिर्फ····बल्कि (भी), केवल ही नहीं········बल्कि।

(1) **समानाधारी या समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय**—वे अव्यय है जो वाक्य के समान स्तरीय विभिन्न अंगों को जोड़ते या अलग करते हैं। कभी-कभी समानाधारी समुच्चयबोधक अव्यय मुख्य/स्वतन्त्र उपवाक्यों को जोड़ कर संयुक्त वाक्यों का निर्माण भी करते हैं, यथा—मेरा पड़ोसी बहुत मक्कार और दुष्ट है। कल लगातार पानी बरसना तो बन्द हो गया था लेकिन ठंडी हवा चलती रही थी और कभी-कभी छींटे पड़ जाते थे। यहाँ 'और, लेकिन, और' समानाधारी समुच्चय-बोधक अव्यय है। **प्रकार्य या अर्थ की दृष्टि से** समानाधारी समुच्चयबोधक अव्यय पाँच प्रकार के होते हैं—(क) योजक/संयोजक (ख) वियोजक/विभाजक/विकल्प बोधक (ग) विरोधक (घ) परिणामसूचक/फल दर्शक (ङ) तुलनात्मक। (क) **समानाधारी**

योजक—दो या दो से अधिक समान स्तरीय शब्दादि को जोड़नेवाले अव्यय, यथा—मैं और वह परसों आगरा गए थे। गंगा-यमुना का मैदान बहुत उपजाऊ है तथा बहुत घना आबाद है। समुद्र-तट के प्रदेशों में न अधिक गर्मी पड़ती है न अधिक सर्दी। कुछ योजक शब्द हैं—और, एवं, तथा, व, न·······म, न केवल·······अपितु, न सिर्फ ····बल्कि। 'घर-बार, कपड़े-लत्ते' में **ध्वन्यात्मक संयोजन** है। 'बार, लत्ते' का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं है। 'बाल-बच्चे, दाल-रोटी, काम-काज, सीधा-सादा, जान-पहचान' का संयोजन **रूढ़ संयुक्त शब्द** बनाता है। इन दोनों संयोजनों में 'और' नहीं आता। मुहावरेदार प्रयोग में विपरीतार्थ शब्द होने पर भी संयोजन के समय 'और' नहीं आता, यथा—लड़के-लड़कियाँ (=युवा वर्ग), आना-जाना (=निकटता), लाल-पीली (=बहुरंगी)। 'और' वाक्यांश के भीतर की रचना में आता है। उर्दू के कुछ रूढ़ शब्दों में 'व, ओ' के रूप में व्यंजनांत शब्दों के साथ प्रत्ययवत् जुड़ जाता है, यथा—जानोमाल का ख़तरा था; नामोनिशान भी नहीं रहा; अजीबोग़रीब आदमी है; दिलोदिमाग़ से; ताजो तख्त; ऐशो आराम; रद्दो बदल; शैरो शायरी; सुबहो शाम; शर्मो हया; होशो हवास; आबो हवा। हिन्दी में यह उत्पादक प्रत्यय की भाँति प्रयुक्त नहीं हो सकता। 'ओ' से जुड़े शब्दों के मध्य (-) हाइफ़न नहीं आता। जुड़े हुए शब्द सामान्यत: अलग-अलग लिखे जाते हैं। हिन्दी में कहीं-कहीं 'तथा, एवं, और' के स्थान पर 'व' का प्रयोग मिलता है, यथा—कोठी व गाड़ी। 'और' वाक्यांश के भीतर के वर्गीय शब्दों को जोड़नेवाला योजक है, यथा—आज और कल; खेत और श्याम; आना और जाना; गंगा और यमुना आदि। 'आप और दहेज, यह तो सोचा भी नहीं जा सकता !' यहाँ 'आप, दहेज' भिन्नवर्गीय शब्द होते हुए भी वास्तव में दो गौण, संक्षिप्त उपवाक्य हैं, एक वाक्यांश के घटक नहीं हैं। 'गीता और सीता बहनें हैं' या 'राम और लक्ष्मण भाई हैं' जैसे वाक्यों के अतिरिक्त 'और' अन्तर्निहित उपवाक्यों का संयोजन करता है। अधिक शब्दों के स्थान पर एक शब्द के आने की गुंजाइश होने पर वाक्यांश में 'और' का प्रयोग, यथा—यह एक काला, चिपचिपा और गाढ़ा पदार्थ होता है। भिन्न अर्थ-क्षेत्र के विशेषण 'और' से नहीं जुड़ते, यथा—*काली और सफेद गाय; *दो और तीन वर्ष, *ठिगनी और लम्बी औरत (किन्तु 'शहर से आई हुई एक बनी-ठनी औरत)। इन में 'और' का स्थान 'या' ले सकता है, यथा—काली या सफेद गाय; दो या तीन वर्ष; दो-तीन वर्ष; ठिगनी या लम्बी औरत। एक उपवाक्य में क्रमिक घटनाओं की क्रियाओं का संयोजन सहज रूप से नहीं मिलता, यथा—ठीक है, मैं 25 को यहाँ आऊँगा, रात भर रुकूँगा और 26 को लौट जाऊँगा (*मैं 25 को यहाँ आऊँगा, रुकूँगा और लौटूँगा)। **'और' का संयोजकत्व** इन संदर्भों में दृष्टव्य है—1. कारण-कार्य संबंध, यथा—बाढ़ आई और सब कुछ बह गया। 2. क्रमिक घटना-क्रम, यथा—बहुएँ और बेटे एक-एक कर चले गए। 3. समकालिक घटना-क्रम, यथा—खिलौना कुदक रहा है और बच्चा ताली बजा रहा है। 4. विपरीत

घटना-क्रम, यथा—कितनी देर से चिल्ला रही हूँ और तुम हो कि सुनते ही नहीं। 5. तुलनात्मक स्थिति, यथा—देखा, उन का मुन्ना कितना शान्त था और तुम ! तुम ने तो वहाँ नाकों दम कर दिया। 6. भिन्न कर्तावाले उपवाक्य, यथा—आप कहें और हम न करें, ऐसा भी कभी हुआ है ! 7. तिरस्कार व्यंजना, यथा—मेरा भेजा मत चाटो, इसे यहीं रख दो और जाओ। 'और' के समानार्थी 'व' का प्रयोग बहुत कम है, 'एवं, तथा' संस्कृत से आए संयोजक हैं जिन का प्रयोग विशिष्ट शैली (संस्कृत-निष्ठ) में होता है। कभी-कभी एक ही वाक्य में कई 'औरों' की पुनरावृत्ति की खटक से बचने के लिए सामान्य बोलचाल की भाषा में एक-दो स्थानों पर 'एवं/तथा' का प्रयोग किया जा सकता है, यथा—नाच-गाने और खाने के आयोजन तथा (/एवं) पुरस्कार-प्राप्ति के कार्यक्रम में भाग लीजिए।

(ख) **समानाधारी वियोजक**—दो या अधिक समान स्तरीय शब्दों या उप-वाक्यों में विकल्प अर्थात् किसी एक के ग्रहण तथा दूसरे के त्याग का बोध करानेवाले समुच्चयबोधक अव्यय, यथा—जा रहे हो या यहीं बैठे रहोगे ? प्राचीन भारत की जानकारी के लिए रामायण अथवा महाभारत पढ़ना ही चाहिए। मैं तो जाऊँगी ही, भले आप नाराज़ हो जाएँ (/भले ही आप नाराज़ हो जाएँ, मैं तो जाऊँगी ही)। आप चाय पीएँगे कि (/या) कॉफ़ी ? तू यहाँ से भागता है कि (/या) नहीं ?। 'वा, किंवा, अथवा' शिष्ट साहित्यिक शैली में 'या' का स्थानापन्न है। 'कि' प्राय: प्रश्न वाक्यों में प्रयुक्त। अधूरे वाक्य के आरम्भ में 'भले', यथा—तुम्हारे जाने पर पिता जी नाराज़ हो जाएँगे। भले हों, मुझे उन की नाराज़गी की फ़िक्र नहीं। वियोजक शब्द हैं—या, वा, अथवा, किंवा, कि, चाहे···· चाहे, न····न, क्या····क्या, न कि, नहीं तो, या कि, भले (ही), चाहे···· अथवा, चाहे····या, चाहे····या न, या····या। 'किंवा' का प्रयोग संस्कृतनिष्ठ शैली में। 'या' वाक्यांश के भीतर की रचना में नहीं आता, उपवाक्य स्तर पर रहता है, यथा—करीम या शमीम में से कोई एक जाएगा (*करीम या शमीम जाएगा); तुम चपाती या चावल में से कोई एक चीज़ ही चुन सकते हो (*तुम चपाती या चावल ले सकते हो)। इन दोनों वाक्यों में एक-एक उपवाक्य की क्रिया का अध्याहार (/लोप) है। आप क्या लेंगे ?—दूध या लस्सी ? (आप दूध लेंगे या लस्सी लेंगे—*आप दूध या लस्सी लेंगे)। तुम अभी पढ़ोगे या सोओगे ? तू लीची खाएगा या चीकू ? तू जाता है या नहीं ? 'या····या' से दो विकल्पों की सूचना मिलती है, यथा—वह या तो बीमार है या छुट्टी पर। या तो हम समुद्र-तट पर चलें या कहीं चल कर चाय-पकौड़े लें। 'चाहे····या न' से एक विकल्प तथा उस की नकारात्मक स्थिति की सूचना मिलती है, यथा—चाहे तुम रुको या न रुको, मैं तो यहीं रुकूँगी। चाहे गैस आए या न आए, खाना तो बनाना ही होगा। (चाहे) वे आएँ या न आएँ, हमें (तो) स्वागत की पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए। 'क्या····क्या' वाक्य में दो या अधिक शब्दों का विभाजन व्यक्त करते हुए उन का समुच्चय करते हैं, यथा—क्या स्त्री क्या पुरुष, सब के मन उल्लसित थे। 'न····न' दो या अधिक शब्दों में से प्रत्येक का त्याग

सूचित करते हैं, यथा—उन दिनों न उन्हें नींद आती थी न भूख-प्यास लगती थी। न तुम स्वयं पढ़ते हो न दूसरों को पढ़ने देते हो। 'न कि' से प्रायः परवर्ती बात का निषेध होता है, यथा—तुम यहाँ कुछ ज्ञानार्जन के लिए आए हो न कि उद्दंड बनने। 'नहीं तो' से किसी बात के त्याग का फल सूचित होता है, यथा—मैं ने आँखों पर रंगीन चश्मा पहन रखा था, नहीं तो मैं बैल्डिंग की ओर कैसे देख सकता था।

(ग) **समानाधारी विरोधक**—दो वाक्यों में से पूर्ववर्ती वाक्य का निषेध, विरोध, अपवाद, विपरीत प्रतिक्रिया/दशा या सीमा सूचित करनेवाले अव्यय, यथा—वह डॉक्टर बनना चाहता था किन्तु ऐसा हो न सका। समझौते के लिए तो वे तैयार हैं मगर तुम तो मानते ही नहीं। विरोधक शब्द हैं—पर, परन्तु, लेकिन, मगर, किन्तु, वरन्, बल्कि, अपितु, वरना, अन्यथा, फिर, फिर भी, न कि, नहीं तो, नहीं····बल्कि, प्रत्युत। 'बल्कि' के दो अर्थ हैं—1. यह नहीं, वह 2. यही नहीं, वह भी। 'वरन्, प्रत्युत' 'बल्कि' के पर्याय हैं जिन का उच्च साहित्य में भी आजकल कम प्रयोग होने लगा है। विरोधक अनुरूपता, परिसीमन, भेद, सति, कारण आदि के विरोध को व्यक्त करते हैं, यथा—मास्टर जी से चुगली सीमा ने नहीं, बल्कि नीमा ने की थी। आज तो बाहर ही नहीं, बल्कि घर में भी सर्दी (/गर्मी) लग रही है। वे जी नहीं रहे (बल्कि) दिन पूरे कर रहे हैं। उन्हों ने जाने के लिए मना किया लेकिन वह माना ही नहीं। यह लुंगी सुन्दर तो है, लेकिन टिकाऊ नहीं है। मैं आना तो चाहता हूँ, लेकिन पिता जी नहीं आने देंगे। वह अच्छा गायक तो नहीं है लेकिन एक अच्छा वादक है। 'पर, परन्तु, किन्तु, लेकिन, मगर' लगभग पर्यायवाची हैं। 'किन्तु, वरन्' का प्रयोग प्रायः निषेधवाचक उपवाक्य के बाद होता है।

(घ) **समानाधारी परिमाणसूचक**—पहले वाक्य की क्रिया के परिणाम या (कारण-) कार्य की सूचना देनेवाले वाक्य के पूर्व आनेवाले अव्यय, यथा—ओले पड़े हैं अतः ठंड तो होगी ही। बारिश हो रही है, इसलिए बाज़ार नहीं जा पाएँगे। परिणामसूचक शब्द हैं—अतः, अतएव, इसलिए, सो, इसीलिए। 'अतः/अतएव/इसलिए/इसीलिए' से पूर्व कारणसूचक उपवाक्य आता है। 'इसलिए' के बदले कहीं-कहीं 'इस से, इस वास्ते, इस कारण, लिहाजा' का प्रयोग भी मिलता है। 'अतः/अतएव' का प्रयोग उच्च साहित्यिक हिन्दी में होता है। 'सो' का क्षेत्रीय प्रयोग मिलता है।

(ङ) **समानाधारी तुलनात्मक समुच्चयबोधक**—ये अव्यय यह व्यक्त करते हैं कि योजित सजातीय अंगों में से दूसरा शब्द या उपवाक्य पहले से अधिक महत्त्वपूर्ण है। तुलनात्मक समुच्चयबोधक अव्यय ये हैं—न सिर्फ······बल्कि (भी); न केवल······बल्कि (अपितु) (भी); न केवल नहीं······बल्कि; न केवल····वरन् (भी); केवल (ही) नहीं····बल्कि; (ही) नहीं····बल्कि (भी); ही नहीं····(भी); ही नहीं····पर (भी); ही नहीं····वरन् भी; नहीं (ही), यथा—वैष्णव हिन्दू न केवल मांस बल्कि मछली और अण्डे भी नहीं खाते। प्राचीन भारत न सिर्फ ज्ञान का भण्डार था बल्कि उद्योग-पूर्ण भी था। इस पुस्तक से न केवल अहिन्दी भाषी हिन्दी की व्यवस्था के बारे में जानेंगे वरन् हिन्दी मातृभाषा भाषी भी उस का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। अनुसूचित

जाति के छात्रों को अध्ययन काल में न केवल उच्चस्तरीय अंक न लाने की छूट है बल्कि उन्हें सरकारी वज़ीफ़ा भी मिलता है। वे गन्ना ही नहीं उगाते बल्कि गेहूँ भी पैदा करते हैं। वे विद्यावान् ही नहीं वरन् दयालु भी थे। बंगलौर कर्नाटक के ही नहीं, भारत के बड़े नगरों में से एक है।

(2) **असमानाधारी या व्यधिकरण समुच्चयादिबोधक**—वे अव्यय हैं जो किसी वाक्य में आए मुख्य तथा आश्रित उपवाक्यों को जोड़ते हैं, यथा—वह डॉक्टर न बन सका क्योंकि वह अनुत्तीर्ण हो गया था। यदि तुम नहीं आओगे तो मैं भी नहीं आऊँगा। इन वाक्यों में 'क्योंकि, यदि····तो' असमानाधारी समुच्चयादिबोधक अव्यय हैं।

संरचना तथा वितरण की दृष्टि से व्यधिकरण समुच्चयादिबोधक अव्यय तीन प्रकार के होते हैं—(क) सामान्य (सदैव संयुक्त व्यधिकरण वाक्यों के आश्रित उपवाक्यों में प्रयुक्त), यथा—कि, क्योंकि, ताकि, जब, मानो/मानों, गोया, यदि, यद्यपि, चाहे, ज्यों ही, जैसे ही। (ख) द्विपदी (एक संयुक्त व्यधिकरण वाक्य के प्रधान उपवाक्य में, दूसरा आश्रित उपवाक्य में आता है), यथा—जब········तो/तब; अगर/यदि········तो; कहीं········तो; यद्यपि········तथापि/तो भी/फिर भी/लेकिन; जहाँ····वहाँ। (ग) दो या अधिक शब्दों से बने शब्दबन्ध/संयुक्त शब्दबन्ध (कुछ का पहला भाग सदैव प्रधान उपवाक्य में संबंधवाचक शब्द के प्रकार्य में प्रयुक्त), यथा—इसलिए कि; इसलिए········कि; कि जिस से; कि जिस में; इस बात के बावजूद कि; जबकि, जब तक कि; यहाँ तक कि; इस तरह कि आदि।

अर्थ की दृष्टि से व्यधिकरण समुच्चयादिबोधक दो प्रकार के होते हैं—(क) विशिष्ट अर्थयुक्त—जिन का कोई ठोस या विशिष्ट अर्थ होता है। ये निश्चित आश्रित उपवाक्यों के साथ प्रयुक्त होते हैं, यथा—'क्योंकि, चूँकि' (कारणवाचक उपवाक्यों के साथ), 'ताकि' (मनोरथवाची उपवाक्यों के साथ), 'यद्यपि, चाहे, हालाँकि' (सति-अर्थवाची उपवाक्यों के साथ) (ख) सामान्य अर्थयुक्त—जो वाक्यगत प्रकार्य करते हुए विभिन्न आश्रित उपवाक्यों के साथ आते हैं, या—'कि' (उद्देश्य, विधेय, कर्म, विशेषक, कारण आदि) विभिन्न अर्थों के आश्रित उपवाक्यों को प्रधान उपवाक्य से जोड़ता है। तुलनाबोधक 'मानो' उद्देश्य, विशेषक, तुलनावाचक आदि से युक्त आश्रित उपवाक्यों को प्रधान उपवाक्य से जोड़ता है। कुछ व्याकरणों में इन्हें अर्थयुक्त, अर्थहीन कहा है। भाषा में अर्थहीन शब्दों का व्यवहार नहीं होता।

प्रकार्य की दृष्टि से व्यधिकरण/असमानाधारी समुच्चयादिबोधक अव्यय आठ प्रकार के माने जाते हैं—(अ) व्याख्यासूचक (आ) कारणसूचक (इ) उद्देश्य-सूचक (ई) कालसूचक (उ) स्थानसूचक (ऊ) तुलनासूचक (ए) संकेतसूचक (ऐ) सति अर्थसूचक।

(अ) **व्याख्यासूचक व्यधिकरण अव्यय**—एक उपवाक्य में आए पद या पद-बंध को स्पष्ट करनेवाले दूसरे उपवाक्य के पूर्व आनेवाले अव्यय, यथा—मन में आता है कि आज दिन भर सोती ही रहूँ। कितनी सुन्दर थी वह बच्ची, लगता था मानो स्वर्ग से उतरी हुई कोई नन्हीं-सी परी हो। इन अव्ययों को स्वरूपवाचक/स्वरूपबोधक भी कहा जाता है। व्याख्यासूचक शब्द हैं—कि, जो, जैसे, अर्थात्, याने/यानी, यहाँ तक कि, मानो। ये अव्यय उद्देश्य उपवाक्य, विधेय उपवाक्य, विशेषक उपवाक्य, कर्म उपवाक्य, रीतिवाचक, परिमाणवाचक, कोटिवाचक उपवाक्य को प्रधान उपवाक्य से जोड़ते हैं। 'कि' का कोई शाब्दिक अर्थ नहीं होता। 'जो' विशेषक का कार्य करता है। 'मानो, जैसे' अनुमान का पुट देते हैं। अच्छा हुआ जो तुम वापस आ गए। ऐसा लग रहा था जैसे वे कई महीने से बीमार हैं। इन अव्ययों को कुछ लोग 'स्वरूपवाचक' भी कहते हैं।

व्याख्यासूचक 'कि' किसी बात का आरम्भ या प्रस्तावना सूचित करता है, यथा—श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज अब आगे की कथा सुनिए। मुख्य उपवाक्य से पूर्व आए हुए आश्रित उपवाक्य का 'कि' अव्यक्त रहता है किन्तु उस समय मुख्य वाक्य में आश्रित वाक्य का कोई समानाधिकरण शब्द आया करता है, यथा—रबर किस से बनता है, **यह बात** बहुतों को मालूम नहीं होगी। परमेश्वर एक है, **यह** अनेक धर्मों की समान मान्यता है। 'कि' के अर्थ में 'जो' का प्रयोग आजकल बहुत कम होता है। पुरानी हिन्दी में प्रयोग है—'ऐसा न हो जो कोई आ जाए।' कभी-कभी मुख्य वाक्य में आए 'ऐसा, इतना, यहाँ तक' की व्याख्या 'कि' युत आश्रित उपवाक्य में होती है, यथा—जेबकट ऐसा भागा कि उस का पता ही न लगा।

(आ) **कारणसूचक व्यधिकरण अव्यय**—एक उपवाक्य के क्रिया-व्यापार के कारण का बोध करानेवाले (समर्थन करनेवाले) दूसरे उपवाक्य के पूर्व आनेवाले अव्यय, यथा—चूँकि, क्योंकि, इसलिए कि, इसलिए····कि, चूँकि····इसलिए (अल्प प्रचलित)। चूँकि वह बीमार है, अतः दौड़ में भाग नहीं लेगा। गहरे जल में मत जाओ क्योंकि तुम तैरना नहीं जानते। तुम यहाँ क्यों आए हो?—क्योंकि (/इसलिए कि) आपने बुलाया था। मैं ने ऐसा इसलिए पूछा कि आप की सुपुत्री को मैं ने कल किसी के साथ देखा था। 'चूँकि' कारणसूचक+कार्यसूचक उपवाक्य से पूर्व आता है। 'क्योंकि' के पहले कार्यसूचक उपवाक्य और बाद में कारणसूचक उपवाक्य आता है। एक ही वाक्य में 'क्योंकि, इसलिए कि' का प्रयोग अशुद्ध। इन अव्ययों को कुछ लोग हेतुबोधक भी कहते हैं।

(इ) **उद्देश्यसूचक व्यधिकरण अव्यय**—एक उपवाक्य के क्रिया-व्यापार के उद्देश्य (/मनोरथ) का बोध करानेवाले दूसरे उपवाक्य के पूर्व आनेवाले अव्यय, यथा—ताकि, जिस से कि, कि, इसलिए····कि, (कि) जिस से, (कि) जिस में, सो, जो। मैं ने स्वयं ही अपना नाम वापस ले लिया ताकि झगड़ा न हो। जल्दी जाओ जिस से कि ठीक समय पर पहुँच सको। ऐसे वाक्यों में कारण तथ्यपरक व्यापार

या वास्तविक घटना न हो कर (सदैव संभावनार्थ) तथ्येतर क्रिया होती है। 'ताकि' कार्य का प्रयोजन सूचित करता है, अतः कारण-कार्य वाक्य का कर्ता चेतन प्राणी रहता है। 'जिस से' वास्तविक कारण-कार्य बताता है, अतः जड़ कर्ता भी आ सकता है। 'जिस से कि' विधि में तथा तथ्येतर क्रियाओं के साथ प्रयुक्त, यथा—बच्चे का खाता इसलिए खुलवा दिया है कि वह इस बहाने पैसे जमा करना सीख जाए। वे आप के पास इसलिए आए हैं कि जिस से आप से कुछ गुप्त बातें की जा सकें। ज़ोर की लहर आई जिस से (/इसलिए) हम सभी भीग गए। इस वाक्य में उद्देश्य/मनोरथ के स्थान पर परिणाम की अभिव्यक्ति है)। 'यहाँ तक कि' अव्यय प्रधान उपवाक्य से परिणामवाची उपवाक्य को जोड़ते हैं, यथा—उस ने शराब पीना न छोड़ा यहाँ तक कि शनैः-शनैः आधी जायदाद बिक गई। उद्देश्यसूचक अव्ययों को मनोरथसूचक अव्यय भी कहते हैं। कुछ लोग इन्हें व्याख्यानवाचक भी कहते हैं। ये अव्यय कार्य-कारण संबंध व्यक्त करनेवाले समुच्चयादिबोधक हैं। उद्देश्यवाचक उपवाक्य मुख्य उपवाक्य से पूर्व आने पर बिना किसी समुच्चयबोधक के आता है, यथा—आप के कार्य में बाधा न पड़े, इसलिए मैं आप के पास नहीं रुका (= मैं आप के पास इसलिए नहीं रुका ताकि आप के कार्य में बाधा न पड़े); कभी-कभी मुख्य उपवाक्य में 'इसलिए' और उद्देश्यसूचक उपवाक्य में 'कि' का प्रयोग, यथा—इस बात की चर्चा मैं ने इसलिए की थी कि (/ताकि) उस की शंका दूर हो जाए। 'ताकि' के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यवाचक अव्यय अन्य अर्थों में भी आते हैं 'ताकि, कि' के अर्थ में 'जो' का प्रयोग केवल पुरानी हिन्दी में ही प्राप्त है, यथा—बाबा से समझा कर कहो जो मुझे ग्वालों के संग पठाय दें।

(ई) **कालसूचक व्यधिकरण अव्यय**—एक उपवाक्य के क्रिया-व्यापार के काल का बोध करानेवाले दूसरे उपवाक्य के पूर्व आनेवाले अव्यय, यथा – जब······तब (तो); तब ··· जब; जो····तब (तो); जब····तो; जब-जब····तब-तब; जब कभी; जब ··· उस समय; जब भी····तो; जब कभी····तो; जिस समय तब (तो); जिस समय····तो ; जबकि; जहाँ····तब; जब तक कि ··· तब; जब तक ··· तब तक, तब तक····जब तक, जब तक (कि); जब से····तब से; जैसे ही····(तो) वैसे ही; ज्यों ही····(त्यों ही); ज्यों-ज्यों····त्यों-त्यों; ज्यों ही; कि। मैं उस समय तक कोई निर्णय नहीं लूँगा जब तक पिता जी नहीं आ जाते। जब-जब वह मुझ से मिलती है, तब-तब किसी न किसी चीज़ की फ़रमायश करती है। 'जब, जो, जिस समय' दोनों उपवाक्यों के व्यापारों के समय का एक ही होना भी व्यक्त करते हैं तथा अलग-अलग होना भी।' 'जब तक' व्यापार-निष्पादन की सीमा इंगित करता है। 'ज्यों ही, जैसे ही' आश्रित उपवाक्य के व्यापार के तुरन्त बाद प्रधान उपवाक्य के व्यापार के होने की सूचना देते हैं। 'कि' आश्रित उपवाक्य के व्यापार/अवस्था के सहसा या अकस्मात् होने की सूचना देता है। 'जब, जबकि' समयवाची उपवाक्य के अतिरिक्त उद्देश्यसूचक उपवाक्य तथा विशेषक उपवाक्य को भी प्रधान उपवाक्य से जोड़

सकते हैं, यथा—एक वह दिन था जब हमारे घर सब कुछ था। यह पहला अवसर था जब कि मुझे उस के सामने हाथ पसारना पड़ा था। उस दिन की सभा में जब कि वह श्रोताओं पर छाया हुआ था, तुम ने ही उसे चेलेंज दिया था। जैसे ही कार घर के सामने आ कर रुकी, (तो) आसपास के लोग भी जमा होने लगे। अभी सूरज निकला भी न था कि बाबा की हालत ख़राब होने लगी।

(उ) **स्थानसूचक व्यधिकरण अव्यय**—एक उपवाक्य के क्रिया-व्यापार के स्थान का बोध करानेवाले दूसरे उपवाक्य के पूर्व आनेवाले अव्यय, यथा—जहाँ; जहाँ····वहाँ; जहाँ (से)····वहाँ (से); जहाँ भी····वहाँ; जहाँ कहीं····वहाँ/वहीं; जहाँ से····वहाँ से; जहाँ-जहाँ····वहाँ (वहाँ); जिधर····उधर; उधर····जिधर; जिधर···· इधर; इधर····जिधर। वह भागती हुई वटवृक्ष के निकट पहुँची जहाँ चार लोग बैठे हुए थे। जहाँ आज समुद्र हिलोरें मार रहा है, वहाँ कभी ऊँचे-ऊँचे पर्वत थे। वे जहाँ भी जाते, वहीं हज़ारों की भीड़ इकट्ठी हो जाती। तुम जहाँ हो, वहीं रहो। जहाँ कहीं भी दिखाई दे, वहीं उसे गोली मार दो। 'जहाँ, विधेय' विशेषक उपवाक्यों को भी जोड़ सकता है, यथा—राजस्थान में एक ऐसा स्थान भी है जहाँ सर्वाधिक गर्मी पड़ती है। भारत में अभी भी कुछ ऐसे विद्यालय हैं जहाँ श्यामपट भी नहीं है।

(ऊ) **तुलनासूचक व्यधिकरण अव्यय**—एक उपवाक्य के क्रिया-व्यापार के स्वरूप का बोध करानेवाले दूसरे उपवाक्य के पूर्व आनेवाले अव्यय, यथा—जैसे; मानो; जैसे (कि); (कि) जैसे; गोया। ये तुलनावाचक/रीतिवाचक/परिमाणवाचक/कोटिवाचक उपवाक्य को प्रधान उपवाक्य से जोड़ते हैं, यथा—वह ऐसे बोलती है जैसे (कोई) कोयल बोल रही है। आज भी ताजमहल चाँदनी रात में ऐसा दीखता है मानो कल ही बन कर तैयार हुआ है। तुम तो ऐसे काँप रही हो गोया तुम्हें मलेरिया हो। समानाधारी तथा असमानाधारी तुलनात्मक अव्यय शब्दों और उन के प्रकार्य की भिन्नता उदाहरणों से स्पष्ट है।

(ए) **संकेतसूचक व्यधिकरण अव्यय**—एक उपवाक्य के क्रिया-व्यापार के पूरा होने के बारे में शर्त या संकेत करनेवाले दूसरे उपवाक्य के पूर्व आनेवाले अव्यय, यथा—यदि····तो; चाहे····तो भी; यद्यपि····फिर भी; जो····तो; यद्यपि···· तथापि; चाहे····परन्तु; कि; या; तो भी; अगर····तो; जब····तो तब; अगरचे···· लेकिन; कहीं····तो; जहाँ····वहाँ; यद्यपि····तो भी; चाहे····लेकिन; गोकि, हालांकि। यदि वह नहीं आया तो काम नहीं बन पाएगा। यद्यपि मेरी कोई सिफ़ारिश नहीं थी फिर भी मुझे चुन लिया गया था। अगर हम पाँच मिनट भी लेट हो जाते तो हमें गाड़ी न मिलती। जो ऐसी इच्छा है तो आप को 'कन्नड सीखिए' पुस्तक ला दूँगा। कहीं वे न आएँ तो मुझे क्या करना होगा? उस ने शादी नहीं की, हालाँकि कई अच्छे घरों से उस के पास शादी के प्रस्ताव आए थे। 'यद्यपि····तथापि (/फिर भी) दो उपवाक्यों में कारण-विपरीत कार्य का संबंध दिखाते हैं। अगरचे ∠अगरचह

का प्रयोग 'यद्यपि' के प्रभाव के कारण सीमित हो गया है। आजकल 'हालाँकि, यद्यपि' के प्रयोग और अर्थ में अन्तर नहीं रह गया है। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक हिन्दी में संस्कृत के योजक युग्म 'यद्यपि·· तथापि' का प्रयोग बहुत होता था किन्तु उत्तरार्ध में इस युग्म का प्रयोग कम हो गया। 'यद्यपि' के साथ 'तथापि' का स्थान 'फिर भी' ने ले लिया है, यथा—यद्यपि उस के पास बहुत कम पैसे थे, फिर भी उस ने हिम्मत नहीं हारी। 'यद्यपि' को छोड़ने पर 'फिर भी' का प्रयोग अनिवार्य होता है, यथा—माँ ने मना किया था, फिर भी दीदी पड़ोसी के यहाँ टी० वी० देखने चली गई है। कारणसूचक वाक्य के साथ हालाँकि जुड़ता है, यथा—वह दौड़ में प्रथम न आ सकी, हालाँकि उस ने जी-जान एक कर दी थी। वे कभी शराब नहीं पीते, हालाँकि (/यद्यपि) उन की शराब की दुकान है। कभी-कभी 'हालाँकि' उपवाक्य के आरम्भ में भी आ सकता है, यथा—हालाँकि उन दिनों मेरे पास पैसे नहीं थे, फिर भी मैं ने मकान बनवाना शुरू कर दिया था।

कभी-कभी शर्तसूचक उपवाक्य का शर्तसूचक शब्द छोड़ दिया जाता है, यथा—(यदि/अगर) रुपये न मिलें तो तुम तुरन्त लौट कर सूचना देना। शर्तसूचक वाक्य दो प्रकार के होते हैं—(1) भावी घटनाओं के सन्दर्भवाले, यथा—यदि तुम आए (/आओ/आओगे), तो मेरा काम बन जायगा। आए/आओ तथ्येतर क्रियाएँ भावी घटना के सन्दर्भ में प्रयुक्त हैं। 'आए' घटित वास्तविक व्यापार का सूचक न हो कर भविष्य में उक्त व्यापार की पूर्णता के पूर्वानुमान (Presumption) के सन्दर्भ में है। हिन्दी की लगभग सभी क्रियाएँ 'अगर' से युक्त हो सकती हैं, यथा—अगर····खाता है, (/खा गया/नहीं खा सकता/खा चुका है/ खाया जा चुका है)। अगर वह सोया हुआ है तो ठीक है। अगर तुम ने फिर कभी गाली दी तो तुम्हारा सिर फोड़ दूँगा। इस प्रकार 'अगर' वाले वाक्य दो प्रकार के हैं—(क) प्रतिवक्तव्य के संबंध में प्रतिक्रिया व्यक्त करनेवाले (ख) कारण-कार्य संबंध दिखानेवाले। माँ पूछें तब न कुछ कहूँ, आप रुकेंगे तो मैं भी रुक जाऊँगा। $\sqrt{}$ + -ए का प्रयोग कामना, सुझाव, आशंका आदि सन्दर्भों में होता है। $\sqrt{}$ + -एगा का प्रयोग भविष्य में घटनीय व्यापार के अधिक पुष्ट अनुमान के सन्दर्भ में होता है। (2) बीते काल/समय के सन्दर्भवाले वाक्यों में सहायक क्रिया रहित कृदन्त रूप का प्रयोग होता है, यथा—अगर तेल होता तो खाना बन जाता (=तेल नहीं था, खाना नहीं बना)। घटित/अघटित व्यापार के सन्दर्भ में विपरीत व्यापार की स्थिति कारण-कार्य सम्बन्ध दिखाती है। भूतकाल का व्यापार वास्तविक होता है और तथ्यात्मक/निश्चयार्थवाला होता है। कल्पित व्यापार अवास्तविक, तथ्येतर और प्रायः नकारात्मक होता है। वास्तविक किन्तु अघटित नकारात्मक व्यापार की कल्पित स्थिति में निश्चयार्थ क्रिया होती है, यथा—आप चलते तो मैं भी चलता (=आप नहीं गए, मैं भी नहीं गया); आप न जाते तो मैं चला जाता (=आप गए, मैं नहीं गया), आप जाते तो मैं न जाता (=आप नहीं गए, मैं चला गया); आप न आते तो मैं न जाता (=आप आए, मैं चला गया)।

अगर आप कहते/आप ने कहा होता; अगर आप पत्र लिख देते/आप ने पत्र लिखा होता (पूर्ण पक्ष कृदन्त+होता)। उन्हों ने पहले से कहा होता, तो हम यहाँ न आते। काल्पनिक स्थितियों पर आधारित भूतकाल के सन्दर्भ में, यथा—अगर आप लड़की होते; अगर तुम भारत के प्रधानमन्त्री होते। ऐसे वाक्यों में वर्तमान की विपरीत स्थितियों में कल्पित स्थिति का उल्लेख होता है। इस रचना में निश्चित कल्पनाएँ व्यक्त की जाती हैं; यथा—आदमी के पंख, होते; चिड़ियों के चार पैर होते, समुद्र का पानी मीठा होता आदि।

बशर्ते/बशर्ते (कि) का अर्थ है 'इस शर्त पर (कि)। इस में 'कि' वैकल्पिक/ऐच्छिक है। इस के साथ सदैव संभावनार्थ क्रिया आती है, यथा—मैं वहाँ जाने के लिए तैयार हूँ (/था), बशर्ते (कि) मुझे दोनों ओर का किराया और खाने का ख़र्च मिल जाए (/मिल जाता)। पूर्ण पक्ष की क्रिया के साथ कार्य-कारण सम्बन्ध सूचित करते समय इस का प्रयोग नहीं होता। पूर्ण पक्ष में शर्त की सूचना के लिए सम्भावना से भिन्न रचना बनती है, यथा—मैं ने यह घड़ी इस शर्त पर ख़रीदी थी कि ज़रा भी समय में अन्तर बताने पर आप इसे वापस कर लेंगे।

(ऐ) सति-अर्थसूचक व्यधिकरण अव्यय—मुख्य उपवाक्य से सत्यर्थसूचक उपवाक्य को जोड़नेवाले समुच्चयबोधक अव्यय, यथा—यद्यपि, यद्यपि....तथापि (तो भी, फिर भी, लेकिन पर), चाहे....(लेकिन, परन्तु, पर) गो (कि), हालाँकि। अब मैं अधिक कुछ नहीं कहूँगा, यद्यपि कहने के लिए बहुत-सी बातें हैं। यद्यपि फ़ीस सेट जी दे रहे थे पर और भी कई ऊपरी ख़र्च थे। ड्यूटी पर तो पहुँचना ही होगा, चाहे आँधी आए या तूफ़ान। चाहे हमारी विचारधारा भिन्न है पर देश तो हम सब का है। मम्मी मुझे छोटे भाई के साथ ही जाने देती हैं गोकि वह अभी पाँच ही वर्ष का है। खेत कट रहे थे हालाँकि भीमा ने चोरी न करने की कसम खा रखी थी।

इन समानाधारी, असमानाधारी समुच्चयादिबोधकों के अतिरिक्त **'पूरक व्याख्यासूचक'** समुच्चयादिबोधक अव्यय 'यानी, अर्थात्' में समानाधिकरण तथा व्यधिकरण दोनों के व्याकरणिक अर्थ मिले होते हैं। ये सामान्य तथा संयुक्त वाक्य के अंगों को जोड़ते हैं किन्तु इन से न वाक्य आरम्भ होता है और न ये सजातीय अंगों को जोड़ते हैं। इन की पुनरुक्ति भी नहीं होती। संयुक्त वाक्य में ये व्याख्यापरक उपवाक्य के साथ आते हैं। पूरक व्याख्यासूचक अव्यय साधारण/संयुक्त वाक्य के दो भागों के मध्य व्याख्या का सम्बन्ध व्यक्त करते हैं। उत्तर भाग पूर्व भाग का स्पष्टक/व्याख्यापक होता है, यथा—3 फ़रवरी को यानी शुक्रवार को....। इस स्टेशन पर क़रीब हर मिनट-डेढ़ मिनट के अन्दर से गाड़ियाँ आती जाती हैं, अर्थात्/यानी एक घंटे में चालीस-पचास गाड़ियाँ चलती हैं। दक्षिण में कई स्वयंसेवी होटल हैं अर्थात् उन में बैरे नहीं होते, आप को स्वयं ही काउन्टर से अपना सामान उठाना पड़ता है।

नित्य सम्बन्धी समुच्चयादिबोधक प्रायः जोड़े के रूप में वाक्य में आते हैं, यथा—यदि⋯तो; जो⋯तो; यद्यपि⋯तथापि; जब⋯तब; ज्यों⋯त्यों; जहाँ⋯वहाँ; जिधर⋯उधर; जो भी⋯सो भी; अगर्चे⋯ताहम; न न; न सिर्फ⋯बल्कि (भी); न केवल⋯बल्कि (अपितु) (भी); न केवल नहीं⋯बल्कि; न केवल वरन् (भी); केवल (ही) नहीं⋯बल्कि; (ही) नहीं⋯बल्कि (भी); ही नहीं⋯(भी); ही नहीं⋯पर (भी); ही नहीं⋯वरन् भी; या (तो)⋯या; चाहे चाहे; क्या⋯क्या; चाहे⋯या; चाहे⋯अथवा; जब⋯तो; अगर⋯तो; कहीं⋯तो; इसलिए⋯कि; चूँकि⋯इसलिए; तब⋯जब; जो⋯तब (तो); जब-जब⋯तब-तब; जब भी⋯तो; जब कभी⋯तो; जब⋯उस समय; जिस समय⋯तब (तो); जब तक⋯तब तक; तब तक⋯जब तक; जब से⋯तब से; ज्यों ही⋯(त्यों ही); जैसे ही⋯(तो) वैसे ही; जहाँ से⋯वहाँ (से); जहाँ कहीं⋯वहाँ; जहाँ भी⋯वहाँ; उधर⋯जिधर; जहाँ-जहाँ⋯वहाँ-वहाँ; कहीं⋯तो।

7. **मनोभावबोधक (/विस्मयादिबोधक) अव्यय**—वक्ता के लहजे (उच्चारण-सुर) के साथ विस्मय, हर्ष, शोक, ग्लानि, लज्जा, स्वीकृति, तिरस्कार, सम्बोधन, अनुमोदन, व्यंग्य आदि मनोभावों की सूचना देनेवाले शब्द (कभी-कभी शब्द-वाक्य भी) मनोभावबोधक कहलाते हैं। यथा—हे राम ! मैं मरा। शाबाश ! ऐसे ही खेलते जाओ। इन्हें द्योतक, आवेगी या विस्मयादिबोधक भी कहा जाता है। ये अव्यय मनोभावों (उद्‌गारों, सांकल्पिक, प्रेरणादि) को व्यक्त करते हैं, उन्हें नामोद्दिष्ट नहीं करते। ये न तो स्वतन्त्र शब्द हैं, और न सहायक शब्द। वाक्य की व्याकरणिक संरचना में इन का कोई स्थान नहीं होता। ये अन्य स्वतन्त्र शब्दों की भाँति अभिधान प्रकार्य नहीं करते और न इन का रूपान्तर होता है। ये सहायक शब्द-भेदों की भाँति कोई व्याकरणिक संबंध भी व्यक्त नहीं करते क्योंकि ये वाक्यगत बंधनों से मुक्त होते हैं। इन के साथ शब्द-निर्माणक प्रत्ययों का योग नहीं होता, साथ ही इन के उच्चारण का विशेष अनुतान होता है। ये **व्युत्पन्न** (जिन का दूसरे शब्द-भेदों से सहसंबंध होता है) तथा **अव्युत्पन्न** (जिन का दूसरे शब्दभेदों से सहसंबंध नहीं होता) होते हैं। व्युत्पन्न मनोभावबोधक कुछ विशिष्ट संज्ञा, विशेषण, क्रिया, स्थानसूचक, प्रश्नसूचक शब्दों से बन सकते हैं। उस क्षण वे केवल भावनाएँ, उद्‌गार या प्रेरणा व्यक्त करते हैं, अपना अभिधान प्रकार्य नहीं, यथा—अफ़सोस, राम-राम (संज्ञा), अच्छा, बहुत अच्छा (विशेषण), लो, जियो (क्रिया-रूप), दूर (स्थानसूचक), क्या, क्यों (प्रश्नसूचक), जी (निपात), क्या ख़ूब (शब्द-बंध)। अव्युत्पन्न मनोभावबोधक प्रायः पुनरुक्त होते हैं, यथा—वाह-वाह !; 5. छि-छि; तौबा-तौबा ! हिन्दी के कई मनोभावबोधक बहुअर्थी हैं तथा विभिन्न उद्‌गार व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। **प्रकार्य/अर्थ के आधार** पर मनोभावबोधकों को प्रमुख चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—1. उद्‌गार व्यक्तक, 2. विभिन्न संकल्प,

अगर आप कहते/आप ने कहा होता; अगर आप पत्र लिख देते/आप ने पत्र लिखा होता (पूर्ण पक्ष कृदन्त+होता)। उन्हों ने पहले से कहा होता, तो हम यहां न आते। काल्पनिक स्थितियों पर आधारित भूतकाल के सन्दर्भ में, यथा—अगर आप लड़की होते; अगर तुम भारत के प्रधानमन्त्री होते। ऐसे वाक्यों में वर्तमान की विपरीत स्थितियों में कल्पित स्थिति का उल्लेख होता है। इस रचना में निश्चित कल्पनाएँ व्यक्त की जाती हैं; यथा—आदमी के पंख, होते; चिड़ियों के चार पैर होते, समुद्र का पानी मीठा होता आदि।

बशर्ते/बशर्ते (कि) का अर्थ है 'इस शर्त पर (कि)। इस में 'कि' वैकल्पिक/ऐच्छिक है। इस के साथ सदैव संभावनार्थ क्रिया आती है, यथा—मैं वहाँ जाने के लिए तैयार हूँ (/था), बशर्ते (कि) मुझे दोनों ओर का किराया और खाने का खर्च मिल जाए (/मिल जाता)। पूर्ण पक्ष की क्रिया के साथ कार्य-कारण सम्बन्ध सूचित करते समय इस का प्रयोग नहीं होता। पूर्ण पक्ष में शर्त की सूचना के लिए सम्भावना से भिन्न रचना बनती है, यथा—मैं ने यह घड़ी इस शर्त पर ख़रीदी थी कि ज़रा भी समय में अन्तर बताने पर आप इसे वापस कर लेंगे।

(ऐ) **सति-अर्थसूचक व्यधिकरण अव्यय**—मुख्य उपवाक्य से सत्यर्थसूचक उपवाक्य को जोड़नेवाले समुच्चयबोधक अव्यय, यथा—यद्यपि, यद्यपि····तथापि (तो भी, फिर भी, लेकिन पर), चाहे····(लेकिन, परन्तु, पर) गो (कि), हालाँकि। अब मैं अधिक कुछ नहीं कहूँगा, यद्यपि कहने के लिए बहुत-सी बातें हैं। यद्यपि फ़ीस सेठ जी दे रहे थे पर और भी कई ऊपरी ख़र्च थे। ड्यूटी पर तो पहुँचना ही होगा, चाहे आँधी आए या तूफ़ान। चाहे हमारी विचारधारा भिन्न है पर देश तो हम सब का है। मम्मी मुझे छोटे भाई के साथ ही जाने देती हैं गोकि वह अभी पाँच ही वर्ष का है। खेत कट रहे थे हालाँकि भीमा ने चोरी न करने की कसम खा रखी थी।

इन समानाधारी, असमानाधारी समुच्चयादिबोधकों के अतिरिक्त **'पूरक व्याख्यासूचक'** समुच्चयादिबोधक अव्यय 'यानी, अर्थात्' में समानाधिकरण तथा व्यधिकरण दोनों के व्याकरणिक अर्थ मिले होते हैं। ये सामान्य तथा संयुक्त वाक्य के अंगों को जोड़ते हैं किन्तु इन से न वाक्य आरम्भ होता है और न ये सजातीय अंगों को जोड़ते हैं। इन की पुनरुक्ति भी नहीं होती। संयुक्त वाक्य में ये व्याख्यापरक उपवाक्य के साथ आते हैं। पूरक व्याख्यासूचक अव्यय साधारण/संयुक्त वाक्य के दो भागों के मध्य व्याख्या का सम्बन्ध व्यक्त करते हैं। उत्तर भाग पूर्व भाग का स्पष्टक/व्याख्यापक होता है, यथा—3 फ़रवरी को यानी शुक्रवार को····। इस स्टेशन पर क़रीब हर मिनट-डेढ़ मिनट के अन्दर से गाड़ियाँ आती जाती हैं, अर्थात्/यानी एक घंटे में चालीस-पचास गाड़ियाँ चलती हैं। दक्षिण में कई स्वयंसेवी होटल हैं अर्थात् उन में बैरे नहीं होते, आप को स्वयं ही काउन्टर से अपना सामान उठाना पड़ता है।

नित्य सम्बन्धी समुच्चयादिबोधक प्राय: जोड़े के रूप में वाक्य में आते हैं, यथा—यदि……तो; जो……तो; यद्यपि……तथापि; जब……तब; ज्यों……त्यों; जहाँ…… वहाँ; जिधर……उधर; जो भी…… सो भी; अगर्चे……ताहम; न न; न सिर्फ…… बल्कि (भी); न केवल……बल्कि (अपितु) (भी); न केवल नहीं……बल्कि; न केवल वरन् (भी); केवल (ही) नहीं……बल्कि; (ही) नहीं……बल्कि (भी); ही नहीं……(भी); ही नहीं……पर (भी); ही नहीं……वरन् भी; या (तो)……या; चाहे चाहे; क्या…… क्या; चाहे……या; चाहे……अथवा; जब……तो; अगर…… तो; कहीं……तो; इसलिए……कि; चूँकि……इसलिए; तब……जब; जो……तब (तो); जब-जब……तब-तब; जब भी……तो; जब कभी……तो; जब……उस समय; जिस समय……तब (तो); जब तक……तब तक; तब तक……जब तक; जब से……तब से; ज्यों ही……(त्यों ही); जैसे ही……(तो) वैसे ही; जहाँ से……वहाँ (से); जहाँ कहीं……वहाँ; जहाँ भी……वहाँ; उधर……जिधर; जहाँ-जहाँ……वहाँ-वहाँ; कहीं……तो ।

7. **मनोभावबोधक (/विस्मयादिबोधक) अव्यय**—वक्ता के लहजे (उच्चारण-सुर) के साथ विस्मय, हर्ष, शोक, ग्लानि, लज्जा, स्वीकृति, तिरस्कार, सम्बोधन, अनुमोदन, व्यंग्य आदि मनोभावों की सूचना देनेवाले शब्द (कभी-कभी शब्द-वाक्य भी) मनोभावबोधक कहलाते हैं। यथा—हे राम ! मैं मरा। शाबाश ! ऐसे ही खेलते जाओ। इन्हें द्योतक, आवेगी या विस्मयादिबोधक भी कहा जाता है। ये अव्यय मनोभावों (उद्गारों, सांकल्पिक, प्रेरणादि) को व्यक्त करते हैं, उन्हें नामोद्दिष्ट नहीं करते। ये न तो स्वतन्त्र शब्द हैं, और न सहायक शब्द। वाक्य की व्याकरणिक संरचना में इन का कोई स्थान नहीं होता। ये अन्य स्वतन्त्र शब्दों की भाँति अभिधान प्रकार्य नहीं करते और न इन का रूपान्तर होता है। ये सहायक शब्द-भेदों की भाँति कोई व्याकरणिक संबंध भी व्यक्त नहीं करते क्योंकि ये वाक्यगत बंधनों से मुक्त होते हैं। इन के साथ शब्द-निर्माणक प्रत्ययों का योग नहीं होता, साथ ही इन के उच्चारण का विशेष अनुतान होता है। ये **व्युत्पन्न** (जिन का दूसरे शब्द-भेदों से सहसंबंध होता है) तथा **अव्युत्पन्न** (जिन का दूसरे शब्दभेदों से सहसंबंध नहीं होता) होते हैं। व्युत्पन्न मनोभावबोधक कुछ विशिष्ट संज्ञा, विशेषण, क्रिया, स्थानसूचक, प्रश्नसूचक शब्दों से बन सकते हैं। उस क्षण वे केवल भावनाएँ, उद्गार या प्रेरणा व्यक्त करते हैं, अपना अभिधान प्रकार्य नहीं, यथा—अफ़सोस, राम-राम (संज्ञा), अच्छा, बहुत अच्छा (विशेषण), लो, जियो (क्रिया-रूप), दूर (स्थानसूचक), क्या, क्यों (प्रश्नसूचक), जी (निपात), क्या खूब (शब्द-बंध)। अव्युत्पन्न मनोभावबोधक प्राय: पुनरुक्त होते हैं, यथा—वाह-वाह !; 5. छि-छि; तौबा-तौबा ! हिन्दी के कई मनोभावबोधक बहुअर्थी हैं तथा विभिन्न उद्गार व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। **प्रकार्य/अर्थ के आधार** पर मनोभावबोधकों को प्रमुख चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—1. उद्गार व्यक्तक, 2. विभिन्न संकल्प,

प्रेरणादि व्यक्तक, 3. सम्भाषी-कथन प्रतिक्रिया व्यक्तक, 4. अभिवादन, आभार, कामनादि व्यक्तक। इन वर्गों के उपवर्ग ये हैं—

(1) **उद्‌गार व्यक्तक पाँच प्रकार के होते हैं**—(क) विस्मय सूचक, यथा—उफ़ !, ऐं ! ऐ ! आहा ! ओ हो ! है ! हैं ! क्यों ! क्या ! ओह ! अहो ! वाह ! सच ! अरे ! अच्छा ! अजी ! ओ ! (उफ़, कितनी भीड़ है ! ओ हो, इतना दिन चढ़ आया) (ख) अनुमोदन, प्रोत्साहन, हर्ष, संतोष, प्रशंसासूचक, यथा—ठीक ! वाह ! अच्छा ! हाँ-हाँ ! जी हाँ ! हाँ ! हूँ ! ठीक-ठीक ! भला ! अवश्य ! आहा ! अहाहा ! अहा ! वाह-वाह ! धन्य-धन्य ! शाबाश ! वाह वा ! ओह ! ख़ूब !, बहुत अच्छा ! (क्या) ख़ूब ! (वाह-वाह, कितना अच्छा हुआ !, ओह ! याद आ गया) (ग) भय, सहायता पुकार सूचक, यथा—आह ! दुहाई ! बाप रे ! राम-राम ! (दुहाई, बचाओ !) (घ) खेद, दुःख, शोक, व्यथा, वेदना, थकान, झुँझलाहटसूचक, यथा—अफ़सोस ! आह ! हाय ! ओह ! हा-हा ! बाप रे ! राम रे ! हे राम ! त्राहि-त्राहि ! हा दैव ! उह ! उफ़ ! दैया रे ! मैया री ! राम-राम ! तौबा(-तौबा) ! हा ! अरे रे ! ओफ़ ! काश ! (उफ़ ! कितना थक गया हूँ। हाय-हाय ! अब मैं कहाँ जाऊँ ?) (ङ) घृणा, तिरस्कार, प्रताड़नासूचक, यथा—उफ़ ! छि ! छी ! थू ! छी-छी ! दुर ! धिक् ! धिक्कार ! चुप ! हुश ! हट ! राम-राम ! मुर्दाबाद ! (छि ! ज़रा भी शर्म नहीं। चुप ! कितनी गंदी बातें करते हो)।

(2) **विभिन्न संकल्प, प्रेरणादि व्यक्तक छह प्रकार के होते हैं**—(क) असम्पर्क-इच्छासूचक, यथा—हट ! दूर ! हुश ! (ख) चेतावनीसूचक, यथा—ख़बरदार ! सावधान ! (ख़बरदार, जो एक क़दम भी आगे बढ़े तो तुम्हारे बॉस को गोली मार दूँगा)। (ग) ध्यानाकर्षण सूचक, यथा—ए ! ऐ ! ओ ! अबे ! अरी ! अजी ! अरे ! अहे ! अहो ! ओ ! रे ! री ! हे ! (अजी, सुन रहे हो अपनी लाड़ली की फ़रमायश ?)। (घ) निश्चेष्टता/निश्शब्दता सचेतक, यथा—चुप ! बस ! हैं ! शी-शी ! लो ! (चुप ! मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता)। (ङ) ग्रहणार्थ प्रेरणासूचक यथा—ले ! लो ! (लो ! मैं तुम्हारी मम्मी को नहीं बताऊँगी)। (च) समूहार्थ प्रेरणासूचक, यथा—आओ ! आइए ! लाओ ! चलो ! (आओ ! हम दोनों कहीं भाग चलें)।

(3) **सम्भाषी-कथन प्रतिक्रिया व्यक्तक** तीन प्रकार के होते हैं—(क) स्वीकृति सूचक, यथा—अच्छा ! बहुत अच्छा ! ठीक ! हाँ ! हाँ-हाँ ! हूँ ! सही!; (तुम तैयार हो न ?—हूँ !) (ख) अस्वीकृतिसूचक, यथा—ऊँहूँ ! न ! न-न ! (ग) व्यंग्यसूचक, यथा—भला ! हूँ !

(4) **अभिवादन, आभार, कामनादि व्यक्तक** तीन प्रकार के होते हैं—(क) अभिवादनसूचक, यथा—नमस्कार ! नमस्ते ! राम-राम ! प्रणाम ! बंदगी ! सलाम ! हलो ! (नमस्ते ! मैं चला)। (ख) संबोधनसूचक, यथा—कृपया, कृपा कर के, मेहरबानी करके, ज़रा, (कृपया, थोड़ी देर प्रतीक्षा करें)। (ग) आभार, शुभ-

कामना, आशीर्वादादि सूचक, यथा—धन्यवाद ! शुक्रिया ! थैंक यू ! भला हो ! जय हो ! जियो ! जीते रहो ! दीर्घायु हो ! चिरंजीव ! ज़िन्दाबाद ! मुबारकबाद ! (धन्यवाद !/शुक्रिया ! आप के सहयोग के लिए अनेकश; धन्यवाद) ।

मनोभावबोधकत्व होने पर ही कोई संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय, शब्द-वाक्य विस्मयादिबोधक में गणनीय होता है, यथा—हाय-हाय ! मैं तो लुट गई (विस्मयादिबोधक)—क्यों हाय-हाय मचा रखी है ? (संज्ञा); सारी जनता त्राहि-त्राहि पुकार उठी (संज्ञा)—सर्वनाश ! मैं तो लुट गया (विस्मयादिबोधक)। हिन्दी में 'अच्छा' की तरह 'राम-राम' पुनरुक्त शब्द का प्रयोग कई सन्दर्भों में प्राप्त है—(1) अभिवादन—राम-राम ! चौधरी साहब ! (2) विदा—अच्छा पंचो ! (हम चले) राम-राम । (3) समवेदना—राम-राम ! बेचारी बेहोश हो गई (4) घृणा—राम-राम ! ब्राह्मण, और ये कर्म ! (5) हल्की प्रताड़ना—राम-राम, पापा से कहीं खुट्टी करते हैं ? (6) स्वयं को सही सिद्ध करने की भावना—कल की एक किलो चीनी आठ सौ ग्राम ही बैठी है, सेठ जी !—राम-राम ! आप भी कैसी बातें करते हैं, बाबू जी ! हमारी दुकान पर कभी ऐसा हुआ है ? (7) दुःख प्रकट करना—(अवरोही स्वर में) राम-राम ! बड़े दुःख का समाचार सुनाया आप ने । (8) प्रशंसायुक्त विस्मय—(आरोही स्वर में) राम-राम ! इतनी छोटी बच्ची ने इतना बड़ा इनाम पाया ! (9) प्रार्थना/भजन आदि के सन्दर्भ में—कब्र में पैर लटकाए बैठी हो, सुबह-शाम राम-राम ही भजा करो । (10) सन्तोष रखने हेतु—राम-राम कहो, जो मिला है, कम नहीं है । (11) कार्य-कठिनाई संकेत—राम-राम कर के बेटी की शादी के लिए चार पैसे जोड़े थे कि पिता जी चल बसे । (12) अपशब्द-कथन वर्जना—शायद यह मेरी आप के साथ आख़िरी मुलाक़ात हो—राम-राम, ऐसी बुरी बात कहते हैं ? (13) पर-कथन खण्डन/प्रतिवाद—अरे-अरे, तुम भी क्या कह रहे हो ? राम-राम कहो (/राम का नाम लो) ।

वाक्य विधान में मनोभावबोधकों से कोई सहायता न मिलने के कारण वाक्य-संरचना स्तर पर इन का विशेष महत्त्व नहीं है । वाक्य के अर्थ की अपेक्षा अधिक तीव्र भाव-सूचन की आवश्यकता होने पर ही इन का प्रयोग किया जाता है । 'अब आप क्या करेंगे ?' वाक्य वक्ता की अभीप्सित भावना/दृष्टि से प्रश्नवाचक, शोकसूचक, समवेदनासूचक, चिन्तासूचक हो सकता है । यदि शोक, समवेदना या चिन्ता की तीव्रता भी सूचित करनी हो तो इस वाक्य से पूर्व 'हाय ! /ऐं ! /है !' जोड़ देते हैं । विस्मयादिबोधक संरचना की दृष्टि से शब्द होते हुए भीअर्थ-स्तर पर शब्द-वाक्य होते हैं । विस्मयादिबोधक अव्यय व्यक्ति के हाव-भावों के द्वारा व्यक्त मनोविकारों की अपूर्ण भाषिक अभिव्यक्ति है । कभी-कभी पूरा वाक्य या वाक्यांश भी मनोभावबोधन का काम करता है, यथा—क्या कहना ! बहुत अच्छा ! क्या बात है ! धन्य महाराज ! सर्वनाश हो गया ! मरी री ! चल हट, निपूती !

आदि। सभी मनोभावबोधक वाक्यों, वाक्यांशों को विस्मयादि बोधक अव्ययों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

8. **उपसर्ग**—(इन की चर्चा 'शब्द तथा रूप व्यवस्था' खण्ड के अध्याय 12 'शब्द-रचना' में की जा चुकी है।)

9. **प्रत्यय**—(इन की चर्चा 'शब्द तथा रूप व्यवस्था' खण्ड के अध्याय 12 'शब्द-रचना' में की जा चुकी है।)

10. **निपात**—वे सहयोगी अव्यय जिन से वाक्य या उस के किसी अंग को विशिष्ट अर्थच्छटा प्राप्त होती है। निपात का प्रयोग किसी शब्द, पदबन्ध या उपवाक्य विशेष को अतिरिक्त भावार्थ (बल या विशिष्टता) प्रदान करने के लिए किया जाता है, यथा—ही, भी, तो, न आदि। (डॉ० वी. रा. जगन्नाथन ने 'प्रयोग और प्रयोग' में केवल सात निपात माने हैं—ही, भी, तो, तक, न, भर, भला। इन में 'ही, भी, तो, तक' उपवाक्य या वाक्य स्तर से ऊपर के प्रयोग हैं। संवाद-स्तर पर इन से दो वाक्यों का अन्तःसंबंध व्यक्त होता है। बिना सन्दर्भ के सरल वाक्यों में इन का प्रयोग नहीं होता। 'न, भर, भला' सरल वाक्य/उपवाक्य के भीतर आ सकते हैं क्योंकि ये उस उपवाक्य के कथन को विशिष्ट अर्थ प्रदान करते हैं।) कभी-कभी कुछ निपात कुछ व्याकरणिक प्रकार्य भी कर सकते हैं। अन्य सहायक शब्द-भेदों (परसर्ग, समुच्चयादिबोधक) से निपात इस रूप में भिन्न हैं कि उन का निश्चित व्याकरणिक प्रकार्य होता है। वे वाक्यों में शब्दार्थी-वाक्यगत संबंधों की सिद्धि करते हैं, जबकि निपात अभिधान (nominative) प्रकार्य नहीं करते, अतः ये अपने सामान्य प्रयोग में वाक्य के अंग नहीं बनते। जिन निपातों का संज्ञाकरण होता है, वे वाक्य के निश्चित अंगों का कार्य करते हैं, यथा—तब सब उस की "हाँ में हाँ' मिलाने लगे। तुम 'न' नहीं कहोगे। इन में 'हाँ में हाँ', 'न' निपात नहीं संज्ञावत् प्रयुक्त हैं। निपात सहयोगी अव्यय होते हुए भी मूल वाक्य-संरचना के अंग नहीं बनते, बल्कि वे अपनी प्रयोग-विशेषता के कारण वाक्य के समग्र अर्थ को प्रभावित करते हैं। निपातों की सहायता से प्रश्न, अस्वीकृति/नकारता, भावनात्मक रुख, बल आदि की अभिव्यक्ति होती है, यथा—बच्ची सो गई है **न**? (प्रश्न), मैं कल सारी रात **नहीं** सोया। (नकारता), **क्या** सुन्दर फूल है! (भावनात्मक रुख), तू अभी **तक** यहीं बैठा है। (बल)। निपात वाक्य में ध्यानाकर्षित शब्द/शब्दबंध के पूर्व या पश्चात् आ सकते हैं। ये संबंधित शब्द के साथ आए परसर्ग से पूर्व या पश्चात् आ सकते हैं, यथा—मुझ **तक** को **तो** उस ने बुलाया नहीं। यही हाल हमारे घर का **भी** है। जटिल परसर्गों के घटकों के मध्य भी निपात आ सकते हैं, यथा—छात्र प्रोफेसर के **भी** खिलाफ़ नारे लगाते रहे। शब्दबंधों या क्रिया के विश्लिष्ट रूपों के अर्थ पर बल देने के लिए एक/दो/तीन निपात संबंधित शब्दबंध/क्रियापद के घटकों के मध्य आ सकते हैं, यथा—क्या आज दिन भर सोते **ही** रहोगे? आज

हम पाँच-छह किलोमीटर पैदल चल कर **भी तो** आए हैं। सिवाय इस के मैं कुछ कर **भी तो** नहीं सकती।

वितरण की दृष्टि से निपात वाक्य के आरम्भ में, अन्त में और वाक्य-मध्य में ध्यानाकर्षित शब्द/शब्दबन्ध के पूर्व या पश्चात् आ सकते हैं। कुछ निपात (यथा—मात्र, ही, भर) सीमाबद्धक होते हैं तथा कुछ (यथा—भी, तो, तक) समाहारक। निरुक्तकार यास्क के अनुसार 'निपात' शब्द के कई अर्थ हैं, इसीलिए ये निपात कहलाते हैं--उच्चावच्चेषु अर्थेषु निपातन्नीति निपाताः (नि० 1/2)। निपाद पाद-पूरक भी होता है—निपाताः पादपूरणः। निपात लिंग, वचन की दृष्टि से उदासीन होता है क्योंकि यह अव्यय वर्ग का है। यास्क ने तीन प्रकार के निपात बताए हैं—उपमार्थक, कर्मोपसंग्रहार्थक, पदपूरणार्थक। निपातों में प्रयोग-सन्दर्भ से सार्थकता उत्पन्न हो जाती है। निपातों को शुद्ध अव्यय भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि संज्ञादि के साथ प्रयुक्त अन्य अव्ययों का अपना अर्थ होता है, किन्तु निपातों का प्रयोग निश्चित शब्द, शब्दबंध/पदबन्ध, वाक्य को विशेष भावार्थ प्रदान करने के लिए होता है। निपात सम्बद्ध शब्दादि को निम्नलिखित अर्थ-वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं—(1) स्वीकृति (हाँ, जी, जी हाँ, हाँ जी, हूँ), (2) अस्वीकृति (नहीं, जी नहीं, नहीं, न, ना, नाहीं, भला), (3) निषेध (मत), (4) प्रश्न (क्या, क्यों, न, ना), (5) विस्मय (क्या, काश), (6) तुलनार्थक बल (सा), (7) आदर (जी), (8) ध्यानाकर्षक सीमा (भर, सिर्फ, केवल, मात्र), (9) बलार्थक सीमा (तो, ही, भी, तक, जो, न, ना) (10) अवधारण (ठीक), (11) निर्देश (ले, लो)। अवधारणा तथा बल प्रदान करनेवाले निपातों को 'प्रबलक' भी कहते हैं। अस्वीकृति सूचकों को 'नकारात्मक' भी कहा जाता है।

हिन्दी वाक्यों/वाक्यांशों में एक से अधिक निपात आ सकते हैं, यथा—आप ने ही तो ऐसा कहा था। आप (/हम) को भी तो वहाँ जाना है। तुम ही क्यों, वह भी तुम्हारे साथ जाएगी। पिता जी तो चलेंगे ही, तुम भी चलो न! इतने पैसों में तुम्हें किराये पर कोठी तो मिलेगी नहीं; हाँ, फ्लैट मिल सकता है।

निपात-प्रयोग—उपर्युक्त निपातों में से कुछ (न, नहीं, ही, भी, तो) विभिन्न भाव, उद्गार व्यक्त करने के अतिरिक्त अनिश्चयवाचक सर्वनाम, क्रियाविशेषण, समुच्चयबोधकादि का कार्य भी कहते हैं। विभिन्न निपातों का प्रयोग इस प्रकार होता है—

(1) "**स्वीकृतिवाची निपात-प्रयोग**—**(क)** प्रश्न का स्वीकारार्थक उत्तर, कथन-पुष्टि, विचार का ठीक/सही होना आदि व्यक्त करते हैं तथा वाक्यारम्भ में आते हैं। 'हाँ' से सामान्य स्वीकृति, यथा—तुमने खाना खा लिया ?—हाँ। वह भी साथ चल रही है क्या ?—हाँ। **(ख)** 'हाँ' की पुनरुक्ति स्वीकृति को और अधिक सशक्त बनाती है, यथा—सूरज छिपने तक लौट आओगे न ? —हाँ-हाँ, लौट आऊँगा, वायदा रहा। **(ग)** 'जी' से सम्मानसूचक स्वीकृति, यथा—तुम ने खाना खा लिया ?

—जी। वह भी साथ चल रही है क्या?—जी। (घ) 'जी हाँ' सम्मानपूर्वक स्वीकृति, यथा—तुम ने खाना खा लिया?—जी हाँ। वह भी साथ चल रही है क्या? —जी हाँ। (ङ) 'हाँ जी' 'जी हाँ' का पंजाबी लहजा। (च) 'हूँ' कभी-कभी उत्तम पुरुष के रूप में दिया गया स्वीकृतिसूचक उत्तर, यथा—सुन रही हो न? हूँ।

(2) **अस्वीकृतिवाची निपात-प्रयोग**—सामान्यत: वाक्य के कथन को नकारने (/अस्वीकार करने) के समय संक्षिप्त वाक्य (/वाक्यारम्भ, वाक्य-मध्य, वाक्यांत) में। (क) 'नहीं' निश्चयार्थक क्रियायुक्त (खाता है, खा रहा है, खाया, खाएगा; है, चाहिए, सक, पा) वर्तमान, भूत के वाक्यों में इस का अधिक प्रयोग, यथा—सिनेमा देखने के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं (/थे)। तुम से जल्दी तैयार भी नहीं हुआ जाता। मुझे नहीं जाना तुम्हारे साथ। उन की बातें मुझे अच्छी नहीं लग रही हैं (/थीं)। (ख) भविष्यकाल तथा संभावना में 'नहीं' का प्रयोग अस्वीकृति को अधिक बलयुक्त बना देता है, यथा—सर, वे नहीं उठेंगे यहाँ से/ सब से कह दो—तीन बजे तक कोई मेरे पास नहीं (/न) आए। यदि वे नहीं आए (/आते) तो परेशानी खड़ी हो सकती है (/खड़ी हो जाएगी)। (ग) सामान्यत: वाक्य के कथन को नकारने या वास्तविक माने जानेवाले व्यापारों/ तथ्यों की अस्वीकृति व्यक्त करते समय संक्षिप्त वाक्य में, यथा—तुम ने खाना खा लिया?—नहीं। (अर्थात् मैं ने खाना नहीं खाया है)। (घ) बोलचाल में संक्षिप्त उत्तरवाला 'नहीं', प्रतिवक्तव्य का संज्ञा 'नहीं' कभी-कभी 'ना' से स्थानापन्न, यथा—प्याला किस ने तोड़ा है? तुम ने?—नहीं (/ना)। पैसों के बारे में उस ने 'नहीं' (/ना) कह दिया। (ङ) वाक्यारम्भ का 'नहीं' किसी बात से दृढ़ इन्कार या पूर्ववर्ती विचार की अस्वीकृति व्यक्त करता है, यथा—आइए, खाना खाइए—नहीं, मैं अभी-अभी खा कर आ रहा हूँ। तुम जहाँ चाहो, मैं वहाँ आ जाऊँ—नहीं, मैं ही तुम्हारे पास आ जाऊँगा, तुम्हें मेरे पास आने की ज़रूरत नहीं है। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ—नहीं, तुम मेरे साथ नहीं अपनी माँ के साथ जाना। (च) स्वतन्त्र रूप में नकारार्थक उत्तर, यथा—तुम डॉक्टर हो?—नहीं। (छ) साधारण वाक्य में विरोधसूचक सम्बन्ध व्यक्त करते समय, यथा—तुम इन्सान नहीं, हैवान हो। कल नहीं आज ही। (ज) कभी-कभी 'नहीं-न' युग्म रूप समुच्चयबोधक के घटक के रूप में, यथा—उस के प्रश्न के उत्तर में मैं कुछ नहीं बोली, (और) न मैं ने उस से बैठने के लिए कहा। (झ) द्विपदी समुच्चयबोधकों के घटक के रूप में, यथा—केवल नहीं....बल्कि; नहीं....बलिक आदि; यथा—उन के सामने दीन बन कर नहीं, बल्कि एक मित्र के रूप में जा सकता हूँ। (ञ) 'कोई नहीं, कुछ नहीं, कदापि नहीं, कभी नहीं, कहीं नहीं' आदि में सर्वनाम तथा अन्य अव्ययों के सहकारी के रूप में, यथा—आप ने कभी बच्चों की ओर ध्यान नहीं दिया। (ट) संज्ञाकृत रूप में, यथा—देखिए, अब 'नहीं' न कहिए (/कीजिए)। (ठ) 'नहीं जी' विनम्र नकारात्मक उत्तर में, यथा—आइए, मेरे साथ कोठी में रहिए।—जी नहीं, मुझे यहीं रुकने दीजिए। (ड) 'नहीं जी' पंजाबी लहजे का प्रभाव। 'न' प्रयोग के भी 'नहीं' के

समान विविध सन्दर्भ हैं, यथा—(क) साधारण वाक्य में विरोधसूचक संबंध व्यक्त करते समय क्रिया धातु से पूर्व, यथा—दूल्हा घोड़े पर न बैठ पैदल ही चलने लगा। (ख) संज्ञाकृत होने पर स्वतन्त्र रूप में, यथा—आज तुम्हारी 'न' (/ 'ना') नहीं सुनूंगा। देखिए, इस बार 'न' (/ना/नहीं) न कहना। (ग) 'न कि', 'न केवल···· बल्कि' द्विपदी योजक के घटक के रूप में, यथा—मुझे मेरी बहन चाहिए न कि एक लाख रुपये। वह न केवल रजिस्ट्रार से बल्कि निदेशक से भी अकड़ कर बोलता है। (घ) अनिश्चयवाचक सर्वनामों, स्थानवाचक की पुनरुक्ति के घटक के रूप में, यथा—आइए, कोई-न-कोई तो दफ़्तर में मिलना ही चाहिए। जल्दी ही हमें इस मामले पर कुछ-न-कुछ करना चाहिए। और ढूँढ़ो, कहीं-न-कहीं तो मिलेगी। (ङ) अनिश्चयवाची सर्वनाम, स्थानवाचक, कालवाचक के साथ, यथा—मन लगा कर पढ़ना, खर्च की कोई चिन्ता न करना। मुझे कुछ भी सुनाई न पड़ा। मैं ने इस आदमी को पहले कभी देखा न था। ऐसी साड़ी तुम्हें कहीं न मिलेगी। (च) कुछ मान लेने (/अभिधारणा) के अर्थ में 'न सही', यथा— ठीक है, तू न सही, तेरी माँ ही सही। स्कूटर न सही, फ़िज ही सही। (छ) प्रकारतासूचक शब्द 'जाने' के साथ, यथा—न जाने मैं उस की ओर क्यों झुकती चली गई। (ज) वस्तु/व्यापार का चरम लक्षण व्यक्त करनेवाले सति अर्थक उपवाक्य में, यथा—गोपन भी मानव-स्वभाव का एक अंग है, चाहे यह कितना ही उचित या अनुचित क्यों न हो। (झ) पुनरुक्त समुच्चयबोधक 'न····न' के घटक के रूप में, यथा—न तुम मेरे घर आये (और) न मुझे अपने घर बुलाया। (ञ) परोक्ष विधि में निषेध, कम दृढ़तापूर्वक अस्वीकृति या निषेध, यथा—आज का काम कल पर न छोड़ो। वहाँ जा कर ऐसे न खाना। अगले महीने से मनीऑर्डर न भेजना (/भेजिए)। मेरी समझ में उन की चुहलबाज़ी न आ सकी। मैसूर में तुम अकेली न रह सकोगी। बच्चे के जन्म दिन पर मुझे बुलाना न भूल जाना (/भूलिए/ भूलिएगा)। (यदि) तुम न बताते, तो वह मेरे बारे में न जान पाता। (ट) 'हाँ-अपेक्षी' प्रश्नयुक्त वाक्यान्त में, यथा—खाना बन चुका है न ?—(जी हाँ)। 'भला' प्रयोग—(क) अस्वीकृतिसूचक वाक्यान्त में, यथा—बेचारी बच्ची इस के बारे में क्या जानती है ? (अर्थात् 'बेचारी····में कुछ नहीं जानती; तुम क्या करोगे भला ?—(अर्थात् तुम कुछ नहीं कर सकते)।

(3) **निषेधवाची निपात 'मत' का प्रयोग**—(क) 'मत' आज्ञा (प्रत्यक्ष तथा परोक्ष विधि) के साथ किसी क्रिया-व्यापार का निषेध करते समय, यथा—तू वहाँ मत जा (/जाना)। उसे बहुत ज़ोर से मत डाँटना। (तुम) उधर मत जाओ। बोलो मत, चुप रहो। मुझ से मत बोलो। मुझ से बोलो मत। (ख) 'मत' का स्थान बदलने पर अर्थ में प्रसंगगत कुछ-न-कुछ अन्तर आ जाता है, यथा—तुम मत जाओ (सामान्य निषेध), तुम जाओ मत (कठोरता युत निषेध)। (ग) आप के साथ 'मत' के स्थान पर 'न' का प्रयोग ही अधिक प्रचलित। 'आप हमारे साथ मत आइए' जैसे प्रयोग क्षेत्रीय/व्यक्तिबोलीगत हैं।

(4) **प्रश्नसूचक निपातों का प्रयोग**--(क) **'क्या'** वाक्य का प्रश्नसूचक अर्थ व्यक्त करते समय सामान्यत वाक्यारम्भ में, किन्तु अधिक बल देते समय वाक्यांत में, यथा—क्या, यह कुर्ता है ? यह कुर्ता है क्या ? कोई विशेष बात थी, क्या ? (ख) 'क्यों' का प्रयोग सामान्यतः बराबर के या छोटे व्यक्ति के सन्दर्भ में संबोधनार्थ, यथा—क्यों बेटे, सोते ही रहोगे ? क्यों भोलू, आज सब्ज़ी नहीं लाओगे ? क्यों प्यारे, आज तो बड़े ख़ुश नज़र आ रहे हो ? (ग) 'न' प्रश्नबोधक सुर तथा पूर्ण विश्वास भाव के साथ स्वीकृतिपरक उत्तर की आशा में, यथा—ये सन्तरे मीठे हैं न ? (जी हाँ, बिल्कुल मीठे हैं)। वक्ता के अनुतान के अनुरूप प्रश्नबोधक सुर तथा शंकायुत भाव के साथ उत्तर की अपेक्षा में, यथा—तुम जाग रही हो न ? (नहीं, मुझे नींद आ रही है) ? हलके-से प्रश्न-भाव तथा कथन की निश्चितता/अनिश्चितता (/विश्वास/सन्देह) व्यक्त करते समय, यथा—मैं अभी पढ़ रहा हूँ न ? कल तुम बीमार थीं न ?

(5) **विस्मयादिबोधक निपातों 'क्या, काश' का प्रयोग**—(क) कथन में अधिक अभिव्यंजना लाने या अधिकता बोध के लिए **'क्या'**, यथा—क्या ख़ूबसूरत घोड़ी है ! वह स्वयं को न जाने क्या समझती है ! (ख) कथन में अधिक अफ़सोस भावना लाने के लिए **'काश'**, यथा—काश, शास्त्री जी ताशकन्द न गए होते ! काश, कि ऐसा न हुआ होता !

(6) **तुलनार्थी बलसूचक निपात 'सा' का प्रयोग**—(क) 'सा' लिंग, वचन तथा कारक के अनुसार 'से, सी' बनने के कारण सादृश्यवाची विशेषणवत्। इस का प्रयोग तुलना, समानता, अनुरूपता, समरूपता पर विशेष बल देता है, यथा—तुम्हारा-सा घर; काली-सी पेन्ट; तुझ-सा नालायक; इस छोटे-से गाँव में; इस मामूली-से काम में; बड़ी-सी इमारत के पीछे (ख) कभी-कभी परसर्ग की भाँति आ कर 'सा' पूर्ववर्ती शब्द को विकारी बना देता है, यथा—लड़कियों-सी चाल; बच्चों-सा खेल; तुझ-सा लड़का; तुझ-सी कोई न थी। तू और नौकरों-सा नहीं है। (ग) 'का/की/के' के पश्चात् सदृशता व्यक्त करने के लिए, यथा—यह बच्चा तुम्हारे पड़ौसी का-सा लगता है। यह कमीज़ मुझे उस की-सी लगती है। ये लोग रूस के-से लगते हैं। (घ) विशेषणों के गुण/मात्रा को और सशक्त बनाने के लिए, यथा—बड़ा-सा, बहुत-सा, थोड़ा-सा, छोटा-सा। (ङ) पुनरुक्त संज्ञा के मध्य 'सामान्यता' का अर्थ देने के लिए, यथा—लड़का-सा लड़का नहीं है, और बातें इतनी बड़ी-बड़ी करता है कि····। मित्र-सा मित्र, घर-सा घर, किताब-सी किताब। (च) कृदन्तों के साथ 'प्रतीति' जैसा अर्थ देने के लिए, यथा—आप कुछ थक-से गये हैं। धरती खिसकने-सी लगी। उसे कहीं देखा-सा है। लड़की लजा-सी गई। वह पलंग पर लुढ़क-सा पड़ा। अपरिचित/परिचित-सा चेहरा; घबराई हुई-सी; डरे हुए-से, बुझी-बुझी-सी अधखुली आँखें, काँपती हुई सी; खोई-खोई-सी, झुँझलाए हुए-से।

(7) **आदरसूचक निपात 'जी' का प्रयोग**—(क) व्यक्तिवाचक, जातिवाचक

संज्ञा, उपाधि, पद, आस्पद सूचित करनेवाले शब्दों के बाद आदर प्रदर्शनार्थ, यथा —रामलाल जी, गान्धी जी; माता जी; शर्मा जी; गुरु जी; वैद्य जी; बाबू जी; दादा जी, पंडित जी; मोटेराम जी (ख) 'जी' का प्रयोग शब्द में आदरार्थ बहुवचन का भाव ला देता है। (ग) स्वतन्त्र प्रयोग भी, यथा—जी, अपना बच्चा अपने पास ही रखिए। जी, मैं इस समय एक विशेष काम से यहाँ आया हूँ। क्यों जी, तुम यहाँ क्या कर रहे (/रही) हो ?

(8) **ध्यानाकर्षक सीमासूचक निपातों का प्रयोग**—'**भर**' (क) निपात के रूप में जिन शब्दों के बाद आता है उन की पूर्णता, समग्रता या सीमितता का तार्किक बोध कराता है, यथा—दिन भर काम करते-करते वह थक जाता है। दुनिया भर के आँसू उस की आँखों में भरे हुए थे। उसे अपनी किताब भर देना, नोट्स नहीं। अगर आप को कहीं ग़लत लगे तो आप बता भर दें। इस मामले में तुम्हारा खड़ा होना भर काफ़ी है। इन लोगों को एक बार का खाना भर मिल जाए, फिर तो ये सिर पर ही चढ़ना चाहते हैं। (ख) समस्त, सारा के अर्थ में 'भर', यथा—घर भर में छान मारा। तुम्हारे दिमाग़ में दुनिया भर की ख़ुराफ़ातें भरी हुई हैं। (ग) भरना < भर, यथा—पेट भर खाओ, मन भर नहीं। **'केवल, सिर्फ़'** (क) जिन शब्दों के पूर्व आते हैं, उन्हें तार्किक बल प्रदान करते हैं, यथा—मैं केवल इस बारे में थोड़ी-सी जानकारी चाहता था। वह सिर्फ़ उसे देखना चाहती थी। तुम सिर्फ़ एक चक्कर भर लगा जाया करना। हम यह जानते हैं कि तुम्हारी उस से सिर्फ़ मुलाक़ात भर है। **'मात्र'** (क) अर्धप्रत्यय 'मात्र' का प्रयोग परिसीमन हेतु, यथा—भारत का चीन के साथ मात्र सीमा विवाद है। एकमात्र, जलमात्र, प्रयोगमात्र, जीवमात्र।

(9) **बलार्थक सीमासूचक निपातों का प्रयोग**—'तो' (क) किसी शब्द/शब्द-बंध के बाद आ कर उसे और अधिक सशक्त बनाने के लिए, यथा—खा तो रहा हूँ। तुम तो मेरी बात भी नहीं सुनते। (ख) वाक्य के प्रारम्भिक शब्द के रूप में पिछले वाक्य के कथ्य के आधार पर योजक/प्रासंगिक शब्द की भाँति, यथा—तो यह बात थी। तो अब हम लोग चलें। तो वे आज ही आ रहे हैं। तो तुम जाओगे ही। (ग) कभी-कभी व्यधिकरण वाक्यों के उपवाक्यों के मध्य समुच्चयबोधक के रूप में, यथा—आप ने कहा होता तो वह अवश्य आती। (घ) आदेशात्मक वाक्य की क्रिया के साथ आदेश, अनुरोध के अर्थ को सशक्त बनाते हुए 'अभी' के अर्थ में, यथा—फिर पढ़ो तो; सुनो तो; लीजिए, देखिए तो सही। देखो तो, बाहर कौन खड़ा है ? (ङ) प्रश्नवाचक वाक्य में 'सन्देह, असमंजस, आशंका' का भाव व्यक्त करने के लिए, यथा—घर में ख़ैरियत तो है ? तुम पास तो हो गए ही होगे ? बच्चों ने आप को तकलीफ़ तो नहीं दी ? आप दुःखी तो नहीं हैं न ? (च) नकारात्मक वाक्य में 'अनुमान' का भाव व्यक्त करने के लिए, यथा—वह बीमार तो नहीं है। तुम पागल तो नहीं हो गई हो। (छ) वक्तव्य में कथित/प्रस्तावित बात का प्रतिवक्तव्य में खण्डन

करते समय या अपनी ओर से विकल्प की पुष्टि के लिए, यथा—तुझे सच-सच बताना होगा—मैं तो कुछ नहीं बताऊँगा। कल हमारे घर खाना खाइए—कल मुझे कहीं बाहर जाना था, आप कह रहे हैं तो आप के यहाँ आ जाऊँगा। मैं चाय नहीं लेता—तो शर्बत चल सकता है न ? (ज) 'क्या' सही, यों, और' आदि शब्दों के साथ आ कर मुहावरेदार प्रयोगों की रचना, यथा—नहीं तो; और तो और; फिर तो। जल्दी जाओ, नहीं तो गाड़ी निकल जाएगी। क्या तो, तुम भी वहाँ नहीं गए ? मैं आता तो सही, लेकिन मेरी गाड़ी ही छूट गई थी। यों तो वह मुझे अपना मित्र कहता है किन्तु । और तो और वह रात में भी घर में नहीं रुकता। कहने को तो वे मुँह से एक भी शब्द नहीं बोलते, लेकिन····। 'ही' (क) यह प्रबलक जिस शब्द/पदबन्ध के पश्चात् आता है उसे और अधिक सशक्त बना देता है। एक प्रकार से यह कही गई बात की पुष्टि करता है, यथा—उन्हों ने बहू को मार ही डाला। तुम जाओगे?—हाँ, मैं ही (वहाँ) जाऊँगा। दूध लोगे ?—दूध ही नहीं बिस्किट भी लाओ। कल किधर जा रहे थे, ससुराल ? हाँ, ससुराल ही जा रहा था। (ख) 'ही' परसर्ग से पूर्व या पश्चात् भी प्रयुक्त, यथा—तुम्हारे लड़के ही ने ऐसा कहा था। तुम्हारे लड़के ने ही ऐसा कहा था। (ग) 'केवल' जैसा अर्थ, यथा—आज चार ही छात्र आये हैं। (घ) क्रिया-व्यापार की निश्चितता/पूर्णता, यथा—तुम इधर आए ही क्यों थे ? अरे, मैं कमरे की चाबी तो भूल ही गया था। मैं ने यह पुस्तक पढ़ ही ली। सभी लोग इस प्रस्ताव का स्वागत ही करेंगे। सभा में सभी गण्यमान लोगों को हम देख ही लेंगे। आज तो वह चला ही जाएगा। (ङ) 'जब तक, ज्योंही' जैसा अर्थ, यथा—मैं ने रेडियो खोला ही था कि बिजली चली गई। वह खा ही रहा था कि चील ने झपट्टा मार दिया। वे आलिंगित होने को ही थे कि दो लोग उधर आ निकले। (च) 'नहीं', ज्यों, जैसे, थोड़े, साथ, कैसा, कितना, जितना, शायद' आदि शब्दों के साथ संयुक्त, द्विपदी समुच्चयबोधक के रूप में, यथा—वह खाता ही नहीं। उस ने मुझे खाना ही नहीं दिया बल्कि कपड़े भी दिए। ज्यों ही उस ने पति की मृत्यु का समाचार सुना त्यों ही वह बेहोश हो गई। ज्यों ही उसे लॉटरी का नम्बर मिला, वह एकदम उछल पड़ा। जैसे ही वह आए, साहब के पास भेज देना। जैसे ही मुझे उस पर विश्वास होने लगेगा, मैं उस की मदद करना शुरू कर दूंगा। अब तुम थोड़े ही मुझे पहचानोगी ? उस ने थोड़े ही पैसे चुराये थे। क्या मैं ने तुम्हें इतने रुपये यों ही दे दिए थे ? बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के साथ ही तुम्हें अपनी परिस्थिति का भी ध्यान रखना चाहिए। कैसी ही मज़बूत साड़ी क्यों न हो, वह छह महीने में फाड़ डालती है। कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, लोभ की कोई-न-कोई मात्रा उस में होती ही है। भले ही तुम मुझे भुला दो मगर मैं तुम्हें नहीं भुला पाऊँगी। जितना ही वह सँभलने की कोशिश करता, वह गिर-गिर जाता था। देखते ही देखते बादल घिर आए। साथ ही साथ उसे ट्यूशन भी करने पड़ते थे। बच्चे मन ही मन खुश हो रहे थे। आप की यह आशा शायद ही पूरी हो पाएगी। (छ) 'थोड़े ही, भले ही, शायद ही

मुहावरेदार प्रयोग प्रायः नकारात्मक अर्थसूचक हैं। **'भी'** **(क)** जिस शब्द या पदबन्ध के पश्चात् आता है, उसे बल प्रदान करने के साथ-साथ 'के अतिरिक्त' भाव का बोध कराता है। यह कथन का दूसरे सन्दर्भ में विस्तार करता है, यथा—वह हमें भी सिनेमा दिखाएगा। तुम जाओगी तो मैं भी जाऊँगा। उसे मेरी डाँट की भी चिन्ता नहीं है। क्या आप भी चल रहे हैं ?—हाँ, मैं भी चल रहा हूँ। तुम कल भी अनुपस्थित थे। शायद वह उसे पसन्द भी नहीं करेगी। पड़ोस के शर्मा जी कलर टी.वी. ले आये हैं, आप भी वैसा ही ले आइए न ! **(ख)** क्रिया-व्यापार की असमाप्ति, आग्रह भी, यथा—अभी मुझे नींद भी नहीं आयी थी कि बारह की सीटी बज गई। अरे यार, बैठो भी। अब छोड़िए भी इन बातों को। **(ग)** 'और' तो, फिर, पर, जो, कोई, कुछ, कितना, कैसा' आदि के साथ, यथा—बच्ची का रोना और भी बढ़ गया था। उस के मन में भी तो वही डर बैठा हुआ है। फिर भी वह उस पर अपनी जान न्योछावर करती थी। मेरी फटकार पर भी उस ने वहाँ जाना नहीं छोड़ा। जो भी काम देंगे, उसे खुशी से करूँगा। कोई भी मेरी बात को नहीं समझ सका। कुछ भी हो, वह तुम्हारा कहना नहीं टालेगा। कितनी भी खर्च में कमी करो, पाँच सौ से कम नहीं लगेंगे। कैसा भी छोटा काम क्यों न हो, मन लगा कर करना ही चाहिए। डी० लिट्० होते हुए भी उस में विषय की गहराई नहीं है। मार खा कर भी बच्चा चुप नहीं हुआ। **(घ)** नकारात्मक वाक्य में पार्थक्य की अर्थच्छटा, यथा—भरपेट खाना नहीं मिलता, माँ को भी और बच्चे को भी। **'तक'** **(क)** जिस शब्द के पश्चात् आता है, उसे बल प्रदान करने के साथ उस की सीमा भी निर्धारित करता है, यथा—उस ने तो मेरी बात तक नहीं सुनी। मैं ने तो बटुआ देखा तक नहीं। तू तो क्या तेरा बाप तक भाग कर नहीं जा सकेगा। मेरे घर से स्कूल तक की दूरी दो किलोमीटर है। (यहाँ 'तक' का परसर्गीय प्रयोग है।) **'जो'** **(क)** वाक्य में किसी भी शब्द-भेद के अर्थ को सशक्त बनाता है, यथा—साथी जो आप का समर्थन कर रहे हैं; आप ने पहले वचन जो दिया था; हाँ, माँ ! मैं देवी का प्रसाद जो लाई हूँ; तुम उन दिनों मुझ से दूर-दूर जो भागते थे; मैं पापिन जो हूँ; तू अकेली जो है; मैं ने कह जो दिया कि आज मैं सारी रात काम करूँगा। आधी रात गए जागती जो रहती हो। तुम्हारे साथ इस बार पिक्चर जो देखनी है। **'न/ना'** **(क)** इन का प्रयोग शब्द/शब्दबंध के साथ न हो कर पूरे वाक्य के साथ होता है। **(ख)** स्वीकारार्थक वाक्यान्त में आए, 'न, ना' स्वीकृत बात के अर्थ पर ज़ोर डालते हैं, यथा—पिता जी ने कहा न कि मैं तुम्हें सिनेमा ले जाऊँ। आज तक वह तुम्हारी मित्र थी न। तुम डॉ० शर्मा की पोती हो ना (/न)। शराब पी कर गाड़ी चलाओगे तो दुर्घटना तो होगी ही न। उस दिन तुम मेरे पास आए थे, आठ तारीख़ थी न। **(ख)** विधि वाक्यों में 'न, ना' आदेश, आज्ञा, अनुरोध के अर्थ पर बल देते हैं, यथा—आओ यार बैठो न ! आओ ना ! आप तो मास्टर हैं, अब आप ही इसे समझाइए न !

(10) **अवधारणा सूचक 'ठीक'** संबधित शब्द से पूर्व या अकेले आ कर यथातथ्यता या सटीकता के अर्थ पर विशेष बल देता है, यथा—सौ ही मिलेंगे, ठीक ?—ठीक। 'नहीं' ठीक नहीं है तो 'हाँ' ही कब ठीक है ?—ठीक है न ?

(11) **निर्देशात्मक 'ले लो, लीजिए'** किसी व्यक्ति/वस्तु को इंगित करते हैं, यथा—लो, इतनी जल्दी खाना भी तैयार हो गया। लीजिए, वे दोनों इधर ही चली आ रही हैं। लो, (/देख बे), अब आएगा मज़ा, दोनों (ही) बराबर के पहलवान हैं।

19
शब्द-प्रयोग सतर्कता

भाषा का प्रयोग समाज में होता है। प्रत्येक समाज की कुछ मान्यताएं होती हैं जिन का पालन भाषा-व्यवहार में भी किया जाना अनिवार्य है, यथा—'थन' शब्द का प्रयोग केवल पशु-मादा के सन्दर्भ में ही होता है, जबकि 'स्तन' शब्द का प्रयोग नारी के सन्दर्भ में (कभी-कभी पशु-मादा के सन्दर्भ में भी) होता है। हिन्दी को दूसरी या अन्य भाषा के रूप में सीखनेवालों को तो इस दृष्टि से विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है क्योंकि विभिन्न भाषाओं के सम्पर्क से कभी-कभी सीखी हुई और सीखी जानेवाली भाषा में (लगभग) समान उच्चारण/वर्तनीवाले ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जिन के केन्द्रीय अर्थ/अभिधार्थ भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा—पशु (हिन्दी अर्थ 'चौपाया'; मलयालम् अर्थ 'गाय'), संसार (हिन्दी अर्थ 'विश्व'; कन्नड अर्थ 'परिवार'), शिक्षा (हिन्दी अर्थ 'Education'; मलया०, कन्नड अर्थ 'दण्ड'), लोटा (हिन्दी अर्थ 'घड़े के आकार का धातु का बहुत छोटा बर्तन', कन्नड 'धातु का ग्लास')। इसी प्रकार के बीसियों शब्द दो भाषाओं में **भिन्नार्थी रूप** में मिल सकते हैं जिन की अर्थ-भिन्नता के आधार पर प्रयोग-सन्दर्भ में भी भिन्नता रहना अनिवार्य है।

भय, आशंका, घृणा/जुगुप्सा, लज्जा/शर्म, आदर आदि के कारण अनेक वस्तुओं/क्रिया-व्यापारों/विचारों को हम सीधे या सामान्य शब्दों में प्रकट न कर संकेतात्मक रूप में या घुमा-फिरा कर दूसरे शब्दों में व्यक्त करते हैं। इस प्रकार का कथन 'अव्यक्त कथन/सांकेतिक कथन/तिर्यक् कथन 'Euphemism' कहलाता है। इस प्रकार के कथन में **वर्जित शब्दों 'टेबू'** के प्रयोग से सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप बचना पड़ता है। वर्जित शब्द प्रयोगकर्ता/समाज के स्तर-भेद के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, यथा—'मूतना', पेशाब करना, लघु शंका करना, बाथरूम जाना' में क्रमशः शिष्टता-वृद्धि अनुभव की जाती है। 'टट्टी (=आड़/पर्दा/टटिया), पाख़ाना (=पैर रखने का स्थान), जंगल जाना, दिशा जाना, मल त्याग, शौच (=शुद्धि) जाना, स्टूल जाना, टॉयलेट जाना, फ़रागत (=छुटकारा), मैदान

जाना, पोखरे जाना, बड़े घर जाना, विलायत जाना, नं० 2 के लिए जाना, हल्का हो लेना', शब्दों के प्रयोग में याद्दच्छिकता देखी जा सकती है।

भूत को हवा; साँप को रस्सी/कीड़ा; चेचक को माता; वैधव्य को सुहाग लुटना/माँग पुछना/घर-संसार लुटना; मृत्यु होना को चल बसना/गुज़र जाना; 'मैं ऐसा करूँगा/कर सकता हूँ' के अहं से बचने के लिए 'भगवान ने चाहा' तो ऐसा हो जाएगा/सकता है'; 'भगवान की/उस की कृपा से' कहना समाज-स्वीकृत मान्यताओं का अनुपालन है। आदर भाव, उम्र, पारिवारिक सम्बन्ध आदि के कारण दूसरों के 'भाई, बहन, भाभी, चाची, चाचा, माँ/माता, ताऊ, ताई, मौसी, बाबा, पिता आदि को इन्हीं शब्दों से स्वयं भी सम्बोधित करना। सामान्य लोगों में पति-पत्नी का आपस में नाम न लेना; स्वयं कहने को 'अर्ज़' (=निवेदन) करता हूँ', दूसरे से कहने के लिए 'फ़रमाइए' (=आज्ञा दीजिए) कहना। अपना घर 'ग़रीबख़ाना', 'श्रोता का घर 'दौलतख़ाना'; स्वयं/खुद 'नाचीज़' और श्रोता 'हुज़ूर' है। मर जाना के लिए 'स्वर्ग सिधारना; खुदा को प्यारे होना; हमें अनाथ कर जाना'; राम की (श्री) चरण-पादुका ('चप्पल/जूता' नहीं) होती हैं। चरणोदक (=पैरों से छुआ पानी); भोग लगाना; दिव्य दर्शन आदि शब्दों/शब्दबंधों का प्रयोग-व्यवहार समाज-स्वीकृत है।

वर्जना की भावना 'शिक्षा, विवेच्य विषय, सामाजिक स्तर, विश्वास' आदि के अनुरूप परिवर्तित हो जाती है। छोटे बच्चों का खेल-खेल में, अशिक्षित/गँवार लोगों का झगड़ते समय यौनांगों से संबंधित शब्दों का प्रयोग करना; पढ़े-लिखे लोगों द्वारा चेचक; लिंग, योनि (शिष्ट पारिभाषिक शब्द बन जाने के कारण) शब्दों का प्रयोग करना। कभी-कभी जो शब्द एक भाषा में शिष्ट होता है, अन्य भाषा में वह वर्जित शब्द होता है, यथा—'कुंडी' (दक्षिण की तीन भाषाओं में 'चूतड़') का प्रयोग इन भाषा-भाषियों के मध्य धड़ल्ले से नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार के अन्य दसियों शब्द हो सकते हैं। भाषा-व्यवहार के समय वक्ता, श्रोता अपनी समस्त मान्यताओं तथा भावनाओं से युक्त होते हैं। 'डालना, घुसा देना' जैसे कुछ शब्द प्रायः वर्जित शब्द हैं। इसी प्रकार 'कद्दू, सीताफल, कुम्हड़ा, काशीफल; घीया, लौकी' जैसे शब्दों के प्रयोगों में प्रादेशिक तथा सामाजिक अन्तर है।

किसी शब्द का सन्दर्भोचितसही अर्थ जाने बिना या जल्दी में ग़लत सन्दर्भ में उस शब्द का प्रयोग करना **शब्द-भ्रांति** (Catachresis) कहा जाता है, यथा—किसी जीवित व्यक्ति को 'श्रद्धा' के स्थान पर 'श्रद्धांजलि' अर्पित करना। 'संस्था-संस्थान', 'दुःखी-शोकाकुल', 'जाग्रत-जागरूक' जैसे तथाकथित पंडिताऊ शब्दों के प्रयोग के समय प्रायः इस प्रकार की भूलें होने की अधिक संभावना है। **पंडिताऊ शब्दों** (Pedantic words), यथा—'ज्वर, गृह, ऊष्मा, दंत' आदि शब्दों का दैनन्दिन बोलचाल में प्रयोग करना हास्यास्पद रहता है। स्वाभाविकता की दृष्टि से

इन के स्थान पर क्रमशः 'बुख़ार, घर, गरमी/गर्मी, दाँत' बोलना ही उचित है। 'दंत चिकित्सक/पीड़ा/रोग' चल सकते हैं। सामान्य बोलचाल के सरल शब्दों के स्थान पर भारी-भरकम दुरूह (साहित्यिक, पारिभाषिक) शब्दों का प्रयोग पंडिताऊ प्रयोग कहलाता है। इस प्रवृत्ति से बचने का प्रयास किया जाना चाहिए। कुछ विशेष विषयों के सन्दर्भ में प्रयोग किये जानेवाले पारिभाषिक शब्द (यथा—आपूर्ति, उपभोक्ता, मुद्रा-स्फीति, विनिमय) पंडिताऊ प्रयोग नहीं कहे जा सकते।

कभी-कभी ईषत् श्रुत/वर्तनी सम शब्दों के प्रयोग के समय **शब्द-भ्रांति** (Malapropism) हो जाती है, यथा—'अपेक्षा-उपेक्षा, आदि-आदी, बूरा-भूरा, परिणय-प्रणय, महरूम-मरहूम, विदुर-विधुर, शोक-शौक, सादा-साधा' जैसे शब्द-युग्मों के शुद्ध प्रयोग में भूलें हो जाती हैं। कभी-कभी शब्द के मूल को समझे बिना प्रयोक्ता अटकलबाज़ी से शब्द-भ्रान्ति की भूल (Hawless) कर बैठता है, यथा—'बनिया जो बन चुका है; लाभकर जो स्वयं का लाभ करता है; लाला जो हमेशा ला-ला करता है; दशरथ जिस के दसरथ थे' आदि। इस प्रकार की भूलों का मुख्य कारण लोक व्युत्पत्ति (Folk Etymology) से अधिक प्रभावित होना है।

'कसम/सौगन्ध' के साथ खाना/खिलाना, देना/दिलाना का प्रयोग होता है। हिन्दी-समाज में कसम खाने के विविध रूप प्रचलित हैं, यथा—भगवान/बच्चों की कसम या सौगन्ध,····; खुदा/ईश्वर/भगवान के नाम पर····; भगवान साक्षी है (/जानता है) कि····आदि। कसम के निकट का अर्थबोधक शब्द **'शपथ'** पारिभाषिक है। 'शपथपत्र' का पर्याय 'हलफ़नामा' है। **'हलफ़'** के साथ 'उठाना' का प्रयोग होता है और 'शपथ' के साथ 'लेना, दिलाना' का। किसी काम को करने का दृढ़ निश्चय **'प्रतिज्ञा/संकल्प/प्रण'** कहा जाता है। प्रतिज्ञा करना, संकल्प करना (/लेना), प्रण करना का प्रयोग होता है। प्रतिज्ञा के अर्थ में **वचन**; **वादा**<वायदा<वायदह का प्रयोग 'वचन देना, वादा करना, वचन या वादा याद दिलाना' के रूप में होता है। ग़लत या अनुपयोगी काम करने के बाद फिर कभी वैसा न करने की प्रतिज्ञा **'तोबा'** है जो 'तोबा ! तोबा !' या 'तोबा करना' के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसे **'तौबा'** भी कहते, लिखते हैं। 'लाभान्वित=लाभ से युक्त; लाभान्वित होना, लाभान्वित करना' प्रयोग प्रचलन में हैं।

श्रोता/वर्ण्य व्यक्ति/वर्ण्य वस्तु का अवगुण प्रकट करने या सम्बद्ध व्यक्ति का दिल दुखाने अथवा उस से असन्तुष्ट (/रुष्ट/पीड़ित) होने पर वक्ता **गाली** का प्रयोग करता है। गाली तीखे व्यंग्य की भाँति चुभनेवाली उक्ति होती है लेकिन इस का अर्थ व्यंग्य की भाँति प्रच्छन्न नहीं होता। गाली में बड़े/महान् को छोटा या क्षुद्र बताते हैं, व्यंग्य में छोटे को बड़ा। पहले से तिरस्कृत, निकृष्ट तथा निम्न अभिधार्थ में प्रचलित शब्द गाली की शब्दावली में सम्मिलित कर लिए जाते हैं। गाली सूचक संज्ञा शब्द दुहरा प्रतीक होता है, यथा—गधा, गधे की दुम, बैल,

उल्लू, कुत्ता, कुतिया, आदि। गाली दो रूपों में प्रयुक्त होती है—1. प्रत्यक्ष कथन—संबोधन में, यथा—गधे, उल्लू, उल्लू का पट्ठा (संज्ञापद); कुएँ/भाड़ में जा (विधि वाक्य); तुम तो उल्लू हो (/गधे हो)। तेरा सत्यानाश हो। आदि (निश्चयार्थ वाक्य/कहावत। 2. परोक्ष/अप्रत्यक्ष कथन, यथा—गधा, उल्लू (संज्ञा पद); भाड़/कुएँ में जाए (संभावनार्थ वाक्य); वह तो गधा/उल्लू है (निश्चयार्थ वाक्य)। **गालियों की आधारभूत शब्दावली** कई वर्गों से संबंधित होती है, यथा—**पशु वर्ग**—गधा, उल्लू, सुअर/सूअर, कुत्ता, कुतिया, भैंस, ऊँट, बन्दर, गधे/बन्दर की दुम; गधे (/उल्लू, सूअर) का बच्चा (/की औलाद)। **सब्ज़ी वर्ग**—कद्दू, बैंगन, भिण्डी, टिण्डा। **रिश्ते**—साला, साली, ससुर/ससुरा, ससुरी, मामा, (बछिया के) ताऊ। **पेशा**—वेश्या, रंडी, चमार, बनिया, भंगी। **दुर्गुण**—अधम, नीच, कमीना, चोर, बदमाश, मक्कार, उचक्का, चुग़लख़ोर। **अकुशलता**—बुद्धू, बेवकूफ़, मूर्ख, नासमझ, सिरफिरा, नादान। **पैदाइश**—....की औलाद, हरामी, हरामज़ादा, दोगला, बदज़ात। **अंग-दोष**—अंधा, लूला, लँगड़ा, कुबड़ा, बहरा, काना, पागल, लंबू, मुटियल, बन्दर-सा मुँह। **मानव-जाति**—म्लेच्छ, शैतान। **यौनांग**—चूतिया, लौंड़ा, लौंड़े का आदि। **यौन-व्यापार**—गाँड़ू, मादरचोद (< मादर फ़ा० = माँ), बहनचोद आदि। **गालियों के कई प्रयोग-सन्दर्भ** हैं, यथा—1. झिड़कते समय 2. अपमानित करते समय 3. तीव्र वाक्-युद्ध के समय 4. शाप देते समय 5. बच्चों को लाड़ करते समय 6. मित्रों के मध्य (अभिवादनादि के समय) 7. तकिया कलाम के रूप में। गालियों के प्रयोग में पुरुष वर्ग/पुल्लिंग बेजान वस्तु के लिए पुल्लिंग और स्त्री वर्ग/स्त्रीलिंग बेजान वस्तु के लिए स्त्रीलिंग शब्दों का प्रयोग किया जाता है। गालियाँ वर्जित शब्द हैं तथा असभ्यता का लक्षण हैं।

एक ही बात को दो पर्यायों या समान वाक्यांश से व्यक्त करना **पुनरुक्त दोष** (Tautology) कहलाता है। ऐसे दोष से बचने की आवश्यकता है। पुनरुक्ति दोष युक्त कुछ वाक्यांश हैं—वापस लौटा; अखंडित एकता भंग होने का भय; एक वर्ष बीतने के बाद; इन कारणों की वजह से; काफ़ी पर्याप्त होगा; मन के अन्दर में; उस की यह ख़ास विशेषता (थी); काम पर नियुक्त करना (चाहा); गोल-गोल चक्कर (लगा रहा था); थोड़े-से कुछ रुपये (उधार दे दो); (इस काम को) शुरू से आरम्भ/प्रारम्भ (करो); परस्पर सहयोग की अपेक्षा; फिर बाद में (मिलूँगा); पाँच सौ रुपये का दान प्रदान (किया); विद्यालय की) सारी व्यवस्था को अच्छी तरह व्यवस्थित करना (होगा); दोनों परस्पर गले मिले। आदि।

'कार्य करना, खेल खेलना, चाल चलना, दौड़ दौड़ना, मार मारना, लड़ाई लड़ना, हँसी हँसना' में पुनरुक्त दोष नहीं है। इन में पहला शब्द वर्गीय कर्म है तथा हिन्दी भाषा-व्यवस्था का स्वीकृत रूप है।

परवाह (=चिन्ता) के साथ 'नहीं' के योग से कुछ सन्दर्भों में उपेक्षा/

अनादर का भाव व्यक्त होता है, यथा—मुझे तुम्हारी (कोई) परवाह नहीं। दक्षिण भारत में 'परवाह नहीं' का अर्थ है 'कोई बात नहीं'। इस अर्थ में उपेक्षा या अनादर का भाव नहीं है, वरन् यह दक्षिण भारत की भाषाओं में शिष्ट प्रयोग के रूप में स्वीकृत है।

विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त एक शब्द-भेद दूसरे शब्द-भेद की भाँति हो जाता है, यथा—

(1) **विशेषणवत् संज्ञा**—अब आप **बाजार** भाव सुनिए। यह कैसी **शिक्षा** संस्था है? **राष्ट्रभाषा हिन्दी** परिषद् की **स्वर्ण** जयन्ती।

(2) **क्रियाविशेषणवत् संज्ञा**—तुम यहाँ से **जल्दी** भाग जाओ।

(3) **विशेषणवत् अप्रधान सर्वनाम**—**कौन** महिला आई है? आप का **क्या** प्रश्न है? **कोई** काम हो तो बताना। **वह** लड़का कहाँ गया जो ....। **यह** बकरी चार किलो दूध देती है। **वे** मेजें यहाँ रखो। **जो** बात मैं ने आप से कही थी,.... ....। उन्हों ने खाए होंगे **कोई** 24-25 लड्डू। **कुछ** चीजें मेरे पास हैं।

(4) **अव्ययवत् अप्रधान सर्वनाम**— लो, मैं तो **यह** चली, तुम यहीं बैठे रहो। (यह=अब/अभी)। तुम मुझ से **क्या** जीत पाओगे? (क्या=नहीं)। **जो** तुम मेरे साथ चलो, तो मैं भी चलूँ। (जो=यदि)। **क्या** दृश्य है!

(5) **विशेषणवत् असमापिका क्रिया**—**सुनी-सुनाई** बात पर विश्वास करना। **बोलता** पत्थर देखोगे?

(6) **संज्ञावत् विशेषण**—**छोटों** के प्रति स्नेह, **बड़ों** के प्रति श्रद्धा रखो। उन्हों ने **बहुतों** का भला किया है। तुमने उसे बहुत खरी-खोटी सुनाई। **जैसे** को **तैसा** मिले, मिले **नीच** को **नीच**। क्या इतनी जल्दी **लम्बी** तान कर सो गए?

(7) **सर्वनामवत् विशेषण**—**एक** आया और **दूसरा** चला गया। क्या **दोनों** ही भाग गए?

(8) **अव्ययवत् विशेषण**—तुम्हारा घोड़ा **अच्छा** दौड़ता है। अरे! वह तो कब का **ठंडा** पड़ा है। उस रात वह बहुत **तेज** भागा था। मैं ने उसे **बहुत** समझाया। वह **कैसा** पढ़ती है? क्या तुम **ऊँचा** सुनते हो?

(9) **क्रियाविशेषणवत् सर्वनाम**—वह **अपने आप** चली गई। वे **कुछ** मुस्कराए।

(10) रीति-समय-स्थानवाची अव्यय—इसे **बार-बार** पढ़ा। (रीति०)→ वह यहाँ **बार-बार** आती थी। (समय०)। **आगे** एक तालाब है। (स्थान०)→कहो, **आगे** ऐसा नहीं करूँगा। (समय०)। डाकघर **पीछे** है। (स्थान०)→**पीछे** देख लेंगे। (समय०)। वे **यहाँ** रहते हैं। (स्थान०)→मैं अपने एक रिश्तेदार के **यहाँ** रहता हूँ। (संबंधसूचक)। यह काम बहुत **पहले** हो जाना चाहिए था। (समय०)→**यह** काम जाने से **पहले** हो जाना चाहिए। (संबंधसूचक)।

वाक्य-प्रयोग (/सन्दर्भ) के आधार पर अनेक शब्द एक से अधिक शब्द-भेदों के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं, यथा—

अच्छा अच्छों की संगति में रहने से ही अच्छे बन सकोगे। (संज्ञा)। अच्छे बच्चे बड़ों का कहना मानते हैं। (विशेषण)। उस का नाच सबसे अच्छा लगा था। (क्रियाविशेषण)। अच्छा, यह भी कोई बात है ! (आवेगवाची)।

आदि—वेद, महाभारत, रामायण, कुरान आदि धार्मिक ग्रन्थ हैं। (सर्वनाम)। मनु को आदि पुरुष कहा जाता है। (विशेषण)

आप—अब आप ही बताइए। (मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम)। स्व० जयशंकर प्रसाद कवि थे। आप नाटककार भी थे। (अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम)। मैं आप पढ़ लूँगा। (निजवाचक सर्वनाम)।

एक—एक बोला। एक सोता है तो एक जाग जाता है। (सर्वनाम)। एक कमरा मुझे भी चाहिए। एक बार मुझे 'माँ' कहो। (विशेषण)। एक तो पैसे नहीं लौटाता, दूसरे गाली देता है। एक तो वे वृद्ध हैं, दूसरे दिल के मरीज़ हैं। (अव्यय)।

ऊपर—ऊपर मत जाओ। (स्थानसूचक)। वह तो ऊपर (ही) पांच रुपये मार ले गया। (क्रिया विशेषण)।

ऐसा—ऐसा भी कहीं हो सकता है ? ऐसा मत कहो। (सर्वनाम)। ऐसा होशियार नौकर तुम्हें कहाँ मिला ? (प्रविशेषण)। ऐसा वर चिराग ले कर ढूंढ़ने पर भी न मिलेगा। (विशेषण)। ऐसा ही करो। बच्चा ऐसा भागा कि लड़खड़ा कर गिर पड़ा। (क्रियाविशेषण)।

और—औरों से भी सलाह लेनी होगी। (सर्वनाम)। और लड़कियां किधर हैं ? (उद्देश्य विशेषण)। दस रुपये और निकालो। (विधेय विशेषण)। डाकू और तेज़ भागे। (प्र-क्रियाविशेषण)। बच्चे के पास एक गेंद और दो बल्ले हैं। (समुच्चय बोधक)।

कारण—इस का कारण मैं बताता हूँ। (संज्ञा)। बीमार होने के कारण मैं संस्थान न आ सका। (संबंधसूचक)। वह नहीं आई, इस कारण मैं भी नहीं गई। (समुच्चयबोधक)।

कुछ—तुम्हारी जेब में कुछ तो होगा। (सर्वनाम)। कुछ रुपये उधार दे दो। (संख्यावाचक विशेषण)। कुछ मलाई इधर भी भेज दो। (परिमाणवाचक विशेषण)। तुम कुछ सोते हो, कुछ जागते हो। (परिमाणवाचक क्रियाविशेषण)।

कोई—थाने से कोई आया था। (सर्वनाम)। कोई (भी) बच्चा यहाँ आ जाए। (विशेषण)। वहाँ कोई बीस आदमी रहे होंगे। (प्रविशेषण)।

कौन—उधर कौन खड़ा है ? (सर्वनाम)। कौन आदमी है जो बड़बड़ कर रहा है ? (विशेषण)। उन्हें मना लेना कौन बड़ा काम है। (प्रविशेषण)।

क्या—वह **क्या** कर रहा है ? (सर्वनाम) । सच-सच बताओ, **क्या** बात थी ? (विशेषण) । तू **क्या** जाएगा, मुझे ही जाना पड़ेगा । (अव्यय) ।

चाहे—तू जो **चाहे**, ले ले । (क्रिया) । **चाहे** घर रहो, **चाहे** ऑफ़िस जाओ । (संयोजक) । मैं **चाहे** जितना खटूँ, कोई लाभ नहीं । (प्र-क्रियाविशेषण) ।

जैसा—**जैसा** करोगे, वैसा भरोगे । तुम **जैसा** चाहती थीं, वैसा ही प्रबंध कर दिया गया है । (क्रियाविशेषण) । भगवान् आप के **जैसी** बधू सब को दे । (संबंध-सूचक) **जैसा** नाम, वैसा रूप । (विशेषण) ।

जो—**जो** साड़ी पसन्द हो, पहन लो । (विशेषण) । **जो** करेगा सो भरेगा (सर्वनाम) । उस ने **जो** कमरा खोला, तो चीख़ पड़ी । (जो=ज्यों ही) (क्रिया विशेषण) । वह इतनी मूर्ख नहीं **जो** तुम्हारी चालाकी न पकड़ सके । (संयोजक) ।

ठीक—ठीक कहना है ! (विशेषण) । **ठीक** बोलो, **ठीक** तोलो । (क्रिया विशेषण) । **ठीक**, वे भी ऐसा ही कह रहे थे । (आवेगी) ।

डूबता—तुम **डूबते** तो मैं बचा लेता । (क्रिया) । **डूबती** नाव से पाँच आदमी ही बच पाए । (विशेषण) । **डूबते** को तिनके का सहारा । (संज्ञा) ।

दूसरा—तुम्हें **दूसरों** से क्या मतलब ? (सर्वनाम) । यह **दूसरी** बात है । (विशेषण) ।

बहुत—बहुतों का ऐसा मानना है । (संज्ञा) । उस के पास **बहुत** माल है । (विशेषण) । बच्ची माँ से बिछुड़ कर **बहुत** रोई । (क्रिया विशेषण) । चाय **बहुत** मीठी थी । (प्र-विशेषण) । चोर **बहुत** तेज़ी से भागा । (प्र-क्रियाविशेषण) ।

भला—भगवान् सब का **भला** करे । (संज्ञा) । वह **भली** महिला है । (विशेषण) । इस समय तुम **भले** आए । (क्रियाविशेषण) । तुम **भले** ही जाओ, वह नहीं जाएगा । (संयोजक) । **भला** ! इस में मैं क्या कर सकता था ? (आवेगी) ।

मरा—एक बैल **मरा**, एक बछड़ा । (समापिका क्रिया) । **मरे** व्यक्ति को क्या गाली देना । (विशेषण) । **मरों** के बारे में क्या सोचना । इस **मरी** में हज़ारों मर गए । (संज्ञा) । एक **मरा** पिल्ला उधर पड़ा है । (कृदन्त) ।

साथ—सुख में सब कोई **साथ** देते हैं । (संज्ञा) । सब बच्चे **साथ** खेलते हैं । (क्रियाविशेषण) । मैं माता जी के **साथ** जानेवाली थी । (संबंधसूचक) । उसे यह पत्र देना, **साथ** ही उस से कहना कि····(संयोजक) ।

सुन्दर—**सुन्दर**, इधर आओ । (संज्ञा) । कितना **सुन्दर** फूल है ! (विशेषण) । तुम बहुत **सुन्दर** नाचती हो (क्रियाविशेषण) ।

हिन्दी में कुछ शब्द-रूप विभिन्न सन्दर्भों में अर्थ की दृष्टि से ही भिन्न नहीं होते, कभी-कभी शब्द-वर्ग की दृष्टि से भी भिन्न होते हैं । ऐसे शब्द-रूपों के प्रयोग के समय सतर्कता रखने की आवश्यकता है, यथा—

अड्डा=पड़ाव; अतिचार का स्थान (संज्ञा) । **कड़ा**=कलाई का गहना

(संज्ञा)। कठोर (विशेषण)। **ख़त**=चिट्ठी; कानों के पास के बालों का ख़त (संज्ञा)। **खोली**=गिलाफ़; घर/कमरा (संज्ञा)। √खोल्+-ई (क्रिया)। **गढ़**=क़िला (संज्ञा)। √गढ़ (धातु)। **गला**=ग्रीवा/गर्दन; आवाज़ (संज्ञा)। √गल्+-आ (क्रिया)। **गोल**=वृत्त; ग़ायब; लक्ष्य (संज्ञा)। वृत्ताकार (विशेषण)। **घूर**=कूड़ा-कचरा (संज्ञा)। √घूर् (धातु)। **जल**=पानी (संज्ञा)। √जल् (धातु)। **जीना**=ज़िन्दगी (संज्ञा)। √जी+-ना (क्रिया का सामान्य रूप)। **तेज**=चमक (संज्ञा)। √तेज़=मेघावी, धारदार, अधिक (विशेषण)। ज़ोर से (क्रियाविशेषण)। फल=केला आदि फल; परिणाम; भविष्य (संज्ञा)। √फल (धातु)। **बाल**=केश; √बॉल=गेंद (संज्ञा)। √बाल्=जलाना (धातु)। **बोली**=भाषा-बोली; व्यंग्य; मोल भाव; सट्टे की बोली (संज्ञा)। √बोल्+-ई (समापिका क्रिया)। √बस=Bus (संज्ञा)। पर्याप्त/काफ़ी (अव्यय) √बस् (धातु)।

20

शब्द-भेदों की पद-व्याख्या

पद-व्याख्या का अर्थ है—वाक्य में आए हुए शब्द की व्याकरणिक व्याख्या। हिन्दी व्याकरणों में पद-व्याख्या के स्थान पर अन्य कई नाम मिलते हैं, यथा—पद-परिचय, पदान्वय, पदनिर्देश, पदनिर्णय, पदविन्यास, पदच्छेद। 'पद-व्याख्या' इन सब नामों से अधिक बातों तथा विस्तार को अपने में समेटे हुए है। सामान्यतः ये सभी नाम एक ही कार्य के सूचक हैं—वाक्य में प्रयुक्त शब्दों अर्थात् पदों की व्याकरण सम्मत विशेषताएँ बताना। वाक्य में आए हुए सभी पदों के स्वरूप का उल्लेख करते हुए उन का पारस्परिक सम्बन्ध बताना पद-व्याख्या का क्षेत्र है। पद-व्याख्या में एक प्रकार से समस्त व्याकरण का सार आ जाता है। कुछ लोगों का यह कहना है कि संस्कृत व्याकरण-परम्परा में पद व्याख्या का कोई स्थान नहीं है और न यह कोई नयी व्याकरणिक जानकारी देती है, केवल अँगरेज़ी व्याकरण की परम्परा का हिन्दी व्याकरण में अंधानुकरण उचित नहीं। इस संबंध में हमारा यह कहना है कि हिन्दी व्याकरण लेखन में किसी भी भाषा के व्याकरण का अन्धानुकरण उचित नहीं, वह चाहे संस्कृत हो, चाहे अँगरेज़ी या कोई अन्य भाषा-व्याकरण। पद-व्याख्या कोई नयी व्याकरणिक जानकारी तो नहीं देती किन्तु प्राप्त व्याकरणिक जानकारी की पुष्टि (/परीक्षा) अवश्य करती है। व्याकरण-अध्येता ने ध्वनि-क्षेत्र को छोड़ कर शब्दों के बारे में वाक्य के सन्दर्भ में जो कुछ जाना है उस की अच्छी परीक्षा 'पदव्याख्या' में हो जाती है और अध्ययन-अध्यापन में अभ्यास तथा परीक्षा के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। 'पद-व्याख्या' अधीत व्याकरण को आवश्यकतानुसार क्रमिक रूप में प्रस्तुत करने के लिए अभ्यास-क्षेत्र प्रस्तुत करती है। इस प्रकार 'पद-व्याख्या' सैद्धान्तिक व्याकरण का व्यावहारिक उपयोग है। पद-व्याख्या में इन बातों का उल्लेख किया जाना आवश्यक है—

(1) **संज्ञा**—प्रकार, लिंग, वचन, कारक, संबंध। (2) **सर्वनाम**—प्रकार, प्रतिनिहित संज्ञा, लिंग, वचन, कारक, संबंध। (3) **विशेषण**—प्रकार, सम्बद्ध विशेष्य, लिंग, वचन, विकार (+), सम्बन्ध। (4) **क्रिया**—प्रकार, काल, वाच्य, वृत्ति, पक्ष, लिंग, वचन, पुरुष, संबंध। (5) **अव्यय**—प्रकार, विकार (±), सम्बन्ध। पदों की संरचनागत विशेषता का उल्लेख भी रहे तो गहन, विस्तृत जानकारी मिल

जाती है। यहाँ उदाहरणार्थ विभिन्न पदों की पद-व्याख्या लिखी जा रही है। कुछ पदों की व्याख्या विस्तार के साथ लिखी जाएगी और कुछ की सांकेतिक रूप में।

(1) चौकीदार, बैंक के कर्मचारियों को मत रोको।

चौकीदार—यौगिक संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, सम्बोधक शब्द-रहित सम्बोधन कारक।

बैंक (के)—रूढ़ संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, परसर्गयुत सम्बन्ध कारक, सम्बन्धी शब्द 'कर्मचारियों'।

कर्मचारियों (को)—यौगिक संज्ञा, जातिवाचक, उभयलिंग, बहुवचन, परसर्ग युत कर्म कारक, 'रोको' क्रिया का कर्म।

मत—रूढ़ अव्यय, निषेध सूचक निपात, 'रोको' क्रिया का निषेध।

रोको—रूढ़ क्रिया, सकर्मक, प्रत्यक्ष विधि (काल), कर्तृवाच्य, विध्यर्थक वृत्ति, आरम्भत्व बोधक अपूर्ण पक्ष, पुल्लिग, बहुवचन, मध्यम पुरुष, लुप्त कर्ता (तुम) से अन्वित, कर्म 'कर्मचारियों'।

(2) जो अपनी बात को नहीं रखते, वे विश्वास के योग्य नहीं होते।

जो—रूढ़ सर्वनाम, सम्बन्धवाचक, लुप्त संज्ञा (लोग) का प्रतिनिधित्व, पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, कर्ता कारक, 'रखते' क्रिया का कर्ता।

अपनी—व्युत्पन्न विशेषण, सार्वनामिक, स्त्रीलिंग, एकवचन, ईकारान्त विकार, विशेष्य 'बात' से सम्बद्ध।

बात (को)—रूढ़ संज्ञा, जातिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, परसर्ग युत कर्म कारक, 'रखते' क्रिया का कर्म।

नहीं—रूढ़ अव्यय, नकारात्मक निपात, 'रखते' क्रिया की अस्वीकृति।

रखते—रूढ़ क्रिया, सकर्मक, (निरपेक्ष) सामान्य वर्तमान काल, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ वृत्ति, नित्यत्वद्योतक अपूर्ण पक्ष, पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, कर्ता 'जो', कर्म 'बात', 'नहीं' निपात के कारण 'हैं' सहायक क्रिया का लोप।

वे—रूढ़ सर्वनाम, पुरुषवाचक, लुप्त संज्ञा 'लोग' का प्रतिनिधित्व, पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, 'जो' सर्वनाम से सम्बद्ध, कर्ता कारक, 'होते' क्रिया का कर्ता।

विश्वास (के)—रूढ़ संज्ञा, भाववाचक, पुल्लिग, एकवचन, परसर्ग युत सम्बन्ध कारक, सम्बन्धी शब्द 'योग्य', 'होते' क्रिया का पूरक।

योग्य—रूढ़ विशेषण, गुणवाचक, पुल्लिग, एकवचन, विधेय विशेषण, विशेष्य 'वे' से सम्बद्ध।

नहीं—रूढ़ अव्यय, नकारात्मक निपात, 'होते' क्रिया की अस्वीकृति।

होते—रूढ़ क्रिया, अपूर्ण अकर्मक, अस्तित्व बोधक, कर्तृवाच्य, (निरपेक्ष) सामान्य वर्तमान काल, नित्यत्व द्योतक अपूर्ण पक्ष, निश्चयार्थ वृत्ति, पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, कर्ता 'वे' तथा पूरक 'विश्वास के योग', 'नहीं' निपात के कारण 'हैं' सहायक क्रिया का लोप।

(3) कल उन्हें **गाँव** जाना था।

कल—रूढ़ अव्यय, कालवाचक, 'जाना है' क्रिया से सम्बद्ध।

उन्हें—रूढ़ सर्वनाम, पुरुषवाचक, लुप्त संज्ञा जातिवाचक/व्यक्तिवाचक का प्रतिनिधित्व, उभयलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष, संश्लिष्ट विभक्ति '-हें' युत कर्ता के अर्थ में सम्प्रदान कारक, 'जाना है' क्रिया का नियन्त्रक।

गाँव—रूढ़ संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिंग, एकवचन, परसर्ग रहित अधिकरण कारक, 'जाना है' क्रिया का 'लक्ष्य स्थल'।

जाना है—संयुक्त क्रिया, आवश्यकताबोधक अकर्मक, कर्तृवाच्य, सम्भाव्य भविष्यत् काल, आरम्भपूर्व अपूर्ण पक्ष, विधानार्थ वृत्ति, पुल्लिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, कर्ता 'उन्हें' से नियन्त्रित।

(4) आज जब नारी-उत्थान, स्वतन्त्रता, उस की आत्म-निर्भरता और अधिकारों को ले कर सम्पूर्ण विश्व में आवाज़ें उठ रही हैं, वहीं आज कुछ नारियाँ ऐसी भी हैं, जो स्वयं नारी हो कर भी नारी-उत्थान के विरुद्ध अपने विचार रखती हैं।

जब—रूढ़ कालसूचक, व्यधिकरण समुच्चयादि बोधक, 'उठ रही हैं' क्रिया का काल सूचक, 'आज जब·········भी हैं, उपवाक्यों का संयोजन।

स्वतन्त्रता—यौगिक संज्ञा, भाववाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, दूरवर्ती परसर्ग 'को' युत कर्म कारक, 'ले कर' असमापिका क्रिया का कर्म।

और—रूढ़ संयोजक समुच्चयबोधक अव्यय, पूर्ववर्ती पदबन्ध 'नारी उत्थान, स्वतन्त्रता, उस की आत्म-निर्भरता' तथा परवर्ती पदबन्ध 'अधिकारों को ले कर' का संयोजन कर रहा है।

सम्पूर्ण—यौगिक विशेषण, पूर्णतासूचक अनिश्चयवाची संख्याबोधक, पुल्लिंग, एकवचन, परसर्ग युक्त विशेष्य 'विश्व' की संख्या का निर्देशक।

वहीं—यौगिक अवधारक स्थानसूचक अव्यय, स्थितिसूचक, संयोजक के रूप में दो उपवाक्यों का योजन—(क) आज जब·····उठ रही हैं, (ख) आज कुछ····· भी हैं।

जो—रूढ़ सर्वनाम, संबंधवाचक, पूर्ववती संज्ञा 'नारियाँ' का प्रतिनिधित्व, स्त्रीलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष, परसर्ग रहित कर्ता कारक 'रखती है' समापिका क्रिया का कर्ता।

स्वयं—रूढ़ सर्वनाम, निजवाचक, पूर्ववर्ती सर्वनाम 'जो' की ओर अवधारक संकेत, स्त्रीलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष, 'जो' का समानाधिकरण होने के कारण कर्ता कारक।

के विरुद्ध—सम्बद्ध विरोधवाची संबंधसूचक अव्यय, 'नारी-उत्थान' से सम्बद्ध विपरीततासूचक जटिल परसर्ग।

(5) धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन को ही राजगद्दी देना चाहते थे।

जाती है। यहाँ उदाहरणार्थ विभिन्न पदों की पद-व्याख्या लिखी जा रही है। कुछ पदों की व्याख्या विस्तार के साथ लिखी जाएगी और कुछ की सांकेतिक रूप में।

(1) चौकीदार, बैंक के कर्मचारियों को मत रोको।

चौकीदार—यौगिक संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, सम्बोधक शब्द-रहित सम्बोधन कारक।

बैंक (के)—रूढ़ संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, परसर्गयुत सम्बन्ध कारक, सम्बन्धी शब्द 'कर्मचारियों'।

कर्मचारियों (को)—यौगिक संज्ञा, जातिवाचक, उभयलिंग, बहुवचन, परसर्ग युत कर्म कारक, 'रोको' क्रिया का कर्म।

मत—रूढ़ अव्यय, निषेध सूचक निपात, 'रोको' क्रिया का निषेध।

रोको—रूढ़ क्रिया, सकर्मक, प्रत्यक्ष विधि (काल), कर्तृवाच्य, विध्यर्थक वृत्ति, आरम्भत्व बोधक अपूर्ण पक्ष, पुल्लिग, बहुवचन, मध्यम पुरुष, लुप्त कर्ता (तुम) से अन्वित, कर्म 'कर्मचारियों'।

(2) जो अपनी बात को नहीं रखते, वे विश्वास के योग्य नहीं होते।

जो—रूढ़ सर्वनाम, सम्बन्धवाचक, लुप्त संज्ञा (लोग) का प्रतिनिधित्व, पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, कर्ता कारक, 'रखते' क्रिया का कर्ता।

अपनी—व्युत्पन्न विशेषण, सार्वनामिक, स्त्रीलिंग, एकवचन, ईकारान्त विकार, विशेष्य 'बात' से सम्बद्ध।

बात (को)—रूढ़ संज्ञा, जातिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, परसर्ग युत कर्म कारक, 'रखते' क्रिया का कर्म।

नहीं—रूढ़ अव्यय, नकारात्मक निपात, 'रखते' क्रिया की अस्वीकृति।

रखते—रूढ़ क्रिया, सकर्मक, (निरपेक्ष) सामान्य वर्तमान काल, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ वृत्ति, नित्यत्वद्योतक अपूर्ण पक्ष, पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, कर्ता 'जो', कर्म 'बात', 'नहीं' निपात के कारण 'हैं' सहायक क्रिया का लोप।

वे—रूढ़ सर्वनाम, पुरुषवाचक, लुप्त संज्ञा 'लोग' का प्रतिनिधित्व, पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, 'जो' सर्वनाम से सम्बद्ध, कर्ता कारक, 'होते' क्रिया का कर्ता।

विश्वास (के)—रूढ़ संज्ञा, भाववाचक, पुल्लिग, एकवचन, परसर्ग युत सम्बन्ध कारक, सम्बन्धी शब्द 'योग्य', 'होते' क्रिया का पूरक।

योग्य—रूढ़ विशेषण, गुणवाचक, पुल्लिग, एकवचन, विधेय विशेषण, विशेष्य 'वे' से सम्बद्ध।

नहीं—रूढ़ अव्यय, नकारात्मक निपात, 'होते' क्रिया की अस्वीकृति।

होते—रूढ़ क्रिया, अपूर्ण अकर्मक, अस्तित्व बोधक, कर्तृवाच्य, (निरपेक्ष) सामान्य वर्तमान काल, नित्यत्व द्योतक अपूर्ण पक्ष, निश्चयार्थ वृत्ति, पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, कर्ता 'वे' तथा पूरक 'विश्वास के योग', 'नहीं' निपात के कारण 'हैं' सहायक क्रिया का लोप।

(3) कल उन्हें **गाँव** जाना था।

कल—रूढ़ अव्यय, कालवाचक, 'जाना है' क्रिया से सम्बद्ध।

उन्हें—रूढ़ सर्वनाम, पुरुषवाचक, लुप्त संज्ञा जातिवाचक/व्यक्तिवाचक का प्रतिनिधित्व, उभयलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष, संश्लिष्ट विभक्ति '-हें' युत कर्ता के अर्थ में सम्प्रदान कारक, 'जाना है' क्रिया का नियन्त्रक।

गांव—रूढ़ संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, परसर्ग रहित अधिकरण कारक, 'जाना है' क्रिया का 'लक्ष्य स्थल'।

जाना है—संयुक्त क्रिया, आवश्यकताबोधक अकर्मक, कर्तृवाच्य, सम्भाव्य भविष्यत् काल, आरम्भपूर्व अपूर्ण पक्ष, विधानार्थ वृत्ति, पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष, कर्ता 'उन्हें' से नियन्त्रित।

(4) आज जब नारी-उत्थान, स्वतन्त्रता, उस की आत्म-निर्भरता और अधिकारों को ले कर सम्पूर्ण विश्व में आवाज़ें उठ रही हैं, वहीं आज कुछ नारियाँ ऐसी भी हैं, जो स्वयं नारी हो कर भी नारी-उत्थान के विरुद्ध अपने विचार रखती हैं।

जब—रूढ़ कालसूचक, व्यधिकरण समुच्चयादि बोधक, 'उठ रही हैं' क्रिया का काल सूचक, 'आज जब·······भी हैं, उपवाक्यों का संयोजन।

स्वतन्त्रता—यौगिक संज्ञा, भाववाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, दूरवर्ती परसर्ग 'को' युत कर्म कारक, 'ले कर' असमापिका क्रिया का कर्म।

और—रूढ़ संयोजक समुच्चयबोधक अव्यय, पूर्ववर्ती पदबन्ध 'नारी उत्थान, स्वतन्त्रता, उस की आत्म-निर्भरता' तथा परवर्ती पदबन्ध 'अधिकारों को ले कर' का संयोजन कर रहा है।

सम्पूर्ण—यौगिक विशेषण, पूर्णतासूचक अनिश्चयवाची संख्याबोधक, पुल्लिग, एकवचन, परसर्ग युक्त विशेष्य 'विश्व' की संख्या का निर्देशक।

वहीं—यौगिक अवधारक स्थानसूचक अव्यय, स्थितिसूचक, संयोजक के रूप में दो उपवाक्यों का योजन—(क) आज जब····उठ रही हैं, (ख) आज कुछ···· भी हैं।

जो—रूढ़ सर्वनाम, संबंधवाचक, पूर्ववती संज्ञा 'नारियाँ' का प्रतिनिधित्व, स्त्रीलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष, परसर्ग रहित कर्ता कारक 'रखती है' समापिका क्रिया का कर्ता।

स्वयं—रूढ़ सर्वनाम, निजवाचक, पूर्ववर्ती सर्वनाम 'जो' की ओर अवधारक संकेत, स्त्रीलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष, 'जो' का समानाधिकरण होने के कारण कर्ता कारक।

के विरुद्ध—सम्बद्ध विरोधवाची संबंधसूचक अव्यय, 'नारी-उत्थान' से सम्बद्ध विपरीततासूचक जटिल परसर्ग।

(5) धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन को ही राजगद्दी देना चाहते थे।

धृतराष्ट्र—यौगिक व्यक्तिवाचक संज्ञा, पुल्लिग, आदरार्थ बहुवचन, परसर्ग-रहित कर्ता कारक, 'देना चाहते थे' क्रिया का कर्ता।

अपने—रूढ़ सर्वनाम, निजवाचक, 'धृतराष्ट्र' संज्ञा का संकेतक, पुल्लिग, एकवचन, सम्बन्ध कारक, परवर्ती संज्ञा 'पुत्र' सम्बन्धी शब्द परसर्गयुत होने के कारण तिर्यक् रूप में प्रयुक्त, सार्वनामिक विशेषण का प्रकार्य करते हुए विशेष्य संज्ञा 'पुत्र' से संबंधित।

पुत्र—रूढ़ संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग, एकवचन, दूरवर्ती परसर्ग, गौण कर्मकारक के रूप में सम्प्रदान, 'देना चाहते थे' क्रिया के गौणांश 'देना' का प्राप्तक।

दुर्योधन को—यौगिक व्यक्तिवाचक संज्ञा, पुल्लिग, एकवचन, पूर्ववर्ती संज्ञा 'पुत्र' का समानाधिकरण अतः परसर्गयुत गौण कर्मकारक के रूप में सम्प्रदान, 'देना चाहते थे' क्रिया गौणांश 'देना' का प्राप्तक'।

ही—रूढ़ अवधारक निपात अव्यय, बलप्रदायक सीमाबोधक के रूप में 'दुर्योधन' को महत्त्व प्रदान कर रहा है।

राजगद्दी—यौगिक संज्ञा, जातिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, परसर्ग रहित मुख्य कर्म कारक, 'देना चाहते थे' क्रिया के गौणांश 'देना' का कर्म।

देना चाहते थे—मार्थक क्रिया 'देना' युक्त संयुक्त समापिका, इच्छाबोधक सकर्मक, कर्तृवाच्य, सामान्य भूतकाल, आरम्भ पूर्व अपूर्ण पक्ष, विधानार्थ वृत्ति, पुल्लिग, (आदरार्थ) बहुवचन, अन्य पुरुष, कर्ता 'धृतराष्ट्र' से नियन्त्रित, मुख्य क्रियांश 'चाहते थे' का कर्म गौणांश क्रियांश 'देना' तथा देना क्रिया का मुख्य कर्म राजगद्दी एवं गौण कर्म 'पुत्र दुर्योधन को' है।

(6) जोकर को उछलते-कूदते देख सब लोग हँस पड़े।

जोकर को—यौगिक संज्ञा, जातिवाचक, उभयलिंग, एकवचन, परसर्ग सहित कर्म कारक, पूर्वकालिक क्रिया 'देख' का कर्म।

उछलते-कूदते—अकर्मक पुनरुक्त क्रिया से निर्मित यौगिक वर्तमानकालिक कृदन्त विशेषण, विशेष्य 'जोकर को', परसर्गयुक्त विशेष्य के कारण विकारी रूप।

देख—सकर्मक रूढ़ पूर्वकालिक कृदन्त, 'कर' पूर्वकालिक व्यक्त चिह्न से रहित, कर्तृवाच्य, इस का कर्म 'जोकर को' है।

सब—रूढ़ विशेषण, संख्यावाचक, सर्ववाची अनिश्चयसूचक, लिंग-वचन की दृष्टि से अपने विशेष्य 'लोग' से अन्वित।

लोग—रूढ़ संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिग (स्त्रीलिंग समाहारी), बहुवचन, परसर्ग-रहित कर्ता कारक, 'हँस पड़े' समापिका क्रिया का कर्ता।

हँस पड़े—आकस्मिकतासूचक 'पड़' धातु से युक्त संयुक्त समापिका क्रिया, आकस्मिकताबोधक अकर्मक, कर्तृवाच्य, सामान्य भूतकाल, समाप्तिद्योतक पूर्ण पक्ष, निश्चयार्थक वृत्ति, समाहारी पुल्लिग, बहुवचन, अन्य पुरुष, कर्ता, 'लोग' से नियन्त्रित, मुख्य क्रिया 'हँस' तथा रंजक क्रिया 'पड़े' हैं।

(7) तुम्हें तो कल वहाँ जाना था ।

तुम्हें—रूढ़ सर्वनाम, पुरुषवाचक, श्रोता के (लुप्त) नाम का संकेतक, मध्यम पुरुष, समाहारी उभयलिंग, उभय वचन, सविभक्ति कर्ता के प्रकार्य में सम्प्रदान कारक, 'जाना था' समापिका क्रिया का कर्ता ।

जाना था—आवश्यकताबोधक कालसूचक 'था' क्रिया से युक्त संयुक्त समापिका क्रिया, आवश्यकताबोधक अकर्मक, कर्तृवाच्य, सामान्य भूतकाल, आरम्भ पूर्व अपूर्ण पक्ष, निश्चयार्थक वृत्ति, समाहारी उभयलिंग, उभयवचन, कर्ता 'तुम्हें' से नियन्त्रित ।

खण्ड III

पदबन्ध तथा वाक्य-व्यवस्था

चॉम्स्की ने इन तत्त्वों को संज्ञा पदबंध और क्रिया पदबंध NP; VP कहा है किन्तु उद्‌देश्य, विधेय नाम अधिक उपयुक्त हैं क्योंकि उद्‌देश्य में संज्ञा पदबंध के अतिरिक्त अन्य पदबंध भी आ सकते हैं, इसी प्रकार क्रिया पदबंध में भी क्रियाविशेषण पदबंध आ सकता है। उद्‌देश्य और विधेय का यह संबंध धनात्मक के अतिरिक्त गुणात्मक भी होता है, यथा—बुड्ढा + (चने) + चबाता + है; बुड्ढे ने + (चने) × (चबाए + हैं); बुड्ढे से + (चने) × नहीं × चबाए × गए। गुणात्मक संबंध का तात्पर्य है—उद्‌देश्य घटक और विधेय घटक एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

व्याकरण का मुख्य उद्‌देश्य वाक्यार्थ को स्पष्ट करना माना जाता है। वाक्यार्थ-स्पष्टीकरण के लिए वाक्य-घटकों के रूपान्तर तथा प्रयोग को ही नहीं वरन् उन के पारस्परिक संबंध को भी जानना आवश्यक है। वाक्य-व्यवस्था (/वाक्य-विन्यास) में इस संबंध पर विचार किया जाता है। वाक्य-घटकों का पारस्परिक संबंध और उस संबंध के आधार पर उन्हें वाक्य में यथाक्रम रखने तथा उन से वाक्य बनाने की प्रक्रिया का अध्ययन वाक्य-व्यवस्था के विषय हैं। वाक्य के घटकों का पारस्परिक संबंध दो रीतियों से व्यक्त किया जाता है—1. घटकों को उन के अर्थ तथा प्रयोग के आधार पर युक्त कर वाक्य-निर्माण की रीति को संश्लेषण/वाक्य-संश्लेषण (वाक्य-रचना) कहते हैं। 2. घटकों को उन के अर्थ तथा प्रयोग के आधार पर वियुक्त (/अलग-अलग) कर वाक्य-विखंडन की रीति को विश्लेषण/वाक्य-विश्लेषण कहते हैं। वाक्य-विश्लेषण (वाक्य पृथक्करण) की प्रक्रिया अँगरेज़ी व्याकरण के आधार पर हिन्दी-व्याकरण में ग्रहण की गई है। इस प्रक्रिया से वाक्य-अर्थबोध में बहुत सहायता मिलती है।

पद तथा पदबंध-स्तर की रचना के लिए प्रत्यक्ष रूप से एक शीर्ष का होना अनिवार्य है। पदबंध-स्तर पर परिधीय तत्त्व हो भी सकता है और नहीं भी। इस प्रकार रचना स्तर पर पदबंध तथा वाक्य भिन्न स्तरीय इकाई हैं और अर्थबोध के लिए उपयोगी हैं। आगामी पृष्ठों में इन के संबंध में विस्तार से लिखा जाएगा।

21
पदबन्ध

पदबन्ध वाक्य का ऐसा अंश होता है जिस में एक या एक से अधिक पद परस्पर सम्बद्ध हो कर एक इकाई के रूप में अर्थ प्रकट करते हैं । सामान्यत: एक वाक्य में 3-4 पदबन्धों का प्रयोग होता है । वाक्य का एक अंश होने के कारण इसे **वाक्यांश** भी कहते हैं । पदबन्ध या वाक्यांश से किसी विचार के एक अंश (/भावना) का बोध होता है । पदबन्ध वाक्य-स्तरीय सब से छोटा खंड होता है जो एक या एकाधिक शब्दों/पदों से निर्मित होता है । पदबन्ध से उपवाक्य की रचना होती है । सामान्यत: (मोटे रूप से) दो या अधिक शब्दों/पदों का वह संयोजन जो एक ही अवधारणा या कल्पना को व्यक्त करता है तथा जिस का निर्माण व्याख्याकारी शब्दों द्वारा मुख्य शब्द के विस्तार से होता है, पदबन्ध कहा जाता है । पदबंध में व्याख्याकारी शब्द मुख्य शब्द से आर्थी तथा व्याकरणिक बंधन से जुड़े रहते हैं, यथा—पेड़ पर बैठी चिड़ियाँ; पैदल सफ़र करना; प्रश्न का उत्तर । शाब्दिक, व्याकरणिक दृष्टि से पदबन्ध (/शब्दबंध) मुहावरापरक, पारिभाषिक और वाक्यगत (स्वतन्त्र) होते हैं ।

पद वाक्य में एक प्रकार्यात्मक कोश के पूर्णक के रूप में आने के कारण अपने कोश में अकेले या अपने विशेषकों, घनत्वकों, परिसीमकों या विस्तारकों के साथ आ कर पदबन्ध का प्रकार्य करता है, यथा—'तू यहाँ आ' में त्रिविध शून्य प्रत्यय से युक्त रूप 'तू, यहाँ, आ' शब्द, पद, पदबन्ध का कार्य करते हुए एक वाक्य में गुम्फित हैं । रूप+शब्द निर्माणक प्रत्यय=शब्द; शब्द+पद निर्माणक प्रत्यय=पद; पद+पदबन्ध कोशपूर्णक प्रकार्य (संज्ञा/कर्ता पदबन्ध कोश-पूर्णक; लक्ष्य स्थान पदबन्ध कोश-पूर्णक; क्रिया पदबन्ध कोश-पूर्णक) सूचक शून्य प्रत्यय से युक्त 'तू', 'यहाँ', 'आ' तीन पदबन्धों का कार्य कर रहे हैं । इस प्रकार कहा जा सकता है कि पदबन्ध पद का ही एक बृहद् वर्ग है जो एक इकाई के रूप में संगुफित हो कर वाक्य में दृष्ट होता है ।

संरचना स्तर पर पदबन्ध में तीन बातों का होना आवश्यक है—1. एक या अधिक पद 2. पदों का परस्पर सम्बद्ध हो कर एक इकाई बनना 3. वाक्य का एक अंश होना । पदबन्ध पद का ही एक संगुफित विस्तृत रूप होता है । पद का

विस्तार किसी विशेषक/घनत्वक/विस्तारक/परिसीमक के योग से सम्भव है। इस प्रकार प्रत्येक पद में पदबन्ध या उस का अंग बनने की शक्ति अन्तर्निहित होती है। प्रत्येक पदबन्ध में एक पद मुख्य होता है जो उस पदबन्ध का शीर्ष/केन्द्र कहलाता है, यथा—यशोदानन्दन गोपी-प्रिय कृष्ण वृषभानुदुलारी सुन्दरी राधा को अन्तर्मन से चाहते थे। इस वाक्य में अर्थ-आयाम/अर्थ-विस्तार की दृष्टि से तीन इकाइयाँ हैं— 1. यशोदानन्दन गोपी-प्रिय कृष्ण 2. वृषभानुदुलारी सुन्दरी राधा को 3. अन्तर्मन से चाहते थे। इन तीनों इकाइयों में 'कृष्ण, राधा, चाह' पद **शीर्ष/केन्द्र** हैं तथा इन के आगे-पीछे आनेवाले शेष (विशेषक) पद इन तीनों के वैशिष्ट्य/गुणों को विस्तार, सीमा या घनत्व प्रदान कर रहे हैं। ये विशेषक पद **'परिधीय पद'** भी कहे जा सकते हैं। इन तीन पदबन्धों की शीर्ष इकाई (/केन्द्र-इकाई) क्रमशः 'संज्ञा, संज्ञा, क्रिया' है, अतः ये तीनों पदबन्ध क्रमशः संज्ञा पदबन्ध, संज्ञा पदबन्ध, क्रिया पदबन्ध कहलाते हैं। प्रत्येक पदबन्ध का शीर्ष पद प्रकार्यात्मक खाँचे (Slot) का वास्तविक पूर्णक होता है तथा तत्संबंधी विभक्ति (कारक/वृत्ति) को ग्रहण करने में समर्थ होता है। अर्थ या प्रकार्य की दृष्टि से पदों के आन्तरिक समुच्चय को व्यक्त करनेवाला एक समाहारात्मक नाम 'पदबन्ध' है। इस प्रकार वाक्य स्तरीय प्रकार्य की दृष्टि से पद तथा पदबन्ध एक ही कार्य करते हैं किन्तु संरचना की दृष्टि से पदबन्ध पद से बड़ी इकाई के रूप में दृष्ट होती है। प्रकार्य की दृष्टि से पद, पदबन्ध समान होने के कारण एक घटकीय पद को कुछ लोग केवल पद तथा एक से अधिक घटकीय पदों को पदबन्ध कहना अधिक उचित मानते हैं। इस दृष्टिकोण से संरचना-स्तर पर पदबन्धों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—1. **सरल पदबन्ध** केवल दो स्वतन्त्र शब्द-पदों से बनते हैं, यथा—छोटा कमरा; पुस्तक वाचन; काम करना; 2. **जटिल पदबन्ध** किसी शब्द/पद या किसी शब्दबन्ध/पदबन्ध द्वारा सरल पदबन्ध के विस्तार से बनते हैं, यथा—बहुत छोटा-सा घर; नीतिबोधक पुस्तक वाचन; अत्यन्त धीरे-धीरे काम करना। इस प्रकार रचना स्तर पर पदबन्ध या शब्दबन्ध **द्विअवयवी** और **बहु-अवयवी** होते हैं, यथा—प्रादेशिक समाचार, केन्द्रीय समिति; केन्द्रीय कारागार; अथाह जल प्रवाह; महान् अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति, मेरे पड़ोसी के बड़े बेटे का जन्म दिन।

वाक्य में पदबंध पदों की भाँति ही काम करने के कारण शब्द-भेदों की भाँति पाँच प्रकार के हो सकते हैं। पदबंधों को शीर्ष पदों के शब्द-वर्ग के आधार पर 'संज्ञा पदबन्ध, सर्वनाम पदबंध, विशेषण पदबंध, क्रिया पदबंध, अव्यय पदबंध' कहा जाता है तथा पदों की भाँति प्रकार्य करने के आधार पर 'कर्ता पदबन्ध, कर्म पदबन्ध, पूरक पदबंध, क्रियापदबंध, अव्ययपदबंध' कहा जाता है। संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण पदबंध 'कर्ता पदबंध, कर्म पदबंध, पूरक पदबंध' का कार्य कर सकते हैं।

1. **संज्ञा पदबन्ध** वाक्य में संज्ञा पद की भाँति प्रयुक्त होता है, यथा—**दशरथ नन्दन श्रीराम** 14 वर्ष के लिए बन गए थे। रात भर जाग कर पहरा देने वाले लोग; बन्दूक की गोली से घायल बच्ची; इतने धनी-मानी तथा पढ़े-लिखे

व्यक्ति से। प्रकार्य की दृष्टि से कर्ता के रूप में, यथा—**दोनों बच्चे** किधर चले गए? कर्म के रूप में, यथा—क्या आप ने **पिछले सप्ताह की पत्रिका** पढ़ी थी? पूरक के रूप में, यथा—वह **बहुत शैतान बच्चा** है।

संज्ञा पदबन्ध के शीर्ष के पूर्व आनेवाले विशेषक पद दस प्रकार के होते हैं—(क) गुणवाची विशेषण, यथा—**शैतान** बच्चा; **सभ्य** पुरुष (ख) संख्यावाची विशेषण, यथा—**तीन** बेटियाँ; **एक** बेटा (ग) परिमाणवाची विशेषण, यथा—**चार मीटर** कपड़ा; **दो किलो** चीनी (घ) सार्वनामिक विशेषण, यथा—**ये** कलकल करती नदियाँ; **कोई** बेसहारा लड़की (ङ) कृदन्तीय विशेषण, यथा—**गिरते हुए** बच्चे को; **सूजी हुई** आँखें (च) कर्तृत्ववाची विशेषण, यथा—**बंगलौर से आनेवाली** गाड़ी; **दौड़ में भाग लेनेवाले** प्रतिभागी (छ) सम्बन्धसूचक, यथा—**आप का** बेटा; **सोने का** समय (ज) तुलनावाची विशेषण, यथा—**चाणक्य जैसा कूटनीतिज्ञ** मन्त्री; **स्वामी विवेकानन्द-सा तेजस्वी** युवक (झ) पूर्वोपाधि विशेषण, यथा—**पंडित** जवाहरलाल नेहरू; **महात्मा** गांधी (ञ) परोपाधि विशेषण, यथा—संत ज्ञानेश्वर **महाराज**; भक्तवत्सल श्री रामचन्द्र **जी महाराजाधिराज**। कभी-कभी संज्ञापदबंध के शीर्ष के पूर्व आने वाले विशेषकों की एक लम्बी शृंखला मिलती है, यथा—**कल रात हमारे घर आए हुए वे चारों** मेहमानों ने; बाल कृष्ण ने **उस सहस्त्र फनवाले भयंकर काले** नाग को; आप **एक अत्यन्त प्रतिष्ठित और धनवान व्यवसायी के परिश्रमी** सुपुत्र हैं।

2. **सर्वनाम पदबन्ध** वाक्य में सर्वनाम पद की भाँति प्रयुक्त होता है, यथा—**मुझ अकिंचन** से जो बन पड़ेगा, आप की सेवा में पहुँच जाएगा। भाग्य का मारा वह बेचारा। सर्वनाम शीर्ष के परिधीय तत्त्व विशेषण शीर्ष के पूर्व या पश्चात् तथा पूर्व और पश्चात् आ सकते हैं, यथा—**मैं अकेला** क्या कर सकता हूँ? **उस (दुष्ट) ने** मुझे बहुत कष्ट दिया है। **तेज़ी से दौड़ती हुई वह** गाड़ी से जा टकराई। पति की मृत्यु के बाद **पगलाई-सी वह** मारी-मारी फिरती रहती है। **सती के शाप से शापित** वह **बेचारा** अब पश्चाताप की आग में जल रहा है। प्रकार्य की दृष्टि से कर्ता के रूप में प्रयुक्त सर्वनाम पदबन्ध, यथा—**हम सब** एकसाथ चलेंगे। **तू बेईमान** मेरा क्या बिगाड़ सकेगा? कर्म के रूप में, यथा—क्या सरकार **हम गरीबों को** भी किसी अच्छी जगह बसाएगी? आज **तुम दुष्टों को** एक-एक कर सबक़ सिखाया जाएगा। सर्वनाम पदबंध में शीर्ष के परिधीय तत्त्व (विशेषक) ये पद हो सकते हैं—(क) संख्यावाची, यथा—वे चारों; तुम तीनों (ख) समुदायवाची, यथा—तुम सब; हम लोग (ग) गुणवाची, यथा—तू बेईमान; हम सिद्धान्तवादी (लोग) (घ) दशावाची, यथा—वह बेचारी; मैं ग़रीब (ङ) तुलनावाची, यथा—वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी।

3. **विशेषण पदबन्ध** वाक्य में विशेषण पद की भाँति प्रयुक्त होता है, यथा—**रो-रो कर घर भर देनेवाली** लड़की को कोई प्यार नहीं करता। शेर के समान बलवान् (व्यक्ति); नाली में तेज़ी से बहता हुआ (बच्चा); चाँद से भी ज़्यादा सुन्दर

(मुख); मीटर दो मीटर (कपड़ा); एक बाल्टी भर (पानी); गिनती के कुल दस (लोग)। विशेषण शीर्ष के पूर्व आनेवाले प्रविशेषक घनत्वक, विस्तारक, परिसीमक के रूप में परिधीय संरचक होते हैं। प्रकार्य के रूप में विशेषण पदबन्धों का स्वरूप यह हो सकता है—(क) पूरक, यथा— बैलों की जोड़ी **बहुत ही सुन्दर** है। (ख) संज्ञा पद-विशेषक, यथा—गुलाब में **दो छोटे-छोटे** फूल आ गए हैं। (ग) संज्ञा पद-स्थानापन्न, यथा—**खानेवालों को** कमाने के लिए तैयार रहना चाहिए। (घ) लुप्त उपमेय-स्थानापन्न, यथा—आज अचानक **एक रति जैसी सुन्दरी** दिखाई दी थी। विशेषण पदबन्ध के शीर्ष के पूर्व आनेवाले प्रविशेषक छह प्रकार के होते हैं—(अ) घनत्वक, यथा—बहुत सुन्दर; **थोड़ा** बड़ा (आ) सादृश्यक, यथा—**जिराफ़ जितनी** लम्बी; **सिंह-जैसा** बलवान (इ) तुलनात्मक, यथा—**दोनों में मोटी; हीरे से भी अधिक** कठोर (ई) (तुलना) स्तरबोधक, यथा—**सब से** साफ़; **सब में** गया बीता (उ) नैकट्य प्रकाशक, यथा—**कुछ** उतरा उतरा-सा; **ज़रा** खट्टी खट्टी-सी (ऊ) अनुमानसूचक, यथा—**लगभग** दस हज़ार; **कोई** एक लाख।

4. **क्रिया पदबंध** वाक्य में क्रियापद की भाँति प्रयुक्त होता है, यथा—इस बारे में कुछ भी नहीं **कहा जा सकता**। दौड़ता चला जा रहा है (/था); आते ही कहने लगा था; गुनगुनाती चली आ (/जा) रही है। क्रिया पदबंधों की रचना दो प्रकार की मिलती है—(i) समापिका क्रियापदों से बनी अन्तःकेन्द्रित रचना (ii) असमापिका क्रियापदों से बनी बाह्य केन्द्रित रचना। अन्तःकेन्द्रित रचना में समापिका क्रिया के साथ 'नकारात्मक/निषेधवाची/अवधारक' निपात भी आ सकते हैं, यथा—गिर ही पड़ा; गिर न जाए; पढ़ा भी नहीं जाता। बाह्य केन्द्रित रचना वास्तव में अव्यय/क्रियाविशेषण पदबंध या विशेषण पदबंध के रूप में होती है, यथा—कबड्डी खेलते हुए; शराब पी कर; बग्घी में बैठी हुई; सब से तेज़ रफ्तार से चलनेवाली।

5. **अव्यय पदबन्ध** वाक्य में अव्यय पद की भाँति प्रयुक्त होता है, यथा—वह **भूमि पर लुढ़कते हुए** चिल्लाने लगा। गली में हो कर (जाना); पहले से अब अच्छी तरह (बोलने लगा है); अगले माह के अन्त से पूर्व ही (चुका दिया जाएगा); बड़ी सावधानी के साथ (बोलना होगा); बाहर की ओर; गली में से; छत पर से; इसलिए कि; हाय-हाय रे! अव्यय पदबंध की रचना में अव्यय शीर्ष होता है जिस के साथ परिसीमक, घनत्वक या विस्तारक पद आ सकते हैं। अव्यय पदबन्ध/अविकारी अव्यय शब्दों से/संज्ञा शब्दों में परसर्ग के योग से/परसर्ग-रहित तिर्यक् संज्ञा शब्द से बन सकते हैं। सामान्यत. अव्यय पदबन्ध क्रियापदबंध के संरचक के रूप में आते हैं, यथा—**इठलाती हुई** जा रही थी। अव्यय पदबन्ध शीर्ष के आधार पर कई प्रकार के हो सकते हैं—(क) समयवाची, यथा—ठीक वक़्त पर; आधी रात को; मार्च के महीने में; दिन-दिन भर (ख) स्थानवाची, यथा—कमरे के अन्दर; कक्षा से बाहर; अन्दर-अन्दर से (ग) कारणवाची, यथा—छुट्टी पर (जा रहे हो); डर से (काँप उठी) (घ) अलगाववाची, यथा—बिजली के खम्भे से हट कर (खड़े हो);

हिमालय से निकली (गंगा....) (ङ) क्रमवाची, यथा—होली मनाने के बाद; मैसूर पहुँच कर; नाश्ता-पानी करने के बाद (च) साधनवाची, यथा—छड़ी के सहारे (चलते हुए); खुली आँखों से (देख कर) (छ) उद्देश्यवाची/मनोरथवाची, यथा—स्कूल में दाखिल होने के लिए (दौड़धूप); नाश्ते के लिए (इडली-दोशा ला कर) (ज) रीतिवाची, यथा—बहुत धीरे-धीरे (चल रही हो); प्रश्न को ध्यानपूर्वक सुन कर (झ) सहवाची, यथा—गन्दे बच्चों के साथ (खेल-खेल कर); गर्म पानी या दूध के साथ (ले कर) (ञ) विनिमयवाची, यथा— दस रुपये में बेच कर (कितना मुनाफ़ा कमा लेते हो ?) गाली के बदले मार-पीट कर के भी (ट) इतरवाची, यथा—आप के सिवा; रिश्तेदारों के अलावा/अतिरिक्त ।

संरचना तथा प्रकार्य की दृष्टि से मुहावरे, लोकोक्तियाँ/कहावतें भी पदबन्ध की भाँति होते हैं, यथा—अड्डा जमाना, आँसू पोंछना, कागज़ी घोड़े दौड़ाना, चिकना घड़ा (होना); ढोल में पोल (होना), बाल की खाल (निकालना/उतारना), हाथ-पाँव फूलना; अंधों में काना राजा; उलटे बाँस बरेली को; एक पंथ दो काज, कोयलों की दलाली में मुँह काला, चोर-चोर मौसेरे भाई, मन चंगा तो कठौती में गंगा, हाथ कंगन को आरसी क्या ।

पदबंध-रचना में '-ईय, -वान्, -कार, -वाला, -मय, -आत्मक' प्रत्यय अन्तिम संज्ञा शब्द/पद में लगने पर भी पूरे पदबंध में वैशिष्ट्य लाते हैं, यथा—पंच-वर्षीय (योजना), सर्वोच्च प्रतिभावान् (महिला), यथार्थवादी आदर्शोन्मुखी उपन्यास-कार (मुंशी प्रेमचन्द), सुरुचिपूर्ण भोजन बनानेवाली (महाराजिन), अतीव आनन्दमय (समाचार), अत्यन्त गम्भीर समस्यात्मक (समाचार) । इसी प्रकार सामासिक शब्दों से बननेवाले पदबन्धों के अन्तिम/परपद पूर्वपदों/पूर्वपदस्थानीय पदबंध में वैशिष्ट्य लाते हैं, न कि केवल अपने से पूर्व पद में ही, यथा—निष्ठापूर्वक कार्य करने का प्रमाण-पत्र; अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष संबंधी (बातें); श्रवण एवं भाषण विधि; एक ही समय पर कई कार्य करने में समर्थ-प्रतिभा सम्पन्न (व्यक्ति); ज्ञान, भक्ति तथा कर्म संबंधी दार्शनिक चर्चा ।

हिन्दी में अनेक संज्ञा शब्दों के साथ √ कर जोड़ कर क्रियापदबंध बनाए जाते हैं जिन में संज्ञा शब्द दो प्रकार का कार्य करता हुआ दिखाई देता है—(1) पद-बंधात्मक क्रिया के एक घटक के रूप में (पदबंध से अधीन रहना) (2) स्वतन्त्र शब्द के रूप में वाक्य के विशेषणादि शब्दों से अन्वित रहना, यथा—सभी आस्तिक अदृश्य भगवान की **पूजा करते हैं** । लगभग सभी भारतीय महात्मा गांधी **का आदर करते हैं** । ऐसा संयुक्त या समस्त क्रियापदबंध हिन्दी भाषा की एक विशेषता है । इस प्रकार के कुछ (संयुक्त/समस्त) क्रियापदबंध हैं—(का+) अभिमान/आदर/आरम्भ/समापन/अपमान/उपकार करना, (की+) पूजा/मरम्मत/पिटाई/चेष्टा/विदा करना, (को+) प्रणाम/नमस्कार/सहन/पसन्द करना, (से+) वैर/भय/प्रार्थना/प्रश्न करना, (पर+) कृपा/दया/मेहरबानी/घमण्ड/अभिमान/भरोसा/विश्वास करना ।

22

वाक्य-सार्थकता

भाषा अगणित पूर्ण तथा बोधगम्य/स्पष्ट विचारों का समाहार है। प्रत्येक पूर्ण विचार के पीछे एकाधिक भावनाएँ छिपी होती हैं। वाक्य का मुख्य प्रयोजन मानव के भावों-विचारों के छिपे अर्थ का स्पष्टीकरण करना है। साहित्यिक रचनाओं का सौन्दर्य, गाम्भीर्य, सारल्य, प्रभावात्मकता, गुण-दोष आदि उन के वाक्य-संगठन पर आधारित हैं।

दैनन्दिन व्यवहार में हम वाक्यों के माध्यम से परस्पर विचार-विनिमय करते हैं। कभी ये वाक्य दो-चार पदवाले होते हैं तो कभी 15-20 पदवाले। सामान्यतः प्रत्येक पूर्ण विचार एक वाक्य में व्यक्त होता है और प्रत्येक भावना एक शब्द/पद में। एक वाक्य में कम से कम प्रत्यक्षतः या प्रच्छन्न रूप में दो पद होते हैं। कभी-कभी हम एकपदीय (प्रच्छन्नतः द्विपदीय) वाक्य से भी काम निकाल लेते हैं, यथा—अपने साथ चलने के लिए हम किसी से इतना-भर कहते हैं—'आओ/आइए/चलो/चलिए'। माँ के पूछने पर उस के बच्चे अपनी-अपनी पसन्द की वस्तुओं का केवल नाम-भर लेते हैं—'टॉफी/गुब्बारा/गेंद/गुड़िया'। इन एकपदीय वाक्यों में दूसरा पद (तुम/आप; चाहिए) लुप्त है।

अनेक शब्दों के विभिन्न सन्दर्भों में विभिन्न अर्थ हो सकते हैं। किसी शब्द का वाक्य में प्रयोग किए बिना निश्चित अर्थ व्यक्त नहीं हो पाता। यद्यपि शब्द स्वयं में अर्थवान् होते हैं किन्तु वाक्य तभी बनता है जब वांछित अर्थवान् इकाइयों (शब्दों) को भाषा-व्यवस्था के अनुरूप ऐसे क्रम में रखा जाता है जिस से वक्ता/लेखक का इच्छित भाव/विचार व्यक्त होता है। इस प्रकार **वाक्य ही** भाषा-व्यवहार की लघुतम सार्थक इकाई है। दूसरे शब्दों में '**वाक्य** व्याकरणिक संरचना की सब से बड़ी/दीर्घतम सार्थक इकाई है तथा सम्प्रेषण व्यवस्था की सब से छोटी/लघुतम इकाई है'। कोई भी उक्ति जो वक्ता/लेखक की दृष्टि से पूर्ण अर्थवान् है और जो श्रोता/पाठक पर कोई-न-कोई प्रभाव डाल सकती है, उस में कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकती है, या उसे गतिशील बना सकती है अथवा होने या स्थित होने का बोध करा सकती है, वाक्य बनने की सामर्थ्य रखती है। वास्तव में वाक्य केवल अर्थ का बोध ही नहीं कराता, वरन् उस से एक ऐसा मन्तव्य प्रकट होता है जिस में एक

पूर्णता और समग्रता हुआ करती है। कोई वाक्य पूर्ण विचार/अर्थ व्यक्त करने में समर्थ है या नहीं, इस की जाँच के लिए संस्कृत के आचार्यों ने तीन कसौटियों का उल्लेख किया है—1. योग्यता, 2. आकांक्षा, 3. आसत्ति/नैकट्य।

1. **योग्यता** वाक्य का वह गुण है जिस के कारण वाक्य का अन्वय करने पर अर्थबोध में (किसी प्रकार की) बाधा उत्पन्न नहीं होती। वाक्य में उन्हीं शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जिन से वक्ता/लेखक के अभीप्सित अर्थ की अभिव्यक्ति होती हो। अभीप्सित अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए चयन किये गये शब्दों का रूप (=पद-रूप) भी भाषा-व्यवस्था के अनुरूप होना चाहिए। इस प्रकार उसी वाक्य में योग्यता का गुण पाया जाता है जिस के पदों में उपयुक्त अर्थ-बोध सामर्थ्य तथा उपयुक्त पद-समर्थता होती है; यथा—'बीमार को फल खिलाओ और दूध पिलाओ।' वाक्य के पदों में उपयुक्त अर्थ-बोध सामर्थ्य तथा उपयुक्त पद-समर्थता है, अतः इस वाक्य में 'वाक्य' कहलाने की योग्यता है। 'बीमार को पहाड़ खिलाओ और आग पिलाओ' वाक्य में उपयुक्त पद-समर्थता तो है किन्तु उपयुक्त अर्थ-बोध सामर्थ्य का अभाव है, अतः इस वाक्य में 'वाक्य' कहलाने की योग्यता नहीं है। 'बीमार फल खा और दूध पी' वाक्य में उपयुक्त अर्थवान् इकाइयाँ तो हैं किन्तु उपयुक्त पद-रूप का अभाव है, अतः ऐसे वाक्य में भी 'वाक्य' कहलाने की योग्यता नहीं है।

2. **आकांक्षा**—एक पद सुनने/पढ़ने के बाद श्रोता/पाठक में वक्ता/लेखक के भावों-विचारों को जानने के लिए दूसरे या अन्य पदों को सुनने/पढ़ने की जो स्वाभाविक उत्कण्ठा/जिज्ञासा होती है, उसे 'आकांक्षा' कहा जाता है। पूर्व अनुच्छेदों में यह कहा जा चुका है कि सामान्यतः प्रत्येक वाक्य में वक्ता/लेखक अपने अभीप्सित भावों-विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सन्दर्भ के अनुरूप उपयुक्त शब्दों का चयन करता है और फिर उन्हें भाषा-व्यवस्था के अनुरूप उपयुक्त पद-क्रम में व्यक्त करता है, तभी वह वाक्य अर्थ-बोध कराने में समर्थ होता है। यदि वक्ता/लेखक किसी अभीप्सित अर्थ के लिए समस्त, वांछित शब्दों का चयन नहीं करता तो श्रोता/पाठक को उस अधूरे वाक्य से अर्थ-बोध नहीं हो पाता। श्रोता/पाठक की उस संबंध में और कुछ सुनने/पढ़ने की आकांक्षा बनी रहती है, यथा—'यह ग्वाला गाय' सुनने/पढ़ने से श्रोता/पाठक की अर्थबोध-आकांक्षा तृप्त नहीं हो पाती। उस की आकांक्षा-तृप्ति तभी होती है जब वह यह सुनता पढ़ता है—'यह ग्वाला गाय का दूध दुह रहा है।' या 'यह ग्वाला गाय का दूध नहीं बेचता।' इसी प्रकार बिना किसी पूर्व प्रसंग के 'दुह रहा है' या 'दूध नहीं बेचता' सुनने/पढ़ने मात्र से श्रोता/पाठक की अर्थबोध-आकांक्षा तृप्त नहीं हो पाती, जब तक वह यह न सुने/पढ़े—'नौकर (भैंस का) दूध दुह रहा है।' या 'मैं (गाय का/भैंस का/डेरी का) दूध नहीं बेचता।' जिस उक्ति में आकांक्षा-पूर्ति की सामर्थ्य होती है, वही उक्ति वाक्य कही जा सकती है।

3. **आसत्ति/नैकट्य**—किसी उक्ति/वाक्य के पदों में दो प्रकार की निकटता

(/सान्निध्य) हो सकती है—(क) समय-निकटता (ख) स्थान-निकटता। भाषा-व्यवहार में वक्ता अपनी कथ्य-अभिव्यक्ति में भाषा-व्यवस्था के अनुरूप पदों/पदबंधों के मध्य उपयुक्त क्षणों के विराम के साथ समय-निकटता रखता है। समाज के द्वारा सहज रूप में स्वीकृत क्षण-विराम (/समय-निकटता) में वृद्धि या कमी होने से श्रोता को अर्थ-बोध में कठिनाई/बाधा होती है, यथा—'अभी-अभी (चौथाई मिनट चुप रहने के बाद)·········एक लड़की (एक तिहाई मिनट चुप रहने के बाद)·········उस घर में (दो तिहाई मिनट चुप रहने के बाद)·········घुसी है।' वाक्य के पदों/पदबंधों में उपयुक्त समय-आसत्ति न होने से श्रोता को अर्थ-बोध में बाधा का अनुभव होता है, अतः ऐसी उक्ति को वाक्य नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार 'अभी-अभी एक लड़की उस घर में घुसी है' उक्ति को अत्यधिक तीव्र गति के साथ (एक शब्द पर दूसरा शब्द चढ़ाते हुए) बोलने पर भी श्रोता को अर्थ-बोध में बाधा का अनुभव होता है। वाक्यों में पद/पदबंध समाज-स्वीकृत पदक्रम (स्थान-निकटता) व्यवस्था के अनुरूप रहते हैं। पदक्रमों का उपयुक्त स्वरूप छिन्न-भिन्न होने से श्रोता/पाठक को अर्थ-बोध में बाधा का अनुभव होता है, यथा—परिचय चाहा महिला उस का गोपाल ने जानना। इस प्रकार के वाक्य में पदों की उपयुक्त स्थान-निकटता का अभाव होने से वाक्यार्थ-बोध में बाधा उत्पन्न होती है। वाक्य में योग्यता तथा आकांक्षा-पूर्ति के अतिरिक्त पदों की आसत्ति (नैकट्य/सन्निधान) होने पर ही उस के अर्थ-बोध में सरलता आती है, अन्यथा अर्थ-बाधा उत्पन्न हो जाती है।

हिन्दी वाक्यों में अर्थ-सामीप्य दर्शक प्रयोग—वक्ता कभी अपनी बात को निश्चित रूप से कहता है और कभी वह निश्चित जानकारी न दे कर अनुमान/अन्दाज़ का सहारा लेता है, यथा—'उस ने आज पाँच सौ रुपये की एक साड़ी ख़रीदी (है/थी)' वाक्य निश्चित सूचना दर्शक है। 'शायद आज वह क़रीब पाँच सौ रुपये की दो-तीन साड़ियाँ ख़रीदे।' वाक्य अनिश्चित/आनुमानिक सूचना दर्शक है। निश्चित जानकारी के अभाव में 'शायद, क़रीब/लगभग/आसपास/के आसपास/के निकट/के क़रीब/तक़रीबन, लगता है/अन्दाज़ है/हो सकता है, चार-छह/दस-बीस आदि, कोई, चाय-बाय जैसे पुनरुक्त शब्दों, -जैसा/-नुमा/-वत्/-सा, छोटा-बड़ा जैसे विलोमार्थी शब्दों का प्रयोग किया जाता है, यथा—

शायद आप परसों नहीं आए थे। वे लोग शायद रेलगाड़ी से आ रहे होंगे/हों। कल की सभा में चार-छह (/दस-बीस/पाँच-सात/सात-आठ/तीस-पैंतीस/दो-तीन हज़ार) लोग आ पाएँगे/आ सकते हैं। हमारे पुस्तकालय में कोई हज़ार-सवा हज़ार (/चार हज़ार) पुस्तकें होंगी। हम यहाँ क़रीब (/लगभग) नौ बजे पहुँचे थे। उस समय वहाँ खाना क़रीब-क़रीब ख़त्म हो गया था। उत्तर प्रदेश के विधायकों की संख्या क़रीब/(लगभग/तक़रीबन, 500 है (/कोई 500/500 के आसपास/के लगभग/के निकट/के क़रीब होगी;) कोई 475-500 है। लगता है (/हो सकता है/अन्दाज़ है/अनुमान है) सभा में हज़ार (/हज़ार-डेढ़ हज़ार) आदमी होंगे (/रहे हों)। मेरे

ख़याल (अन्दाज़/अनुमान/विचार) से (/अगर मैं ग़लत नहीं हूँ तो/जहाँ तक मेरी जानकारी है/शायद) हमारे कॉलेज के छात्रों की संख्या 2780 है। मुझे ठीक याद नहीं है कि हमारे कॉलेज के छात्रों की संख्या 2780 है या 2785।

चाय-वाय भी पिलाओगे या यों ही टरकाने का विचार है? पीने-पाने को कुछ है या नहीं? हमें कम्प्यूटर-वम्प्यूटर के बारे में कुछ नहीं जानना, दैनन्दिन शिक्षण-साधनों के बारे में बताइए। तुम्हारा गला तो बहुत अच्छा है—अच्छा-वच्छा कुछ नहीं, यों ही कुछ गुनगुना लेती हूँ। तुम्हारे पास नये-पुराने कई जोड़े जूते हैं, मेरे पास एक नया और एक पुराना जोड़ा है। भैंस-सी (/-जैसी/के समान) मोटी (/काली); मूर्तिवत् खड़े रहना, मातृवत् प्रेम; सुईनुमा हथियार; छोटा-सा (बड़ा-सा) घर; अच्छी-सी (/बड़ी-सी/छोटी-सी) मेज़।

वाक्य-सार्थकता आधार—'वाक्य' शब्द-चयन तथा संरचना-श्रृंखला (Choice & chain) का संगुम्फित रूप है जिस में सार्थकता के लिए शब्द (/पद) -क्रम, अन्विति, नियमन (/अधिशासन/नियन्त्रण), अनुतान की आवश्यकता होती है। (वाक्य-रचना की दृष्टि से ये 'वाक्य-विन्यास' के विषय हैं, अतः इन पर अध्याय 26 में विस्तार से लिखा जाएगा।).

काल-सापेक्ष वाक्य-सार्थकता—अध्याय 17 में क्रिया-कालों की चर्चा की जा चुकी है। यहाँ वाक्य-सार्थकता को काल-सापेक्ष दृष्टि से देखने का प्रयास किया जा रहा है। विभिन्न काल 'वाक्य प्रयोग-सन्दर्भ' की दृष्टि से विभिन्न अर्थों के सूचक हैं, यथा—

(1) **सामान्य वर्तमान काल-प्रयोग तथा अर्थ**—(क) कार्य-वर्तमानता—कथन के क्षण के साथ-साथ होनेवाले व्यापार की सूचना, यथा—पिता जी, माँ आप को अन्दर बुलाती (=बुला रही) हैं। लो, गाड़ी आती (=आ रही) है। अभी तो पानी आता (=आ रहा) है। (ख) स्थिति-सूचना—क्या यह ट्यूब लाइट जलती है? (ग) गुण-धर्म सूचना-पानी 100 सेन्टीग्रेड तापमान पर उबलता है (*उबला था)। (घ) आदत/स्वभाव-सूचना—वह बहुत अच्छा नाचती है। मैं रोज़ाना सवेरे आँवले का पानी पीता हूँ। (ङ) शौक/व्यसन/व्यासंग-सूचना—तुम शराब पीते हो, मैं दूध पीता हूँ। वह मज़दूरी करता है, मैं पढ़ाता हूँ। (च) सिद्धान्त/नित्य सत्य-सूचना—पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। ध्रुव प्रदेशों में छह महीने का दिन होता है (/हुआ करता है)। सूरज पूरब में उगता *था)। (छ) भविष्य-नैकट्य सूचना—आप बैठिए, मैं अभी आता हूँ (यह केवल इसी संदर्भ में प्रयुक्त तथा प्रगामी कार्य का उदाहरण है)। मैं आप के पैरों पड़ता हूँ, दो दिन और इस खेत को न बेचें। ठीक है, यदि तुम ऐसा कहते हो तो मैं दो दिन और रुक जाऊँगा। (ज) अनुमति-सूचना—अच्छा, अब मैं चलता हूँ। (झ) इच्छा-सूचना—हम चाहते हैं कि....। (ञ) प्रार्थना/निवेदन-सूचना—मैं प्रार्थना/निवेदन करता हूँ कि....। (ट) भावना/आशा-सूचना—हम आशा/उम्मीद करते हैं कि....। (ठ) ज्ञान/अनुभव/अनुभूति-सूचना—हमें लगता है (/प्रतीत

होता है कि····। हम जानते हैं कि····। (ड) कथन-सूचना—वह (/सरकार) कहती (/पूछती) है कि···· (ढ) अतीत-सूचना—मैं समझ चुकी थी कि वह ठीक ही कहती है। मैं ने यह कब कहा था कि मैं झूठ नहीं बोलता (हूँ)। भरत आते हैं और देखते हैं कि अयोध्या के राजमार्ग सूने हैं (ण) अन्तःकथन-सूचना—नाटकों की पुस्तकों में प्रसंग से हटी, कोष्ठकबद्ध सूचनाएँ, यथा—(शकुन्तला भरत को पकड़ कर खींचती है)। (त) निरन्तरता/अभ्यास/आवृत्ति-सूचना—जब भी मैं तुम्हारे यहाँ आता हूँ, तुम पढ़ते ही होते हो। (थ) बारम्बारता-सूचना—जब-जब पृथ्वी पर अत्याचार बढ़ता है, तब-तब भगवान् अवतार लेते हैं। यहाँ सावन के महीने में प्रत्येक सोमवार को मेला लगता है। (द) दैनन्दिन क्रिया-व्यापार सूचना—परिवार का खाना मेरी बड़ी बहन बनाती है, माँ गाय-भैंस, बैलों का काम देखती (/करती) है।

(2) **पूर्ण वर्तमान (/आसन्न भूत) काल—प्रयोग तथा अर्थ**—(क) निश्चित क्षण में सम्पन्न व्यापार-सूचना—अब साढ़े सात बजे हैं। (ख) कथन के क्षण सम्पन्न कार्य-व्यापार-सूचना—लगता है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। तुमने सारी दवा नहीं पी है। (ग) दूरवर्ती वर्तमान प्रभावी क्रिया-सूचना—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कई नाटक लिखे हैं। (घ) अभ्यास—मैं ने सैकड़ों कहानियाँ पढ़ी हैं। (ङ) वर्तमान स्थिति-सूचना—पार्क में कुछ गुंडे बैठे हैं (/बैठे हुए हैं)। सड़क पर कुचला हुआ कुत्ता पड़ा है (/पड़ा हुआ है) (च) आवृत्ति-सूचना—जब-जब उस ने मुझ से संबंध जोड़ा है, तब-तब मुझे धोखा दिया है।

(3) **सामान्य भूत काल—प्रयोग तथा अर्थ**—(क) अतीत अवस्थिति-सूचना—कल यह पुस्तक उस मेज़ पर थी। नदी में बहुत मछलियाँ थीं। (ख) अतीत तथ्य-सूचना—शिवाजी समर्थ गुरु रामदास के शिष्य थे। (ग) अतीत सत्य-सूचना—कभी हिमालय के स्थान पर समुद्र था। किसी युग में यूरोप का जलवायु उष्ण था। (घ) निश्चित निर्देश-सूचना—इस दवात में काली स्याही थी और उस में नीली (थी)। (ङ) एक बार सम्पादित कार्य-सूचना—मन्त्री महोदय ने पुल का उद्घाटन किया। (च) एकाधिक बार अनुक्रम से संपादित व्यापार-सूचना—मैं ने पूड़ियाँ खाईं; उस ने चाय पी। (छ) अतीत में सामान्यतः सम्पादित व्यापार-सूचना—प्राचार्य ने लड़कों से बहुत बुरा-भला कहा। (ज) भावी क्षण में सम्पाद्य क्रिया-सूचना—लो, मैं तो चला। माँ ने पुकारा—अरी, ज़रा पानी तो दे जा और बेटी बोली—लाई माँ। (झ) सामान्य भविष्यत्-सूचना—यदि तुम ने बेटी को हाथ लगाया तो मुझ से बुरा कोई न होगा। (ञ) आसन्न भविष्यत्-सूचना—आप चलिए, मैं अभी आया। लगता है वह चट्टान अब गिरी कि अब गिरी। (ट) तिरस्कारमय वर्तमान-सूचना—लो! देख लो, ये आए सत्य के महावतार! (ठ) वर्तमान-अपेक्षी प्रश्न-सूचना—देखा, कैसी चालाकी की बातें कर रहा था। जो मैं ने कहा है, आप उसे समझें? (ड) सम्भाव्य भविष्यत्-सूचना—यदि आप वहाँ गए भी, तो भी कोई काम बननेवाला नहीं है।

(4) **अपूर्ण भूतकाल—प्रयोग तथा अर्थ—(क)** आदत-सूचना—पहले मैं बहुत सोता (/सोया करता) था। **(ख)** 'कब' युक्त वाक्य में नकारात्मक-सूचना—मैं उस के यहाँ कब जाता था? (ग) अपूर्ण व्यापार-सूचना—वह छाती पीट-पीट कर चिल्लाती थी। **(घ)** बारम्बारता-सूचना—वकील जो जो पूछता था, गवाह उस का उत्तर देता था। (ङ) तात्कालिकता-सूचना—वह माँग में सिन्दूर भरती ही थी (/भरने ही वाली थी) कि तारवाले ने आवाज़ दी। **(च)** वर्तमान काल अपेक्षी पुनरावृत्ति-सूचना—मैं तो सोचता था और आज भी सोचता हूँ कि तुम सदैव मेरी हो।

(5) **पूर्ण भूत काल—प्रयोग तथा अर्थ—(क)** इतर व्यापार या निश्चित क्षण से पूर्व सम्पन्न व्यापार-सूचना—डॉक्टर के आने से पूर्व ही रोगी मर गया था। मैं आज छह बजे जागा था। आज से कई सौ वर्ष पूर्व मुहम्मद गौरी ने भारत पर कई हमले किए थे। **(ख)** पूर्ववर्ती व्यापार-सूचना—पिता जी से आँखें न चुरानी पड़ें, इसलिए मैं माँ के पास पहले ही चला गया था। खेद है कि मन्त्री जी ठीक समय पर उपस्थित न हो सके क्योंकि वे एक दुर्घटना में फँस गए थे। **(ग)** समक्षण पर घटित दो क्रिया-सूचना—हम स्टेशन पहुँचे ही थे कि रेल चल दी। **(घ)** परवर्ती सम्पन्न व्यापार के पूर्व असम्पन्न व्यापार-सूचना—हम स्टेशन पहुँचे भी न थे कि रेल चल दी। (ङ) शर्त-सूचना—यदि गोताखोर पानी में न उतरा होता तो लड़की मर ही गई थी। अगर पिता जी एक लाठी और मारते तो चोर घर में ही मर गया था। **(च)** आसन्न भूत (/पूर्ण वर्तमान)-सूचना—तुम यहाँ इसलिए आई थीं (/आई हो) कि इन के हाल-चाल पूछतीं न कि गुमसुम बैठतीं।

(6) **सामान्य भविष्यत् काल—प्रयोग तथा अर्थ—(क)** सम्पाद्य व्यापार-सूचना—मैं ने तो निश्चय कर लिया था कि अब यहाँ ही ठहरूँगा। तुम भी मेरे साथ चलोगी, यह तो तुम ने बताया ही न था। क्या आप भी जाएँगे? मेरी भी कुछ सुनोगे? या अपनी ही गाते रहोगे। **(ख)** शर्तयुक्त समय-निरपेक्ष क्रिया व्यापार-सूचना—जो सोएगा सो खोएगा जो जागेगा सो पाएगा। अगर आँधी आएगी तो अमियाँ गिरेंगी। **(ग)** काल्पनिक अवस्थिति-सूचना—अरी, कहीं ऐसी बहू भी मिलेगी (/मिल सकती है)! सच, क्या कैकेयी का हृदय अति कठोर होगा (/है)—एक ने दूसरी से पूछा। **(घ)** प्रश्नयुत निवेदन-सूचना—क्या तुम मेरा इतना-सा काम (भी नहीं) करोगी? क्या आज शाम को हमारे साथ चलेंगे? (ङ) सम्भावना-सूचना—कभी न कभी कहीं न कहीं कोई न कोई तो आएगा। कबहुँ तो दीनानाथ के भनक परेगी कान। **(च)** सन्देह-सूचना—वह इस की बड़ी बहन होगी। पिता जी इन दिनों कर्नाटक में होंगे। क्या यह आदमी उन साहब का नौकर है?—होगा, मैं क्या जानूँ?

(7) **प्रत्यक्ष विधि—प्रयोग तथा अर्थ—(क)** प्रश्नयुत अनुमति-सूचना—क्या हम घर जाएँ? मैं भी जाऊँ? **(ख)** आग्रह-सूचना—माँ, अब घर चलो, बहुत देर

होता है कि''''। हम जानते हैं कि''''। (ड) कथन-सूचना—वह (/सरकार) कहती (/पूछती) है कि'''' (ढ) अतीत-सूचना—मैं समझ चुकी थी कि वह ठीक ही कहती है। मैं ने यह कब कहा था कि मैं झूठ नहीं बोलता (हूँ)। भरत आते हैं और देखते हैं कि अयोध्या के राजमार्ग सूने हैं (ण) अन्तःकथन-सूचना—नाटकों की पुस्तकों में प्रसंग से हटी, कोष्ठकबद्ध सूचनाएँ, यथा—(शकुन्तला भरत को पकड़ कर खींचती है)। (त) निरन्तरता/अभ्यास/आवृत्ति-सूचना—जब भी मैं तुम्हारे यहाँ आता हूँ, तुम पढ़ते ही होते हो। (थ) बारम्बारता-सूचना—जब-जब पृथ्वी पर अत्याचार बढ़ता है, तब-तब भगवान् अवतार लेते हैं। यहाँ सावन के महीने में प्रत्येक सोमवार को मेला लगता है। (द) दैनन्दिन क्रिया-व्यापार सूचना—परिवार का खाना मेरी बड़ी बहन बनाती है, माँ गाय-भैंस, बैलों का काम देखती (/करती) है।

(2) **पूर्ण वर्तमान (/आसन्न भूत) काल—प्रयोग तथा अर्थ**—(क) निश्चित क्षण में सम्पन्न व्यापार-सूचना—अब साढ़े सात बजे हैं। (ख) कथन के क्षण सम्पन्न कार्य-व्यापार-सूचना—लगता है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। तुमने सारी दवा नहीं पी है। (ग) दूरवर्ती वर्तमान प्रभावी क्रिया-सूचना—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कई नाटक लिखे हैं। (घ) अभ्यास—मैं ने सैकड़ों कहानियाँ पढ़ी हैं। (ङ) वर्तमान स्थिति-सूचना—पार्क में कुछ गुंडे बैठे हैं (/बैठे हुए हैं)। सड़क पर कुचला हुआ कुत्ता पड़ा है (/पड़ा हुआ है) (च) आवृत्ति-सूचना—जब-जब उस ने मुझ से संबंध जोड़ा है, तब-तब मुझे धोखा दिया है।

(3) **सामान्य भूत काल—प्रयोग तथा अर्थ**—(क) अतीत अवस्थिति-सूचना—कल यह पुस्तक उस मेज़ पर थी। नदी में बहुत मछलियाँ थीं। (ख) अतीत तथ्य-सूचना—शिवाजी समर्थ गुरु रामदास के शिष्य थे। (ग) अतीत सत्य-सूचना—कभी हिमालय के स्थान पर समुद्र था। किसी युग में यूरोप का जलवायु उष्ण था। (घ) निश्चित निर्देश-सूचना—इस दवात में काली स्याही थी और उस में नीली (थी)। (ङ) एक बार सम्पादित कार्य-सूचना—मन्त्री महोदय ने पुल का उद्घाटन किया। (च) एकाधिक बार अनुक्रम से संपादित व्यापार-सूचना—मैं ने पूड़ियाँ खाईं; उस ने चाय पी। (छ) अतीत में सामान्यतः सम्पादित व्यापार-सूचना—प्राचार्य ने लड़कों से बहुत बुरा-भला कहा। (ज) भावी क्षण में सम्पाद्य क्रिया-सूचना—लो, मैं तो चला। माँ ने पुकारा—अरी, ज़रा पानी तो दे जा और बेटी बोली—लाई माँ। (झ) सामान्य भविष्यत्-सूचना—यदि तुम ने बेटी को हाथ लगाया तो मुझ से बुरा कोई न होगा। (ञ) आसन्न भविष्यत्-सूचना—आप चलिए, मैं अभी आया। लगता है वह चट्टान अब गिरी कि अब गिरी। (ट) तिरस्कारमय वर्तमान-सूचना—लो! देख लो, ये आए सत्य के महावतार! (ठ) वर्तमान-अपेक्षी प्रश्न-सूचना—देखा, कैसी चालाकी की बातें कर रहा था। जो मैं ने कहा है, आप उसे समझें? (ड) सम्भाव्य भविष्यत्-सूचना—यदि आप वहाँ गए भी, तो भी कोई काम बननेवाला नहीं है।

(4) **अपूर्ण भूतकाल—प्रयोग तथा अर्थ—(क)** आदत-सूचना—पहले मैं बहुत सोता (/सोया करता) था। **(ख)** 'कब' युक्त वाक्य में नकारात्मक-सूचना—मैं उस के यहाँ कब जाता था? **(ग)** अपूर्ण व्यापार-सूचना—वह छाती पीट-पीट कर चिल्लाती थी। **(घ)** बारम्बारता-सूचना—वकील जो जो पूछता था, गवाह उस का उत्तर देता था। **(ङ)** तात्कालिकता-सूचना—वह माँग में सिन्दूर भरती ही थी (/भरने ही वाली थी) कि तारवाले ने आवाज़ दी। **(च)** वर्तमान काल अपेक्षी पुनरावृत्ति-सूचना—मैं तो सोचता था और आज भी सोचता हूँ कि तुम सदैव मेरी हो।

(5) **पूर्ण भूत काल—प्रयोग तथा अर्थ—(क)** इतर व्यापार या निश्चित क्षण से पूर्व सम्पन्न व्यापार-सूचना—डॉक्टर के आने से पूर्व ही रोगी मर गया था। मैं आज छह बजे जागा था। आज से कई सौ वर्ष पूर्व मुहम्मद गौरी ने भारत पर कई हमले किए थे। **(ख)** पूर्ववर्ती व्यापार-सूचना—पिता जी से आँखें न चुरानी पड़ें, इसलिए मैं माँ के पास पहले ही चला गया था। खेद है कि मन्त्री जी ठीक समय पर उपस्थित न हो सके क्योंकि वे एक दुर्घटना में फँस गए थे। **(ग)** समक्षण पर घटित दो क्रिया-सूचना—हम स्टेशन पहुँचे ही थे कि रेल चल दी। **(घ)** परवर्ती सम्पन्न व्यापार के पूर्व असम्पन्न व्यापार-सूचना—हम स्टेशन पहुँचे भी न थे कि रेल चल दी। **(ङ)** शर्त-सूचना—यदि गोताख़ोर पानी में न उतरा होता तो लड़की मर ही गई थी। अगर पिता जी एक लाठी और मारते तो चोर घर में ही मर गया था। **(च)** आसन्न भूत (/पूर्ण वर्तमान)-सूचना—तुम यहाँ इसलिए आई थीं (/आई हो) कि इन के हाल-चाल पूछतीं न कि गुमसुम बैठतीं।

(6) **सामान्य भविष्यत् काल—प्रयोग तथा अर्थ—(क)** सम्पाद्य व्यापार-सूचना—मैं ने तो निश्चय कर लिया था कि अब यहाँ ही ठहरूँगा। तुम भी मेरे साथ चलोगी, यह तो तुम ने बताया ही न था। क्या आप भी जाएँगे? मेरी भी कुछ सुनोगे? या अपनी ही गाते रहोगे। **(ख)** शर्तयुक्त समय-निरपेक्ष क्रिया व्यापार-सूचना—जो सोएगा सो खोएगा जो जागेगा सो पाएगा। अगर आँधी आएगी तो अमियाँ गिरेंगी। **(ग)** काल्पनिक अवस्थिति-सूचना—अरी, कहीं ऐसी बहू भी मिलेगी (/मिल सकती है)! सच, क्या कैकेयी का हृदय अति कठोर होगा (/है)—एक ने दूसरी से पूछा। **(घ)** प्रश्नयुत निवेदन-सूचना—क्या तुम मेरा इतना-सा काम (भी नहीं) करोगी? क्या आज शाम को हमारे साथ चलेंगे? **(ङ)** सम्भावना-सूचना—कभी न कभी कहीं न कहीं कोई न कोई तो आएगा। कबहुँ तौ दीनानाथ के भनक परेगी कान। **(च)** सन्देह-सूचना—वह इस की बड़ी बहन होगी। पिता जी इन दिनों कर्नाटक में होंगे। क्या यह आदमी उन साहब का नौकर है?—होगा, मैं क्या जानूँ?

(7) **प्रत्यक्ष विधि—प्रयोग तथा अर्थ—(क)** प्रश्नयुत अनुमति-सूचना—क्या हम घर जाएँ? मैं भी जाऊँ? **(ख)** आग्रह-सूचना—माँ, अब घर चलो, बहुत देर

हो गई। (ग) निवेदन-सूचना—भगवन्, अब मुझ पर भी कुछ कृपा करें। (घ) उपदेश, आदेश-सूचना—तजो रे मन हरि बिमुखन को संग। चुपचाप इधर बैठो, शोर मत मचाओ। (ङ) सहमति/सम्मति-सूचना—चलें, उधर बैठें। शादी के मौके पर सभी रिश्तेदारों को निमन्त्रण भेजें, ऐसा मेरा विचार है। (च) सम्भाव्य भविष्यत्-सूचना—देखिए, कौन कहाँ भेजा जाता है। (छ) उदासीनता-सूचना—लो (/चलो), मैं कितनी जल्दी तैयार हो गई।

(8) **परोक्ष विधि—प्रयोग तथा अर्थ**—(क) भविष्यत्कालीन आज्ञा/उपदेश/प्रार्थना/निवेदन-सूचना—कल यह पाठ याद कर के आना। पहुँचते ही पत्र अवश्य लिखना। (ख) निषेधवाची शब्दों के साथ—उधर न जाना (/जाओ), बेटे! हवाई अड्डे पर पहुँच कर इतना लम्बा घूँघट मत काढ़ना, बहू! हे सर्प देवता, मेरे पति को मत (/नहीं) डसना।

(9) **सम्भाव्य वर्तमान काल—प्रयोग तथा अर्थ**—(क) स्वभाव/धर्म-सूचना—हमें ऐसी कॉलोनी में घर चाहिए जहाँ प्रतिदिन पानी आता हो। (ख) भूत/भविष्य में क्रिया व्यापार-अपूर्णता की सूचना—यदि पिता जी पढ़ते हों तो उन्हें चुपचाप पढ़ने देना। (ग) वर्तमान काल में अपूर्ण क्रिया की सूचना—शायद इस गाड़ी में बच्चे आते हों। (घ) आशंका-सूचना—मुझे डर है कि कहीं कोई हमारी बातें सुनता न हो। (ङ) उत्प्रेक्षा-सूचना—किमी ऐसे बोलती है (/थी) मानो (/जैसे) कोयल बोलती हो।

(10) **सम्भाव्य भूतकाल—प्रयोग तथा अर्थ**—(क) पूर्ण क्रिया-व्यापार की संभावना-सूचना—हो सकता है किसी ने हमारी बातें सुनी हों। जो कुछ तुम ने देखा हो, बेझिझक कह दो। (ख) आशंका/संदेह-सूचना—दुष्टों ने बेटी को कहीं मार न डाला हो। कहीं लॉटरी खुलने की बात उस ने मज़ाक में न कही हो। (ग) उत्प्रेक्षा-सूचना—तुम तो ऐसे बन रहे हो जैसे (/मानों) तुम ने कुछ भी न सुना (/देखा) हो। (घ) शर्त-सूचना—बेटे, अगर तुम ने कोई ग़लती की हो, तो मुझे सच-सच बता दो।

(11) **सम्भाव्य भविष्यत्काल—प्रयोग तथा अर्थ**—(क) इच्छा-सूचना—माँ से कहो—नहाने के लिए पानी रखें। तुम्हारी नौकरी जाए भाड़ में, मैं तो चली अपनी माँ के घर। (ख) संभावना-सूचना—कहीं वे आ न जाएँ। हो न हो, वह बीमार है। (ग) अनुमति-सूचना—क्या हम भी आएँ? मैं बैठूं। (घ) शर्त/संकेत-सूचना—यदि वह आए तो तुम वहीं रुक जाना। (ङ) कर्तव्य/आवश्यकता-सूचना—हम सब मिल कर इस काम को क्यों न कर डालें। (च) उद्देश्य/हेतु सूचना—हम लोग कुछ ऐसा करें कि समस्या का समाधान निकल आए। (छ) परामर्श हेतु प्रश्न-सूचना—अब मैं रात में कहाँ जाऊँ? (ज) शाप/आशीर्वाद/कामना-सूचना—ईश्वर तुम्हारा भला करे। गाज परै इन लोगन पै। (झ) विरुद्ध कथन-सूचना—तुम हमें चाहो न चाहो (/देखो न देखो), हम तुम्हें चाहा (/देखा) करें। (ञ) सांकेतिक

इच्छा-सूचना—(यदि) वे चाहें तो सब कुछ ठीक हो जाए। **(ट)** उत्प्रेक्षा-सूचना—वह ऐसे बातें करती है मानो विदेश की हो।

(12) **संदिग्ध वर्तमान काल—प्रयोग तथा अर्थ**—(**क**) वर्तमान में क्रिया-संदेह सूचना—पिता जी आते होंगे। (**ख**) भूत में क्रिया-संदेह सूचना—जब तुम वहाँ पहुँचीं, उस समय वे आराम करते होंगे। (**ग**) उदासीनता/तिरस्कार-सूचना—क्या यहाँ सेठ जी आया करते हैं? —आते होंगे, मैं क्या जानूँ? (घ) तर्क-सूचना—तुम सब के साथ ऐसा ही व्यवहार करते होगे।

(13) **संदिग्ध भूतकाल—प्रयोग तथा अर्थ**—(क) जिज्ञासा-सूचना—दस दिन तक लोग बिना खाए-पीए कैसे रहे होंगे! (**ख**) संदेह-सूचना—(शायद) उसे गैस की बीमारी रही होगी, रक्तचाप की नहीं। इतनी सुन्दर इमारत तुम ने कभी न देखी होगी। (**ग**) अनुमान-सूचना—अब तो तुम्हारे पिता जी अस्पताल से आ गए होंगे। (**घ**) तिरस्कार/उदासीनता-सूचना—मालूम है तुम्हारे बहनोई ने कोठी बनवाई है—बनवाई होगी, मुझे क्या! (ङ) शर्त-सूचना—अगर उन्हों ने आप को बुलाया होगा तो उन का आप से कोई-न-कोई काम अवश्य रहा होगा।

(14) **सामान्य संकेत—प्रयोग तथा अर्थ**—(**क**) क्रिया-व्यापार असिद्धि-सूचना—मेरे एक भी बहन होती तो मेरे राखी बँधी होती। यदि मेरा काम न होता तो मैं क्यों आता। अगर कल आप वहाँ रहते तो बहुत अच्छा होता। (**ख**) असिद्धि इच्छा-सूचना—हे मेरी प्रिये! आज तुम जीवित होतीं तो कितनी खुश होतीं। (**ग**) इच्छा-सूचना—यदि आप आदेश देते (/दें) तो मैं टाइप करता (/करूँ)। (**घ**) नकारात्मक-सूचना—उन की क्या हिम्मत थी जो हमारे खेत काटते (/काट ले जाते)।

(15) **अपूर्ण संकेत—प्रयोग तथा अर्थ**—(**क**) क्रिया-व्यापार असिद्धि-सूचना—(अगर) आज तुम्हारे पिता होते तो तुम्हें ये दिन क्यों देखने पड़ते। (**ख**) असिद्ध इच्छा-सूचना—माँ चाहती है (/थी) कि तुम भी मेरे साथ व्यापार करते होते। (**ग**) केवल उत्तर वाक्य-सूचना—निश्चय ही आज तुम डॉक्टर होते। (=यदि तुम डॉक्टरी पढ़ते होते तो निश्चय ……)।

(16) **पूर्ण संकेत—प्रयोग तथा अर्थ**—(**क**) क्रिया-व्यापार असिद्धि-सूचना—यदि तू ने पैसे न चुराए होते तो तू आज आज़ाद घूमता (होता)। (**ख**) असिद्ध इच्छा-सूचना—अरे भाई, पढ़ाने से पहले एक-दो बार पाठ को देख (तो) लिया होता।

23
वाक्य-भेद

वाक्य-भेद के दो प्रमुख आधार हैं—1. वाक्य-गठन/रचना 2. वाक्य-प्रकार्य/अर्थ । प्रत्येक वाक्य एक या एकाधिक उपवाक्यों से निर्मित होता है । वाक्य वास्तविक उच्चरित रूप होता है जिस का अपना कोई-न-कोई अनुतान रूप होता है। संरचना या गठन के आधार पर वाक्यों के मुख्य दो प्रकार होते हैं—(क) **एक उपवाक्यवाले वाक्य** (ख) **एकाधिक उपवाक्यवाले वाक्य**। इन्हें **सरल वाक्य** तथा **सरलेतर वाक्य** भी कह सकते हैं । अपने गठन में कोई भी वाक्य **पूर्णांग** या **अपूर्णांग** हो सकता है । अपूर्णांग वाक्य **अध्याहारयुत (/अध्याहारित) वाक्य** कहा जा सकता हैं, यथा—'चलो' । 'मैं' । (किसी संदर्भ में बोले गए अपूर्णांग वाक्य हैं) । आप इधर बैठिए । (पूर्णांग वाक्य है । यह सरल वाक्य भी है) । आप यहाँ आ कर बैठिए। (पूर्णांग वाक्य है । बाह्यगठन की दृष्टि से सरल वाक्य होने पर भी आंतरिक गठन/अर्थ-दृष्टि से **सरलसम** वाक्य कहा जा सकता है) । वह यहाँ आई और धम से सोफे में धँस गई । (संयुक्त वाक्य 'सरलेतर') । मैसूर में जो कुछ देखने योग्य था, मैं सब कुछ देख चुका हूँ । (मिश्र वाक्य 'सरलेतर') ।

सरल वाक्य एक विधेयी होता है । इसे **साधारण या सामान्य वाक्य** भी कहते हैं । यह एक शब्द या शब्दों का ऐसा समुदाय होता है जो विधेयन व्यक्त करता है और जो निश्चित व्याकरणिक रूपों और अनुतान से युक्त होता है, यथा—आइए। क्या लेंगे ?—कॉफ़ी । सरल वाक्य में एक मुख्य/समापिका क्रिया (प्रत्यक्ष या परोक्ष/प्रच्छन्न रूप से) होती है, यथा—उस ने आप को नमस्कार कहा है । बच्ची सो गई। बिजली चमक रही है । कृष्ण ने कंस को मारा । सरल वाक्य क्रिया के आधार पर मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—(क) **व्यापार सूचक**, यथा—भैंस तैर रही है । (ख) **अस्तित्व/अवस्थिति सूचक**, यथा—लड़की तो सुन्दर है । व्यापार सूचक वाक्य के उद्देश्य, विधेय में दो प्रकार का सम्बन्ध होता है—(अ) धनात्मक, यथा—बच्चा रो रहा है । (आ) गुणात्मक, यथा—बच्चा दो घंटे से रोता चला जा रहा है ।

समापिका क्रिया से पूर्व सरल वाक्य में किसी अन्य असमापिका क्रिया का अस्तित्व होने पर ऐसा सरल वाक्य '**सरलसम वाक्य**' कहा जा सकता है । असमापिका क्रियावाला अंश विश्लेषण करने पर आंतरिक संरचना की दृष्टि से स्वतन्त्र वाक्य

हो सकता है, यथा—मैं नहा कर खाना खाऊँगा—(पहले) मैं नहाऊँगा+(उस के बाद) मैं खाना खाऊँगा)। तुम हमेशा पढ़ते हुए खाते हो—(जब) तुम पढ़ते हो+(तब) साथ-साथ तुम खाते (भी) हो। असमापिका क्रिया वृत्ति, काल और पक्ष की दृष्टि से समापिका क्रिया का अनुगमन करती है। सरलतम वाक्यों के उद्देश्य (संज्ञा पदबंध), विधेय (क्रिया पदबंध) विस्तृत भी हो सकते हैं, यथा—कमरे के अन्दर से चीख़ कर भागी हुई लड़की ने+किसी तरह हाँफना बन्द कर बताया कि········

वक्ता तथा श्रोता के मध्य भाषा-व्यवहार की दृष्टि से सन्दर्भीय बोधगम्यता तथा औपचारिकता/अनौपचारिकता के तत्त्व विशेष भूमिका निभाते हैं। वक्ता तथा श्रोता के मध्य समझ एवं अनौपचारिकता का सूत्र जितना मज़बूत होगा, वाक्य भी उतने ही अधिक संक्षिप्त, अपूर्ण होंगे, यथा—

(क) औपचारिक संदर्भ	(ख) अनौपचारिक संदर्भ
आप का क्या नाम है ?	आप का नाम/तुम्हारा नाम/नाम ?
मेरा नाम हरीश गुप्त है।	हरीश गुप्त/हरीश।
आप को/तुम्हें मुझ से क्या काम है ?	मुझ से कोई काम/कोई काम/काम ?
मुझे आप के कॉलेज में बी. ए. प्रथम वर्ष में प्रवेश चाहिए।	बी. ए. प्रथम वर्ष में प्रवेश (चाहिए)

यद्यपि (ख) सूची के वाक्य व्याकरण की दृष्टि से अपूर्ण कहे जाते हैं तथापि भाषा-व्यवहार/सम्प्रेषण की दृष्टि से ये पूर्ण वाक्य हैं क्योंकि इन में अर्थ की दृष्टि से उद्देश्य और विधेय (जो केन्द्रीय तत्त्व हैं) प्रच्छन्न/प्रत्यक्ष होते हैं। बाह्‌य संरचना की दृष्टि से वाक्य के कुछ अंश छोड़े जाने के कारण ये अपूर्णांग वाक्य अध्याहारयुत/अध्याहारित वाक्य भी कहे जाते हैं। ये वाक्य अभिव्यक्ति की दृष्टि से अपूर्ण होते हुए भी कथ्य की दृष्टि से पूर्ण होते हैं।

प्रत्यक्ष क्रिया-विहीन (/प्रच्छन्न क्रिया युक्त वाक्य)—हिन्दी में प्रत्यक्ष क्रिया-विहीन या प्रच्छन्न क्रिया युत विविध प्रकार के संक्षिप्त वाक्य प्राप्त हैं, यथा—(1) **शीर्षक वाक्य**—ऐसे वाक्य समाचार पत्रों, विज्ञापनों, निबन्धों और पुस्तकादि के नामों आदि में मिलते हैं, यथा—सुन्दर, सस्ते और टिकाऊ कपड़े। आज पूरा बम्बई बन्द। बस और कार में भयानक टक्कर। संसद में पूरे विपक्ष का वॉक आउट। उत्तर प्रदेश के सरकारी अफ़सरों के घरों पर छापे। (2) **प्रशंसा, निन्दा, भय, घबराहट तथा आश्चर्य द्योतक उक्तियाँ**, यथा—वाह, क्या ख़ूब ! छि-छि ! धिक् ! शर्म-शर्म ! दैया रे दैया ! बाप रे बाप ! शेर ! साँप और बिच्छू ! कमरे में चोर ! (3) **विशेषणान्त वाक्य**—(क) **-वालान्त वाक्य**, यथा—इतनी जल्दी वह नहीं लौटनेवाली। इस काम को वह नहीं पूरा करनेवाला। (ख) **'कहीं का' अन्त्य-वाक्य**, यथा—गधा/बेवकूफ़ कहीं का। उल्लू/आवारा कहीं की। (ग) **'-ने का' अन्त्यवाक्य**, यथा—इतनी जल्दी वह नहीं लौटने की। मैं नहीं वहाँ जाने का। (4) **प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर वाक्य**, यथा—आजकल क्या कर रहे हो ?—आप के पड़ोस

में नौकरी/नौकरी। अब कहाँ जा रही हो?—अपने घर/घर। क्या आप उन्हें जानते हैं? जी नहीं/नहीं। (5) **सम्बोधन वाक्य**—ए बच्ची! ऐ लड़के! श्रीमान् जी! (गालीमय संबोधन—साला! बदतमीज़! गधा!) (6) **अभिवादन वाक्य**—आदाब अर्ज़! नमस्ते/नमस्कार/प्रणाम/सलाम/दंडवत्/राम-राम आदि। (7) **प्रति-वक्तव्य वाक्य**, यथा—हाँ, नहीं; बस। ये सम्भाषण में किसी कथन के प्रतिवक्तव्य के रूप में आते हैं, यथा—एक रसगुल्ला और लीजिए—नहीं, बस और नहीं चाहिए। (यहाँ बस 'काफ़ी' का पर्याय है। काफ़ी का प्रयोग संक्षिप्त वाक्य के रूप में नहीं होता।) विधेय संख्या/परिमाण के रूप में काफ़ी के स्थान पर बस का प्रयोग अमानक है, यथा—इतना आटा काफ़ी (/बस) होगा (/नहीं होगा)। 'बस' के साथ करना/होना का प्रयोग 'रोकने, समाप्त होने/करने' के अर्थ में संयुक्त वाक्यों में आता है, यथा—इतनी देर से चिल्ला रही हो, अब बस भी करो। शाम के लिए आठ पराठे काफ़ी हैं, अब बस कर। बस, अभी चलता हूँ, पाँच मिनट ठहरो। बस, हो चला, ज़रा-सी देर और रुको। सामान्य निश्चयार्थसूचक वाक्यों में इस का प्रयोग नहीं होता, यथा—वे लोग पढ़ना-लिखना *बस कर चुके हैं। (8) **विस्मयादिबोधक वाक्य**, यथा—बहुत अच्छा! वाह-वाह! अरे रे!

अभिवादन-वाक्यों के बारे में विशेष—अभिवादन का क्षेत्र दो व्यक्तियों के मिलने से ले कर सम्पर्क स्थापित करने तथा विदा होने तक है। दो व्यक्तियों के मध्य का अभिवादन, सम्पर्क-व्यवहार उन के आपस में परिचित (परिवार के सदस्य; अन्य—निकट परिचित, सामान्य परिचित) और अपरिचित (परिचय प्राप्त करना; तात्कालिक रूप से व्यवहार करना) होने की स्थिति से प्रभावित होता है। इस के अतिरिक्त उन की उम्र, लिंग, जाति, सामाजिक स्तर, पद, शिक्षा और वैयक्तिक विश्वास (धार्मिक आदि), संगठन/संस्था-सदस्यता भी प्रभाव डालते हैं। अभिवादन तथा सम्पर्क-व्यवहार तीन रूपों में व्यक्त होता है—(i) हाव-भाव (ii) मौखिक अभिव्यक्ति/संवाद (iii) अभिवादन शब्द। ये तीनों रूप एकसाथ, दो-दो या अकेले भी आ सकते हैं। **हाव-भाव**—परिचय सूचक मुस्कराहट आदि अंग चेष्टाएँ; समाज-स्वीकृत शारीरिक व्यापार, यथा—हाथ जोड़ना/दायें हाथ का पंजा सीने से छुलाना ('नमस्ते' के साथ); हाथ माथे तक ले जाना ('सलाम' के साथ); हाथ मिलाना ('गुड मॉनिंग' के साथ); सैल्यूट करना ('जयहिन्द' के साथ) आदि। छोटों द्वारा बड़ों के पैर छूना/दंडवत् करना और बड़ों के द्वारा छोटों के सिर पर आशीर्वाद की मुद्रा में दायाँ हाथ रखना। छोटों द्वारा हाथ जोड़ना और बड़ों द्वारा स्वीकृति में सिर हिलाना। **मौखिक अभिव्यक्ति/संवाद**—कहीं, कभी औपचारिक रूप से अभिवादन के शब्द बोले जाते हैं और कहीं, कभी बिना औपचारिकता के संवाद होता है। औपचारिक रूप में छोटों की ओर से 'नमस्ते/नमस्कार, प्रणाम/दंडवत्, पालागौं <पाँव लगता हूँ/लगती हूँ' कहा जाता है तथा बड़ों की ओर से 'प्रसन्न/ख़ुश/चिरंजीव/जीते/जीती/ सौभाग्यवती रहो' कहा जाता है।

सामान्यतः समान स्तरीय वक्ता-प्रतिवक्ता के मध्य औपचारिक शब्दों की प्रतिध्वनि (Echo) होती है, यथा—नमस्ते-नमस्ते/नमस्कार-नमस्कार (=मैं तुम्हें नमन करता हूँ—मैं (भी) तुम्हें नमन करता हूँ। आदाब (=आदर) अर्ज़—आदाब अर्ज़; सलाम-सलाम (=ठीक-ठाक होना); अस्सलाम अलैकुम (=सलामत तुम्हें हो)— वलैकुम अस्सलाम (=तुम्हें भी सलामत हो); राम-राम; जय राम जी की; जय सियाराम; जय श्रीकृष्ण; जय गोपाल; जय बजरंग बली की; जय बम भोले; जय हरि ओम; जय संतोषी माता; जय हिन्द आदि अनेक अभिवादन शब्द देवी-देवताओं तथा संगठनों पर आधारित हैं।

कभी-कभी वक्ता स्वास्थ्य, परिवार की स्थिति आदि के बारे में सीधे प्रश्न करता है और श्रोता उस का समुचित उत्तर देता है या कभी-कभी कृतज्ञता ज्ञापन करता है, यथा—क्या हाल है/हैं? कहो, कैसे/कैसी हो? क्या हालचाल हैं/है? कहिए, ठीक-ठाक है/हैं? सब कुशल है/हैं? सब मज़े में हैं न? बाल-बच्चे ठीक हैं। कहो भाई (/महेश), अच्छे/ठीक हो? आइए, ख़ैरियत तो है, कहिए जनाब, मिज़ाज कैसे हैं?—ठीक है/हैं। ठीक ही है/हैं। मज़े हैं। आनन्द (/कुशल/आनन्द-मंगल) है। सब मज़े में (/राज़ी-ख़ुशी) हैं। सब ठीक ही चल रहा है। चल रहा है। गाड़ी चल रही है। जिन्दगी कट रही है आदि। आप की दया (/मेहरबानी) है। सब दया है। भगवान् की कृपा (/दया) है। ख़ुदा का शुक्र है। (आप की) कृपा/इनायत/दुआ है। कभी-कभी प्रतिप्रश्न तथा प्रत्युत्तर भी सम्भव है, यथा—कहो भाई, क्या हाल हैं? सब ठीक है, और आप के यहाँ? हमारे यहाँ भी सब मज़े में हैं। आदि।

अभिवादन शब्द—मिलते समय शुभ प्रभात (/शुभ प्रभातम्), शुभ रात्रि (/शुभ यामिनी), शब्बा ख़ैर, (good morning, good night का अनुवाद), नमस्कार, नमस्ते, आदाब, हलो, गुड मॉर्निंग, गुड नाइट, पालागन, प्रणाम आदि। कृतज्ञता ज्ञापन के लिए Thank you/Thanks, धन्यवाद, शुक्रिया, मेहरबानी आदि। विदा होते समय—राम-राम/नमस्ते—राम-राम/नमस्ते आदि; खुदा हाफ़िज़ (=ईश्वर रक्षक है); फिर मिलेंगे; गुड बाई/बाई-बाई/टाटा आदि। कभी-कभी विदा-अभिवादन शब्द से पूर्व संवाद द्वारा बातचीत समाप्त की जाती है,—यथा अच्छा, मैं चलता हूँ/हम चलते हैं—अच्छा/अच्छा, हम चलें?/मैं चलूँ?/चलें?/चलूँ? /जाऊँ?/जाएँ?—अच्छा ठीक है, जाओ (अपना ख़्याल रखना)। इजाज़त दीजिए—ठीक है, जाओ/जाइए (अच्छा, आते रहना, रहिए/फिर कब आना होगा?)/आप से मिल कर ख़ुशी हुई आदि।

सरलेतर वाक्य एकाधिक विधेयी होते हैं। सरलेतर वाक्यों के दो भेद किए जा सकते हैं—1. मिश्र वाक्य 2. संयुक्त वाक्य। सरलेतर वाक्यों के भाग वाक्य विन्यास की दृष्टि से या तो स्वतन्त्र होते हैं या उन के मध्य निश्चित आश्रयी-आश्रित सम्बन्ध होता है। सरलेतर वाक्य एक से अधिक ऐसे सम्बद्ध सरल वाक्यों से बनते हैं जिन में उद्देश्य और विधेय होते हैं। ऐसे सम्बद्ध सरल वाक्यों को उपवाक्य कहा

जाता है। **उपवाक्य** किसी वाक्य का वह भाग होता है जिस में उद्देश्य और विधेय (प्रत्यक्ष/प्रच्छन्न) होते हैं तथा जिस का अपना अर्थ होता है। सरल वाक्य में एक स्वतन्त्र उपवाक्य होता है, सरलेतर वाक्य में एक से अधिक स्वतन्त्र या एक/एक से अधिक स्वतन्त्र+एक/एक से अधिक आश्रित उपवाक्य। सामान्यतः सरल वाक्य और स्वतन्त्र उपवाक्य एक ही होते हैं। उपवाक्य स्तर पर संरचना की चर्चा की जाती है, वाक्य के प्रयोग की नहीं, यथा—'विनोद डॉक्टर है' उपवाक्य की चर्चा 'कर्ता+पूरक+सहा० क्रिया/योजक क्रिया' के सन्दर्भ में की जाएगी। यह वाक्य प्रश्नार्थक है या आश्चर्यसूचक अथवा सूचनात्मक—ऐसी चर्चा वाक्य स्तरीय विश्लेषण के सन्दर्भ में की जाएगी। परम्परा से व्याकरणों में मिश्र और संयुक्त वाक्यों के अस्वतन्त्र/स्वतन्त्र उपवाक्यों को 'उपवाक्य' माना जाता रहा है, सरल वाक्य के साथ-साथ मिश्र, संयुक्त वाक्यों को 'वाक्य' कहा जाता रहा है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से सरल वाक्य भी स्वतन्त्र उपवाक्य हैं। उपवाक्य/उपवाक्यों से वाक्य की रचना होती है तथा वाक्यांशों (/पदबन्धों) से उपवाक्य की। वाक्य या उपवाक्य में एक (पूर्ण) विचार होता है जबकि वाक्यांश में एक या एकाधिक भावनाएँ। वाक्य या उपवाक्य में एक समापिका क्रिया होती है जबकि वाक्यांश में प्रायः कृदन्त या संबंध-सूचक अव्यय आदि होते हैं। संरचना की दृष्टि से उपवाक्यों के मुख्य तीन प्रकार हैं—1. कर्मयुत उपवाक्य 2. अकर्मक उपवाक्य 3. पूरक उपवाक्य। प्रकार्य की दृष्टि से उपवाक्यों के तीन प्रकार हैं—1. संज्ञा उपवाक्य 2. विशेषण उपवाक्य 3. अव्यय (/क्रिया विशेषण) उपवाक्य। एक उपवाक्य में कम से कम एक क्रिया वाक्यांश, एक संज्ञा वाक्यांश होता है।

संरचना-संरचक सम्बन्ध की दृष्टि से रूप→शब्द→वाक्यांश→उपवाक्य→वाक्य तक की इकाई अपनी से निचली इकाई से निर्मित होती है। संरचना के स्तर पर वाक्य अपने से ऊपर की किसी रचना/इकाई का घटक/सदस्य नहीं होता। परिच्छेद/अनुच्छेद में कई वाक्य हो सकते हैं किन्तु संरचना-स्तर पर वाक्य की सीमा ही अन्तिम सीमा है। रूप स्वनिमों/ स्वनों से निर्मित होते हैं, ये अर्थ-भेदक तो होते हैं, अर्थयुक्त नहीं होते। गौण अंगों की उपस्थिति/अनुपस्थिति के आधार पर वाक्य दो प्रकार के हो सकते हैं—1. **अविस्तारित वाक्य** में केवल प्रधान अंग (उद्देश्य, विधेय) होते हैं, यथा—यह पलंग है, वह खाट है। मैं लिख रहा हूँ। 2. **विस्तारित वाक्य** में प्रधान अंगों के अतिरिक्त कम से कम एक गौण अंग (विशेषक, कर्म आदि) होता है, यथा—दिल्ली में लाल किले के पास ही सामने चाँदनी चौक नाम का भीड़ भरा एक बाज़ार है। इस दूकान पर आप को दैनिक जीवन की सभी वस्तुएँ मिल जाएँगी।

मिश्र वाक्य—एक से अधिक विधेयवाला वाक्य होता है। इस में केवल एक ही स्वतन्त्र (/प्रधान/मुख्य) उपवाक्य होता है तथा एक या एक से अधिक आश्रित (/आनुषंगिक/बद्ध/अधीन/अस्वतन्त्र) उपवाक्य होते हैं। ये आश्रित उपवाक्य सामान्यतः व्यधिकरण योजकों से मुख्य उपवाक्य के साथ जुड़े रहते हैं। मिश्र वाक्य के

मुख्य और आश्रित उपवाक्य अर्थ-बोध में एक-दूसरे की सहायता करते हैं, यथा—'जब तुम आए थे, तब मैं स्नानगृह में था।' इस वाक्य में दोनों उपवाक्यों को एक साथ रखने/बोलने से ही एक विचार अर्थ-बोध) पूर्ण होता है, केवल एक उपवाक्य कहने मात्र से अर्थ-आकांक्षा बनी रहती है।

प्राय: आश्रित उपवाक्यों से पूर्व 'कि' जो, क्योंकि, जब, यदि, यद्यपि, अल्प/अपूर्ण विराम-चिह्न आते हैं, यथा—मैं नहीं जानती **कि वह कहाँ गई है।** यह वही पेड़ है **जो आप ने रोपा था।** मुझे आज ही पैसे चाहिए **क्योंकि मेरे पास रोज़ाना आने के लिए समय नहीं है। जब तुम आ जाओगी,** (तभी) मैं चला जाऊँगा। इन में काले टाइप के उपवाक्य आश्रित उपवाक्य हैं और सामान्य टाइप के उपवाक्य मुख्य उपवाक्य हैं।

प्रधान उपवाक्य की समापिका क्रिया आश्रित उपवाक्य की क्रिया की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र होती है तथा वाक्य में प्रधान उपवाक्य को प्रमुखता होती है जब कि **आश्रित उपवाक्य** की क्रिया प्रधान उपवाक्य की क्रिया की अपेक्षा कम स्वतन्त्र होती है और वाक्य में आश्रित उपवाक्य गौण होता है।

प्रकार्य के आधार पर आश्रित उपवाक्यों के तीन भेद होते हैं—1. संज्ञा उपवाक्य 2. विशेषण उपवाक्य 3. अव्यय (/क्रिया विशेषण) उपवाक्य।

मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा या संज्ञा वाक्यांश के बदले आनेवाला उपवाक्य **संज्ञा उपवाक्य** कहलाता है। यह उपवाक्य संज्ञा के प्रकार्य (कर्ता/उद्देश्य कर्म, पूरक) करता है, यथा—श्रीराम ने कहा कि मैं अकेला ही वन जाऊँगा। ('कहा' क्रिया का कर्म)। इन से यह न पूछिए कि ये कौन हैं। ('पूछिए' क्रिया का कर्म, 'यह' का पूरक)। जान पड़ता है कि माता जी स्वस्थ हो गई हैं। ('जान पड़ता है' क्रिया का उद्देश्य)। उन का विचार था कि उच्च स्तरीय प्रकाशन का कार्य करें। ('था' क्रिया का पूरक)। आप को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आगरा में सब से कम साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं। ('जान कर' कृदन्त का कर्म)। यह विश्वास दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है कि आर्य लोग भारत में बाहर से नहीं आए। ('विश्वास' का समानाधिकरण)। मुख्य उपवाक्य से पूर्व आश्रित संज्ञा उपवाक्य आने पर 'कि' का लोप हो जाता है, यथा—शादी के अवसर पर आप को भुला दिया जाए, यह कैसे संभव है? ('यह' आश्रित उपवाक्य का समानाधिकरण)। कभी-कभी कर्म स्थानीय संज्ञा उपवाक्य के पूर्व का 'कि' लुप्त रहता है, यथा—पिता जी ने कहा है, मुझे किसी की भीख नहीं चाहिए। मैं क्या जानूँ तुम्हारे मन में क्या है।

मुख्य उपवाक्य के किसी संज्ञा शब्द की विशेषता बतानेवाला उपवाक्य **विशेषण उपवाक्य** कहलाता है, यथा—आप की वह डायरी कहाँ है, जिस में आप की कविताएँ लिखी हुई हैं। ('डायरी' की विशेषता का सूचक)। वह घर कौन-सा है, जहाँ रामायण की कथा हुआ करती है। ('घर' की विशेषता का सूचक)। उस शाम, जब बच्चे घर नहीं पहुँचे थे, मैं बहुत चिन्तित हो गई थी। ('शाम' की विशे-

षता का सूचक)। आप को जैसी साड़ी चाहिए, हम वैसी ही उपलब्ध करा देंगे। जो नौकर पिछले महीने रखा था, वह चोर निकला। तुम्हें जितने कमरे चाहिए, (उतने) मिल जाएँगे। वाक्य में जिस स्थान पर संज्ञा शब्द आता है, उस स्थान पर उस के साथ विशेषण उपवाक्य आ सकता है, यथा—लँगोटीवाला एक अति चतुर महात्मा था जो राजनीति के दाँव-पेच बहुत अच्छी तरह जानता था। (उद्देश्य के साथ)। वह ऐसे कठोर स्वर से बोलती है जो सब को खटकता है। (करण के साथ)। मैसूर में जो कुछ देखने योग्य था, बच्चों ने सब देख लिया। (कर्म के साथ)। प्रधानमन्त्री के घातक उसी के **अंगरक्षक** निकले, जिन्हों ने उस की रक्षा का भार सँभाल रखा था। (पूर्ति के साथ)। आज के नेता लोग **उस अपकीर्ति** की ओर से कान बन्द किए रहते हैं जो उन के भ्रष्टाचार के कारण फैलती है। (विधेय विस्तारक के साथ)। विशेषण उपवाक्य से पूर्व प्राय: सार्वनामिक विशेषण (जैसे—जितना, जिस, जिन, जो आदि) या स्थान/कालसूचक अव्यय (जब, जहाँ आदि) योजक के रूप में आते हैं। विशेषण उपवाक्य का विशेष्य प्रधान उपवाक्य में अवश्य रहता है। उर्दू शैली के प्रभाव से कभी-कभी इन योजकों से पूर्व 'कि' का प्रयोग भी होता है, यथा—महात्मा जी ने ऐसा उपाय बताया है कि जिस के आगे सब जप-तप फीके हैं।

प्रश्नवाचक संज्ञा उपवाक्य तथा प्रश्नवाचक विशेषण उपवाक्य का अन्तर इन उदाहरणों से स्पष्ट हो सकता है—मुझे (यह) मालूम था कि प्रिन्सीपल क्या पूछेंगे। (संज्ञा उपवाक्य 'यह' लुप्त का समानाधिकरण)। प्रिन्सीपल क्या पूछेंगे, मुझे (यह) मालूम था। ('यह' लुप्त का समानाधिकरण संज्ञा उपवाक्य)। इस के बाद उस घटना का क्या परिणाम निकला, (वह) मुझे नहीं मालूम। (मुख्य उपवाक्य के 'वह परिणाम' लुप्त का विशेषण। 'क्या' के स्थान पर 'जो' की स्थानापत्ति सम्भव)। कभी-कभी अँगरेज़ी की शैली के अनुरूप मुख्य उपवाक्य के मध्य में विशेषण उपवाक्य का प्रयोग भी प्राप्त, यथा—वह व्यक्ति, जो भगवद्भजन का दिखावा करता है, अधिक छली और बेईमान होता है। कभी-कभी बाह्य संरचना-स्तर पर विशेषण उपवाक्यवत् दिखाई देनेवाले उपवाक्य आंतरिक संरचना-स्तर पर विशेषण उपवाक्य न हो कर समानाधिकरण उपवाक्य होते हैं क्योंकि उन्हें 'और' योजक शब्द से स्थानापन्न किया जा सकता है, यथा—मेरे बेटे ने एक कछुआ पाला था जिस पर वह बहुत समय खर्च कर देता था। (जिस पर=और उस पर)। अँगरेज़ी के समान हिन्दी में भी बाह्य संरचना स्तर पर विशेषण उपवाक्य 'मर्यादक, समानाधिकरण' के रूप में आते हैं किन्तु मर्यादक रूप में आने पर ही वे वास्तव में विशेषण उपवाक्य कहलाते हैं।

मुख्य उपवाक्य की क्रिया के संबंध में किसी प्रकार की सूचना देनेवाला उपवाक्य **अव्यय उपवाक्य** कहलाता है। यह वाक्य में अव्यय का कार्य करते हुए प्रधान उपवाक्य की क्रिया के समय, स्थान, रीति, परिमाण, परिणाम आदि के संबंध में बताता है। इसे प्राय: क्रियाविशेषण उपवाक्य कहा जाता है। अव्यय

उपवाक्य अपने प्रकार्य के आधार पर पाँच प्रकार के हो सकते हैं : (1) कालवाची (2) स्थानवाची (3) रीतिवाची (4) परिमाणवाची (5) परिणामवाची/कार्य-कारण-वाची। **कालवाची उपवाक्य** इन अर्थों के द्योतक होते हैं—(क) निश्चित काल सूचना, यथा—ज्यों ही उस ने रोटी का टुकड़ा तोड़ा, त्यों ही छींक हुई। जब चाय में उबाल आए तभी उसे उतार लेना ठीक रहता है। (ख) कालावधि/कालावस्थिति सूचना, यथा—जब वर्षा हो रही थी, (तब) हम स्टेशन पर खड़े थे। (ग) आवर्तन, यथा—जब-जब मैं आप से मिला, (तब-तब) आप मुझे लिखते हुए ही मिले। ज्यों-ज्यों/ज्यों ही हम ऊँचाई पर चढ़ते हैं, (त्यों-त्यों/त्यों ही) ठंड बढ़ने लगती है। **स्थानवाची उपवाक्य** इन अर्थों के द्योतक होते हैं—(क) स्थिति-सूचना, यथा—जहाँ चाहो, (वहाँ) रहो। जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना, जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना। (ख) गति-आरम्भ स्थल सूचना, यथा—जिधर से शब्द आया था, उधर ही उस ने तीर चला दिया। हम लोग भी वहीं से आ रहे हैं, जहाँ से तुम्हारे पुरखे आए थे। (ग) गति-अन्त स्थल सूचना, यथा—जहाँ तुम्हारे भाई गए हैं वहीं तुम भी जाओ। **रीतिवाची उपवाक्य**, यथा—मैं ने वैसा ही किया था, जैसा मुझ से कहा गया था। रीतिवाची उपवाक्य प्रायः 'जैसे, ज्यों, मानों/मानहु' (कविता में)' से आरम्भ होते हैं। मुख्य उपवाक्य में प्रायः 'वैसे/ऐसे, कैसे, त्यों' आते हैं। **परिमाणवाची उपवाक्य**, यथा—जैसे-जैसे आमदनी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे खर्च भी बढ़ता जाता है। तुम्हारी मायके के लोग जितनी दूर रहें, उतना ही घर के लिए अच्छा है। परिमाणवाची उपवाक्य में 'ज्यों-ज्यों, जैसे-जैसे, जहाँ तक, जितना कि' आते हैं, और मुख्य उपवाक्य में 'त्यों-त्यों, वैसे-वैसे (/तैसे-तैसे), वहाँ तक, यहाँ तक, उतना' आते हैं। **कार्य-कारणवाची उपवाक्य** इन अर्थों के द्योतक होते हैं—(क) कारण/हेतु सूचना, यथा—वह नहीं मानेगी क्योंकि वह जिद्दी है। (ख) संकेत/शर्त सूचना, यथा—यदि मैं तुम्हारे कहे के अनुसार चलता तो निश्चय ही दिवालिया हो जाता। (ग) विरोध सूचना, यथा—अब चाहे वह कितना ही सच बोले, उसे सभी झूठा ही मानेंगे। यद्यपि हीरो बहुत अधिक घायल हो चुका है, तो भी वह सब गुंडों को हरा देगा। (घ) निमित्त/उद्देश्य सूचना, यथा—ऐसा मैं ने इसलिए कहा है ताकि (/जिस से कि) आप की ग़लतफ़हमी दूर हो जाए। (ङ) परिणाम/फल-सूचना, यथा—बरसात में ब्रह्मपुत्र का पानी इतना ऊँचा उठ जाता है कि बड़ी-बड़ी बाढ़ें आ जाती हैं। कारणवाची उपवाक्यों के साथ 'क्योंकि, जो/यदि/अगर/यद्यपि, कि, चाहे····कैसा/कितना, कितना····क्यों, जो/जिस से/ताकि' आते हैं तथा कार्यवाची (मुख्य) उपवाक्यों के साथ 'ϕ, तो/तो भी/किन्तु/तथापि, इसलिए/इतना, फिर भी/तो भी/पर, ϕ' आते हैं।

विशेषण तथा अव्यय वाक्यांश/उपवाक्य से बने वाक्य सम्मिश्र वाक्य (relatives) कहे जा सकते हैं। इन के दोनों उपवाक्यों को जोड़नेवाले वाक्यांश समान स्तरीय होते हैं, यथा—हम जहाँ रहते हैं, वहीं पास में डाकखाना

भी है । 'जहाँ' स्थानवाची है और 'वहीं पास में' स्थानवाची विस्तारक है जिधर····उधर; जब तक····तब तक इसी प्रकार के योजक हैं।

संयुक्त वाक्य भी एक से अधिक विधेयवाले वाक्य होते हैं, किन्तु इन में एक से अधिक स्वतन्त्र या निराश्रित (प्रधान) उपवाक्य होते हैं । इन वाक्यों में आश्रित उपवाक्य हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते। संयुक्त वाक्य के स्वतन्त्र उपवाक्यों में एक को प्रधान उपवाक्य कहा जाता है तथा अन्य को उस का समानाधिकरण उपवाक्य कह सकते हैं। संयुक्त वाक्यों में कभी-कभी एक उपवाक्य पूरा होता है और दूसरा या दूसरे उपवाक्य अध्याहारित और कभी-कभी सभी उपवाक्य पूरे होते हैं, यथा—तुम सिगरेट मत पिया करो बल्कि सौंफ खाया करो। पिता जी दफ्तर जा रहे हैं और मम्मी क्लब। मैं तो जा रही थी पर तुम ने ही मुझे रोक लिया था।

संयुक्त वाक्य के स्वतन्त्र/प्रधान उपवाक्यों को समानाधिकरण/समान स्तरीय उपवाक्य कह सकते हैं। एक दूसरे के आश्रित न होने पर भी वे अर्थ की दृष्टि से परस्पर जुड़े हुए रहते हैं, यथा—हम लोग पूना घूमने गए और वहाँ चार दिन रहे। वह आई, आप से मिली, किन्तु मुझ से उस ने कुछ नहीं कहा तो मैं चली गई। थोड़ी देर पहले मैं आया था, (और) मैं ने देखा था कि कमरे में कोई है। संयुक्त वाक्यों के मुख्य उपवाक्यों के मध्य आनेवाले समुच्चयबोधकों के आधार पर संयुक्त वाक्यों को चार प्रकार का माना जाता है—(1) संयोजक युक्त, यथा—तुम उस के घर गए और वह यहाँ आ गया। मनुष्य जीवन का आधार केवल भोजन ही नहीं है, वरन् कई अन्य वस्तुएँ भी हैं। (2) विरोधक युक्त, यथा—सत्य बोलो परन्तु कटु सत्य नहीं। 'इस पथ का उद्देश्य नहीं है शान्त भवन में टिक रहना, किन्तु पहुँचना उस सीमा तक, जिस के आगे राह नहीं' (प्रसाद)। (3) विकल्प युक्त, यथा—चुपचाप बैठो या यहाँ से चले जाओ । न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे। (4) उद्देश्य/हेतु परिणाम युक्त, यथा—वे बीमार हैं, अतः आने में असमर्थ हैं। तुम्हें उन लोगों की चाल का पता लगाना है, इसलिए कुछ दिनों तक उन के साथ घुल-मिल कर रहना होगा।

संयुक्त वाक्य के प्रधान/मुख्य/स्वतन्त्र उपवाक्य सामान्यतः 'और, अथवा, तथा, एवं, या, फिर, कि, न····न, किन्तु, लेकिन, वरन्, बल्कि, नहीं तो, इसलिए, अतः, सो, जो, ϕ' से जुड़े होते हैं। 'न····न, चाहे····चाहे' दोनों उपवाक्यों में लगते हैं। कभी-कभी दो भिन्न कथन एकसाथ आ सकते हैं, यथा—इतने में आँधी आ गई और दूर कहीं बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी। कभी-कभी समानाधिकरण उपवाक्य बिना समुच्चयादिबोधकों के जुड़े रहते हैं, या नित्य संबंधी युग्म में से किसी का लोप भी सम्भव है, यथा—तुम्हारा बाप तो क्या तुम भी उसे नहीं छू सकते। इन दिनों उन्हें तुम्हारी आवश्यकता है, चल कर उन्हें तसल्ली दें। उसे पाने की खुशी न खोने का ग़म ।

संयुक्त वाक्यों के प्रधान उपवाक्यों की भाँति संयुक्त वाक्य या मिश्र वाक्य

में आए आश्रित उपवाक्य भी समानाधिकरण समुच्चयादिबोधकों से जुड़ सकते हैं, यथा—हम चाहते हैं कि बच्चे शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तथा मानसिक दृष्टि से बुद्धिमान हों। ऐसे अनेक अध्यापक हैं जो केवल नाम के अध्यापक हैं किन्तु अध्यापन से उन का कुछ भी लेना-देना नहीं है। संयुक्त तथा मिश्र वाक्य भी सरल वाक्य की भाँति अध्याहार वाक्य या संकुचित वाक्य हो सकते हैं।

प्रकार्य/अर्थ या कथन के उद्देश्य के आधार पर वाक्यों के आठ भेद माने जाते हैं—(1) **विधानार्थक** वाक्यों से कार्य के होने या किसी बात की सूचना मिलती है, **यथा**—भारत एक विशाल देश है। लगता है, पानी आनेवाला है। उस ने खाना भी खाया और दूध भी पिया। (2) **नकारार्थक** वाक्यों से कार्य के न होने (अस्वीकृति/नकार) की सूचना मिलती है, यथा—श्रीलंका बड़ा देश नहीं है। जिस देश का शासक भ्रष्ट होता है उस के अन्य कर्मचारी भी भ्रष्ट होते हैं। उस ने खाना भी नहीं खाया और दूध भी नहीं पिया। (3) **प्रश्नार्थक** वाक्यों से कार्य (/किसी बात) के बारे में प्रश्न पूछने की सूचना मिलती है, यथा—वे क्या खा रहे थे? क्या तुम्हें मालूम है कि पिता जी आज देर से लौटेंगे? तुम कब गए और कब लौटे? (4) **आज्ञार्थक** वाक्यों से कार्य को करने के बारे में (किसी को) आज्ञा, आदेश, उपदेश, प्रेरणा, विनती आदि दिए जाने की सूचना मिलती है, यथा—कृपया पहले मेरे घर भी चलिए। जो ज़िम्मेदारी तुम्हें सौंपी गई है, पहले उसे पूरा करो। जाओ, उधर बैठ कर पाठ याद करो। (5) **संदेहार्थक** वाक्यों से कार्य के होने/करने के बारे में संदेह, शंका या संभावना की सूचना मिलती है, यथा—शायद आज आँधी आए। जो ख़त कल मिला है, (शायद) किसी बदमाश लड़के ने लिखा होगा (/हो)। हमारा तार वहाँ पहुँचा होगा और उन का तार यहाँ आया होगा। (6) **इच्छार्थक** वाक्यों से कार्य के सम्बन्ध में इच्छा, शुभकामना, आशीर्वाद आदि की सूचना मिलती है, यथा—ईश्वर तुम्हें सौभाग्यवती रखे। तुम जहाँ भी रहो सुखी रहो। दूधों नहाओ, पूतों फलो (7) **संकेतार्थक** वाक्यों से कार्य के बारे में शर्त या संकेत की सूचना मिलती है। ऐसे वाक्य सदैव मिश्र वाक्य होते हैं, यथा—लॉटरी निकल आती तो दरिद्रता दूर हो जाती। यदि वे आएँगे तो मैं भी उन के साथ चला जाऊँगा। तुम चलो तो मैं इन्तज़ार करूँ। (8) **आवेगार्थक वाक्यों** से हर्ष, शोक, आश्चर्य आदि आवेगों/भावों/उद्‌गारों की सूचना मिलती है, यथा—अहा! कितने सुन्दर फूल हैं! इतने थोड़े-से समय में जितनी तरक्की तुम ने की है, उतनी तो किसी के वश की नहीं है। तुम ने शादी भी कर ली और मुझे उस की सूचना तक नहीं (दी)!

वाक्यों को अन्य दृष्टिकोणों से भी विभक्त किया जा सकता है, यथा—कथन के उद्देश्य की दृष्टि से वाक्यों के तीन प्रकार माने जाते हैं—विधानार्थक, प्रश्नार्थक, प्रेरणार्थक। वाक्यों में वास्तविकता के प्रति जो रुख होता है, उस के आधार पर दो भेद माने जाते हैं—(अ) स्वीकारार्थक (आ) नकारार्थक/निषेधार्थक। स्वीकारार्थक वाक्यों के कथन का अन्तर्य/अन्तर्भाव वक्ता की दृष्टि से वास्तव में अस्तित्वमान

भी है । 'जहाँ' स्थानवाची है और 'वहीं पास में' स्थानवाची विस्तारक है जिधर····उधर; जब तक····तब तक इसी प्रकार के योजक हैं।

संयुक्त वाक्य भी एक से अधिक विधेयवाले वाक्य होते हैं, किन्तु इन में एक से अधिक स्वतन्त्र या निराश्रित (प्रधान) उपवाक्य होते हैं । इन वाक्यों में आश्रित उपवाक्य हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते । संयुक्त वाक्य के स्वतन्त्र उपवाक्यों में एक को प्रधान उपवाक्य कहा जाता है तथा अन्य को उस का समानाधिकरण उपवाक्य कह सकते हैं । संयुक्त वाक्यों में कभी-कभी एक उपवाक्य पूरा होता है और दूसरा या दूसरे उपवाक्य अध्याहारित और कभी-कभी सभी उपवाक्य पूरे होते हैं, यथा—तुम सिगरेट मत पिया करो बल्कि सौंफ खाया करो । पिता जी दफ्तर जा रहे हैं और मम्मी क्लब । मैं तो जा रही थी पर तुम ने ही मुझे रोक लिया था ।

संयुक्त वाक्य के स्वतन्त्र/प्रधान उपवाक्यों को समानाधिकरण/समान स्तरीय उपवाक्य कह सकते हैं। एक दूसरे के आश्रित न होने पर भी वे अर्थ की दृष्टि से परस्पर जुड़े हुए रहते हैं, यथा—हम लोग पूना घूमने गए और वहाँ चार दिन रहे । वह आई, आप से मिली, किन्तु मुझ से उस ने कुछ नहीं कहा तो मैं चली गई । थोड़ी देर पहले मैं आया था, (और) मैं ने देखा था कि कमरे में कोई है । संयुक्त वाक्यों के मुख्य उपवाक्यों के मध्य आनेवाले समुच्चयबोधकों के आधार पर संयुक्त वाक्यों को चार प्रकार का माना जाता है—(1) संयोजक युक्त, यथा—तुम उस के घर गए और वह यहाँ आ गया । मनुष्य जीवन का आधार केवल भोजन ही नहीं है, वरन् कई अन्य वस्तुएँ भी हैं । (2) विरोधक युक्त, यथा—सत्य बोलो परन्तु कटु सत्य नहीं । 'इस पथ का उद्देश्य नहीं है शान्त भवन में टिक रहना, किन्तु पहुँचना उस सीमा तक, जिस के आगे राह नहीं' (प्रसाद) । (3) विकल्प युक्त, यथा—चुपचाप बैठो या यहाँ से चले जाओ । न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे । (4) उद्देश्य/हेतु परिणाम युक्त, यथा—वे बीमार हैं, अतः आने में असमर्थ हैं । तुम्हें उन लोगों की चाल का पता लगाना है, इसलिए कुछ दिनों तक उन के साथ घुल-मिल कर रहना होगा ।

संयुक्त वाक्य के प्रधान/मुख्य/स्वतन्त्र उपवाक्य सामान्यतः 'और, अथवा, तथा, एवं, या, फिर, कि, न····न, किन्तु, लेकिन, वरन्, बल्कि, नहीं तो, इसलिए, अतः, सो, जो, ϕ' से जुड़े होते हैं । 'न····न, चाहे····चाहे' दोनों उपवाक्यों में लगते हैं । कभी-कभी दो भिन्न कथन एकसाथ आ सकते हैं, यथा—इतने में आँधी आ गई और दूर कहीं बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी । कभी-कभी समानाधिकरण उपवाक्य बिना समुच्चयादिबोधकों के जुड़े रहते हैं, या नित्य संबंधी युग्म में से किसी का लोप भी सम्भव है, यथा—तुम्हारा बाप तो क्या तुम भी उसे नहीं छू सकते । इन दिनों उन्हें तुम्हारी आवश्यकता है, चल कर उन्हें तसल्ली दें । उसे पाने की खुशी न खोने का ग़म ।

संयुक्त वाक्यों के प्रधान उपवाक्यों की भाँति संयुक्त वाक्य या मिश्र वाक्य

में आए आश्रित उपवाक्य भी समानाधिकरण समुच्चयादिबोधकों से जुड़ सकते हैं, यथा—हम चाहते हैं कि बच्चे शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तथा मानसिक दृष्टि से बुद्धिमान हों। ऐसे अनेक अध्यापक हैं जो केवल नाम के अध्यापक हैं किन्तु अध्यापन से उन का कुछ भी लेना-देना नहीं है। संयुक्त तथा मिश्र वाक्य भी सरल वाक्य की भाँति अध्याहार वाक्य या संकुचित वाक्य हो सकते हैं।

प्रकार्य/अर्थ या कथन के उद्देश्य के आधार पर वाक्यों के आठ भेद माने जाते हैं—(1) **विधानार्थक** वाक्यों से कार्य के होने या किसी बात की सूचना मिलती है, **यथा**—भारत एक विशाल देश है। लगता है, पानी आनेवाला है। उस ने खाना भी खाया और दूध भी पिया। (2) **नकारार्थक** वाक्यों से कार्य के न होने (अस्वीकृति/नकार) की सूचना मिलती है, यथा—श्रीलंका बड़ा देश नहीं है। जिस देश का शासक भ्रष्ट होता है उस के अन्य कर्मचारी भी भ्रष्ट होते हैं। उस ने खाना भी नहीं खाया और दूध भी नहीं पिया। (3) **प्रश्नार्थक** वाक्यों से कार्य (/किसी बात) के बारे में प्रश्न पूछने की सूचना मिलती है, यथा—वे क्या खा रहे थे? क्या तुम्हें मालूम है कि पिता जी आज देर से लौटेंगे? तुम कब गए और कब लौटे? (4) **आज्ञार्थक** वाक्यों से कार्य को करने के बारे में (किसी को) आज्ञा, आदेश, उपदेश, प्रेरणा, विनती आदि दिए जाने की सूचना मिलती है, यथा—कृपया पहले मेरे घर भी चलिए। जो ज़िम्मेदारी तुम्हें सौंपी गई है, पहले उसे पूरा करो। जाओ, उधर बैठ कर पाठ याद करो। (5) **संदेहार्थक** वाक्यों से कार्य के होने/करने के बारे में संदेह, शंका या संभावना की सूचना मिलती है, **यथा**—शायद आज आँधी आए। जो ख़त कल मिला है, (शायद) किसी बदमाश लड़के ने लिखा होगा (/हो)। हमारा तार वहाँ पहुँचा होगा और उन का तार यहाँ आया होगा। (6) **इच्छार्थक** वाक्यों से कार्य के सम्बन्ध में इच्छा, शुभकामना, आशीर्वाद आदि की सूचना मिलती है, यथा—ईश्वर तुम्हें सौभाग्यवती रखे। तुम जहाँ भी रहो सुखी रहो। दूधों नहाओ, पूतों फलो (7) **संकेतार्थक** वाक्यों से कार्य के बारे में शर्त या संकेत की सूचना मिलती है। ऐसे वाक्य सदैव मिश्र वाक्य होते हैं, यथा—लॉटरी निकल आती तो दरिद्रता दूर हो जाती। यदि वे आएँगे तो मैं भी उन के साथ चला जाऊँगा। तुम चलो तो मैं इन्तज़ार करूँ। (8) **आवेगार्थक वाक्यों** से हर्ष, शोक, आश्चर्य आदि आवेगों/भावों/उद्गारों की सूचना मिलती है, यथा—अहा! कितने सुन्दर फूल हैं! इतने थोड़े-से समय में जितनी तरक्क़ी तुम ने की है, उतनी तो किसी के वश की नहीं है। तुम ने शादी भी कर ली और मुझे उस की सूचना तक नहीं (दी)!

वाक्यों को अन्य दृष्टिकोणों से भी विभक्त किया जा सकता है, यथा—कथन के उद्देश्य की दृष्टि से वाक्यों के तीन प्रकार माने जाते हैं—विधानार्थक, प्रश्नार्थक, प्रेरणार्थक। वाक्यों में वास्तविकता के प्रति जो रुख होता है, उस के आधार पर दो भेद माने जाते हैं—(अ) स्वीकारार्थक (आ) नकारार्थक/निषेधार्थक। स्वीकारार्थक वाक्यों के कथन का अन्तर्य/अन्तर्भाव वक्ता की दृष्टि से वास्तव में अस्तित्वमान

होता है, यथा—मेरी जेब में **सौ** का एक नोट था। दशरथ तड़प कर गिर पड़े। नकारार्थक वाक्यों के कथन का अन्तर्भाव वक्ता की दृष्टि से वास्तव में अस्तित्व मान नहीं होता। शाब्दिक-व्याकरणिक अर्थ के अनुसार नकारार्थक वाक्यों के दो उपभेद माने जाते हैं—(क) पूर्ण नकारार्थक वाक्यों में अस्वीकृति विधेय से सम्बन्धित होती है। (ख) आंशिक नकारार्थक वाक्यों में विधेय के अतिरिक्त किसी भी अंग की अस्वीकृति हो सकती है, यथा—मुझे आगे से **आप न कह कर** तुम कहा करें। वह **बिना कुछ कहे** घर से निकल गया। धुंध में वहाँ **न वृक्ष** दिखाई दे रहे थे **न घर, न नदी और पहाड़ियाँ**। विधानार्थक, प्रश्नार्थक तथा प्रेरणार्थक वाक्यों का अपना अनुतान होता है। इन का विशिष्ट अनुतान से उच्चारण किए जाने पर ये विस्मयादिबोधक हो जाते हैं, यथा—बेटा रहीम, उठो अब्बा आ गए। यह तुम ने क्या कर दिया ? निकल जाओ यहाँ से ! आज्ञार्थक वाक्यों को ही कुछ वैयाकरण प्रेरणार्थक वाक्य भी कहते हैं।

24
वाक्यांग

प्रत्येक वाक्य के दो मुख्य अंग होते हैं—(1) उद्देश्य (2) विधेय। उद्देश्य प्रायः कर्ता होता है और विधेय प्रायः क्रिया, यथा—बिल्ली कूदी। कुत्ता दौड़ा। उठो, उधर जाओ। (इस वाक्य में कर्ता 'तुम' अव्यक्त है)। वहाँ कौन जाएगा ? इस प्रश्न के उत्तर में कहे गए वाक्य 'मैं' में क्रिया (जाऊँगा/जाऊँगी) अव्यक्त है। कर्ता, क्रिया पद के साथ जुड़नेवाले पद 'कर्ता/उद्देश्य के विस्तार', 'क्रिया/विधेय के विस्तार' कहलाते हैं, यथा—कुत्ता बैठा है→**मेरा** कुत्ता **वहाँ** बैठा है—**मेरा अलसेशियन काला कुत्ता वहाँ बहुत देर से** बैठा है। काले टाइप के पद कर्ता (कुत्ता), क्रिया (बैठा है) के विस्तार हैं।

घटक-आधार पर सरल वाक्य दो प्रकार के हो सकते हैं—1. **एकांगी वाक्य** जिन में केवल एक प्रधान अंग होता है। इन में गौण अंग भी आ सकते हैं और इस प्रकार ये विस्तारित भी हो सकते हैं। एकांगी वाक्यों के दो प्रकार होते हैं—(क) उद्देश्य रहित (ख) विधेय रहित, यथा—आओ, नहीं, जा रहा हूँ, (इसे लोटा) कहा जाता है (उद्देश्य रहित वाक्य), नमस्ते ! शुभरात्रि ! तेज़ आँधी, चारों ओर धूल ही धूल (विधेय रहित वाक्य) 2. **द्व्यंगी वाक्य** जिन में दोनों प्रधान अंग 'उद्देश्य, विधेय' (विधेयन-युग्म) होते हैं। इन में उद्देश्य, विधेय से संबंधित गौण अंग भी हो सकते हैं। द्व्यंगी वाक्य अधिक उत्पादक होते हैं, यथा—मैं आगरा में रहता हूँ। उस की माँ अध्यापिका है। मैं तुम्हें यह पहला पत्र लिख रही हूँ। एकांगी, द्व्यंगी वाक्य पूर्ण, अपूर्ण हो सकते हैं। **पूर्ण** वाक्यों में तत्संबंधी वाक्य-संरचना के सभी अंग होते हैं, **अपूर्ण** वाक्यों में तत्संबंधी वाक्य-संरचना के एक या अधिक अंगों का लोप होता है। प्रसंग/सन्दर्भ से ये अंग स्पष्ट हो सकते हैं, यथा—तो अब मैं बेफ़िक्र रहूँ ?—पूरी तरह से। इस दवा को कैसे लेना होगा ?—दिन में तीन बार ताज़ा पानी के साथ। द्व्यंगी वाक्य के विधेयन (उद्देश्य, विधेय का युग्म) शब्दबंध होते हैं। इन शब्दबंधों का एक घटक (विधेय) दूसरे घटक (उद्देश्य) की व्याख्या (/उस का विधान) करता है। द्व्यंगी वाक्य के प्रधान अंग (उद्देश्य, विधेय) उस के संरचनात्मक केन्द्र होते हैं और उन के आस-पास अन्य दूसरे अंग/घटक आ सकते हैं।

जिस व्यक्ति/वस्तु का लक्षण या व्यापार विधेय द्वारा व्यक्त किया जाता है, उसे **उद्देश्य** कहा जाता है। उद्देश्य प्रत्येक द्व्यंगी वाक्य का एक प्रधान अंग होता है। विधेय भी प्रत्येक **द्व्यंगी** वाक्य का प्रधान अंग होता है। यह उद्देश्य द्वारा व्यक्त व्यक्ति/वस्तु के लक्षण को नामोद्दिष्ट करता है। सकर्मक या द्विकर्मक क्रिया होने पर कर्ता, क्रिया के अतिरिक्त वाक्य में कर्म पद भी उपस्थित रहता है, यथा—माँ ने **खाना** पकाया है। माँ ने **बहुत सारा खाना** पकाया है। पिता जी बच्चों को **गणित** पढ़ाते हैं। मेरे पिता जी **मुहल्ले के बच्चों को सभी प्रकार का गणित** पढ़ाते हैं। इन वाक्यों में मुख्य कर्म, गौण कर्म अपने विस्तार के साथ काले टाइप में अंकित हैं। प्रत्येक वाक्य का कर्ता (अपने विस्तार सहित) अंग 'उद्देश्य' (जिस के बारे में कुछ कहा जाए/गया है) कहा जाता है, यथा—'मेरे पिता जी'। वाक्य में उद्देश्य के अतिरिक्त शेष भाग (क्रिया अपने, कर्म, पूरक तथा इन सब के विस्तार सहित) 'विधेय' (कर्ता के बारे में जो कुछ कहा गया है) कहा जाता है, यथा—'मुहल्ले के बच्चों को सभी प्रकार का गणित पढ़ाते हैं।'

वाक्य में विधेय अंश उद्देश्य के बाद तथा पूर्व भी आ सकता है, यथा—तुम्हारी बातें समझ न सकने के कारण उस के मन में शंका होने लगी थी। इस वाक्य में 'शंका' उद्देश्य से पहले आए शब्द और बाद में भी आए शब्द विधेय के अंश हैं। हिन्दी वाक्यों में उद्देश्य का प्रकार्य संज्ञा या अन्य शब्द-भेद अविकारी कारक में या 'ने को, से' युक्त विकारी कारक में करता है। हिन्दी में उद्देश्य की अभिव्यक्ति इन शब्द भेदों से सम्भव है—(1) संज्ञा से, यथा—**बिल्ली** कूदी। **बच्चा** सो रहा है। (2) सर्वनाम से, यथा—**मैं** सिनेमा नहीं देखता। **आप** क्या कर रहे हैं ? उसे **किस ने** मारा है ? (3) संज्ञाकृत (स्वतन्त्र, सहायक) शब्दों से—(क) विशेषण से, यथा—**गरीबों को** भी कर देना पड़ा। **अमीरों ने** भी दान नहीं दिया। **एक** कहता है हनुमान की पूजा कर, **दूसरा** कहता है राम से लौ लगा। (ख) संज्ञार्थक क्रिया से—जितना **कहना** आसान है, उतना **करना** आसान नहीं है। (ग) कृदन्त से,—मरता क्या न करता। रोज़ **आनेवाला** ऐसा नहीं करेगा। **मेरा कहा** याद है न ? (घ) निपात से—प्रेमिका की **'न' ने** उसे अत्यन्त मर्माहत कर दिया था। (ङ) स्थानवाची से—उस का **भीतर-बाहर** समान है। (च) समुच्चयबोधक से—**तुम्हारी 'लेकिन'** मुझे पागल बना देगी। (छ) उद्गारसूचक से—**माँ की 'हाय' ने** सब को चौंका दिया था। (4) संज्ञा पदबंध से—**झूठ बोलना** पाप माना जाता है। **घर के घर** स्वाहा हो गये। सड़क के दोनों ओर **पेड़ ही पेड़** खड़े थे।

सामान्यतः उद्देश्य कर्ता कारक में आता है, किन्तु कभी-कभी वह अन्य कारकों में भी आता है, यथा—(क) कर्तृवाच्य का (कारक चिह्न-रहित) प्रधान कर्ता—**खरगोश** दौड़ा। **पेड़** बोला (बच्चों की कहानियों में ऐसे वाक्य संभव हैं।) **चिड़ियाँ** उड़ीं। (ख) कर्तृवाच्य का (कारक चिह्न युत) अप्रधान कर्ता—**उन्हों ने** आप को बुलाया है। **भाई ने** भाई को मारा। (ग) कर्मवाच्य का कर्ता (/कारक

चिह्न-रहित कर्म कारक)—पेड़ काटे जा रहे हैं। उन्हें **पत्र** लिख दिया जाएगा। **दवा** ले ली गई या नहीं। (घ) कर्मवाच्य का कर्ता (/कारक चिह्न युत कर्म कारक)—डिनर पर **किसे** बुलाया जा रहा है ? कल **आप को** ही मुख्य अतिथि बनाया जाएगा। **उसे** अदालत में पेश किया गया। (ङ) असमर्थताद्योतक भाववाच्य का कर्ता (/करण कारक)—**बच्चे से** बैठा नहीं जा रहा है। **उन से** अभी चला नहीं जाता। **मुझ से** दायीं करवट सोते नहीं बनता। (च) भावे प्रयोग का कारक चिह्न युत कर्ता (/सम्प्रदान कारक)—**उन्हें** ऐसा नहीं कहना चाहिए था। **आप को** ही वहाँ जाना होगा। **डाकुओं** को गोली चलाने के बजाए भागते ही बना।

वाक्य के **कर्ता का विस्तार** चार प्रकार से होता है—(अ) विशेषण शब्दों से, यथा—**भूरी** बिल्ली कूदी। **दोनों** बच्चे सो रहे हैं। (आ) सम्बन्धवाची शब्दों से, यथा—**मेरी** बिल्ली किधर है ? **आप** का बच्चा इधर है। (इ) समानाधिकरण शब्दों से, यथा—कृष्ण कालीन मथुरा नरेश **कंस** बहुत क्रूर था। परमहंस स्वामी **रामकृष्ण तीर्थ** अत्यन्त सरल स्वभाव के थे। (ई) 'अ, आ, इ' में वर्णित शब्दों के पदबन्धों से, यथा—**लम्बे-लम्बे काले बालोंवाली, गोरे गालोंवाली एक छरहरी** लड़की ने····। **दिन भर की थकी-माँदी नयी** बहू रात को गहरी नींद में सो गई। **टीपू सुलतान के समय का बहुत मज़बूत लकड़ी का बना हुआ एक** भवन अभी तक खड़ा है।

हिन्दी में विधेय पाँच प्रकार्य नामोद्दिष्ट करता है—(1) व्यापार—मालती **रो पड़ी** (2) अवस्था—आज तुम **बहुत खुश हो** (3) गुण-धर्म—तेल पानी से **हलका होता है**। उस का दिमाग **बहुत तेज़ है**। (4) परिमाण—धर्मस्थल में एक दिन में खाना खानेवालों की संख्या **लगभग पाँच हज़ार होती है**। (5) स्वामित्व—यह देश **हमारा है**।

संरचना की दृष्टि से विधेय एक पदीय (सामान्य) और एकाधिक पदीय (संयुक्त) होता है। विधेय के घटकों में क्रिया; नामिक शब्द; क्रिया-नामिक शब्द हो सकते हैं। विधेय में सामान्यतः एक समापिका क्रिया (सामान्य या संयुक्त) किसी भी लिंग, वचन, पुरुष, काल, वाच्य, वृत्ति, पक्ष की रहती है। प्रायः अपूर्ण अकर्मक क्रियाओं (बन, दिख, निकल, ठहर, रह, पड़ आदि) के अर्थ-पूर्ति के लिए **उद्देश्य-पूरक** जोड़ने की आवश्यकता होती है। उद्देश्य पूरक संज्ञा, विशेषण हो सकता है, यथा—उस की नौकरानी **चोर** निकली। वह कोठी **हमारे दादा की** थी। व्यापार के लिए आए अँगरेज़ धीरे-धीरे **भारत के शासक** बन गए। सामान्यतः सकर्मक क्रियावाले वाक्यों में एक (मुख्य) कर्म रहता है तथा द्विकर्मक क्रियाओंवाले वाक्यों में एक मुख्य कर्म (अप्राणिवाची) और एक गौण कर्म (प्राणिवाची) रहता है। कर्मवाच्य में अपूर्ण सकर्मक क्रियाओं (कर, बना, समझ, पा, रख आदि) के साथ भी उद्देश्य-पूरक जोड़ने की आवश्यकता होती है। उद्देश्य-पूरक संज्ञा, विशेषण हो सकता है, यथा—वह गुलाम एक दिन बादशाह बना दिया गया। ऐसा बच्चा मन्द माना जाता है। तुम्हारी बात झूठ पाई गई।

अपना अर्थ आप प्रकट करनेवाली अपूर्ण क्रियाएँ अकेली ही विधेय होती हैं, यथा—ईश्वर **है**। शाम **हुई**। बेटा **है**, बहू है, कोठी **है**। कभी-कभी वर्तमान काल में 'होना' क्रिया लुप्त भी रहती है, यथा—तुम्हें इस बात से क्या मतलब (है)? बिना पैसे लिए मैं नहीं यहाँ से जाने का (हूँ)।

वाक्य में कर्म का स्थान छह प्रकार के शब्दों/पदबन्धों से भरा जा सकता है, यथा—(क) संज्ञा से—बच्चा **फूल** तोड़ रहा था। मैं **पुस्तक** लिख रहा हूँ। मैं **बेटी को गणित** पढ़ाता हूँ। (ख) सर्वनाम से—वह लड़की **तुम्हें** बुला रही है। उन्हों ने आप के लिए **यह** दिया है। **उसे** यही साड़ी पहनने दें। (ग) विशेषण से—**गरीबों को** मत सताओ। आप ने **डूबतों को** तारा है। **भूखे को** खाना और **प्यासे को** पानी दो। (घ) अव्यय शब्द से—रुपया लौटाने में वह **'अब-तब'** कर रहा है। (ङ) संज्ञावत् प्रयुक्त किसी भी शब्द से—क्या रामचरितमानस में तुलसी ने **'कि'** शब्द लिखा है? (च) संज्ञा पदबन्ध से—वह **स्कूटर चलाना** सीख रही है। मुझे **तुम्हारा इस तरह बहाने बनाना** कतई पसन्द नहीं है। टिड्डियों ने **खेत के खेत** कुतर डाले। तुम ने **मेरी बात को** कोई कान नहीं दिया। गौण कर्म के स्थान पर भी उपर्युक्त शब्द/पदबंध आ सकते हैं, यथा—(क) संज्ञा—माँ ने **बेटे को** गीत सुनाया। (ख) सर्वनाम—**मुझे** सुन्दरकांड सुनाओ। (ग) विशेषण—**ढोंगियों** को कुछ नहीं देना चाहिए (घ) अव्यय—तू ने यह बात **अन्दर** (अर्थात् बहू रानी को) तो नहीं बताई। (ङ) संज्ञावत् प्रयुक्त कोई शब्द—तुम्हारी 'हाँ' को मैं कैसे हाँ मान लूँ। (च) संज्ञा पदबंध—तुम ने **इतने छोटे बच्चों को** इतने अधिक पैसे क्यों दिए?

कर्मवाच्य में द्विकर्मक क्रिया का मुख्य कर्म उद्देश्य बन कर कर्ता कारक के रूप में आता है और गौण कर्म यथावत् रहता है, यथा—**भूखों को खाना** दिया जा रहा है। कुछ देर बाद **तुम्हें यह** बात समझा दी जाएगी। **बकरी को चने** खिलाए जाते हैं। कर्तृवाच्य के अपूर्ण सकर्मक क्रिया (कर, बना, समझ, मान, पा, कह, ठहरा आदि) युत वाक्य में कर्म के साथ **कर्म-पूर्ति (/पूरक)** आती है, यथा—केवल परमात्मा ही राई को **पर्वत** बना सकता है। चित्रकार और कवियों ने एक सिरवाले रावण को **दस सिरवाला** बना दिया है। कुपुत्र सारी सम्पत्ति को **मिट्टी** कर देता है। सजातीय अकर्मक क्रियाओं के साथ सजातीय कर्म आता है, यथा—तुम ने बहुत अच्छी **चाल** चली। पी. टी. उषा लम्बी **दौड़** दौड़ी। पुलिस ने चोर को बुरी **मार** मारी। आओ, हम सब गृह-पंचायत की **बैठक** बैठें।

वाक्यों में **कर्म (मुख्य, गौण) तथा पूरक का विस्तार** कर्ता के विस्तार के समान ही होता है, यथा—(क) विशेषण शब्दों से—आप ने **कितनी** साड़ियाँ ख़रीदी हैं? वह **बीमार** औरत है। (ख) समानाधिकरण शब्द से—तुम अपनी सहेली **रेखा** को बुलाओ। अयोध्या के राजा दशरथ ने मिथिलाधिपति **राजा जनक** को अपना समधी स्वीकार किया। (ग) सम्बन्ध सूचक शब्द से—पहले **आज** का काम पूरा करो। आचार्य ने **स्कूल** के सभी छात्रों को मैदान में पहुँचने के लिए आज्ञा दी। तुम **अपने**

दोस्तों को भी बुला लेना। (घ) विशेषण पदबन्ध से—क्या तुम ने **बाँस पर चढ़ी हुई** नटिनी को देखा है? सभी बच्चे **उन की लिखी हुई** कहानियाँ बड़े चाव से पढ़ते हैं।

वाक्यों में **विधेय अंग की रचना** पाँच प्रकार से होती है—(1) क्रिया से—बिल्ली **कूदी**। **आओ, चलें**। **खाओ**। (2) कर्म+सकर्मक क्रिया से—बिल्ली ने **दूध पी लिया**। (3) कर्म+पूर्वकालिक क्रिया+क्रिया से—कुत्ता **हड्डी ले कर भागा**। (4) पूरक+अस्तित्ववाची क्रिया से—बच्चा **बहुत कमज़ोर है**। (5) कर्म+क्रिया-विस्तार+क्रिया से—खरगोश **काफ़ी तेज़ दौड़ा**। श्रीराम ने **रावण को बाणों से विदीर्ण कर दिया**। पुलिस के सिपाही ने **चोर को तेज़ी से भाग कर धर दबोचा**।

वाक्यों (/विधेयांश) की **समापिका क्रिया का विस्तार** दस प्रकार से हो सकता है—(1) संज्ञा/संज्ञा वाक्यांश से—**विक्रम संवत् 1956 में** भयंकर अकाल पड़ा था। **नौ दिन** चले अढ़ाई कोस। (2) क्रियाविशेषण से—क्या तुम सुडौल लिखते हो? वे तो घर में **यों ही** बैठे हैं। (3) विधेय विशेषण से—लड़कियाँ **उदास** बैठी हुई हैं। तुम तो **भले चंगे** बैठे हो। गाय **रँभाती हुई** भागी। (4) पूर्ण/अपूर्ण कृदन्त से—पिल्ला **कूँ कूँ करता** भाग गया। पागल **बकते-बकते** दौड़ पड़ा। मैं तो **बैठे-बैठे** ऊब जाता हूँ। (5) पूर्वकालिक कृदन्त से—तू **लँगड़ा कर** क्यों चलता है? माँ **नहा कर** वापस आ चुकी है। पगली **तेज़ी से उठ कर** भागी। (6) तत्काल-बोधक कृदन्त से—तुम ने **आते ही** शैतानी शुरू कर दी। बच्चा **गिरते ही** मर गया। बच्चे ने दवा **पीते ही** उल्टी कर दी। (7) स्वतन्त्र वाक्यांश से—**इतनी रात गए** कहाँ गई थी? **उसे मरे** तो कई साल हो गए। **इस बाम से सारी थकावट दूर हो कर** अच्छी और मीठी नींद आती है। (8) क्रियाविशेषण पदबन्ध/स्थानवाची या कालवाची अव्यय पदबंध से—कुछ पुस्तकें **हाथों हाथ** बिक जाती हैं। राजधानी एक्सप्रेस की अपेक्षा शताब्दी एक्सप्रेस **बहुत अधिक तेज़** दौड़ती है। **डकैत यहीं कहीं अवश्य** छिपे हुए हैं। (9) संबंधबोधक शब्दों से—**तुम किस के यहाँ** रह रहे हो? बेचारा इन दिनों **खुजली के मारे** परेशान है। कबूतर **जाल समेत** उड़ गए। (10) कर्ता, कर्म, संबंध कारक से इतर कारकों से—बच्चे को **चम्मच से** दूध पिला दो। वह **गंगा स्नान को** गया है। **वे अपने किए पर** आप पछता रहे हैं।

विधेय विस्तारक शब्दों के निम्नलिखित **प्रकार्य** हो सकते हैं—**(क)** काल सूचना—(i) निश्चित काल—वे **कल** गए। (ii) अवधि—**बच्ची चार महीने से** बीमार है। (iii) आवृत्ति—मैं ने उसे **बार-बार** मना किया। **(ख)** स्थानसूचक—(i) स्थिति—बनारस **गंगा के किनारे** बसा हुआ है। (ii) आरम्भ—गंगा **गंगोत्री** से और यमुना **यमुनोत्री** से निकलती है। (iii) लक्ष्य स्थान—वह बस तो **अहमदाबाद (को)** चली गई। **(ग)** रीतिसूचना—(i) ढंग—डाकू **लँगड़ाता हुआ** भाग गया। (ii) साधन—इस **कलम से** कैसे लिखा जा सकता है! (iii) सहित/युक्त—अब मैं **तुम्हारे साथ** नहीं रह सकती। **(घ)** परिमाण सूचना—(i) निश्चित—एक औरत **पुरुष के**

बराबर शारीरिक श्रम नहीं कर पाती। (ii) अनिश्चित—गांधी जी **बहुत तेज़** चलते थे। (ङ) नकार/निषेध सूचना—मैं वहाँ कभी **नहीं** जाता। आप इधर **न** आइए। तुम यहाँ **मत** बैठो। **(च)** कार्य-कारण सूचना—(i) हेतु-कारण—**उन के यहाँ आ जाने से** हमारा काम बन जाएगा। बच्ची **डर के मारे** काँपने लगी। (ii) निमित्त—इस महँगाई में **पीने** को ग़म और **खाने** को हवा ही है। तुम रोज़ **सिनेमा देखने** जाते हो। (iii) उपादान—**घी और गुड़ से** कई मिठाइयाँ बनाई जाती हैं। (iv) **विरोध—हमारे जागते भी** चोर माल ले कर भाग गए। **ऊँची-ऊँची लहरें उठने पर भी** नाविक नाव खेता रहा।

वाक्यांगों को **वाक्य-विग्रह** (/वाक्य-विश्लेषण) करते हुए इस प्रकार भी दिखाया जा सकता है—(1) तुम्हारा नृत्य आज सभी दर्शकों को बहुत ही अच्छा लगा था। (2) मन्दिर से पाँच मील दूर कोई सौ फुट ऊँचा एक टीला है। (3) जैन तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने सदैव अहिंसा को आत्मिक बल का आधार स्वीकार किया था। (4) गर्मी के मारे इस कमरे में कैसे सोया जाएगा? (5) क्या तुम पागल हो गए हो?

उद्देश्य		विधेय					
कर्ता	कर्ता-विस्तार	कर्म	कर्म-विस्तार	पूरक	पूरक-विस्तार	क्रिया	क्रिया-विस्तार
दर्शकों को	सभी	नृत्य	तुम्हारा	अच्छा	बहुत ही	लगा था	आज
टीला	कोई सौ फुट ऊँचा एक	—	—	—	—	है	मन्दिर से पाँच मील दूर
महावीर ने	जैन तीर्थंकर; भगवान; स्वामी	अहिंसा को	—	आधार	आत्मिक बल का	स्वीकार किया था	सदैव
(किसी से) लुप्त	—	—	—	—	—	सोया जाएगा	गर्मी के मारे; इस कमरे में; कैसे
तुम	—	—	—	पागल	—	हो गए हो	क्या

मिश्र वाक्य का विग्रह करते समय पहले उस वाक्य के प्रधान, आश्रित उपवाक्यों और उन के योजकों का उल्लेख किया जाता है। इस के बाद प्रत्येक उपवाक्य के उद्देश्य और विधेय का विश्लेषण किया जाता है, यथा—जब मेरे बड़े भाई श्रीराम वनवास काट कर अयोध्या लौटेंगे, तब मैं उसी समय उन्हें उन का यह राज्य सौंप कर भार मुक्त हो जाऊँगा।

(क) (तब) मैं उसी समय उन्हें उन का यह राज्य सौंप कर भार मुक्त हो जाऊँगा—प्रधान उपवाक्य।

(ख) (जब) मेरे बड़े भाई श्रीराम वनवास काट कर अयोध्या लौटेंगे—आश्रित कालसूचक अव्यय उपवाक्य।

जब……तब नित्य सम्बन्धी योजक।

	उद्देश्य		योजक	विधेय						
उपवाक्य	कर्ता	कर्ता-विस्तार		कर्म	कर्म-विस्तार	पूरक	पूरक-विस्तार	क्रिया	क्रिया-विस्तार
(क)	मैं	—	तब	उन्हें, राज्य	उन का, यह	भार मुक्त	—	हो जाऊँगा	उसी समय; सौंप कर
(ख)	श्रीराम	मेरे बड़े भाई	जब	—	—	—	—	लौटेंगे	बनवास काट कर; अयोध्या

संयुक्त वाक्य का विग्रह करते समय पहले उस वाक्य के प्रधान उपवाक्य और उस के समानाधिकरण (/समानाधारी) उपवाक्यों और उन के आश्रित उपवाक्यों के (यदि हों तो) योजकों का उल्लेख किया जाता है। इस के बाद प्रत्येक उपवाक्य के उद्देश्य और विधेय अंश का विश्लेषण किया जाता है, यथा—राजा दशरथ की सब से छोटी रानी भरत की माँ कैकेयी ने मंथरा की सलाह तुरन्त स्वीकार कर ली और बोली कि मैं इसी समय राजमहल जाती हूँ तथा वहाँ पहुँच कर राम से कहती हूँ कि तुम्हें 14 वर्ष के लिए वन जाना पड़ेगा।

(क) राजा दशरथ की सब से छोटी रानी भरत की माँ कैकेयी ने मंथरा की सलाह तुरन्त स्वीकार कर ली—प्रथम प्रधान उपवाक्य।

(ख) (और) बोली—द्‌वितीय प्रधान उपवाक्य ('क' का समानाधिकरण। 'और' योजक, 'वह' कर्ता लुप्त।)

(ग) (कि) मैं इसी समय राजमहल में जाती हूँ—प्रथम आश्रित संज्ञा उपवाक्य ('ख' का कर्म। 'कि' योजक)

(घ) (तथा) वहाँ पहुँच कर राम से कहती हूँ—द्‌वितीय आश्रित संज्ञा उपवाक्य ('ग' का समानाधिकरण। 'तथा' योजक 'मैं' कर्ता लुप्त।)

(ङ) (कि) तुम्हें 14 वर्ष के लिए बन जाना पड़ेगा—तृतीय आश्रित संज्ञा उपवाक्य ('घ' का कर्म। 'कि' योजक)

	उद्देश्य		योजक	विधेय					
उपवाक्य	कर्ता	कर्ता-विस्तार		कर्म	कर्म-विस्तार	पूरक	पूरक-विस्तार	क्रिया	क्रिया-विस्तार
(क)	कैकेयी ने	राजा.... माँ	—	सलाह	मंथरा की	—	—	स्वीकार कर ली	तुरन्त
(ख)	(वह)	—	(और)	—	—	—	—	बोली	—
(ग)	मैं	—	(कि)	—	—	—	—	जाती हूँ	इसी समय राजमहल में
(घ)	(मैं)	—	(तथा)	—	—	—	—	कहती हूँ	वहाँ; पहुँच कर; राम से
(ङ)	तुम्हें	—	(कि)	—	—	—	—	जाना पड़ेगा	14 वर्ष के लिए; वन

26

(जिस प्रकार पद-परिचय/पद-व्याख्या रूपविज्ञान स्तर तक के पठित ज्ञान की परीक्षा तथा व्यावहारिक उपयोग है, उसी प्रकार वाक्य-विग्रह/वाक्य-विश्लेषण या वाक्य-पृथक्करण वाक्य विज्ञान स्तर के पठित ज्ञान की परीक्षा तथा व्यावहारिक उपयोग है। इस प्रकार की प्रस्तुति को अँगरेज़ी भाषा के व्याकरणों के आधार पर ग्रहण करने के कारण भी त्याज्य नहीं मानना चाहिए क्योंकि इस से व्याकरण-अध्येता को अपने ज्ञान के स्तर के बारे में जानकारी मिलती है।)

25

वाक्य-विन्यास

प्रसंग या सन्दर्भ के अनुकूल चयन किए गए शब्दों को व्याकरण-नियमों के अनुरूप पद बना कर उपयुक्त क्रम में रखते हुए तथा उन पदों का परस्पर भाषा-व्यवस्थानुरूप सम्बन्ध बनाए रखने पर ही वाक्य-सिद्धि होती है। इस प्रकार **वाक्य-विन्यास** या वाक्य-रचना पदक्रम तथा पदों के अन्वय (/मेल) की संगुफित प्रक्रिया का नाम है। यद्यपि हिन्दी में पदक्रम का महत्त्व तथा दृढ़ता अँगरेज़ी के समान नहीं है तथापि परिनिष्ठित हिन्दी का पदक्रम निश्चित और स्वाभाविक है। सामान्य बोलचाल में पदक्रम में शिथिलता प्राप्त है। इसी प्रकार कविता तथा अवधारणा के आधार पर भी व्याकरणिक पदक्रम में शिथिलता मिलती है। हिन्दी वाक्य-व्यवस्था में **पदक्रम** (अर्थात् अर्थ तथा पारस्परिक सम्बन्ध के अनुरूप पदों को वाक्य में यथास्थान रखने) के ये स्वरूप प्राप्त हैं—

(1) कर्ता/उद्देश्य + क्रिया, यथा—चिड़िया उड़ी। लड़की नाच रही है। जंगल जलता चला जा रहा है। (2) कर्ता + कर्म/पूरक + क्रिया, यथा—मैं भात खाता हूँ। मैं अध्यापक हूँ। (3) कर्ता + गौण कर्म + मुख्य कर्म + क्रिया, यथा—गुरु जी ने बच्चों को भूगोल पढ़ाया। (4) कर्ता, कर्म, पूरक, क्रिया विशेषक संबंधित शब्द से पूर्व, यथा—तुम्हारे छोटे भाई ने/सभी साथियों को/बड़े प्रेम से जी भर कर/स्वादिष्ट खाना/खिलाया। (विशेषक + कर्ता + विशेषक + गौण कर्म + क्रियाविशेषक + विशेषक + कर्म + समापिका क्रिया)। (5) सम्बन्ध + सम्बन्धी; विशेष्य + विधेय विशेषण/पूरक; उद्देश्य विशेषण + विशेष्य, यथा—यह मेरी पुस्तक है। तुम ने मुझे झूठा बना दिया। उन्हों ने एक श्यामा गाय ख़रीदी है। (6) सिर्फ़ (/साधारणतया/विशेषतः/मुख्यतः/प्रधानता/केवल) + अवधारित शब्द, यथा—कल सिर्फ़ तुम नहीं आए। (7) कर्ता + विशेषक/विधेय पूरक, यथा—गाय भूरी थी लेकिन बछिया काली थी। वे बहुत पहुँचे हुए महात्मा हैं। (8) सर्वनाम कर्ता + विधेय विशेषण/पूरक, यथा—वे पर्याप्त

चतुर हैं। तुम बहुत शैतान हो। (9) समयसूचक + स्थान सूचक + साधन सूचक + उद्देश्यसूचक, यथा—माँ ने कल रात भर जाग कर घर में ही हाथ की मशीन से मेरे लिए यह साड़ी काढ़ी है। (10) न/ नहीं/ मत + क्रिया, यथा—तुम आज घर नहीं जाओगे। उस से ऐसा मत कहना। आप मेरे बारे में ऐसा न सोचें। अवधारण के कारण क्रिया + नहीं/मत भी, यथा—उन्हों ने तुम्हें देखा नहीं, अच्छा रहा। मैं यह घर छोड़ कर जाने की नहीं। अभी उसे जगाना मत। संयुक्त क्रिया होने पर 'न/नहीं/मत' प्रायः; दोनों क्रियाओं के मध्य में, यथा—ऐसी गर्मी में तो मैं सो नहीं सकता। वहाँ तो कोई किसी से बोलता ही न था। तब तक तुम सो मत जाना। (11) सूचनात्मक उत्तर अपेक्षी प्रश्नवाचक सर्वनाम/अव्यय + क्रिया, यथा—ये लोग कौन हैं ? आप का घर कहाँ है ? (12) 'हाँ/नहीं'—उत्तर अपेक्षी 'क्या' वाक्यारम्भ में, यथा—क्या तुम मेरे साथ चल रहे हो ? क्या वहाँ आज ही सभा होगी ? (13) सार्वनामिक विशेषण + संज्ञा, यथा -- वहाँ कौन लोग आए हैं ? पंडाल में कितनी कुर्सियाँ लगाई जानी हैं ? (14) आवेगात्मक/सम्बोधन शब्द वाक्यारम्भ में, यथा—ऐं ! ऐसी बात है ! अरे, आप ! इस समय यहाँ कैसे ? (15) संज्ञा/सर्वनाम/स्थानसूचक + परसर्ग, यथा—श्याम का; हम को; घर के भीतर; यहाँ से कुछ दूर; कल से; दोस्तों के साथ; चम्मच से; खाट पर; गली के अन्दर से; छत पर से; बड़ी नहर में से। (16) धातु + पूर्वकालिक 'कर' (/के) + समापिका क्रिया, यथा—दूध पी कर सो जाओ। घर जा कर क्या करोगे। मैं इस काम को पूरा कर के ही सोऊँगा (17) प्रभावित (/अवधारित) पद + अवधारक, यथा—तुम ही (/भी/तो/ही तो/भी तो) वहाँ खड़े थे। वहाँ से हम घर ही (/भी) गए थे। हम से उन्हों ने पूछा तक नहीं। हम तक से तो उन्हों ने पूछा नहीं (/नहीं पूछा)। (18) यदि/जब/जहाँ/ज्यों ही + आश्रित उपवाक्य ; तो/तब/वहाँ/त्यों ही + प्रधान उपवाक्य, यथा—जब वर्षा होगी, तब हम लोग खेत जोतेंगे। (19) योजक शब्द + अन्तिम योज्य शब्द/उपवाक्य, यथा—राम और लक्ष्मण की-सी जोड़ी। राम, लक्ष्मण और सीता वन को गए थे। वह आएगा और तुम्हें साथ ले जाएगा। (20) आश्रयी शब्द + आश्रित उपवाक्य, यथा—उन्हों ने दुबारा आदेश दिया कि उसे रिहा कर दिया जाए। वह लड़की जो परसों यहाँ आई थी, मेरी ननद की बेटी है। (21) अधिक महत्त्वपूर्ण/ लघु आकारी शब्द द्वन्द्व समास का पूर्व पद, यथा—नर-नारी, दस-बीस, लड़ना-झगड़ना, बातचीत, देखभाल, सोना-चाँदी, राधाकृष्ण, सीताराम, तेरा-मेरा, गोरा-काला, पच्चीस-पचास, उठते-बैठते आदि। (22) अर्थ की दृष्टि से सम्बद्ध पदों में तर्क संगत स्थानिक नैकट्य-अपेक्षा, यथा—? एक चाय का कप लाओ (→चाय का एक कप लाओ) ? उस की ज़बान थोड़ी-सी रिश्वत दे कर बन्द कर दी गई थी (→थोड़ी-सी रिश्वत दे कर उसकी ज़बान बन्द कर दी थी) (23) भाव-तीव्रता या बलाघात युत पद असामान्य क्रम में, यथा—मुझे वहाँ जाने से कोई नहीं रोक सकता→कोई नहीं रोक सकता वहाँ जाने से मुझे/मुझे वहाँ जाने से रोक नहीं सकता

कोई/वहाँ जाने से मुझे कोई रोक नहीं सकता। वह आजकल कुछ भी नहीं करता →आजकल वह करता नहीं कुछ भी/कुछ भी नहीं करता वह आजकल। (24) कविता में पदक्रम प्रायः असामान्य क्रम में, यथा—आ रही हिमालय से पुकार; है उदधि गरजता बार-बार। (25) वाक्य-अनुतान तथा वक्ता की अवधारण/बलाघात-विवक्षा के आधार पर औपचारिक वार्तालाप में कम किन्तु अनौपचारिक वार्तालाप में पदक्रम-परिवर्तन अधिक देखा जाता है। अव्ययों से पदक्रम में अधिक विविधता मिलती है, यथा—मैं आज शाम को ही तुम्हारे पिताजी से तुम्हारे सामने तुम्हारे घर पर मिलूँगा। इस वाक्य को 'आज शाम को ही', 'तुम्हारे सामने', 'तुम्हारे घर पर' पद-बंधों के क्रम में हेर-फेर करते हुए कम से कम 9 प्रकार से बोला (/लिखा) जा सकता है। (26) अवधारण के कारण कर्ता, कर्म, सम्प्रदान, क्रिया का स्थानान्तरण सम्भव है, यथा—तुम्हारे ऊँट को मैं ने नहीं पीटा। ऐसा सोचना तुम्हें शोभा नहीं देता। धिक्कार है ऐसे जीने को। साड़ी है तो कुछ महँगी, पर है बहुत सुन्दर। (27) भेदक+संबंधी शब्दयुत संज्ञार्थक क्रिया, यथा—आप का (इस प्रकार झूठी-सच्ची) बातें बनाना अच्छा नहीं। अब इस घर में उस का (रोज़-रोज़ बिना मतलब) आना-जाना बन्द। (28) स्वीकारात्मक उत्तरापेक्षी प्रश्नवाचक 'न' वाक्यान्त में, यथा—आज तुम वहाँ आओगी न? माँ ठीक हैं न?

(29) हिन्दी भाषा में पदक्रम व्याकरणिक प्रकार्य भी करता है, यथा—(क) संज्ञा पूर्व विशेषण 'विशेषक/उद्देश्य विशेषण' होता है, जब कि संज्ञा पश्च विशेषण 'विधेय विशेषण/विधेय का नामिक अंश' होता है, यथा—काली गाय रस्सी तोड़ कर भाग गई। वह गाय काली है। (ख) अविकारी रूप में प्रयुक्त उद्देश्य, नामिक अंश होने पर उद्देश्य+नामिक अंश का क्रम रहता है, यथा—भारत की राजधानी दिल्ली है—दिल्ली भारत की राजधानी है। राष्ट्र की सेवा करना हमारा कर्तव्य है—हमारा कर्तव्य राष्ट्र की सेवा करना है। (ग) अविकारी रूप में प्रयुक्त उद्देश्य, प्रधान कर्म होने पर उद्देश्य+प्रधान कर्म का क्रम रहता है, यथा—इस प्रकार की स्थिति सदैव असन्तोष उत्पन्न करती है—असन्तोष सदैव इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करता है।

(30) सामान्यतः एक ही वर्ग/जाति के एकाधिक अव्यय साथ-साथ आने पर बृहद्वाची' लघुवाची के क्रम में आते हैं, यथा—पिता जी ने कल शाम को चार बजे बैठक की अलमारी के ऊपरी खाने में से माँ के लिए बड़ी सावधानी के साथ दवा की शीशी निकाल कर दी थी।

अन्विति को अन्वय भी कहा जाता है। अन्विति या अन्वय का अर्थ है—पदों का पारस्परिक मेल। लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल, वाच्य का अनुमेलन भी वाक्य-रचना का एक मुख्य पक्ष है। अन्विति दो स्तरों पर मिलती है—1. पदबन्ध स्तर पर 2. वाक्य स्तर पर। दोनों स्तरों पर मिला कर यह अन्विति चार रूपों में मिलती

है—1. संबंध तथा संबंधी की अन्विति 2. विशेष्य तथा विशेषण की अन्विति 3. संज्ञा तथा सर्वनाम की अन्विति 4. कर्ता, कर्म, पूरक के साथ क्रिया की अन्विति।

पदबन्ध स्तरीय अन्विति दो या अधिक पदों के मध्य लिंग, वचन, कारक संबंधी मेल के रूप में दिखाई देती है, यथा—काला घोड़ा; काली घोड़ी/घोड़ियाँ; काले घोड़े; काले घोड़े (/घोड़ों) पर; काली घोड़ी (/घोड़ियों) को (विशेषण-विशेष्य अन्विति); चोर (/उस) का पीछा—चोरों (/उन) का पीछा (संज्ञा तथा स्थनापन्न सर्वनाम-अन्विति); दौड़ता आ रहा था—दौड़ती आ रही थी; सो गया—सो गई (मुख्य क्रिया तथा सहायक/रंजक क्रिया-अन्विति)।

वाक्यस्तरीय अन्विति कई व्याकरणिक कोटियों के आधार पर वाक्य के विभिन्न घटकों के मध्य मिलती है, यथा—(1) हिन्दी में स्त्रीलिंग एक निश्चित व्याकरणिक कोटि है। 'पुल्लिग' स्त्रीलिंग का अभाव है, अर्थात् पुल्लिग=-स्त्रीलिंग। संशयात्मक स्थिति में स्त्रीलिंग की अपेक्षा पुल्लिग प्रमुखता प्राप्त प्रयोग है। निश्चित रूप से स्त्रीलिंग का बोध करानेवाले संदर्भों में ही स्त्रीलिंग क्रिया आती है, अन्यथा पुल्लिग, यथा—अन्दर कोई गा रहा है (गायक का लिंग-अज्ञात), अन्दर कोई गा रही है (गानेवाली स्त्री ही है—का निश्चित ज्ञान)। दूध में कुछ पड़ा था (वस्तु का लिंग-अज्ञात), दूध में मक्खी (/कोई चीज़/चीनी) पड़ी है (वस्तु का स्त्रीलिंग निश्चित रूप से ज्ञात)। कमरे में कौन बैठी है? (बैठे होनेवाले के बारे में स्त्री होने का निश्चित ज्ञान होना, उस के नामादि के बारे में जानकारी न होना), कमरे में कौन बैठा है? (बैठे होनेवाले व्यक्ति के लिंग के बारे में, नामादि के बारे में अज्ञान)। माँ, कोई आया है (पुरुष/स्त्री); बेटा! देखना, कौन आया है (पुरुष/स्त्री); बेटा देखना, कौन आई है (+स्त्री)? (2) स्त्रीलिंग के अभाव में, निर्लिंगी संदर्भों में क्रिया पुल्लिग में रहती है, यथा—माँ (/पिता जी) से खाया नहीं जा रहा है (निर्लिंगी संदर्भ)। माँ (/पिता जी) से इतना कड़ा लड्डू खाया नहीं जा रहा है (लड्डू पु०)। माँ (/पिता जी) से इतनी तेज़ कॉफ़ी पी नहीं गई (कॉफ़ी स्त्री०)। अन्य निर्लिंगी संदर्भ—सुना (/कहा/देखा) जाता है कि····; लड़कों (/लड़के/लड़की/लड़कियों) ने देखा (/सुना/कहा/पूछा/सोचा) कि····; मालूम होता था कि····; लग रहा था कि····; आप को आना (/जाना/पढ़ना/सोना/आराम करना) ही होगा (3) परसर्ग-रहित कर्ता-लिंग, वचन, पुरुष ‖ समापिका क्रिया-लिंग, वचन, पुरुष यथा—माँ खाना बना रही है। तुम कब लौटोगे (/लौटोगी)? पिता जी गिटार बजा सकते हैं। घंटी बज चुकी है। राष्ट्रपति अमेरिका गए हैं। गाँव से नौकर (नौकरानी) भी बुला लिया गया है (/ली गई है)। बच्चा (/बच्ची) कहाँ है? बच्चे (/बच्चियाँ) कहाँ हैं? लड़का/लड़की (/लड़के/लड़कियाँ) जाए (/जाएँ)। मेले में अधिक शोर (/भीड़) नहीं था (/थी)। (4) भिन्न लिंग, वचन तथा पुरुष के कर्ता और कर्ता-पूरक होने पर सामान्यतः उद्देश्य के लिंग, वचन, पुरुष ‖ समापिका क्रिया के लिंग, वचन तथा पुरुष, यथा—

बेटी पराये घर का धन मानी जाती है। काले कपड़े शोक (/विरोध) के सूचक माने जाते हैं। प्राचीन भारत के राजाओं की आपसी फूट ही देश की गुलामी का कारण हुई। (5) उद्देश्यपूर्ति का अर्थ प्रमुख होने पर समापिका क्रिया के लिंग, वचन, पुरुष उद्देश्यपूर्ति के लिंग, वचन, पुरुषवत्, यथा—बात-बात पर झूठ बोलना तुम्हारी आदत बन गई है। महमूद गज़नवी के आक्रमणों का कारण मन्दिरों की अपार दौलत थी। बंगलूर के सामान्य ग्लास की चाय तुम्हारा तो एक घूँट होगा। (मानक दृष्टि से उद्देश्य और उद्देश्यपूर्ति के लिंग, वचन यथासम्भव समान रखे जाने चाहिए, यथा—क्या राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के हाथ के खिलौने कहे जा सकते हैं। (6) सर्वनाम का वचन तथा पुरुष उस संज्ञा के अनुरूप होता है जिस के स्थान पर सर्वनाम का प्रयोग किया गया है, यथा—रेखा ने आश्वासन दिया कि यह कार्य मैं पूरा करूँगी। गुजरात से भाई साहब लौटे तो उन के पास कुछ भी नहीं था। (7) 'हम, तुम, आप, वे, ये' का प्रयोग एक व्यक्ति के लिए होने पर भी इन के साथ आनेवाली क्रिया बहुवचन की रहती है, यथा—मोहन! थोड़ी देर पहले तुम कहाँ थे? शकुन्तला ने कहा—हम से अब यह विरह-वेदना नहीं सही जा रही है। (8) कारक चिह्न युत कर्ता होने पर क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म के लिंग, वचन तथा पुरुष के अनुरूप रहते हैं, यथा—महमूद (/हसीना/लड़के/लड़कियों/मैं/तुम/हम/लड़कों) ने फल नहीं तोड़ा (/तोड़े)। मैं (/हम/बच्ची/बच्चे/बच्चियों/बच्चों) ने जलेबी खाई है। (/जलेबियाँ खाई हैं)। (9) कर्ता तथा कर्म कारक चिह्न युत होने पर क्रिया सदैव पुल्लिग, अन्य पुरुष एवं एकवचन में रहती है, यथा—लोगों (/पुलिस/औरतों) ने चोर (/डाकुओं) को पकड़ लिया था। (10) समानार्थी एकाधिक एकवचन के कारक चिह्न-रहित कर्ता होने पर क्रिया एकवचन में रहती है, यथा—गंगा की बाढ़ में इस बार उस का घर-बार और माल-असबाव (सब कुछ) बह गया। (11) कारक चिह्न-रहित एकाधिक कर्ता होने पर क्रिया बहुवचन में रहती है, यथा—उर्मिला और सीता आ चुकी हैं। लड़का और लड़की (/लड़की और लड़का) खेल रहे हैं। हरी और मोहन अभी-अभी यहीं थे। प्लेट और प्याला कहाँ रखे हैं? (12) कारक चिह्न-रहित एकाधिक भिन्न लिंगी कर्ता/पूरक होने पर क्रिया का लिंग प्रायः पुल्लिग रहता है; संख्यावाची शब्द युत होने पर अन्तिम कर्ता के लिंग के अनुरूप रहता है, यथा—खेत में भैंस और भैंसा (/भैंसा और भैंस) चर रहे हैं। मेरे पास एक शाल और एक रजाई थी। कल मेरे दामाद और बेटी आनेवाले हैं। कल मेरे दामाद और उन के बड़े भाई की (एक) बेटी आनेवाली है (/····बेटी दोनों आनेवाले हैं)। (निकट-वर्ती स्त्रीलिंग कर्ता आदि होने पर उत्पन्न खटक को मिटाने के लिए 'आदि, सब, सभी, दोनों' शब्दों का समायोजन उचित रहता है)। (13) एकाधिक भिन्न पुरुषवाले कर्ता सामान्यतः अन्य पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष के क्रम में रहते हैं। क्रिया का पुरुष प्रायः अन्तिम कर्ता के पुरुष के अनुरूप रहता है, यथा—वह और आप (दोनों) यहीं आ जाएँ। आओ, वह, तुम और मैं (सब मिल कर) यह काम पूरा

करें। तू और वह (/वह और तू) कल आना। तुम और वे (/वे और तुम) कब जाओगे? वह और मैं साथ-साथ पढ़ी हूँ। (14) विकारी (अपवादरहित आकारान्त) विशेषण के लिंग-वचन विशेष्य के ऋजु/तिर्यक् (विकृत) रूप के अनुरूप रहते हैं, यथा—काला बकरा, काले बकरे को, दस काले बकरे, दस काले बकरों से, काली बकरी, पाँच काली बकरियाँ, काली बकरी/बकरियों ने। नौवें दिन, बारहवीं रात को। (15) एकाधिक विशेष्यों के विशेषण के लिंग-वचन निकटवर्ती विशेष्य के लिंग-वचन के अनुरूप रहते हैं, यथा—अपना माल और ज़मीन-ज़ायदाद; अपने मान-सम्मान और गौरव के लिए; पुराना फ़र्नीचर और किताबें; अपनी धन-सम्पत्ति और मान-अपमान का····। (16) एकाधिक विकारी विशेषण अपने विशेष्य के लिंग-वचन के अनुरूप लिंग-वचनवाले रहते हैं, यथा—सस्ता और अच्छा नाश्ता; मैले-कुचैले और फटे-पुराने कपड़े। (17) विधेय विशेषणों के लिंग-वचन अपने विशेष्य के लिंग-वचन के अनुरूप रहते हैं, यथा—गाय और बकरी काली हैं। ये चद्दरें महँगे होंगे या सस्ते? ये सब चारपाइयाँ और पलंग पुराने हैं। वे पंखे और मेजें पुरानी थीं। (18) कारक चिह्नयुत कर्म होने पर विधेय विशेषण सदैव पुल्लिंग, एकवचन में रहता है, यथा—इन किताबों (/काग़ज़ों) को कौन गन्दा करता है? (19) का/की/के का लिंग-वचन, कारकीय रूप परवर्ती संज्ञा के लिंग-वचन और कारकीय रूप के अनुसार रहता है, यथा—सेठ की कोठी; चरवाहे की बकरियाँ; मोहन का कुत्ता। सेठ की कोठी में; चरवाहे की बकरियों को; मोहन के कुत्ते ने; मोहन के कुत्तों ने; मोहन के कुत्ते-कुतियों से बच कर रहना। (20) एकाधिक सम्बन्धी पद होने पर सम्बन्धवाची विशेषण निकटवर्ती सम्बन्धी के अनुरूप रहता है, यथा—हबीब की माँ और (उस के) अब्बा साथ-साथ जा रहे थे।

वाक्य-विन्यास में पदक्रम तथा अन्विति के अतिरिक्त नियमन या नियन्त्रण अथवा अभिशासन का भी प्रभाव पड़ता है। वाक्य में **नियमन** (/नियन्त्रण/अभिशासन) शब्द-चयन, उस की स्थिति तथा रूपावली को निर्धारित करता है। हिन्दी वाक्य-रचना में नियमन की प्रक्रिया के ये रूप मिलते हैं—(1) विकारी पुल्लिंग -आ→-ए/-ओं, यथा—लड़के ने चोरी नहीं की। लड़कों ने चोरी नहीं की। (2) कर्ता + ने→क्रिया सकर्मक/उद्वेगी, भूतकाल, यथा—बच्चों ने पाठ याद नहीं किया। मैं ने नहीं छींका। (3) अनिवार्यता/बाध्यता/आवश्यकबोधक क्रिया→कर्ता + को, यथा—मुझे जाना है (/चाहिए/पड़ा/होगा) (4) लड़/भिड़/टकरा/मिल/जूझ/कह/पूछ→व्यक्ति/वस्तु + से, यथा—वह शेर (/मौत/स्वयं से दुगने पहलवान) से लड़ा था। तू मुझ से क्यों भिड़ता है। बस से बस टकरा गई। मैं तुम्हारे पिताजी से मिला था। हमें संकटों से जूझना ही होगा। वह तुम से क्या कह रही थी? यह तुम मुझ से क्यों पूछ रहे हो? (5) नियन्त्रण क्रिया-आश्रित, नाम-आश्रित होता है, यथा—तुम किसे ढूँढ़ (/खोज/देख/पूछ/छू····) रहे हो? सब पर जादू (करना), गालों पर लाली (छाना)।

अन्वित होनेवाले घटकों की व्याकरणिक कोटियाँ समान होती हैं किन्तु

नियन्त्रक/नियामक तथा नियन्त्रित/नियमित घटकों की व्याकरणिक कोटियाँ भिन्न होती हैं, यथा—काला कुत्ता भौंक रहा है—काली कुतिया भौंक रही है (लिंग-अन्विति)। वे तुम्हें भेंट देना चाहते हैं—वे तुम से भेंट करना चाहते हैं (भेंट देना→तुम्हें, भेंट करना→तुम से नियन्त्रण/नियमन)।

भाषा में कोई वाक्य बिना **अनुतान** के उच्चरित नहीं होता अर्थात् प्रत्येक वाक्य के उच्चारण के समय कोई-न-कोई अनुतान अवश्य उपस्थित रहती है। वाक्य-स्तर पर अनुतान-परिवर्तन से वाक्य स्तरीय व्याकरणिक अर्थ में परिवर्तन हो सकता है, यथा—वे चले गए ? (प्रश्नसूचक)। वे चले गए ! (विस्मयसूचक)। वे चले गए। (सूचनात्मक)। वाक्य के पदों में सुर की स्थिति चार प्रकार की हो सकती है—1. निम्न 2. सामान्य 3. उच्च 4. उच्चतर। वाक्य-लेखन में पदों के सुरों की स्थिति इन अंकों से प्रदर्शित की जा सकती है। वाक्य-समापक सुर-स्थिति को लेखन में ↑ (आरोही), ↓ (अवरोही), → (सामान्य) तीरों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है। आरोही समापक सुर से प्राय: प्रश्न, आश्चर्य, अनुरोध, व्यंग्य व्यक्त होता है। अवरोही समापक सुर से प्राय: कथन-समाप्ति, आज्ञा, क्रोध व्यक्त होता है। सामान्य समापक सुर से प्राय: कथन की अपूर्णता व्यक्त होता है। (अध्याय 6 में 'अनुतान' के बारे में विस्तार से लिखा जा चुका है)।

भाषा या वाक्य शब्दों के चयन तथा शृंखला का व्यक्त रूप है। अपेक्षित अर्थबोध के लिए वाक्य के प्रत्येक प्रकार्य स्थान पर उपयुक्त/सन्दर्भोचित अर्थवाले तथा उपयुक्त शब्द-वर्ग के शब्द का **चयन** कर उसे शृंखलाबद्ध करना (/भाषा की संरचना व्यवस्था के अनुरूप रूप देना) चाहिए। वाक्य-विन्यास (/वाक्य रचना-प्रक्रिया) के समय चयन तथा शृंखलाबन्धन के बारे में सतर्कता रखना अपरिहार्य है, यथा—(क) ? चल दी रेल हरी झंडी गार्ड के ही दिखाते (ख) ? रेल के हरी झंडी दिखाते ही गार्ड चल दी (ग) गार्ड के हरी झंडी दिखाते ही रेल चल दी। (क) वाक्य में प्रकार्य-स्थान की दृष्टि से पदक्रम ठीक नहीं है अर्थात् सही प्रकार्य स्थान पर उपयुक्त पदों का प्रयोग नहीं किया गया है, अत: यह हिन्दी का सही वाक्य नहीं है। (ख) वाक्य में 'रेल' के साथ' 'हरी झंडी दिखाने' की संगति नहीं बैठ पा रही है, अत: यह वाक्य भी हिन्दी का सही वाक्य नहीं है। (ग) वाक्य में सही प्रकार्य स्थान पर उपयुक्त पदों को रखने से पूर्व संदर्भोचित शब्दों का चयन किया जा चुका है, अर्थात् 'गार्ड' के साथ 'हरी झंडी दिखाने' और 'रेल' के साथ 'चल देने' की संगति बैठ रही है, अत: **चयन और शृंखला** की दृष्टि से यह वाक्य हिन्दी भाषा में स्वीकृत वाक्य कहा जा सकता है।

वाक्य-विन्यास की दृष्टि से कृदन्तों के कुछ प्रयोग—हिन्दी की वाक्य-रचना में कृदन्तों का विशेष महत्त्व है क्योंकि कृदन्त किसी भी काल-प्रसार में प्रकट होने वाले व्यक्ति/वस्तु के लक्षण के रूप में समापिका क्रिया की भाँति व्यापार, अवस्था या प्रक्रिया को प्रकट करते हैं। कर्तृवाच्यात्मक कृदन्त अकर्मक तथा सकर्मक क्रियाओं

से बनते हैं, जब कि कर्मवाच्यात्मक कृदन्त सकर्मक क्रियाओं से बनते हैं। रूप-प्रक्रिया के आधार पर कृदन्त भी विकारी तथा अविकारी (4+5) होते हैं। इन दोनों प्रकार के कृदन्तों के वाक्य-प्रयोगों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(1) **नामार्थक कृदन्त-प्रयोग**—(क) सामान्यतः नामार्थक कृदन्त या संज्ञार्थक क्रिया का प्रयोग भाववाचक संज्ञावत् होने के कारण बहुवचन में नहीं होता, यथा—कहने और करने में बहुत अन्तर होता है। (ख) नामार्थक कृदन्त के उद्देश्य के बाद सामान्यतः 'का' आता है, यथा—आप का यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं है। मुझे तुम्हारा वहाँ रोज़-रोज़ जाना अच्छा नहीं लगता। बार-बार बिजली (±का) आना-जाना परेशानी पैदा करता है। (ग) दो समकालीन भूतकालिक क्रियाओं में पहली क्रिया 'था/हुआ' के साथ नामार्थक कृदन्त के रूप में आती है, यथा—तुम्हारा यहाँ आना हुआ (/पहुँचना हुआ/पहुँचना था) कि बिजली आ गई। (घ) नामार्थक कृदन्त से पूर्व विशेषण तथा बाद में परसर्ग आ सकता है, यथा—दिलकश नाचने के लिए उस की बहुत वाहवाही हुई। (ङ) समापिका क्रियाओं के समान सकर्मक नामार्थक कृदन्त के साथ उस का कर्म, अपूर्ण संज्ञार्थक क्रिया के साथ उस का पूरक आ सकता है, यथा—इतने सारे नोट गिनने में बहुत समय लगेगा। रूढ़िवादी लोग पत्नी का पति के साथ चिता में भस्म होना तो पुण्य मानते हैं, किन्तु पति का पत्नी के साथ मर जाना अपवित्र कार्य मानते हैं। सेनानायक के अचानक राष्ट्रपति बन जाने से प्रजा आश्चर्यचकित रह गई। (च) विधेय नामार्थक कृदन्त का प्राणिवाची उद्देश्य -ए/ को युत तथा अप्राणिवाची उद्देश्य ϕ युत रहता है, यथा – क्या तुम्हें वहाँ अभी जाना है। हम सभी को अपने-अपने कर्तव्य का पालन करना (±चाहिए) था। इस प्रकार के रूढ़िवादी विचारों से क्या लाभ मिलना है ? (छ) विधेय विशेषण के रूप में नामार्थक कृदन्त लिंग, वचन में संबंधित शब्द का अनुगमन करता है, यथा—तुम्हें यह दूध (/दवा) पीना (/पीनी) ही पड़ेगा (/पड़ेगी)। (ज) निमित्त या प्रयोजन के अर्थ में नामार्थक कृदन्त के पश्चात् ±को आता है, यथा— तुम्हें स्कूल पहुँचाने कौन जाता है ? ये बच्चे आप से कुछ माँगने (±को) आए हैं। (झ) समान धातु से निर्मित समापिका तथा नामार्थक कृदन्त + को वाले वाक्य इच्छा या वैशिष्ट्य सूचक होते हैं, यथा—गाने को तो मैं गा दूँ, लेकिन आप को उतना अच्छा नहीं लगेगा। कहने को तो वह कह सकता है, किन्तु बाद में सब कुछ आप को सँभालना होगा। (ञ) √ हो या √ हृ से बनी समापिका क्रिया से पूर्व का नामार्थक कृदन्त + को 'तत्परता सूचक' होता है, यथा—आँधी आने को है। ज्यों ही वह डूबने को हुई, नायक उसे बचाने पहुँच गया। (ट) विधेय रूप में प्रयुक्त नामार्थककृदन्त + का/की/के + नहीं 'निश्चय सूचक' होता है, यथा—वे अब यहाँ से उठने के (/की) नहीं। (ठ) शारीरिक/मानसिक दशा की सूचना 'न'+ नामार्थक कृदन्त (उद्देश्यवत् प्रयुक्त) से, यथा—उन के विरह में मुझे न खाना, न पीना और न किसी से कुछ कहना, न किसी से कुछ सुनना ही अच्छा लगने लग गया है।

(2) **वर्तमानकालिक कृदन्त-प्रयोग**—(क) विधेय रूप में कर्ता/कर्म का विशेषक, यथा—डकैत भागते हुए भी कुछ गल्ला ले गए। घुड़सवार घोड़े को दौड़ाता ला रहा है। (ख) विशेषणवत्, यथा—जाते समय, लौटते वक्त, जीते जी, मरती बेर बहता पानी, चलती चक्की। (ग) संज्ञावत्, यथा—भागतों के पीछे भागना; डूबते को तिनके का सहारा (घ) विधेय रूप में विशेष्यनिष्ठ हो कर भी क्रिया के विशेषक रूप में, यथा—वह औरत हथिनी के समान झूमती हुई चलती है। चोर लड़खड़ाते हुए गिर पड़ा। बच्चा रोते-रोते सो गया। हम रोज़ आलू खाते-खाते ऊब गए हैं।

(3) **भूतकालिक कृदन्त-प्रयोग**—(क) उद्देश्य विशेषणवत्, यथा—मरा हुआ सड़क पर पड़ा है। तुम पेड़ से गिरे हुए फल ही लोगे, तोड़ोगे नहीं। (ख) विधेय-विशेषणवत्, यथा—कमरे में एक ओर डबल बैड बिछाया गया (/हुआ) है। बच्चों ने उन वृक्षों पर खूब आम लगे हुए देखे। बदमाश को देख कर लड़की घबराई हुई भागी। (ग) स्व-कर्म के बाद कर्ता आदि के विशेषक रूप में, यथा—सज़ा पाया हुआ चोर भाग गया। काम सीखे (सिखाए) हुए नौकर को क्यों निकाल दिया? (घ) कभी-कभी संज्ञावत् यथा—जले पर नमक छिड़कना। किए का फल तो भोगना ही पड़ेगा। मरे को क्या मारना। बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय। माली उसे बिना पीटे न छोड़ता (ङ) विशेष्य संज्ञा से संबंधित संबंध कारकीय शब्द के बाद, यथा—मेरी लिखी हुई व्याकरण की पुस्तकें; घर से बने हुए देशी घी के लड्डू; बनावटी रेशम का बना (हुआ) चटकदार कपड़ा।

(4) **कर्तृवाचक कृदन्त-प्रयोग**—(क) संज्ञा/विशेषणवत्, यथा—किसी मन्त्र जाननेवाले को बुलाना पड़ेगा। आजकल झूठ बोलनेवाले लोग प्रायः अन्य लोगों को उल्लू बना देते हैं। जल्दी करो, गाड़ी चलनेवाली है। (ख) कर्म/पूरक के साथ, यथा—इधर कोई कपड़े रँगनेवाला नहीं है। झूठ को सच सिद्ध करनेवालों की कमी नहीं है। बड़ा बननेवाला तुम-जैसा निकम्मा नहीं होता।

(5) **तात्कालिक कृदन्त-प्रयोग**—(क) समापिका क्रिया के साथ होनेवाली घटना का सूचक, यथा—अँधेरा होते ही मच्छर भिनभिनाने लगे। अध्यापक के आते ही छात्र खड़े हो गए। (ख) पुनरुक्ति से काल-अवस्थिति बोधन, यथा—मेज़ पर से घड़ी देखते ही देखते लोप हो गई। ज़रा-सी बात को सोचते ही सोचते तुम ने घंटों लगा दिए। (ग) कृदन्त का कर्ता कभी-कभी समापिका क्रिया का भी कर्ता, यथा—मैनेजर के आते ही सब लोग चुप हो गए। मैनेजर ने आते ही सब लोगों को चुप कर दिया।

(6) **मध्यकालिक कृदन्त-प्रयोग**—(क) कृदन्तीय क्रिया के होने के मध्य में ही समापिका क्रिया के हो जाने या हो सकने की सूचना से नित्यता या अतिशयता की अभिव्यक्ति, यथा—बातें करते-करते पिता जी की साँस रुक गई। बच्चा डरते-डरते नई माँ के पास पहुँचा। बच्ची बैठे-बैठे सो गई। पीठ पर बच्चे को लादे-लादे

वे खट-खट पहाड़ों पर चढ़ जाती हैं। (ख) कभी-कभी वाक्यारम्भ में, यथा—होते-होते सब काम हो ही गए। चलते-चलते हमें एक सुनसान मन्दिर मिला।

(7) **पूर्वकालिक कृदन्त-प्रयोग**—(क) वाक्य के कर्ता या अन्य कारक से संबंध, यथा—साँप को देख कर बच्चा डर गया। माँ को देख कर बच्चे का मन खुश हो गया। (ख) कर्मवाच्य समापिका क्रिया होने पर भी कृदन्त कर्तृवाच्य का ही, यथा—जंगल काट कर खेत बना दिए गए हैं। गुलामों को पकड़ कर बादशाह के सामने हाज़िर किया गया। (ग) मुख्य क्रिया के कर्ता से भिन्न कृदन्तीय कर्ता, यथा—दस बज कर पच्चीस मिनट हो गए हैं। इस व्यापार में खर्च निकाल कर पूरे पाँच सौ रुपये बचेंगे। (घ) कभी-कभी स्वतन्त्र कर्ता का लोप भी, यथा—आगे जा कर (/चल कर) एक ऊँट दिखाई दिया। सब मिला कर मेरे पास कोई पाँच हज़ार रुपये होंगे। समय पा कर तीनों रानियाँ गर्भवती हुईं। (ङ) समापिका क्रिया का अगले वाक्य में कृदन्तीय प्रयोग, यथा—तुम घोड़े पर बैठो और बैठ कर उसे एड़ लगाओ। नली में हो कर द्रव बाहर निकलता है और बाहर निकल कर पत्थर पर जमता जाता है। (च) 'ले कर' से काल, संख्या, अवस्था तथा स्थान के आरम्भ की सूचना, यथा—दोपहर से ले कर रात तक; सौ से ले कर हज़ार तक; निर्धन से ले कर धनी तक; द्वारका से ले कर प्राग्ज्योतिष तक। (छ) 'बढ़, कर, हट, हो' के कृदन्तीय रूपों के विशिष्ट अर्थ, यथा—भोजन से बढ़ कर भोजन बनानेवाली की तारीफ़ की जानी चाहिए (बढ़ कर=अधिक विशेषण)। उन्हें राब साहब करके लोग जानते हैं (कर के=नाम से संज्ञा)। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान का भवन मुख्य सड़क से कुछ हट कर है (हट कर=दूर स्थानसूचक अव्यय)। तुम ब्राह्मण हो कर अंडे खाते हो (हो कर=होते हुए/होने पर भी); यह सड़क बंगलूर हो कर केरल जाती है (हो कर=होती हुई/से)।

(8) **पूर्ण कृदन्त-प्रयोग**—(क) समापिका क्रिया तथा कृदन्तीय क्रिया के कर्ता भिन्न-भिन्न, यथा—भारत को राजनैतिक आज़ादी मिले इतने वर्ष बीत गए, किन्तु अभी तक आर्थिक आज़ादी नहीं मिल पाई है। हमें रात रहे ही यहाँ से बाहर निकल जाना है। (ख) समापिका क्रिया तथा उद्देश्य-दशा सूचना, यथा—एक कुत्ता मुँह में हड्डी का टुकड़ा दबाए नदी के किनारे जा रहा था। एक साधु शरीर पर भभूत पोते, एड़ी तक जटा लटकाए और हाथ में त्रिशूल लिए चला जा रहा था। (ग) कभी-कभी कृदन्तीय क्रिया का कर्म से भी संबंध, यथा—माँ ने बेटे को हथकड़ियों में जकड़े देखा (हथकड़ियों में जकड़े माँ ने बेटे को देखा—कर्ता से संबंध)। बेटे ने माँ को सिर झुकाए देखा (सिर झुकाए बेटे ने माँ को देखा—कर्ता से संबंध)। (घ) कृदन्तीय कर्ता प्रसंगानुसार विभिन्न कारकों में प्रयुक्त, यथा—मुझे आगरा छोड़े कई वर्ष हो गए। इस निकम्मे के मरे क्यों रोना-धोना? (ङ) 'बिना' युत प्रयोग, यथा—बिना उन के आए (/पहुँचे/देखे) हम यह निर्णय कैसे ले सकते हैं?

(9) **अपूर्ण कृदन्त प्रयोग**—(क) समापिका क्रिया तथा कृदन्तीय क्रिया के कर्ता भिन्न-भिन्न, यथा—मेरे रहते कोई तुम्हारी ओर आँख भी नहीं उठा सकता। मुझे यहाँ रहते दो वर्ष हो गए। (ख) कर्ता, कर्म के बाद आई कृदन्तीय क्रिया क्रियाविशेषण के रूप में, यथा—मैं ने तुम्हारे दोनों बच्चों को स्कूल से लौटते हुए देखा था। मैं बहुत देर से तुझे बड़बड़ाते हुए सुन रहा हूँ। (ग) विरोध-सूचना के लिए 'भी' का प्रयोग, यथा—रोज़ पूजा-पाठ करते हुए भी वह बहुत बेईमान है। बहू मरते-मरते भी हमें जेल जाने से बचा गई। (घ) कृदन्तीय कर्ता प्रसंगानुसार विभिन्न कारकों में प्रयुक्त, यथा—मुझे यह सूचना देते (हुए) खुशी हो रही है। शाम होते यह काम खत्म हो जाना चाहिए। तुम्हारे होते (/रहते) मुझे क्या चिन्ता! (ङ) पुं० बहु० वर्तमानकालिक कृदन्तीय रूप तथा अपूर्ण कृदन्तीय रूप समान होते हुए भी भिन्न अर्थसूचक, यथा—लड़के पिचकारियों से रंग फेंकते जा रहे थे (अपूर्ण०); पिचकारियों से रंग फेंकते लड़कों को पुलिस ने पकड़ लिया।

26
वाक्य-परिवर्तन

वक्ता (/लेखक) अपनी बात/कथ्य को आवश्यकतानुसार एक से अधिक ढंग से व्यक्त कर (कह/लिख) सकता है, अत: वाक्य भी तदनुसार एक प्रकार से दूसरे प्रकार में परिवर्तित किए जा सकते हैं। वाक्य-परिवर्तन या वाक्यान्तरण में इस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि वक्ता/लेखक को मूल वाक्य में जो अर्थ अभिप्रेत/इष्ट है, वही अर्थ परिवर्तित वाक्य में भी रहे। हिन्दी में वाक्यान्तरण या वाक्य-परिवर्तन के कई रूप प्रचलित हैं, यथा—

(1) **विधानात्मक→नकारात्मक / नकारात्मक → विधानात्मक**, यथा—मैं ने सारे इलाज कर लिए→मैं ने कोई इलाज (बाक़ी) नहीं छोड़ा। वह अच्छी औरत नहीं है→वह बुरी औरत है। (2) **निश्चयात्मक→प्रश्नात्मक/प्रश्नात्मक→निश्चयात्मक**, यथा—मैं कल नहीं जाऊँगा→मैं कल जा कर क्या करूँगा? मोहनदास करमचन्द गांधी का नाम किस ने नहीं सुना?→मोहनदास करमचन्द गांधी का नाम सब ने सुना है। (3) **सामान्य→विस्मयादिबोधक/विस्मयादिबोधक→सामान्य**, यथा—प्रकृति! तू बहुत ही क्रूर है→प्रकृति! तू इतनी क्रूर! क्या ही मनमोहक दृश्य है!→बहुत ही मनमोहक दृश्य है। (4) **सरल→मिश्र/मिश्र→सरल**, यथा—अच्छे बच्चे ऊधमी नहीं होते→जो बच्चे अच्छे होते हैं, वे ऊधमी नहीं होते। तुम दिखावे के लिए भजन करते हो→तुम इसलिए भजन करते हो कि कोई देखे। उस महिला ने यीशू से कहा कि मैं निर्दोष हूँ—उस महिला ने (यीशू के समक्ष) स्वयं को निर्दोष बताया (/कहा)। जो लोग ईमानदारी, निष्ठा तथा परिश्रम से कार्य करते हैं, वे निश्चय ही सफल हो जाते हैं→ईमानदारी, निष्ठा तथा परिश्रम से कार्य करनेवाले लोग निश्चय ही सफल हो जाते हैं। (5) **सरल→संयुक्त/संयुक्त→सरल**, यथा—थोड़ी मोटी होने पर भी वह सुन्दर है→वह थोड़ी मोटी तो है, पर है सुन्दर। सूर्य निकलते ही तारे छिप जाते हैं→सूर्य निकला और तारे छिपे। शाम होने लगी और किसान घरों की ओर जाने लगे→शाम होते ही किसान घरों की ओर जाने लगे। वह दौड़ी-दौड़ी आई और माँ के गले से लटक गई→वह दौड़ते हुए आ कर माँ के गले से लटक

गई। (6) **मिश्र→संयुक्त/संयुक्त→मिश्र,** यथा—ज्यों ही हम स्टेशन (पर) पहुँचे, त्यों ही गाड़ी ने सीटी दे दी→हम स्टेशन पहुँचे, और गाड़ी ने तुरन्त सीटी दे दी। जैसा मैं सोचता था, वैसा ही हुआ→वही मैं सोचता था और वही हुआ। तुम ने दहेज में पैसा चाहा था और वह तुम्हें मिल गया→तुम दहेज में जितना (/जो) पैसा चाहते थे, उतना (/वह) तुम्हें मिल गया। अधिक से अधिक अध्ययन करो और विद्वान् बनो→यदि अधिक से अधिक अध्ययन करोगे तो विद्वान् बनोगे। (7) **शब्द-भेद परिवर्तन,** यथा—क्या आप ने इन पुस्तकों का चयन किया है→क्या आप ने ये पुस्तकें चुनी हैं। धूम्रपान करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है→धूम्रपान से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। (8) **विशेषण की तुलनावस्था का अन्तरण,** यथा—विश्व में लन्दन सब से बड़ा नगर है→विश्व में लन्दन से बड़ा कोई नगर नहीं है। हमारे नगर में यह सब से लम्बी सड़क है→हमारे नगर में इस सड़क से लम्बी कोई सड़क नहीं है। वह मेज़ सब मेज़ों से छोटी है→इस मेज़ से और सब मेज़ें बड़ी हैं। (9) **वाक्य-संश्लेषण** (संश्लेषण = मिलाना। एक से अधिक सरल वाक्यों को मिला कर एक सरल/मिश्र/संयुक्त वाक्य बनाने की प्रक्रिया से वाक्यांतरण किया जा सकता है), यथा—मैं ने स्नान किया + मैं ने भोजन किया→मैं ने स्नान करने के बाद (/कर के) भोजन किया। छुट्टी की घंटी बजी + सब छात्रों ने अपनी कॉपी-किताबें उठाईं + वे एक-एक कर अपने घर की ओर चल पड़े→जब छुट्टी की घंटी बजी तो सब छात्र अपनी कॉपी-किताबें उठा कर एक-एक कर अपने घर की ओर चल पड़े। कल रेखा आई थी + वह पहले आप से पढ़ती थी→रेखा, जो पहले आप से पढ़ती थी, कल आई थी/पहले आप से पढ़नेवाली रेखा कल आई थी। मयूर उत्तीर्ण है + मंजरी उत्तीर्ण है→मयूर उत्तीर्ण है और मंजरी भी (उत्तीर्ण है)। (10) **वाक्य-विश्लेषण** (विश्लेषण = अलग-अलग करना। किसी संश्लिष्ट सरल, मिश्र या संयुक्त वाक्य को एकाधिक सरल वाक्यों में अलग-अलग करने की प्रक्रिया से वाक्यान्तरण किया जा सकता है), यथा—ढीठ लड़की होने के कारण जॉनी की सभी लोग निन्दा करते हैं→जॉनी एक ढीठ लड़की है। उस की सभी लोग निन्दा करते हैं। आगरा के पास के सादाबाद कस्बे का रहनेवाला राधेश्याम रामभरोसे का बड़ा भाई है।→राधेश्याम रामभरोसे का बड़ा भाई है। वह सादाबाद का रहनेवाला है। सादाबाद कस्बा आगरा के पास है। वह होशियार है किन्तु तुम कमज़ोर हो→वह होशियार है। तुम कमज़ोर हो। टोकियो, जो जापान की राजधानी है, बहुत बड़ा नगर है→टोकियो जापान की राजधानी है। यह बहुत बड़ा नगर है। (11) **वाच्यान्तरण,** यथा—आओ, कहीं चलें—आओ, कहीं चला जाए। कल स्थानान्तरण के नियम ज़ारी होंगे—कल स्थानान्तरण के नियम ज़ारी किए जाएँगे। क्या फ़र्श पर दरी बिछी है→क्या फ़र्श पर दरी बिछा दी गई है? उसे ऐसा लगा जैसे वह अपनी मौत की सज़ा सुन रहा है→उसे ऐसा लगा जैसे उसे उस की मौत की सज़ा सुनाई जा रही है। उन्हों ने मुझे अपने यहाँ खाने पर बुलाया→मुझे उन के यहाँ खाने पर बुलाया

गया। अब आप ही बताइए कि हम इस मामले में क्या करें→अब आप ही (हमें) बताइए कि इस मामले में क्या किया जाए ? बूढ़ा चने नहीं चबा सकता→बूढ़े से चने नहीं चबाए जा सकते। तुम चुपचाप बैठ भी नहीं सकते→तुम से चुपचाप बैठा भी नहीं जाता। (दाँत में दर्द के कारण) वे अच्छी तरह खाना भी नहीं खा सकते→(दाँत में दर्द के कारण) उन से अच्छी तरह खाना भी नहीं खाया जा सकता। रहने दो, तुम यह काम नहीं कर सकते→रहने दो, यह काम तुम से नहीं होगा। (12) **उक्ति-परिवर्तन** (प्रत्यक्ष कथन को परोक्ष/अप्रत्यक्ष कथन में तथा परोक्ष/अप्रत्यक्ष कथन को प्रत्यक्ष कथन में परिवर्तन कर वाक्यांतरण किया जा सकता है), यथा—श्रीराम बोले, "मैं आज ही बन जाऊँगा।"→श्रीराम बोले कि मैं आज ही वन जाऊँगा। (श्रीराम ने उसी दिन वन जाने की बात कही)। उन्हों ने मुझ से कहा, "मैं कहाँ जा रहा हूँ ?" →उन्होंने मुझ से पूछा कि मैं कहाँ जा रहा हूँ (उन्हों ने मुझ से मेरे गन्तव्य स्थान के बारे में पूछा)। मकान मालिक ने किरायेदार से पूछा कि तुम कहाँ के रहनेवाले हो ? →मकान मालिक ने किरायेदार से कहा, "तुम कहाँ के रहनेवाले हो ?" (मकान मालिक ने किरायेदार का निवास-स्थान जानना चाहा)।

27
काव्य भाषा-स्वरूप

किसी भी भाषा में रचित साहित्य की विविध विधाओं (निबन्ध, कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, यात्रा-वर्णन, कविता आदि) की भाषा मूल रूप से समान होते हुए भी उन की वाक्य तथा पदबन्ध-संरचना, शब्द-चयन में न्यूनाधिक अन्तर रहता ही है। विधा के अनुरूप शब्द-चयन करते हुए उन्हें शृंखलाबद्ध किया जाता है। इसी चयन तथा शृंखलन की प्रक्रिया का अन्तर शैली-भेद कहा जाता है। अलंकारों का प्रयोग पद्य के अतिरिक्त गद्य में रचित साहित्य की कुछ विधाओं में थोड़ा-बहुत होता ही रहता है किन्तु पद्य साहित्य के लिए अलंकारों की जितनी आवश्यकता है, गद्य साहित्य के लिए उतनी नहीं है; इसीलिए अलंकारों का विवेचन काव्यशास्त्र का एक अनिवार्य विषय है, व्याकरणशास्त्र का नहीं। इसी प्रकार छन्द-विवेचन भी काव्यशास्त्र का एक प्रमुख पक्ष है, व्याकरणशास्त्र में उस के विवेचन की आवश्यकता नहीं पड़ती। यद्यपि गद्य साहित्य की कुछ विधाओं के श्रवण तथा वाचन में श्रोता और पाठक को आनन्द (रस) की अनुभूति होती है, उस के मन में विभिन्न भाव-विभाव आदि प्रस्फुटित होते हैं, तथापि रस-विवेचन भी मूलतः काव्यशास्त्र का ही विषय माना जाता रहा है। ये तीनों तत्त्व—अलंकार, छन्द, रस काव्य भाषा को अधिक प्रभावकारी और रोचक बनाने में सहायता देते हैं। हाँ, मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग दैनन्दिन भाषा-व्यवहार और गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के सम्प्रेषण/कथ्य में अधिक प्रभावकारिता और रोचकता लाने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। चूँकि रस, छन्द और अलंकार भी मूलतः भाषा के ही अंश हैं तथा कविता में इन के प्रयोग की विशेषताओं और सीमा/स्वतन्त्रता का सम्बन्ध परोक्षतः व्याकरण से जोड़ा जा सकता है, अतः इन के सम्बन्ध में यहाँ संक्षेप में मोटी-मोटी बातों का उल्लेख ही अभीष्ट है। इन का विस्तृत तथा सूक्ष्म अध्ययन काव्यशास्त्र या शैलीविज्ञान की किसी पुस्तक से किया जा सकता है।

काव्य ही नहीं, सभी प्रकार के साहित्य का मूल प्रयोजन श्रोता/पाठक का लौकिक या पारलौकिक हित-चिन्तन और आनन्द-प्रदायन माना गया है। साहित्य आत्मानुभूति तथा आनन्द-उपलब्धि का माध्यम है जो कवि/लेखक तथा

श्रोता/पाठक सभी के लिए सत्य है। नाट्यशास्त्र-प्रणेता भरत मुनि (1ली शती ई०) ने सर्वप्रथम **रस** को इस प्रकार परिभाषित किया था—'विभावानुभावव्यभिचारि-संयोगाद्रसनिष्पत्तिः' अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से **रस-निष्पत्ति** होती है। कोई व्यक्ति, पदार्थ या बाह्य विकार जो किसी अन्य व्यक्ति के हृदय में भाव-उद्रेक करने में सहायक होता है, उसे **विभाव** कहा जाता है। विभाव दो प्रकार के होते हैं—1. **आलम्बन विभाव** वह पुरुष या नारी या पदार्थ जिस के प्रति **आश्रय** के हृदय में किसी प्रकार के स्थायी भाव का उद्रेक होता है 2. **उद्दीपन विभाव** आलम्बन तथा आश्रय विभाव में विभिन्न भावों को उद्रेक करनेवाले साधन (**व्यक्ति**/प्रकृति या आन्तरिक चेष्टाएँ और बाह्य परिस्थितियाँ) होते हैं। आश्रय के हृदय में संचित विविध स्थायी भावों का शरीर, वचन, मन की चेष्टाओं (कायिक, वाचिक, मानसिक) के रूप में प्रकट होना **अनुभाव** कहा जाता है। पानी में उठनेवाले तथा स्वतः विलीन हो जानेवाले बुदबुदों-जैसे **संचारी/व्यभिचारी भाव** स्थायी भावोद्रेक के सहायक या उप-भाव हैं। इन की संख्या 33 मानी गई है, यथा—निर्वेद, शंका, आलस्य, ग्लानि, मद, दीनता, असूया आदि। '**भाव**' मन का विकार माना गया है। नाट्यशास्त्र में 33 संचारी, 8 सात्विक, 8 स्थायी भाव बताए गए हैं। भरत के अनुसार 8 स्थायी भाव ये हैं—1. रति (प्रेम) 2. हास 3. शोक 4. क्रोध 5. उत्साह 6. भय 7 जुगुप्सा (घृणा) 8. विस्मय। बाद में उन्हों ने शम/निर्वेद/शान्ति को नवें स्थायी भाव के रूप में स्वीकार किया। परवर्ती काल में भक्ति, वात्सल्य को अलग-अलग स्थायी भाव माना जाने लगा जो वास्तव में आलम्बन-भेद के आधार पर रति के ही दो उपभेद हैं। उपर्युक्त 9 स्थायी भावों के आधार पर 9 रस स्वीकार किए गए हैं—1. श्रृंगार 2. हास्य 3. करुण 4. रौद्र 5. वीर 6. भयानक 7. वीभत्स 8. अद्भुत 9. शान्त।

काव्यशास्त्र के अनुसार 'रस' का संचार शब्द शक्तियों से होता है। वाक्यों में अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग सन्दर्भ/प्रसंग और वक्ता/लिखक के मन्तव्य (अभीष्ट अर्थ) के अनुसार किया जाता है। '**शब्द-शक्ति**' शब्द के अन्तर्निहित अर्थ को व्यक्त करने की सामर्थ्य/प्रक्रिया/व्यापार है। इस के तीन रूप माने गए हैं—अभिधा, लक्षणा, व्यंजना। (इन के बारे में अध्याय 11 'शब्द-अर्थ' में चर्चा की जा चुकी है)।

सभी प्रकार की कविताओं में **भाव-सौन्दर्य** नहीं पाया जाता है। नीति-प्रधान कविताओं में कवि उपदेश देने का प्रयत्न करते हुए मानव-जीवन की विभिन्न समस्याओं पर दृष्टिपात् करता है। ऐसी कविताओं में **विचार-सौन्दर्य** की प्रधानता होती है, यथा—रहिमन निज मन की विथा मन ही राखौ गोइ। सुनि अठिलैहें लोग सब बाँटन लैहे कोइ॥ कभी-कभी कवि उपदेश देने के उद्देश्य से अपनी कल्पना के सहारे प्रकृति के उपादानों को माध्यम बनाते हुए कविता को **कल्पना-सौन्दर्य**

से पुष्ट कर चित्रवत् बना देता है, यथा—यह लघु सरिता का बहता जल, कितना शीतल कितना निर्मल।........कर-कर निनाद कल-कल कल-कल, तन का चंचल मन का विह्वल,........ ।

आचार्य वामन ने 'अलङ्कृतिरलंकारः' (अर्थात् जो किसी वस्तु को अलंकृत करे वह **अलंकार** है) कहा है। भाषा को विविध प्रकार के शब्दार्थ से सुसज्जित और सुन्दर बनानेवाले चमत्कारपूर्ण मनोरंजक ढंग/साधन को अलंकार कहा जाता है। अलंकारों के प्रयोग से काव्य में रमणीय अर्थ, पद-लालित्य, उक्ति-वैचित्र्य तथा असामान्य भाव सौन्दर्य की सृष्टि संभव होती है। गद्य साहित्य में भी अच्छे लेखक अलंकारों का प्रयोग करते देखे जाते हैं। रुद्रट ने 9वीं शती ई० में वैज्ञानिक ढग से वास्तव, औपम्य (/साम्य), अतिशय, श्लेष (/संलग्नता) के आधार पर 23+21+12+10=66 अलंकारों का उल्लेख किया था। नाट्यशास्त्र में जहाँ 'उपमा, रूपक, दीपक, यमक' चार अलंकारों का नामोल्लेख है, वहाँ रसगंगाधर (पंडितराज जगन्नाथ कृत—17वीं शती ई०) में 180 से अधिक अलंकारों की चर्चा है जो बाद में 191 तक कहे गए हैं। शब्द के ध्वनि तत्त्व के आधार पर **शब्दालंकार**, अर्थ तत्त्व के आधार पर **अर्थालंकार** और दोनों (ध्वनि, अर्थ पक्ष) के संयोजन के आधार पर **उभयालंकार** माने जाते हैं। शब्दालंकार वर्णगत और शब्दगत होते हैं, यथा—अनुप्रास यमक, पुनरुक्ति, पुनरुक्तिवदाभास, वीप्सा, वक्रोक्ति, श्लेष। वाक्यगत शब्दालंकार भी हो सकते हैं, यथा— लाटानुप्रास। अर्थालंकार के मुख्य भेद हैं—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमेयोपमा, सन्देह, भ्रान्तिमान, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, उल्लेख, विरोधाभास, व्यतिरेक, दीपक, प्रतीप, स्वभावोक्ति, स्मरण, अपह्नुति, अप्रस्तुत-प्रशंसा, विभावना, अनन्वय, परिसंख्या, विशेषोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग। संकर, संसृष्टि प्रमुख उभयालंकार हैं।

ध्वनि/वर्ण/अक्षर-संख्या तथा उन के क्रम, मात्रा और यति-गति से सम्बन्ध विशिष्ट नियमों के अनुरूप नियोजित वाक्य/पाठ्य-रचना को **'छन्द'** कहते हैं। व्याकरण को गद्य-नियामक और छन्दशास्त्र को पद्य/कविता-नियामक कहा जाता है। ऋग्वेद में छन्द का उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है। वेद के छह अंगों (छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्ति, शिक्षा, व्याकरण) में 'छन्द' व्याकरण, निरुक्ति (व्युत्पत्तिशास्त्र), शिक्षा (ध्वनिविज्ञान) से भिन्न एक स्वतन्त्र अंग माना गया है। हिन्दी में संस्कृत की अपेक्षा विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है। साहित्येतर विषय भी छन्दोबद्ध होने पर, रमणीयता के कारण शीघ्र ही कंठस्थ हो जाते हैं। तुक छन्द का प्राण है जो श्रोता/पाठक की आनन्द-भावना तथा सौन्दर्यानुभूति को जागरित करती है। गद्य की वैचारिक शुष्कता छन्दबद्ध हो भाव-तरलता में परिणत हो जाती है।

कविता या छन्द के आठ अंग माने गए हैं—1. **पाद/चरण** एक छन्द का $\frac{1}{4}$ भाग होता है। चरण सम (2रा, 4था), विषम (1ला+3रा) होते हैं। 2. **मात्रा तथा वर्ण/अक्षर** स्वरों और व्यंजनों के ह्रस्व (/लघु), दीर्घ (/गुरु) रूप हैं। 'कलाई'

में तीन वर्ण/अक्षर और पाँच मात्राएँ हैं। 3. **संख्या, क्रम** 4. **लघु, गुरु**, 5. **गण**—लघु का चिह्न (।), दीर्घ का चिह्न (ऽ) माना जाता है। 'यमाताराजभानसलगा' सूत्र से आठों **गणों** 'यगण·······सगण' के स्वरूप (एक गण के तीनों वर्णों की मात्रा तथा क्रम, यथा—।ऽऽ लघु दीर्घ दीर्घ 'तिहाई, कसाई' यगण) की जानकारी हो सकती है। तगण, रगण, जगण, सगण को अशुभ और शेष गणों को शुभ गण माना गया है। छन्द के आरम्भ में अशुभ गण का प्रयोग अच्छा/उचित नहीं माना जाता। 6. **यति** 7. **गति** 8. **तुक** क्रमशः विराम/विश्राम, लय/प्रवाह, अन्त्य वर्ण-आवृत्ति के सूचक हैं। सामान्यतः प्रत्येक चरण के अन्त में एक (कभी-कभी मध्य में एकाधिक) यति होती है। गति से छन्द में संगीतात्मकता उभरती है। सामान्यतः हिन्दी में पाँच मात्राओं की तुक अच्छी मानी जाती है। तुक को हिन्दी छन्द का प्राण कहा जाता है। हिन्दी में 20वीं शती ई० में अतुकान्त छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। शायद उच्चारण-सरलता के आधार पर 'क ख ग घ च छ ज ड द ध न य श स क्ष' को शुभ वर्ण, शेष को अशुभ वर्ण माना जाता है। अशुभ वर्णों में 'झ ह र भ ष' को दग्धाक्षर कहा गया है। केवल वर्ण-गणना के आधार पर रचित छन्द '**वर्णिक छन्द**' कहलाते हैं। वर्णों की मात्रा-गणना के आधार पर रचित छन्द '**मात्रिक छन्द**' कहे जाते हैं। चरणों की अनियमित, असमान, स्वच्छन्द गति और भावानुकूल यति-विधान से युक्त छन्द '**मुक्त छन्द**' कहलाते हैं। यद्यपि छन्दों की संख्या 7950 तक कही गई है फिर भी सामान्यतः लगभग 70-75 छन्दों का प्रयोग मिलता है जिन में प्रमुख छन्द हैं—दोहा, चौपाई, सवैया, कुंडलिया, सोरठा, कवित्त, छप्पय, रोला, गीतिका, हरिगीतिका, बरवै, घनाक्षरी, मालिनी, उल्लाला, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शिखरिणी, द्रुतविलम्बित, मन्द्राकान्ता, अनुष्टप्।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में काव्य-भाषा का मूलाधार खड़ी बोली का परिनिष्ठित रूप है जिस में अन्य बोलियों तथा भाषाओं के शब्दों का भी कहीं-कहीं, कभी-कभी प्रयोग प्राप्त है। ब्रज, अवधी के अतिरिक्त पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी की विभिन्न बोलियों में भी कविता-रचना होती रहती है। बिहारी और राजस्थानी वर्ग की हिन्दी की बोलियों में भी कविताओं का रचना-प्रवाह बहता चला आ रहा है। हिन्दी-कविता का अधिकांश ब्रजभाषा में रचा गया है जिस में बुंदेलखंडी, अवधी, खड़ी बोली, कन्नौजी का प्रभाव देखा जा सकता है। अवधी में रामचरितमानस, पद्मावत जैसी अविस्मरणीय काव्य-रचनाएँ प्राप्त हैं। हिन्दी की प्राचीन काव्यभाषा (मुख्यतः ब्रज और अवधी) में सामान्यतः 'ड़, य, ल, व, श, ण क्ष' के स्थान पर क्रमशः 'र, ज, र, ब, स, न, छ/ख' का प्रयोग मिलता है, यथा—लढ़ो > लरौ, यज्ञ जग्य, यमुना > जमुना, पीपली > पीपरी, बादल > बादर, वाणी > बानी, वचन > बचन, उपवन > उपबन, वंश > बंस, निशि > निसि, शाल > साल, शिला > सिला, दोष > दोस, भाषा > भासा, चरण > चरन, गुण > गुन, करुणायतन > करुनायतन, शिक्षा > सिच्छा, लक्ष्मण > लछिमन/लखन/लक्खन, क्षण > छन, क्षमा >

छिमा, प्रक्षालन > पखारन, साक्षी > साखी। यत्न > जतन, कर्म > करम, शब्द > सबद, भक्तवत्सल > भगतबछल, धर्म > धरम आदि के संयुक्ताक्षर एकल रूप में प्रयुक्त हैं। सामान्यतः -आ > -ओ है, यथा—गहना > गहनौ, बसेरा > बसेरो/बसेरौ, झगड़ा > झगरो/झगरौ, फेरा > फेरो, नाता > नातौ, सबेरा > सबेरो, हिया > हियो, मायका > मायकौ; अपना > अपनो, हमारा > हमारौ, मेरा > मेरो/मेरौ, तेरा > तेरो/तेरौ, जितना > जितनौ, जैसा > जैसो; काला > कारो/कारौ, पीला > पीरो/पीरौ, सीधा > सीधो/सीधौ, नीची > नीचो > नीचौ; किया > कियो/कियौ/कीन्हों/कीन्हौ, लिया > लियो/लियौ/लीन्हों/लीन्हौं, पाया > पायो/पायौ, लिखा > लिखौ, पढ़ता > पढ़तो/पढ़तौ, आना > आन्यो/आन्यौ, जाना > जान्यो/जान्यौ, खाऊँगा > खाउँगो/खाउँगौ। स्त्रीलिंग में -ई, -इनि का प्रयोग अधिक है। बहुवचन के लिए 'गन, वृन्द, यूथ, निकर आदि शब्दों का प्रयोग रूपान्तर की अपेक्षा अधिक प्राप्त। विकारी बहुवचन में '-न, -न्ह, -नि' का प्रयोग प्राप्त। कुछ अन्य विशेष शब्द-रूप हैं—पड़े > परे, कड़वे > करुए, मूल > मूरि, तलवार > तरवार/तरवारि, सुनो > सुनौ, आओ > आवौ, बुलावे > बुलावै, बड़ों को > बड़ेन को, चरणों से > चरननि सों, मुखों की > मुखन की, मीनों की > मीनन की; लाभ > लाभु, बालक > बालकु, गया > गयऊ, कहा > कहेऊ, उठो > उठहु, मुझ को > मोहिं, राम को > रामहिं, सखी को > सखिहिं, सखियों को > सखिन्ह, देवों को > देवन्ह, तुम्हारा > तुम्हार, आप का > राउर, जिस का > जासु, तुम्हारे > तोरे, क्या > का/काह, कुछ > कछुक/कछु; इस > एहि, किस > केहि, इधर-उधर > इत-उत, तो > त; है > अहई, हैं > आहिं, कहते हैं > कहई, करते हैं > करहिं, दिखाते हो > देखाव, बध करता हूँ > बधउँ, जानता है > जानसि; गया > गयउ, कहा > कहेउँ, हुई > भइ, किया > कीन्ही, वर्णन किया > बरनी; होगा > होइहि, कराएगा > कराइहि, रहूँगी > रहबि, लेलूँगा > लेवा, तरेंगे > तरिहहिं, मारे जाएँगे > मारे जैहहिं, हो जाएगी > होई जाई; हर्षित होकर > हरखि, कहिए > कहिय, क्षमा करो > छमहु। ब्रज, अवधी के संज्ञादि की रूपावली का सामान्य परिचय अध्याय 28 में दिया जाएगा।

प्राचीन काव्य भाषा-प्रयोग में कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त है, यथा—कारक-चिह्न या विभक्ति-लोप, जैसे—नारद देखा विकल जयन्ता (=नारद ने); पापी अजामिल पार कियो (=अजामिल को); ज्यों आँखिन सब देखिए (=आँखों से), कह्यो कान्ह सुनि जसुदा मैया (=कृष्ण ने) आदि। कहीं-कहीं सत्तावाचक तथा सहायक क्रिया-लोप, यथा—धनि रहीम वे लोग (हैं); अति विकराल न जात बतायो (बताया जाता है); तोकों कान्ह बुलावै (है); का करि सकत (है) कुसंग। कहीं-कहीं संबंध-वाची शब्द-लोप; यथा—जाको राखे साइँया (उसे) मारि सकै ना कोइ। अनेक प्रचलित शब्द अपभ्रंश रूप में प्रयुक्त, यथा > कार्य > काज > काजा, एकत्र > एकत, संस्कृत > संसकिरत, सपना > सापना, एक > इक, यों > इमि; कुछ नाम धातुओं का विशिष्ट प्रयोग, यथा—अनुरागत, गवनहु, प्रमानियत, विरुद्धिए। कुछ नवीन

शब्दों का प्रयोग प्राप्त, जैसे—घननाद (=मेघनाद), हाटक लोचन (=हिरण्याक्ष), घटज (कुंभज)।

खड़ी बोली-आधारित काव्य भाषा-प्रयोग में कहीं-कहीं ब्रज भाषा-शब्दों का प्रयोग प्राप्त है, यथा—नेक, तज, लौं। कुछ अप्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग; यथा—स्वयमपि, समुत्फुल्लकारी, रिष्ठ। अपभ्रंश शब्द-प्रयोग, यथा—मारग < मार्ग, हरिचंद < हरिश्चन्द्र, यदपि < यद्यपि, परमारथ < परमार्थ, करिए < कीजिए, हूजो < हूजिए < होइए, देओगे < दोगे, जलै है < जलती है, सरलपना < सरलपन।. कुछ नवीन नाम धातुओं का प्रयोग, यथा—संमानते; लोभा। अधिक लम्बे कुछ सामासिक शब्दों का प्रयोग, यथा—अगणित-कमल-अमल-जलपूरित; दुख-जलनिधि-डूबी; शैलेन्द्र-तीर-सरिता-जल। अनमेल फ़ारसी शब्द-प्रयोग, यथा—अफसोस''''''पात्र जो संताप के; शिरोरोग का''''बहाना। शब्द-विकृति, यथा—अधारा < आधार, तुही < तू ही; चहता < चाहता, नहिं < नहीं, कदापी < कदापि, श्रमी < श्रमिक। कहीं-कहीं तुकांत की दृष्टि से विषमता भी प्राप्त है और कहीं-कहीं पादपूरक शब्दों का प्रयोग मिलता है। संकर समास के उदाहरण हैं—बन-बाग, रण-खेत, लोक-चख, भारत-वाजी, मंजु-दिल। कहीं-कहीं अप्राणिवाची कर्म के साथ अनावश्यक 'को' प्रयोग, यथा—पा कर उचित सत्कार को; सहसा उस ने पकड़ लिया कृष्ण के कर को। कहीं-कहीं अकर्मक क्रिया का सकर्मक और सकर्मक का अकर्मक प्रयोग मिलता है, यथा—नहा दो (=नहला दो), दिखलाती (=दिखाई देती है)। 'नहीं' के स्थान पर 'न' प्रयोग, यथा—लिखना मुझे न आता है; न हो सकते। क्रिया-रूपों में प्रयोग-विकृति, यथा—लजानी (=लज्जित हुई), फहरानी है (=फहराई हुई है); स्वपद भ्रष्ट किया जिस ने हमें (=स्वपद से भ्रष्ट किया जिस ने हमें)। कारक चिह्न आदि का लोप, यथा—सुरपुर (में) बैठी हुई; किन्तु उच्च पद में मद रहता (है); हाय! आज ब्रज में क्यों फिरते (हो); प्रबल जो तुम में पुरुषार्थ हो (तो) सुलभ कौन तुम्हें न पदार्थ हो।

बीसवीं शब्दाब्दी के अन्तिम दशक की काव्य भाषा में भी इसी प्रकार की स्वतन्त्रता के विविध रूप प्राप्त हो सकते हैं जिन का विवेचन मूलतः काव्यशास्त्र/शैली विज्ञान में किया जाता है।

परिशिष्ट

28

हिन्दी की प्रमुख बोलियों में एकसूत्रता

किसी भी भाषा की उपभाषाओं तथा बोलियों की एकसूत्रता का आधार उन की बोधगम्यता है। जो भाषा जितने अधिक विस्तृत क्षेत्र में बोली जाती है, उस में उतनी ही अधिक क्षेत्रीय विविधाएँ भी पाई जाती हैं। यद्यपि हिन्दी की दो प्रमुख उपभाषाओं—पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी में गठन की दृष्टि से बहुत-कुछ अन्तर है, फिर भी परिनिष्ठित हिन्दी ज्ञाता के लिए वे अबोधगम्य नहीं हैं। एक भाषा की बोलियों की बोधगम्यता मात्रा की दृष्टि से अधिक होती है जब कि एक ही समुदाय (/परिवार) की भाषाओं में बोधगम्यता की यह मात्रा कुछ कम ही रहती हैं, यथा—हिन्दी-पंजाबी-बंगाली के मध्य बोधगम्यता की मात्रा ब्रज-अवधी-कौरवी के मध्य की बोधगम्यता की मात्रा से कम है। हिन्दी की प्रमुख बोलियों में बाह्य स्तर पर गठन की दृष्टि से कुछ-न-कुछ वैषम्य मिलता है किन्तु आन्तरिक स्तर पर उन में पर्याप्त साम्य प्राप्त है, और यही साम्य उन्हें एकसूत्र में पिरोए हुए है। **पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी में गठन की दृष्टि से उल्लेखनीय अन्तर** ये हैं— पूर्वी हिन्दी में 'अ' पश्चिमी हिन्दी के 'अ' की अपेक्षा अधिक विवृत है। पूर्वी हिन्दी में कां (का), मा (में) का विशेष प्रयोग प्राप्त है। पूर्वी हिन्दी में मोर (मेरा) का प्रचलन है। पूर्वी हिन्दी में अहेउँ/आहेउँ (मैं हूँ) का प्रयोग होता है। पूर्वी अवधी में 'बाटेउँ', भोजपुरी में 'बाटों' प्राप्त है। खड़ी बोली, ब्रज में 'मारा, मार्यो' (मैं ने/तू ने/उस ने) मिलता है, जब कि पूर्वी हिन्दी में 'मारेउँ, मारिस' और भोजपुरी में 'मारलों, मारलस' प्राप्त है। संस्कृत 'चलिष्यति' पूर्वी हिन्दी में 'चलिहइ' और ब्रज में 'चलिहै' है। उच्चारण की दृष्टि से पूर्वी हिन्दी की प्रवृत्ति प्रायः लघ्वन्त है, पश्चिमी हिन्दी दीर्घान्त है। अवधी के क्रिया-रूप प्रायः लघ्वन्त हैं, जब कि पश्चिमी हिन्दी में वे नकारान्त हैं, यथा—जाब, चलब, ल्याब, दयाब (अवधी), जान, चलन, लेन, देन (ब्रजभाषा)। शब्द भण्डार की दृष्टि से पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ जीवन्त एवं प्रगतिशील रही हैं। परिनिष्ठित हिन्दी में यह जीवन्तता तथा प्रगतिशीलता पर्याप्त है। पश्चिमी तथा पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोलियों का गठनात्मक दृष्टि से यहाँ संक्षेप में परिचय दिया जा रहा

है। इन बोलियों के वाक्य-उदाहरण डॉ० ग्रियर्सन के लिंग्विस्टिक सर्वे आँफ़ इण्डिया (पश्चिमी हिन्दी भाग 9, पूर्वी हिन्दी भाग 6) से लिए गए हैं।

(1) कौरवी—कुरु क्षेत्र की बोली को श्री राहुल सांकृत्यायन ने यह नाम दिया था। डॉ० ग्रियर्सन ने इसे 'वर्नाक्यूलर हिन्दोस्तानी' कहा है। सामान्यतः इसे 'खड़ी बोली/खरी बोली' कहा जाता है। पश्चिमी हिन्दी की साहित्यिक भाषा अपने स्वरूप तथा गठन की दृष्टि से इस भाषा पर आश्रित है। यह भाषा रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, पश्चिमी रुहेलखण्ड, मेरठ, मुज़फ्फरनगर, सहारनपुर, अम्बाला ज़िलों में बोली जाती है। इस बोली में 'ए, ओ' का ग्रहण अधिक है, यथा—पेर (पैर), हे (है), ओर (और), इ > अ, यथा—सकारी (सिकारी), मठाई (मिठाई), ण, ल, ड का प्रयोग अधिक, यथा—अपणा (अपना), खोवण (खोना), सुणण (सुनना), माणस (मानुस/मनुष्य), जंगल (जंगल), बलद (बलद/बैल), बाल (बाल), कोली (=छाती), गाड्डी (गाड़ी), चढना (चढ़ना), घोडा (घोड़ा), चिडिया (चिड़िया)। दीर्घ स्वर का परवर्ती व्यंजन प्रायः दीर्घ हो कर पूर्ववर्ती स्वर में कुछ ह्रस्वता ला देता है, यथा—धोत्ती (धोती), पात्ता (पाता), होत्ता (होता), बाप्पू (बाप)। परसर्गों के ये रूप प्राप्त हैं—ने, नें (कर्ता), के, को, कूँ, नूँ, ने (कर्म, सम्प्रदान), से, सू, सेत्ती (करण, अपादान), का, की, के (संबंध), प, पे, में (अधिकरण)। सर्वनामों में परिनिष्ठित हिन्दी से भिन्न ये रूप प्राप्त हैं—में (मैं), मझ (मुझ), मझे (मुझे), म्हारा (हमारा), तें (तू), तझ (तुझ), तझे (तुझे), तम (तुम), तमें (तुम्हें), थारा (तुम्हारा), ओं/ओ/ओह (वह पु.), वा (वह स्त्री.), विस (उस), विन (उन), विस्का (उस का), विन्का (उन का), यू (यह पु.), या (यह स्त्री.), या (इस), यू/यै (ये), जोण (जो), कौण/के (कौन), के (क्या), असा (ऐसा), इब (अब)। क्रिया-प्रयोग में परिनिष्ठित हिन्दी से भिन्न ये रूप प्राप्त हैं—मैं पढूँ हूँ (मैं पढ़ता हूँ/पढ़ रहा हूँ), तू पढ़े हैं, तम पढ़ो हो, ऊ पढ़े हे, वे पढ़े हें। कभी-कभी मुख्य क्रिया 'पढ़त्ता' भी मिलती है। मैं/तू/ऊ पढ़या (मैं पढ़ा), हम/तम/वि पढ़्ये (हम पढ़े)। मैं/तू/ऊ पढ़ता था (मैं पढ़ रहा था), हम/तम/वि पढ़ते थे। मैं/तू/ऊ पढ़्या था (मैं पढ़ा था), हम/तम/वे पढ़्ये थे। मैं (/तू/ऊ) पढ़्या हूँ (/हे/हे) (मैं पढ़ा हूँ), हम (/तम/वि) पढ़्ये हें (/हो/हें)। मैं पढूँगा, तू/ऊ पढ़ैगा, हम/वे पढ़ैंगे, तम पढ़ोगे। मेरठ की कौरवी पर पंजाबी का प्रभाव है। बिजनौर की कौरवी परिनिष्ठित हिन्दी के अधिक नज़दीक है, यथा—

(ज़िला मेरठ)—एक आदमी के दो लोन्डे थे। उन में तें छोटे नें अपणे बाप सेत्ती कहा ओ बाप तेरे मरे पिच्छे जो कुछ धन धरती मझें मिलेंगी वा इभी दे दे। (ज़िला मुज़फ्फ़रनगर)—एक यादमी के दो बेट्टे थे। उन में तें छोट्टे ने बापू से कहा ओ अक बाप्पू जोण सा हिस्सा माल में ते मेरे बाँटे आवे हे ओह मुझे दे। (ज़िला बिजनौर)—एक आदमी के दो बेटे थे। उन में से छोटे ने बाप से कहा कि जो कुछ मेरे हिस्से की चीज है मुझे बाँट दे। (ज़िला अम्बाला)—एक आदमी के दो

छोकरे थे। उन माँ ते छोटे छोकरे ने अपने बाप ते किहा कि मन नूँ जो हिस्सा घर माँ ते आवे हे ओह मेरा मन नूँ बाँड दे।

(2) **बाँगरू** बोली दिल्ली, करनाल, हिसार, रोहतक, झींद, पटियाला, नाभा आदि नगरों और उन के ग्रामीण अंचलों की भाषा है। बाँगड़ (उच्च क्षेत्र) को हरा-भरा होने के कारण हरियाणा भी कहा जाता है अतः बाँगड़ू~बाँगरू को हरियाणी~हरियाणवी भी कहते हैं। बाँगरू में परिनिष्ठित हिन्दी का 'अ' विभिन्न स्वरों के रूप में उच्चरित मिलता है, यथा—बहुत>बोहत, कहाऊँ>कोहाऊँ, रहा>रेह्या, जवाब>जुबाब। ए, ऐ परस्पर स्थानापन्न हो सकते हैं। करण, सम्प्रदान 'ने, नैं' से, अपादान 'ते, तैं' से व्यक्त होते हैं। न>ण, ल>ल, ड़>ड, यथा—अपना>अपणा, चलन>चलण, नल>नल, बड़ा>बडा। विकारी बहुवचन संज्ञा शब्द 'आँ' युक्त होते हैं न कि 'ओं' युक्त, यथा—घोड़ाँ, दिनाँ, माणसाँ, छोराँ, छोर्याँ। कर्म, सम्प्रदान में 'ने, नैं, ति, ते, तैं', करण में 'ने, नैं, सिते', अपादान में 'ति, ते, तैं, कानीती', अधिकरण में 'में मैं' और संबंध में 'का, के, कै' आते हैं। सर्वनामों के रूप इस प्रकार के हैं—मैं, हम, हमें (कर्ता), मैं ने, मन्ने, मन्नै, म्हाने, म्हानै (करण), मने, मन्नै, म्हाने, म्हानै (कर्म, सम्प्रदान) मेरा, मरा, म्हारा (संबंध); थूँ, तूँ, तौं, थम, तम्हें (कर्ता), तैंने, तन्ने, तन्नै, था ने, था नै (करण) तन्ने, तन्नै, था ने, था नै (कर्म, सम्प्रदान), तेरा, तरा, थरा (संबंध); अउह, ओह (वह स्त्री०), वै, ओह (कर्ता), उस, उन (विकारी); योह, यु, यउंह (याह स्त्री०), ये, यैं (कर्ता), इस, इन (विकारी), जौण (जो), कौण (कौन), के/कै (क्या)। सहायक क्रिया 'होना' के ये रूप मिलते हैं—सूँ/साँ/हूँ/हाँ, सैं/सें/साँ/हैं/हें/हाँ; सै/सि/है/हे, सो/हो; सै/सि/है/हे, सैं सें/हैं/हें। एकवचन में 'था', बहुवचन में 'थे', भविष्य में 'गा, गे' रूप प्राप्त हैं। मैं पढ़दा सूँ (मैं पढ़ता हूँ/पढ़ रहा हूँ), तू/वो पढ़दा सै, हम/वे पढ़दे सैं, तम पढ़दे सो। बिना सहायक क्रिया के भी रूप (कभी-कभी) प्राप्त, यथा—मैं मारूँ/माराँ (मैं मारता हूँ), हम मारैं/मारें/माराँ, तू/वो मारै~मारे, तम मारो, वे मारैं/मारें। मन्ने/तन्ने/उस्ने/म्हाने/थाने/उन्ने पढ़्या (मैं ने पढ़ा)। मैं/तू/वो पढ़दा था (मैं पढ़ रहा था), हम/तम/वे पढ़दे थे। बाँगरू की कुछ उपबोलियाँ भी हैं, जैसे—'जाटू' दिल्ली, रोहतक के जाट बहुल क्षेत्रों की बोली, 'चमरवा' दिल्ली के चमार बहुल क्षेत्रों की बोली।

(ज़िला करनाल)—एक माणस कै दो छोरे थे। उन मैं तै छोट्टे छोरे ने बाप्पू तै कह्या अक बाप्पू हो धन का जौण सा हिस्सा मेरे बाँडै आवे सै मन्नै दे दे। (ज़िला रोहतक—जाटू)—एक हीर (अहीर) माँदा पड़ा था। उस का असना बेरा लेण आया। जिस दिन उस का असना आया उस दिन टुक टुक उस को चैन थी। हीर अपणे भाई से बोला अब 'योह छोरा कौण सै।' तहसील झींद—हरियाणी)—एक ब्राह्मण था अर एक ब्राह्मणी थी। ब्राह्मण चून मैंग कै लि आया करदा।

ब्राह्मणी कैहण लाग्गी इस नागरी में राज्जा भोज सै। यू सलोक कोहा कै ब्राह्मणाँ नै एक टका सिओने का दे सै। इस राज्जा कै तौं भी जा कै कह दे।

(3) **ब्रजभाषा** का मुख्य केन्द्र मथुरा है। यह गुड़गाँव, भरतपुर, करौली, ग्वालियर, अलीगढ़, आगरा, एटा, मैनपुरी, बुलन्दशहर जिलों में बोली जाती है। इसे अन्तर्वेदी भाषा भी कहा जाता है। इस भाषा की कई उपबोलियाँ प्रचलित हैं, यथा—माथुरी (मथुरा के आसपास की बोली), भरतपुरी, धौलपुरी, कठेरिया (बदायूँ की बोली), डाँगी (भरतपुर, जयपुर, करौली के डाँग=बंजर क्षेत्र की बोली), जादौवाटी (भरतपुर, ग्वालियर, करौली क्षेत्र के यादवों की बोली, सिकरवारी (ग्वालियर के उ० पू० के सिकरवार क्षत्रियों की बोली), गाँववारी (अलीगढ़, एटा, मैनपुरी की बोली)। इस बोली में 'र, ल' की प्रायः स्थानापत्ति मिलती है, यथा—गारी (गाली), लेजू (रज्जु)। ने नैं, नें (कर्ता), कू, कूँ, कौं, कैं, कें (कर्म, सम्प्रदान), सों, सूँ, सो सौं, ते, तें, तैं (करण, अपादान), कौ, के, की/कि (संबंध), में, मैं, पै, पर, माँझ, महियाँ (अधिकरण) परसर्ग मिलते हैं। परिनिष्ठित हिन्दी से भिन्न प्राप्त सर्वनाम-रूप ये हैं—हौं, हों, हुँ, में; मो, मुज, मोहि, मुहि, मोय, मोई, मोएँ, हमन, हमनि, हमौ, हमैं; मेरौ, मेर्‍यो, हमारौ, हमर्‍यो; तैं, तै, तो, तुज, तोहि, तुहि, तोही, तुही, तोय, तोइ, तेरौ, तेर्‍यो; तुम्हौ, तुम्हे, तुम्हहि, तुम्हारौ, तिहारौ, तुहार्‍यों, तिहार्‍यौ। वो, वुह, विस; वा, वाहि, वाए, वाय, विसे; वै, उनि, उन्हौ, विनि, विन्हौं, विनि, विन्हैं, उन्है। यिह, या, याहि, याए, यै, इनि, इन्हौं, इन्हैं, इहै। जौ, जौन, जा, जाहि, जाय, जासु; जौ, जिनि, जिन्हौं, जिन्है। को, कौ, काहि, काए, काय; किनि, किन्हौं, किन्हैं। कोऊ, कोइ, काहू; किनऊँ। कछु, कछू; कछुक। कहा, का, काहे। आपु, अपुनैं, आपुनैं, अपनो; अपुनै, आपुनें, आपनो, आपनी। आपु, आपुन, रावरो, रावरे, राउरे, राउरी। ऐसो, तैसो, कैसो; इतो, केतो; एते, एतो, जेते, जेतिक, जितेक, कितेक, तेते, कैउक। कुछ विशिष्ट गुणवाची—नयौ, थूल, अमोलक, निठुर, ढीठ, दूवर आदि। सहायक क्रिया 'होना' के रूप कहीं-कहीं परिनिष्ठित हिन्दी से भिन्न हैं, यथा—हौं (हूँ); हौं/हो (था), हे/हें; ही/हुती (थी), हीं/हुतीं। ह्वैहों (हूँगा/हूँगी), ह्वैहै, ह्वैहैं, ह्वैहो, होयगो। -त, -अतु (खेलत, जात; पढ़त, पढ़ियतु, जानतु—वर्तमान० कृदन्त); -ओ, -यो (कहो, लहो, मर्‍यो, हँस्यो—भूत०कृदन्त); -इ, -ऐ (सुनि, लिखि, पढ़ि लै, दै—पूर्वका० कृदंत), -इवो, -नो (करिवो, चलिवो, पढ़नो—संज्ञार्थक क्रिया)। क्रिया रूप इस प्रकार के हैं—हौं पढ़तु हौं (मैं पढ़ता हूँ), तू (/बु) पढ़तु है/ऐ; हम/बे पढ़त हैं, तुम पढ़त हौ। हौं पढ़ि रहो (/रह्यौ) हौं (/ऊँ) (मैं पढ़ रहा हूँ), तू (/बु) पढ़ि रहो है, हम/बे पढ़ि रहे हैं, तुम पढ़ि रहे हौ। हौं पढ़ौं (मैं पढ़ूँ), बु पढ़ै बे/हम पढ़ैं, तुम पढ़ौ। हौं पढ़्यौ (मैं पढ़ा), तू/बु पढ़्यौ, हम/तुम वे पढ़े। हौं पढ़्यो हौं (मैं ने पढ़ा है), तू/बु पढ़्यौ है, हम/बे पढ़े हैं, तुम पढ़े हो। तू/बु पढ़्यौ हो (मैं पढ़ा था), हम/तुम/वे पढ़े हैं। हौं/तू/बु पढ़ि रहौ (/रह्यौ) हो (मैं पढ़ रहा था), हम/तुम/वे पढ़ि रहे हे। हौ पढ़ैंगो/पढ़ूँगो (मैं पढ़ूँगा), तू/बु पढ़ैगो:

हम/बे पढ़ैंगे, तुम पढ़ौगे । यदि हौं पढ़ौं तौ (यदि मैं पढ़ूं तो), तू/बु पढ़ै, हम/वे पढ़ैं, तुम पढ़ौ ।

(ज़िला मथुरा की माथुरी)—एक जने के दो छोरा हे/उन में ते लोहरे ने कही कि काका मेरे बट कौ धन मोय दे । तब बा ने धन उन्हैं बटि करि दियौ । (ज़िला अलीगढ़ की अलीगढ़ी)—एक जने कें द्वै बेटा ए । उन में तें छोटे ने बाप सूं कह्यौ कि ए बाप मेरौ जो बाँटु होतु ए सो मोय दै देउ । (ज़िला आगरा की गाँववारी)—एक आदमी कैं दो बेटा हे । छोटे बेटा ने अपने बाप ते कही कै अरे कक्कू मेरे बाँट कौ मालु मों कूं दै दै । (ज़िला धौलपुर की धौलपुरी)—एक आदमी कैं दो मोड़ा हे । उन मैं ते छोटे मोड़ा नैं बाप ते कही बाप जो तेरे पास धन है ता मैं ते मेरे बट कौ वैठै ते मो कौं दै दै । (करौली-ग्वालियर की जादौवाटी)—काऊ आदमी कें दो मोंड़ा हे । विन में तें ल्हौरे नें अपने बाप तें कही बाप मों कों सामाँ में तें अपनो बट दै चुकौ । (ज़िला भरतपुर की भरतपुरी)—एक जनें कें दौ छौरा हे । और बिन मैं तैं छोटे छोरा नें अपनैं दाऊ तैं कही दाऊ जी धन में तें जो मेरे बट में आवै सो मोकूं देउ । (करौली की डाँगी) —कोई आदमी के दो मोड़ा हे । बिन में से ल्हौरे मोड़ा ने दाजू से कही अरे दाजू विसुधा में जो मेरो बट है वाय मों को बाँट दे ।

(4) **कनौजी** बोली का केन्द्र नगर कन्नौज <कान्यकुब्ज है तथा फर्रुखाबाद, इटावा, शाहजहाँपुर, कानपुर, हरदोई, पीलीभीत ज़िलों में बोली जाती है । इस बोली में ब्रज का औकारान्त शब्द ओकारान्त, व्यंजनांत उकारान्त हो जाता है जो शाहजहाँपुरी में इकरान्त हो जाता है, यथा—छोटौ > छोटो (छोटा), घर > घरु~घरि । बहुवचन के लिए कभी-कभी संज्ञा में 'ह्वार~ह्वारू' भी जोड़ते हैं, यथा—हमह्वार~हम लोग । परसर्ग ये हैं—ने (कर्ता), को~कों (कर्म, सम्प्रदान), से, सेती, भन, करी, करके, तें, ते (करण, अपादान), में, मैं, माँ, मो, पर, लों (अधिकरण), को, के, की (संबंध) । परिनिष्ठित हिन्दी के सर्वनामों के भिन्न कुछ रूप ये हैं—मो, मोहि, मेरो, हमैं, हमारो, तो, तोहि, तेरो, तुम्हैं, तुम्हारो । वहु, बुहि, उहि, व, बो, वे, वै, बै; उहि, बहि, वा; उसै, उन्हैं । यहु, यिहु, इहु, यो, जो, जहु, जे, जइ; इहि, या, इसै; इन्हेंहूँ; याको, यहिको । जौन, जौनु, जौ; जौन, जो; जेहि, जा; जिसै, जिन्हैं । कौनु, को; केहि, का; किसै, किन्हैं; काको । कहा, का; काहे । कोऊ, कौनो; किनऊँ, कौनो; कौनो, किसू, किनऊँ, कौनो । कछू, कुछो । आपु, आपन, अपनु, अपनो । सहायक क्रिया 'होना' के रूप इस प्रकार हैं—हैंगे (वे/हम हैं), हैगो, होगे । थो (थी), हतो (हती), हते (हतीं) । हों, हौं, हूँगो (मैं हूँगा), हैंगे; हैगो, होगे । लिखत-लिखतु (लिखता), लिखो, पढ़ो, गओ (गया), पढ़ि के, लिखि के, मारि के (मार कर), पढ़न, चलन, पढ़िबो, चलिबो (पढ़ना) । मैं पढ़त हूँ, तू/बो पढ़त है, हम/बे पढ़त हैं, तुम पढ़त हो । मैं पढ़ि रहो हूँ, तू/बौ पढ़ि रहो है, हम/बे पढ़ि रहे हैं, तुम पढ़ि रहे हो । मैं (तू/बो) ने पढ़ा, हम/तुम/वे पढ़े । मैं (/तू/बौ) पढ़ि रहो थो (/हतो), हम (/तुम/वे) पढ़ि रहे थे (/हते) । मैं पढ़ो हूँ, तू/बौ पढ़ो है, हम/वे पढ़े हैं, तुम पढ़े हो । मैं (/तू/बौ) पढ़ो थो (/हतो), हम (/तुम

/वे) पढ़े थे (/हते)। मैं पढ़िहौं, तू/बौ पढ़िहै, हम/बे पढ़िहैं, तुम पढ़िहौ। कनौजी की कई उपबोलियाँ हैं—आदर्श कनौजी कन्नौज की परिनिष्ठित बोली है। शाहजहाँपुरी में ब्रज का मिश्रण है। सण्डीली (संडीला के आसपास की बोली) अवधी मिश्रित है। पीलीभीती में ब्रज का मिश्रण है। पचरुआ (इटावा के पछार, सेंगर नदी के उ. पू. भाग की बोली), तिरहारी (कानपुर में गंगा किनारे की बोली)।

(ज़िला कानपुर की तिरहारी)—याक मकई के दुइ लड़िका हते। उन माँ ते छोटे लड़िका ने कहो अपने बाप तन कि माल को जौन हींसा मोह का चहिए वह मोह का दै दे। (ज़िला इटावा की पचरुआ)—एक मनई कें दुइ लरिका हते। उन में तें छोटे ने बाप तें कहीं ए बाप धन में ते जो हमारो हींसा होय सो हमें दै देउ। (ज़िला फ़र्रुखाबाद का पूर्वी भाग)—एक जने के दोए लड़िका हते। उन मैं से छोटे ने बाप से कही कि पिता मालु को हींसा जो हमारो चाहिए सो देओ।

(5) **बुन्देली** बुन्देलखण्ड के समीपवर्ती क्षेत्रों (झाँसी, पन्ना, हमीरपुर, दतिया, चरखारी, जालौन, बालाघाट, ग्वालियर, छिंदवाड़ा, बुलडाना, नागपुर) भोपाल, दमोह,, सागर, सिवनी, नरसिंहपुर, होशंगाबाद) में बोली जाती है। यह बघेली, कनौजी, ब्रज, मराठी से घिरी हुई है। जगनिक, केशवदास; पद्माकर भट्ट, पजनेश प्राणनाथ, लाल कवि इसी बोली क्षेत्र के थे। बुन्देली में ए, ऐ, ओ, औ का उच्चारण परिनिष्ठित हिन्दी तथा ब्रज की अपेक्षा कुछ लघु रहता है, यथा—बिटिया, घुरवा, जेहे, ओर (=और), बिरोबर (बराबर)। कुछ व्यंजन-परिवर्तन भी प्राप्त हैं, यथा—हकीगत (हकीकत), रैन∼रन (रहन), पैरा (पहरा), घुरवा (घोड़ा)। बिटिया (बेटी), बिलइबा (बिल्ली), चिरइबा (चिड़िया), तेलनी (तेलिन)। घोरो (घोड़ा), घोरन (घोड़ों)। परसर्ग ये हैं—ने, नें (कर्ता), कों, खों (कर्म, सम्प्रदान) से, सें, सों (करण, अपादान), को, की, के (संबंध), में, मैं (अधिकरण)। सर्वनामों के कुछ विशिष्ट रूप हैं—मे, में, मो, मोय मोए; मोको, मेरो, मोरो; मोनो; हमारो, हमाओ। तूँ, तैं, तोय, तोए, तो; तो को, तेरो, तोरो, तोनो; तुमारो, तुमाओ। बो, ऊँ, (स्त्री०) वा; बे; ऊ, ऊँ, वा, ता; बिन। जो, (स्त्री०) जा; जे; ए; जा (=इस)। जा (=जिस), जे। अपन खों; अपनो। को, की। का, काये। कोऊ, काउ। 'होना' सहायक क्रिया इन रूपों में प्राप्त है—हों, आँउँ∼आँव; हें, आँय; हे आय; हो, आव (तुम हो)। हतो, हती, तो, ती; हते, हतीं, ते, तीं। हुहौं, होउँगो; हुहैं, होयेंगे; हुहै, होउगो; हुहैं, होउगे। परिनिष्ठित हिन्दी से भिन्न क्रिया रूप हैं—मैं पढ़त हों (पढ़ता/पढ़ रहा हूँ), तैं/बो पढ़त हे, हम/बे पढ़त हें, तुम पढ़त हो। मैं ने/तैं ने/बा ने पढ़ो (=पढ़ा), हम ने/तुम ने/उन ने पढ़ो। मैं/तैं/वो पढ़त हतो (पढ़ रहा था) हम/तुम/बे पढ़त हते। मैं ने, तैं ने/बाने पढ़ो तो (=पढ़ा था), हम ने/तुम ने/उन ने पढ़ो ते (=पढ़े थे)। मैं पढ़िहों (पढ़ूँगा), तैं/बो पढ़िहे, हम/बे पढ़िहें, तुम पढ़िहो। बुन्देली की कई उप-बोलियाँ हैं—पवारी ग्वालियर के उत्तरपूर्व, दतिया, समीपवर्ती क्षेत्र में पवार क्षत्रियों की प्रमुख बोली है। लोधाली/राठौर हमीरपुर, राठ परगना, जालौन की लोधी

जाति की मुख्य बोली है। खटोला पन्ना, समीपवर्ती क्षेत्र में, मध्यप्रदेश के कुछ भाग में बोली जाती है। बनाफरी बनाफर राजपूतों की बोली हमीरपुर के द. पू., बुन्देलखंड के उत्तर मध्य, पूर्व में बोली जाती है। कुंडी केन नदी के दोनों किनारों की बोली है। तिरहारी हमीरपुर ज़िले के उत्तरी भाग में प्रचलित है। निभट्टा जालोन ज़िले के कुछ भाग की बोली है। भदौरी/तोवरगढ़ी भदावर, तोवरगढ़ की बोली है। बालाघाट के लोधिये लोधी बोलते हैं। छिदवाड़ा, चाँदा, भंडारा के कोष्टियों की बोली कोष्ठी है। छिदवाड़ा, बुलडाना के कुम्भकारों की बोली कुम्भारी कही जाती है। नागपुर ज़िले में नागपुरी का प्रचलन है)।

(पन्ना की खटोला)—एक राजा कैं एक बेटी हती। राजा पूजा के लानैं एक बाबा राखे हते। और बाबा की कही बहुत मानत हते। (हमीरपुर की लोधान्ती/राठौरा)—एक कोऊ साहूकार रहै। वा चार जनैं घर मैं हते। साहूकार वा साहूकारिन वा साहूकार का बहू वा ब्याटा। (दतिया की पवारी)—एक साहूकार एक तलाब के किनारैं रेतो। एक दिन एक कंगाल साहूकार के इतैं माँगवे कौं आओ। (जिला झाँसी)—एक जने के दो मोड़ा हते। और ता मैं सें लोरे ने अपने दद्दा से कई धन में सें मेरो हिस्सा मो खों देइ राखो। (ज़िला बुलडाना की कुम्भारी)—एक आदमी को दो लड़का थे। नन्हो बाप को कव्हानो लागो बा मोरे हिस्सा की जीनगी मो का दे। (ज़िला छिंदवाड़ा की कोष्ठी)—कोई मनुष्य का दो पुत्र हतीं। उन में से छोटे ने पिता से कही दादा संपत्ती में से जो मोरो हिस्सा होय सो मो खे दे दे। (ज़िला नागपुर की नागपुरी)—एक आदमी खे दो पोर्‍या हते। ओ में को नन्हों लरका बाप खे किहे दादा मोरे हिस्सा को माल मो खे दे दे। (ज़िला बालाघाट की लोधी)—एक आदमी ख दो लड़का थे। ओ में से छोटा ने बाप से कहा हे बाप सम्पत में जो मेरा हिस्सा हो सो मेरे को दे देव। (चरखारी की बनाफरी)—काहू कै दुइ लरका हतैं। लहुरे लरका अपनैं बाप सैं कहो कै बाप मोर हींसा बाँट द्या। (ज़िला हमीरपुर की कुण्ड्री)—ई मनई के द्वो लामड़ा रहैं। उह माँ से हलके ने बाप से कहो ओ रे बाप धन माँ से जो म्वारो हीस्सा होय सो मोहैं दै राख। (ज़िला ग्वालियर की भदौरी)—काऊ आदमी के द्वैं लरका हे। लुहरे लरका ने अपने बाप सों कही ददा हमारो हिसा देउ।

(6) **अवधी** अवध (फ़ैज़ाबाद, गोंडा, प्रतापगढ़, लखनऊ, जौनपुर, मिर्ज़ापुर, इलाहाबाद ज़िला) में बोली जाती है। अवध के अन्य नाम कोशल के आधार पर इसे कोशली भी कहा जाता है। अवध प्रदेश के बैंसवाड़ा क्षेत्र (बैंस क्षत्रियों की भूमि) के आधार पर कभी-कभी इसे बैंसवाड़ी भी कहा जाता है। पूर्वी अवधी का क्षेत्र है—गोंडा, अयोध्या, फ़ैजाबाद जनपद; पश्चिमी अवधी का क्षेत्र है—लखनऊ, कानपुर, इटावा। फ़र्रुखाबाद, कनौज, इटावा में इस पर ब्रज का प्रभाव है। अवधी में क्रिया कर्म का अनुगमन नहीं करती। ए, ओ का ह्रस्व उच्चारण य, व वत् होता है। या, वा दीर्घ रूप भी प्रचलित हैं। तेहि~त्यहि, मोहि+म्वहि, मौहि+म्वाहि विकल्प

रूप भी प्राप्त। संज्ञा शब्दों के प्रायः तीन रूप (ह्रस्व, दीर्घ, दीर्घतर) प्राप्त, यथा—घोड़ा, घोड़बा, घोड़ौना; कुत्ता, कुतबा, कुतौना; नारी, नरिया नरीवा। रूप-प्रक्रिया—घोड़वा, नारी, घर; घोड़वे, घोड़वन, नारी, घर; घोड़वा, नारी, घर; घोड़वन, नारिन, घरन। परसर्ग—क, का, काँ (कर्म, सम्प्रदान), बाड़े (सम्प्र०) से, सेनी, सैन (करण, अपादान), कर, केर, के, कै (संबंध), में, म, पर (अधिकरण)। परिनिष्ठित हिन्दी से भिन्न प्राप्त सर्वनाम-रूप—मो, मोर, हमरे, हमार; तैं, तो, तोर; तुमरे, तुमार, तोहार, तोहरे; आपु आपकर। ऊ, वैं, ओन, ओ; ओ, ओह, ओहि, ओन; ओकर, ओन कर। ई, यू, ए; ए, एह, एहि; ए कर, इन कर। केह, केऊ, कौनो, कवनो; केऊ, केहू। जे, जवन, जौन; जे; जेन, जेन्ह; जे कर, जेन कर। के, कवन; केन्ह, के कर, केन कर। का, काव; कयि, कइ, काहे। आपु, आपन; अपने। -त (लिखत पढ़त), -इ (चलि, पढ़ि=पढ़ कर) -अब (देखव पढ़ब=पढ़ना), -आ, -ए (देखा, पढ़ा, देखे, पढ़े)। 'होना' के स्थान पर 'बाट' का प्रयोग, यथा—हूँ बाट्येउँ, अहेउँ (स्त्री० बाटिउँ, अहिउँ) बाटी, अही (स्त्री० बाटिन, अहिन), बाटस, अहे, अहस (स्त्री० बाटिस), बाटेव, बाट्यो, अहेव, अहा (स्त्री., बाटिव, अहिव); बाटइ, आ, अहै, है, आय (स्त्री० बाटईं, अहईं), बाटि, अहीं, अहईं (स्त्री, बाटीं, अहईं)। था=रहेउँ (स्त्री० रहिठैं), रहे, रहा (स्त्री. रहीं); रहेस, रहिस (स्त्री. रहिस); रहेउ, रहा (स्त्री. रहीं); रहेस, रहिस (स्त्री. रही), रहेन, रहिन, रहे (स्त्री. रही)। पढ़त अहेउँ (मैं पढ़ता हूँ/पढ़ रहा हूँ), पढ़त अही; पढ़त अहे, पढ़त अहें; पढ़त अहै, पढ़त अहीं। पढ़ौं (यदि मैं पढ़ूँ), पढ़ी; पढ़, पढ़स; पढ़उ, पढ़ब; पढ़इ; पढ़ै। पढ़ेउँ (मैं ने पढ़ा), पढ़ा; पढ़ेस, पढ़िस; पढ़ेउ, पढ़ा (तुम ने पढ़ा), पढ़ेन, पढ़िन (उन्हों ने पढ़ा)। पढ़त रहेउँ (मैं पढ़ रहा था), पढ़त रहे; पढ़त रहेस; पढ़त रहा। पढ़तेउँ (यदि मैं पढ़ता होता) पढ़ित; पढ़तेस, पढ़तेहु; पढ़त, पढ़तेन। पढ़ेउँ हौं (मैं ने पढ़ा है), पढ़े अहीं; पढ़ेस है, पढ़उ हैं; पढ़ेस है, पढ़ेन हैं। पढ़बूँ (पढ़ूँगा), पढ़ब; पढ़बे, पढ़बो; पढ़िहै, पढ़िहैं।

(ज़िला प्रतापगढ़)—कौनौं मनई के दुइ बेटबा रहिन औ उन माँ से लहुरवा अपने बाप से कहिस दादा हो माल-टाल माँ से जवन हीसा हमार निकसै तवन हम का दै द्या। (ज़िला उन्नाव)—याक जने केर दुइ बेटवा रहैं। बोहि माँ मते छोटकवा अपने बाप ते कहिस कि मोरे बाप बसुधा का मोर जउन होत है बखरा सो महि का दै देउ। (ज़िला फ़ैज़ाबाद)—एक मनई के दुइ बेटवे रहिन। ओह माँ से लहुरा अपने बाप से कहिस दादा धन माँ जवन हमार बखरा लागत होय तवन हम का दे दअउरवै आपनधन उन का बाँट दिहिन। (ज़िला लखनऊ का दक्षिण क्षेत्र)—एकु मनई के दुइ बेटवा रहैं। वहि माँ छोटकवा बेटवा अपने बाप ते कहिस कि दादा तुम्हरी गिरस्ती माँ जौनु हमार हींसा होइ तौनु हम का बाँटि देउ।

(7) **बघेली** या बघेलखंडी क्षेत्र) या रीवाँई (रीवाँ जनपद) बोली छोटा नागपुर, मण्डला, मिर्ज़ापुर, जबलपुर, फ़तेहपुर, हमीरपुर, बाँदा क्षेत्र में बोली जाती है। तानसेन, हरीनाथ, महाराज विश्वनाथसिंह, राजा रघुराजसिंह बघेली क्षेत्र

के प्रसिद्ध कवि, गायक हुए हैं । इस भाषा के लिए देवनागरी के अतिरिक्त कैथी लिपि का भी प्रयोग किया जाता है । बघेली में ए, ऐ, ओ, औ क्रमशः 'य, या, व, वा' वत् उच्चरित होते हैं । बघेली की रूप-प्रक्रिया इस प्रकार की है—घ्वाड़ (=घोड़ा), घ्वाड़े, घ्वाड़इँ, घ्वाड़ै; घ्वाड़, घ्वाड़न । परसर्ग—का, कहा (कर्म, सम्प्रदान), से, ते, तार (करण, अपादान), कर (संबंध), म (अधिकरण) । सर्वनाम—मँय, हम्ह, म्वहि, म्वाँ, म्वारे, हम्ह, हम्हारे; म्बार, हम्हार । तँय, तुम्ह, त्वहि; त्वाँ, त्वारे, तुम्ह; तुम्हारे; त्वार, तुम्हार । आप, अपना, अपाने वह, ओ, उन्ह; वहि, उन, उन्ह; वहि कर, उन कर । या, ऐ, एन्ह; यहि, या, यन, यन्ह; ए, यहि कर, यन कर । जौन, जऊनँय, जेन्ह । जऊनै, ज्यहि, जेहि, ज्या, जेन्ह, ज्यन, ज्यन्ह; ज्यहि कर, जेन्ह कर । कऊन, केन्ह; क्यहि, केहि, क्या, क्यन, क्यन्ह, केन्ह; क्याहि कर, केन्ह कर । काह; कई, कयी । कोऊ, कउनो । 'होना' सहायक क्रिया—हूँ, आँ, हैं; है, हौ, अहेन; है, आ, हैं, अहेन, अँहैं, आँ । रहेऊँ रहये (=था), रहेन, ते; रहा, रहे, ते, तो, ता । होब्येउँ (=हूँगा), होव, हौवै; होइहेस, होवा; होई, होंयिहैं । -त (पढ़त, देखत), -अ (देख, पढ़=पढ़ा), -कै (पढ़कै, देखकै), -ब (पढ़ब, देखब, लिखव=लिखना) । मँय पढ़त हूँ, हम्ह पढ़त हैं; तँय/वह पढ़त है, तुम्ह पढ़त अहेन, ओ पढ़त अहैं; मँय पढ़ेहुं (=मैं ने पढ़ा) (स्त्री० मँय पढ़ी), हम्ह पढ़ेन (स्त्री० हम पढ़िन), तँय पढ़ेह (स्त्री० पढ़िह), तुम्ह पढ़ेंह (स्त्री० पढ़िह), वह पढ़ी (स्त्री० पढ़ी), ओ पढ़ेन (स्त्री० पढ़िन) । मँय पढ़िऊँ (=मैं पढ़ूँगा), हम्ह पढ़िब/पढ़ब/पढ़बै, तँय पढ़िहेस/पढ़िवेस, तुम्ह पढ़िबा, वह पढ़ी, ओ पढ़िहैं । मँय पढ़ौं (=मैं पढ़ूँ), हम्ह पढ़न, तँय पढ़स, तुम्ह पढ़न/पढ़व, वह पढ़ि, ओ पढ़य । मँय पढ़त हूँ/आँ (=मैं पढ़ रहा हूँ), हम पढ़त्ये हैं, तँय पढ़त है, तुम्ह पढ़त हौ/अहेन, वह पढ़त है/आ, ओ पढ़त हैं/आँ । मँय पढ़त रहेउँ (=मैं पढ़ रहा था), हम्ह पढ़त तें/रहेन, तँय पढ़त तें/रहा, तुम्ह पढ़त तें/रहेन, वह पढ़त ते/ता/रहा, ओ पढ़त तें/रहेन । मँय पढ़ हौं (=मैं ने पढ़ा है), हम्ह पढ़ हैं, तँय पढ़ेस है, तुम्ह पढ़े हौ, वह पढ़ेस है, ओ पढ़े अहेन । मँय पढ़त्येहुँ (=यदि मैं पढ़ा होता), हम्ह पढ़त्येन, तँय पढ़त्येह, तुम्ह पढ़त्येंह, वह पढ़त्येइ, ओ पढ़त्येन । मँय पढ़ेहुँ ते/ता/रहा (=मैं ने पढ़ा था), हम्ह पढ़ेन तें/रहेन, तँय पढ़ेह ते/ता/रहा, तुम्ह पढ़ेह तें/रहेन, वह पढ़ी ते/ता/रहा, ओ पढ़ेन तें/रहेन । बघेली की कई उपबोलियाँ हैं—'गोंडवानी' गोंडवाना की गोंड जनजाति की बोली माँडला, रीवाँ में बोली जाती है । कुंभारी भंडारा के कुम्हारों की बोली है । बुन्देली बाँदा की बघेली मिश्रित बोली है । तिरहारी फ़तेहपुर, बाँदा, हमीरपुर के ज़िलों की बोली है । गहोरा बुन्देली से प्रभावित बाँदा की बोली है । जुड़ार भी बाँदा में प्रचलित है । बनाफरी हमीरपुर में और मरारी मंडला की बोली है । पोंवारी बालाघाट तथा भंडारा में और ओझी छिन्दवाड़ा के द्रविड़-गोंडों में बोली जाती है ।

(ज़िला मंडला की गोंडवानी)—कोई आदमी के दो लरका रहे । उन कर में से नान लरका अपन दादा से कहिस हे दादा सम्पत में से जो मोर हिसा हो मो

ला दो। (ज़िला भंडारा की कुम्भारी)—एक माणुस ला दो पोर्या रहे। न्हान्हो पोर्या कहते बाबा आधो हिस्सा मो ला दे। (रीवाँ की बघेली)—एक मनई के दुइ लरिका रहैं। तौने मा छोटकौना अपने बाप से कहिस दादा धन मा जौन मोर हींसा होइ तौन मोहीं दै देई। (ज़िला बाँदा की तिरहारी)—कौनेउ मड़ई के दुइ गद्याल रहैं। उन अपने बाप तन कहिन की अरे मोरे बाप तैं हमरे हींसन का माल टाल हमैं बाँटि दे। (ज़िला बाँदा की गहोरा)—कौनौ मड़ई के दुइ लरिका रहैं। उइँ लरिका अपने बाप से कहिन कि अरे बाप तैं हमरे हींसा कै जजाति हम का बाँट दे। (ज़िला बाँदा की जुड़ार)—कौनेउ मँड़ई के दुई बेटवा रहैं। जिन्हन ने अपने बाप से कहो कि अरे बाप मोरे हींसा का ह्यारा मोहीं दै दे। (ज़िला हमीरपुर की बनाफरी)—फलनवाँ मड़ई के दुई लरिका हें। वह माँ ते छुटवा ने नाना से कहेसु कि जमा माँ ते म्वार हीसा दइ देइ। (ज़िला बालाघाट की मरारी)—एक आदमी के दो टुरा रहे। ओ को से में छोटो टुरा ने अपने दाऊ से कहिस हे दाऊ धन में से जो मोरो हीसा है वो मो ला दे दे। (ज़िला भंडारा की पोंवारी)—एक मानुस ला दुई बेटा होता ओ को नहानो बेटा बाबा ला कहोत होतो, बाबा मोरो माल मत्तो का हिसा मोरो तोड दो। (ज़िला छिंदवाड़ा की ओझी)—एक आदमी के दुइ डोका रहके। छोटवे अपन बाप से गुटया इस बाप मोर हिस्सा मो खे दे दे।

(8) छत्तीसगढ़ी के अन्य क्षेत्रीय नाम है—खलोटी∼खल्टाही (बालाघाट ज़िले में), 'लरिया' सम्भलपुर के निवासियों द्वारा छत्तीसगढ़ को लरिया कहने के कारण। छत्तीसगढ़ी बिलासपुर, काँकेर बालाघाट; नंदगाँव, खैरागढ़, चुईखदान, कवर्धा, रायगढ, सारंगगढ, कोरिया, सरगुजा, उदयपुर, जशपुर, सम्भलपुर का पश्चिमी भाग, रायपुर में बोली जाती है। छत्तीसगढ़ी की रूप प्रक्रिया है—मनुख <मनुष्य, मनुखमन, बइला∼बैला, बइलन, टूरा (=लड़का), टूरामन। सब, सबो, सब्बो, जमा, जम्मा लगा कर भी बहुवचन बनाते हैं। का, ला, बर (कर्म), ले, से (करण, अपादान), बर; का, ला (सम्प्रदान), के (संबंध), माँ (अधिकरण)/सर्वनाम—में, मैं, हम, हम मन, हम्मन; मो, मोर, हम, हमार; मोर, हमार। तें, तैं, तुम, तुम मन, तुम्मन; तो, तोर, तुम्ह, तुम्हार। (आदरार्थ) तु, तुह, तुहमन; तुह, तुहार, तुहमन तुहार मन। वो, उन, वो मन; वो, वो कर, उन, उन्ह; वो के, वो कर, उन्ह के उन्ह कर। अपन, अपन-अपन। ये, इया, इन, ये मन; ये, ये कर, इन, इन्ह; ये के, ये कर, इन्ह के, इन्ह कर। जे, जोन, जउन, जिन, जे मन; जे, जोन, जउन, जिन जिन्ह; जे कर, जिन्ह के, जिन्ह कर। कोन, कउन, कोन मन; का, कोन, कउन, कोन मन; का कर, कोन के, कोन मन के। का, काये, का-काह; काहे, काये, का, काहे-काहे; काहे के, काहे-काहे के। कोनो, कउनो, कोनो-कोनो; कोनो, कोनो-कोनो; कोनो के, कोनो-कोनो के। कुछू, कुछू-कुछू; कुछू, कुछू-कुछू; कुछू के, कुछू-कुछू के। आपुस, आपुसी। 'होना' के रूप—(अशिष्ट) हवउँ (=हूँ), हवस; हवस, हवौ; हवै, हवैं। (शिष्ट) हौं,

आँव, हन; हस, हौ; है, अय, हैं। रहेंव, रह्यौं (=था), रहेन; रहे, रहेंस, रहस, रहेव; रहिस, रहै, रहय, रहिन, रहै, रहैय। हूँ, हौं (=हूँगा), बो, अब; बे, हू, हौ; ही, है, हीं, हैं। देखन, देखब; देखत, देखते; देखे; देख के। सार्वनामिक विशेषण 'इतका, उतका, तेतका, अइसन, जैसन, कैसन' आदि हैं। स्थानवाची शब्द हैं—इहाँ, उहाँ, जहाँ, तहाँ, आगू, पाछू आदि। मैं पढ़त हौं (=मैं पढ़ता/पढ़ रहा हूँ), हम्मन पढ़त हन; तैं पढ़त हस, तुहमन पढ़त हौ; वो पढ़त है, वो मन पढ़त हैं। मैं पढ़ौं (=यदि मैं पढ़ूँ), हम्मन पढ़न; तैं पढ़स, तुहमन पढ़न; वो पढ़ै/पढ़य, वो मन पढ़ैं/पढ़ैंय। (आज्ञा/निवेदन) हम्मन पढ़ी, तैं पढ़, तुहमन पढ़ी; वो पढ़े, वो मन पढ़ैं। मैं पढ़ हूँ/पढ़िहौं (=मैं पढ़ूँगा), हम्मन पढ़वो/पढ़वों/पढ़िहन/पढ़व, तैं पढ़वे/पढ़िवे, तुहमन पढ़हू/पढ़िहौ; वो पढ़ही/पढ़िहै, वोमन पढ़हीं/पढ़िहैं। मैं पढ़ेउ/पढ़ेउँ (मैंने पढ़ा), हम्मन पढ़ेन; तैं पढ़े/पढ़ेस, तुहमन पढ़्यो; वो पढ़िस, वोमन, पढ़िन। मैं पढ़तेंव/पढ़त्यो (=यदि मैं पढ़ा होता), हम्मन पढ़तेन; तैं पढ़ते/पढ़तेस, तुहमन पढ़तेव; वो पढ़तिस, वोमन पढ़तिन । मैं पढ़त रहेंव (=मैं पढ़ रहा था), हम्मन पढ़त रहेन, तैं पढ़त रहे/रहेस/रहस, तुहमन पढ़त रहेव; वो पढ़त रहिस/रहै/रहय, वो मन पढ़त रहिन/रहैं/रहैय। मैं पढ़े हवौं/हौं (= मैं ने पढ़ा है), हम्मन पढ़े हवन/हन; तैं पढ़े हवस/हस, तुहमन पढ़े हवौ/हौ;, वो पढ़े हवै/है, वो मन पढ़े हवैं/हैं। मैं पढ़े रहेंव (=मैं ने पढ़ा था), हम्मन पढ़े रहेन; तैं पढ़े रहे/रहेस/रहस, तुहमन पढ़े रहेव; वो पढ़े रहिस/रहै/रहय; वो मन पढ़े रहिन/रहै/रहैय। छत्तीसगढ़ी की कई उपबोलियाँ हैं—बालाघाट, रायपुर, विलासपुर, सम्बलपुर ज़िले की 'बैगानी'; कवर्धा (प्राचीन रियासत) की 'बिंझवारी'; पटना (प्राचीन रियासत) की 'कलंगा'; कोरिया, सरगुजा, उदयपुर (प्राचीन रियासतों) की 'सरगुजिया'; जशपुर (प्रा० रिया०) के कोरवों की 'सदरी कोरवा'; सोनपुर, पटना (प्रा० रिया०) की 'भुलिया'। हलवी, बस्तरी, भुँजिया, सदरी कोल बोलियों में अन्य भाषाओं/बोलियों के तत्त्व अधिक मिल गए हैं।

(ज़िला रायपुर की लरिया)—कोनो आदमी के दू छोकरा रहिस है। वो माँ के सब से छोटे हर अपन बाप से कहिस के जोन मोर हिस्सा होय वो ला दे दे। (ज़िला विलासपुर की लरिया)—को नौ मनखे के दुइ बेटवा रहिन। उन माँ ले छोटका हर अपन ददा ले कहिस—ददा मालमत्ता के जौन हींसा मोर बाँटा माँ परत होही तौन मो का दे दे। (प्रा० रिया० खेरागढ़ की लरिया)—मैं बैला ला जबरदस्ती नइ लेंव। मैं घर में नइ रहेउँ। कोतवाल रुपिया ले के फिर गइस। (ज़िला बालाघाट की खल्टाही)—कोनै मनखे के दूझन बेटा रहिस। वो मा ले छोटे बेटा हर ददा से कहिस अगा दद्दा जौन, हमार धन है ओ मा ले मोर बाटा ला दे। (रिया० जशपुर की सरगुजिया)—झने मइन से कर दू गोट बेटा रहि न। छोटा बेटा हर आपन बाप हर ला कहिस कि ए दाऊ माल-जाल-मन ला जे मोर बाँटा होथे से मो

ला दे। (रिया० जशपुर की सदरी कोखा)—गोटेक अब दिन कर दू गोट सौआ रहिन। सोट सौआ हर बुढा हर के कहिस ए बाबा सब धान-पान डाँगर गरू जे आहे से कर बाँटा मो के दे। (जिला बालाघाट की बैगानी)—नइना ओ डउका के दोई छवा है ना। वो में से नान छवा बाप को कहिस, ये बाबा धन मा मोर बाटा है तो दै दे। (प्रा० रिया० सारंगगढ़ की बिंझवारी)—गुटे लोक के दुइ-टा पीला रहेस। जे अ कर सुरू बेटा तार बुआ के कहिस बुआ धन दुगानीर बाटा जो मोर हिस्सा के आहे मो के दे।

29
हिन्दी-व्याकरण परम्परा

भाषा-अधिगम की दृष्टि से मातृभाषा-भाषी बच्चों को किसी सैद्धान्तिक व्याकरण की आवश्यकता नहीं होती किन्तु द्वितीय भाषा को सीखने के लिए उस भाषा के सैद्धान्तिक व्याकरण की आवश्यकता का अनुभव किसी-न-किसी रूप में प्राय: सभी प्रौढ़ों को होता है। भाषा-अधिगम के इस सिद्धान्त के आधार पर हिन्दी-व्याकरण परम्परा का इतिहास 18वीं शती ई० के अन्त में कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यक्ष डॉ० J. B. Gilchrist के अँगरेज़ी में लिखे व्याकरण An Easy and Familiar Introduction to the Popular Language of Hindustan, 1798 से माना जा सकता है। J. Shakespear का A Grammar of the Hindustani Language लन्दन से 1818 में और W. Yates का Introduction to the Hindoostanee Language, 1827 में Cale से प्रकाशित हुआ। ये व्याकरण अँगरेज़ी व्याकरणों की शैली के अनुरूप लिखे गए थे जिन में हिन्दी का स्वरूप यथार्थ से पूरी तरह मेल नहीं खाता था। इन्हीं दिनों प्रेमसागर के रचयिता लल्लू जी लाल ने 'कवायद-हिन्दी' नाम से एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। लगभग 25 वर्ष बाद कलकत्ता के पादरी आदम साहब की लिखी व्याकरण की छोटी-सी पुस्तक कई वर्षों तक स्कूलों में प्रचलित रही। प्रथम स्वतन्त्रता-आन्दोलन के कुछ दिनों बाद शिक्षा विभाग ने पं० रामजसन की 'भाषा तत्त्व बोधिनी' प्रकाशित की। ये सभी पुस्तकें अँगरेजी/संस्कृत, हिन्दी की मिश्रित प्रणाली पर आधारित रहीं। पं० श्रीलाल के 'भाषा चन्द्रोदय', बाबू नवीनचन्द्र राय के 'नवीन चन्द्रोदय' (1869 ई०), पं० हरिगोपाल पाध्ये के 'भाषा तत्त्व दीपिका' पर संस्कृत/मराठी/अँगरेज़ी का प्रभाव रहा। राजा शिवप्रसाद के 'हिन्दी व्याकरण' (1875 ई०) में पहली बार हिन्दी, उर्दू के स्वरूप पर अँगरेज़ी ढंग से प्रकाश डाला गया। इन्हीं दिनों भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी बच्चों के लिए हिन्दी का एक छोटा-सा व्याकरण लिखा।

पादरी एथरिंगटन का 'भाषा भास्कर' परवर्ती व्याकरण-लेखकों के लिए कई दशाब्दियों तक अनुकरण का आधार बना रहा। 20वीं शती के आरम्भ में कई छोटे-

बड़े हिन्दी-व्याकरण प्रकाश में आए, जैसे—'हिन्दी व्याकरण' (पं० केशवराम भट्ट), 'भाषा प्रभाकर' (ठाकुर रामचरणसिंह), 'हिन्दी व्याकरण' (पं० रामावतार शर्मा), 'भाषा तत्त्व प्रकाश' (पं० विश्वेश्वर दत्त शर्मा), 'प्रवेशिका हिन्दी व्याकरण' (पं० रामदहिन मिश्र), 'विभक्ति विचार' (पं० गोविन्द नारायण मिश्र)। इन्हीं दिनों लंदन से J. Beams का A Comparative Grammar of Modern Languages of India Vol. I—III (1872-1879), S. H. Kellogg का A Grammar of the Hindi Language, 3rd ed. (1955), J. Platts का A Grammar o the Hindustani or Urdu Language, 4th impr (1904), R. Hoernle का A Comparative Grammar of the Gaudian Language (1880). प्रकाशित हुआ। E. Pincott ने Hindi Manual (1890, London) में, D. C, Phillott ने Notes on the Statical and some other Participles in Hindustani (BSOAS Vol. IV, pt. I, 1976) में, E. Greaves ने Hindi Grammar, 2nd ed. (Allahabad, 1933) में, M. Kempson ने The Syntax and Idioms of Hindustani (London, 1922) में, T. G. Bailey ने Studies in North Indian Languages (London, 1938) में और H. Scholberg ने Concise Grammar of Hindi Language (London, 1950) में हिन्दी भाषा के विभिन्न पहलुओं पर मौलिक चिन्तन का प्रयास किया। इस के बाद भी कुछ अँगरेज़ लेखकों ने हिन्दी भाषा-व्याकरण के विभिन्न पक्षों को गहराई तथा विस्तार के साथ देखने का प्रयास किया है।

भारत में काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ने अपनी स्थापना के साथ ही सं० 1950 वि० में ही हिन्दी के एक अच्छे सर्वांगीण व्याकरण के अभाव का अनुभव करते हुए एक वर्ष बाद ही एक स्वर्णपदक प्रदान करने की घोषणा कर दी थी। श्री गंगाप्रसाद, श्री रामकर्ण शर्मा-रचित व्याकरणों में सर्वांगीणता का अभाव पाने पर पं० कामताप्रसाद 'गुरु' को सं० 1974 वि० में एक सर्वांगीण हिन्दी व्याकरण लिखने का भार सौंपा गया। सं० 1977 वि० में पहली बार पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित 'गुरु' का 'हिन्दी व्याकरण' परवर्ती हिन्दी व्याकरण लेखकों के लिए आज तक आधार स्तम्भ का कार्य कर रहा है। यह व्याकरण अँगरेज़ी तथा संस्कृत व्याकरण-प्रणाली का मिश्रित रूप होने पर भी विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से लगभग पूर्ण है। सभा के आग्रह पर पं० किशोरीदास वाजपेयी ने 'हिन्दी शब्दानुशासन' (वाराणसी, सं० 2014 वि०) में हिन्दी की व्याकरण-प्रणाली के सम्पूर्ण, अखण्ड वर्णन का नया प्रयास किया जिस में अष्टाध्यायी और महाभाष्य का अनुसरण करने की चेष्टा तो की गई है किन्तु यह हिन्दी-व्याकरण को एकीकृत प्रणाली में प्रस्तुत नहीं कर सका है।

भारत को स्वतन्त्रता मिलने के दिनों से ही समकालीन हिन्दी भाषा की

विभिन्न संरचनागत व्यवस्थाओं पर विभिन्न विश्वविद्यालयों की डॉक्टरेट उपाधि के लिए कई शोध प्रबन्ध लिखे गए हैं। स्वतन्त्र रूप से भी हिन्दी भाषा-व्याकरण के विभिन्न पहलुओं पर काफ़ी कुछ प्रकाशित हुआ है जिस की संख्या सैकड़ों में है। एकांगी तथा सर्वांगीण दृष्टि से लिखे गए उल्लेखनीय कुछ ग्रन्थों के नाम हैं—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी भाषा का इतिहास' (प्रयाग 1958) डॉ० उदयनारायण तिवारी 'हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास' (प्रयाग, सं० 2012), डॉ० भोलानाथ तिवारी 'हिन्दी भाषा का सरल व्याकरण' (दिल्ली 1958) 'हिन्दी भाषा' (इलाहाबाद, 1966) डॉ० मुरारीलाल उप्रैतिः 'हिन्दी में प्रत्यय विचार' (आगरा, 1964), डॉ० सुधा कालरा 'हिन्दी वाक्य-विन्यास' (इलाहाबाद, 1971), दुनीचन्द 'हिन्दी व्याकरण' (होशियारपुर, 1951), ना० नागप्पा 'अभिनव हिन्दी व्याकरण' (दिल्ली, 1971) डॉ० हरदेव बाहरी 'व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण' (इलाहाबाद), 'हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप' (इलाहाबाद), रामदेव 'व्याकरण-प्रदीप' (इलाहाबाद), रामचन्द्र वर्मा 'मानक हिन्दी व्याकरण' (वाराणसी, 1970), ओमप्रकाश शर्मा 'हिन्दी व्याकरण नव मूल्यांकन' (दिल्ली, 1977), डॉ० न० वी० राजगोपालन 'हिन्दी का भाषा वैज्ञानिक व्याकरण' (द्वि० संस्क० 1979, आगरा), डॉ० वी० रा० जगन्नाथन् 'प्रयोग और प्रयोग' (दिल्ली), डॉ० सूरजभानसिंह 'हिन्दी का वाक्यात्मक व्याकरण (दिल्ली), डॉ० ल० ना० शर्मा 'हिन्दी संरचना का अध्ययन-अध्यापन' (तृ० संस्क० 1989, आगरा)।

रूस में 1897 ई० से ही हिन्दी भाषा के विभिन्न पक्षों पर चिन्तन तथा लेखन कार्य होता चला आ रहा है। डॉ० ज़ाल्मन दीमशित्स ने 'हिन्दी व्याकरण' (रादुगा प्रकाशन, मास्को 1983) में रूसी लेखकों के कार्य की विस्तृत सूचना दी है। डॉ० दीमशित्स रचित 'हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा' का प्रकाशन 1966 (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली) में हुआ था।

आज भी हिन्दी-व्याकरण की छोटी-बड़ी बीसियों पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं जो किसी-न-किसी रूप में पूर्ववर्ती ग्रन्थों के आधार पर लिखी गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में भी 4-5 ग्रन्थों को ही सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में आधार बनाया गया है। पं० 'गुरु' का व्याकरण 20वीं शती के अन्तिम दशक की हिन्दी की दृष्टि से पुराना पड़ गया है। पं० वाजपेयी ने व्याकरण की प्रतिपादन-शैली व्याकरण-लेखन शैली से कटी-कटी लगती है। डॉ० दीमशित्स के दीर्घाकार व्याकरण की प्रस्तुति-शैली और प्रतिपाद्य वस्तु-विश्लेषण में पर्याप्त जटिलता है। डॉ० जगन्नाथन् ने व्याकरण के कथ्य को कोश के रूप में प्रस्तुत किया है, अतः उस में क्रमिकता का अभाव होना स्वाभाविक है। डॉ० राजगोपालन् का व्याकरण रूपान्तरण व्याकरण की शैली पर रचित होने के कारण केवल भाषाविज्ञान के शोध छात्रों के लिए ही उपयोगी अहा

जा सकता है । अभी भी हिन्दी में प्रचलित अनेकानेक व्याकरणों में या तो कथ्य और विश्लेषण की दृष्टि से भ्रम एवं अपूर्णता है या भाषावैज्ञानिक वाग्जाल की अति जटिलता । विश्लेषण के लिए भाषावैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृत और अँगरेज़ी प्रणाली का समन्वय करते हुए हिन्दी को एक स्वतन्त्र तथा समुन्नत भाषा स्वीकार कर सरल शैली में प्रस्तुत किए जानेवाले मौलिक व्याकरण की अभी भी हिन्दी में कमी खटक रही है ।

30
पारिभाषिक शब्दावली
(हिन्दी-अँगरेज़ी)

अकर्तृवाच्य	Non-active Voice
अकर्मक	Intransitive
अक्षर	Syllable
अक्षर-विन्यास/अक्षरी	Spelling
अगणनीय	Non-countable
अग्र स्वर	Front Vowel
अघोष	Voiceless
अंक	Numeral
अज्ञात व्युत्पत्तिक शब्द	Word of Unknown Etymology
अतिभाषा	Meta-language
अधिकरण	Locative
अधिखंडीय	Supra Segmental
अननुमेय	Impredictable
अनिवार्य	Obligatory
अनिश्चयवाचक	Indefinite
अनुकरणात्मक	Imitative
अनुक्रम	Sequence
अनुतान	Intonation
अनुनासिक	Nasal/Nasalized
अनुनासिकता	Nasalisation
अनुमेय	Predictable
अनेकार्थक/अनेकार्थी	Homonym
अन्तरण	Transfer
अन्तरराष्ट्रीय ध्वन्यात्मक वर्णमाला	I. P. A. (International Phonetic Alphabet)
अन्तर्निहित	Inherent

अन्तर्वर्ती	Parenthesis
अन्तस्थ/अर्ध स्वर	Semi Vowel
अन्त्य	Terminal
अन्विति (/अन्वय/अनुवर्तन)	Agreement / Concordance /Co-ordination
अपवाद	Exception
अपादान	Ablative
अपूर्णताबोधक	Non-perfective
अप्राणिवाचक	Inmate
अभिधान	Name/Nominative
अभिधेयार्थ/वाच्यार्थ/केन्द्रीय अर्थ	Central meaning
अभिलक्षण	Feature/Characteristic
अभिव्यक्ति	Expression
अभिशासन	Government
अभ्यन्तर	Internal
अभ्यन्तर विवृति	Internal Open Juncture
अर्थ/आशय	Meaning
अर्ध विराम	Semi Colon
अर्ध विवृत्त	Half Open
अर्ध संवृत	Half Closed
अर्ध स्वर	Semi Vowel
अलिजिह्‌वा	Uvula
अलिजिह्‌वीय	Uvular
अल्पप्राण	Un-/Non-aspirated
अल्पविराम	Comma
अवरोहारोह	Falling-Rising
अवरोही	Falling
अविकल्प	Non-optional
अविकारी	Indeclinable
अवैयक्तिक	Impersonal
अवृत्तमुखी/अवर्तुलित	Non-rounded (/spread)
अव्यय	Indeclinable
असमर्थताबोधक	Inabilitative
अस्तित्ववाचक वाक्य	Existential/Copula sentence
आगत शब्द	Loan word

आक्षरिक	Syllabic
आघात	Accent
आज्ञावाचक	Imperative
आदरसूचक	Honorofic
आदेश	Order
आरम्भक	Introductory
आरोहावरोह	Rising-Falling
आरोही	Rising/Raising
आर्की	Archi
आवृत्ति	Frequency
आवृत्तिवाची	Frequencial/Repetetive
आवेग	Imotion/Interjection
आशय	Meaning/Purpose
आसत्ति	Immediate (Constituents)
उच्च-निम्न	High-low
उच्चार	Utterance
उच्चारण अवयव	Organs of speech/Vocal organs
उच्चारण करण	Instrument of speech/Articulation
उच्चारण प्रयत्न	Manner of Articulation
उच्चारण बिन्दु (/स्थान)	Point or place of Articulation
उच्चारणिक	Articulatory
उत्क्षिप्त	Flapped
उत्तमावस्था	Superlative
उत्तराधर क्रम	Hierarchy
उत्तरावस्था	Comparative
उधार-शब्द	Loan word
उद्देश्य	Subject/Aim
उद्देश्य विशेषण	Subjectival Adjective
उद्धरण चिह्न	Inverted Commas
उपयुक्त	Appropriate
उपवाक्य	Clause
उपसर्ग	Prefix
उभयलिंग	Common gender
ऊनार्थक	Diminutive
ऊष्म	Sibilent

एकक (इकाई)	Unit
एकल	Non-Conjunct/Simple
एकवचन	Singular number
ओठ/ओष्ठ	Lip
ओष्ठ्य	Labial
औपचारिक	Formal
कठोर तालु	Hard Palate
कंठ्य	Velar/Guttural
कंपन	Vibration
करण (कारक)	Instrumental (Case)
कर्ता	Subject/Nominative/Doer
कर्ता-कर्म-निरपेक्ष	Not Conditioned by subject or object
कर्तृरि प्रयोग	Active use/subjectival Concordance
कर्तृवाच्य	Active Voice
कर्म (कारक)	Object/Objective/Accusative
कर्मणि प्रयोग	Objectival Concordance/Passive use
कर्मवाचक	Objectival
कल्पित	Imaginary
कहावत	Proverb
कार्यबोधक क्रिया	Verb of Action
कार्यशील	Functional
काल	Time/Tense
कालवाचक	Temporal
कृदन्त	Participle/Agentive
कृदन्ती विशेषण	Participle adjective
केन्द्रक	Central
कोटि	Category
कोमल	Lenis/Tender/Soft
कोमल तालू	Soft Palate/Velum
कोश	Slot/Lexicon
कोष्ठक	Bracket
कौशल	Skill
क्रम/शृंखला	Sequence

(शब्द) क्रम	(Words) Order
क्रमबद्धता	Coherence
क्रिया	Verb/Action
क्रिया-आश्रित	Ad-Verbal
क्षमता/दक्षता	Competence
क्षेत्र	Region
खंड	Segment/Part
खंडीय	Segmental
खंडेतर/खंड्येतर (अधिखंडीय)	Supra-segmental
खाँचा	Slot
गणनीय	Countable
गतिबोधक क्रिया	Motive Verb/Non-stative Verb
गह्वर	Coda
गुच्छ	Cluster
गुणवाचक (विशेषक)	Attributive
गुणबोधक	Qualitative
गुप्त भाषा	Code language
गौण	Subsidiary
ग्रसनी	Phyrinx
ग्रसन्य	Pharyngal
घटक (संघटक/संरचक)	Constituent
घनत्वक	Intensifier
घोष (नाद)	Voiced
चयन और श्रृंखला	Choice (Selection) and Chain
चरम प्रत्यय	Suffix
चिह्न	Symbol/Mark
जपित	Murmur
जिह्वा (/जीभ)	Tongue
जिह्वा नोक	Tip of the tongue
जिह्वा पश्च	Back of the tongue
जिह्वा फलक	Blade of the tongue
जिह्वा मध्य	Middle of the tongue
जिह्वा मूल	Root of the tongue/Epiglottis
जीव	Animate
ज़ोर	Amplitude

ज्ञात व्युत्पत्तिक शब्द	Word of known etymology
ज्ञान	Content/Knowledge
ज्ञान विषयक	Perceptive
तत्परताबोधक	Momentary
तत्सम	Similar to (orginal)
तथ्येतर क्रिया	Subjunctive Verb
तनाव	Tension
तान	Tone
तालव्य	Palatal
तालु	Palate
तुमर्थ	Infinitive
तुलना कोटि	Comparative degree
तृतीय (/अन्य) पुरुष	Third Person
दन्त/दाँत	Tooth/Teeth
दन्त्य	Dental
दन्त्येष्ठ्य	Labio-Dental
दीर्घ	Long
दुहराने का दोष	Tautology
दृढ़	Fortis
देशज़ शब्द	Native word
द्विअर्थक	Ambiguous
द्विकर्मक	Dual Transitive
द्विकार्यात्मक	Double action
द्वितीय (/मध्यम) पुरुष	Second Person
द्वित्व	Doubling
द्व्योष्ठ्य	Bi-labial
दृव्यवाचक संज्ञा	Material noun
धातु	Root
ध्वनि	Sound
(भाषा) ध्वनि	Phone
ध्वनि (/स्वन) विज्ञान	Phonetics
ध्वनिग्राम (/स्वनिम)	Phoneme
ध्वनिग्राम (/स्वनिम) विज्ञान	Phonemics
ध्वनिग्रामीय (/स्वनिमिक)	Phonemic
ध्वनि-व्यवस्था	Phonetics & Phonemics

ध्वन्यात्मक (/स्वनिक)	Phonetic
ध्वन्यात्मक मूल्य	Phonetic Value
नकारात्मक	Negative
नपुंसकलिंग	Neuter gender
नाभिकीय	Nuclear
नामधातु	Nominal root
नामार्थक	Nominal
नासिका विवर	Nasal cavity
नासिक्य	Nasal
निकटस्थ (/सन्निहित) घटक	Immediate Constituent
निजवाचक सर्वनाम	Reflexive Pronoun
निम्न-उच्च	Low-High
नियन्त्रण/नियमन	Controlling
निरन्तर/सातत्य	Continuous
निरर्थक	Meaningless
निर्देशवाचक	Demonstrative
निर्मित	Coined/Framed
निश्चित संख्यावाचक	Definite numeral
निषेधवाची	Negative
निक्षिप्त	Parenthetical
निपात	Article
पक्ष	Aspect
पंचमाक्षर	Nasal
पंडिताऊ शब्द	Pedantic word
पद	Word (in a sentence)
पदग्राम (/पदिम/रूपिम/मर्फिम)	Morpheme
पदबन्ध	Phrase (/Syntagma)
पदान्वय	Parsing
परकीय	Of other
परम्परागत	Hereditory
परसर्ग	Post Position
परिधीय	Peripheral
परिधीय अर्थ	Circumferencial meaning
परिनिष्ठित (/मानक)	Standard
परिमाणबोधक	Quantitative

परिसीमक	Limitative
परोक्ष कथन	Indirect narration (/speech)
पर्यायवाची	Synonyms
पश्च स्वर	Back Vowel
पारिभाषिक शब्दावली	Technical Vocabulary/term
पार्श्विक	Lateral
पुरुष	Person
पुरुषवाचक	Personal
पुल्लिंग	Masculine
पूरक/पूर्णक	Compllement/Filler
पूर्णताबोधक	Perfective
पूर्णताबोधक बन्धन	Completive link
पूर्णविराम	Full Stop
प्रकम्पी (/लुंठित/लोड़ित)	Trilled/Rolled
प्रकार (/वृत्ति)	Type (/Mood)
प्रकार्य	Function
प्रकार्यात्मक	Functianol
प्रक्रिया	Process
प्रतिक्रिया	Response
प्रत्यक्ष कथन	Direct Narration/Speech
प्रत्यय	Suffix
प्रत्यय तत्त्व	Affix
प्रत्ययन/प्रत्यय योजन	Affiixation
प्रथम (/उत्तम) पुरुष	First Person
प्रधान (मुख्य) उपवाक्य	Principal Clause
प्रयोग	Use/usage/concordance
प्रश्नवाचक	Interrogative
प्रश्नवाचक चिह्न	Sign of Interrogation
प्रायोगिक	Applied
प्रारम्भक शब्द	Introductory (/Preliminary) word
प्रेरक	Instigator
प्रेरणा	Stimulus
प्रेरणार्थक	Casual/Causative
प्रेरित	Instigated
प्लुत स्वर	Longer (/super long) Vowel

फुसफुसाहट	Whisper
बद्धाक्षर	Closed syllable
बलाघात	Stress
बहुवचन	Plural Number
बोध वर्ग	Sense group
बोलचाल	Colloquial
बोली	Dialect
भविष्य	Future
भाववाच्य	Impersonal (/Neutral) Voice
भावे प्रयोग	Impersonal use/Neutral Concordanc
भाषण	Speech/Speaking
भाषा	Language
भाषायी	Lingual/of language
भाषाविज्ञान	Linguistics
भाषा-समुदाय	Speech Community/Language group
मध्य स्वर	Middle Vowel
महाप्राण	Aspirated
मात्रा	Length/Mora
मानक	Standard
मानकेतर	Non-standard (/Below standard)
मानदण्ड	Yard Stick
मानवेतर	Inhuman
मिश्र वाक्य	Complex Sentence
मिश्र स्वर	Diphthong
मुक्त परिवर्त	Free Variation
मुक्ताक्षर	Open syllabus
मुखर	Sonorous
मुख विवर	Oral Cavity
मुहावरा	Idiom
मूर्धन्य	Cerebral
मूर्धा	Cerebra
मूल	Base
मूल स्वर	Non-Conjuct (/Simple / Cardinal) Vowel

मूलावस्था	Positive
मौखिक स्वर	Oral Vowel
युग्म	Pair
(श्रुतसम भिन्नार्थी) युग्म शब्द	Paronyms
योजक क्रिया	Copula
योजक चिह्न	Hyphen
योजन	Agglatination
यौन	Sex
रंजक	Intensifier/Explicator
राग/राग तत्त्व	Prosody
राष्ट्रभाषा	National Language
राष्ट्रीय भाषा	Language of a Nation
रीतिवाचक (क्रि० वि०)	Adverb of Manner
रूप	Form/Morph
रूप प्रक्रियात्मक	Morphological
रूप प्रक्रियात्मक वाक्यात्मक	Morphologo-syntactical
रूपात्मक	Formal
रूपान्तर	Formation/Conjugation
रूपान्तरण	Transformation
रूपावली	Conjugation table
लक्षणार्थ	Circumferencial Meaning
लघुतम	Minimal
लाघव चिह्न	Abriviation mark
लिंग	Gender
लिपि	Script
लुंठित/लोड़ित	Rolled/Trilled
लेखन	Writing
लोक व्युत्पत्ति	Folk Etymology
लोकोक्ति	Proverb
लोप (समाक्षर लोप)	Haplology
वक्ता	Speaker
वचन	Number
वर्ग	Class/Set
वर्जित शब्द	Tabu
वर्णनात्मक	Descriptive

वर्णमाला	Alphabet
वर्णविचार	Orthography
वर्ण-व्यवस्था	Graphic system
वर्तनी	Spelling
वर्तमान काल	Present Tense
वर्तुलित/वृत्तमुखी	Rounded/Non-Spread
वर्त्स	Alvula
वर्त्स्य	Alvular
वाक्‌भाग/वाग्भाग	Parts of speech
वाक्य	Sentence
वाक्य खंड	Clause
वाक्य-परिवर्तन	Transformatian of Sentence
वाक्य-विग्रह (/विश्लेषण)	Sentence Analysis
वाक्यात्मक	Syntactical
वाक्यांश	Phrase
वाक्य-व्यवस्था (/रचना/विज्ञान)	Syntax
वाक्य-साँचा	Sentence Pattern
वागिन्द्रियाँ	Organs of Speech
वाच्य	Voice
वार्तालाप	Conversation
विकल्प	Option
विकार बोधक	±Stative
विकारी रूप	Declined form
विकारी शब्द	Declinable
विचारात्मक	Reflective
वितरण	Distribution/Placement
विधिवाचक	Affirmative
विधेय	Predicate
विधेयवाचक	Predicative
विधेय विशेषण	Predicative Adjective
विन्यास	Arrangement
विभाषा	Regional language/Dialcet
विराम चिह्न	Punctuation mark
विलोमार्थी (/विपरीतार्थक)	Antonyms
विवरण चिह्न	Colon & Dash

विवशता (बोधक)	Compulsion
विवृत	Open
विवृति (/संगम/संहिता)	Juncture
विशेषक	Qualifier/Attributive/Adjunct
विशेषण	Adjective
विशेषण-आश्रित	Ad-Adjectival
विशेषण उपवाक्य	Adjective Clause
विशेषता बोधक	Modifier/Adverbial
विश्लेषण	Analysis
विस्तारक	Extender
विस्मयवाचक	Exclamatory
विस्मयादिबोधक (/उद्वेगात्मक)	Interjection
विस्मयादिबोधक चिह्न	Sign of Interjection
वृत्ति (/प्रकार)	Mood
वृत्तिसूचक	Modal
वैकल्पिक	Optional
व्यक्तिवाचक संज्ञा	Proper Noun
व्यंजन	Consonant
व्यवस्था (/पद्धति)	System
व्यवहार	Performance (Behaviour)
व्याकरणिक कोटि	Grammatical Category
व्याप्ति	Span (/Entireness)
व्यावहारिक (/अनुप्रयुक्त)	Applied
व्युत्पत्ति	Etymology
व्युत्पन्न शब्द	Derived (/Derivated word)
शब्द	Word
शब्दगत-आर्थी	Lexico-Semantical
शब्द भण्डार	Lexicon/Vocabulary
शब्द-भ्रान्ति	Malapropism/Catachresis
शब्द-व्यवस्था	Morphology
शब्दगत-वाक्यात्मक	Lexico-Syntactical
शिथिल स्वर	Lenis Vowel
शुद्ध स्वर	Monophthong
शैली	Style
श्रुति	Glide

श्रोता	Hearer/Listener
श्वास नली	Trachea/Wind pipe
श्वास वर्ग	Breath group
संक्रमण	Transition
संक्षिप्तता	Conciseness
संख्याबोधक	Numeral
संगम (/संहिता/विवृति)	Juncture
संघर्षहीन सप्रवाह ध्वनि	Liquid sound
संघर्षी	Fricative
संज्ञा	Noun
संज्ञा-आश्रित	Ad-nominal
संज्ञा उपवाक्य	Noun Clause
संयुक्त क्रिया	Compound Verb
संयुक्त वाक्य	Compound Sentence
संरचक	Constituent
संरचना (/गठन)	Structure
संरचनात्मक (/गठनात्मक)	Structural
संरूप (/सहरूप)	Allomorph
संरूपण	Patterning
संवर्धक	Additive
संवादात्मक	Conversational
संवृत स्वर	Closed Vowel
संस्कारित शब्द	Sanskritised word
संस्वन (/संध्वनि/सहध्वनि)	Allophone
सकर्मक	Transitive
सक्रिय कर्ता (/अभिकर्ता)	Active Subject/Agent
सति-अर्थक (/सत्यर्थक)	Concessive
सन्धि	Sandhi /Euphony/Morphophonemics
सम	Level
समावेशी	Inclusive
समास	Compound
समुच्चय	Set/corpus
समुच्चयबोधक	Conjunction
समूहवाचक (/समुदायवाची) संज्ञा	Collcective Noun

विवशता (बोधक)	Compulsion
विवृत	Open
विवृति (/संगम/संहिता)	Juncture
विशेषक	Qualifier/Attributive/Adjunct
विशेषण	Adjective
विशेषण-आश्रित	Ad-Adjectival
विशेषण उपवाक्य	Adjective Clause
विशेषता बोधक	Modifier/Adverbial
विश्लेषण	Analysis
विस्तारक	Extender
विस्मयवाचक	Exclamatory
विस्मयादिबोधक (/उद्वेगात्मक)	Interjection
विस्मयादिबोधक चिह्न	Sign of Interjection
वृत्ति (/प्रकार)	Mood
वृत्तिसूचक	Modal
वैकल्पिक	Optional
व्यक्तिवाचक संज्ञा	Proper Noun
व्यंजन	Consonant
व्यवस्था (/पद्धति)	System
व्यवहार	Performance (Behaviour)
व्याकरणिक कोटि	Grammatical Category
व्याप्ति	Span (/Entireness)
व्यावहारिक (/अनुप्रयुक्त)	Applied
व्युत्पत्ति	Etymology
व्युत्पन्न शब्द	Derived (/Derivated word)
शब्द	Word
शब्दगत-आर्थी	Lexico-Semantical
शब्द भण्डार	Lexicon/Vocabulary
शब्द-भ्रान्ति	Malapropism/Catachresis
शब्द-व्यवस्था	Morphology
शब्दगत-वाक्यात्मक	Lexico-Syntactical
शिथिल स्वर	Lenis Vowel
शुद्ध स्वर	Monophthong
शैली	Style
श्रुति	Glide

श्रोता Hearer/Listener
श्वास नली Trachea/Wind pipe
श्वास वर्ग Breath group
संक्रमण Transition
संक्षिप्तता Conciseness
संख्याबोधक Numeral
संगम (/संहिता/विवृति) Juncture
संघर्षहीन सप्रवाह ध्वनि Liquid sound
संघर्षी Fricative
संज्ञा Noun
संज्ञा-आश्रित Ad-nominal
संज्ञा उपवाक्य Noun Clause
संयुक्त क्रिया Compound Verb
संयुक्त वाक्य Compound Sentence
संरचक Constituent
संरचना (/गठन) Structure
संरचनात्मक (/गठनात्मक) Structural
संरूप (/सहरूप) Allomorph
संरूपण Patterning
संवर्धक Additive
संवादात्मक Conversational
संवृत स्वर Closed Vowel
संस्कारित शब्द Sanskritised word
संस्वन (/संध्वनि/सहध्वनि) Allophone
सकर्मक Transitive
सक्रिय कर्ता (/अभिकर्ता) Active Subject/Agent
सति-अर्थक (/सत्यर्थक) Concessive
सन्धि Sandhi /Euphony/Morphophonemics
सम Level
समावेशी Inclusive
समास Compound
समुच्चय Set/corpus
समुच्चयबोधक Conjunction
समूहवाचक (/समुदायवाची) संज्ञा Collcective Noun

सम्प्रदान	Dative
सम्बन्ध	Relation
सम्बन्ध कारक	Possessive Case/Genitive
सम्बन्ध बोधक	Preposition
सम्बोधन	Addressive/Vocative
सम्मिलन	Inclusion
सर्वनाम	Pronoun
सहायक क्रिया	Auxiliary Verb
सांकेतिक कथन	Euphemism
साँचा	Pattern
सादृश्यवाची	Equative
साधारण (/सामान्य) वाक्य	Simple sentence
सानुनासिक	Nasalised
सामाजिक सन्दर्भ	Social Content
सार्वनामिक	Pronominal
साहित्यिक	Literary
सीमा	Limit/Limitation
सुर (/लहजा)	Pitch
स्तर	Level
स्त्रीलिंग	Feminine
स्थानवाची	Locative
स्थानापत्ति	Substitution
स्थिरताबोधक	Stative
स्पर्श/स्फोट	Stop/Mute/Plosive
स्पर्श-संघर्षी	Affricate
स्वदेशी	of own country
स्वन (भाषा)	Phone
स्वनिम	Phoneme
स्वनिमविज्ञान	Phonemic
स्वनिमिक	Phonemic
स्वर	Vowel
स्वर-गुण	Prosedic features of Vowel
स्वर तन्त्री	Vocal cords
स्वर यन्त्र	Vocal organ/Larynx
स्वरयन्त्र मुखी	Glottal
स्वर-संयोग/स्वरानुक्रम	Vowel Sequence
स्वराघात	Pitch accent/Tone
ह्रस्व	Short

31
प्रश्न तथा अभ्यास

विषय-प्रवेश—1. **रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) प्रत्येक व्यक्ति का समस्त जीवन················से अलग नहीं हो पाता। (ख) अव्यक्त भाषा················का विषय नहीं है। (ग) प्रत्येक भाषा के शब्दादि की················व्यवस्था होती है। (घ) भाषाओं की भिन्नता················भेद के कारण है। (ङ)················पूर्व निश्चित किए हुए अर्थ का बोध करानेवाले संकेत होते हैं। (च) प्रतीक तथा········ का सम्बन्ध आरोपित होता है। (छ)········का आविष्कार विचारों को स्थायी रूप देने के उद्देश्य की पूर्ति करता है। (ज) कोई भी भाषा किसी भी ······लिपि में लिखी जा सकती है। (झ) उच्चरित और लिखित भाषा में सदैव········साम्य नहीं होता। (ञ) भाषा का कथित रूप········से बनता है। 2. **शुद्ध कथन पर √ तथा अशुद्ध कथन पर × लगाइए**—(क) कालक्रम में भाषा व्याकरण की अनुगामिनी होती है। ( ) (ख) व्याकरण पढ़ कर शुद्ध भाषा-व्यवहार की दक्षता और क्षमता आ जाती है। ( ) (ग) विचारों की शुद्धता तर्कशास्त्र से और प्रभावकारिता साहित्यशास्त्र से प्राप्त की जा सकती हैं। ( ) (घ) वर्ण-व्यवस्था का अध्ययन ध्वनि-व्यवस्था के साथ किया जा सकता है ( ) (ङ) भाषा के आरम्भ से ही व्याकरण का भी प्रयोग होने लगता है। ( ) 3. **रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) ऋग्वेद काल में भी वैदिक संस्कृत····बोली जाती थीं। (ख) वैदिक काल में भाषा के····रूप प्रचलित थे। (ग) हिन्दी की प्रमुख····उपभाषाएँ हैं। (घ) हिन्दी के····काल में ही नपुंसक लिंग समाप्त हो गया था। (ङ) हिन्दी में क़ ख़ ग़ ज़ फ़ का प्रवेश····में ही हो गया था। (च) भाषाओं के परिवर्तन में दो देशों की सभ्यताओं या संस्कृतियों के····का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। (छ) अधिक विस्तृत क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषा के अधिक ही····और प्रयोग-भेद मिलते हैं। (ज) 'हिन्दी' शब्द ईरान के····की देन है। (झ) व्यक्तिबोली का प्रभाव····में मिलता है। (ञ) हिन्दी का व्याकरण देशी भाषा या खड़ी बोली के····पर आधारित है। 4. **शुद्ध कथन पर √ तथा अशुद्ध कथन पर × लगाइए**—(क) हिन्दी के साथ हिन्दुस्तानी, उर्दू

शब्द विवादास्पद रूप से जोड़ दिए गए हैं। ( )। (ख) अरबी-फ़ारसी-तुर्की की ओर हिन्दी का अधिक झुकाव रहा है। ( )। (ग) मूलतः हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू एक ही भाषा के तीन शैली-भेद हैं। ( )। (घ) संसार की भाषाओं में हिन्दी तीसरे स्थान पर आती है। ( )। (ङ) हिन्दी ने भी बहिष्कार की नीति अपना रखी है। ( )।

ध्वनि तथा वर्ण-व्यवस्था—1. **रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) दो पदार्थों के टकराने या रगड़ खाने से····पैदा होती है। (ख) भाषा-ध्वनि को व्याकरण में····कहा जाता है। (ग) वर्ण भाषा की ध्वनियों को लिखित रूप में व्यक्त करनेवाले······· हैं। (घ) सामान्यतः भाषाओं में ध्वनियों और वर्गों की संख्या में साम्य····हुआ करता। (ङ) किसी भी भाषा की ध्वनियों की संख्या उस की परम्परागत लिपि के····की संख्या के आधार पर निश्चित नहीं की जा सकती। (च) बोलते समय ध्वनियों पर मात्रा, आघात/तथा आगे-पीछे आनेवाली ध्वनियों की विशेषताओं का····पड़ता है। (छ) अर्थ भेदक स्वन····कहलाता है। (ज) स्वनिम एक····रूप है, उच्चरित नहीं। (झ) एक····के संस्वन आपस में अव्यतिरेकी होते हैं। (ञ) संस्वनों को स्थानापन्न कर देने पर ····दोष आ जाता है। 2. **रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए**—(क) ध्वनि-उच्चारण अवयवों की जानकारी····संबंधी भूलों के सुधार में सहायता करती है। (ख) ऊपर के जबड़े से जुड़े अंग····अवयव कहलाते हैं। (ग) फ़, व के उच्चारण के समय नीचे का ओठ ऊपर के दाँतों के····पहुँचता है। (घ) च वर्ग की ध्वनियाँ····तालु से उच्चरित होती हैं। (ङ) उदासीन स्थिति में रहने पर अलिजिह्वा····स्वरों के उच्चारण में सहायता करता है। (च) इ, ई, ए, ऐ के उच्चारण में जीभ का····भाग सहयोग देता है। (छ) स्वर-यन्त्र में अत्यन्त महीन और कोमल दो····होती हैं। (ज) अघोष ध्वनियों के उच्चारण के समय न के बराबर····होता है। (झ) घोष ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वर-तन्त्रिका में ···कम्पन होता है। (ञ) फुसफुसाहट युक्त ध्वनि को····ध्वनि भी कहते हैं। 3. **दिए गए उत्तरों में से सही उत्तर बताइए**—(क) 'श' का उच्चारण-स्थान है—तालु/मूर्धा/दन्त/दन्तालु (ख) 'व' का उच्चारण-स्थान है—तालु/कंठ/मूर्धा/दन्तोष्ठ (ग) 'त' ध्वनि का उच्चारण स्थान है—मूर्धा/तालु/कंठ/दंतमूल। (घ) 'फ' का उच्चारण-स्थान है—कंठ/मूर्धा/ओष्ठ/तालु (ङ) 'ड' का उच्चारण-स्थान है—दंतोष्ठ/ओष्ठ/तालु/कठोर तालु 4. **रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) हिन्दी में····दीर्घ स्वर हैं। (ख) तालु से उच्चरित ध्वनियाँ····कही जाती हैं। (ग) बोलते समय भावों के अनुसार····का उतार-चढ़ाव········कहलाता है। (घ) एक ध्वनि के उच्चारण के बाद दूसरी ध्वनि के उच्चारण के मध्य के क्षण को·······कहते हैं। (ङ) एकल·······का उच्चारण बिना·······की सहायता के नहीं होता। 5. **हाँ/नहीं में उत्तर दीजिए**—(क) हिन्दी में ट वर्ग की ध्वनियाँ मूर्धन्य हैं ( )। (ख) हिन्दी में उच्चरित स्वर तीन प्रकार के होते हैं ( )। (ग) हल्, हलन्त समानार्थी शब्द हैं ( )। (घ) अनुनासिक स्वरों का उच्चारण मुख तथा नासिका से किया जाता है ( )। (ङ) 'ई' अल्पप्राण

है ( ) । (च) सभी स्वर घोष होते हैं ( ) । (छ) 'श' का उच्चारण-स्थान ठोकर तालु है । ( ) । (ज) य र ल व को अन्तःस्थ व्यंजन कहते हैं ( ) । (झ) ङ ञ ण न म नासिक्य वर्ण हैं ( ) । (ट) सभी अल्पप्राण व्यंजनों के महाप्राण व्यंजन होते हैं ( ) । **6. इन में उचित स्थान पर ं/ँ लगाइए**—कचन, दड, वदन, आधी, गाधी, आख, उगली, ऊट, हसना, बदर, बदरिया, रग, रगरेज़, हसिया, फसना, ढाचा, चगा, मगली । **7. इन शब्दों की वर्तनी शुद्ध कीजिए**—प्रत्तिछाया, स्वास्थ, उज्ज्वल, कवियित्री, जाग्रत, जोत्सना अतिश्योक्ति, प्रशन्न, निरपराधी, पूज्यनीय प्रीक्षा, त्यार, प्रसंशा, उज्जवल, श्रंगार, आशिवाद, विसेषता, दशम्, महत्व, अतिथी, गरिष्ट, अगामी, पुरुषारथ, मृत्यू, अनुग्रहीत, आकाछा, प्रर्दशिनी, चर्मोत्कर्ष, कृत्यकृत्य, ईर्षा, गृहीता, पृष्ट, पिचास, चिन्ह । **8. रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) किसी स्वरके उच्चारणमें सामान्यसे अधिकसमय लगे तो उस के लिए····मात्रा-चिह्न का प्रयोग किया जाता है । (ख) हिन्दी शब्दों में महाप्राण ध्वनियों की द्विरुक्ति········ होती । (ग) 'य' से युक्त महाप्राण ध्वनि के पूर्व उच्चारण में········ध्वनि आ जाती है, किन्तु उसे········नहीं जाता । (घ) 'य, र, ल, व' से युक्त अन्य किसी अल्पप्राण ध्वनि के पूर्व उच्चारण में···· ध्वनि आ जाती है, किन्तु उसे ········ नहीं जाता। (ङ) 'ण, ष, क्ष, ऋ' वर्णों का प्रयोग केवल········से आगत शब्दों में ही होता है । (च) संस्कृत के 'श' युक्त शब्द तद्भव होने पर '········' युक्त हो जाते हैं । (छ) संस्कृत शब्दों में हिन्दी के ँ········का प्रयोग नहीं होता । (ज) 'क़ ख़ ग़ ज़ फ़' में से '········' का प्रयोग अरबी-फ़ारसी तथा अँगरेज़ी से आगत शब्दों में होता है । (झ) द्वन्द्व समास में स्पष्टता हेतु प्रायः······ चिह्न लगाया जाता है । (ञ) ध्वनि-उच्चारण के समय किया गया प्रयास ····कहलाता है । **9. जिन शब्दों में 'व-ब; श-ष-स; ट-ठ' की अशुद्धि हो, उन्हें शुद्ध कीजिए**—ववंडर, बिबश, प्रतिविम्ब, विन्दु, दवाव, नबाब, कबाब, घनिष्ठ, गरिष्ट, अनिष्ठ, पृश्ट, शाशन, आदर्ष, प्रसासनिक, आमिश, हितैषी, सृष्ठि, श्लिष्ठ, श्रेष्ट, षश्ठी, संतुष्ठ, कनिष्ट, निस्टा, प्रसंशा, कुशाशन-कनिष्ठ, चरमोत्कर्ष, प्रशाद, नमश्कार । **10. इन ध्वनियों को मिला कर शब्द बनाइए**—क्+अ+म्+अ+ल्+आ; व्+इ+द्+य्+आ+र्+थ्+ई; व+इ+द्+य्+उ+त्+अ; प्+र्+अ+त्+ई+क्+ष्+आ; स्+अ+त्+य्+अ+भ्+आ+ष्+ई; व्+अ+च्+अ+प्+अ+न्+अ; क्+ल्+ए+श्+अ; द्+अ+क्+ष्+अ+त्+आ; य्+अ+ज्+ञ्+अ; ल्+अ+ब्+ध्+अ+प्+र्+अ+त्+इ+ष्+ठ+अ । **11. उपयुक्त शब्द का चयन कर वाक्य-रचना कीजिए**—(क) 'श' के उच्चारण में जिह्वा (तालु/मूर्धा/वर्त्स/कंठ) की ओर जाती है । (ख) 'व' का उच्चारण-स्थान (कंठोष्ठ/दन्तोष्ठ/द्व्योष्ठ/ओष्ठ) है । (ग) (मुँह/जीभ/तालु/नाक) के विभिन्न भागों से सभी ध्वनियों का उच्चारण किया जा सकता है । (घ) लेखन में अनुस्वार को (चन्द्रबिन्दु/अर्ध चन्द्र/बिन्दु/शून्य) से प्रकट किया जाता है । (ङ) 'रँगरेज़' शब्द में (छह/सात/चार/पाँच)

शब्द विवादास्पद रूप से जोड़ दिए गए हैं। (   )। (ख) अरबी-फ़ारसी-तुर्की की ओर हिन्दी का अधिक झुकाव रहा है। (   )। (ग) मूलतः हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू एक ही भाषा के तीन शैली-भेद हैं। (   )। (घ) संसार की भाषाओं में हिन्दी तीसरे स्थान पर आती है। (   )। (ङ) हिन्दी ने भी बहिष्कार की नीति अपना रखी है। (   )।

ध्वनि तथा वर्ण-व्यवस्था—1. **रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) दो पदार्थों के टकराने या रगड़ खाने से····पैदा होती है। (ख) भाषा-ध्वनि को व्याकरण में····कहा जाता है। (ग) वर्ण भाषा की ध्वनियों को लिखित रूप में व्यक्त करनेवाले········ हैं। (घ) सामान्यतः भाषाओं में ध्वनियों और वर्गों की संख्या में साम्य····हुआ करता। (ङ) किसी भी भाषा की ध्वनियों की संख्या उस की परम्परागत लिपि के····की संख्या के आधार पर निश्चित नहीं की जा सकती। (च) बोलते समय ध्वनियों पर मात्रा, आघात/तथा आगे-पीछे आनेवाली ध्वनियों की विशेषताओं का····पड़ता है। (छ) अर्थ भेदक स्वन····कहलाता है। (ज) स्वनिम एक····रूप है, उच्चरित नहीं। (झ) एक···· के संस्वन आपस में अव्यतिरेकी होते हैं। (ञ) संस्वनों को स्थानापन्न कर देने पर ····दोष आ जाता है। 2. **रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए**—(क) ध्वनि-उच्चारण अवयवों की जानकारी····संबंधी भूलों के सुधार में सहायता करती है। (ख) ऊपर के जबड़े से जुड़े अंग····अवयव कहलाते हैं। (ग) फ़, व् के उच्चारण के समय नीचे का ओठ ऊपर के दाँतों के····पहुँचता है। (घ) च वर्ग की ध्वनियाँ····तालु से उच्चरित होती हैं। (ङ) उदासीन स्थिति में रहने पर अलिजिह्वा····स्वरों के उच्चारण में सहायता करता है। (च) इ, ई, ए, ऐ के उच्चारण में जीभ का····भाग सहयोग देता है। (छ) स्वर-यन्त्र में अत्यन्त महीन और कोमल दो····होती हैं। (ज) अघोष ध्वनियों के उच्चारण के समय न के बराबर····होता है। (झ) घोष ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वर-तन्त्रिका में ···कम्पन होता है। (ञ) फुसफुसाहट युक्त ध्वनि को····ध्वनि भी कहते हैं। 3. **दिए गए उत्तरों में से सही उत्तर बताइए**—(क) 'श' का उच्चारण-स्थान है—तालु/मूर्धा/दन्त/दन्तालु (ख) 'व' का उच्चारण-स्थान है—तालु/कंठ/मूर्धा/दन्तोष्ठ (ग) 'त' ध्वनि का उच्चारण स्थान है—मूर्धा/तालु/कंठ/दंतमूल। (घ) 'फ' का उच्चारण-स्थान है—कंठ/मूर्धा/ओष्ठ/तालु (ङ) 'ड' का उच्चारण-स्थान है—दंतोष्ठ/ओष्ठ/तालु/कठोर तालु 4. **रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) हिन्दी में····दीर्घ स्वर हैं। (ख) तालु से उच्चरित ध्वनियाँ····कही जाती हैं। (ग) बोलते समय भावों के अनुसार····का उतार-चढ़ाव········कहलाता है। (घ) एक ध्वनि के उच्चारण के बाद दूसरी ध्वनि के उच्चारण के मध्य के क्षण को········कहते हैं। (ङ) एकल········का उच्चारण बिना········की सहायता के नहीं होता। 5. **हाँ/नहीं में उत्तर दीजिए**—(क) हिन्दी में ट वर्ग की ध्वनियाँ मूर्धन्य हैं (   )। (ख) हिन्दी में उच्चरित स्वर तीन प्रकार के होते हैं (   )। (ग) हल्, हलन्त समानार्थी शब्द हैं (   )। (घ) अनुनासिक स्वरों का उच्चारण मुख तथा नासिका से किया जाता है (   )। (ङ) 'ई' अल्पप्राण

है ( )। (च) सभी स्वर घोष होते हैं ( )। (छ) 'श' का उच्चारण-स्थान ठोकर तालु है। ( )। (ज) य र ल व को अन्तःस्थ व्यंजन कहते हैं ( )। (झ) ङ ञ ण न म नासिक्य वर्ण हैं ( )। (ट) सभी अल्पप्राण व्यंजनों के महाप्राण व्यंजन होते हैं ( )। **6. इन में उचित स्थान पर ँ/ं लगाइए**—कचन, दड, चदन, आधी, गाधी, आख, उगली, ऊट, हसना, बदर, बदरिया, रग, रगरेज़, हसिया, फसना, ढाचा, चगा, मगली। **7. इन शब्दों की वर्तनी शुद्ध कीजिए**—प्रत्तिछाया, स्वास्थ, उज्ज्वल, कवियित्री, जाग्रत, जोत्सना अतिश्योक्ति, प्रशन्न, निरपराधी, पूज्यनीय प्रीक्षा, त्यार, प्रसंशा, उज्जवल, श्रंगार, आशिवाद, विसेषता, दशम्, महत्व, अतिथी, गरिष्ट, अगामी, पुरुषारथ, मृत्यू, अनुग्रहीत, आकाछा, प्रदर्शिनी, चर्मोत्कर्ष, कृत्यकृत्य, ईर्षा, गृहीता, पृष्ट, पिचास, चिन्ह। **8. रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) किसी स्वरके उच्चारण में सामान्य से अधिक समय लगे तो उस के लिए····मात्रा-चिह्न का प्रयोग किया जाता है। (ख) हिन्दी शब्दों में महाप्राण ध्वनियों की द्विरुक्ति········ होती। (ग) 'य' से युक्त महाप्राण ध्वनि के पूर्व उच्चारण में········ध्वनि आ जाती है, किन्तु उसे········नहीं जाता। (घ) 'य, र, ल, व' से युक्त अन्य किसी अल्पप्राण ध्वनि के पूर्व उच्चारण में···· ध्वनि आ जाती है, किन्तु उसे ······ नहीं जाता। (ङ) 'ण, ष, क्ष, ऋ' वर्णों का प्रयोग केवल········से आगत शब्दों में ही होता है। (च) संस्कृत के 'श' युक्त शब्द तद्भव होने पर '········' युक्त हो जाते हैं। (छ) संस्कृत शब्दों में हिन्दी के "········का प्रयोग नहीं होता। (ज) 'क़ ख़ ग़ ज़ फ़' में से '········' का प्रयोग अरबी-फ़ारसी तथा अँगरेज़ी से आगत शब्दों में होता है। (झ) द्वन्द्व समास में स्पष्टता हेतु प्रायः······ चिह्न लगाया जाता है। (ञ) ध्वनि-उच्चारण के समय किया गया प्रयास ····कहलाता है। **9. जिन शब्दों में 'व-ब; श-ष-स; ट-ठ' की अशुद्धि हो, उन्हें शुद्ध कीजिए**—ववंडर, बिबश, प्रतिविम्व, विन्दु, दवाव, नबाब, कबाब, घनिष्ठ, गरिष्ट, अनिष्ठ, पृश्ट, शाशन, आदर्ष, प्रसासनिक, आमिश, हितैषी, सृष्ठि, श्लिष्ठ, श्रेष्ट, षश्ठी, संतुष्ठ, कनिष्ट, निस्टा, प्रसंशा, कुशाशन-कनिष्ठ, चरमोत्कर्ष, प्रशाद, नमश्कार। **10. इन ध्वनियों को मिला कर शब्द बनाइए**—क्+अ+म्+अ+ल्+आ; व्+इ+द्+य्+आ+र्+थ्+ई; व+इ+द्+य्+उ+त्+अ; प्+र्+अ+त्+ई+क्+ष्+आ; स्+अ+त्+य्+अ+भ्+आ+ष्+ई; व्+अ+च्+अ+प्+अ+न्+अ; क्+ल्+ए+श्+अ; द्+अ+क्+ष्+अ+त्+आ; य्+अ+ज्+ञ्+अ; ल्+अ+ब्+ध्+अ+प्+र्+अ+त्+इ+ष्+ठ+अ। **11. उपयुक्त शब्द का चयन कर वाक्य-रचना कीजिए**—(क) 'श' के उच्चारण में जिह्वा (तालु/मूर्धा/वर्त्स/कंठ) की ओर जाती है। (ख) 'व' का उच्चारण-स्थान (कंठोष्ठ/दन्तोष्ठ/द्व्योष्ठ/ओष्ठ) है। (ग) (मुँह/जीभ/तालु/नाक) के विभिन्न भागों से सभी ध्वनियों का उच्चारण किया जा सकता है। (घ) लेखन में अनुस्वार को (चन्द्रबिन्दु/अर्ध चन्द्र/बिन्दु/शून्य) से प्रकट किया जाता है। (ङ) 'रँगरेज़' शब्द में (छह/सात/चार/पाँच)

ध्वनियाँ हैं। (च) (बद्धाक्षर/मुक्ताक्षर/संयुक्ताक्षर/अक्षर) की अन्तिम ध्वनि व्यंजन होती है। (छ) शब्दों के (आदि/मध्य/अन्त) में संगम हो सकता है। (ज) उच्चारण में सामान्य से अधिक समय लेनेवाले व्यंजन को (संयुक्त/द्वित्व/पुनरुक्त/दीर्घ) व्यंजन कहते हैं। (झ) 'क वर्ग' का उच्चारण-स्थान (वर्त्स/मूर्धा/कोमल तालु/कठोर तालु) है। (ञ) हिन्दी में 'ऋ' (स्वर/स्वर वर्ण/व्यंजन/व्यंजन वर्ण) का प्रयोग होता है। 12. माली ने हरीश के बारे में प्रधानाचार्य से फूल तोड़ने के बारे में शिकायत की। प्रधानाचार्य के कमरे में हरीश ने माली की ओर देखते हुए कहा—मैं ने फूल तोड़े हैं? प्रधानाचार्य ने माली को यह कह कर भगा दिया कि हरीश ने फूल नहीं तोड़े हैं किसी और लड़के ने तोड़े होंगे। हरीश ने अपने वाक्य को जिस ढंग से कहा उसे उच्चारण की दृष्टि से कहा जाएगा—विवृति/अनुतान/बलाघात/सुराघात। 13. **रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) 'क्ष' व्यंजन वर्ण है। (ख) व्यंजन वर्ण के साथ स्वर अपने······· चिह्न के साथ आता है। (ग) मानव-मुख से उच्चरित ध्वनि-प्रतीकों को·········कहते हैं। (घ)········के कारण मानव की व्यक्त वाणी दृश्यमान् तथा चिरस्थायी बन सकी है। (ङ)········दो प्रकार से लिखे जाते हैं—खड़ी पाई के साथ; बिना खड़ी पाई के। (च) समान व्यंजन वर्णों का संयोग·······कहलाता है। (छ) पंचमाक्षर के लिए प्रत्येक स्थल पर········का प्रयोग उचित नहीं है। (ज) द्वन्द्व समास के पदों के मध्य···· चिह्न लगाया जाता है। (झ) 'ऋ, ष, ण, क्ष, ज्ञ' वर्णों का प्रयोग केवल·······से आगत शब्दों में किया जाता है। (ञ) देवनागरी केवल हिन्दी की ही नहीं, वरन् कई भारतीय·······की लिपि है। 14. **इन में शुद्ध शब्द बताइए**—(क) अजोध्या/अयोध्या/अयोध्य/ अयोद्ध्या (ख) बिमार/बीमर/बीमार/बीमार् (ग) बाल्मीकि/वाल्मीकी/बालमीकि/वालमीकी (घ) अत्याधिक/अत्यधिक/आत्यधिक/अतिधिक (ङ) अवन्नति/अवनति/अवनती/अवनिति (च) अत्योक्ति/अत्युक्ति/अत्योक्ती/अत्युक्ती (छ) अनुकुल/अनुकूल/अनूकुल/अनुकूला (ज) अहल्या/अहल्य/अहिल्य/अहिल्या (झ) उज्वल/उज्जवल/उज्ज्वल/उजज्वल (ञ) कालिदास/कालीदास/कलिदास/कालीदासा (ट) छमा/क्षमा/क्षामा/क्छमा (ठ) अनिष्ठ/अनिष्ट/अनीष्ट/अनिश्ट (ड) उपलक्ष/उपालक्ष/उपलक्ष्य/उपलक्षा (ढ) महत्व/महत्त्व/महात्व/महत्तव (ण) ईर्षा/ईर्ष्या/इर्षा/ईर्शा (त) चिन्ह/चिह्न/चीह्न/चीन्ह (थ) तलाव/तालाव/तालाब/तलाब (द) प्रनाम/प्रणाम/प्रणम/प्रणाम् (ध) नुपूर/नूपुर/नूपूर/नुपुर (न) वाहिनी/वाहिनि/वाहनी/वहिनी (प) स्मरण/स्मर्ण/इस्मरण/अस्मरण (फ) मैथिली/मेथिली/मैथली/मैथलि (ब) कवयित्री/कवियित्री/कवीयत्री/कवयित्रि (भ) बाहुल्यता/बहुलता/बहुल्य/बाहुल्यत (म) आविस्कार/आविश्कार/आविष्कार/अविष्कार। 15. **आवश्यकतानुसार उपयुक्त स्थल पर हल् चिह्न (्) लगाइए**—भाग्यवान, भगवान, वाङमय, प्रत्युत, पृथक, पंचम, किंचित, तडित, दशम, हठात, षष्ठ, श्रीमान, वणिक, बुद्धिमान, एकादश, विधिवत, श्रीमन, श्रीयुत, एवम, परम, वाक, षट, संहार। 16. **इस वार्तालाप में आवश्यक स्थलों पर " " - ?, ! । — चिह्न लगाइए**—एक दिन मेम डॉक्टर कमला से रूखे से स्वर में पूछ बैठी तू कहाँ

जाएगी जाती क्यों नहीं दूध और केलों पर कहाँ तक पड़ी रहेगी कहाँ जाऊँ मैं क्यते जानूं कहाँ जाएगी मेरा तो इस दुनिया में कोई अपना नहीं है तो इस के लिए क्य मैं जिम्मेदार हूँ अस्पताल कोई यतीमखाना या आश्रम तो नहीं है अगर तू खुद यहाँ से न निकलेगी तो मैं आज शाम को तुझे धक्के दे कर निकलवा दूंगी। 17. **रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) हिन्दी में······· मूल स्वर तथा········संयुक्त स्वर हैं। (ख) जिह्वा की सक्रियता के आधार पर स्वर·······प्रकार के होते हैं। (ग) निम्न-उच्च स्वरों को·········स्वर भी कहते हैं। (घ) संवृत स्वर······· स्वर कहला हैं। (ङ)···· स्वर अवृत्तमुखी होते हैं। (च) हिन्दी के सभी मूल स्वर मौखिक तथा·····होते हैं। (छ) मूलतः स्वर···· होते हैं किन्तु उन का·······उच्चारण भी सम्भव है। (ज) कुछ स्वर शिथिल तथा कुछ······· होते हैं। (झ) प्रयत्न की दृष्टि से 'ख़ ग़'··········ध्वनियाँ हैं। (ञ) हिन्दी के 'खाइए' शब्द में···········स्वरों का अनुक्रम है। (ट) हिन्दी में अनुनासिकता की तीन स्थितियाँ हैं·····स्वनिमिक तथा·······। (ठ) अक्षर-रचना में शीर्ष पर······रहता है और गह्वर में·······। (ड) 'सुव्यवस्थित' शब्द में·······अक्षर हैं। (ढ) हिन्दी में उच्चरित व्यंजनों को·······वर्गों में रखा जा सकता है। (ण) हिन्दी में 'ट ठ ड ढ' उच्चारण स्थान की दृष्टि से·······हैं। (त) प्रयत्न की दृष्टि से 'च छ ज झ'·······हैं। (थ) व्यंजन-गुच्छों में महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण ध्वनियों·······आती हैं। (द) हिन्दी में 33·······व्यंजन हैं तथा 5·······व्यंजन। (ध) अक्षरान्त में 'ह्' का उच्चा-रण·······होता है। (न) 'य व' स्वनिमिक तथा·······स्तर की ध्वनियाँ हैं। (प) अनुस्वार स्वर का अनुसरण करनेवाली·······ध्वनि है। (फ) हिन्दी में लिखित 'ष' का वाचन·······है। (ब) हिन्दी में·······स्तरों पर बलाघात प्राप्त है। (भ) हिन्दी में विवृति के·······भेद किए जा सकते हैं। (म) हिन्दी में सामान्यतः······· प्रकार के अनुतान-साँचे प्राप्त हैं।

रूप तथा शब्द-व्यवस्था— 1. **इन वाक्यों में प्रयुक्त जातिवाचक, व्यक्तिवाचक तथा भाववाचक संज्ञा शब्द बताइए**—(क) निर्धन की निर्धनता पर कुछ तो दया करो। (ख) कृष्ण-सुदामा की मित्रता आज भी अनुकरणीय है। (ग) पानीपत में एक लड़ाई नहीं कई लड़ाइयाँ लड़ी गईं। (घ) उस छोटी बच्ची की मुसकान कितनी प्यारी लगती है। (ङ) सिंह की आँखों की भयंकरता शनैः-शनैः समाप्त होने लगी थी। 2. **इन शब्दों के भाववाचक रूप से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—चुन, लड़, लिख, निर्धन, मिला (क) आजकल किस वस्तु में·······नहीं पाई जाती! (ख) अन्तिम समय तक·······ने शास्त्री जी का साथ नहीं छोड़ा। (ग) कभी मेरी·······तुम्हारी·······से कई गुना अच्छी थी। (घ) दोनों पड़ोसिनों में पिछले दो दिनों से···· हो रही है। (ङ) उन्हें·······में भारी विजय मिली। 3. **भाववाचक संज्ञा-निर्माण की दृष्टि से शुद्ध-अशुद्ध शब्द-युग्म बताइए**—(क) एक-एकता (ख) कमा-कमाई (ग) घटना-घटाना (घ) नीचे-निचाई (ङ) पंडित-पांडित्य (च) बड़ा-बड़ापन (छ) सुन्दर-

सौन्दर्यता (ज) हराना-हराई (झ) दूर-दूरी (ञ) निकट-नैकट्य 4. **इन शब्दों को तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी शब्दों की सूची में रखिए**—गमला, पेड़, लड़का, खिड़की, तृण, कार्य, रात, क्षेत्र, लीची, इंजन, रिक्शा, अढ़ाई, मशीन, चुगलखोर, कटोरा, कमीना, तकिया, अनन्नास। 5. **इन शब्दों को रूढ़, यौगिक तथा योगरूढ़ की सूची में रखिए**—शक्तिशाली, धर्मशाला, पंकज, दशानन, नीलकंठ, जल, शेर, देवदूत, कल, लड़का, चाबी, मल्लाह, छिपकली, आसमान, किशमिश, बेरहम, जलद, चक्रधर, आतिशबाज़ी, मलाई। 6. **इन शब्दों के तत्सम रूप बताइए**—सिर, हल्दी, कान, खैर, बहन, सत्तू, सलाई, आँख, ऊँट, बहू, मोर, सक्कर, पाँव, नींद, तुरन्त, साँपिन, कोयल, उबटन, नौ, चूल्हा, तीता, भात, घोड़ा, गोबर, सौत। 7. **इन शब्दों के तद्भव रूप बताइए**—क्षेत्र, वत्स, अस्थि, पुष्प, काष्ठ, प्रिय, हृदय, वचन, पत्र, चत्वारि, हस्त, चतुष्पादिका, दण्ड, चंचु, हस्ती, खर्पर, अग्नि, क्षीर, पर्यंक, सप्त। 8. **इन समासज शब्दों का विग्रह कीजिए**—दिनानुदिन, गगनचुम्बी, मुँहमाँगा, डाकमहसूल, लोकोत्तर, त्रिपुरारि, क्षत्रियाधम, कापुरुष, कदन्न, कुमारश्रमणा, कृताकृत, विद्युद्वेग, नररत्न, विद्यारत्न, पंचवटी, शांतिप्रिय, सपरिवार, लेनदेन, घर-आँगन, लाभालाभ। 9. **ये किन भाषाओं के आगत शब्द हैं**—बाल्टी, रूमाल, स्पूतनिक, तारपीन, नज़र, गोभी, चाबी, दुनिया, आक़ा, बहादुर, क़ीमत, हैज़ा, चमचा, आतिशबाज़ी, मुग़ल, लीची, खंज़र, कप्तान, रिक्शा, डायरी, रिश्वत, मालिक, औलाद, इंजन, मैनेजर, औरत, तूफ़ान, आबरू, परवाह, कबूतर। 10. **इन शब्दों से भाववाचक संज्ञाएँ बनाइए**—लड़का, पंडित, मधुर, कुशल, मूर्ख, हरा, विद्वान्, खट्टा, पढ़ना, मनुष्य, चलना, एक, अच्छा, लघु, बूढ़ा, मोटा, खुश, पुरुष, कठिन, उदार, मम, चोर, बच्चा, ईश्वर, प्रभु, नारी, गुरु, अहम्, निकट, समीप। 11. **ये भाववाचक शब्द किस शब्द-भेद से बने हैं**—(क) अहंकार (सर्वनाम से/विशेषण से/अव्यय से) (ख) निर्बलता (क्रिया से/विशेषण से/संज्ञा जातिवाचक से) (ग) खेल (संज्ञा जातिवाचक से/क्रिया से/सर्वनाम से) (घ) हरियाली (विशेषण से/जातिवाचक संज्ञा से/अव्यय से) (ङ) नैकट्य (अव्यय से/सर्वनाम से/क्रिया से) (च) मारामारी (संज्ञा व्यक्तिवाचक से/क्रिया से/विशेषण से), (छ) ममत्व (सर्वनाम से/विशेषण से/संज्ञा व्यक्तिवाचक से) (ज) पहनावा (जातिवाचक संज्ञा से/क्रिया से/विशेषण से) (झ) ऐश्वर्य (सर्वनाम से/संज्ञा जातिवाचक से/संज्ञा व्यक्तिवाचक से), वाहवाही (अव्यय से/संज्ञा जातिवाचक से/क्रिया से)। 12. **इन शब्दों के संज्ञा-भेद बताइए**—स्त्रीत्व, भगवान्, बुढ़ापा, टीम, देश, मिट्टी, रक्षाबन्धन, मेला, बन्दर, सोना, रामायण, बहाव, मालिन्य, अपमान, रंग, व्यक्तित्व, भूकम्प, कुंज, तेजाब, पश्चिम। 13. **इन शब्दों में से भाववाचक संज्ञा शब्द छाँटिए**—कौशल, गरिमा, चाँदी, लेनदेन, मुरझाना, मम, मधुर, शैशव, सामीप्य, शौर्य, चपल, नीलिमा, सुधार, पुरुष, हँसी, दौड़, क्षत्रिय, अहंकार, सोना, दौत्य। 14. **भाववाचक संज्ञाओं से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) अभिमन्यु ने महारथियों के मध्य बड़ी·········दिखाई। (ख) शत्रुता दुःखद है किन्तु·········सुखद। (ग) अपने·········का ध्यान रखना। (घ) बुरों

की……से बचो। (ङ) तुम ने परीक्षा में……की है। (च) इन आमों में…… ज्यादा है। (छ) उसे हर कक्षा में……मिली। (ज) ईमानदार अपना काम……से करते हैं। (झ) वह अपनी……सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। (ञ) चाँदनी रात में ताजमहल की……और निखर जाती है। 15. **इन वाक्यों में लिंग सम्बन्धी अशुद्धियों को शुद्ध कीजिए**—(क) गुणवान् स्त्री सर्वत्र सम्मान पाती है। (ख) तुम्हा आत्मा कपटी है। (ग) वह धीमी स्वर मे बोली। (घ) मैं आठवें कक्षा में पढ़ता हूँ। (ङ) निदेशक महोदय ने मुझे आज्ञा दिया। (च) राम, लक्ष्मण और सीता वन को गई। (छ) दीपक का लौ जगमगा उठी। (ज) दही मीठी थी। (झ) राहुल अपने माँ-बाप का एकमात्र सन्तान था। (ञ) भागो, पुलिस आ रहा है। 16. **इन शब्दों कर पुल्लिग, स्त्रीलिंग की सूची में रखिए**—पक्षी, मच्छर, दर्ज़ी, फ़ीस, वक्त, वारंट, झंझट, ठठेरा, धूप, पूजा, दीप, छाता, राकेट, गोद, बौछार, प्रसाद, प्रासाद, आरती, चश्मा, दही, घी, गैलरी, मेज, खाट, पलंग, नाक, कान, मूँछ, मधु, धातु। 17. **इन शब्दों का लिंग-परिवर्तन कीजिए**—धोबी, नौकर, पापी, हिरण, वधू, विद्वान्, युवा, जेठ, हाथी, पुरुष, कुत्ता, तपस्वी, महाशय, ठाकुर, आचार्य, देवर, इन्द्र, बालक, पाठक, विधवा, लुटिया, सिंह, लुहारिन, दाता, पालिता, लड़ैत, भाग्यवती, पंडा, बन्दरो बिल्ली। 18. **कोष्ठकबद्ध शब्द का शुद्ध स्त्रीलिंग शब्द बताइए**--(बाघ) बाघिन/बाघनी/बाघिनी, (नर्तक) नृतकी/नर्तकी/नर्तिकी, (बाबू) बबुआइन/बाबूइन/बाबुनी,, (मन्त्री) मन्त्रिणी/मन्त्रणी/मन्त्राणी, (गीदड़) गीदड़ी/गिदड़ी/गीदड़िन, (युवक) युवकी/युवती/युवति, (सुनार) सुनारी/सुनारिन/सुनारि, (कवि) कवियत्री/कवयित्री/कवियानी/कवयाइन/कविश्री/कवीश्री, (इन्द्र) इन्द्रा/इन्द्रानी/इन्द्राणि/इन्द्राणी, (नायक) नायीका/नायका/नायिका/नायिकी, (परिचारक) परिचरिका/परिचारिकी/परिचारकी/परिचारिन, (सूर्य) सूर्याणी/सूर्या/सूरा/सूर्यी, (महाशय) महाशियी/महाशिनी/महाशया/महाशयी, (अध्यापक) अध्यापिकी/अध्यापिका/अध्यापका/अध्यापकी। 19. **इन शब्दों में से नित्य बहुवचन शब्द छाँटिए**—ओठ, दर्शन, पाँव, समाचार, अत्याचार, हस्ताक्षर, आँसू, लोग, मकान, अक्षत, वृन्द, हीरा, प्राण, भाग्य, आशीर्वाद, गण, दाम। 20. **इन शब्दों के बहुवचन बताइए**—खटिया, दूधवाला, पक्षी, योद्धा, झील, रानी, आला, मुनि, चौबे, फ़िल्म, ध्वनि, बोतल, प्याली, चिड़िया, दवात, दावत, नारंगी, शहज़ादी, तिजोरी, मामा, अध्यापिका, बहू, पाठक, आप। 21. **इन शब्दों में से जिन शब्दों के सरल बहुवचन में शून्य प्रत्यय लगता है, उन्हें बताइए**—दर्शन, केश, लोग, समाचार, लता, रोम, नदी, बालिका, आदमी, कक्षा, बालक, बहू, विद्यालय, पुस्तक, भाग्य, प्राण, कागज़। 22. **इन वाक्यों को बहुवचन में बदलिए**—(क) आज का छात्र कल का नेता है। (ख) तू ने यह पुस्तक भी पढ़ डाली। (ग) लड़की चिट्ठी लिख रही है। (घ) अपने बेटे का नाम बताइए। (ङ) हर बच्चे को जलेबी मिलेगी। 23. **इन वाक्यों में वचन सम्बन्धी अशुद्धियों को शुद्ध कीजिए**—(i) उस ने बताया कि मैं दो भाई है। (ii) पाकिस्तानी सेना ने गोले और तोपों से हमला किया। (iii) लड़कियें नाच

रही थीं। (iv) काम के मारे मेरा तो प्राण निकल गया। (v) स्वर्ण मन्दिर में कई आतंकवादी के साथ तीन दिन तक ब्लैककैट कमांडो सिपाही की मुठभेड़ होती रही। (vi) अभी तो पाँच ही बजा है। (vii) अपने-अपने घरों से पैसों ले कर आ। (viii) आप क्या खाओगे? (ix) वृक्षों में नयी-नयी पत्ती आ रही है। (x) लड़की लोग को अनेक प्रकार की कला सीखनी चाहिएँ। (xi) तेरी बकवासें सुन-सुन कर मेरा तो कान पक गया। (xii) कृष्ण के आँसू से सुदामा का पैर धुल गया। 24. **इन कथनों में से शुद्ध और अशुद्ध कथन छाँटिए**—(i) हिन्दी में सात कारक हैं। (ii) अपादान कारक का चिह्न 'में, पर' है। (iii) करण कारक का चिह्न 'से' है। (iv) शून्य सभी कारकों का चिह्न है। (v) अधिकरण कारक का चिह्न 'में, पर' है। 25. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कारक-चिह्नों से कीजिए**—(i) बुलबुल पेड़......डाली...... छोर......बैठी है। (ii) भूखे-नंगों......मन......अन्न-वस्त्र दो। (iii) खेलने...... हम बाग......चलें। (iv) बहन......भाई......कलाई......राखी बाँधी। (v) आजकल छोटे बच्चे भी बॉल पैन......कॉपी......लिखते हैं। (vi) घोंसले...... पक्षी......बाहर सिर निकाल कर चारों ओर देखा। (vii) कारखाने......काम रात ......खत्म होगा। (viii) राजा......एक कन्या रत्न उत्पन्न हुआ। (ix) आप......आगे जाने......एक तिराहा मिलेगा। (x) पटना......गया लगभग साठ किलोमीटर......दूरी......है। 26. **इन कारक-चिह्नों के नाम बताइए**—(i) माँ दराँत से सब्जी काट रही है। (ii) नौकर बाजार से दूध लेने गया है। (iii) बेटे ने शराबी बाप को बहुत समझाया। (iv) घर में तो कुत्ता भी शेर बन जाता है। (v) भूखे को रोटी दो। (vi) मुझ से चने नहीं चबाए जाते। (vii) वृक्ष से फूल गिर रहे हैं। (viii) किसान ने साँप को लाठी के प्रहार से मार डाला। 27. **सर्वनामों से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(i)......जैसा करेगा,......वैसा भरेगा। (ii) कल तुम्हारे घर......हो रहा था? (iii) लड़कियाँ आईं और......कहा। (iv) अभी मैं प्यासा हूँ,......थोड़ा पानी और दो। (v) तू बता—मेरे पास तो पाँच रुपये हैं, और...... पास? (vi) ......कल लौटूँगा। (vii) ......कहे दे रहा हूँ......मुझ से कोई आशा मत रखो। (viii) इस बारे में मैं......मत पहले ही प्रकट कर चुका हूँ। (ix) क्या यह आप की......पुस्तक है? (x) ......भला तो जग भला। 28. **इन कथनों में से शुद्ध कथन बताइए**—(क) 'सब' सामान्यार्थक सर्वनाम है। (ख) 'कोई' मध्यम पुरुष प्रश्नवाचक है। (ग) 'वह' का सम्बोधन रूप 'उसे' है। (घ) 'यह' पुरुषवाचक अन्य पुरुष है। (ङ) सर्वनाम संज्ञा का एक भेद है। (च) 'जो' सम्बन्धवाचक सर्वनाम है। 29. **इन में से किन वाक्यों में निजवाचक सर्वनाम आया है?**—(क) यह मेरी निजी सम्पत्ति है। (ख) हे भगवान्, मुझे अपना लो। (ग) आजकल अपनापन रहा ही कहाँ है? (घ) अरे भाई, अपनों से क्या छिपाना! (ङ) आप भला तो जग भला। 30. **इन्हें सर्वनाम की दृष्टि से शुद्ध कीजिए**—(i) देखना, दूध में कौन पड़ गया! (ii) तुम्हारे से यह बोझ नहीं उठाया जा सकेगा। (iii) मेरे को उस का नाम मालूम

नहीं है। (iv) तुम तुम्हारा काम करो, मैं मेरा कर लूँगा। (v) रेल से जाना हो तो रेल का समय मालूम कर लो। (vi) मुझ को तीन बेटियाँ हैं। (vii) तुम्हारे को कितने बेटे हुए ? (viii) यह सब रूमाल उठा लो। (ix) इस सम्बन्ध में हम हमारी मजबूरी बता ही चुके हैं। (x) लो, वह लोग आ भी गए। 31. **उपयुक्त शब्द चुन कर रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) ·······तो कल भी अपने काम पर गया था। (आप/हम/मैं/ये) (ख) यह·······संवाददाता का कहना है। (आप/कोई/हमारे/उसे) (ग) ····ही मेरी प्यारी बिटिया है। (घ) (तुम/तू/वे/जो) ऐसा····से मत कहना। (कौन/किसी/कोई/मेरे) (ङ) इतनी देर में भी····ज़रा-सी बात नहीं समझ पाए। (मैं/वह/तुम/तू) 32. **इन शब्दों से विशेषक बनाइए**—रक्त, इतिहास, अवलम्ब, सम्प्रदाय, मूल, संकेत, देव, यज्ञ, साहित्य, करुणा, शोष्, पंक, पत्, कुसुम, वह, धर्म, विश्वजन, शिव, बुद्धि, ग्राम, सोना, काल, सिन्धु, स्वर्ण, माया, तेल, बंगाल, पानी, मिट्टी, सूर्य, जल, जीव, दलन, वर्ग, लोहा, भक्ति, लोभ, सर्वजन। 33. **'क' सूची के विशेष्यों के साथ 'ख' सूची के उपयुक्त विशेषण रखिए**—(क)—(1) लोग (2) मुनि (3) लड़का (4) पिता जी (5) महिला (6) विचार (7) वस्त्र (8) पशु (9) चीनी (10) दूध (11) माल (12) देश (13) डगर (14) प्रधानाचार्य (15) दृश्य (16) साँप (17) वातावरण (18) पुरुष (19) कार्य (20) ग्रन्थ (21) घटाएँ (22) बादल (23) नदियाँ (24) वृक्ष (25) खेत। (ख)—(1) पूजनीय (2) श्रीमान् (3) जल-मय (4) विदेशी (5) पीले (6) अच्छा (7) काला (8) कर्मरत (9) निन्द्य (10) तेजस्वी (11) साहित्यिक (12) पथरीली (13) स्वतन्त्र (14) थोड़ी-सी (15) ग्रामीण (16) कुछ (17) मीठा (18) उन्नत (19) गुणवती (20) वन्य (21) काले (22) ऊँचे-ऊँचे (23) समतल (24) मनोहर (25) उमड़ती 34. **रिक्त स्थानों की पूर्ति उपयुक्त विशेषणों से कीजिए**—(क) श्याम के पास एक·······कुत्ता है। (गठीला/बर्फ़ीला/सजीला/रँगीला) (ख) राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद·······खद्दर का कोट पहनते थे। (लम्बे/मोटे/छोटे/चौड़े)। (ग) क्या आप के यहाँ हमारी·······बेटी आई थी। (छोटी/रोती/सोती/हँसती)। (घ) ताजमहल की·······कारीगरी देख कर······· दर्शक मुग्ध हो जाते हैं। (विराट्/बृहत्/सूक्ष्म/गहन), (अन्तर्देशीय/सभी/चतुर/चालाक)। (ङ) हनुमान श्रीराम के·······भक्त थे। (चरम/नरम/परम/करम)। 35. **विशेषणों की दृष्टि से इन वाक्यों को शुद्ध कीजिए**—(i) वह काफ़ी खूबसूरत महिला है। (ii) पिता की मृत्यु से उसे भारी दुःख हुआ। (iii) उस कारखाने में लगभग एक हज़ार 435 आदमी काम करते हैं। (iv) भगवद्गीता को समस्त प्राणिमात्र के कल्याण के लिए रचा गया था। (v) सिंह बहुत ही बीभत्स होता है। (vi) किसी ने भी अपना-अपना काम पूरा नहीं किया। (vii) प्रत्येक को चार-चार पुस्तकें दीजिए। (viii) इसे गुप्त रहस्य ही रहने दो। (ix) एक बड़ी-सी बिच्छू मेरी पलंग पर पड़ा था। (x) कल मैं ने चार नीलियाँ साड़ियाँ खरीदीं। 36. **इन**

वाक्यों की क्रिया सम्बन्धी अशुद्धियाँ शुद्ध कीजिए—(i) हम ने हेमा का गाना और रूप देखा। (ii) मैं नाश्ता खा कर आऊँगा। (iii) पति-मृत्यु पर महिला विलाप कर के रोने लगी। (iv) क्या ऐसा भी सम्भव हो सकता है? (v) संस्थान में आज-कल कैसा वातावरण उपस्थित है? (vi) वेद-मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण बोलो। (vii) बच्चों को वहाँ नहीं जाना चाहता था। (viii) आप मेरा क्या कर लोगे? (ix) सुनिए, शोर मत करो। (x) लड़की हँस डाली। 37. **इन वाक्यों के वाच्य-परिवर्तन कीजिए**—(i) शिक्षा पर अभी भी बहुत कम खर्च किया जाता है। (ii) पहले अन्तर में हमें व्याकरण पढ़ाया गया। (iii) अध्यापिका ने आज हमें गणित पढ़ाया। (iv) उन दोनों आतंकवादियों को गोली मार दी गई। (v) कहारों ने डोली नहीं उठाई। (vi) बच्चे इस प्रकार के कष्ट को नहीं सह सकते। (vii) ईश्वर सब की रक्षा करता है। (viii) नयी माँ ने बच्चों को प्यार किया। (ix) यहाँ उन से नहीं बैठा जाएगा। (x) तुम मुझे मूर्ख समझते हो। (xi) सिपाहियों ने चोर को पकड़ा। (xii) ये बच्चे यहाँ नहीं खेलेंगे। (xiii) वह आठ बजे से पहले नहीं उठती। (xiv) आजकल मैं चाय नहीं पीता। (xv) बैठिए, मैं नौकर को बुला रहा हूँ। 38. **इन में शुद्ध-अशुद्ध कथन बताइए**—(i) 'दयालबाग-भवन कई सालों से बन रहा है' कर्मकर्तृ रूप है। (ii) 'आओ बाहर बैठें' में वर्तमान काल है। (iii) पक्ष पाँच होते हैं। (iv) लात से लतियाना तो बना सकते हैं किन्तु झूठ से झुठाना नहीं। (v) पूर्ण पक्ष का सूचक-त है। (vi) 'वे आए थे' में अपूर्ण पक्ष है। (vii) काल के बीस भेद हैं। (viii) 'वे सोते होंगे' संदेहार्थ है। (ix) 'यदि तू वहाँ गई तो मैं तुझे पीटूँगी' सन्देहार्थ है। (x) 'रह' सातत्य का सूचक है। 39. **रिक्त स्थानों पर उपयुक्त क्रिया-रूप रखिए**—(i) शायद इस समय राशन की दुकान········(खुलना)। (ii) माधव यहाँ कई वर्ष से········(रहना)। (iii) क्या तुम ने वह पत्रिका········(पढ़ लेना)। (iv) मीता से अभी भी खाना नहीं········(बनाना)। (v) इस पत्र को मास्टर से ··· लो (पढ़ना)। (vi) जमींदार (नौकर से) खेत ···रहा है (जोतना)। (vii) पंडा (जजमान द्वारा) मछलियों को आटा········रहा है (खाना)। (viii) स्टेशन के पास रेलगाड़ी तेज़ नहीं········(चलना)। (ix) वायु सेना को मोर्चे पर भेज दिया········है (जाना)। (x) रास्ते में गड्ढा न········तो मुझे चोट न········(होना, लगना)। 40. **इन क्रियाओं के कर्म की दृष्टि से भेद बताइए**—(क) माँ ने बेटे को सौ रुपये दे दिए हैं। (ख) अब घर जाओ, रात हो गई। (ग) बच्चा छत से गिर पड़ा। (घ) आप मेरे मित्र जो ठहरे। (ङ) तू मुझे अपनी बातों से क्यों घबराया करता है। (च) कुछ अखाद्य चीजें भी कभी-कभी स्त्रियों का जी ललचाती हैं। 41. **रिक्त स्थान पर उपयुक्त पारिभाषिक शब्द रखिए**—(i) वर्तमान काल में जिस क्रिया के होने/किए जाने में सन्देह पाया जाए उसे········कालिक क्रिया कहते हैं। (ii) भूतकाल में हो सकनेवाली जो क्रिया किसी कारण सम्पन्न न हो सकी उसे········कालिक क्रिया कहते हैं। (iii) मुख्य क्रिया से पूर्व समाप्त हुई क्रिया को········

कालिक क्रिया कहते हैं। (iv) क्रिया का मूल रूप..........कहा जाता है। (v) क्रिया-धातु से इतर शब्दों से बनी क्रिया-धातु को..........कहते हैं। (vi) संयुक्त क्रिया में आई अर्थ-वैशिष्ट्य सूचक क्रिया को.......क्रिया कहते हैं। (vii) ....में क्रिया की अन्विति न कर्ता से होती है और न कर्म से। (viii)........ में क्रिया का व्याकरणिक कर्ता मूलतः कर्म होता है। (ix) सक्रिय कर्ता को.......भी कहते हैं। (x) संज्ञा की भाँति प्रकार्य करनेवाली क्रिया-धातु.......कहलाती है। 42. **उपयुक्त अव्ययों से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(चाहे, तभी, कब, आजकल, ज़ोर से, कल, अगले, ही, नहीं, इसलिए, यहीं, ताकि, हाय !, ऐं !, बिना, आगे, की अपेक्षा, भी, लेकिन, आज, या, अरे !) (i).......वे यहाँ.......रहते, पहले.......रहते थे। (ii) बच्चों के.......चिल्लाने से पिता जी की नींद उचट जाएगी। (iii) ....उन्हें जाना पड़ा था, वे.......ही लौटे हैं। (iv) तुम.......चलो, वे.......आ रहे हैं। (v) ....कोई बड़ा हो.......छोटा, सम्मान की इच्छा सब में होती है। (vi) तुम्हें परीक्षा से.......रोका है.......तुम.......वर्ष अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो सको। (vii) ....जालिम ने उसे मार.......डाला। (viii) ....तुम.......यहाँ चली आईं। (ix) मैं ने अपनी सहेली को बुलाया था.......वह आई.......नहीं। (x) पिता जी ने खाना खा लिया.......नहीं ? (xi) अभी से परिश्रम करो.......प्रथम आ सकोगे। (xii) ....मेरी बच्ची मर गई। (xiii) ....तुम.......आ गईं ? (xiv) धन के ....तो संन्यासियों का काम.......नहीं चलता। (xv) धन.......धर्म को श्रेष्ठ माना जाता रहा है। (xvi) वह सब से.......दौड़ रहा था। 43. **इन में अव्यय सम्बन्धी अशुद्धियों को शुद्ध कीजिए**—(क) रोगी को सारी रात भर नींद नहीं आई। (ख) वे रोज़ाना प्रातःकाल के समय घूमने जाया करते थे। (ग) यह कदापि भी सत्य नहीं हो सकता। (घ) उन्हें चाहिए कि वे मेरे कहे काम करें। (ङ) ऐसा तो सदैव से होता आया है। 44. **काले टाइप का शब्द कौन-सा निपात है ?**—(क) **काश** ! वे आज न गए होते। (प्रश्नबोधक/अवधारणबोधक/सीमाबोधक/विस्मयादिबोधक) (ख) वे आज **नहीं** आनेवाले हैं। (स्वीकारात्मक/नकारात्मक/बलप्रदायक/निषेधात्मक) (ग) **क्या** तुम जा रही हो ! (तुलनाबोधक/आदरबोधक/प्रश्नबोधक/अवधारणबोधक) (घ) वे **ही** यह बात जानते हैं। (निषेधात्मक/बलप्रदायक/स्वीकारात्मक/नकारात्मक) (ङ) यहाँ **मत** सोओ। (प्रश्नबोधक/निषेधबोधक/विस्मयादिबोधक/सीमाबोधक) (च) तुम्हें मेरे लौटने **तक** प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। (स्वीकारात्मक/बलार्थक/अवधारणबोधक/निषेधबोधक) (छ) छोटा बच्चा **भी** अपना हित समझता है। (नकारात्मक/स्वीकारात्मक/बलप्रदायक/निषेधात्मक) 45. **इन शब्दों को उपयुक्त रिक्त स्थान पर रखिए**—(पहले, नीचे, बिलकुल, प्रतिदिन, अकस्मात्, ज़रा, ऊपर, ध्यानपूर्वक, तड़ातड़) (क) कल....... मेरे बड़े भाई साहब आ गए। (ख) नक़ल भी.......करनी चाहिए। (ग) तुम तो बच्ची के गाल पर.......चाँटे मार रही थीं। (घ) पतंग को.......की ओर खींचो, वह.......उठती मालूम पड़ती है। (ङ) आप.......ग़ौर से सुनिए। (च) हाथी ने

बच्चे को······कुचल दिया। (छ) मेरी माता जी·······पढ़ाया करती थीं। (ज)······सुबह-शाम टहलना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। 46. **इन शब्दों का सन्धि-विच्छेद कीजिए**—तथैव, अन्वेषण, स्वर्ग, सन्तोष, वागीश, निराधार, राजर्षि, यद्यपि, परमार्थ, स्वागत, विद्यार्थी, अन्तस्तल, वृक्षच्छाया, शशांक, वेदान्त, उच्छ्वास, नमस्कार, महर्षि, जगदीश, देवेन्द्र, रत्नाकर, सज्जन, रजोगुण, कपीन्द्र, दुराशा, अतएव, गिरीश, परमौदार्य, उल्लेख, दिगंत, गणेश, नीरस, रवीन्द्र, वधूत्सव, रजनीश, परोपकार, यशोऽभिलाषी, इत्यादि, निष्कपट, उद्घाटन, परमात्मा, निर्विवाद, शिष्टाचार, यथोचित, सर्वोदय, व्याकुल, सद्भावना, उन्नति, वाङ्मय। 47. **इन से सन्धिज शब्द बनाइए**—सम्+योग, सम्+न्यास, पद्+उन्नति, गुरु+उपदेश, वाक्+ईश, मनः+रंजन, प्रति+एक, सर्व+उदय, इति+आदि, षट्+आनन, अति+अधिक, नौ+इक, सदा+एव, रमा+ईश, गण+ईश, वधू+उत्सव, जल+ऊर्मि, महा+औज, अनु+अय, ने+अन, महा+ईश। 48. **इन में शुद्ध सन्धि-विच्छेद बताइए**—भानूदय (भानु+उदय/भानू+उदय/भानू+दय), सागरोर्मि (सागर+ऊर्मि/सागर+उर्मि/सागरो+उर्मि), अन्वय (अनु+वय/अन्+वय/अनु+अय), उज्ज्वल (उज्+वल/उत्+ज्वल/उज्+ज्वल), दीक्षांत (दिक्+अन्त/दीक्षा+अन्त/दीक्षा+न्त), मतैक्य (मतै+क्य/मत्+एक्य/मत+ऐक्य), इत्यादि (इत्य+आदि/इत्या+दि/इति+आदि), धर्मात्मा (धर्मा+त्मा/धर्म+आत्मा/धर्मा+आत्मा), नयन (नय+न/ने+अन/ने+यन), समुच्चय (समु+उच्चय/सम+उच्चय/सम्+उच्चय/सम्+उत्+चय), सूक्ति (सू+ऊक्ति/सू+उक्ति/सु+उक्ति/स+ऊक्ति), सूर्योदय (सूर्यः+उदय/सूर्ये+उदय/सूर्यो+दय/सूर्य+उदय), व्यर्थ (व+अर्थ/वि+अर्थ/व्य+अर्थ/व्यय+अर्थ), अन्तर्गत (अन्तः+गत/अन्तर+गत/अन्त+र्गत/अन्तर्+गत), नारायण (नार+आयन/नार+अयन/नार+अयण/नर+आयण), स्वार्थ (स्वा+अर्थ/स+अर्थ/स्व+अर्थ/सु+अर्थ), नायक (ना+अक/ने+अक/नै+अक/ना+यक), साष्टांग (स+अष्ट+अंग/सास+टांग/सा+अष्टांग/सः+अष्ट+अंग) 49. **इन शब्दों का समास-विग्रह कीजिए**—उद्योगपति, कृष्णसर्प, कष्टसाध्य, खरा-खोटा, ग्रामवास, चौमासा, जन्म-मरण, चतुर्मुख, चतुर्भुज, त्रिलोकी, तुलसीकृत, नीलगगन, नीलकण्ठ, दाल-भात, नीलाम्बर, नीलकमल, दशानन, प्रतिवर्ष, पथभ्रष्ट, पंचतन्त्र, महात्मा, पाप-पुण्य, परमानन्द, प्रतिदिन, यथासमय, राजा-प्रजा, राष्ट्रपति, वचनामृत, सेनापति, शरणागत। 50. **इन शब्दों/वाक्यांशों में समास कीजिए**—महान् पुरुष, तीन फलों का समाहार, जो ब्राह्मण न हो, धर्म और अधर्म, नीति में निपुण, मृग की आँखों के समान आँखें हैं जिस की, ऋण से मुक्त, अस्त्र और शस्त्र, गोबर से बने गणेशवत्, घन जैसा श्याम, हवन के लिए सामग्री, जल देनेवाला, नीला है कंठ जिस का, नौ रत्नों का समूह, पेट भर कर, युद्ध में स्थिर रहनेवाला, महान् बली, अल्प है बुद्धि जिस की, आठ अध्यायों का समाहार, अंशु है माला जिस की, गृह को आगत, घी और शक्कर, गणों का पति, चन्द्र जैसा मुख, दस हैं आनन जिस के, तीन वेणियों

का समूह, तीनों लोकों का समाहार, मद से अन्धा, मेघ के समान नाद है जिस का, पथ से भ्रष्ट, पीला है अम्बर जिस का, महान् है वीर जो, रेखा द्वारा अंकित, राह के लिए खर्च, शक्ति के अनुसार, व्यापार में पटु, प्राणों के समान प्रिय, हाथ के लिए कड़ी, दो या तीन, सिंह समान नर, जब तक जन्म रहे, पाँच हैं मुख जिस के, पाँच वटों का समूह, गगन को चूमनेवाला, जो उपयुक्त न हो, शुभ आगमन, मर्म को स्पर्श करनेवाला, तीन भुवनों का समूह, स्त्री ही है रत्न 51. **इन शब्दों में से 3-3 समानार्थियों/पर्यायवाचियों का चयन कीजिए**—अटवी, अनल, अभ्यागत, अजित, आवास, इच्छा, उदधि, कानन, जलाशय, ताल, दैत्य, द्वितीय, दानव, धाम, पत्नी, पावक, पीयूष, मधु, महिला, मेहमान, पुष्कर, पुष्प, महेश, भिन्न, ललना, वनिता, रमा, वसन्त, विपिन, वह्नि, वारिज, शिव, सदनं, शत्रु, सुधा, हर, अतिथि, असुर, अमृत, 52. **इन शब्दों के विलोमार्थी बताइए**—अमृत, आय, आयात, आस्तिक, आर्य, आर्द्र, उत्तम, उत्थान, कटु, कृतज्ञ, खरा, जीवन, देव, निर्बल, पंडित, प्रवृत्ति, प्राचीन, बाह्य, यश, योग्य, रुचिकर, विपत्ति, वक्ता, सरल, सुखद, संतोष, स्वदेश, स्वर्ग, सेवक, हर्ष। 53. **इन शब्दों के सही विलोमार्थी शब्द छाँटिए**—(क) आलोक (अन्धकार, अँधेरा, तम, तिमिर, प्रकाश, सवेरा) (ख) इच्छा (अथाह, अनिच्छा, अभिलाषा, कामना, मनोरथ) (ग) नाराज (अप्रसन्न, क्षमा, गुस्सा, माफ़ी, खुश, सहन, स्तुति) (घ) गुरु (छोटा, तंग, दीर्घ, नाटा, लघु, विद्यार्थी) (ङ) चतुर (अनिपुण, कुशल, प्रवीण, बेवकूफ, मूर्ख) (च) दुःख (खुशी, पीड़ा, व्यथा, संकट, सुख, हर्ष) (छ) नूतन (अर्वाचीन, नया, पुराना, पुरातन, प्राचीन) (ज) राजा (ग़रीब, नृप, फ़कीर, महीप, भूपति, रंक) (झ) सुन्दर (असुन्दर, बदसूरत, मंजुल, मनोहर, रम्य) (ञ) सुपुत्र (आत्मज, कुपुत्र, तनय, नन्दन, बेटा, सुत) 54. **प्रदत्त शब्दों से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(अशिष्ट, दुःख, प्रिय, जीवन, सबल, सुख, रोशनी, हानि, यश, अँधेरे, निर्बल) (क)⋯के अभाव में⋯का आदर कौन करेगा ? (ख) उल्लू को⋯की आवश्यकता नहीं,⋯की आवश्यकता होती है। (ग) सभी⋯के पीछे चलते हैं⋯के नहीं। (घ)⋯लाभ⋯मरण⋯अपयश विधि हाथ। (ङ) शिष्ट व्यवहार सभी को⋯ होता है,⋯किसी को प्रिय नहीं होता। 55. **इन वाक्यांशों के लिए एक-एक शब्द बताइए**—(1) अपनी हत्या करनेवाला (2) ईश्वर/वेद में आस्था रखनेवाला (3) काम से जी चुरानेवाला (4) जिस का वर्णन न हो सके (5) जिस का आदि न हो (6) जिस का भाग्य अच्छा न हो (7) जिस का निवारण न हो सके (8) जिसे स्पर्श करना वर्जित हो (9) जिस के कोई सन्तान न हो (10) जिसे क्षमा न किया जा सके (11) जिस में कोई विकार न हो (12) जिस में सन्देह न हो (13) जिस पर विश्वास न किया जा सके (14) जिस में दया न हो (15) जो सभी का प्रिय हो (16) जो लज्जा-विहीन हो (17) जो प्राणी जल में रहे (18) जो उत्तर न दे सके (19) जो मांस का आहार न करता हो (20) जो नष्ट न होनेवाला हो (12) जो वचनों से परे हो (22) जो कभी न मरे (23) जो राजनीति जाने (24) दुष्ट

बुद्धिवाला (25) देखने योग्य (26) दूर की बात को देखनेवाला (27) शक्ति के अनुसार (28) सब कुछ जाननेवाला (29) जो जानने की इच्छा रखता हो (30) भविष्य को देखनेवाला 56. **इन वाक्यों के काले छपे वाक्यांशों के स्थान पर एक-एक शब्द का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए**—(1) आप हमारे घर **परिवार के साथ** कब आएँगे ? (2) **ऊपर कही गई** बातों का विशेष ध्यान के साथ पालन करना चाहिए। (3) **जो शरण में आ गया हो**, उस की रक्षा करनी ही चाहिए। (4) वसन्त ऋतु में प्रकृति की शोभा **देखने योग्य** होती है। (5) सीता जी चित्रकूट में **पत्तों की बनी कुटिया** में रहती थीं। 57. **इन शब्दों में मूल शब्द तथा उपसर्ग छाँटिए**—अध्यक्ष, आरोहण, उल्लेख, बदबू, लावारिस, दुबला, बदकार, दुर्दमनीय, संस्कृत, परिश्रम, नीरोग, प्रफुल्लता, पराभव, परिणाम, उद्योग, प्रत्युपकार, दुराचार, उद्धत, विस्मरण, उन्नीस। 58. **इन शब्दों में मूल शब्द तथा प्रत्यय छाँटिए**—महिमा, स्त्रीत्व, तैराक, बचपन, खटिया, ग़रीबी, खिवैया, लालची, नीलिमा, हर्षित, झाड़न, चमकीली, पाठक, लकड़हारा, लुटिया, सुनार, बुराई, लिखावट, पुष्पित, साहित्यिक, पुजारी, झगड़ालू, जंगली, प्यासा, अगला, अड़ियल, छबीला, बपौती, बनैला, डकैत, गेरुआ, कर्तव्य, पूजनीय, चटनी, एकल, दैत्य, पांडित्य, आनन्दित, टिकली, चचेरा, भुतहा, इकरारनामा, दर्दनाक, खाकसार, पर्दानशीन। 59. **इन शब्दों के विलोमार्थी शब्दों से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(अर्वाचीन, आस्तिकता, दिन, त्याग, मान, विकर्षण, संक्षिप्त, साहसी, सुकाल, स्वतन्त्रता (i) उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द·········भर लिखते रहते थे। (ii) तलवार का घाव भर जाता है, किन्तु···· का घाव कभी नहीं भर पाता। (iii) धन की पूजा को सन्तों ने सांसारिक····कहा है। (iv) बौद्ध धर्म के ह्रास के दिनों में····का विकृत रूप तन्त्र-साधना बन गया था। (v) संवत् 1956 का····बहुत समय तक याद रहेगा। (vi)····सिपाही ही प्राणों की चिन्ता कर युद्ध भूमि से भागते हैं। (vii) हमें···भारतीय संस्कृति पर गर्व है। (viii) कलवाली दुर्घटना की····जानकारी मिलनी चाहिए। (ix)····का बन्धन कोई नहीं चाहता। (x) खजुराहो की मूर्तियों में विशेष····है। 60. **प्रदत्त पर्याय शब्दों में से उपयुक्त शब्द से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) आतंकवादियों के हमले के समय अनेक लोग रामायण के संगीत····में गोते लगा रहे थे। (समुद्र, सागर, पयोधि, रत्नाकर (ख) सभी राजपूत अपने····पर गर्व करते हैं। (शक्ति, पराक्रम, वैभव, गौरव) (ग) पंचायतें स्थापित करने का उद्देश्य था—जनता को···· की नींद सोने का अवसर प्रदान करना। (आनन्द, सुख, आमोद, हर्ष) (घ) देखते-देखते सारा····मेघाच्छन्न हो गया। (आसमान, आकाश, व्योम, अन्तरिक्ष) (ङ) मैं बचपन से ही····में तैरना सीख गया था। (सरिता, नदी, तटिनी, तरणी) 61. **इन शब्दों के दिए गए पर्याय शब्दों में से 2-2 अपर्याय शब्दों को छाँटिए**—(i) अपमान (अवहेलना, तिरस्कार, परिभव, अनादर, निरादर, पराभव) (ii) आँख (चक्षु, हम, प्रियम्बु, सहकार, नेत्र, लोचन, नयन) (iii) इन्द्र (अमरपति, पुरन्दर, मेघवाहन,

(ङ) एक डंडे से हाँकना (च) एक थैली के ईंट-पत्थर (छ) कान पर चींटी तक न रेंगना (ज) ज़मीन पर पंजा न पड़ना (झ) नाकों चबेना चबाना (ञ) रस्सी जल गई मगर सलबट नहीं निकली।

पदबन्ध तथा वाक्य-व्यवस्था—1. **शुद्ध उत्तर बताइए**—(i) 'तन्दुरुस्त और सुन्दर बच्चा सभी को अच्छा लगता है' में 'तन्दुरुस्त और सुन्दर बच्चा' है—(क) पद (ख) उपवाक्य (ग) पदबन्ध (घ) सामासिक शब्द। (ii) 'हमारे पड़ोस में कमलनयन रहता है' में 'कमलनयन' है—(क) पद (ख) पदबन्ध (ग) समस्त पद (घ) सन्धि (iii) 'तुझ अभागे को यह दिन देखना भी बदा था' में 'तुझ अभागे को' है—(क) संज्ञा पदबंध (ख) सर्वनाम पदबन्ध (ग) विशेषण पदबन्ध (घ) उपवाक्य (iv) 'इस समय आप यहाँ से चले जाइए' वाक्य है—(क) प्रश्नसूचक (ख) अनुरोध-सूचक (ग) आज्ञार्थक (घ) निषेधसूचक (v) 'उस के सामने या शान्त सरोवर और उस में तैरता हुआ एक राजहंस' में 'तैरता हुआ' है—(क) विशेषण पदबन्ध (ख) क्रियाविशेषण पदबन्ध (ग) क्रिया पदबन्ध (घ) संज्ञा पदबन्ध (iv) 'तपती दुपहरी में भिखारी ज़मीन पर लोटते हुए चिल्ला रहा था' में 'ज़मीन पर लोटते हुए' है—(क) विशेषण पदबन्ध (ख) क्रियाविशेषण पदबन्ध (ग) क्रिया पदबन्ध (घ) संज्ञा पदबन्ध (vii) 'श्रीकृष्ण सुदामा की दीन दशा सुन कर अत्यन्त विह्वल हो गए' वाक्य है—(क) सरल (ख) सरलसम (ग) मिश्र (घ) संयुक्त (viii) 'वह, जो अभी-अभी यहाँ से गई है, मेरे साले की बेटी है' में 'ज़ो····गई है' है—(क) पदबन्ध (ख) वाक्य (ग) उपवाक्य (घ) समस्त पद (ix) 'तुम्हारा पैसा इस महीने के अन्त तक तुम्हें मिल जायगा' में 'इस महीने के अन्त तक' है—(क) संज्ञा पदबन्ध (ख) क्रियाविशेषण पदबन्ध (ग) सर्वनाम पदबन्ध (घ) समयसूचक पद (x) 'सूरज उगा, कुहासा भागा' वाक्य है—(क) सरल (ख) मिश्र (ग) संयुक्त (घ) सरलसम 2. **संरचना की दृष्टि से ये कैसे वाक्य हैं?** (i) माँ-बाप चाहते हैं कि उन की सन्तान स्वस्थ रहे और ख़ूब पढ़े-लिखे (ii) पौधों के जीवन का आधार केवल पानी ही नहीं है, वरन् कई अन्य पदार्थ भी हैं। (iii) बच्चा अभी-अभी सो कर उठा है। (iv) विद्या से ज्ञान-वृद्धि होती है, विचार-शक्ति प्राप्त होती है तथा सम्मान मिलता है। (v) जब संकट आ जाए तो घबराना नहीं चाहिए। (vi) प्राची में सूर्य के आगमन ने अन्धकार के अस्तित्व को समाप्त कर दिया। 3. **इन में से मिश्र वाक्य छाँटिए**—(क) क्या अध्यापकों के समक्ष ही छात्र अध्ययनरत रहते हैं (ख) छात्र अध्ययनरत रहते हैं और अध्यापक उन्हें देखते हैं (ग) अध्यापक देखते हैं कि छात्र अध्ययनरत हैं (घ) अध्यापकों के सामने छात्र अध्ययनरत रहते हैं या नहीं (ङ) जब छात्र अध्ययनरत रहते हैं, तब अध्यापक उन्हें देखते हैं। 4. **इन वाक्यों में आश्रित उपवाक्य छाँटिए और उन के नाम बताइए**—(क) यह बिलकुल झूठ है कि मैं ने तुम्हारी घड़ी चुराई है। (ख) जब तुम पैदा हुए थे, तब मैं दस वर्ष का था। (ग) श्याम ने बताया कि वह कल नहीं आ पाएगा। (घ) यदि इस सप्ताह भी पानी नहीं बरसा तो सूखा पड़ जाएगा (ङ) मुझे

वही नोट चाहिए जो तुम्हारे हाथ में है। 5. **इन वाक्यों में उद्देश्य छाँटिए**—(क) गंगा एक बहुत पवित्र नदी है। (ख) गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दी में रामायण लिखी है। (ग) सर विलियम जोन्स संस्कृत के एक उत्कृष्ट विद्वान् थे। (घ) सभी जवान देश के प्रहरी हैं। (ङ) मेरे पड़ोसी की बड़ी बेटी की शादी कल है। 6. **इन वाक्यों को सरल वाक्यों में बदलिए**—(क) जो बच्चे भोले-भाले तथा परिश्रमी होते हैं, उन्हें सभी प्यार करते हैं। (ख) यदि मन लगा कर परिश्रम किया जाएगा तो सफलता मिलेगी ही (ग) बताइए, आप कब वापस आ रहे हैं? (घ) वे केवल पढ़ाते ही नहीं, बल्कि खेती भी करते हैं। (ङ) जब हार ही गए, तब अफ़सोस क्यों? 7. **कारक-प्रयोग की दृष्टि से इन वाक्यों को शुद्ध कीजिए**—(i) वे कल सुबह नौकरानी बुलाया था। (ii) यह प्रश्न किसी की समझ नहीं आया। (iii) साधना उर्मिला को खिलौने लाई। (iv) घाव में मरहम लगा लो। (v) तालाब के अन्दर पानी नहीं है। (vi) तुम वहाँ किस को मिलोगे? (vii) उच्च विचार को ग्रहण करो (viii) युद्ध में सैनिक जान हथेली में रख कर शत्रु को लड़ते हैं। (ix) बच्चे ने हँस दिया। (x) बहन भाई में विश्वास था। (xi) बच्चा खिलौना को रो रहा है। (xii) पिता से मेरा प्रणाम। (xiii) तुम तो घर में का आदमी हो। (xiv) दो मज़दूर मकान की छत पर से गिर गए। (xv) चलो, इसी बहाने से उन का दर्शन हो गया। (xvi) बच्चे को आप की बात भूल गई। (xvii) प्रधानाचार्य मॉनीटर को पूछा कि····(xvii) मैना झाड़ी पर बैठी है। (xix) इस गाँव पर कुत्तों की अधिकता है। (xx) वह स्कूल को छोड़ दिया है। 8. **इन वाक्यों को मिश्र वाक्यों में बदलिए**—(क) अस्वस्थ होने के कारण सुशीला परीक्षा में सम्मिलित न हो सकी। (ख) भारतीय जवानों को मोर्चा सँभाले देख दुश्मन भाग खड़े हुए। (ग) घर आए अतिथि की दीन दशा देख कर बच्ची से भरपेट खाना खिलाया। (घ) संकटों से घिरा रहने पर भी वह निराश नहीं हुआ। (ङ) परिश्रमी छात्र परीक्षा में अवश्य सफल होते हैं। 9. **विविध प्रकार की अशुद्धियों से युक्त इन वाक्यों को शुद्ध कीजिए**—(1) अफ़सर ने कागज़ात का निरीक्षण कर लिया है। (2) ऐसे काव्य में किसी व्यक्ति या घटना के दृश्य या रूप का ही चित्रण प्रधान होता है। (3) ये पत्र जब वे जेल में थे, उन दिनों लिखे थे। (4) क्या तुम अपनी बात का स्पष्टीकरण करने के लिए तैयार हो? (5) अब इस बच्चे का भविष्य आप पर निर्भर करता है। (6) बेचारी कई वर्षों से उस के लौटने की प्रतीक्षा देख रही है। (7) महान् व्यक्ति के लिए उस का काम ही पूजा होती है। (8) अभी एकाध कठिनाइयाँ और रह गई हैं। (9) क्या तुम को भी दो बार जुड़वाँ बच्चियाँ हुई हैं? (10) किसी भी बच्चे को भेज दीजिए। (11) चाहे जो भी हो, हम वहाँ चलेंगे। (12) अरे, तुम तो इतनी जल्दी वापस लौट आई। (13) तब तो शायद वे हमें वहाँ ज़रूर मिलेंगे। (14) पिस्तौल एक उपयोगी शस्त्र माना जाता है। (15) दो बैल, दो गधे, एक भैंस और एक बकरी मैदान में चर रहे हैं। (16) कहते हैं राजा भोज के राज्य में बाघ

बुद्धिवाला (25) देखने योग्य (26) दूर की बात को देखनेवाला (27) शक्ति के अनुसार (28) सब कुछ जाननेवाला (29) जो जानने की इच्छा रखता हो (30) भविष्य को देखनेवाला 56. **इन वाक्यों के काले छपे वाक्यांशों के स्थान पर एक-एक शब्द का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए**—(1) आप हमारे घर **परिवार के साथ** कब आएँगे ? (2) **ऊपर कही गई** बातों का विशेष ध्यान के साथ पालन करना चाहिए। (3) **जो शरण में आ गया हो**, उस की रक्षा करनी ही चाहिए। (4) वसन्त ऋतु में प्रकृति की शोभा **देखने योग्य** होती है। (5) सीता जी चित्रकूट में **पत्तों की बनी कुटिया** में रहती थीं। 57. **इन शब्दों में मूल शब्द तथा उपसर्ग छाँटिए**—अध्यक्ष, आरोहण, उल्लेख, बदबू, लावारिस, दुबला, बदकार, दुर्दमनीय, संस्कृत, परिश्रम, नीरोग, प्रफुल्लता, पराभव, परिणाम, उद्योग, प्रत्युपकार, दुराचार, उद्धत, विस्मरण, उन्नीस। 58. **इन शब्दों में मूल शब्द तथा प्रत्यय छाँटिए**—महिमा, स्त्रीत्व, तैराक, बचपन, खटिया, ग़रीबी, खिवैया, लालची, नीलिमा, हर्षित, झाड़न, चमकीली, पाठक, लकड़हारा, लुटिया, सुनार, बुराई, लिखावट, पुष्पित, साहित्यिक, पुजारी, झगड़ालू, जंगली, प्यासा, अगला, अड़ियल, छबीला, बपौती, बनैला, डकैत, गेरुआ, कर्तव्य, पूजनीय, चटनी, एकत्र, दैत्य, पांडित्य, आनन्दित, टिकली, चचेरा, भुतहा, इक़रारनामा, दर्दनाक, ख़ाकसार, पर्दानशीन। 59. **इन शब्दों के विलोमार्थी शब्दों से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(अर्वाचीन, आस्तिकता, दिन, त्याग, मान, विकर्षण, संक्षिप्त, साहसी, सुकाल, स्वतन्त्रता (i) उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द········भर लिखते रहते थे। (ii) तलवार का घाव भर जाता है, किन्तु···· का घाव कभी नहीं भर पाता। (iii) धन की पूजा को सन्तों ने सांसारिक····कहा है। (iv) बौद्ध धर्म के ह्रास के दिनों में····का विकृत रूप तन्त्र-साधना बन गया था। (v) संवत् 1956 का····बहुत समय तक याद रहेगा। (vi)····सिपाही ही प्राणों की चिन्ता कर युद्ध भूमि से भागते हैं। (vii) हमें ···भारतीय संस्कृति पर गर्व है। (viii) कलवाली दुर्घटना की····जानकारी मिलनी चाहिए। (ix)····का बन्धन कोई नहीं चाहता। (x) खजुराहो की मूर्तियों में विशेष····है। 60. **प्रदत्त पर्याय शब्दों में से उपयुक्त शब्द से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(क) आतंकवादियों के हमले के समय अनेक लोग रामायण के संगीत····में गोते लगा रहे थे। (समुद्र, सागर, पयोधि, रत्नाकर (ख) सभी राजपूत अपने····पर गर्व करते हैं। (शक्ति, पराक्रम, वैभव, गौरव) (ग) पंचायतें स्थापित करने का उद्देश्य था—जनता को···· की नींद सोने का अवसर प्रदान करना। (आनन्द, सुख, आमोद, हर्ष) (घ) देखते-देखते सारा····मेघाच्छन्न हो गया। (आसमान, आकाश, व्योम, अन्तरिक्ष) (ङ) मैं बचपन से ही····में तैरना सीख गया था। (सरिता, नदी, तटिनी, तरणी) 61. **इन शब्दों के दिए गए पर्याय शब्दों में से 2-2 अपर्याय शब्दों को छाँटिए**—(i) अपमान (अवहेलना, तिरस्कार, परिभव, अनादर, निरादर, पराभव) (ii) आँख (चक्षु, हम, प्रियम्बु, सहकार, नेत्र, लोचन, नयन) (iii) इन्द्र (अमरपति, पुरन्दर, मेघवाहन,

सुरपति, दानव, सुरेश बलराम) (iv) कमल (शतदल, तामरस, पंकज, शची, सरोज, नीरज, अनुचर,) (v) किरण (मयूख, रंभा, मरीचि, अंशु, कर, रश्मि, सारमेय) (vi) तालाब (तड़ाग, जलाशय, पद्माकर, सर, किंकर, पावस, सरोवर) (vii) देवता (देव, सुर, आदित्य, तरी, अमर, निर्जर, कामाक्षी) (viii) पहाड़ (अचला, महीधर, आर्या, भूधर, शैल, आत्मजा, पर्वत) (ix) रात्रि (वृन्दा, क्षणदा, तमस्विनी, रजनी, निकर, विभावरी, यामिनी) (x) समुद्र (सागर, सिन्धु, पुंज, नदीश, अब्धि, विधु, वारीश)

62. **इन मुहावरों/कहावतों के दिए गए अर्थों में से शुद्ध अर्थ बताइए**—(1) धोबी का कुत्ता न घर का घाट का (1. कहीं ठौर-ठिकाना न होना 2. धोबी के कुत्ते को घर में और घाट पर जगह नहीं मिलती 3. बीमारी के कारण धीरे-धीरे चलना 4. गदहा बनना) (2) आस्तीन का साँप (1. कपटी मित्र 2. आँख की किरकिरी 3. नये ज़माने का आदमी 4. मिठबोला शत्रु) (3) फूंक-फूंक कर पैर रखना (1. फूँक मारते हुए पैर रखना 2. डरते हुए क़दम रखना 3. सोच-विचार कर काम करना 4. धीरे-धीरे टहलना) (4) छठी का दूध याद आना (1. भूख-प्यास लगना 2. शैशव की याद आना 3. बुरा हाल होना 4. पराजित होना) (5) कान भरना (1 कान में फूँक मारना 2. कान में पानी भर जाना 3. कान में दवा डालना 4. किसी के विरुद्ध शिकायत कर किसी को बहकाना) (6) एक पंथ दो काज (1. एक साथ दो पद पाना 2. एक साथ दुहरा लाभ होना 3. एक बार में अनेक कार्य करना 4. क्या करें, क्या न करें के सोच में पड़ना) (7) गाल बजाना (1. शिव जी की पूजा करना 2. डींग हाँकना 3. एक विशेष प्रकार की बीमारी 4. 'गाल' नामक एक विशेष प्रकार का बाजा बजाना) (8) बाँसों उछलना (1. बाँसों के ऊपर से उछाल मारना 2. नीचे से उछल कर ऊपर चढ़ जाना 3. अति प्रसन्न होना 4. पागल हो जाना) (9) अपना उल्लू सीधा करना (1. अपने पालतू उल्लू को डंडी से पीटना 2. अपना काम निकालना 3. धूर्तता करना 4. गाली-गलौज देना) (10) आसन डोलना (1. एक जगह से दूसरी जगह जाना 2. अत्यधिक चंचल होना 3. ऊपर से नीचे आ जाना 4. आसन का हिलना-डुलना) (11) तन पर नहीं लत्ता, पान खाए अलबत्ता (1. घर में नहीं दाने फूफी चली भुनाने 2. झूठा दिखावा करना 3. दूसरों पर रोब डालना 4. बुरी आदत में पड़ जाना) (12) नाक रगड़ना (1. नाक मलना 2. नाक में चोट लग जाना 3. इज्ज़त देना 4. बहुत खुशामद करना) (13) ऊँट के मुँह में जीरा (1. ऊँट के मुँह में एक विशेष प्रकार की बीमारी होना 2. अत्यल्प 3. ऊँट के मुँह में जीरा उँड़ेलना 4. पेट भर जाना) (14) सब धान बाईस पंसेरी (1. अच्छा बुरा-सब को समान समझना 2. बहुत सस्ता होना 3. बहुत मँहगा होना 4. अधिकता सुविधाजनक होती है) (15) दाल-भात में मूसलचन्द (1. दाल भात में मूसल चलाना 2. खाने-पीने पर जान छिड़कना 3. बेकार की दखलन्दाज़ी 4. अपने आप को बहुत बड़ा समझना)

63. **इन अशुद्ध मुहावरों को शुद्ध कीजिए**—(क) अग्नि पानी का बैर (ख) अंधे का डंडा (ग) अपनी रोटी अलग पकाना (घ) आ भैंस मुझे मार

(ङ) एक डंडे से हाँकना (च) एक थैली के ईंट-पत्थर (छ) कान पर चींटी तक न रेंगना (ज) ज़मीन पर पंजा न पड़ना (झ) नाकों चबेना चबाना (ञ) रस्सी जल गई मगर सलबट नहीं निकली।

पदबन्ध तथा वाक्य-व्यवस्था—1. **शद्ध उत्तर बताइए**—(i) 'तन्दुरुस्त और सुन्दर बच्चा सभी को अच्छा लगता है' में 'तन्दुरुस्त और सुन्दर बच्चा' है—(क) पद (ख) उपवाक्य (ग) पदबन्ध (घ) सामासिक शब्द। (ii) 'हमारे पड़ोस में कमलनयन रहता है' में 'कमलनयन' है—(क) पद (ख) पदबन्ध (ग) समस्त पद (घ) सन्धि (iii) 'तुझ अभागे को यह दिन देखना भी बदा था' में 'तुझ अभागे को' है—(क) संज्ञा पदबंध (ख) सर्वनाम पदबन्ध (ग) विशेषण पदबन्ध (घ) उपवाक्य (iv) 'इस समय आप यहाँ से चले जाइए' वाक्य है—(क) प्रश्नसूचक (ख) अनुरोध-सूचक (ग) आज्ञार्थक (घ) निषेधसूचक (v) 'उस के सामने या शान्त सरोवर और उस में तैरता हुआ एक राजहंस' में 'तैरता हुआ' है—(क) विशेषण पदबन्ध (ख) क्रियाविशेषण पदबन्ध (ग) क्रिया पदबन्ध (घ) संज्ञा पदबन्ध (iv) 'तपती दुपहरी में भिखारी ज़मीन पर लोटते हुए चिल्ला रहा था' में 'ज़मीन पर लोटते हुए' है—(क) विशेषण पदबन्ध (ख) क्रियाविशेषण पदबन्ध (ग) क्रिया पदबन्ध (घ) संज्ञा पदबन्ध (vii) 'श्रीकृष्ण सुदामा की दीन दशा सुन कर अत्यन्त विह्वल हो गए' वाक्य है—(क) सरल (ख) सरलसम (ग) मिश्र (घ) संयुक्त (viii) 'वह, जो अभी-अभी यहाँ से गई है, मेरे साले की बेटी है' में 'जो····गई है' है—(क) पदबन्ध (ख) वाक्य (ग) उपवाक्य (घ) समस्त पद (ix) 'तुम्हारा पैसा इस महीने के अन्त तक तुम्हें मिल जायगा' में 'इस महीने के अन्त तक' है—(क) संज्ञा पदबन्ध (ख) क्रियाविशेषण पदबन्ध (ग) सर्वनाम पदबन्ध (घ) समयसूचक पद (x) 'सूरज उगा, कुहासा भागा' वाक्य है—(क) सरल (ख) मिश्र (ग) संयुक्त (घ) सरलसम 2. **संरचना की दृष्टि से ये कैसे वाक्य हैं**? (i) माँ-बाप चाहते हैं कि उन की सन्तान स्वस्थ रहे और ख़ूब पढ़े-लिखे (ii) पौधों के जीवन का आधार केवल पानी ही नहीं है, वरन् कई अन्य पदार्थ भी हैं। (iii) बच्चा अभी-अभी सो कर उठा है। (iv) विद्या से ज्ञान-वृद्धि होती है, विचार-शक्ति प्राप्त होती है तथा सम्मान मिलता है। (v) जब संकट आ जाए तो घबराना नहीं चाहिए। (vi) प्राची में सूर्य के आगमन ने अन्धकार के अस्तित्व को समाप्त कर दिया। 3. **इन में से मिश्र वाक्य छाँटिए**—(क) क्या अध्यापकों के समक्ष ही छात्र अध्ययनरत रहते हैं (ख) छात्र अध्ययनरत रहते हैं और अध्यापक उन्हें देखते हैं (ग) अध्यापक देखते हैं कि छात्र अध्ययनरत हैं (घ) अध्यापकों के सामने छात्र अध्ययनरत रहते हैं या नहीं (ङ) जब छात्र अध्ययनरत रहते हैं, तब अध्यापक उन्हें देखते हैं। 4. **इन वाक्यों में आश्रित उपवाक्य छाँटिए और उन के नाम बताइए**—(क) यह बिलकुल झूठ है कि मैं ने तुम्हारी घड़ी चुराई है। (ख) जब तुम पैदा हुए थे, तब मैं दस वर्ष का था। (ग) श्याम ने बताया कि वह कल नहीं आ पाएगा। (घ) यदि इस सप्ताह भी पानी नहीं बरसा तो सूखा पड़ जाएगा (ङ) मुझे

वही नोट चाहिए जो तुम्हारे हाथ में है । 5. **इन वाक्यों में उद्देश्य छाँटिए**—(क) गंगा एक बहुत पवित्र नदी है । (ख) गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दी में रामायण लिखी है । (ग) सर विलियम जोन्स संस्कृत के एक उत्कृष्ट विद्वान् थे । (घ) सभी जवान देश के प्रहरी हैं । (ङ) मेरे पड़ोसी की बड़ी बेटी की शादी कल है । 6. **इन वाक्यों को सरल वाक्यों में बदलिए**—(क) जो बच्चे भोले-भाले तथा परिश्रमी होते हैं, उन्हें सभी प्यार करते हैं । (ख) यदि मन लगा कर परिश्रम किया जाएगा तो सफलता मिलेगी ही (ग) बताइए, आप कब वापस आ रहे हैं ? (घ) वे केवल पढ़ाते ही नहीं, बल्कि खेती भी करते हैं । (ङ) जब हार ही गए, तब अफ़सोस क्यों ? 7. **कारक-प्रयोग की दृष्टि से इन वाक्यों को शुद्ध कीजिए**—(i) वे कल सुबह नौकरानी बुलाया था । (ii) यह प्रश्न किसी की समझ नहीं आया । (iii) साधना उर्मिला को खिलौने लाई । (iv) घाव में मरहम लगा लो । (v) तालाब के अन्दर पानी नहीं है । (vi) तुम वहाँ किस को मिलोगे ? (vii) उच्च विचार को ग्रहण करो (viii) युद्ध में सैनिक जान हथेली में रख कर शत्रु को लड़ते हैं । (ix) बच्चे ने हँस दिया । (x) बहन भाई में विश्वास था । (xi) बच्चा खिलौना को रो रहा है । (xii) पिता से मेरा प्रणाम । (xiii) तुम तो घर में का आदमी हो । (xiv) दो मज़दूर मकान की छत पर से गिर गए । (xv) चलो, इसी बहाने से उन का दर्शन हो गया । (xvi) बच्चे को आप की बात भूल गई । (xvii) प्रधानाचार्य मॉनीटर को पूछा कि····(xvii) मैना झाड़ी पर बैठी है । (xix) इस गाँव पर कुत्तों की अधिकता है । (xx) वह स्कूल को छोड़ दिया है । 8. **इन वाक्यों को मिश्र वाक्यों में बदलिए**—(क) अस्वस्थ होने के कारण सुशीला परीक्षा में सम्मिलित न हो सकी । (ख) भारतीय जवानों को मोर्चा सँभाले देख दुश्मन भाग खड़े हुए । (ग) घर आए अतिथि की दीन दशा देख कर बच्ची से भरपेट खाना खिलाया । (घ) संकटों से घिरा रहने पर भी वह निराश नहीं हुआ । (ङ) परिश्रमी छात्र परीक्षा में अवश्य सफल होते हैं । 9. **विविध प्रकार की अशुद्धियों से युक्त इन वाक्यों को शुद्ध कीजिए**—(1) अफ़सर ने कागज़ात का निरीक्षण कर लिया है । (2) ऐसे काव्य में किसी व्यक्ति या घटना के दृश्य या रूप का ही चित्रण प्रधान होता है । (3) ये पत्र जब वे जेल में थे, उन दिनों लिखे थे । (4) क्या तुम अपनी बात का स्पष्टीकरण करने के लिए तैयार हो ? (5) अब इस बच्चे का भविष्य आप पर निर्भर करता है । (6) बेचारी कई वर्षों से उस के लौटने की प्रतीक्षा देख रही है । (7) महान् व्यक्ति के लिए उस का काम ही पूजा होती है । (8) अभी एकाध कठिनाइयाँ और रह गई हैं । (9) क्या तुम को भी दो बार जुड़वाँ बच्चियाँ हुई हैं ? (10) किसी भी बच्चे को भेज दीजिए । (11) चाहे जो भी हो, हम वहाँ चलेंगे । (12) अरे, तुम तो इतनी जल्दी वापस लौट आईं । (13) तब तो शायद वे हमें वहाँ ज़रूर मिलेंगे । (14) पिस्तौल एक उपयोगी शस्त्र माना जाता है । (15) दो बैल, दो गधे, एक भैंस और एक बकरी मैदान में चर रहे हैं । (16) कहते हैं राजा भोज के राज्य में बाघ

और बकरी एक घाट पानी पीती थी। (17) मुझे विद्यार्थियों ने एक अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया। (18) प्रतिवर्ष गणतन्त्र दिवस पर भारत की महान् विभूतियों को पद्मश्री आदि पदवियाँ अर्पित की जाती हैं। (19) परिणय-सूत्र में बँधनेवाली सौभाग्यवती सुशीला को सस्नेह भेंट। (20) तीसरी शीटी पर सब खिलाड़ी भागना आरम्भ करेंगे। (21) मेरा नाम श्री प्रमोदकुमार जी है। (22) कृपया आप ही यह सब समझाने का अनुग्रह करें। (23) आप के बेटे की मृत्यु का हमें भी बहुत खेद है। (24) क्या एक-एक कर के सभी चले जाओगे ? (25) नेता लोग दिखावे के लिए कुछ विशेष दिनों में चरखा कातते हैं। 10. **उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थान-पूर्ति कीजिए**—(i) वाक्य में उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध धनात्मक के अतिरिक्त······· भी होता है। (ii) शीर्ष/केन्द्र पद के आगे-पीछे विशेषक के रूप में आनेवाले पद······ कहलाते हैं। (iii) वाक्य का वह गुण जिस के कारण वाक्य का अन्वय करने पर अर्थबोध में बाधा उत्पन्न नहीं होती,······ कहलाता है। (iv) वाक्य में पदों की आसत्ति········· प्रकार की होती है। (v) 'क्या हम घर जाएँ' में प्रश्नयुत········ है। (vi) 'बतख़ तैर रही है' वाक्य की क्रिया अवस्थितिसूचक नहीं, वरन् ·········· है। (vii) ············सन्दर्भ में वाक्य अधिक संक्षिप्त तथा अपूर्ण रहते हैं। (viii) सरलेतर वाक्य············प्रकार के होते हैं। (xi) घटक अस्तित्व के आधार पर वाक्य········प्रकार के होते हैं। (x) वाक्य-विग्रह की सारणी में उद्देश्य को दो भागों में और विधेय को········भागों में बाँटा जाता है। (xi) हिन्दी में दो स्तरों पर अन्विति मिलती है—······स्तरीय,·······स्तरीय। (xii) नियमन को······· या ········भी कहा जाता है। (xiii) चयन तथा शृंखलन की प्रक्रिया का अन्तर ···· कहा जाता है। (xiv) अलंकार, छन्द और रस·······भाषा को अधिक प्रभावकारी और रोचक बना देते हैं। (xv) शब्द-शक्ति के·······भेद माने जाते हैं।

परिशिष्ट—1. इन कथनों का शुद्धाशुद्ध निर्णय कीजिए—(i) किसी भी भाषा की उपभाषाओं तथा बोलियों की एकसूत्रता उन की पारस्परिक बोधगम्यता पर आधारित है। (ii) सीमित क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषा में क्षेत्रीय विविधताएँ कम पाई जाती हैं। (iii) परिनिष्ठित हिन्दी ज्ञाता के लिए पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी बोलियाँ अबोधगम्य हैं। (iv) अलीगढ़, मथुरा, आगरा में कौरवी बोली जाती है। (v) कौरवी में दीर्घ स्वर का परवर्ती व्यंजन प्रायः दीर्घ हो जाता है। (vi) हरियाणवी तथा बाँगरू दो अलग-अलग बोलियाँ हैं। (vii) ब्रजभाषा का मुख्य केन्द्र दिल्ली है। (viii) कान्यकुब्ज और कनौजी शब्द परस्पर सम्बद्ध हैं। (ix) झाँसी के आस-पास बुन्देली बोली जाती है। (x) अवधी का एक नाम कोशली भी है। (xi) बघेलखण्ड की भाषा को बुन्देली कहा जाता है। (xii) छत्तीसगढ़ी को लरिया भी कहा जाता है। (xiii) मातृभाषा भाषी बच्चे बिना किसी सैद्धान्तिक व्याकरण के ज्ञान के ही भाषा-व्यवहार कर लेते हैं। (xi) हिन्दी भाषा का आरम्भिक व्याकरण किसी भारतीय ने लिखा था। (xv) हिन्दी व्याकरण-क्षेत्र में विदेशी चिन्तकों का कार्य सराहनीय है।

32
उत्तर-संकेत

विषय-प्रवेश—1. (क) भाषा (ख) व्याकरण (ग) अपनी (घ) व्यवस्था (ङ) प्रतीक (च) प्रतीकार्थ (छ) लिपि (ज) उपयुक्त (झ) शतप्रतिशत (ञ) ध्वनियों 2. (क) × (ख) × (ग) √ (घ) √ (ङ) × 3. (क) बोलियाँ (ख) तीन (ग) पाँच (घ) आरम्भिक (ङ) मध्यकाल (च) सम्मिलन (छ) उच्चरित (ज) मुसलमानों (झ) भाषा-व्यवहार (ञ) व्याकरण 4. (क) √ (ख) × (ग) √ (घ) √ (ङ) × ।

ध्वनि तथा वर्ण-व्यवस्था—1. (क) ध्वनि (ख) स्वन (ग) लिपि-चिह्न (घ) नहीं (ङ) वर्णों (च) प्रभाव (छ) स्वनिम (ज) काल्पनिक (झ) स्वनिम (ञ) उच्चारण 2. (क) उच्चारण (ख) अचल (ग) समीप (घ) कठोर (ङ) अनुनासिक (च) अग्र (छ) स्वर-तन्त्रियाँ (ज) कम्पन (झ) अधिक (ञ) जपित 3. (क) तालु (ख) दन्तोष्ठ (ग) दंतमूल (घ) ओष्ठ (ङ) कठोर तालु 4. (क) सात (ख) तालव्य (ग) सुर, अनुतान (घ) विवृत्ति (ङ) व्यंजन, स्वर 5. (क) नहीं (ख) नहीं (ग) नहीं (घ) हाँ (ङ) हाँ (च) हाँ (छ) हाँ (ज) नहीं (झ) हाँ (ञ) नहीं । 6. कंचन, दंड, चंदन, आँधी, गांधी, आँख, उँगली, ऊँट, हँसना, बंदर, बँदरिया, रंग, रँगरेज़, हँसिया, फँसना, ढाँचा, चंगा, मंगली । 7. प्रतिच्छाया, स्वास्थ्य, उज्ज्वल, कवयित्री, जागरित, ज्योत्सना, अतिशयोक्ति, प्रसन्न, निरपराध, पूजनीय, परीक्षा, तैयार, प्रशंसा, उज्ज्वल, श्रृंगार, आशीर्वाद, विशेषता, दशम, महत्त्व, अतिथि, गरिष्ठ, आगामी, पुरुषार्थ, मृत्यु, अनुगृहीत, आकांक्षा, प्रदर्शनी, चरमोत्कर्ष, कृतकृत्य, ईर्ष्या, गृहीता, पृष्ठ, पिशाच, चिह्न 8. (क) प्लुत (ख) नहीं (ग) अल्पप्राण, लिखा (घ) अल्पप्राण, लिखा (ङ) संस्कृत (च) स (छ) चिह्न (ज) ज़ फ़ (झ) योजक (ञ) प्रयत्न 9. बवंडर, विवश, प्रतिबिम्ब, बिन्दु, दबाव, नवाब, कवाब, गरिष्ठ, अनिष्ट, पृष्ठ, शासन, आदर्श, प्रशासनिक, आमिष, सृष्टि, श्लिष्ट, श्रेष्ठ, षष्ठी, संतुष्ट, कनिष्ठ, निष्ठा, प्रशंसा, कुशासन, प्रसाद, नमस्कार 10. कमला, विद्यार्थी, विद्युत, प्रतीक्षा, सत्यभाषी, बचपन, क्लेश, दक्षता, यज्ञ, लब्धप्रतिष्ठ 11. (क) तालु (ख) दन्तोष्ठ (ग) मुँह (घ) बिन्दु (ङ) छह (च) बद्धाक्षर (छ) मध्य (ज) दीर्घ

(झ) कोमल तालु (ञ) स्वर वर्ण 12. बलाघात 13. (क) जटिल (ख) मात्रा (ग) लिपि (घ) लिपि (ङ) देवनागरी-वर्ण (च) द्वित्व (छ) बिन्दु (ज) योजक (झ) संस्कृत (ञ) भाषाओं 14. (क) अयोध्या (ख) बीमार (ग) वाल्मीकि (घ) अत्यधिक (ङ) अवनति (च) अत्युक्ति (छ) अनुकूल (ज) अहल्या (झ) उज्ज्वल (ञ) कालिदास (ट) क्षमा (ठ) अनिष्ट (ड) उपलक्ष (ढ) महत्त्व (ण) ईर्ष्या (त) चिह्न (थ) तालाब (द) प्रणाम (ध) नूपुर (न) वाहिनी (प) स्मरण (फ) मैथिली (ब) कवयित्री (भ) बहुलता (म) आविष्कार 15. भाग्यवान्, वाङ्मय, प्रत्युत्, पृथक्, किंचित्, हठात्, श्रीमान्, वणिक्, बुद्धिमान्, विधिवत्, एवम्, वाक्, षट् 16. एक दिन मेम-डॉक्टर कमला से रूखे-से स्वर में पूछ बैठी—"तू कहाँ जाएगी ? जाती क्यों नहीं ? दूध और केलों पर कहाँ तक पड़ी रहेगी ?" "कहाँ जाऊँ ?" "मैं क्या जानूँ, कहाँ जाएगी !" "मेरा तो इस दुनिया में कोई अपना नहीं है !" "तो इस के लिए क्या मैं जिम्मेदार हूँ ? अस्पताल कोई यतीमख़ाना या आश्रम तो नहीं है। अगर तू खुद यहाँ से न निकलेगी, तो मैं आज शाम को तुझे धक्के दे कर निकलवा दूँगी।" 17. (क) दस, दो (ख) तीन (ग) अर्ध विवृत (घ) उच्च (ङ) अग्र (च) अनुनासिक (छ) घोष, अघोष (ज) दृढ़ (झ) संघर्षी (ञ) तीन (ट) स्वनिक, व्याकरणिक (ठ) स्वर, व्यंजन (ड) चार (ढ) तीन (ण) अग्रतालव्य (त) स्पर्श-संघर्षी (थ) के बाद (द) केन्द्रीय/मुख्य, गौण (ध) अघोष (न) स्वनिक (प) नासिक्य (फ) श (ब) चार (भ) तीन (म) तीन।

रूप तथा शब्द-व्यवस्था—1. (क) निर्धनता—भाव०, दया-भाव० (ख) कृष्ण-व्यक्ति० सुदामा-व्यक्ति०, मित्रता-भाव० (ग) पानीपत—व्यक्ति०, लड़ाई-भाव० लड़ाइयाँ-जाति० (घ) बच्ची-जाति०, मुस्कान-भाव० (ङ) सिंह-जाति०, आँखों-जाति०, भयंकरता-भाव० 2. (क) मिलावट (ख) निर्धनता (ग) लिखावट, लिखावट (घ) लड़ाई (ङ) चुनाव 3. (क) शुद्ध (ख) शुद्ध (ग) अशुद्ध (घ) अशुद्ध (ङ) शुद्ध (च) अशुद्ध (छ) अशुद्ध (ज) अशुद्ध (झ) शुद्ध (ञ) शुद्ध 4. तत्सम—तृण, क्षेत्र, कार्य तद्भव—रात, अढ़ाई देशी—पेड़, लड़का, खिड़की, कटोरा विदेशी—गमला, लीची, इंजन, रिक्शा, मशीन, चुगलखोर, कमीना, तकिया, अनन्नास 5. रूढ़—जल, शेर, कल, लड़का, चाबी, मल्लाह, छिपकली, आसमान, किशमिश, मलाई यौगिक—शक्तिशाली, धर्मशाला, नीलकंठ, देवदूत, बेरहम, आतिशबाज़ी योगरूढ़—पंकज, दशानन, नीलकंठ, जलद, चक्रधर 6. शिर, हरिद्रा, कर्ण, खदिर, भगिनी, सक्तु, शलाका, अक्षि, उष्ट्र, वधू, मयूर, शर्करा, पाद, निद्रा, त्वरित, सर्पिणी, कोकिल, उद्वर्तन, नव, चुल्लिः, तिक्त, भक्त, घोटक, गोमल, सपत्नी 7. खेत, बच्चा/बाछा, हड्डी, फूल, काठ, पिय/पिया, हिरदै, बैन, पत्ता, चार, हाथ, चौकी, डंडा, चोंच, हाथी, खपरा, आग, खीर, पलंग, सात 8. दिन के बाद दिन, गगन को चूमनेवाला, मुँह से माँगा (हुआ), डाक के लिए महसूल, लोक से उत्तर (/बाद), त्रिपुर का अरि, क्षत्रियों में अधम, कुत्सित पुरुष, कुत्सित अन्न, कुमारी श्रमणा (अर्थात् संन्यास ग्रहण की हुई), कृत-अकृत (कार्य), विद्युत के समान वेग,

रत्न के समान नर, विद्या ही है रत्न, पाँच वटों का समूह, शांति है प्रिय जिसे वह, परिवार के साथ है जो वह, लेन और देन, घर-आँगन आदि (=परिवार), लाभ या अलाभ 9. (अ०=अरबी, फ़०=फ़ारसी, अँ०=अँगरेज़ी) पुर्तगाली, अ०, रूसी, अँ०, फ़ा०, पुर्त०, पुर्त०, अ०, तुर्की, तु०, अ०, अ०, तु०, फ़ा०, तु०, चीनी, फ़ा०, अँ०, जापानी, अँ०, अ०, अ०, अ०, अँ०, अँ०, अ०, फ़ा०, फ़ा०, फ़ा०, फ़ा० 10. लड़कपन, पांडित्य/पंडिताई, मधुरिमा/मधुरता, कुशलता/कौशल, मूर्खता, हरियाली, विद्वत्ता, खटास, पढ़ाई, मनुष्यता, चाल, एकता, अच्छाई, लघुता/लाघव, बुढ़ापा, मुटापा, खुशी, पौरुष, काठिन्य/कठिनाई, उदारता, ममता, चोरी, बचपन, ऐश्वर्य, प्रभुता, नारीत्व, गुरुत्व, अहमन्यता, नैकट्य/निकटता, सामीप्य 11. (क) सर्वनाम से (ख) विशेषण से (ग) क्रिया से (घ) विशेषण से (ङ) अव्यय से (च) क्रिया से (छ) सर्वनाम से (ज) क्रिया से (झ) संज्ञा जातिवाचक से (ञ) अव्यय से 12. भाव०, व्यक्ति०, भाव०, समूह०, जाति०, द्रव्य, व्यक्ति०, समूह०, जाति०, द्रव्य०, व्यक्ति०, भाव०, भाव०, भाव, जाति०, भाव०, जाति०, समूह०, द्रव्य०, व्यक्ति० 13. कौशल, गरिमा, लेन-देन, शैशव, सामीप्य, शौर्य, नीलिमा, सुधार, हँसी, दौड़, अहंकार, दौत्य 14. (क) वीरता (ख) मित्रता (ग) स्वास्थ्य (घ) बुराई (ङ) नक़ल (च) मिठास/खटास (छ) सफलता (ज) ईमानदारी (झ) प्रशंसा (ञ) सफेदी 15. (क) गुणवती (ख) तुम्हारी (ग) धीमे (घ) आठवीं (ङ) दी (च) गए (छ) की (ज) मीठी थी (झ) की (ञ) रही 16. पुल्लिग—पक्षी, मच्छर, दर्ज़ी, वक्त, वारंट, ठठेरा, द्वीप, छाता, राकेट, प्रसाद, प्रासाद, चश्मा, दही, घी, पलंग, कान, मधु स्त्रीलिंग—फ़ीस, झंझट, धूप, पूजा, गोद, बौछार, आरती, गैलरी, मेज़, खाट, नाक, मूँछ, धातु 17. धोबिन, नौकरानी, पापिन, हिरणी, वर, विदुषी, युवती, जेठानी, हथिनी, नारी, कुतिया, तपस्विनी, महाशया, ठकुरानी, आचार्या, देवरानी, इन्द्राणी, बालिका, पाठिका, विधुर, लोटा, सिंहनी, लुहार, दाता, पालित, लड़ैतिन, भाग्यवान्, पंडाइन, बँदरिया/बँदरी, बिलौटा 18. बाधिन, नर्तकी, बबुआइन, मन्त्राणी, गीदड़ी, युवती, सुनारिन, कवयित्री, इन्द्राणी, नायिका, परिचारिका, सूर्याणी, महाशया, अध्यापिका 19. दर्शन, हस्ताक्षर, आँसू, लोग, अक्षत, वृन्द, प्राण, गण, 20. खटियाँ, दूधवाले, पक्षी, योद्धा, झीलें, रानियाँ, आले, मुनि, चौबे, फ़िल्में, ध्वनियाँ, बोतलें, प्यालियाँ, चिड़ियाँ, दवातें, दावतें, नारंगियाँ, शहज़ादियाँ, तिजोरियाँ, मामा, अध्यापिकाएँ, बहुएँ, पाठक/पाठकगण, आप/आपलोग 21. दर्शन, केश, लोग, समाचार, रोम, आदमी, बालक, विद्यालय, भाग्य, प्राण, कागज़, 22. (क) आज के छात्र कल के नेता हैं। (ख) तुम ने ये पुस्तकें भी पढ़ डालीं। (ग) लड़कियाँ चिट्ठियाँ लिख रही हैं। (घ) अपने बेटों के नाम बताइए। (ङ) सब बच्चों को जलेबियाँ मिलेंगी। 23. (i)……कि हम दो……हैं। (ii)……ने गोलों और……। (iii) लड़कियाँ ……। (iv)……मेरे तो……गए। (v)……आतंकवादियों……सिपाहियों की मुठभेड़ें ……रहीं। (vi)…… बजे हैं। (vii)……घर से पैसे ……आओ/आना (viii)

........खाएँगे ? (ix)........पत्तियाँ........हैं। (x)........लड़कियों को........कलाएँ ....चाहिए। (xi)........बकवास........मेरे तो........पाए। ( )........आँसुओं ....के पैर धुल गए। 24. (i) अशुद्ध (ii) अशुद्ध (iii) शुद्ध (iv) अशुद्ध (v) शुद्ध 25. (i) की, के, पर (ii) को, से (iii) के लिए, में (iv) ने, की, पर (v) से, पर (vi) से, ने (vii) का, को (viii) के (ix) को, पर (x) से, की, पर 26. (i) करण (ii) अपादान (iii) कर्ता, कर्म (vi) अधिकरण (v) सम्प्रदान (vi) करण (vii) अपादान (viii) कर्ता, कर्म सम्बन्ध 27. (i) जो, वह (ii) क्या (iii) उन्हों ने (iv) मुझे (v) तेरे (vi) मैं (vii) मैं, तुम (viii) अपना (ix) अपनी (x) आप 28. (घ), (च) 29. (क), (घ), (ङ) 30. (i) क्या (ii) तुम से (iii) मुझे (iv) अपना (काम), अपना (v) उस का (vi) मेरे (तीन) (vii) तुम्हारे (कितने) (viii) ये (xi) अपनी (मजबूरी) (x) वे (लोग) 31. (क) मैं (ख) हमारे (ग) तू (घ) किसी (ङ) तुम 32. रक्तिम, ऐतिहासिक, अवलम्बित, साम्प्रदायिक, मौलिक, सांकेतिक, दैवीय, याज्ञिक, साहित्यिक, कारुणिक, शोषित पंकिल, पतित, कुसुमित, वैसा, धार्मिक, विश्वजनीन, शैव, बौद्धिक, ग्रामीण, सुनहरा, कालीन, सैन्धव, स्वर्णिम, मायावी, तैलीय, बंगाली, पनीला, मटीला, सौर्य, जलीय जैविक, दलित, वर्गीय, लौह, भक्त, लोभी, सार्वजनिक 33. क (i) + ख (16), 2+10, 3+6, 4+1, 5+15, 6+13, 7+5, 8+20, 9+14, 10+17, 11+4, 12+18, 13+12, 14+2, 15+24, 16+7, 17+15, 18+8, 19+9, 20+11, 21+25, 22+21, 23+3, 24+22, 25+23 34. (क) गठीला (ख) मोटे (ग) छोटी (घ) सूक्ष्म, सभी (ड) परम 35. (i) बहुत सुन्दर महिला (ii) बहुत दुःख (iii) में एक हज़ार चार सौ पैंतीस (iv) को प्राणिमात्र (v) ही हिंस्र होता (vi) भी अपना काम (vii) को चार पुस्तकें (viii) इसे रहस्य (ix) बड़ा-सा बिच्छू मेरे (x) नीली साड़ियाँ 36. (i) गाना सुना (ii) नाश्ता कर के (iii) विलाप करने लगी (iv) सम्भव है (v) वातावरण है (vi) उच्चारण करो (vii) जाना चाहिए था (viii) कर लेंगे (ix) शोर न कीजिए (x) हँस पड़ी 37. (i) ....खर्च होता है। (ii) ....में हम ने व्याकरण पढ़ा (iii) आज हमें गणित पढ़ाया गया। (iv) (........) ने उन........मार दी। (v) डोली नहीं उठाई गई। (vi) बच्चों से........कष्ट नहीं सहे जा सकते। (vii) सब की रक्षा की जाती है। (viii) बच्चों को प्यार किया गया। (ix) यहाँ वे नहीं बैठ सकेंगे। (x) मुझे मूर्ख समझा जाता है। (xi) चोर पकड़ा गया। (xii) इन बच्चों से यहाँ नहीं खेला जाएगा। (xiii) उस से........उठा जाता। (xiv) ....मुझ से........पी जाती। (xv) ...., नौकर बुलाया जा रहा है। 38. (i) शुद्ध (ii) अशुद्ध (iii) अशुद्ध (iv) शुद्ध (v) अशुद्ध (iv) अशुद्ध (vii) अशुद्ध (viii) शुद्ध (ix) अशुद्ध (x) शुद्ध। 39. (i) खुली हो (ii) रह रहा है (iii) पढ़ ली (iv) बनाया जाता (v) पढ़वा (vi) जुतवा (vii) खिलवा (viii) चलती (ix) गया (x) होता, लगती 40. (क) द्विकर्मक (ख) अकर्मक, अकर्मक (ग) अकर्मक (घ) अकर्मक (ड) सकर्मक (च) सकर्मक 41. (i) सन्दिग्ध वर्तमान (ii) हेतुहेतुमद्भूत (iii) पूर्व (iv) धातु (v) नाम

धातु (vi) रंजक (vii) भावे प्रयोग (viii) कर्मवाच्य (ix) अभिकर्ता (x) नामार्थ क्रिया। 42. (i) आजकल, नहीं, यहीं (ii) ज़ोर से (iii) कल, आज (iv) भी, भी (v) चाहे, या (vi) इसलिए, ताकि (vii) हाय !, ही (viii) अरे !, भी (ix) लेकिन, ही (x) या (xi) तभी (xii) हाय ! (xiii) ऐं !, कब (xiv) बिना, भी (xv) की अपेक्षा (xvi) आगे 43. (क) सारी रात नींद (ख) प्रातःकाल घूमने (ग) कदापि सत्य (घ) कहे अनुसार काम (ङ) तो सदा से 44. (क) विस्मयादिबोधक (ख) नकारात्मक (ग) प्रश्नबोधक (घ) बलप्रदायक (ङ) निषेधबोधक (च) बलार्थक (छ) बलप्रदायक 45. (क) अकस्मात् (ख) ध्यानपूर्वक (ग) तड़ातड़ (घ) नीचे, ऊपर (ङ) ज़रा (च) बिलकुल (छ) पहले (ज) प्रतिदिन। 46. तथा+एव, स्वः+ग, सम्+तोष, वाक्+ईश, निः+आधार, राज+ऋषि, यदि+अपि, परम+अर्थ, सु+आगत, विद्या+अर्थी, अन्तः+तल, वृक्ष+छाया, शश+अंक, वेद+अन्त, उद्+श्वास, नमः+कार, महा+ऋषि, जगत्+ईश, देव+इन्द्र, रत्न+आकर, सत्+जन, रजः+गुण, कपि+इन्द्र, दुः+आशा, अतः+एव, गिरि+ईश, परम+औदार्य,, उत्+लेख, दिक्+अन्त, गण+ईश, निः+रस, रवि+इन्द्र, वधू+उत्सव, रजनी+ईश, पर+उपकार, यश+अभिलाषी, इति+आदि, निः+कपट, उत्+घाटन परम+आत्मा, निः+विवाद, शिष्ट+आचार, यथा+उचित, सर्व+उदय, वि+आकुल, सत्+भावना, उत्+नति, वाक्+मय। 47. संयोग, संन्यास, पदोन्नति गुरूपदेश, वागीश, मनोरंजन, प्रत्येक, सर्वोदय, इत्यादि, षडानन, अत्यधिक, नाविक, सदैव, रमेश, गणेश, वधूत्सव, जलोर्मि, महौज, अन्वय, नयन, महेश 48. भानु+उदय, सागर+ऊर्मि, अनु+अय, उत्+ज्वल, दीक्षा+अन्तः, मत+ऐक्य, इति+आदि, धर्म+आत्मा, ने+अन, सम्+उत्+चय, सु+उक्ति, सूर्य+उदय, वि+अर्थ, अन्तः+गत, नार+अयन, स्व+अर्थ, नै+अक, स+अष्ट+अंग 49. उद्योग का पति/स्वामी, कृष्ण रंग का सर्प, कष्ट से साध्य, खरा और खोटा, ग्राम में वास, चार मास का समूह, जन्म और मरण, चार मुख हैं जिस के, चार भुजाओं का समूह/चार भुजाएँ हैं जिस के, तीन लोकों का समाहार, तुलसी द्वारा कृत, नीला गगन, नीला है कण्ठ जिस का, दाल और भात, नीला अम्बर/नीला है अम्बर जिस का, नीला कमल, दस हैं आनन जिस के, प्रत्येक वर्ष, पथ से भ्रष्ट, पंच तन्त्रों का समाहार, महान् आत्मा/महान् आत्मा है जिस की, पाप और पुण्य, परम आनन्द, प्रत्येक दिन, समय के अनुसार, राजा और प्रजा, राष्ट्र का पति/स्वामी, अमृत के समान वचन, सेना का पति/स्वामी, शरण में आगत 50. महापुरुष, त्रिफला, अब्राह्मण, धर्माधर्म, नीति निपुण, मृगनयनी, ऋणमुक्त, अस्त्रशस्त्र, गोबरगणेश, घनश्याम, हवन सामग्री, जलद, नीलकंठ, नवरत्न, भरपेट, युधिष्ठिर, महाबली, अल्पबुद्धि, अष्टाध्यायी, अंशुमाल, गृहागत, घी-शक्कर, गणपति, चन्द्रमुख, दशानन, त्रिवेणी, त्रिलोक, मदान्ध, मेघनाद, पथभ्रष्ट, पीताम्बर, महावीर, रेखांकित, राहखर्च, शक्त्यानुसार, व्यापारपटु, प्राणप्रिय, हथकड़ी, दो-तीन, नरसिंह, आजन्म, पंचमुख,

पंचवटी, गगनचुम्बी, अनुपयुक्त, शुभागमन, मर्मस्पर्शी, त्रिभुवन, स्त्रीरत्न 51. अटवी, कानन, विपिन। अनल, पावक, वह्नि। अभ्यागत, अतिथि, मेहमान। आवास, धाम, सदन। जलाशय, ताल, पुष्कर। दैत्य, दानव, असुर। महिला, ललना, वनिता, पीयूष, अमृत, सुधा। महेश, शिव, हर। 52. विष, व्यय, निर्यात, नास्तिक, अनार्य, शुष्क, अधम, पतन मधु, कृतघ्न, छोटा, मरण, दानव, सबल, मूर्ख, निवृत्ति, नवीन/अर्वाचीन, आन्तरिक, अपयश, अयोग्य, अरुचिकर, सम्पत्ति, श्रोता, कुटिल, दुःखद, असन्तोष, विदेश, नरक, स्वामी, शोक/बिषाद 53. (क) अन्धकार (ख) अनिच्छा, (ग) खुश (घ) लघु (ड) मूर्ख (च) सुख (छ) पुरातन (ज) रंक (झ) असुन्दर (ञ) कुपुत्र 54. (क) दुःख, सुख (ख) रोशनी, अँधेरे (ग) सबल, निर्बल (घ) हानि, जीवन, यश (ड) प्रिय, अशिष्ट 55. (1) आत्मघाती (2) आस्तिक (3) कामचोर (4) अवर्णनीय (5) अनादि (6) अभागा (7) अनिवार्य (8) अछूत (9) निस्संतान (10) अक्षम्य (11) निर्विकार (12) निस्सन्देह (13) अविश्वसनीय (14) निर्दय (15) सर्वप्रिय (16) निर्लज्ज (17) जलचर (18) निरुत्तर (19) निरामिष (20) विनष्ट (21) वचनातीत (22) अमर (23) राजनीतिज्ञ (24) दुर्बुद्धि (25) दर्शनीय (26) दूरदृष्टा (27) शक्यानुसार (28) सर्वज्ञ (29) जिज्ञासु (30) भविष्य दृष्टा 56. (1) सपरिवार (2) उपर्युक्त (3) शरणागत की (4) दर्शनीय (5) पर्णकुटी 57. अधि-+अक्ष, आ-+रोहण, उत्-+लेख, बद-+बू, ला-+वारिस, दु-+बला, बद-+कार, दुर्-+दमनीय, सम्-+कृत, परि-+श्रम नि-+रोग, प्र-+फुल्लता, परा-+भव, परि-+नाम, उत्-+योग, प्रति-+उपकार, दुर्-+आचार, उत्-+हत, वि-+स्मरण, उन-+ईस 58. मह+-इमा, स्त्री+-त्व, तैर+-आक, बच्चा>बच+-पन, खाट+-इया, ग़रीब+-ई, खे(ना)+-बैया, लालच+-ई, नील+-इमा, हर्ष+-इत, झाड़+-न, चमक+-ईली, पाठ+-क, लकड़ी>लकड़+-हारा, लोटा>लुट+-इया, सोना+-आर, बुरा+-ई, लिख+-आवट, पुष्प+-इत, साहित्य+-इक, पूजा+-आरी, झगड़ा+-आलू, जंगल+-ई, प्यास+-आ, आगे>अग+-ला, अड़+-इयल, छबि+-ईला, बाप+-औती, बन+-ऐला, डाकू>डक+-ऐत, गेरू+-आ, कृ+-तव्य, पूज्+-अनीय, चाट+-नी, एक+-त्र, दिति+-य, पंडित+-य, आनन्द+-इत, टीका+-ली, चारा+-एरा, भूत+-हा, इक़रार+-नामा, दर्द+-नाक, ख़ाक+-सार, पर्दा+-नशीन 59. (i) रात (ii) अपमान (iii) भोग (iv) नास्तिकता (v) अकाल (vi) कायर (vii) प्राचीन (viii) विस्तृत (ix) परतन्त्रता (x) आकर्षण 60. (क) सागर (ख) पराक्रम (ग) सुख (घ) आकाश (ङ) नदी 61. (i) परिभव, पराभव (ii) प्रियम्बु, सहकार (iii) दानव, बलराम (iv) शची, अनुचर (v) रंभा, सारमेय (vi) किंकर, पावस (vii) तरी, कामाक्षी (viii) आर्या, आत्मजा (ix) वृन्दा, निकर (x) पुंज, विधु 62. (1) 1, (2) 1, (3) 3, (4) 3, (5) 4, (6) 2, (7) 2, (8) 3, (9) 2, (10) 1, (11) 2, (12) 4, (13) 2, (14) 1, (15) 3 63. (क) आग पानी (ख) की लाठी (ग) अपनी खिचड़ी (घ) आ बैल

(ङ) एक लाठी (च) के चट्टे-बट्टे (छ) पर जूँ (ज) पर पाँव (झ) नाकों चने (ञ) मगर ऐंठन।

पदबन्ध तथा वाक्य-व्यवस्था—1. (i) ग (ii) क (iii) ख (iv) ख (v) क (vi) ख (vii) ख (viii) ग (ix) ख (x) ग 2. (i) मिश्रवाक्य (ii) संयुक्त वाक्य (iii) सरलसम वाक्य (iv) संयुक्त वाक्य (v) मिश्रवाक्य (vi) सरल वाक्य 3. ग; ङ. 4. (क) 'कि……है' संज्ञा उपवाक्य (ख) 'जब……थे' अव्यय (समयसूचक) उपवाक्य (ग) 'कि……पाएगा' संज्ञा उपवाक्य (घ) 'यदि……बरसा' अव्यय (शर्त सूचक) उपवाक्य (ङ) 'जो……है' विशेषण उपवाक्य 5. (क) गंगा (ख) गोस्वामी ……ने (ग) सर……जोन्स (घ) सभी जवान (ङ) मेरे……शादी 6. (क) भोले-भाले तथा परिश्रमी बच्चों को सभी प्यार करते हैं। (ख) मन लगाकर परिश्रम करने पर सफलता मिलेगी ही। (ग) अपने वापस आने का समय बताइए। (घ) वे पढ़ाने के साथ-साथ खेती भी करते हैं। (ङ) हार होने पर अफ़सोस क्यों ? 7. (i) इन्हों ने, नौकरानी को (ii) समझ में (iii) उर्मिला के लिए (iv) घाव पर (v) तालाब में (vi) किस से (viii) हथेली पर, शत्रु से (ix) बच्चा (x) बहन को भाई पर (xi) खिलौने के लिए (xii) पिता को (xiii) घर के (xiv) छत से (xv) बहाने उन के, गए (xvi) बच्चा आप……गया (xvii) मॉनीटर से (xviii) झाड़ी में (xix) गाँव में (xx) उस ने स्कूल छोड़। 8. (क) सुशीला परीक्षा में सम्मिलित न हो सकी क्योंकि वह अस्वस्थ थी। (ख) ज्यों ही भारतीय जवानों को मोर्चा सँभाले (हुए) देखा, त्यों ही दुश्मन भाग खड़े हुए। (ग) बच्ची ने जब घर आए अतिथि की दीन दशा देखी तो उस (बच्ची) ने उसे भरपेट खाना खिलाया। (घ) यद्यपि वह संकटों से घिरा हुआ था तथापि वह निराश नहीं हुआ। (ङ) जो छात्र परिश्रमी होते हैं, वे परीक्षा में अवश्य सफल होते हैं। 9. (1) अफ़सर ने कागज़ात की जाँच कर ली है। (2) किसी व्यक्ति या घटना के रूप या दृश्य का चित्रण ही ऐसे काव्य में प्रधान होता है। (3) ये पत्र उन दिनों लिखे थे, जब वे जेल में थे। (4) क्या तुम अपनी बात के स्पष्टीकरण के लिए तैयार हो ? (5) अब इस बच्चे का भविष्य आप पर निर्भर है। (6) बेचारी कई वर्ष से उस के लौटने की प्रतीक्षा कर रही है। (7) महान् व्यक्ति के लिए उस का काम ही पूजा होता है। (8) अभी एकाध कठिनाई और रह गई है। (9) क्या तुम्हारे भी दो बार जुड़वाँ बच्चियाँ हुई हैं। (10) किसी बच्चे को भेज दीजिए। (11) चाहे जो हो, हम वहाँ चलेंगे। (12) अरे, तुम तो इतनी जल्दी वापस आ गई (/जल्दी लौट आई)। (13) तब तो वे हमें वहाँ ज़रूर मिलेंगे। (14) पिस्तौल एक उपयोगी अस्त्र माना जाता है। (15) दो बैल, दो गधे, एक भैंस और एक बकरी मैदान में चर रही है। (16) कहते हैं राजा भोज के राज्य में बाघ और बकरी एक घाट पानी पीते थे। (17) मुझे विद्यार्थियों ने एक अभिनन्दन पत्र अर्पित किया। (18) प्रतिवर्ष गणतन्त्र दिवस पर भारत की महान् विभूतियों को पद्मश्री आदि पदवियाँ प्रदान की जाती हैं। (19) परिणय-सूत्र में बँधनेवाली

आयुष्मती सुशीला को सस्नेह भेंट। (20) तीसरी शीटी पर सब खिलाड़ी दौड़ना आरम्भ करेंगे। (21) मेरा नाम प्रमोदकुमार है। (22) कृपया आप ही यह सब समझाएँ। (23) आप के बेटे की मृत्यु का हमें भी बहुत दुःख है। (24) क्या एक-एक कर सभी चले जाएँगे? (25) नेता लोग दिखावे के लिए कुछ विशेष दिनों चरखा चलाते हैं। (i) गुणात्मक (ii) परिधीय (iii) योग्यता (iv) दो (v) अनुमति (vi) व्यापारसूचक (vii) अनौपचारिक (viii) दो (ix) दो (x) छह (xi) पदबन्ध, वाक्य (xii) नियन्त्रण, अभिशासन (xiii) शैली-भेद (xiv) काव्य (xv) तीन।

परिशिष्ट—1. (i) शुद्ध (ii) शुद्ध (iii) अशुद्ध (iv) अशुद्ध (v) शुद्ध (vi) अशुद्ध (vii) अशुद्ध (viii) शुद्ध (ix) शुद्ध (x) शुद्ध (xi) अशुद्ध (xii) शुद्ध (xiii) शुद्ध (xiv) अशुद्ध (xv) शुद्ध।